ॐ

प्राग्वाट-इतिहास

प्रथम भाग

[विक्रम संवत् पूर्व पाँचवीं शताब्दी से विक्रम संवत् उन्नीसवीं शताब्दी पर्यन्त]

वीर संवत्	:	२४८०
विक्रम संवत्	:	२०१०
ई० सन्	:	१९५३

* ॐ श्री शांतिनाथाय नमः *

प्राग्वाट-इतिहास

प्रथम भाग

●

उपदेशक :—

श्री सौधर्मबृहत्तपगच्छीय जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री

व्याख्यान-वाचस्पति, इतिहास-प्रेमी—

श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी महाराज

श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भाग १-४, मेरी नेमाड़-यात्रा, मेरी गोडवाड़-यात्रा, यतीन्द्र-प्रवचन आदि विविध इतिहास-पुस्तकों के कर्त्ता, श्री जैन प्रतिमा-लेख-संग्रह के संग्राहक, अनेक धार्मिक, सामाजिक, उपदेशात्मक छोटे-बड़े ग्रंथ-पुस्तकों के रचयिता।

●

लेखक :—

श्री दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी० ए०

'जैन जगती', 'छत्र-प्रताप', 'रसलता', 'राजमती' आदि कविता-पुस्तकों के रचयिता, श्री जैन-प्रतिमा-लेख-संग्रह के सम्पादक, श्री मेदपाटदेशीय काछोलाप्रगणान्तर्गत श्री धामणियाग्रामवासी उपकेशज्ञातीय श्रेष्ठि रत्नचन्द्रजी के कनिष्ठ पुत्र जड़ावचन्द्रजी के कनिष्ठ पुत्र।

●

अर्थसहायक :—

प्राग्वाट-संघ-सभा, सुमेरपुर (मारवाड-राजस्थान)

●

प्रकाशक :—

श्री ताराचन्द्रजी

मन्त्री :—श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति, स्टेशन राणी (मारवाड़-राजस्थान)
श्री वर्धमान जैन बोर्डिङ्ग हाऊस, सुमेरपुर (मारवाड़) के उपसभापति
इतिहास-प्रेमी श्री मरुधर-प्रदेशान्तर्गत श्री पावाग्रामवासी
प्राग्वाटवंशीय श्रेष्ठि मेघराजजी के ज्येष्ठ पुत्र।

प्राप्तिस्थान :—
श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति,
स्टे. राणी (मारवाड़—राजस्थान)

फोटोग्राफी :—
श्री जगन वी० महेता
प्रो० प्रतिमा स्टुडिओ, लाल भवन,
रीलीफ रोड : अहमदाबाद

मूल्य : रु० २१)
प्रथम संस्करण : १०००

ब्लॉकमेकर्स एन्ड प्रिन्टर्स :—
श्री बचुभाई रावत
प्रबन्धक, श्री कुमार कार्यालय,
रायपुर : अहमदाबाद

मुद्रक :—
श्री जालमसिंह मेड़तवाल
श्री गुरुकुल प्रिन्टिंग प्रेस,
ब्यावर (अजमेर-राज्य)



विमलवसहि: प्राग्वाट-कुलदेवी अम्बिका।

तेवीसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के पंचम पट्टधर
युगप्रभावक, विद्याधरकुलाधिनायक, महातेजस्वी, महाजनसंघ के प्रथम निर्माता
अहिंसासिद्धान्त के महान् प्रचारक, यज्ञहवनादि के महान् क्रांतिकारी विरोधी

●

श्रीमद् स्वयंप्रभसूरि

●

जैनतीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर श्रीमद् शुभदत्ताचार्य थे और द्वितीय, तृतीय पट्टधर हरिदत्तसूरि और समुद्रसूरि अनुक्रम से हुये। चतुर्थ पट्टधर श्रीमद् केशीश्रमण थे। श्रीमद् केशीश्रमण भगवान् महावीर के काल में अति ही प्रभावक आचार्य हुये हैं। ये भगवान् पार्श्वनाथ के संतानीय होने के कारण भगवान् महावीर के संघ से अलग विचरते थे। अलग विचरने के कई एक कारण थे। श्री पार्श्वनाथ प्रभु के संतानीय चार महाव्रत पालते थे और पंचरङ्ग के वस्त्र धारण करते थे। भगवान् महावीर के साधु पंच महाव्रत पालते थे और श्वेत रंग के ही वस्त्र पहिनते थे। छोटे २ और भी कई भेद थे। भेद साधनों में थे, परन्तु दोनों दलों की साधक आत्माओं में तो एक ही जैनतत्त्व रमता था; अतः दोनों में मेल होते समय नहीं लगा। गौतमस्वामी और इनमें परस्पर बड़ा मेल था। उसी का यह परिणाम निकला कि आचार्य केशीश्रमण ने भगवान् महावीर का शासन तुरंत स्वीकार किया और दोनों दलों में जो भेद था, उसको नष्ट करके भगवान् महावीर की आज्ञा में विचरने लगे। इनके पट्टधर श्रीमद् स्वयंप्रभसूरि हुये।

श्रीमद् स्वयंप्रभसूरि विद्याधरकुल के नायक थे; अतः ये अनेक विद्या एवं कलाओं में निष्णात थे। आपने अपने जीवन में यज्ञ और हवनों की पाखण्डपूर्ण क्रियाओं को उन्मूल करना और शुद्ध अहिंसा-धर्म का सर्वत्र प्रचार करना अपना प्रमुख ध्येय ही बना लिया था। ये बड़े कठिन तपस्वी और उग्रविहारी थे। जहाँ अन्य साधु विहार करने में हिचकते थे, वहाँ ये जाकर विहार करते और धर्म का प्रचार करते थे।

आपने यह अनुमान लगा लिया था कि जैनधर्म को जब तक लोग कुलमर्यादा-पद्धति से स्वीकार नहीं करें, तब तक सारे प्रयत्न निष्फल ही रहेंगे। उस समय अर्बुदाचल-प्रदेश में नवीन क्रांति हो रही थी। वहाँ यज्ञ हवनादि का बड़ा जोर था। अब तक विरले ही जैनाचार्यों ने उस प्रदेश में विहार किया था। आपने अपने ५०० शिष्यों के सहित अर्बुदगिरि की ओर प्रयाण किया। मार्ग में अनेक तीर्थों के दर्शन-स्पर्शन करते हुये आपश्री अर्बुदगिरितीर्थ पर पधारे। तीर्थपति के दर्शन करके आपश्री ने अभिनव बसी हुई श्रीमालपुर नामक नगरी की ओर प्रयाण किया। आपश्री को अर्बुदतीर्थ पर ही ज्ञात हो गया था कि श्रीमालपुर में राजा जयसेन एक बड़े भारी यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। आपश्री श्रीमालपुर में पहुँच कर राजसभा में पधारे और यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणपंडितों से वाद किया, जिसमें आपश्री जयी हुये और 'अहिंसा-परमोधर्म' का झण्डा लहराया। आपश्री की ओजस्वी देशना श्रवण करके राजा जयसेन अत्यन्त ही मुग्ध हुआ और उसने श्रीमालपुर में बसने वाले ९०००० सहस्र ब्राह्मण एवं क्षत्री कुलों के स्त्री-पुरुषों के साथ में कुलमर्यादापद्धति से जैनधर्म अंगीकृत किया। जैनसमाज की स्थापना का यह दिन प्रथम बीजारोपण का था—ऐसा समझना चाहिए।

श्रीमालपुर में जो जैन बने थे, उनमें से श्रीमालपुर के पूर्व में बसने वाले कुल 'प्राग्वाट' नाम से और श्रीमन्तजन 'श्रीमाल' तथा उत्कट धनवाले 'धनोत्कटा' नाम से प्रसिद्ध हुये। श्रीमालपुर से आपश्री अपने शिष्यसमुदाय के सहित विहार करके अनुक्रम से अर्बलीपर्वत-प्रदेश की पाटनगरी पद्मावती में पधारे।

पद्मावती का राजा पद्मसेन कट्टर वेदमतानुयायी था। वह भी बड़े भारी यज्ञ का आयोजन कर रहा था। समस्त पाटनगर यज्ञ के आयोजन में लगा हुआ था और विविध प्रकार की तैयारियाँ की जा रही थीं। सीधे आपश्री राजा पद्मसेन की राजसभा में पधारे। ब्राह्मण-पंडितों और आपश्री में यज्ञ और हवन के विषय पर बड़ा भारी वाद हुआ। वाद में आचार्यश्री विजयी हुये। आपश्री की सारगर्भित देशना एवं आपश्री के दयामय अहिंसासिद्धान्त से राजा पद्मसेन अत्यन्त ही प्रभावित हुआ और वह जैनधर्म अंगीकार करने पर सन्नद्ध हुआ। आचार्यश्री ने पद्मावती नगरी के ४५००० पैंतालीस सहस्र ब्राह्मण-क्षत्रीकुलोत्पन्न पुरुष एवं स्त्रियों के साथ में राजा पद्मसेन को कुलमर्यादापद्धति पर जैन-धर्म की दीक्षा दी। पद्मावती नगरी अर्बलीपर्वत के पूर्वभाग की जिसको पूर्वपाट भी कहा जाता है पाटनगरी थी। श्रीमालपुर के पूर्व भाग अर्थात् पूर्वपाट में बसने वाले जैनधर्म स्वीकार करने वाले कुलों को जिस प्रकार प्राग्वाट नाम दिया था, उसी दृष्टि को ध्यान में रख कर पूर्वपाट की राजनगरी पद्मावती में जैनधर्म स्वीकार करने वाले कुलों को भी प्राग्वाट नाम ही दिया। राजा की अधीश्वरता के कारण और प्राग्वाट श्रावकवर्ग की प्रभावशीलता के कारण भिन्नमाल और पद्मावती के संयुक्त-प्रदेश का नाम 'प्राग्वाट' ही पड़ गया।

इस प्रकार आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालश्रावकवर्ग की एवं प्राग्वाटश्रावकवर्ग की उत्पत्ति करके जो स्थायी जैनसमाज का निर्माण किया वह कार्य महान् कल्याणकारी एवं गौरव की ही एक मात्र वस्तु नहीं, वरन् सच्चे शब्दों के अर्थ में वह भगवान् महावीर के शासन की दृढ़ भूमि निर्माण करने का महा स्तुत्य कर्म था। जीवनभर आपश्री इस ही प्रकार हिंसावाद के प्रति क्रान्ति करते रहे और जैनधर्म का प्रचार करते रहे। अंत में आपश्री ५१ वर्ष पर्यन्त धर्मप्रचार करते हुये श्री शत्रुँजयतीर्थ पर अनशन करके चैत्र शुक्ला प्रतिपदा वी० सं० ५७

में समधिपूर्वक स्वर्ग को सिधारे। तत्पश्चात् आपश्री के पट्ट पर आपश्री के महान् योग्य शिष्य श्री रत्नचूड़ विराजमान हुये और वे रत्नप्रभसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुये।

श्रीमद् रत्नप्रभसूरि ने भी अपने गुरु के कार्य को अक्षुण्ण गतिशील रक्खा। ओसियानगरी में आपश्री ने 'ओसवालश्रावकवर्ग' की उत्पत्ति करके अपने गुरु की पगडण्डियों पर श्रद्धापूर्वक चलने और गुरुकार्य को पूर्णता देने का जो शिष्य का परम कर्त्तव्य होता है वह सिद्ध कर बतलाया। जैनसमाज श्रीमत् स्वयंप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि के जितने भी कीर्त्तन और गान करें, उतना ही न्यून है। ये ही प्रथम दो आचार्य हैं, जिन्होंने आज के जैन समाज के पूर्वजों को जैनधर्म की कुलमर्यादापद्धति पर दीक्षा दी थी। अगर ये इस प्रकार दीक्षा नहीं देते तो बहुत संभव है, जैनधर्म का आज जैसा हम वैश्यकुल आधार लिये हुये हैं, वैसा हमारा वह आधार नहीं होता और नहीं हुआ होता और हम किसी अन्य ज्ञाति अथवा समाज में ही होते और हम कितने हिंसक अथवा मांस और मदिरा का सेवन करने वाले होते, यह हम अन्यमतावलम्बी कुलों को देखकर अनुमान लगा सकते हैं।

ता० १–६–५२. | लेखक—
भीलवाड़ा (राजस्थान) | दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी० ए०

विशेष प्रमाणों के लिये 'प्राग्वाटश्रावक-वर्ग की उत्पत्ति' प्रकरण को देखें।
१—उपकेशगच्छ पट्टावली (वि० सं० १२६२ में श्रीमद् कक्कसूरिविरचित)
२—जैनजातिमहोदय } ज्ञानसुन्दरजी द्वारा
३—पार्श्वनाथ परम्परा भा० १ } ज्ञानसुन्दरजी द्वारा

उपदेष्टा

इतिहासप्रेमी, व्याख्यानवाचस्पति श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी का

संक्षिप्त परिचय

जन्म–वि० सं० १९४० का० शु० २ रविवार। दीक्षा–वि० सं० १९५४ आषाढ़ कृ० २ सोमवार।
उपाध्यायपद–वि० सं० १९८० ज्ये० शु० ८। सूरिपद–वि० सं० १९९५ वै० शु० १० सोमवार।

वंश-परिचय, माता-पिता की मृत्यु, दीक्षा लेना तथा गुरु-चरणों में दश वर्ष.

मध्ययुग में प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी भिन्नमाल से निकलकर अवध-राज्य के वर्त्तमान रायबरेली प्रगणान्तर्गत सालोन विभाग में जैसवालपुर-राज्य के प्रथम संस्थापक काश्यपगोत्रीय वीरवर राजा जैसपाल की आठवीं पीढ़ी में राजा जिनपाल का पुत्र अमरपाल हुआ है। अमरपाल यवनों से हार कर धौलपुर में आकर बसे थे और वहीं व्यापार-धन्धा करते थे। राज्यच्युत राजा अमरपाल की चौथी पीढ़ी में रायसाहब व्रजलाल जी हुये हैं। श्री व्रजलाल जी की आप रामिरत्न नाम से तृतीय सन्तान थे। आपके दो भ्राता और दो बहिनें थीं। वि० सं० १९४६ में आपके पिता रायसाहब के तीर्थस्वरूप माता, पिता का तथा एक वर्ष पश्चात् आज्ञाकारिणी स्त्री चम्पाकुंवर का और तत्पश्चात् क्रम में कनिष्ठ पुत्र किशोरीलाल का स्वर्गवास हो गया। रायसाहब का विकशित उपवन-सा घर और जीवन एक दम मुर्झा गया। रायसाहब एकदम राजसेवा का त्याग करके धौलपुर छोड़कर अपने बच्चों को लेकर भोपाल में जाकर रहने लगे और धर्म-ध्यान में मन लगाकर अपने दुःख को भुलाने लगे। चार वर्षों के पश्चात् सं० १९५२ में उनका भी स्वर्गवास हो गया। अब आपश्री के पालन-पोषण का भार आपके मामा ठाकुरदास ने संभाला। पिता की मृत्यु के समय तक आपश्री की आयु लगभग बारह-तेरह वर्ष की हो गई थी। आपको अपने भले-बुरे का भलिविध ज्ञान हो गया था। पितामह, पितामही, पिता, माता, कनिष्ठ भ्रातादि की मृत्युओं से आपको संसार की व्यवहारिकता, स्वार्थपरता, सुख-दुःखों के मायावी फांश का विशद पता लग गया था। वैराग्य-भावों ने

प्राग्वाट-इतिहास के उपदेशकर्त्ता



जैनाचार्य श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी महाराज

आपश्री के हृदयस्थल में अपने अंकुर उत्पन्न किये। अब आपका मामा के घर में चित्त नहीं लगने लगा। फलतः मामा और आप में कभी २ कटु बोल-चाल भी होने लगी। निदान 'सिंहस्थ-मेले' के अवसर पर आप मामा को नहीं पूछकर मेला देखने के बहाने घर से निकल कर उज्जैन पहुँचे और वहाँ से लौटकर महेंदपुर में विराजमान श्री सौधर्मबृहत्तपोगच्छीय श्वेताम्बराचार्य्य श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के दर्शन किये। श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी महाराज की साधुमण्डली के कईएक साधुओं से आप पूर्व से ही परिचित थे। आपने अपने परिचित साधुओं के समक्ष अपने दीक्षा लेने की शुभ भावना को व्यक्त किया। गुरु महाराज भी आप से बात-चीत करके आपकी बुद्धि एवं प्रतिभा से अति ही मुग्ध हुये और योग्य अवसर पर दीक्षा देने का आपको आश्वासन प्रदान किया। निदान वि० सं० १९५४ आषाढ़ कृ० २ सोमवार को खाचरौद में आपको शुभ मुहूर्त में भगवतीदीक्षा प्रदान की गई और मुनि यतीन्द्रविजय आपका नाम रक्खा गया।

दस वर्ष गुरुदेव की निश्रा में रहकर आपने संस्कृत, प्राकृत भाषाओं का अच्छा अध्ययन और जैनागमों एवं शास्त्रों का गम्भीर अभ्यास किया। वि० सं० १९६३ पौष शु० ६ शुक्रवार को 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के महाप्रणेता श्रीमद् राजेन्द्रसूरि महाराज का राजगढ़ में स्वर्गवास हो गया।

गुरुदेव के स्वर्गवास के पश्चात् ही वि० सं० १९६४ में रतलाम में जगतविश्रुत श्री 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का प्रकाशन श्रीमद् मुनिराज दीपविजयजी और आपश्री की तत्त्वावधानता में प्रारंभ हुआ। आपश्री ने सहायक संपादक के रूप में आठ वर्षपर्यन्त कार्य किया और उक्त दोनों विद्वान् मुनिराजों के सफल परिश्रम एवं तत्परता से महान् कोष 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का सात भागों में राजसंस्करण वि० सं० १९७२ में पूर्ण हुआ। आपने वि० सं० १९७३ से वि० सं० १९७७ तक स्वतंत्र और वि० सं० १९८० तक तीन चातुर्मास मुनिराज दीपविजयजी के साथ में मालवा, मारवाड़ के भिन्न २ नगरों में किये और अपनी तेजस्वित कलापूर्ण व्याख्यानशैली से संघों को मुग्ध किया। विजयराजेन्द्रसूरिजी के पट्टप्रभावक आचार्य विजय धनचन्द्रसूरिजी का वि० सं० १९७७ भाद्रपद शु० १ को बागरा में निधन हो गया था। तत्पश्चात् वि० सं० १९८० ज्येष्ठ शु० ८ को जावरा में मुनिराज दीपविजयजी को सूरिपद प्रदान किया गया और वे भूपेन्द्रसूरि नाम से विख्यात हुये। उसी शुभावसर पर आपश्री को भी संघ ने आपके दिव्यगुणों एवं आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न हो कर उपाध्यायपद से अलंकृत किया।

श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष का प्रकाशन और जावरा में उपाध्यायपद.

वि० सं० १९८३ तक तो आपश्री ने श्रीमद् भूपेन्द्रसूरि (मुनि दीपविजयजी) जी के साथ में चातुर्मास किये और तत्पश्चात् आपश्री उनकी आज्ञा से स्वतंत्र चातुर्मास करके जैन-शासन की सेवा करने लगे। आपश्री ने वि० सं० १९८३ से श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी के आहोर नगर में वि० सं० १९९३ में हुये स्वर्गवास के वर्ष तक क्रमशः गुढ़ा-बालोतरान, थराद, फतहपुरा, हरजी, जालोर, शिवगंज, सिद्धक्षेत्रपालीताणा (लगा-लग दो वर्ष), खाचरौद, कुक्षी नगरों में स्वतंत्र चातुर्मास करके शासन की अतिशय सेवा की। लम्बे २ और कठिन विहार करके मार्ग में पड़ते ग्रामों के सद्गृहस्थों में धर्म की भावनायें मनोहर उपदेशों द्वारा जाग्रत की। अनेक धर्मकृत्यों का यहाँ वर्णन दिया जाय तो लेख स्वयं एक पुस्तक का रूप ग्रहण कर लेगा। फिर भी संक्षेप में मोटे २ कृत्यों का वर्णन इतिहास-लेखन-शैली की दृष्टि से देना अनिवार्य्य है।

दश स्वतंत्र चातुर्मास और शेष काल में किये गये कुछ धर्मकृत्यों का संक्षिप्त परिचय.

संघयात्रायें—वि० सं० १६८१ में आपश्री ने राजगढ़ के संघ के साथ में मंडपाचलतीर्थ तथा वि० सं० १६८२ में सिद्धाचलतीर्थ और गिरनारतीर्थों की तथा वि० सं० १६८६ में गुड़ाबालोतरा से श्री जैसलमेरतीर्थ की बृहद् संघयात्रायें कीं और मार्ग में पड़ते अनेक छोटे-बड़े तीर्थ, मंदिरों के दर्शन किये। श्रावकों ने आपश्री के सदुपदेश से अनेक क्षेत्रों में अपने धन का प्रशंसनीय उपयोग किया।

उपधानतप—वि० सं० १६६१ में पालीताणा में और १६६२ में खाचरौद में उपधानतप करवाये, जिनमें सैकड़ों श्रावकों ने भाग लेकर अपने जीवनोद्धार में प्रगति की।

अंजनशलाकाप्राण-प्रतिष्ठा—वि० सं० १६८१, १६८२, १६८७ में झखड़ावदा (मालवा), राजगढ़ और थलवाड़ में महामहोत्सव पूर्वक क्रमशः प्रतिष्ठायें करवाई; जिनमें मारवाड़, गुजरात, काठियावाड़ जैसे बड़े प्रान्तों के दूर २ के नगरों के सद्गृहस्थों, संघों ने दर्शन, पूजन का लाभ लिया।

यात्रायें—वि० सं० १६८५ में ढीमा, सोरोज तथा उसी वर्ष अर्बुदाचलतीर्थ, सेसलीतीर्थ और वि० सं० १६८७ में मांडवगढ़तीर्थ (मंडपाचलतीर्थ) की अपनी साधु एवं शिष्य-मण्डली के सहित यात्रायें कीं।

सूरिपदोत्सव—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि वि० सं० १६६३ में आहोर नगर में श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी का स्वर्गवास हो गया था। श्री संघ ने आपश्री को सर्व प्रकार से गच्छनायकपद के योग्य समझ कर अतिशय धाम-धूम, शोभा विशेष से वि० सं० १६६५ वैशाख शु० १० सोमवार को अष्टाह्निकोत्सव के सहित सानन्द विशाल समारोह के मध्य आपश्री को आहोर नगर में ही सूरिपद से शुभमुहूर्त में अलंकृत किया।

साहित्य-साधना—शासन की विविध सेवाओं में आपश्री की साहित्यसेवा भी उल्लेखनीय हैं। सूरिपद की प्राप्ति तक आपश्री ने छोटे-बड़े लगभग चालीस ग्रंथ लिखे और मुद्रित करवाये होंगे। इन ग्रंथों में इतिहास की दृष्टि से 'श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन' भाग १, २, ३, ४ 'श्री कोरटाजीतीर्थ का इतिहास', 'मेरी नेमाड़यात्रा', धर्मदृष्टि से 'जीवभेद-निरूपण', 'जिनेन्द्र गुणगानलहरी,' 'अध्ययनचतुष्टय', 'श्री अर्हत्प्रवचन', 'गुणानुरागकुलक' आदि तथा चरित्रों में 'अघटकुमारचरित्र', 'जगडूशाहचरित्र', 'कयवन्नाचरित्र', 'चम्पकमालाचरित्र' आदि प्रमुख ग्रंथ विशेष आदरणीय, संग्रहणीय एवं पठनीय हैं। आपश्री के विहार-दिग्दर्शन के चारों भाग इतिहास एवं भूगोल की दृष्टियों से बड़े ही महत्त्व एवं मूल्य के हैं।

गच्छनायकत्व की प्राप्ति के पश्चात् गच्छ-भार वहन करना आपश्री का प्रमुख कर्त्तव्य रहा। फिर भी आपश्री ने साहित्य की अमूल्य सेवा करने का व्रत अक्षुण्ण बनाये रक्खा। तात्पर्य यह है कि शासन की सेवा और साहित्य की सेवा आपके इस काल के क्षेत्र रहे हैं। सूरिपद के पश्चात् मरुधरप्रान्त आपका प्रमुख विहार क्षेत्र रहा है। वि० सं० १६६५ से वि० सं० २००६ तक के चातुर्मास क्रमशः बागरा, भूति, जालोर, बागरा, खिमेल, सियाणा, आहोर, बागरा, भूति, थराद, थराद, बाली, गुड़ाबालोतरा, थराद, बागरा में हुये हैं। चातुर्मासों में आपश्री के प्रभावक सदुपदेशों से सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक अनेक प्रशंसनीय कार्य हुये हैं, जिनका स्थानाभाव से वर्णन देना अशक्य है।

सूरिपद के पश्चात् आपश्री के कार्य और आपश्री के पन्द्रह चातुर्मास

अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें—शेषकाल में वि० सं० १६६४ में श्री लक्ष्मणीतीर्थ (मालवा), सं० १६६६ में रोवाड़ (सिरोही), फतहपुरा (सिरोही), भूति (जोधपुर), सं० १६६७ में आहोर, जालोर (जोधपुर), सं० १६६८ में बागरा(जोधपुर),सं० २००० में सियाणा(जोधपुर),सं० २००१ में आहोर(मारवाड़), सं० २००६ में बाली (मारवाड़),

सं० २००८ में थराद, सं० २०१० में भाण्डवपुर—इन नगरों में आपश्री ने नवीन मन्दिरों, प्राचीन मन्दिरों में नवीन प्रतिमाओं की तथा नवनिर्मित गुरुसमाधि-मन्दिरों की प्राणप्रतिष्ठायें करवाई। बागरा, आहोर, सियाणा एवं थराद और भाण्डवपुर में हुई प्रतिष्ठायें विशेष प्रभावक रही हैं। बागरा में जैसी प्रतिष्ठा हुई, वैसी प्रतिष्ठा व्यवस्था, शोभा, व्यय की दृष्टियों से इन वर्षों में शायद ही कहीं मरुधर-प्रान्त में हुई होगी।

संघयात्रा—वि० सं० १९९९ में भूति से संघपति शाह देवीचन्द्र रामाजी की ओर से गोड़वाड़-पंचतीर्थी की यात्रार्थ आपश्री की अधिनायकता में संघ निकाला गया था।

शिक्षणालयों का उद्घाटन—बागरा, सियाणा, आकोली, तीखी, भूति, आहोर आदि अनेक ग्राम, नगरों में आपश्री के सदुपदेशों से गुरुकुल, पाठशालायें खोली गई थीं। बागरा, आहोर में कन्यापाठशालाओं की स्थापनायें आपश्री के सदुपदेशों से हुई थीं।

मण्डलों की स्थापनायें—अधिकांश नगरों में आपश्री के सदुपदेशों से नवीन मण्डलों की स्थापनायें हुईं और प्राचीन मण्डलों की व्यवस्थायें उन्नत बनाई गईं; जिनसे संप्रदाय के युवकवर्ग में धर्मोत्साह, समाजप्रेम, संगठनशक्ति की अतिशय वृद्धि हुई।

साहित्य-सेवा—जिस प्रकार आपश्री ने धर्मक्षेत्र में सोत्साह एवं सर्वशक्ति से शासन की सेवा करके अपने चारित्र को सफल बनाने का प्रयत्न किया, उसी प्रकार आपश्री ने साहित्य-सेवा व्रत भी उसी तत्परता, विद्वत्ता से निभाया। इस काल में आपश्री के विशेष महत्त्व के ग्रंथ 'अक्षयनिधितप' 'श्रीयतीन्द्रप्रवचन भाग २', 'समाधान-प्रदीप', 'श्रीभाषण-सुधा' और श्री 'जैन-प्रतिमा-लेख-संग्रह' प्रकाशित हुये हैं।

जैन-जगती—पाठकगण 'जैन-जगती' से भलिविध परिचित होंगे ही। वह आपश्री के सदुपदेश एवं सतत्-प्रेरणाओं का ही एक मात्र परिणाम है। मेरा साहित्य-क्षेत्र में अवतरण ही 'जैन-जगती' से ही प्रारंभ होता है, जिसके फलस्वरूप ही आज 'छत्र-प्रताप', 'रसलता', 'सट्टे के खिलाड़ी', 'बुद्धि के लाल' जैसे पुष्प भेंट करके तथा 'राजिमती-गीति-काव्य', 'अरविंद सतुकान्त कोष', 'आज के अध्यापक'(एकांकी नाटक), 'चतुर-चोरी' आदि काव्य, कोष, नाटकों का सर्जन करता हुआ 'प्राग्वाट-इतिहास' के लेखन के भगीरथकार्य को उठाने का साहस कर सका हूँ।

प्राग्वाट-इतिहास का लेखन और उसमें आपश्री का सक्रिय सहयोग

वि० सं० २००० में आपश्री का चातुर्मास सियाणा में था। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री बागरा पधारे। पावावासी प्राग्वाटज्ञातीय वृहद्शाखीय लांबगोत्रीय शाह ताराचन्द्रजी मेघराजजी आपश्री के दर्शनार्थ बागरा आये थे। उन दिनों में मैं भी श्री 'राजेन्द्र जैन गुरुकुल' बागरा में प्रधानाध्यापक था। मध्याह्न के समय जब अनेक श्रावकगण आपश्री के समक्ष बैठे थे, उनमें श्री ताराचंद्रजी भी थे। प्रसंगवश चर्चा चलते २ ज्ञातीय इतिहासों के महत्त्व और मूल्य तक बढ़ चली। कुछ ही वर्षों पूर्व 'ओसवाल-इतिहास' प्रकाशित हुआ था। आपश्री ने प्राग्वाटज्ञाति के इतिहास लिखाने की प्रेरणा बैठे हुये सज्जनों को दी तथा विशेषत: श्री ताराचन्द्रजी को यह कार्य उठाने के लिये उत्साहित किया। गुरुदेव का सदुपदेश एवं शुभाशीर्वाद ग्रहण करके ताराचन्द्रजी ने प्राग्वाट-इतिहास लिखाने का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया। ताराचन्द्रजी बड़े ही कर्तव्यनिष्ठ हैं और फिर गुरुमहाराज साहब के अनन्य भक्त। प्राग्वाट-इतिहास लिखाना अब आपका सर्वोपरि उद्देश्य हो गया। किससे लिखवाना, कितना व्यय होगा आदि प्रश्नों को लेकर आपश्री और श्री ताराचन्द्रजी में पत्र-व्यवहार निरंतर होने लगा।

वि० सं० २००१ माघ कृष्णा ४ को श्री 'वर्द्धमान जैन बोर्डिंग', सुमेरपुर के विशाल छात्रालय के सभा-भवन में श्री 'पौरवाड़-संघसभा' का द्वितीय अधिवेशन हुआ। श्री ताराचन्द्रजी ने 'प्राग्वाट-इतिहास' लिखाने का प्रस्ताव सभा के समक्ष रक्खा। सभा ने प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया और तत्काल पाँच सदस्यों की 'श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति' नाम से एक समिति सर्वसम्मति से विनिर्मित करके इतिहास-लेखन का कार्य उसकी तत्त्वावधानता में अर्पित कर दिया। श्री ताराचन्द्रजी ने इस कार्य की सूचना गुरुदेव को पत्र द्वारा विदित की। इतिहास किससे लिखवाया जाय—इस प्रश्न ने पूरा एक वर्ष ले लिया। बीच-बीच में गुरुदेव मुझको भी इतिहास-लेखन के कार्य को करने के लिये उत्साहित करते रहे थे। परन्तु मैं इस भगीरथकार्य को उठाने का साहस कम ही कर रहा था। वि० सं० २००२ में आपश्री का चातुर्मास बागरा में ही था। चातुर्मास के प्रारम्भिक दिवसों में ही श्री ताराचन्द्रजी गुरुदेव के दर्शनार्थ एवं इतिहास लिखाने के प्रश्न की समस्या को हल करने के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिये बागरा आये थे। गुरुदेव, ताराचन्द्रजी और मेरे बीच इस प्रश्न को लेकर दो-तीन बार घण्टों तक चर्चा हुई। निदान गुरुदेव ने अपने शुभाशीर्वाद के साथ इतिहास-लेखन का भार मेरी निर्बल लेखनी की पतली और तीखी नोंक पर डाल ही दिया। तदनुसार उसी वर्ष आश्विन शु० १२ शनिवार ई० सन् १९४५ जुलाई २१ को आधे दिन की सेवा पर रु० ५०) मासिक वेतन से मैंने इतिहास का लेखन प्रारम्भ कर दिया।

पुस्तकों के संग्रह करने में, विषयों की निर्धारणा में आपश्री का प्रमुख हाथ रहा है। आज तक निरन्तर पत्र-व्यवहार द्वारा इतिहास सम्बन्धी नई २ बातों की खोज करके, कठिन प्रश्नों के सुलझाने में सहाय देकर मेरे मार्ग को आपश्री ने जितना सुगम, सरल और सुन्दर बनाया है, वह थोड़े शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता है। इतिहास का जब से लेखन मैंने प्रारम्भ किया था, उसी दिन से ऐतिहासिक पुस्तकों का अवशिष्ट दिनावकाश में पढ़ना आपश्री का भी उद्देश बन गया था। आपश्री जिस पुस्तक को पढ़ते थे, उसमें इतिहास-सम्बन्धी सामग्री पर चिह्न कर देते और फिर उस पुस्तक को मेरे पास में भेज देते थे। साथ में पत्र भी होता था। आपके इस सहयोग से मेरा बहुत समय बचा और मेरा इतिहास-लेखन का कठिन कार्य बहुत ही सरलतर हुआ—यह स्वर्णाक्षरों में स्वीकार करने की चीज है। आपश्री के अनेक पत्र इसके प्रमाण में मेरे पास में विद्यमान हैं, जो मेरे संग्रह में मेरे साहित्यिक जीवन की गति-विधि का इतिहास समझाने में भविष्य में बड़े महत्त्व के सिद्ध होंगे।

थोड़े में आपके सदुपदेश एवं शुभाशीर्वाद का बल श्री ताराचन्द्रजी को इतिहास लिखाने के कार्य के हित दृढ़प्रतिज्ञ बना सका और मुझको कितना सफल बना सका यह पाठकगण इतिहास को पढ़कर अनुमान लगा सकेंगे।

ऐसे उच्च साहित्यसेवी चारित्रधारी मुनि महाराजाओं का आशीर्वाद विशिष्ट तेजस्वी और अमर कीर्त्ति-दायी होता है। आशा है—यह इतिहास जिस पर आपश्री की पूर्ण कृपा रही है अवश्य सम्माननीय, पठनीय और कीर्त्तिशाली होगा।

ता० १–६–१९५२,
भीलवाड़ा (राजस्थान)

लेखक—
दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविन्द' बी० ए०

[illegible] रवाड़-इतिहास-प्रकाशक समिति



श्री ताराचंद्रजी मेघराजजी

श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति के मंत्री

मरुधरदेशान्तर्गत पावाग्रामवासी प्राग्वाटज्ञातीय वृहद्शाखीय चौहानवंशीय लांबगोत्रीय

शाह ताराचन्द्र मेघराजजी का परिचय

शाह ताराचन्द्रजी के पूर्वज खीमाड़ा ग्राम में रहते थे। इनके पूर्वजों में शाह हेमाजी इनकी शाखा में प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं। हेमाजी के पुत्र उदाजी थे। उदाजी के पुत्र सूराजी थे। शाह सूराजी बड़े परिवार वाले थे। इनके चार पुत्र मनाजी, ओखाजी, चेलाजी और जीताजी नाम के हुये। ओखाजी द्वितीय पुत्र थे। ये वावा ग्राम में जाकर रहने लगे थे। इनके पूनमचन्द्रजी और प्रेमचन्द्रजी नाम के दो पुत्र हुये। प्रेमचन्द्रजी के दलीचन्द्रजी और दलीचन्द्रजी के ताराचन्द्रजी नाम के पुत्र हुये। ताराचन्द्रजी का परिवार अभी भी वावा ग्राम में ही रहता है। चेलाजी तृतीय पुत्र थे। इनके नवलाजी, रायचन्द्रजी और अमीचन्द्रजी नाम के तीन पुत्र हुये थे। नवलाजी के पुत्र दीपाजी और दीपाजी के वीरचन्द्रजी हुये और वीरचंद्रजी के पुत्र सागरमलजी अभी विद्यमान हैं। ये खीमाड़ा में रहते हैं। रायचन्द्रजी के इन्द्रमलजी (दत्तक) हुये और इन्द्रमलजी के साकलचन्द्रजी और भीकमचन्द्रजी नाम के दो पुत्र हुयें जिनका परिवार अभी पावा में रहता है। अमीचन्द्रजी निस्संतान मृत्यु को प्राप्त हुये। जीताजी चौथे पुत्र थे। इनके रत्नाजी नाम के पुत्र थे। रत्नाजी के कपूरजी, श्रीचन्द्रजी, चन्द्रभाणजी और संतोषचन्द्रजी चार पुत्र हुये थे। संतोषचन्द्रजी के पुत्र छगनलालजी हैं। जीताजी का परिवार खीमाड़ा में रहता है।

वंश-परिचय

शा० मनाजी का परिवार

ताराचन्द्रजी सूराजी के ज्येष्ठ पुत्र मनाजी के परिवार में हैं। शाह मनाजी की धर्मपत्नी का नाम गंगादेवी था। गंगादेवी की कुक्षी से अन्नाजी, लालचन्द्रजी, जसराजजी, फौजमलजी, मेघराजजी, गुलाबचन्द्रजी और सोनीबाई का जन्म हुआ था। अन्नाजी की धर्मपत्नी दुप्पादेवी थी। अन्नाजी के दलीचन्द्रजी, दीपचन्द्रजी और छोगमलजी तीन पुत्र हुये। शाह अन्नाजी का परिवार अभी पावा में रहता है। लालचन्द्रजी की स्त्री कसुबाई थी। कसुबाई के मालमचन्द्रजी और अचलदासजी नाम के दो पुत्र हुये। इनके परिवार भी पावा में ही रहते हैं। जसराजजी की धर्मपत्नी ऊमादेवी के इन्द्रमलजी, कपूरचन्द्रजी और हजारीमलजी नाम के तीन पुत्र हुये। इनके परिवार अभी पावा में रहते हैं। फौजमलजी की स्त्री का नाम नंदाबाई था। नन्दाबाई के किस्तूरचन्द्रजी और वीरचन्द्रजी नाम के दो पुत्र हुये। ये दोनों निस्संतान मृत्यु को प्राप्त हुये। अतः मालमचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र वृद्धिचन्द्रजी इनके दत्तक आये। मेघराजजी की धर्मपत्नी का नाम कसुम्बाबाई था। कसुम्बाबाई के ताराचन्द्रजी और मगनमलजी नाम के दो पुत्र हुये और छोगीबाई, हंजाबाई नाम की दो पुत्रियाँ हुई। मगनमलजी की धर्मपत्नी प्यारादेवी की कुक्षी से मोतीलाल नाम का पुत्र हुआ। मगनमलजी सपरिवार पावा में ही रहते हैं। गुलाबचन्द्रजी की धर्मपत्नी का नाम जीवादेवी था। जीवादेवी के नरसिंहजी नाम के पुत्र हुये। नरसिंहजी भी सपरिवार पावा में ही रहते हैं।

शाह ताराचन्द्रजी और आपका परिवार

इनके पिता मेघराज जी का जन्म वि० सं० १९२७ में खीमाड़ा में ही हुआ था। इनके पितामह शाह मन्नाजी खीमाड़ा को छोड़कर पावा में वि० सं० १९२८ में सपरिवार आकर बस गये थे। श्री ताराचन्द्रजी का जन्म पावा में ही वि० सं० १९५१ चैत्र कृष्णा पंचमी को हुआ था। ये जब लगभग चौदह वर्ष के ही हुये थे कि इनकी प्यारी माता कसुंबादेवी का देहावसान वि० सं० १९६४ आश्विन कृष्णा एकम को हो गया। शाह मेघराजजी के जीवन में एकदम नीरसता और उदासीनता आ गई। परन्तु इसके सात मास पूर्व श्री ताराचन्द्रजी का विवाह बलदरानिवासी श्रेष्ठि पन्नाजी गज्जाजी की सुपुत्री जीवादेवी नामा कन्या से फाल्गुण कृष्णा द्वितीया को कर दिया गया था। इससे गृहस्थ का मान बना रह सका। श्रीमती जीवादेवी की कुक्षी से हिम्मतमलजी, धमीबाई, कंकुबाई, उम्मेदमलजी, सुखीबाई, चम्पालालजी, व्रजबाई और तीजाबाई नाम की पाँच पुत्रियाँ और तीन पुत्र उत्पन्न हुये। ज्येष्ठ पुत्र हिम्मतमलजी का जन्म वि० सं० १९६६ कार्त्तिक कृष्णा अष्ठमी (८) को हुआ। इनका विवाह खिवाणदीग्रामनिवासी शाह भभूतमलजी धनाजी की सुपुत्री लादीबाई से हुआ। इनके केसरीमल, लक्ष्मीचन्द्र, देवीचन्द्र, गीसूलाल नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुये और पाँचवीं और छठी संतान विमला और प्रकाश नामा कन्या हुईं। द्वितीय सन्तान धमीबाई थी। धमीबाई का विवाह भूतिनिवासी शाह 'पुखराजजी' अमीचन्द्रजी के साथ में हुआ था। तृतीय संतान कंकुबाई नामा कन्या का विवाह बाबाग्रामनिवासी शाह 'कपूरचन्द्रजी' रत्नचन्द्रजी के साथ में हुआ है। चौथी संतान उम्मेदमलजी नाम के द्वितीय पुत्र हैं। इनका जन्म वि० सं० १९७६ पौष शु० १० को हुआ था। इनका विवाह सांडेरावग्रामनिवासी शाह उम्मेदमलजी पोमाजी की सुपुत्री रम्भादेवी के साथ में हुआ है। इनके सागरमल, बाबूलाल और सुशीलाबाई नाम की एक कन्या और दो पुत्र हुये। सुखीबाई नाम की पाँचवी सन्तान बाल-अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गई। चम्पालालजी आपकी छट्ठी संतान और तृतीय पुत्र हैं। इनका जन्म वि० सं० १९८० भाद्रपद शु० द्वितीया को हुआ था। चांदराई-ग्रामनिवासी शाह जसराजजी केसरीमलजी की सुपुत्री हुलाशबाई के साथ में आपका विवाह हुआ है। इनके भंवरलाल, कुन्दनलाल और जयन्तीलाल नाम के तीन पुत्र हैं। सातवीं संतान व्रजबाई नामा पुत्री है। इनका विवाह आहोरनिवासी शाह 'ऋषभदासजी' नत्थमलजी के साथ में हुआ है। आठवीं संतान तीजाबाई नाम की कन्या थी, जो शिशुवय में ही मरण को प्राप्त हुई।

श्री ताराचन्द्रजी बचपन से ही परिश्रमी, निरालसी और बुद्धिमान् थे। यद्यपि आप पढ़े-लिखे तो साधारण ही हैं, परन्तु सूझ और समझ में आप पढ़े-लिखों से भी आगे ठहरते हैं। छोटी ही आयु में आप व्यापार में लग गये और व्यापारी-समाज में अच्छी ख्याति प्राप्त करली। जैन-समाज के अति प्रसिद्ध विद्यालयों एवं शिक्षण-संस्थाओं में श्री 'पार्श्वनाथ जैन विद्यालय', वरकाणा (मारवाड़) का नाम भी अग्रगण्य है। यह विद्यालय वि० सं० १९८४ माघ शुक्ला ५ को संस्थापित हुआ था। आपको योग्य, बुद्धिमान् एवं कार्यकुशल देखकर उक्त विद्यालय की कार्य-कारिणी-समिति ने वि० सं० १९८५ में संयुक्त मंत्री नियुक्त किये। आपने दो वर्ष वि० सं० १९८७ तक अपने पद का भार बड़ी बुद्धिमतापूर्वक निर्वाहित किया। इससे आपका शिक्षा-संबंधी प्रेम प्रकट होता है। इस समय आप वि० सं० २००७ से ही उक्त विद्यालय की कार्य-कारिणी-समिति के सदस्य हैं।

श्री वरकाणा जैन विद्यालय के संयुक्त मंत्री बनना.

आप जैसे व्यापारकुशल एवं शिक्षणप्रेमी हैं, वैसे ही समाजहितचिंतक एवं समाजसेवक भी हैं। श्री भावनगर (काठियावाड़) से वि० सं० १९८७ के आश्विन शुक्ला १० को श्री सम्मेतशिखरतीर्थ की संघयात्रा करने के लिये स्पेशल ट्रेन द्वारा संघ निकला था। वह संघ पुनः १९८८ मार्गशिर शु० २ शुक्रवार को अपने स्थान पर लौट कर आया। आपने संघ की अमूल्य सेवा करने का सोत्साह भाग लिया था। आपकी प्रशंशनीय एवं अथक सेवाओं से मुग्ध हो कर भावनगर के 'श्री वड़वा जैन-मित्र मंडल' ने आपकी सेवाओं के उपलक्ष में आपको अभिनन्दन-पत्र अर्पित किया था। अभिनन्दन-पत्र की प्रतिलिपि नीचे दी जाती है, जिससे स्वयं सिद्ध हो जायगा कि आप में समाज, धर्म के प्रति कितना उत्कट अनुराग एवं श्रद्धा है और आप कितने सेवाभावी हैं.

सम्मेतशिखरतीर्थ की यात्रार्थ जाते हुये श्री भावनगर के संघ की सराहनीय सेवा.

श्री भावनगर-समेतशिखरजी जैन स्पेशीयल

(यात्रा प्रवास नो समय सं० १९८७ ना आसोज शुद १० थी
सं० १९८८ ना मार्गशिर शु० २ शुक्रवार)

अभिनन्दन-पत्र

शाह ताराचन्द्रजी मेघराजजी, रानी स्टेशन

श्री समेतशिखरजी आदि पुनित तीर्थस्थानोनी यात्रानो लाभ भावीको सारी संख्या मां लइ शके ते माटे योजवामां आवेल आ यात्रा-प्रवासमां आपे सहृदयतापूर्वक अमारा सेवा-कार्य मां अपूर्व उत्साहमयो जे सहकार आप्यो छे, तेनां संस्मरणो सेवाभावनानुं एक सुन्दर दृष्टान्त बनी रहे छे। आं लांबा अने मुश्केल भरेला प्रवास ने सांगोपांग पार पाड़वामां आपनो सहकार न भूलाय तेवो हतो।

संघनी सेवा माटे आपे जे खंत अने उत्साह दाखव्यो छे ते बतावे छे के सेवा धर्मनी उज्ज्वल भावना ना पूर हजु समाज मां उछळी रह्या छे। अपूर्व खंतभरी आपनी आ सेवाना सन्मान अर्थे आ अभिनन्दन-पत्र रजु करतां प्रार्थीए के सेवा-भावनानी पुनित प्रथा वधु ने वधु प्रकाशो।

वड़वा,
ठि० जैन मन्दिर
भावनगर.

शाह गुलाबचन्द लल्लुभाई—प्रमुख
शाह लल्लुभाई देवचन्द } ऑ० सेक्रेट्रिओ
शेठ हरिलाल देवचन्द }

श्री वड़वा-जैन-मित्रमण्डल

आनन्द प्रिन्टिंग प्रेस, भावनगर.

'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग, सुमेरपुर' के जन्मदाता और कर्णधार भी आप ही हैं। वि० सं० १९९० में आप अपेन्डीस्साईडनामक बीमारी से ग्रस्त हो गये थे। एतदर्थ उपचारार्थ आप शिवगंज (सिरोही) के सरकारी औषधालय में भर्त्ती हुये। शिवगंज जवाई नदी के पश्चिम तट पर बसा हुआ है और सुन्दर, स्वस्थ एवं सुहावना कस्बा है। जलवायु की दृष्टि से यह कस्बा राजस्थान के स्वास्थ्यकर स्थानों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। यहां नीमावली बड़ी ही मनोहर और स्वस्थ वायुदायिनी है। जवाई के पूर्वी तट पर उन्द्री नामक छोटा सा ग्राम और उससे लग कर अभिनव बसी हुई सुमेरपुर नाम की सुन्दर बस्ती और व्यापार की समृद्ध मंडी आ गई है। इसका रेल्वे स्टेशन ऐरनपुर है, जो बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल्वे के आबू लाईन के स्टेशनों में विश्रुत है। आप शिवगंज, उन्द्री-सुमेरपुर के जलवायु एवं भौगोलिक स्थितियों से अति ही प्रसन्न हुये और साथ ही शिवगंज, सुमेरपुर को समृद्ध व्यापारी नगर देख कर आपके मस्तिष्क में यह विचार उठा कि अगर जवाई के पूर्वी तट पर सुमेरपुर में जैन-छात्रालय की स्थापना की जाय तो छात्रों का स्वास्थ्य अति सुन्दर रह सकता है और दो व्यापारी मंडियों की उपस्थिति से खान-पान-सामग्री सम्बन्धी भी अधिकाधिक सुविधायें प्राप्त रह सकती हैं। आपसे आपकी रुग्णावस्था में जो भी सज्जन, सद्‌गृहस्थ मिलने के लिए आते आप वहाँ के स्वास्थ्यकर जलवायु, सुन्दर उपजाऊ भूमि, जवाई नदी के मनोरम तट की शोभा का ही प्रायः वर्णन करते और कहते मेरी भावना यहाँ पर योग्य स्थान पर जैन छात्रालय खोलने की है। आगन्तुक अतिथि आपकी सेवापरायणता, समाजहितेच्छुकता, शिक्षणप्रेम से भलीविध परिचित हो चुके थे। वे भी आपकी इन उत्तम भावनाओं की सराहना करते और सहाय देने का आश्वासन देते थे। अंत में आपने सुमेरपुर में अपने इष्ट मित्र जिनमें प्रमुखतः मास्टर भीखमचन्द्रजी हैं एवं समाज के प्रतिष्ठितजन और श्रीमंतों की सहायता से वि० सं० १९९१ मार्गशिर कृष्णा पंचमी को 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग हाउस' के नाम से छात्रालय शुभमुहूर्त में संस्थापित कर ही दिया। तब से आप और मास्टर भीखमचन्द्रजी उक्त संस्था के मंत्री हैं और अहर्निश उसकी उन्नति करने में प्राण-प्रण से संलग्न रहते हैं। आज छात्रालय का विशाल भवन और उसकी उपस्थिति सुमेरपुर की शोभा, राजकीय-स्कूल की वृद्धि एवं उन्नति का मूल कारण बना हुआ है। इस छात्रालय के कारण ही आज सुमेरपुर जैसे अति छोटे ग्राम में हाई स्कूल बन गई है। आज तक इस छात्रालय की छत्र-छाया में रह कर सैंकड़ों छात्र व्यावहारिक एवं धार्मिक ज्ञान प्राप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो चुके हैं और सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। लेखक को भी इस छात्रावास की सेवा करने का सौभाग्य सन् १९४७ अगस्त ५ से सन् १९५० नवम्बर ६ तक प्राप्त हुआ है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे सेवाकाल में मैंने यह अनुभव किया कि उक्त छात्रालय मरुधरदेश के अति प्रसिद्ध जैन संस्थाओं में छात्रों के चरित्र, स्वास्थ्य, अनुशासन की दृष्टि से अद्वितीय और अग्रगण्य है।

श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग, सुमेरपुर की संस्थापना और आपका विद्या-प्रेम आदि

आप वि० सं० २००२ तक तो उक्त छात्रालय के मन्त्री रहे हैं और तत्पश्चात् आप उपसभापति के सुशोभित पद से अलंकृत हैं। आपके ही अधिकांश परिश्रम का फल है और प्रभाव का कारण है कि आज छात्रालय का भवन एक लक्ष रुपयों की लागत का सर्व प्रकार की सुविधा जैसे बाग, कुआ, खेत, मैदान, भोजनालय, गृहपति-आश्रम, छात्रावासादि स्थानों से संयुक्त और अलंकृत है। छात्रावास के मध्य में आया हुआ दक्षिणाभिमुख विशाल सभाभवन बड़ा ही रमणीय, उन्नत और विशाल है। मंदिर का निर्माण भी चालू है और प्रतिष्ठा के

योग्य बन चुका है। उक्त छात्रालय आपके शिक्षाप्रेम, समाजसेवा, विद्याप्रचारप्रियता, धर्मभावनाओं का उज्ज्वल एवं ज्वलंत प्रतीक है।

कुशालपुरा (मारवाड़) में ६० घर हैं। जिनमें केवल पाँच घर मंदिराम्नायानुयायी हैं। मूर्त्तिपूजक श्रावकों के कम घर होने से वहाँ के जिनालय की दशा शोचनीय थी। आपके परिश्रम से एवं सुसम्मति से वहाँ के निवासी बारह श्रावकों ने नित्य प्रभु-पूजन करने का व्रत अंगीकार किया, जिससे मंदिर में होती अनेक अशुचिसम्बन्धी आशातनायें बंद हो गई तथा आपके ही परिश्रम एवं प्रेरणा से फिर उक्त मंदिर की वि० सं० १९९३ में प्रतिष्ठा हुई, जिसमें आपने पूरा २. सहयोग दिया। थोड़े में यह कहा जा सकता है कि प्रतिष्ठा का समूचा प्रबंध आपके ही हाथों रहा और प्रतिष्ठोत्सव सानन्द, सोत्साह सम्पन्न हुआ। यह आपकी जिनशासन की सेवाभावना का उदाहरण है।

कुशालपुरा के जिनालय की प्रतिष्ठा में आपका सहयोग.

मरुधरप्रान्त में इस शताब्दी में जितने जैनप्रतिष्ठोत्सव हुये हैं, उनमें बागरानगर में वि० सं० १९९८ मार्गशिर शु० १० को हुआ श्री अंजनशलाका-प्राणप्रतिष्ठोत्सव शोभा, व्यवस्था, आनन्द, दर्शकगणों की संख्या की दृष्टियों से अद्वितीय एवं अनुपम रहा है। लेखक भी इस प्रतिष्ठोत्सव के समय में श्री 'राजेन्द्र जैन गुरुकुल', बागरा में प्रधानाध्यापक था और प्रतिष्ठोत्सव में अपने विद्यालय के सर्व कर्मचारियों एवं छात्रों, विद्यार्थियों के सहित संगीतविभाग और प्रवचनविभाग में अध्यक्ष रूप से कार्य कर रहा था। आपश्री का इस महान् प्रतिष्ठोत्सव के हित सामग्री आदि एकत्रित कराने में, वरघोड़े के हित शोभोपकरणादि राजा, ठक्कुरों से मांगकर लाने में बड़ा ही तत्परता एवं उत्साहभरा सहयोग रहा था।

बागरा में प्रतिष्ठा और उसमें आपका सहयोग,

वि० सं० १९९८ के फाल्गुण मास में बाकली के श्री मुनिसुव्रतस्वामी के जिनालय में देवकुलिका की प्रतिष्ठा श्रीमद् जैनाचार्य्य हर्षसूरिजी की तत्त्वावधानता में हुई थी। नवकारशियाँ कराने वाले सद्गृहस्थ श्रावक श्रीमंतों को जब सन्मान के रूप में पगड़ी बंधाने का अवसर आया, उस समय बड़ा भारी झगड़ा एवं उपद्रव खड़ा हो गया और वह इतना बढ़ा कि उसका मिटाना असम्भव-सा लगने लगा। उस समय आपने श्रीमद् आचार्यश्री के साथ में लगकर तन, मन से सद्प्रयत्न करके उस कलह का अन्त किया और पागड़ी बंधाने का कार्य-क्रम सानन्द पूर्ण करवाया। अगर उक्त झगड़ा उस समय बाकली में पड़ जाता तो बड़ा भारी अनिष्ट हो जाता और बाकली के श्रीसंघ में भारी फूट एवं कुसंप उत्पन्न हो जाते।

बाकली में देवकुलिका की प्रतिष्ठा और उसमें आपका सराहनीय भाग.

गुड़ा बालोतरा में हुई बिंबप्रतिष्ठा में आपका सहयोग—वि० सं० १९९९ में गुड़ा बालोतरा के श्री संभवनाथ-जिनालय की मूलनायक प्रतिमा को उत्थापित करके अभिनव विनिर्मित सुन्दर एवं विशाल नवीन श्री आदिनाथजिनालय में उसकी पुनः स्थापना महामहोत्सव पूर्वक की गई थी। उक्त प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर आप ने साधन एवं शोभा के उपकरणों को दूर २ से लाकर संगृहित करने में संघ की पूरी पूरी सहायता की थी और अपनी धर्मश्रद्धा एवं सेवाभावना का उत्तम परिचय दिया था।

श्री 'पौरवाड़-संघ-सभा', सुमेरपुर के स्थायी मंत्री बनना—गोडवाड़-अड़तालीस आदि प्रान्तों में बसने वाले प्राग्वाटबन्धुओं की यह सभा है। इसका कार्यालय 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंगहाउस', सुमेरपुर में है। अधिकांशतः प्रति वर्ष इस सभा का अधिवेशन सुमेरपुर में ही होता है और उसमें ज्ञाति में प्रचलित कुरीतियों, बुरे रिवाजों को

क्रम करने पर, उत्पन्न हुये पारस्परिक झगड़ों पर तथा ऐसे अन्य ज्ञाति की उन्नति में बाधक कारणों पर विचार होते हैं तथा निर्णय निकाले जाते हैं। आप को सर्व प्रकार से योग्य समझकर और आप में समाज, ज्ञाति, धर्म के प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना देखकर उक्त सभा ने आपको वि० सं० १९९९ में हुये अधिवेशन में सभा के स्थायी मंत्री नियुक्त किये और तब से आप उक्त सभा के स्थायी मंत्री का कार्य करते आ रहे हैं।

भूति से संघ की श्री गोडवाड़-पंचतीर्थी की संघयात्रा और उसमें आपका प्राणप्रण-सहयोग

वि० सं० १९९९ मार्गशीर्ष शुक्ला ९ नवमी को भूतिनिवासी शाह देवीचन्द्र रामाजी ने श्रीमद् आचार्य विजययतीन्द्रसूरिजी महाराज साहब की अधिनायकता में श्री गोडवाड़ की पंचतीर्थ की यात्रार्थ चतुर्विध संघ निकाला था। संघ के प्रस्थान के शुभ मुहूर्त पर संघ में लगभग १५० श्रावक-श्राविका और २२ साधु-साध्वी सम्मिलित हुये थे। श्री त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार नामक राणकपुरतीर्थ पर जब यह संघ पहुँचा, उस समय श्रावक संख्या में बढ़ते बढ़ते लगभग २५० हो गये थे। यह संघ पन्द्रह दिवस में वापिस अपने स्थान पर लौट कर आया था। आप भी इस संघ में सम्मिलित हुये थे। आपश्री सूरिजी महाराज के अनन्य भक्त एवं श्रावक भी हैं। अतः संघ एवं गुरुभक्ति का लाभ लेने में आपने कोई कमी नहीं रक्खी। संघ की समस्त व्यवस्था भोजन, विहार, पूजन, दर्शन, पड़ाव आदि सर्वसम्बन्धी आप पर निर्भर थी। आपने इतनी स्तुत्य सेवा बजाई की संघपति ने आपकी सेवाओं के सन्मान में अभिनन्दन-पत्र अर्पित किया, जो श्रीमद् आचार्यश्री की 'मेरी गोडवाड़यात्रा' नामक पुस्तक के आन्तरपृष्ठ के ऊपर ही प्रकाशित हुआ है।

हार्दिक-धन्यवाद

शाह ताराचन्द्रजी मेघराजजी साहब,

मु० पावा (मारवाड़) निवासी।

भूति से सेठ देवीचन्द्रजी रामाजी के द्वारा निकाला गया गोड़वाड़ जैनपंचतीर्थी का संघ जहाँ २ आता रहा, संघ के पहुँचने से पहले ही आप वहाँ के स्थानीय संघ के द्वारा पूर्ण प्रबन्ध कराते रहे—जिससे संघ को हर तरह की सुविधा रही। आदि से अन्त तक आप संघ-सेवा का लाभ लेते रहे और संघपति को समय समय पर योग्य सहयोग देते रहे हैं। आप एक उत्साही, समयज्ञ और सेवाभावी परम श्रद्धालु सज्जन हैं। 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंगहाउस', सुमेरपुर की समुन्नति का विशेष श्रेय भी आपको ही है। इस निस्वार्थ सेवा के लिये हम भी आपको वार-वार धन्यवाद देते हैं। शमिति।

संघवी—पुखराज देवीचन्द्रजी जैन.
भूतिनिवासी

जैसा पूर्व आचार्यश्री के परिचय में लिखा जा चुका है कि वि० सं० २००० में चातुर्मास पश्चात् जब आचार्य श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी बागरा में विराजमान थे, आप उनके दर्शनार्थ वहां आये थे। प्रसंगवश गुरुदेव ने आपका और अन्य प्राग्वाटज्ञातीय सज्जनों का ध्यान ज्ञातीय इतिहास के महत्त्व की ओर आकृष्ट किया और आपको प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखाने की प्रेरणा दी। इस सदुपदेश से आपके अंतर में रहा हुआ ज्ञाति का गौरव जाग्रत हो उठा और आपने गुरुदेव के समक्ष प्राग्वाट-इतिहास लिखाने का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकृत कर लिया। उसी दिन से आपके मस्तिष्क के अधिकांश भाग को प्राग्वाटज्ञाति के इतिहास-लेखन के विषय ने अधिकृत कर लिया। गुरुदेव और आपमें इस विषय पर निरंतर पत्र-व्यवहार होता ही रहा।

प्राग्वाट-इतिहास की रचना और आपका उससे संबंध तथा वि० सं० २००१ में श्री प्राग्वाट-संघ-सभा का द्वितीय अधिवेशन और प्राग्वाट-इतिहास लिखाने का प्रस्ताव.

श्री 'पौरवाड़-संघ-सभा' का द्वितीय अधिवेशन वि० सं० २००१ माघ कृष्णा ४ को 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग हाउस', सुमेरपुर के विशाल भवन में हुआ। आपने इतिहास लिखने का प्रस्ताव सभा के समक्ष रक्खा और वह सहर्ष स्वीकृत हुआ तथा सभा ने प्रस्ताव पास करके इतिहास लिखाने के लिये निम्न प्रकार समिति बनवा कर उसको तत्संबंधी सर्वाधिकार प्रदान किये।

प्रस्ताव !

वि० सं० २००१ माघ कृष्णा ४ को स्थान सुमेरपुर, श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग हाउस में श्री पौरवाड़-संघ-सभा के द्वितीय अधिवेशन के अवसर पर श्रीमान् शाह ताराचन्द्रजी मेघराजजी पावानिवासी द्वारा रक्खा गया प्राग्वाटज्ञाति के इतिहास को लिखाने का प्रस्ताव यह सभा सर्वसम्मति से स्वीकृत करती है और यह विचार करती हुई कि वर्तमान संतान एवं भावी संतानों को स्वस्थ प्रेरणा देने के लिए प्राग्वाटज्ञातीय पूर्वजों का इतिहास लिखा जाना चाहिए, जिससे संसार की दृष्टि में दिनोदिन गिरती हुई प्राग्वाटज्ञाति अपने गौरवशाली पूर्वजों का उज्ज्वल इतिहास पढ़कर अपने अस्तमित होते हुये सूर्य को पुनः उदित होता हुआ देखे और वह संसार में अपना प्रकाश विस्तारित करे आज माघ कृष्णा ४ को प्राग्वाट-इतिहास के लेखन-कार्य को कार्यान्वित करने के लिए स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार श्री पौरवाड़-संघ-सभा की जनरल-कमेटी अपनी बैठक में चुनाव द्वारा एक समिति का निम्नवत् निर्माण करती है।

१—शाह ताराचन्द्रजी मेघराजजी,	पावा	प्रधान
२— ,, सागरमलजी नवलाजी,	नाडलाई	सदस्य
३— ,, कुन्दनमलजी ताराचन्द्रजी,	बाली	,,
४— ,, मुलतानमलजी संतोषचन्द्रजी,	,,	,,
५— ,, हिम्मतमलजी हंसाजी,	बिनापुर	,,

उक्त पाँच सज्जनों की समिति बनाकर उसका श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति नाम रक्खा जाता है तथा उसका कार्यालय सुमेरपुर में खोला जाना निश्चित करके जनरल-कमेटी उक्त समिति को इतिहास-लेखन-सम्बन्धी व्यवस्था करने, कराने का सर्वाधिकार देती है तथा आग्रह करती है कि इतिहास लिखाने का कार्य तुरंत चालू करवाया जाय। इस कार्य के लिये जो आर्थिक सहायता अपेक्षित होगी, उसका भार श्री पौरवाड़-संघ-सभा पर

रहेगा। इतिहास लिखाने में जो और जितना व्यय होगा वह करने का पूर्ण स्वातन्त्र्य उक्त समिति को जनरल-कमेटी पूर्ण अधिकार देकर अर्पित करती है।

तत्पश्चात् वि० सं० २००३ में सुमेरपुर में ही पुनः सभा का चतुर्थ अधिवेशन हुआ। उस समय उक्त समिति ने अपनी बैठक की। श्री ताराचन्द्रजी वि० सं० २००० से ही इतिहास लिखाने का निश्चय कर चुके थे; अतः उन्होंने जो तत्सम्बन्धी कार्य उस समय तक किया था, उस पर समिति ने विचार किया और आगे के लिये जो करना था, उस पर भी विचार करके उसने अपना एक विवरण और योजना तैयार की और उसको समिति के पाँचों सदस्यों के हस्ताक्षरों से युक्त करके जनरल-कमेटी के समक्ष निम्न प्रकार रक्खी।

समिति के कार्य का विवरण:

'वि० सं० २००१ में हुये सभा के द्वितीय अधिवेशन के अवसर पर इतिहास-लेखन का प्रस्ताव स्वीकृत होने के एक वर्ष पूर्व से ही इतिहाससम्बन्धी साधन-सामग्री एकत्रित करने का कार्य चालू कर दिया गया था और फलस्वरूप आज लगभग १२५ पुस्तकों का संग्रह हो चुका है। इस इतिहास के लिये जो पुस्तकें चाहिए वे साधारण पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ नहीं मिलती हैं। उनको संग्रहित करने में देश-विदेश के बड़े २ पुस्तकालयों से पत्र-व्यवहार करना अपेक्षित है और देश के बड़े २ अनुभवशील इतिहासकार एवं पुरातत्त्ववेत्ताओं से मिलना तथा इसके सम्बन्ध में परामर्श, विचार करना अत्यावश्यक है। इतिहास का लिखाना कोई साधारण कार्य नहीं है; अतः समय अधिक लग सकता है, समयाधिक्य के लिये क्षमा करें।

समिति के प्रधान श्री ताराचन्द्रजी इतिहास लिखाने के लिए योग्य लेखक की शोध में पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं। दो-चार सज्जन लेखकों के नाम भी समिति के पास में आये हैं, परन्तु अभी तक लेखक का निश्चय नहीं किया गया है। अब थोड़े ही दिनों में योग्य लेखक की नियुक्ति की जाकर इतिहास का लिखाना प्रारम्भ करवा दिया जायगा। इतिहास लिखाने में होने वाले व्यय के भार को सहज बनाने के लिये निम्नवत् आर्थिक योजना प्रस्तुत की जाती है, आशा है वह सर्वानुमति से स्वीकृत हो सकेगी।

यह समिति अपने प्राग्वाटज्ञातीय बन्धुओं से प्रार्थना करती है कि अगर वे अपने पूर्वजों की कीर्त्ति, पराक्रम में अपना गौरव समझते हैं तो हमारी वे तन, मन, धन से पूर्ण सहायता करें। व्यय के निर्वाह के लिये प्रथम १५० डेढ सौ फोटू (प्रत्येक फोटू का मूल्य रु० १०१)) मंडाना निश्चित किया है। वैसे इतिहास-लेखन का व्यय एक ही श्रीमन्त प्रतिष्ठित समाजप्रेमी व्यक्ति भी कर सकता है, परन्तु समाज का कार्य समाज से ही होता है और वह अधिक सुन्दर, उपयोगी होता है। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर डेढ सौ १५० फोटू मंडाना निश्चित किया है। यदि कोई महानुभाव फोटू के मूल्य से अधिक रकम प्रदान करके किसी अन्य रूप से सेवालाभ लेना चाहे तो वह अतिरिक्त रकम इतिहास के पुस्तकालय में अर्पण करके अथवा ज्ञानखाते में देकर यशलाभ प्राप्तकर सकते हैं। अब तक १४ चौदह फोटू लिखवाये जा चुके हैं और उनका मूल्य भी आ चुका है। समिति ने एक पंडितजी को भी वि० सं० २००२ आश्विन शु० १२ शनिश्चर तदनुसार सन् १९४५ जुलाई २१ से आधे दिन की सेवा पर नियुक्त किया है, जिनका मासिक वेतन ५०) रुपया है। पंडितजी का कार्य संग्रहित पुस्तकों को पढ़ने का और उनमें से इतिहास-सम्बन्धी सामग्री को एकत्रित करने का है। पंडितजी का वेतन, पुस्तकों का क्रय और डाक तथा रेल-व्यय आदि पर अब तक रु० ८५०) व्यय हो चुके हैं। अब तक किये गये कार्य का संक्षेप में यह विवरण

है जो समिति ने कमेटी के समक्ष रक्खा है । समिति जनरल-कमेटी से निवेदन करती है कि शेष रहे १३६ फोटूओं को भरवाने का कार्य वह तुरन्त सम्पन्न करवा दें ।'

सदस्य. प्रधान.

हिम्मतमलजी हंसाजी, कुन्दनमल ताराचन्द्रजी, मुलतानमल संतोषचन्द्रजी ताराचन्द्र मेघराजजी

प्राग्वाट-इतिहास की रचना के कारण हम दोनों एक-दूसरे के बहुत ही निकट रहे हैं और इस कारण मुझको आपका अध्ययन करने का अवसर बहुत ही निकट से प्राप्त हुआ है । आप सतत् परिश्रमी, निरालसी, और कर्त्तव्य-निष्ठ हैं । जो कहा अथवा उठाया वह करके दिखाने वाले हैं । ये गुण जिस व्यक्ति में होते हैं, वह ही अपने जीवन में समाज, धर्म एवं देश के लिए भी कुछ कर सकता है । उधर आप कई एक व्यापारिक झंझटों में भी उलझे रहते हैं और इधर जो कार्य हाथ में उठा लिया है, उसको भी सही गति से आगे बढ़ाते रहते हैं । दोनों दिशाओं में अपेक्षित गति बनाये रखने का गुण बहुत कम व्यक्तियों में पाया जाता है । अगर घर का करते हैं, तो उन्हें पराया करने में अवकाश नहीं और पराया करने लगे तो घर का नहीं होता । आप पराया और अपना दोनों बराबर करते रहते हैं और थकते नहीं हैं, विचलित नहीं होते हैं । इतिहास-सम्बन्धी साधन-सामग्री के एकत्रित करने में आपने कई एक पुस्तकालयों से, प्रसिद्ध इतिहासकारों से, अनुभवी आचार्य, साधु मुनिराजों से पत्र-व्यवहार किया । जहाँ मिलना अपेक्षित हुआ, वहाँ जाकर के मिले भी । जैनसमाज के प्रायः सर्व ही प्रसिद्ध एवं अनुभवी, इतिहासप्रेमी जैनाचार्यों को आपने इतिहास-सम्बन्धी अनेक प्रश्न लिखकर भेजे और उनसे मिले भी । साधन-सामग्री जुटाने में आप से जितना बन सका, उतना आपने किया । इधर मेरे साथ भी आपने बड़ी ही सहृदयता का सम्बंध बनाये रक्खा । जब मैंने बागरा छोड़ दिया था । मैं आपके आग्रह पर श्री 'वर्द्धमान जैन बोर्डिंगहाऊस' में गृहपति के स्थान पर नियुक्त होकर आया और वहाँ ता० ६ अप्रेल सन् १९४६ से ६ नवम्बर सन् १९५० तक कार्य करता रहा । गृहपति और प्राग्वाट-इतिहास लेखक का दोनों कार्य वहाँ मैं करता रहा । वहाँ अनेक झंझटों के कारण इतिहास-लेखन के कार्य को बहुत ही क्षति पहुँची, परन्तु आपने वह सब बड़ी शांति और धैर्यता से सहन किया और करना भी उचित था, क्योंकि उधर छात्रालय के भी आप ही महामन्त्री हैं और इधर इतिहास भी आप ही लिखाने वाले । इतिहास के ऊपर आपका इतना अधिक राग और प्रेम है कि अगर आप पढ़े-लिखे होते, तो सम्भव है लेखक भी आप ही बनते । बस पाठक अब समझ लें कि आपके भीतर कितना उत्साह, कार्य करने की शक्ति, धैर्य और सहनशीलतादि गुण हैं । लिखना और लिखाना दोनों भिन्न दिशायें हैं । जिसमें फिर लिखाने की दिशा में चलने वाले में शांति, धैर्य, समयज्ञता, व्यवहार-कुशलता और भारी सहनशक्ति होनी चाहिए । जिसमें ये गुण कम हों, वह कभी भी इतिहास जैसे कार्य को, जिसमें आशातीत समय, अपरिमित व्यय और अधिक श्रम लगता है भली-भांति सम्पन्न नहीं करा सकता है और बहुत सम्भव है कि व्यापारियों की जैसी छोटी-छोटी बातों पर चिढ़ पड़ने की आदत होती है, जो विषय की अज्ञानता से लेखक की कठिनाइयों को नहीं समझ सकते हैं लेखक से बिगाड़ बैठे और कार्य मध्य में ही रह जाय । आपको यद्यपि इस बात से तो मेरी ओर से भी निश्चितता थी, क्योंकि हम दोनों के गुरुदेव श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी महाराज साहब साक्षिस्वरूप रहे हैं । फिर भी मैं स्वीकार करता हूं कि आप में ये गुण अच्छी मात्रा में हैं जो लिखाने वाले में होने ही चाहिए ।

सुमेरपुर छोड़ कर मैं भीलवाड़ा आगया और तब से यहीं इतिहास-लेखन का कार्य कर रहा हूँ इतने दूर

बैठ कर लिखना और लिखानेवाले का इतनी दूरी पर रह कर लेखक को स्वतंत्रता दे देना यद्यपि लेखक की ईमानदारी और उसके पूर्व विश्वस्त जीवन पर तो अवलंबित है ही, फिर भी यह सह लेना अति ही कठिन है। आप में ये गुण थे, जब ही प्राग्वाट-इतिहास का भगीरथ कार्य मेरे जैसे नवयुवक लेखक से जैसा-तैसा बन सका। यह इतिहास जैसा भी बना है, वह गुरुदेव के प्रभाव और आपके मेरे में पूर्ण विश्वास के कारण ही संभव हुआ है।

प्राग्वाट-इतिहास का प्रकाशन ताराचन्द्रजी के मानस में अपने पूर्वजों के प्रति कितना मान है, वर्तमान एवं भावी संतान के प्रति कितनी सुधार दृष्टि एवं उन्नत भावनायें हैं का सदा परिचायक रहेगा।

श्री 'पा० उ० इ० कालेज', फालना के साथ आपका संबंध और फालना-कॉन्फ्रेन्स में आपकी सेवा—आपको बहुमुखी परिश्रमी देख कर वि० सं० २००३ में श्री 'पार्श्वनाथ उम्मेद इन्टर कालेज', फालना की कार्यकारिणी समिति में आपको सदस्य बनाये गये। वि० सं० २००६ में जब फालना में उक्त विद्यालय के विशाल मैदान में श्री जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेन्स का सत्रहवां अधिवेशन था, तब भी आप अधिवेशन-समिति के मानद मंत्रियों में थे और आपने अपना पूरा सहयोग दिया था।

वि० सं० २००४ में आचार्य श्रीमद् यतीन्द्रसूरिजी का चातुर्मास खिमेल में था। खिमेल स्टे० राणी से दो मील के अन्तर पर ही है। उक्त आचार्यश्री की अभिलाषा श्री राणकपुरतीर्थ की चैत्र-पूर्णिमा की यात्रा करने की हुई थी। एतदर्थ आपने और आपके लघु भ्राता श्री मानमलजी तथा खिमेलनिवासी श्रीभीमराजजी प्रभूतचन्द्रजी ने मिलकर श्री राणकपुरतीर्थ की यात्रा करने के लिये उक्त आचार्यश्री की तत्त्वावधानता में चतुर्विध-संघ निकाला। इस संघ में तेवीस साधु-साध्वी और लगभग १५० (एक सौ पचास) श्रावक, श्राविका संमिलित हुये थे। यह संघ-यात्रा पन्द्रह दिवस में पूर्ण हुई थी। इस संघ का सर्व व्यय उक्त तीनों सज्जनों ने सहर्ष वहन किया था।

श्री राणकपुर की संघ-यात्रा

कुछ वर्षों से वाकली ग्राम के श्री संघ में दो तड़ पड़ी हुई थी। छोटी तड़ में केवल २०-२५ घर ही थे और बड़ी तड़ में समस्त ग्राम। इन तड़ों के कारण वाकली में कोई उन्नति का एवं अच्छा कार्य बड़ी कठिनाई से हो सकता था। वि० सं० २००६ में वाकली में श्रीमद् मुनिराज मंगलविजयजी का चातुर्मास करवाने का भाव वाकली के अग्रगण्य सद्गृहस्थों का था। इस पर संगठन-प्रिय महाराज मंगलविजयजी ने यह कलम रक्खी कि अगर दोनों तड़ एक होकर विनती करें तो ही मैं वाकली में चातुर्मास कर सकता हूं, अन्यथा नहीं। वाकली की दोनों तड़ का आप (ताराचन्द्रजी) में बड़ा विश्वास है। आप दोनों तड़ों में मेल करवाने के कार्य को लेकर सद्प्रयत्न करने लगे। गुरुदेव के पावन प्रताप से आपको सफलता मिल गई और कुसंप नष्ट हो गया और संघ में एकता स्थापित हो गई। फलस्वरूप श्रीमद् मंगलविजयजी महाराज सा० का चातुर्मास बड़े ही आनन्द के साथ में हुआ और खूब धर्म-ध्यान हुआ और अद्वितीय आनन्द वर्षा।

वाकली में तड़ों में मेल करवाना

आपकी धर्मपत्नी भी बड़ी गुरुभक्ति एवं तपपरायणा थी। उसने रोहिणीतप किया था, जिसका उजमणा शान्तिस्नात्रपूजादि के सहित वि० सं० १९९३ में बड़ी धूम-धाम से किया गया था। आपकी ओर से तथा आपके परिवार के बंधुगणों की ओर से दश (१०) नवकारशियां की गई थीं तथा उस ही शुभावसर पर श्री वासुपूज्य भगवान् की चांदी की प्रतिमा आपने बनवाकर प्रतिष्ठित करवाई थी और अत्यन्त हर्ष और आनन्द मनाया गया था। गत वर्ष वि० सं २००७ में ही आपकी धर्मपत्नी का

आपकी धर्मपत्नी की धर्मपरायणता व उनका देहावसान.

देहावसान हो गया। आपकी धर्मपत्नी सचमुच एक धर्मपरायणा और भाग्यशालिनी स्त्री थी। धर्म-क्रिया करने में वह सदा अग्रसर रहा करती थी। वह सचमुच तपस्विनी और योग्य पत्नी थी। उसने वि० सं० २००३ से 'वीशस्थानक की ओली' आजीवन प्रारंभ की थी। उसने वि० सं० २००४ में अपने ज्येष्ठ पुत्र हिम्मतमलजी के साथ में 'अष्टमतप' का आराधन किया था तथा वि० सं० २००५ में भी पुनः दोनों माता-पुत्र ने पन्द्रह दिवस के उपवास की तपस्या की थी। श्री ताराचन्द्रजी ने उक्त दोनों अवसरों पर उनके तप के हर्ष में मंदिर और साधारण खाते में अच्छी रकम का व्यय करके उनके तप-आराधन का संमान किया था। ऐसी योग्य और तपस्विनी गृहिणी का वृद्धावस्था के आगमन पर वियोग अवश्य खलता ही हैं। प्रकृति के नियम के आगे सर्व समर्थ भी असमर्थ रहे पाये गये हैं।

पुनः वि० सं० २००६ में भी दोनों माता-पुत्र ने 'मासचमणतप' करने का दृढ़ निश्चय किया था, परन्तु ताराचन्द्रजी के वयोवृद्ध काका श्री गुलाबचन्द्रजी का अकस्मात् देहावसान हो जाने पर वे तप नहीं कर सकते थे, अतः उन्होंने वि० सं० २००७ में उक्त तप करने का निश्चय किया था। वि० सं० २००७ में उक्त तप प्रारम्भ करने के एक रात्रि पूर्व ही आपकी पत्नी रात्रि के मध्य में अकस्मात् बीमार हुई और दूसरे ही दिन श्रावण शुक्ला पंचमी को अकस्मात् देहावसान हो गया और फलतः श्री हिम्मतमलजी भी माता के शोक में उक्त तपाराधन नहीं कर सके।

ऊपर दिये गये परिचय से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि ताराचन्द्रजी जैसे समाजसेवी एवं अद्भुत परिश्रमी व्यक्ति की समाज में कितनी आवश्यकता हैं और उनके प्रति कितना मान होना चाहिए। आपके अनेक गुणों पर मुग्ध होकर ही श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी महाराज ने अपने एक पत्र में आपके प्रति जो शुभाशीर्वादपूर्वक भाव व्यक्त किये हैं, वे सचमुच ही आपका मूल्य करते हैं और अतः यहाँ वे लिखने योग्य हैं:—

सूरिजी महाराज साहब के एकपत्र में आपका मूल्यांकन

श्रीयुत् ताराचन्द्रजी मेघराजजी पौरवाड़ जैन,

पावा (मारवाड़)

आप चुस्त जैनधर्म के श्रद्धालु हैं। सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिष्ठोत्सव, उपधानोत्सव, संघ आदि कार्यों में निःस्पृहभाव से समय-समय पर सराहनीय सहयोग देते रहते हैं। 'श्री वर्द्धमान जैन विद्यालय', सुमेरपुर के लिये आप प्रतिदिन सब तरह दिलचस्पी रखते हैं। आप ऐतिहासिक साहित्य का भी अच्छा प्रेम रखते हैं, जिसके फलस्वरूप प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास संपन्न उदाहरण रूप है। मारवाड़ी जैन समाज में आपके समान सेवाभावी व्यक्ति बहुत कम हैं। आपके इन्हीं निःस्वार्थादि गुण एवं आपके सेवाभावसंयुक्त जीवन पर हम आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

यतीन्द्रसूरि, ता० २१-१०-५१

वि० सं० २००८ में श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी महाराज साहब का चातुर्मास थराद उत्तर गुजरात में था। उसी वर्ष माघ शुक्ला ६ को आचार्यश्री की तत्त्वावधानता में थराद के श्री संघ ने श्री महावीर-जिनालय की अंजन-शलाका-प्राण-प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया था। उक्त प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होने वाली प्रतिमाओं और तीर्थ-पट्टादि के बनाने में आपने जिस प्रकार सहयोग दिया, वह थराद श्री संघ की ओर से आपको दिये गये अभिनन्दन-पत्र से प्रकट होता है तथा आपकी गुरुभक्ति, समाजसेवा की ऊँची भावनाओं को व्यक्त करता है:—

थराद में प्रतिष्ठोत्सव और आपका सहयोग.

॥ ॐ ॥

श्रीमद् राजेन्द्रगुरुभ्यो नमः

आभार-पत्र

समाजप्रेमी स्वधर्मी श्रीमन् भाई श्री ताराचन्द्रजी मेघराजजी

मु० पावा (मारवाड़) राजस्थान

आप निःस्वार्थ समाजसेवी हैं और यह आपकी अनेक संघयात्रा, प्रतिष्ठामहोत्सव, उद्यापन-तपादि में लिये गये भागों से सिद्ध है। फिर आप वैसे 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग हाउस', सुमेरपुर के कर्णधार एवं प्राग्वाट-इतिहास जैसे भगीरथकार्य के उठाने वाले अथक परिश्रमी एवं परमोत्साही सज्जन होने के नाते लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। श्री गुरुवर्य्य व्याख्यान वाचस्पति श्री श्री १००८ श्री विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी के करकमलों से वि० सं० २००८ माघ शुक्ला ६ को थराद में 'श्री महावीर-जिनालय की होने वाली अंजनशलाकाप्राणप्रतिष्ठा' के लिये श्री थराद संघ की ओर से जयपुर में जो पाषाण के ७८ अठ्ठहत्तर बिंब तथा मकराना (मारवाड़) में जैनतीर्थों के १५ पाषाणपट्ट बनवाये गये थे, उनके प्रतिष्ठा के शुभावसर तक बनवाकर आ जाने में, मूल्य के निश्चयीकरण में आपने जिस संलग्नता, तत्परता एवं धर्मप्रेम से श्री थराद संघ को तन, मन से कष्ट उठाकर सहयोग प्रदान किया है, उसका हम अत्यधिक आभार मानते हैं। आपकी इस समाजहितेच्छुकता एवं गुरुभक्ति से हम अत्यधिक प्रभावित हैं।

वि० सं० २००८ माघ शु० ७

आपका

श्रीसंघ, थराद (उत्तर गुजरात)

कवराड़ा में धड़ों का मिटाना और सेवक-सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करना

कुछ वर्षों से कवराड़ा (मारवाड़) के श्री जैन-संघ में कुछ आंतर झगड़ों के कारण कुसंप उत्पन्न हो गया था और घड़े पड़ गये थे। सेवक-सम्बन्धी झगड़े भी बड़े हुये थे। वि० सं० २००८ ज्येष्ठ शु० २ रविवार को शाह दानमलजी नत्थाजी की ओर से 'अट्ठाई-महोत्सव' किया गया था और शान्तिस्नात्र-पूजा भी बनाई गई थी। उपा० मु० हीरमुनिजी के शिष्य मु० सुन्दरविजयजी और सुरेन्द्रविजयजी इस अवसर पर वहाँ पधारे हुये थे। आप (ताराचंद्रजी) भी पधारे थे। संघ आन्तर-कुसंप से तंग आ रहा था। योग्यावसर देख कर कवराड़ा के संघ ने दोनों सज्जन मु० सुन्दरविजयजी और ताराचंद्रजी को मिलकर संघ में पड़े धड़ों का निर्णय करने का एवं सेवक-संबंधी झगड़ों को निपटाने का भार अर्पित किया और स्वीकार किया कि जो निर्णय ये उक्त सज्जन देंगे कवराड़ा-संघ उस निर्णय को मानने के लिये बाधित होगा। संघ में धड़ेबंदी होने के प्रमुख कारण ये थे कि (१) पांच घरों में पंचायती रकम कई वर्षों से बाकी चली आ रही थी और वे नहीं दे रहे थे, (२) सात घरों में खरड़ा-लागसंबंधी रकम बाकी थी और वे नहीं दे रहे थे, (३) एक सज्जन में लाण की रकम बाकी थी, (४) सात घर अपनी अलग कोथली अर्थात् अपने पंचायती आय-व्यय का अलग नामा रखते थे (५) मंदिर और संघ की सेवा करने वाले सेवक की लाग-भाग का प्रश्न जो मंहगाई के कारण उत्पन्न हुआ था संघ में धड़ा-बंदी होने के कारण सुलझाया नहीं जा सका था।

मु० सा० सुन्दरविजयजी और श्री ताराचंद्रजी ने धड़ेबंदी के मूल कारणों पर गंभीर विचार करके वि० सं० २००६ माघ कृ० ७ को अपने हस्ताक्षरों से प्रमाणित करके निर्णय प्रकाशित कर दिया। कवराड़ा के संघ में संप का प्रादुर्भाव उत्पन्न हुआ और धड़ा-बंदी का अंत हो गया।

श्री वर्धमान जैन बोर्डिंग हाउस, सुमेरपुर में श्री महावीर-जिनालय की प्रतिष्ठा

जैसा पूर्व परिचय देते समय लिखा जा चुका है कि श्री वर्धमान जैन बोर्डिंग हाउस, सुमेरपुर के जन्मदाता आप और मास्टर मीखमचंद्रजी हैं। आप के हृदय में उक्त छात्रालय के भीतर एक जिनालय बनवाने की अभिलाषा भी छात्रालय के स्थापना के साथ ही उद्भूत हो गई थी। आपकी अथक श्रमशीलता के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों पूर्व श्री महावीर-जिनालय का निर्माण प्रारम्भ हो गया था; परन्तु महंगाई के कारण निर्माणकार्य धीरे २ चलता रहा था। इसी वर्ष वि० सं० २०१० ज्येष्ठ शु० १० सोमवार ता० २२-६-१९५३ को उक्त मन्दिर की उपा० श्रीमद् कल्याणविजयजी के कर-कमलों से प्रतिष्ठा हुई और उसमें मूलनायक के स्थान पर वि० सं० १५६६ माघ शु० ६ की पूर्वप्रतिष्ठित श्री वर्धमानस्वामी की भव्य प्रतिमा महामहोत्सव पूर्वक विराजमान करवाई गई। इस प्रतिष्ठोत्सव के शुभावसर पर १११ पाषाण-प्रतिमाओं की और ३५ चांदी और सर्वधातु-प्रतिमाओं की भव्य मण्डप की रचना करके अंजनशलाका करवाई गई थी। मन्दिर-निर्माण में अब तक लगभग पेंतीस सहस्र रुपया व्यय हो चुका है, इस द्रव्य के संग्रह करने में तथा प्रतिष्ठोत्सव में आपका सर्व प्रकार का श्रम मुख्य रहा है।

श्री शांतिनाथ-जिनालय स्टे. रानी का जीर्णोद्धार

स्टे० रानी मण्डी में श्री शांतिनाथ-जिनालय का जीर्णोद्धार करवाना अपेक्षित था। आपकी प्रेरणा पर ही उक्त जिनालय का जीर्णोद्धार लगभग दश सहस्र व्यय करके करवाया गया था, जिसमें चार सहस्र रुपया 'श्री गुलाबचन्द्र अभूतचन्द्र' फर्म ने अर्पित किया था। स्टे० रानी-मण्डी में आपका अच्छा संमान है और प्रत्येक धर्म एवं समाज-कार्य में आपकी संमति और सहयोग

प्रमुख रहते हैं। वि० सं० २००७ से आप श्री 'जैन देवस्थान-गोड़वाड़तीर्थ-वरकाणा' की जीर्णोद्धार-समिति के सदस्य हैं। और भी आप इस प्रकार कईएक छोटी-मोटी संस्थाओं को अपना सहयोग दान करते रहते हैं।

आपने दो वार श्री सिद्धाचलतीर्थ और गिरनारतीर्थों की, एक वार अर्वुदाचलतीर्थ की, दो वार अणहिलपुर-पत्तन की और दो वार श्री सम्मेतशिखरतीर्थ की यात्रायें की हैं। अतिरिक्त इनके अयोध्या, चम्पापुरी, पावापुरी, भागलपुर, हस्तिनापुरादि छोटे-बड़े अनेक तीर्थों की यात्रायें भी की हैं।

आप जैसे समाजसेवी, शिक्षणप्रेमी, विद्यानुरागी हैं, वैसे ही व्यापारकुशल भी हैं। इस समय आप श्री 'गुलावचन्द्रजी भभूतचन्द्रजी', स्टे० राणी (मारवाड़) नाम की राणी मण्डी में अति प्रसिद्ध फर्म के, शाह दलीचन्द्र ताराचन्द्र, स्टे० राणी नाम की फर्म के और शाह रतनचन्द्रजी कपूरचन्द्रजी नाम की मद्रास में अति प्रतिष्ठित फर्म के पांतीदार हैं। आपके तीनों ही पुत्र भी वैसे ही व्यापारकुशल एवं अति परिश्रमी हैं। ज्येष्ठ पुत्र श्री हिम्मतमलजी श्री गुलावचन्द्रजी भभूतचन्द्रजी नाम की फर्म पर और श्री उम्मेदमलजी तथा श्री चम्पालालजी मद्रास की फर्म पर कार्य करते हैं। परिवार, मान, धन की दृष्टि से आप सुखी है।

यहां पर समिति के सदस्यों में से नडूलाईवासी शाह सागरमलजी नवलाजी आपके लिए अधिक निकट स्मरणीय है। श्री सागरमलजी इतिहासविषय में अच्छी रुचि रखते हैं और फलतः श्री ताराचन्द्रजी को विचार-विनिमय एवं परामर्श के अवसरों पर आपका अच्छा सहयोग एवं वल मिलता रहा है।

सांडेरावनिवासी शाह चुन्नीलालजी सरदारमलजी का भी पुस्तकादि के संग्रहसंवन्ध में आपको सर्वप्रथम सहयोग मिला, वे भी यहां स्मरणीय हैं।

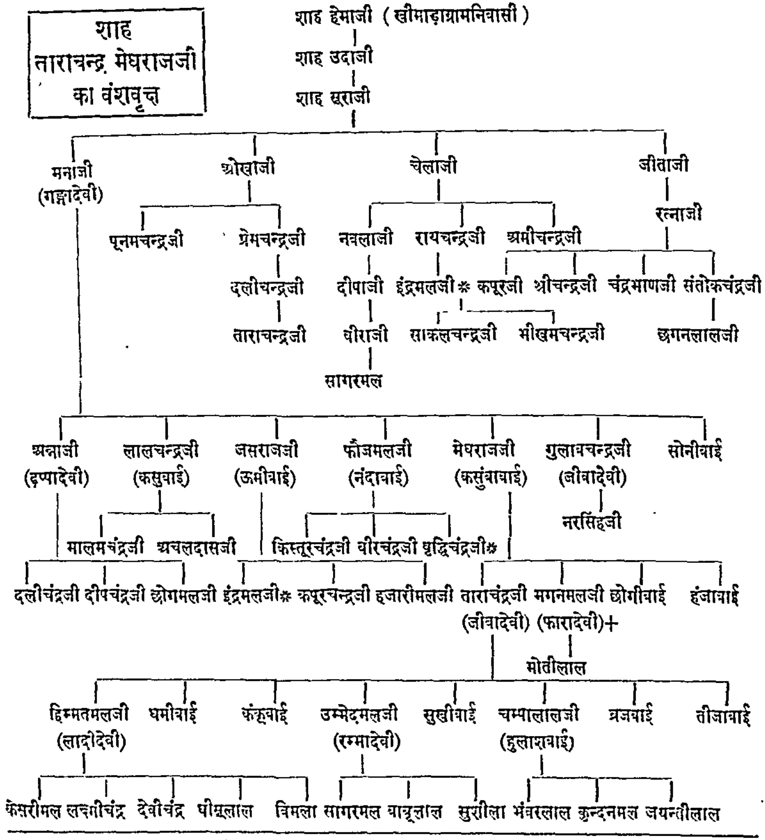
प्राग्वाट-इतिहास के लिए अग्रिम ग्राहकों को वनाने में राणीग्रामनिवासी शाह जवाहरमलजी और खुडाला-ग्रामनिवासी शाह संतोषचन्द्रजी थानमलजी का आपको सदा तत्परतापूर्ण सहयोग मिलता रहा है। वे भी पूर्ण धन्यवाद के पात्र हैं।

फर्म 'शाह गुलावचन्द्रजी भभूतचन्द्रजी' भी अति धन्यवाद की पात्र है कि जिसने प्राग्वाट-इतिहास विषयक क्षेत्र में समय-समय पर कार्यकर्त्ताओं की सेवा-सुश्रूषा करने में पूरा हार्दिक सद्भाव प्रकट किया है।

यहां पर ही भाई श्री हीराचन्द्रजी का नाम भी स्मरणीय है। ये श्री ताराचन्द्रजी के पिता मेघराजजी के द्वितीय जेष्ठ भ्राता श्री लालचन्द्रजी के सुपुत्र श्री सालमचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। श्री ताराचन्द्रजी के द्वारा 'श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति' की ओर से होने वाले सारे पत्र-व्यवहार और इतिहास निमित्त प्राप्त अर्थ के आय-व्यय का लेखा श्री ताराचन्द्रजी की आज्ञा एवं सम्मति से आप ही अधिकतः करते रहे हैं। अतिरिक्त इसके अन्य स्थलों पर भी ये ताराचन्द्रजी के सदा सहायक रहे हैं। इतिहास के लिए श्रम करने वालों में सदा उत्साही होने के नाते धन्यवाद के पात्र हैं।

ता० ५—६—५२.
भीलवाड़ा (राजस्थान)

लेखक—
दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी० ए०



* दत्तक आया समझना चाहिए । +पृ० ६ पर प्यारादेवी छप गया है, परन्तु है वस्तुतः नाम फारादेवी ।

श्री प्राग्वाट-इतिहास के प्रति सहायभूत सहानुभूति प्रदर्शित करके अग्रिम रु० १०१) देकर अथवा वचन देकर सक्रिय सहयोग देने वाले सज्जनों की

जिनका पंचपीढ़ीय-परिचय प्राग्वाट-इतिहास द्वितीय भाग में आवेगा

स्वर्ण-नामावली

आहोर :—

१ शाह नत्थमलजी ऋषभदासजी
२ ,, हजारीमलजी किस्तूरजी
३ ,, नेमीचन्द्रजी पूनमचन्द्रजी
४ ,, मगराजजी मांगीलालजी
५ ,, हीराचन्द्रजी शेषमलजी
६ ,, वछराजजी नरसिंहजी
७ ,, नथमलजी लालाजी

उम्मेदपुर :—

८ शाह चुन्नीलालजी भीखाजी
९ ,, पृथ्वीराजजी चतुराजी

कवराड़ा :—

१० शाह आईदानमलजी नत्थाजी
११ ,, सूरतिंगजी खुमाजी
१२ ,, अचलाजी चन्दनभाणजी
१३ ,, ऋषभचन्द्रजी किसनाजी
१४ ,, चैनाजी अमीचन्द्रजी
१५ ,, जसराजजी प्रतापजी
१६ ,, सरदारमलजी जीताजी

कोशीलाव :—

१७ शाह सरदारमलजी वरदाजी
१८ ,, शेषमलजी सरदारमलजी
१९ ,, केसरीमलजी सरदारमलजी
२० ,, रूपचन्द्रजी खूमाजी
२१ नवयुवक मण्डल
२२ श्री पौरवाल समस्तपंच
२३ शाह वनाजी केशाजी
२४ ,, मनरूपचन्द्रजी वरदाजी
२५ ,, भगवानदासजी पुखराजजी
२६ ,, वीरचन्द्रजी मयाचन्द्रजी
२७ ,, नेमीचन्द्रजी गंगारामजी
२८ ,, गुलाबचन्द्रजी पूनमचन्द्रजी
२९ ,, रूपचन्द्रजी धूलाजी
३० ,, छगनलालजी लादाजी
३१ ,, सूरतिंगजी राजाजी
३२ ,, मिश्रीमलजी वृद्धिचन्द्रजी
३३ ,, पूनमचन्द्रजी धूलाजी
३४ ,, ऋषभदासजी रायचंद्रजी

कंटालिया :—

३५ शाह केसरीमलजी राजमलजी
३६ ,, खीमराजजी विजयराजजी

खीमाड़ा :—

३७ शाह गुलाबचन्द्रजी प्रेमचन्द्रजी

खीवान्दी :—

३८ शाह किस्तूरचन्द्रजी सवाजी
३९ ,, गुलाबचन्द्रजी चैनाजी
४० ,, जीवराजजी भूताजी
४१ ,, चन्दनभाणजी देवाजी
४२ ,, ताराचन्द्रजी दलीचन्द्रजी

खुडाला :—

४३ शाह वनेचन्द्रजी संतोषचन्द्रजी

४४ ,, वोरीदासजी पुखराजजी

गुड़ा बालोतरा :—

४५ शाह राजमलजी केसरीमलजी

घाणेराव :—

४६ शाह छगनलालजी हंसराजजी

४७ ,, निहालचन्द्रजी खिवराजजी

४८ ,, मूलचन्द्रजी जवेरचन्द्रजी

४६ ,, किस्तूरचन्द्रजी पुखराजजी

५० ,, जयचन्द्रजी मूलचन्द्रजी

५१ ,, निहालचन्द्रजी घनरूपजी

५२ ,, हिम्मतमलजी देवीचन्द्रजी

५३ ,, खींमराजजी रतनचन्द्रजी

५४ ,, वंशीलालजी सागरमलजी

५५ ,, उत्तमचन्द्रजी मोतीलालजी

चांदराई :—

५६ शाह जवाहिरमलजी हंसाजी

५७ ,, अमीचंद्रजी मोतीजी

५८ ,, केसरीमलजी टेकाजी

५६ ,, पूनमचंद्रजी किसनाजी

६० ,, मोतीचंद्रजी पनाजी

६१ ,, हिम्मतमलजी गुलाबचंद्रजी

६२ ,, हेमराजजी जसाजी

६३ ,, पन्नालालजी किस्तूरचंद्रजी

चामुण्डेरी :—

६४ शाह हीराचंद्रजी किस्तूरचंद्रजी वनेचंद्रजी

तखतगढ़ :—

६५ शाह केसरीमलजी अचलाजी

६६ ,, जवानमलजी किस्तूरजी

६७ ,, पूनमचंद्रजी जसरूपजी

६८ ,, चंदनमलजी जसरूपजी

६६ शाह राजमलजी परकाजी

७० ,, जवानमलजी मनाजी

७१ ,, गेनाजी वृद्धिचंद्रजी

७२ ,, पनाजी पेमाजी

७३ ,, हजारीमलजी हुकमाजी वरदरावाला

७४ ,, रामाजी भीमाजी

७५ ,, वनेचंद्रजी फौजमलजी

७६ ,, पूनमचंद्रजी धूलाजी

७७ ,, देवीचंद्रजी किसनाजी वरदरावाला

७८ ,, पूनमचंद्रजी किस्तूरजी

धूम्बा :—

७६ शाह चैनमलजी जेरूपजी

दयालपुरा :—

८० शाह चुन्नीलालजी केसरीमलजी

देसूरी :—

८१ शाह घासीरामजी गुलाबचन्द्रजी

८२ ,, धनराजजी जसराजजी

८३ ,, पुखराजजी हिम्मतमलजी सूरजमलजी

८४ ,, जोरमलजी वीरचन्द्रजी

८५ ,, कालूरामजी जवेरचन्द्रजी अनोपचन्द्रजी

८६ ,, मीठालालजी पुखराजजी

८७ ,, जीवराजजी उदयरामजी

८८ ,, किस्तूरचन्द्रजी मूलचन्द्रजी

८६ ,, चन्दनमलजी वनेचन्द्रजी

६० ,, राजमलजी उदयरामजी

६१ ,, हिम्मतमलजी सागरमलजी

६२ ,, धनराजजी संतोषचन्द्रजी

धणी :—

६३ शाह परतापमलजी मोतीजी

६४ ,, सीमाजी नवलाजी

६५ ,, रूपचन्द्रजी कानाजी

६६ ,, लालचन्द्रजी नेमाजी

९७ शाह जेठमलजी नवलाजी

नाणा :—

९८ शाह संतोषचन्द्रजी मूलचन्द्रजी

९९ ,, टेकचन्द्रजी भाणालालजी

नारलाई (नडूलाई) :—

१०० शाह सागरमलजी नवलाजी

१०१ ,, पूनमचन्द्रजी मूलचन्द्रजी

१०२ ,, प्रेमचन्द्रजी मेघराजजी

१०३ ,, रतनचन्द्रजी किस्तूरचन्द्रजी

१०४ ,, मुलतानमलजी देवीचन्द्रजी

१०५ ,, मोहनलालजी वनेचन्द्रजी

१०६ ,, पुखराजजी गणेशमलजी सवाईमलजी

१०७ ,, भीखमचन्द्रजी चुन्नीलालजी

नीतोड़ा :—

१०८ शाह चुन्नीलालजी तिलोकचन्द्रजी

पादरली :—

१०९ शाह शेषमलजी हंसाजी

११० ,, भभूतमलजी कपूरचन्द्रजी

१११ ,, ताराचन्द्रजी किस्तूरचन्द्रजी

११२ ,, हीराचन्द्रजी किस्तूरचन्द्रजी

११३ ,, नवलाजी दोलाजी

पालड़ी :—

११४ शाह अमीचन्द्रजी मालाजी

११५ ,, मियाचन्द्रजी वृद्धिचन्द्रजी

११६ ,, भभूतमलजी किस्तूरजी

११७ ,, रूपचन्द्रजी किस्तूरजी

११८ ,, नेनमलजी भूताजी

पाली :—

११९ शाह फुसाजी वोरीदासजी

१२० ,, तेजराजजी लालचन्द्रजी

पावा :—

१२१ शाह मेघराजजी मन्नाजी

१२२ शाह वृद्धिचन्द्रजी फौजमलजी

१२३ ,, नरसिंगमलजी गुलाबचन्द्रजी

१२४ ,, मगनमलजी मेघराजजी

पिंडवाड़ा :—

१२५ शाह रायचन्द्रजी हंसराजजी

१२६ ,, चुन्नीलालजी मूलचन्द्रजी

१२७ ,, सूरचन्द्रजी अणदाजी वेलचन्द्रजी

१२८ ,, देवीचन्द्रजी सुरचन्द्रजी अणदाजी

१२९ ,, भभूतमलजी फूलचन्द्रजी

१३० ,, रत्नचन्द्रजी गुलाबचन्द्रजी बैंड़ावाला

१३१ ,, चुन्नीलालजी चैनाजी

१३२ ,, शिवलालजी सुरचंद्रजी

१३३ ,, छगनलालजी समर्थमलजी जीवाजी

१३४ ,, चुन्नीलालजी भूरमलजी सिरेमलजी

१३५ ,, भगवानजी तेजमलजी

१३६ मुहता मनरूपजी अचलदासजी

१३७ शाह सरदारमलजी वेलाजी

१३८ मुहता जवानमलजी हंसराजजी

१३९ शाह मियाचंद्रजी अमीचंद्रजी

१४० ,, छोगालालजी भाईचंद्रजी

१४१ ,, हीराचंद्रजी गुलाबचंद्रजी

१४२ ,, पूनमचंद्रजी कपूरचंद्रजी

१४३ ,, छगनलालजी रूपचंद्रजी

पीसावा :—

१४४ ,, दलीचंद्रजी रायचंद्रजी

पोमावा :—

१४५ ,, हेमराजजी रत्नचन्द्रजी

बगड़ी—

१४६ ,, हेमराजजी केवलचन्द्रजी

१४७ ,, रूपचन्द्रजी मूलचन्द्रजी

१४८ ,, रत्नचन्द्रजी देवराजजी

१४९ ,, गणेशमलजी पारसमलजी

१५० शाह मोतीलालजी कन्हैयालालजी
१५१ ,, खीमराजजी बुधमलजी
१५२ ,, हंसराजजी छगनीरामजी

बागरा :—
१५३ ,, केसरीमलजी हुक्माजी
१५४ ,, जेठमलजी मुमाजी
१५५ ,, मनशाजी नरसिंहजी

बाबाग्राम :—
१५६ ,, कपूरचन्द्रजी रत्नचन्द्रजी
१५७ ,, वनेचन्द्रजी सरदारमलजी

बाली :—
१५८ ,, उदयभाणजी प्रेमचन्द्रजी
१५९ ,, चुन्नीलालजी गुलाबचन्द्रजी
१६० ,, साकलचन्द्रजी देवीचन्द्रजी
१६१ ,, जेठमलजी पूनमचन्द्रजी
१६२ ,, शेषमलजी नेमिचन्द्रजी
१६३ ,, चिमनलालजी ऋषभदासजी
१६४ ,, फूलचन्द्रजी शेषमलजी
१६५ ,, मभूतमलजी नेमिचन्द्रजी
१६६ ,, शेषमलजी किस्तूरचन्द्रजी
१६७ ,, मगनीरामजी दलीचन्द्रजी
१६८ ,, फौजमलजी देवीचन्द्रजी
१६९ ,, पुखराजजी पृथ्वीराजजी
१७० ,, पुखराजजी हजारीमलजी
१७१ ,, वनेचन्द्रजी उदयचन्द्रजी
१७२ ,, कुन्दनमलजी ताराचन्द्रजी

बिलाड़ा :—
१७३ ,, पन्नालालजी गजराजजी
१७४ ,, हस्तिमलजी पारसमलजी

बेड़ा (बेड़ा)
१७५ ,, मीमाजी कपूरचन्द्रजी
१७६ ,, चुन्नीलालजी नत्थमलजी
१७७ शाह कपूरचन्द्रजी हीराचन्द्रजी

भूति :—
१७८ ,, मीखमचन्द्रजी पुखराजजी

मालवाड़ा—
१७९ ,, मगनमलजी ऊमाजी ओखाजी
१८० ,, मूलचन्द्रजी ऊमाजी ओखाजी
१८१ ,, चिमनलालजी ऊमाजी ओखाजी

मुंडारा :—
१८२ ,, चन्द्रभानजी जेठाजी
१८३ ,, जीवराजजी फतेचन्द्रजी
१८४ ,, धनराजजी हीराचन्द्रजी

राणीग्राम :—
१८५ ,, लक्ष्मीचन्द्रजी चन्द्रभानजी
१८६ ,, लक्ष्मीचन्द्रजी उदयरामजी
१८७ ,, पुखराजजी गुलाबचन्द्रजी
१८८ ,, गणेशमलजी हिम्मतमलजी
१८९ ,, पुखराजजी कपूरचन्द्रजी मीमाजी
१९० ,, मभूतमलजी फौजमलजी
१९१ ,, राजमलजी जसाजी
१९२ ,, हजारीमलजी तिलोकचन्द्रजी
१९३ ,, जवाहरमलजी हुकमाजी

रोहीड़ा :—
१९४ ,, चिमनमलजी अचलदासजी
१९५ ,, छगनराजजी चैनमलजी
१९६ ,, बीराजी पनेचन्द्रजी
१९७ ,, हजारीमलजी दानमलजी
१९८ ,, छगनलालजी हंसराजजी
१९९ ,, अचलदासजी अमरचन्द्रजी

लास :—
२०० ,, दानमलजी नरसिंहजी

लुणावा :—
२०१ ,, धनमलजी किस्तूरजी

२०२ शाह ऋषभाजी मनालालजी
२०३ ,, रत्नचन्द्रजी हिम्मतमलजी
२०४ ,, मोटा विरधाजी
२०५ ,, भीमराजजी जसराजजी
२०६ ,, पुखराजजी मनरूपजी

वरदरा :—
२०७ ,, सरेमलजी हजारीमलजी
२०८ ,, वीरचन्द्रजी कपूरचन्द्रजी

वांकली :—
२०९ कोठारी हजारीमलजी पूनमचन्द्रजी
२१० ,, जवानमलजी पूनमचन्द्रजी
२११ ,, शेषमलजी छोगमलजी
२१२ ,, वीरचन्द्रजी मनरूपजी
२१३ शाह हुकमाजी मोतीजी
२१४ ,, वृद्धिचन्द्रजी चन्दनभाणजी केरालवाला

वीजापुर :—
२१५ ,, चन्दाजी खुशालजी
२१६ ,, ताराचन्द्रजी कूपाजी
२१७ ,, चन्दाजी चैनाजी
२१८ ,, भीमराजजी किशनाजी
२१९ ,, हजारीमलजी किशनाजी
२२० ,, प्रेमचन्द्रजी ऋषभाजी

विशलपुर :—
२२१ ,, जेठमलजी मियाचन्द्रजी
२२२ ,, भभूतमलजी देवीचन्द्रजी
२२३ ,, हंसराजजी राजिंगजी
२२४ ,, साकलचन्द्रजी ऊमाजी
२२५ ,, चुन्नीलालजी ऊमाजी
२२६ ,, तुलसाजी अमीचन्द्रजी
२२७ ,, केसरीमलजी भूताजी

शिवगंज :—
२२८ ,, फतेहचन्द्रजी गोमराजजी
२२९ शाह हंसराजजी छोगमलजी
२३० ,, नरसिंहजी राजाजी
२३१ ,, मेघाजी हीराचन्द्रजी
२३२ ,, पूनमचन्द्रजी जोधाजी
२३३ ,, खीमचन्द्रजी हंसराजजी
२३४ ,, मोहनलालजी कपूरचन्द्रजी
२३५ ,, जेठमलजी गुलाबचन्द्रजी

सादड़ी :—
२३६ ,, शोभाचन्द्रजी अमरचन्द्रजी
२३७ ,, कनीरामजी नरसिंहजी
२३८ ,, मोहनलालजी वाघमलजी
२३९ ,, चन्दणमलजी पूनमचन्द्रजी
२४० ,, गुमानचन्द्रजी चुन्नीलालजी
२४१ ,, चुन्नीलालजी वृद्धिचन्द्रजी
२४२ ,, पन्नालालजी गुलाबचन्द्रजी
२४३ ,, हीराचन्द्रजी पूनमचन्द्रजी
२४४ ,, वाघमलजी पूनमचन्द्रजी
२४५ ,, गुलाबचन्द्रजी पूनमचन्द्र जी
२४६ ,, मोतीलालजी डूंगाजी
२४७ ,, लालचन्द्रजी रत्नचन्द्रजी
२४८ ,, छोगमलजी रूपचन्द्रजी
२४९ ,, कालूरामजी हीराचन्द्रजी
२५० ,, करमचन्द्रजी वनेचन्द्रजी
२५१ ,, जेठमलजी मनाजी
२५२ ,, चुन्नीलालजी वीरचन्द्रजी
२५३ ,, चुन्नीलालजी किस्तूरचन्द्रजी

साण्डेराव :—
२५४ ,, ताराचन्द्रजी जवेरचन्द्रजी
२५५ ,, पोमाजी दलीचन्द्रजी
२५६ ,, उदयचन्द्रजी दलीचद्रन्जी
२५७ ,, चुन्नीलालजी ऋषभाजी
२५८ ,, केसरीमलजी धनाजी

२५६ शाह शेषमलजी लक्ष्मीचन्द्रजी
२६० ,, दलीचन्द्रजी धूलाजी

सियाणा :—

२६१ शाह भगवानजी लूंबाजी
२६२ ,, कपूरचन्द्रजी जेठमलजी भीकाजी
२६३ ,, ताराचन्द्रजी सुरतिंगजी वेवा बाई धापू
२६४ ,, भगवानजी चुन्नीलालजी
२६५ ,, पूनमचन्द्रजी भगवानजी
२६६ ,, जैरूपजी किस्तूरचन्द्रजी
ह० छोगाजी श्रोपाजी
२६७ ,, देवीचन्द्रजी फूलचन्द्रजी चिमनाजी
२६८ ,, धनरूपचन्द्रजी चैनाजी
२६९ ,, छगनलालजी भीमाजी
२७० ,, नोपाजी लक्ष्मीचन्द्रजी
२७१ शाह भीमाजी जेताजी
२७२ ,, जेठमलजी वनेचन्द्रजी
२७३ ,, नत्थमलजी तिलोकचन्द्रजी

सिरोही :—

२७४ शाह ताराचन्द्रजी तिलोकचन्द्रजी डोसी

सुमेरपुर :—

२७५ शाह दानमलजी देवीचन्द्रजी
२७६ ,, कपूरचन्द्रजी दलीचन्द्रजी

सोजत :—

२७७ शाह गुलाबचन्द्रजी जुगराजजी

हरजी :—

२७८ शाह कुन्दनमलजी गैनाजी

(पीछे से) वासा :—

२७९ शाह चिमनमलजी नत्थमलजी



जैनं जयति शासनम्

शुभाशीर्वाद !

श्री पौरवाड़-इतिहास-प्रकाशक-समिति, स्टेशन रानी द्वारा प्रकाशित 'पौरवाड़-इतिहास' का प्रथम भाग हमारे सम्मुख है। इसको आद्योपांत वाचने और मनन करने से अपना यह शुभाशीर्वादयुक्त अभिप्राय व्यक्त करना पड़ता है कि—

इस इतिहास में प्रामाणिकता है, सत्यता है, ऐतिहासिकता है, साहित्यिकता है और इसके निर्माता श्रीयुत् दौलतसिंहजी लोढ़ा बी० ए० की खोज एवं हार्दिक प्रेरणा की परिपूर्णता है। यह इतिहास शृंखलाबद्ध है, साहित्यिक ढंग से लिखित है और यह पौरवाड़ ज्ञाति के गौरव की यशोगाथा है। इसके पूर्व ओसवालज्ञाति का इतिहास भी प्रकाशित हुआ है, परन्तु उससे इसमें अधिक प्रामाणिकता और लेखनशैली की सौष्ठवता है। इतना ही नहीं, इसमें उत्तम श्रेणी की ओजस्विता भी है जो युगों पर्यन्त इस ज्ञाति को प्राणमयी एवं गौरवशाली बनाये रक्खेगी।

हमारे सदुपदेश से पावावाले श्रीयुत् ताराचन्दजी मेघराजजी ने इस कार्य को सम्पन्न कराने का भार अपने हाथ में लिया और उसके लिये अनेक टक्करें झेल करके भी पूरी तत्परता एवं लग्न से साहित्य-संचय किया और स्वल्प समय में ही इस महान् कार्य को सम्पन्न कर दिखाया, इससे हमें बड़ा सन्तोष है। इसके लिये हम पौरवाड़-इतिहास के निर्माता दौलतसिंहजी लोढ़ा बी० ए० को और श्रीयुत् ज्ञातिसेवाभावी ताराचन्दजी मेघराजजी पावावाले को हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

प्रस्तुत इतिहास में प्राचीन स्थापत्य और मन्दिर-निर्माण—शिल्पकला के नमूने रूप फोटूओं को स्थान दिया गया है और उनकी सविवरण योजना कर दी गई है, यह इस इतिहास के अङ्ग को और भी अधिक शोभा-वृद्धि करने वाली और सहृदय इतिहासज्ञाताओं के लिये आनन्दोत्पादक हैं। इत्यलं विस्तरेण।

सियाना, आश्विन शुक्ला प्रतिपदा
विक्रम सं० २०१०

—विजययतीन्द्रसूरि

अभिप्राय

[श्रीयुत् पण्डितवर्य लालचन्द्र भगवानदास गांधी, वड़ौदा ने श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति की प्रार्थना को स्वीकार कर जो प्रस्तुत इतिहास का अवलोकन किया था और उस पर जो उन्होंने अपना अभिप्राय वि० सं० २००६ पौ० कृ० २ शुक्र० तदनुसार ता० २-१-१९५२ को समिति के नाम वड़ौदा से पत्र लिख कर प्रकट किया था, वह उद्धृत किया जाकर यहाँ प्रकाशित किया गया है। —लेखक]

आप सज्जनों ने प्राग्वाट-वंश-ज्ञाति का जो इतिहास बहुत परिश्रम से तैयार करवाया है और उत्साही लेखक बन्धु श्री दौलतसिंहजी लोढ़ा (बी० ए० कवि 'अरविंद') ने जो दिल्चस्पी से संकलित किया है; उसका निरीक्षण मैंने आपकी अनुमति से राणी में और वड़ौदा में करीब २५ दिनों तक किया है। आपके सामने और लेखक के समक्ष कई प्रकरण-विषय पर गंभीर चर्चा-विचारणा भी हुई थी। कई अंश-सम्बन्ध में अपनी ओर से हमने सलाह-सूचना भी दी थी, वह प्रायः स्वीकारी गई। कई अंश में लेखक ने अपनी स्वतंत्रता भी प्रकाशित की है। जहाँ तक मैं देख सका हूं और यथामति सोच सका हूँ—यह कार्य ठीक-ठीक तैयार हो गया है, इसको जल्दी शुद्ध करके प्रकाश में लाना चाहिए, जिससे जगत् में—समाज को यह प्रतीत हो जाय कि इस वंश-ज्ञाति के सज्जन कैसे उच्च नागरिक हो गए, कैसे राजनीतिज्ञ, व्यवहारदक्ष, विद्वान्, संयमी, सदाचारी, धर्मात्मा, कलाप्रेमी, कर्त्तव्यनिष्ठ और सद्गुणगरिष्ठ थे ! पूर्वजों का प्रामाणिक इतिहास, वर्त्तमान और भावी प्रजा को उच्च प्रकार की प्रेरणा-शिक्षा दे सकता है।

वर्षों से किया हुआ परिश्रम अब बिना विलम्ब प्रकाश में लाना चाहिए यह एक उच्च प्रकार का प्रशंसनीय गौरवास्पद स्तुत्य कर्त्तव्य है। परमात्मा से मैं प्रार्थना करता हूँ कि—यह यशस्वी कार्य जल्दी प्रकाश में आवे और अपन आनन्द मनावें। शुभं भवतु।

आपका विश्वासु—

लालचन्द्र भगवान गांधी

(जैन पण्डित)

भूमिका

'प्रज्ञाप्रकर्ष प्राग्वाटे, उपकेशे विपुलं धनम् । श्रीमालेषु उत्तमं रूपं, शेषेषु नियता गुणाः' ॥२६५॥
'आद्यंप्रतिज्ञानिर्वाही, द्वितीयं प्रकृतिः स्थिरा । तृतीयं प्रौढ़वचनं, चतुः प्रज्ञाप्रकर्षवान् ॥३६८॥
पंचमं च प्रपंचज्ञः षष्टं प्रबलमानसम् । सप्तमं प्रभुताकांची, प्राग्वाटे पुटसप्तकम्' ॥३६६॥
—(विमलचरित्र)

'रणि राउलि सूरा सदा, देवी अंबाविप्रमाण; पोरवाड़ प्रगट्टमल, मरणि न मूकइं मांण ॥'
—(लावण्यसमयरचित विमलप्रबंध)

जैन ज्ञातियों का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ तिमिराच्छन्न है। उसको प्रकाश में लाने का जो भी प्रयत्न किया जाय आवश्यक, उपयोगी और सराहनीय है। प्रस्तुत प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास इस दिशा में किये गये प्रयत्नों में बहुत ही उल्लेखनीय है। श्रीयुत् लोढ़ाजी ने इसके लिखने में बहुत श्रम किया है। कविता के रसप्रद क्षेत्र से उनका शुष्क इतिहासक्षेत्र की ओर कैसे घुमाव हो गया यह आश्चर्य का विषय है। जिन व्यक्तियों की प्रेरणा से वे इस कार्य की ओर झुके वे अवश्य ही साधुवाद के पात्र हैं।

श्वेताम्बर जैन ज्ञातियों में प्राग्वाट अर्थात् पौरवाड़ बहुत ही गौरवशालिनी ज्ञाति है। इस ज्ञाति में ऐसे-ऐसे उज्ज्वल और तेजस्वी रत्न उत्पन्न हुए, जिनकी गौरवगरिमा को स्मरण करते ही नवस्फूर्त्ति और चैतन्य का संचार होता है। विविध क्षेत्रों में इस ज्ञाति के महापुरुषों ने जो अद्भुत व्यक्तित्व-प्रकाशित किया वह जैनज्ञातियों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित करने योग्य हैं। राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों एवं कला-उन्नयन के अतिरिक्त साहित्य-क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा जाज्वल्यमान है। मंत्रीश्वर विमल के वंश ने गुजरात के नवनिर्माण में जो अद्भुत कार्य किया वह अनुपम है ही, पर वस्तुपाल ने तो प्राग्वाटवंश के गौरव को इतना समुज्ज्वल बना दिया कि जैन इतिहास में ही नहीं, भारतीय इतिहास में उनके जैसा प्रखर व्यक्तित्व खोजने पर भी नजर नहीं आता। विमल और वस्तुपाल इन दोनों की अमर कीर्त्ति 'विमलवसहि' और 'लूणवसहि' नामक जिनालयों से विश्वविश्रुत हो चुकी है। कोई भी कला-प्रेमी जब वहां पहुँचता है तो उसके शरीर में जो प्रफुल्लता व्याप्त होती है उससे मानों

सेरों खून बढ़ जाता है। उसके मुख से बरबस ये शब्द निकल पड़ते हैं कि—इस अनुपम कलाकृति के निर्माता धन्य हैं, कृतपुण्य हैं, उनका जीवन सफल है, जिन्होंने अपनी धार्मिक भावना का मूर्त्तरूप इस अर्बुदाचल पर्वत पर इस सुन्दर रूप में प्रस्थापित किया। बड़े २ सम्राट्, राजा, महाराजा जो कार्य नहीं कर पाये, वह इनकी सूझ-बूझ ने कर दिखाया। अपने ऐश और आराम के लिये तो सभी ने अपनी शक्ति के अनुसार कला को प्रोत्साहन दिया; पर सार्वजनिक भक्ति के प्रेरणास्थल इन जिनालयों का निर्माण करके उन्होंने शताब्दियों तक जनता की भक्ति-भावना के अभिवृद्धि का यह साधन उपस्थित कर दिया। भारतीय शिल्पकला के ये जिनालय उज्ज्वल प्रतीक हैं। इनसे प्राग्वाटवंश का ही नहीं, समस्त भारत का मुख उज्ज्वल हुआ है।

इन अनुपम शिल्पकेन्द्रों की प्रेरणा ने परवर्त्ती शिल्प में एक आदर्श उपस्थित कर दिया। इसका अनुकरण अनेक स्थानों में हुआ और उसके द्वारा भारतीय शिल्प के समुत्थान में बड़ा सुयोग मिल सका।

मंत्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल की प्रतिभा बहुमुखी थी। सौभाग्यवश उनके समकालीन और थोड़े वर्षों बाद में ही लिखे गये ग्रंथों में उनके उस महान् व्यक्तित्व का परिचय सुरक्षित है। विमल के सम्बन्ध में समकालीन तो नहीं; पर सोलहवीं शताब्दी में 'विमलचरित्र' और 'विमलप्रबन्ध' और पीछे 'विमलरास' 'विमलशलोको' आदि रचनाओं का निर्माण हुआ। वस्तुपाल की साहित्यिक क्षेत्र में, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में जो देन है उसके सम्बन्ध में अच्छी सामग्री प्रकाश में आ चुकी है। वस्तुपाल के स्वयं निर्मित 'नरनारायणानन्दकाव्य' और उनके आश्रित कवियों और जैनाचार्यों के ग्रंथ भी प्रकाश में आ चुके हैं। हिन्दी में अभी उनके सम्बन्ध में प्राप्त सब सामग्री के आधार से लिखा हुआ विस्तृत परिचय प्रकाशित नहीं हुआ यह खेद का विषय है। लोढ़ाजी ने प्रस्तुत इतिहास में संक्षिप्त परिचय दिया ही है। मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे वस्तुपाल तेजपाल सम्बन्धी स्वतंत्र ग्रंथ तैयार कर शीघ्र ही प्रकाश में लावें। सामग्री बहुत है। उन सब का अध्ययन करके साररूप से वस्तुपाल के व्यक्तित्व को भलीभांति प्रकाश में लाने के लिये हिन्दी में यह ग्रंथ प्रकाशित होने की नितान्त आवश्यकता है।

प्राग्वाटज्ञाति के अन्य कवियों में कविचक्रवर्त्ती श्रीपाल, उनका पौत्र विजयपाल, 'दमयन्तीचम्पू' के रचयिता चण्डपाल, समयसुन्दर और ऋषभदास बहुत ही उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार उल्लेखनीय जैन मन्दिरों के निर्माता धरणाशाह, सोमजी शिवाका कार्य भी बहुत ही प्रशस्त है। इस वंश के अनेक व्यक्तियों ने जैनधर्म, साहित्य-कला की विविध सेवायें कीं, जिनका उल्लेख प्रस्तुत इतिहास में बड़े श्रम के साथ संग्रह किया गया है। अतः मुझे इस वंश की गरिमा के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

मैं जैनधर्म और ज्ञातिवाद, जैनागमों में प्राचीन कुलों एवं गोत्रों के उल्लेख और वर्त्तमान जैन श्वेताम्बर ज्ञातियों की, श्वेताम्बरवंशों की स्थापना एवं समयादि के विषयों में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। इसलिये अपने मूल विषय पर आगे की पंक्तियों में कुछ सामग्री उपस्थित करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा है उससे प्रस्तुत इतिहास की पृष्ठभूमि के समझने में बड़ी सुगमता उपस्थित हो जावेगी। भूमिका अधिक लम्बी नहीं हो, इसलिये संक्षेप में ही अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूं।

जैन धर्म के प्रचारक इस अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थङ्कर हो गये हैं। उनमें से तेईस महापुरुषों की वाणियां हमें अब प्राप्त नहीं हैं। इसलिये उनके समय में ज्ञातिवाद की मान्यता किस रूप में थी और ज्ञातियाँ एवं गोत्रों

जैन धर्म और ज्ञातिवाद

का विकास कब-कब और किन-किन कारणों से हुआ, इसके सम्बन्ध में जानने के लिए तत्कालीन कोई साधन नहीं है। परवर्ती जैन ग्रंथों में इस विषय की जो अनुश्रुतियां मिलती हैं, उसी पर संतोष करना पड़ता है। पर सौभाग्यवश अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर की वाणी जैनागमों में संकलित की गई वह हमें आज उपलब्ध है। यद्यपि वह मूलरूप से पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं है, फिर भी जो कुछ अंश संकलित किया गया है उसमें हमें जैनधर्म और भगवान् महावीर के ज्ञाति और वर्ण के सम्बन्ध में क्या विचार थे और उस जमाने में कुलों और गोत्रों का कितना महत्त्व था, कौन २ से कुल एवं गोत्र प्रसिद्ध थे इन सर्व बातों की जानकारी मिल जाती है। इसलिये सर्व प्रथम इस सम्बन्ध में जो सूचनायें हमें जैनागमों से एवं अन्य प्राचीन जैन ग्रन्थों से मिलती हैं उन्हीं को यहाँ उपस्थित किया जा रहा है।

जैनागमों के अनुशीलन से यह अत्यन्त स्पष्ट है कि जैन संस्कृति में व्यक्ति का महत्त्व उसके जन्मजात कुल, वंश, गोत्र आदि बाह्य बातों से नहीं कूँता जाकर उसके शीलादि गुणों से कूँता गया है। ब्राह्मणज्ञाति का होने पर भी जो क्रोधादि दोषों से युक्त है वह ज्ञाति और विद्या दोनों से हीन यावत्‌पापक्षेत्र माना गया है। 'उत्तराध्ययनसूत्र' के बारहवें अध्ययन की १४ वीं गाथा इसको अत्यन्त स्पष्ट करती है:—

'कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहं च।
ते माहणा जाइविज्जा विहूणा, ताइं च तु खेत्ताइं सुपावयाइं' ॥१४॥

'सूत्रकृतांगसूत्र' में कहा गया है कि ज्ञाति, कुल मनुष्य की आत्मा की रक्षा नहीं कर सकते, सत् ज्ञान और सदाचरण ही रक्षा करता है। अतः ज्ञाति और कुल का अभिमान व्यर्थ है।

'न तस्स जाई व कुलं व ताणं, णण्णत्थ विज्जाचरणं सुचिण्णं
णिक्खम्म से सेवइऽगारिकम्मं, ण से पारए होइ विमोयणाये ॥

'उत्तराध्ययनसूत्र' के पच्चीसवें अध्ययन में बहुत ही स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्राह्मण आदि नाम किसी बाह्य क्रिया पर आश्रित नहीं, अभ्यंतरित गुणों पर आश्रित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सभी अपने कर्त्तव्य कर्मों के द्वारा अभिहित होते हैं।

'न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो। न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥३१॥
समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो। नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२॥
कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ। वईसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३॥

---

१. महाभारत में 'उत्तराध्ययन' के समकक्ष ही विचार मिलते हैं। शांतिपर्व, वनपर्व, अनुशासनपर्व आदि में ब्राह्मण किन २ कार्यों से होता है और किन कार्यों को करने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है उसकी अच्छी व्याख्या मिलती है। यहाँ उसके दो चार श्लोक ही दिये जाते हैं:—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा। दृश्यन्ते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥
शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः। सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्विजातिषु लक्षणम् ॥
न क्रुध्येत न प्रहृष्येत मानितोऽमानितश्च यः। सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मोहर्यर्थमेव च। अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
निरामिषमनारंभं निर्नमस्कारमस्तुतिम्। निर्मुक्तं बंधनैः सर्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
ऐभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा। शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्य ब्राह्मणतां व्रजेत् ॥
ऐते कर्मफलैर्देवी न्यूनजाति कुलोद्भवः। शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥

जैनधर्म में ज्ञाति विशेष का कोई महत्त्व नहीं, उसके कार्य एवं तपविशेष का महत्त्व है। इसको स्पष्ट करते हुये 'उत्तराध्ययनसूत्र' के १२ वें अध्ययन की ३७ वीं गाथा में कहा गया है :—

'सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो न दीसई जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं, जस्सेरिसा इडि महाणुभागा ॥३७॥

उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञातिवादसम्बन्धी जैन विचारधारा का भलीभांति परिचय मिल जाता है।

जैनदर्शन का 'कर्मवाद-सिद्धान्त' बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। ईश्वर-कर्तृत्व का विरोधी होने से जैनदर्शन प्राणीमात्र में रही हुई विभिन्नता का कारण उनके किये हुये शुभाशुभ कर्मों को ही मानता है। कर्म-सिद्धान्त के सम्बन्ध में जितना विशाल जैन साहित्य है, संसार भर के किसी भी दार्शनिक साहित्य में वैसा नहीं मिलेगा।

जैनदर्शन में कर्मों का वर्गीकरण आठ नामों से किया गया है। कर्म तो असंख्य हैं और उनके फल भी अनन्त हैं। पर साधारण मनुष्य इतनी सूक्ष्मता में जा नहीं सकता, अतः कर्मसिद्धान्त को बुद्धिगम्य बनाने के लिये उसके स्थूल आठ भेद कर दिये गये हैं, जिनमें गोत्रकर्म सातवां है। इसके दो भेद उच्च और नीच माने गये हैं और उनमें से उन दोनों के आवान्तर आठ-आठ भेद हैं। यहां गोत्र की उच्चता नीचता का सम्बन्ध ज्ञाति, कुल, बल, तप, ऐश्वर्य, श्रुत, लाभ और रूप इन आठों से सम्बन्धित कहा गया है। अर्थात्—इन आठों बातों में जो उत्तम है वह उच्च गोत्र का और अधम है वह नीच गोत्र का होता है। पर गोत्र के उच्चारण का अभिमान करने वाला अभिमान करने का फल भविष्य में नीच गोत्र पाता बतलाया गया है। इसलिये ज्ञाति, कुल और गोत्र का मद जैनधर्म में सर्वथा त्याज्य बतलाया गया है। कहा गया है ऐसी कोई ज्ञाति, योनि और कुल नहीं जिसमें इस जीव ने जन्म धारण नहीं किया हो। उच्च और नीच गोत्र में प्रत्येक जीव अनेक बार जन्मा है। इसलिये इनमें आशक्ति और अभिमान करना अयोग्य है एवं उच्च और नीच गोत्र की प्राप्ति से रुष्ट और तुष्ट भी नहीं होना चाहिए।

इतिहाससम्बन्धी जैनविचारधारा की कुछ झांकी देने के पश्चात् अब जैनागमों में ज्ञाति, कुल और गोत्रों के सम्बन्ध में जो कुछ उल्लेख मेरे अवलोकन में आये हैं, उन्हें यहां दे दिये जा रहे हैं। साथ ही इन शब्दों के सम्बन्ध में भी स्पष्टीकरण कर दिया जा रहा है।

किसी भी व्यक्ति की पहिचान उसके ज्ञाति, कुल, गोत्र एवं नाम के द्वारा की जाती है। 'ज्ञाति' शब्द का उद्गम 'जन्म' से है और उसका सम्बन्ध मातृ-पक्ष से माना गया है। जन्म से सम्बन्धित होने के कारण यह शब्द

---

१. *महाभारत में भी कहा है :—*

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रादप्यधमोऽभवत्॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं ही विद्याद्वैश्यान्त्यजस्तथैव च॥

इस सम्बन्ध में ब्राह्मणग्रंथों के अन्य मंतव्यों को जानने के लिये 'भारतवर्ष में ज्ञाति-भेद' नामक ग्रंथ के पृ० १४, २५, ३६, ५२ आदि देखने चाहिए। यह ग्रंथ बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है। आचार्य क्षितिमोहनसेन ने इसको लिखा है। 'अभिनव भारतीय ग्रंथमाला' नं० १७१६०. हरिसन रोड, कलकत्ता से प्राप्य है।

'आचारांगसूत्र' के द्वितीय अध्ययन के तृतीय उद्देशक का सूत्र १, २, ३.

३. *जननः ज्ञातिः जायन्ते जन्तवो अस्यामिति ज्ञातिः (अभिधान-राजेन्द्रकोष)*

४. *ज्ञातिर्गुणवान् मातृकत्वं (स्थानांगसूत्रवृत्ति)। मातृसमुत्था ज्ञातिरिति (सूत्रकृतांग)*

अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होता है। ज्ञाति के बाद कुल और उसके बाद गोत्र और तदनन्तर नाम का स्थान है। ज्ञाति समुच्चयवादी है। कुल, गोत्र एवं नाम उसके क्रमशः छोटे-छोटे भेद-प्रभेद हैं। ज्ञाति का पश्चात्वर्त्ती शब्द 'कुल' है और उसको पितृ-पक्ष[५] से सम्बन्धित बतलाया गया है। मूलतः मानव सभी एक हैं[६], इसलिये समुच्चय की दृष्टि से उसे मनुष्यज्ञाति कहा जाता है। कुल की उत्पत्ति जैनागमों के अनुसार सर्वप्रथम प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव से हुई। 'वसुदेव-हिन्डी' नामक प्राचीन जैन कथाग्रंथ में भगवान् ऋषभदेव का चरित्र वर्णित करते हुए कहा गया है कि जब ऋषभकुमार एक वर्ष के हुये तो इन्द्र वामन का रूप धारण कर ईक्षुओं का भार लेकर नाभि कुलकर के पास आये। ऋषभकुमार ने ईक्षुदण्ड को लेने के लिये अपना दाहिना हाथ लम्बा किया। उससे इन्द्र ने उनकी इच्छा ईक्षु के खाने की जान कर उनके वंश का नाम 'ईक्ष्वाकु' रक्खा। फिर ऋषभदेव ने राज्यप्राप्ति के समय अपने आत्मरक्षकों का कुल 'उग्र'; भोग-प्रेमी व्यक्तियों का कुल 'भोग', समवयस्क मित्रों का कुल 'राजन्य' और आज्ञाकारी सेवकों का कुल 'नाग' इस प्रकार चार कुलों की स्थापना की।

जैनागम 'स्थानाङ्ग' के छट्ठे स्थान में छः प्रकार के कुलों को आर्य बतलाया है। उग्र, भोग, राजन्य, ईक्ष्वाकु, ज्ञात और कौरव यथा:—

'छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पन्नत्ता तंजहा=उग्गा, भोगा, राइन्ना, इक्खागा, नाया, कोरवा' (सूत्र ३५) इसी सूत्र में छःहीं प्रकार की ज्ञाति आर्य बतलायी गयी है। अम्बष्ठ, कलिन्द, विदेह, विदेहगा, हरिता, चंचुणा ये छः इभ्य ज्ञातियां हैं:—

'छव्विहा जाइ अरिया मणुस्सा पन्नत्ता तंजहा=अम्बट्ठा, कलिन्दा, विदेहा, वेदिहगाइया, हरिया, चंचुणा मेदछव्विया इब्म जाइओ' (सूत्र ३४)

'वसुदेवहिन्डी' में समुद्रविजय और उग्रसेन के पूर्वजों की परम्परा बतलाते हुये 'हरिवंश' की उत्पत्ति का प्रसंग संक्षेप से दिया है। उसके अनुसार हरिवर्षक्षेत्र से युगलिक हरि और हरणी को उनके शत्रु वीरक नामक देव ने चम्पानगरी के ईक्ष्वाकुकुलीन राजा चन्द्रकीर्त्ति के पुत्रहीन अवस्था में मरजाने पर उनके उत्तराधिकारी रूप में स्थापित किया। उस हरि राजा की संतान 'हरिवंशी' कहलायी।

'कल्पसूत्र' में चौवीस तीर्थङ्करों के कुलों का उल्लेख करते हुये इक्कीस तीर्थङ्कर ईक्ष्वाकुकुल में और काश्यपगोत्र में उत्पन्न हुये। दो तीर्थङ्कर हरिवंशकुल में और गौतमगोत्र में उत्पन्न हुये। तदनन्तर भगवान् महावीर स्वामी नाय (ज्ञात) कुल में उत्पन्न हुये। उनका गोत्र अवतरण के समय उनके पिता ऋषभदत्त ब्राह्मण का कोडालस-गोत्र और उनकी माता देवानन्दा का जालंधरगोत्र बतलाया है। तदनन्तर गर्भापहरण के प्रसंग में इन्द्र ने कहा है कि अरिहंत, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव उग्र, भोग, राजन्य, ईक्ष्वाकु, क्षत्रिय, हरिवंश इन कुलों में हुआ करते हैं; क्योंकि ये विशुद्ध ज्ञाति, कुल, वंश माने गये हैं। वे अंतकुल, पंतकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिक्षुककुल,

५. पैतृके पक्षे नि० कुलंपेयं माइया जाई (उत्तराध्ययन) गुणवत् पितृकत्वे (स्थानांगवृत्ति)

६. महाभारत में लिखा है:—

> एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद्युधिष्ठिर:। कर्मक्रियाविशेषेण चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्॥
> सर्वे वै योनिजा मर्त्या सर्वे मूत्रपुरीषिण:। एकेन्द्रियेन्द्रियार्थाश्च तस्माच्छीलगुणो द्विज:॥

क्षत्रियकुल और ब्राह्मणकुलों में उत्पन्न नहीं होते। फिर इन्द्र के आदेश से हरिणगमेशी देव गर्भरूप महावीर को काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ और सिद्धार्थ की पत्नी वाशिष्ट गोत्र की त्रिशला की कुक्षी में संक्रमण करता है।

यहां तीर्थङ्करों के कुल के नामों के साथ उनके गोत्र का भी उल्लेख मिलता है। इससे उस समय 'गोत्र' भी बहुत महत्त्व का स्थान पा गया था स्पष्ट है। प्रभावशाली व्यक्तिविशेष की संतान का गोत्र उसके पूर्वज के नाम से प्रसिद्ध होता है७। जैसे वशिष्ठ ऋषि की संतान को वाशिष्ठ गोत्र की संज्ञा मिली। 'स्थानाङ्ग' सूत्र के अनुसार मूल गोत्र सात थे। काश्यप, गौतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मण्डप और वाशिष्ठ। फिर क्रमशः एक-एक गोत्र में अनेक विशिष्ट व्यक्ति हुये; जिनकी संतति का गोत्र उनके नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'स्थानाङ्ग' में उपर्युक्त सात गोत्रों में से प्रत्येक के सात २ भेद बतलाये गये हैं। मूलपाठ इस प्रकार है:—

'सत्त मूल गोत्ता पन्नत्ता तंजहा:—कासवा, गोयमा, वत्था, कोत्था, कोसिया, मंडवा, वसिट्ठा।'

'जे कासवा ते सत्त विहा पन्नत्ता तंजहा:—ते कासवा, ते सण्डेला, ते गोल्ला, ते वाला, ते मुंजतिणो, ते पव्वपेच्छतिणो, ते वरिसकण्हा।

जे गोयमा ते सत्त विहा पन्नता तंजहा:—ते गोयमा, ते गग्गा, ते भारद्दा, ते अङ्गिरसा, ते सक्कराभा, ते भक्खराभा, ते उदग्गत्ताभा।

जे वत्था ते सत्त विहा पन्नत्ता तंजहा:—ते वत्था, ते अग्गेया, ते मित्तिया, ते सामिलिणो, ते सेलयया, ते अट्ठिसेणा, ते वीयकण्हा।

जे कुत्था ते सत्त विहा पन्नत्ता तंजहा:—ते कुत्था, ते मुग्गलायणा, ते पिंगलायणा, ते कोडीणा, ते मण्डलिणो, ते हारिया, ते सोमया।

जे कोसिया ते सत्त विहा पन्नत्ता तंजहा:—ते कोसिया, ते कच्चायणा, ते सालंकायणा, ते गोलीकायणा, ते पक्खिकायणा, अग्गिच्चा, ते लोहिच्चा।

जे मण्डवा ते सत्त विहा पन्नत्ता तंजहा:—ते मण्डवा, ते अरिट्ठा, ते समुत्ता, ते तेला, ते एलावच्चा, ते कंडिल्ला, ते क्खायणा।

जे वासिट्ठा ते सत्त विहा पन्नत्ता तंजहा:—ते वासिट्ठा, ते उंजायणा, ते जारुकण्हा, ते वग्घावच्चा, ते कोडिन्ना, ते सण्णि, ते पारासरा अर्थात् मूल गोत्र सात हैं। काश्यप, गोतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मण्डप और वाशिष्ठ।

काश्यप के सात भेद हैं:—काश्यप, साण्डिल्य, गोल, वाल, मुन्ज, पर्वत, वरिसकृष्ण।

गौतम गोत्र के सात भेद हैं:—गौतम, गर्ग, भारद्वाज, अंगीरस, सरकराभ, भाष्कराभ, उदन्नाभ।

वत्स गोत्र के सात भेद हैं:—वत्स, आंगीय, मित्तिय, सामलिण, सेलवय, अस्थिसेन, वायुकृष्ण।

कुत्स के सात भेद हैं:—कुत्स, मोदगलायन, पिंगतण, कोडिन्न, मण्डलिक, हारित, सोमक।

कौशिक के सात भेद हैं:—कौशिक, कात्यायन, सालंकायन, गोलिकायन, परिकंकायन, अगत्या, लोहित्य।

मण्डप गोत्र के सात भेद हैं:—मण्डप, आरिष्ठ, संमुत, भेला, ऐलापत्य, कंतेल, खामण।

वाशिष्ठ गोत्र के सात भेद हैं:—वाशिष्ठ, उंजायन, जारुकृष्ण, व्याघ्रापत्या, कोडिन्य, सत्ति, पारासर।

७. *गोत्राणि तथा विधो कैक पुरुष प्रभवा मनुष्यसंताना उत्तर गोत्रा पेक्षया भूलभूतानि आदि भूतानि गोत्राणि मूलगोत्राणि। गोतमस्यापत्यानि गौतमाः वत्सस्यापत्यानि वत्साः वशिष्ठस्यापत्यानि वाशिष्ठाः (स्थानाङ्गटीका*

इन में से कुछ तो बहुत प्रसिद्ध रहे हैं और उनका उल्लेख 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली और 'जम्बूदीपपन्नत्ति' में मिल जाता है; पर कुछ गोत्रों का उल्लेख नहीं मिलता। अतः वे कम ही प्रसिद्ध रहे प्रतीत होते हैं। जैनेतर ग्रंथों में भी इन गोत्रों और उनसे निसृत शाखा और प्रवरों संबंधी साहित्य विशाल है। महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में भी गोत्रों के नाम मिलते हैं। अतः ऊपर दी हुई सूची में जो नाम अस्पष्ट हैं, उनके शुद्ध नाम का निर्णय जैनेतर साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से हो सकता है।

'कल्पसूत्र' में चौवीस तीर्थङ्करों के कुल के साथ जो गोत्रों के नाम दिये हैं। उनसे एक महत्त्वपूर्ण वैदिक प्रवाद का समर्थन होता है। तीर्थंकर सभी क्षत्रियवंश में हुए; पर उनके गोत्र ब्राह्मण ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध जो ब्राह्मणों के थे, वे ही इन क्षत्रियों के भी थे। इससे राजाओं के मान्य गुरुओं और ऋषियों के नाम से उनका भी गोत्र वही प्रसिद्ध हुआ ज्ञात होता है।

जैसा कि पहिले कहा गया है भारतवर्ष में प्राचीन काल से गोत्रों का बड़ा भारी महत्त्व चला आता है। जैनागमों से भी इस की भलीभांति पुष्टि हो जाती है। 'जम्बूदीपपन्नत्तिसूत्र' से इन गोत्रों के महत्त्व का एक महत्त्वपूर्ण निर्देश मिल जाता है। वहाँ अठाईस नक्षत्रों के भी भिन्न-भिन्न गोत्र बतलाये हैं। जैसेः—

नक्षत्र—नाम	गोत्र—नाम	नक्षत्र—नाम	गोत्र—नाम
१ अभिजित्	मोद्गल्यायन	१५ पुष्यका	अवमज्जायन
२ श्रवण	सांख्यायन	१६ अश्लेखा	माण्डव्यायन
३ धनिष्ठा	अग्रभाव	१७ मघा	पिंगायन
४ शतभिषक्	कण्णिलायन	१८ पूर्व फाल्गुनी	गोवल्लायन
५ पूर्वभद्रपद	जातुकरण	१९ उत्तरा फाल्गुनी	काश्यप
६ उत्तराभद्रपद	धनंजय	२० हस्त	कौशिक
७ रेवती	पुष्पायन	२१ चित्रा	दार्भायन
८ अश्विनी	आश्वायन	२२ स्वाति	चामरच्छायन
९ भरणी	भार्गवेश	२३ विशाखा	भृङ्गायन
१० कृत्तिका	अग्निवेश	२४ अनुराधा	गोवल्यायन
११ रोहिणी	गौतम	२५ ज्येष्ठा	चिकत्सायन
१२ मृगशिर	भारद्वाज	२६ मूला	कात्यायन
१३ आर्द्रा	लौहित्यायन	२७ पूर्वाषाढ़ा	वाभ्रव्यायन
१४ पुनर्वसु	वशिष्ठ	२८ उत्तराषाढ़ा	व्याघ्रापत्य

(नक्षत्राधिकार)

उपर्युक्त सूची में कुछ गोत्रों के नाम तो वे ही हैं, जो 'स्थानाङ्गसूत्र' के साथ में अध्ययन में आये हैं और कुछ नाम ऐसे भी हैं, जो वहाँ दी गई ४९ गोत्रों की नामावली में नहीं आये हैं। इससे गोत्रों की विपुलता का पता चलता है।

गोत्रों का महत्त्व उस काल में अधिक था यह जैनसूत्रों के अन्य उल्लेखों से भी अत्यन्त स्पष्ट है। 'आवश्यक-निर्युक्ति' की ३८१ गाथा में लिखा है कि चौबीस तीर्थंकरों में से मुनीसुव्रत और अरिष्टनेमि गौतमगोत्र के थे और अन्य सब काश्यपगोत्र के थे। बारह चक्रवर्त्ती सभी काश्यपगोत्र के थे। वासुदेव और बलदेवों में आठ गौतम-गोत्र के थे, केवल लक्ष्मण और राम काश्यपगोत्र के थे।

वीरनिर्वाण के ६८० वर्ष में जैनागम लिपिबद्ध हुये। उस समय तक के युगप्रधान आचार्यों एवं स्थविरों के नामों के साथ भी गोत्रों का उल्लेख किया जाना तत्कालीन गोत्रों के महत्त्व को और भी स्पष्ट करता है। छट्ठी शताब्दी तक तो इन प्राचीन गोत्रों का ही व्यवहार होता रहा यह 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली से भलीभांति सिद्ध हो जाता है। स्थविरावली में पाये जाने वाले गोत्रों के नाम और उन गोत्रों में होने वाले आचार्यों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

गोत्रों के नाम	आचार्यों के नाम
१ गौतम	इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति अकंप, स्थूलीभद्र, आर्यदिन्न, वज्र, फाल्गुमित्र, नाग, कालाक, सम्पिल, भद्र, वृद्ध, संगपालि आदि
२ भारद्वाज	व्यक्त और भद्रयश
३ अग्निवैश्यायन	सौधर्म
४ वाशिष्ठ	मण्डित, आर्य सुहस्ति, धनगिरि, जेहिल, गोदास.
५ काश्यप	मौर्यपुत्र, जम्बू, सोमदत्त, रोहण, ऋषिगुप्त, विद्याधर गोपाल, आर्य-भद्र, आर्यनक्षत्र, रक्ष, हस्ति, सिंह, धर्म, देवर्धि, नन्दिनीपिता,
६ हरितायन	अचलभ्राता, कौडिन्य, मेतार्य और प्रभाप.
७ कात्यायन	प्रभव.
८ वत्स	सय्यंभव, आर्यरथ.
९ तुंगियायन	यशोभद्र.
१० माढ़र	संभूतिविजय, आर्यशांति, विष्णु, देशीगणि
११ प्राचीन	भद्रबाहु.
१२ ऐलापत्य	आर्य महागिरि.
१३ व्याघ्रापत्य	सुस्थित, सुप्रतिबद्ध.
१४ कुत्स	शिवभूति.
१५ कौशिक	आर्य इन्द्रदिन्न, सिंहगिरि और रोहगुप्त
१६ कोडाल	कामर्धि
१७ उत्कौशिक	वज्रसेन
१८ सुव्रत या श्रावक	आर्यधर्म
१९ हरित	श्रीगुप्त
२० स्वाति	सार्यं सामज्जम् (नंदिसूत्र)
२१ सांडिल्य	आर्य जीतधर (नंदि-स्थविरावली गा० २६).

वर्त्तमान जैन श्वे० ज्ञातियाँ और उनकी स्थापना

यहां यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि छट्ठी शताब्दी के प्रारम्भ तक वर्त्तमान जैन ज्ञातियों और उनके गोत्रों में से किसी एक का भी नाम नहीं है। यदि उस समय तक वर्तमान जैनज्ञातियों की स्थापना स्वतंत्र रूप से हो चुकी होती तो उनमें से किसी भी ज्ञाति के गोत्रवाला तो जैन मुनिव्रत अवश्य स्वीकार करता और उस प्रसंग से उपर्युक्त स्थविरावली में उसके नाम के साथ वर्त्तमान जैन ज्ञातियों में से किसी का उल्लेख तो अवश्य रहता। इसलिये वर्तमान जैन ज्ञातियों की स्थापना छट्ठी शताब्दी

के बाद ही हुई है यह सुनिश्चित है। जैसा की आगे अन्य प्रमाण व विचारों को उपस्थित करते हुये मैं बतलाऊंगा कि वर्त्तमान श्वेताम्बर जैन ज्ञातियों में श्रीमाल, पौरवाड़, ओसवाल ये तीन प्रधान हैं। इनके वंशस्थापना का समय आठवीं शताब्दी का होना चाहिए।

मेरे उपर्युक्त मन्तव्य की कतिपय आधारभूत बातें इस प्रकार हैं:—

मुनिजिनविजयजीसंपादित एवं सिंघी-जैनग्रंथमाला से प्रकाशित 'जैनपुस्तक-प्रशस्तिसंग्रह' की नं० ३५ की संवत् १३६५ की लिखित 'कल्पसूत्र-कालिकाचार्यकथा' की प्रशस्ति में निम्नोक्त श्लोक आता है:—

'श्रीमालवंशोऽस्ति............विशालकीर्त्तिः श्री शांतिसूरि प्रतिबोधितडीडकाख्यः।
श्री विक्रमाद्वेदनभर्महर्षि वत्सरे श्री आदिचैत्यकारापित नवहरे च (!) ॥१॥

अर्थात् श्रीमालवंश के श्रावक डीडाने जिसने कि शांतिसूरि द्वारा जैनधर्म का प्रतिबोध पाया था, संवत् ७०४ में नवहर में आदिनाथचैत्य बनाया।

'जैन साहित्य-संशोधक' एवं 'जैनाचार्य आत्माराम—शताब्दी-स्मारकग्रंथ' में श्रीमालज्ञाति की एक प्राचीन वंशावली प्रकाशित हुई है। उपरोक्त वंशावलियों में यह सब से प्राचीन है। इसके प्रारम्भ में ही लिखा है:—

'अथ भारद्वाजगोत्रे संवत् ७९५ वर्षे प्रतिबोधित श्रीश्रीमालज्ञातीय श्री शांतिनाथ गोष्ठिकः श्रीभिन्नमाल-नगरे भारद्वायगोत्रे श्रेष्ठि तोड़ा तेनो वास पूर्वलि पोली, भट्टनें पाड़ी कोड़ी पांचनो व्यवहारियो तेहनी गोत्रजा अम्बाई..........।

उपर्युक्त दोनों प्रमाणों से आठवीं शताब्दी में जिन श्रावकों को जैनधर्म में प्रतिबोधित किया गया था, उनका उल्लेख है। जहाँ तक जैनसाहित्य का मैंने अनुशीलन किया है भिन्नमाल में जैनाचार्यों के पधारने एवं जैन-धर्म-प्रचार करने का सबसे प्रथम प्रामाणिक उल्लेख 'कुवलयमाला' की प्रशस्ति में मिलता है।

'तस्स वि सिस्सो पयडो महाकई देवउत्तणामो त्ति।'
...............सिवचन्द गणी य मयहरा त्ति (!) ॥२॥

अर्थात् महाकवि देवगुप्त के शिष्य शिवचन्द्रगणि जिनवन्दन के हेतु श्रीमालनगर में आकर स्थित हुये। प्रशस्ति की पूर्व गाथाओं के अनुसार यह पंजाब की ओर से इधर पधारे होंगे। उनके शिष्य यक्षदत्तगणि हुये, जिनके लब्धिसम्पन्न अनेक शिष्य हुये। जिन्होंने जैनमन्दिरों से गूर्जरदेश को (श्रीमालप्रदेश भी उस समय गुजरात की संज्ञा प्राप्त था) सुशोभित किया। 'कुवलयमाला' की रचना संवत् ८३५ में जालोर में हुई है। उसके अनुसार शिवचन्द्रगणि का समय संवत् ७०० के लगभग का पड़ता है। इससे पूर्व श्रीमालनगर को जैनों की दृष्टि से प्रभास, प्रयाग और केदारक्षेत्र की भांति कुतीर्थ बतलाया गया है। 'निषिद्धचूर्णी' में इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसलिये इससे पूर्व यहां वैदिक धर्मवालों का ही प्राबल्य होना चाहिए। यदि जैनधर्म का प्रचार भी उस समय वहां होता तो श्रीमालनगर को कुतीर्थ बतलाना वहां संभव नहीं था।

वर्त्तमान श्वेताम्बर जैन ज्ञातियों में से श्रीमाल, पौरवाड़ और ओसवाल तीनों का उत्पत्तिस्थान राजस्थान है और उसमें भी श्रीमालनगर इन तीनों ज्ञातियों की उत्पत्ति का केन्द्रस्थान है। सब से पहिले श्रीमालनगर में जिन्हें

जैनधर्म का प्रतिबोध दिया गया वे श्रावक दूसरे स्थान वाले श्रावकों द्वारा 'श्रीमालज्ञातिवाले' के रूप में प्रसिद्ध हुये। नौवीं शताब्दी में गुजरात के पाटण का साम्राज्य स्थापित हुआ। उसके स्थापक वनराज चावड़ा के गुरु जैनाचार्य शीलगुणसूरि थे। वनराज चावड़ा के राज्यस्थापना और अभिवृद्धि का श्रेय श्रीमद् शीलगुणसूरि को ही है। जैनों का प्रभाव इसलिये प्रारंभ से ही पाटण के राज्यशासन में रहा। नौवीं शताब्दी से ही श्रीमाल और पौरवाड़ के कई खानदान उस ओर जाने प्रारंभ होते हैं। इसमें कई वंश शासन की बागडोर को संभालने में अपनी निपुणता दिखाते हैं और व्यापारादि करके समृद्धि प्राप्त करते हैं।

हां तो श्रीमाल, पौरवाड़ और ओसवालों में सब से पहिले श्रीमाल श्रीमालनगर के नाम से प्रसिद्ध हुये। उस नगर के पूर्व दरवाजे के पास बसने वाले जब जैनधर्म का प्रतिबोध पाये तो प्राग्वाट या पौरवालज्ञाति प्रसिद्ध हुई और श्रीमालनगर के एक राजकुमार ने अपने पिता से रुष्ट हो कर उएसनगर बसाया और ऊहड़ नाम का व्यापारी भी राजकुमार के साथ गया था। उस नगरी में रत्नप्रभसूरिजी ने पधार कर जैनधर्म का प्रचार किया। उनके प्रतिबोधित श्रावक उस नगर के नाम से 'उएसवंशी-उपकेशवंशी-ओसवंशी' कहलाये।

पौरवालों एवं ओसवालों की कुछ प्राचीन वंशावलियां मैंने सिरोही के कुलगुरुजी के पास देखी थीं। उन सभी में मुझे जिस गोत्र की वे वंशावलियां थीं, उन गोत्रों की स्थापना व जैनधर्म प्रतिबोध पाने का समय ७२३, ७५०-६० ऐसे ही संवतों का मिला। इससे भी वर्त्तमान जैनज्ञातियों की स्थापना का समय आठवीं शताब्दी होने की पुष्टि मिलती है। पंडित हीरालाल हंसराज के 'जैन गोत्र-संग्रह' में लिखा है कि संवत् ७२३ मार्गशिर शु० १० गुरुवार को विजयवंत राजा ने जैनधर्म स्वीकार किया, संवत् ७९५ में बासठ सेठों को जैन बनाकर श्रीमाली जैन बनाये, संवत् ७९५ के फाल्गुण शु० २ को आठ श्रेष्ठियों को प्रतिबोध दे कर पौरवाड़ बनाये। यद्यपि ये उल्लेख घटना के बहुत पीछे के हैं, फिर भी आठवीं शताब्दी में श्रीमाल और पौरवाड़ बने इस अनुश्रुति के समर्थक हैं।

अभी मुझे स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई के संग्रह से उपकेशगच्छ की एक शाखा 'द्विवंदनीक' के आचार्यों के इतिवृत्तसंबंधी 'पांच-पाट-रास' कवि उदयरत्नरचित मिला है। उसमें 'द्विवंदनीकगच्छ' का संबंध लब्धिरत्न से पूछने पर जो पाया गया, वह इन शब्दों में उद्धृत किया गया है।

'सीधपुरीइं पोहता स्वामी, वीरजी अंतरजामी, गोतम आदे गहूगाट, बीच मांहे वही गया पाट।
त्रेवीस ऊपरे आठ, बाधी धरमनो वाट, श्री रहवी (रत्न) प्रभु सूरिश्वर राजे, आचारज पद छाजे॥
श्री रत्नप्रभसूरिराय केशीना केड़वाय, सात से संका ने समय रे श्रीमालनगर सनूर।
श्री श्रीमाली थापिया रे, महालच्मी हजूर, नउ हजा घर नातीनां रे श्री रत्नप्रभुसूरि॥
थिर महूरत करी थापना रे, उल्लट धरी ने उर, बड़ा चत्री ते भला रे, नहीं कारड़ियो कोय।
पहेलु तीलक श्रीमाल ने रे, सिगली नाते होय, महालच्मी कुलदेवता रे, श्रीमाली संस्थान॥
श्री श्रीमाली नातीनां रे, जानें विसवा वीस, पूरब दिस थाप्यां ते रे पौरवाड़ कहवाय।
ते राजाना ते समय रे, लघु बंधव इक जाय, उवेसवासी रहयो रे, तिणे उवेसापुर होय॥
ओसवाल तिहां थापिया रे, सवा लाख घर जोय, पोरवाड़कुल अंबिका रे, ओसवालां सचीया व।

उपर्युक्त उद्धरण से सात सौ शेके में रत्नप्रभसूरि श्रीमालनगर में आये। उन्होंने श्रीमालज्ञाति की स्थापना की। पूर्व दिशा की ओर स्थापित पौरवाड़ कहलाये। राजा के लघु बांधव ने उएसापुर बसाया। वहां से

ओसवंश की स्थापना हुई। श्रीमालवंश की कुलदेवी महालक्ष्मी, पौरवाड़ों की अंबिका और ओसवालों की सचिया देवी मानी गई।

ऊपर जिस प्राचीन वंशावली का उद्धरण दिया है, उसमें श्रेष्ठि टोड़ा का निवासस्थान पूर्वली पोली और गोत्रजा अंबाई लिखा है, इससे वे पौरवाड़ प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त सभी उद्धरणों में एक ही स्वर गुंजायमान है, जो आठवीं शताब्दी में वर्त्तमान जैनज्ञातियों की स्थापना को पुष्ट करते हैं।

राजपुत्रों की आधुनिक ज्ञातियां और वैश्यों की अन्य ज्ञातियों के नामकरण का समय भी विद्वानों की राय में आठवीं शती के लगभग का ही है। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् श्री चिंतामणि विनायक वैद्य ने अपने 'मध्ययुगीन भारत' में लिखा है, 'विक्रम की आठवीं शताब्दी तक ब्राह्मण और क्षत्रियों के समान वैश्यों की सारे भारत में एक ही ज्ञाति थी।'

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार क्षत्रियों की ज्ञातियों के संबन्ध में अपने 'अग्रवालज्ञाति के प्राचीन इतिहास' के पृ० २२८ पर लिखते हैं, 'भारतीय इतिहास में आठवीं सदी एक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन की सदी है। इस काल में भारत की राजनैतिक शक्ति प्रधानतया उन ज्ञातियों के हाथ में चली गई, जिन्हें आजकल राजपुत्र कहा जाता है। भारत के पुराने व राजनैतिक शक्तियों का इस समय प्रायः लोप हो गया। पुराने मौर्य, पांचाल, अंधकवृष्णि, क्षत्रिय भोज आदि राजकुलों का नाम अब सर्वथा लुप्त हो गया और उनके स्थान पर चौहान, राठौर, परमार आदि नये राजकुलों की शक्ति प्रकट हुई।'

स्वर्गीय पूर्णचन्द्रजी नाहर ने भी ओसवालवंश की स्थापना के सम्बन्ध में लिखा है कि, 'वीरनिर्वाण के ७० वर्ष में ओसवाल-समाज की सृष्टि की किंवदन्ती असंभव-सी प्रतीत होती हैं।' 'जैसलमेर-जैन-लेख-संग्रह' की भूमिका के पृ० २५ में 'संवत् पांच सौ के पश्चात् और एक हजार से पूर्व किसी समय उपकेश (ओसवाल) ज्ञाति की उत्पत्ति हुई होगी' ऐसा अपना मत प्रकट किया है।

ग्यारहवीं शताब्दी के पहिले का प्रामाणिक उल्लेख एक भी ऐसा नहीं मिला, जिसमें कहीं भी श्रीमाल, प्राग्वाट और उपकेशवंश का नाम मिलता हो। बारहवीं, तेरहवीं शताब्दियों की प्रशस्तियों में इन वंशों के जिन व्यक्तियों के नामों से वंशावलियों का प्रारम्भ किया है, उनके समय की पहुँच भी नवमीं शताब्दी के पूर्व नहीं पहुँचती। इसी प्रकार तेरहवीं शताब्दी के उल्लेखों में केवल वंशों का ही उल्लेख है, उनके गोत्रों का नाम-निर्देश नहीं मिलता। तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी के उल्लेखों में भी गोत्रों का निर्देश अत्यल्प है। अतः इन शताब्दियों तक गोत्रों का नामकरण और प्रसिद्धि भी बहुत ही कम प्रसिद्ध हुई प्रतीत होती है। इस समस्या पर विचार करने पर भी इन ज्ञातियों की स्थापना आठवीं शताब्दी के पहिले की नहीं मानी जा सकती।

इन ज्ञातियों की स्थापना वीरात् ८४ आदि में होने का प्रामाणिक उल्लेख सबसे पहिले संवत् १३१३ में रचित 'उपकेशगच्छप्रबन्ध' और नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबंध' में मिलता है। स्थापनासमय से ये ग्रंथ बहुत पीछे के बने हैं, अतः इनके बतलाये हुये समय की प्रामाणिकता जहां तक अन्य प्राचीन साधन उपलब्ध नहीं हों, मान्य नहीं की जा सकती। कुलगुरु और भाटलोग कहीं-कहीं २२२ का संवत् बतलाते हैं। पर वह भी मूल वस्तु को भूल जाने

पर एक गोलमगोल बात कह देने भर ही है। यदि इन ज्ञातियों की उत्पत्ति का समय इतना प्राचीन होता तो सैंकड़ों वर्षों में इनके गोत्र और शाखा भी बहुत हो गई होतीं और उनका उल्लेख तेरहवीं शताब्दी तक के ग्रंथादि में नहीं मिलने से वह समय किसी तरह मान्य नहीं हो सकता।

जहां तक ओसवालज्ञाति का सम्बन्ध है, उसके स्थापक उपकेशगच्छ, उएसनगर का भी जैनसाहित्य में ग्यारहवीं शताब्दी के पहिले का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। इसी तरह श्रीमाल और पौरवाड़ों का भी प्राचीन साहित्य में उल्लेख नहीं आता।

मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने ओसवालज्ञाति की स्थापनासंबंधी जितने प्राचीन प्रमाण बतलाये थे, उन सब की भलीभांति परीक्षा करके मैंने अपना 'ओसवालज्ञाति की स्थापनासंबंधी प्राचीन प्रमाणों की परीक्षा' शीर्षक लेख 'तरुण-ओसवाल' के जून-जुलाई सन् १६४१ के अंक में प्रकाशित किया था। जिसको बारह वर्ष हो जाने पर भी कोई उत्तर मुनि ज्ञानसुन्दरजी की ओर से नहीं मिला। इससे उन प्रमाणों का खोखलापन पाठक स्वयं विचारलें।

वैश्यों की ज्ञातियों की संख्या चौरासी बतलाई जाती है। पन्द्रहवीं शताब्दी से पहिले के किसी ग्रन्थ में मुझ को उनकी नामावाली देखने को नहीं मिली। जो नामावलियां पन्द्रहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी की मिली हैं, उनके नामों में पारस्परिक बहुत अधिक गड़बड़ है। पांच चौरासी ज्ञातियों की नामों की सूची से हमने जब एक अकारादि सूची बनाई तो उनमें आये हुये नामों की सूची १६० के लगभग पहुँच गई। इनमें से कई नाम तो अशुद्ध हैं और कई का उल्लेख कहीं भी देखने में नहीं आता और कई विचित्र-से हैं। अतः इनमें से छाँट कर जो ठीक लगे उनकी सूची दे रहा हूं।

वैश्यों की चौरासी ज्ञातियाँ

१ अगरवाल	१६ करहीया	३१ खटवड़	४६ गोलावाल
२ अच्छतिवाल	१७ कलसिया	३२ खड़ाइता	४७ गोलाउड़
३ अजयमेरा	१८ कपेला	३३ खंथड़वाल	४८ घांव
४ अठसखा	१६ कण्डोलिया	३४ खंडेरवाल	४६ चापेल
५ अड़लिजा	२० कंबोजा	३५ गजउड़ा	५० चिड़करा
६ अवधपुरिया	२१ काकड़वाल	३६ गदहीया	५१ चीतोड़ा
७ अष्टवर्गी	२२ काथोरा	३७ गयवरा	५२ चीलोड़ा
८ अस्थिकी	२३ कामगोत	३८ गूजराती	५३ चउसखा
६ अहिछत्रवाल	२४ कायस्थ	३६ गूर्जरपौरवाड़	५४ छवत्राल
१० आणंदुरा	२५ काला	४० गोखरुआ	५५ छापरिया
११ उकवाल	२६ कुंकन	४१ गोड़िणा	५६ छःसखा
१२ कथकटिया	२७ कुण्डलपुरी	४२ गोमित्री	५७ जालहा
१३ कठिणुरा	२८ कुंवड़	४३ गोरीवाड़	५८ जांगड़ा
१४ कपोल	२६ कोरड़वाल	४४ गोलसिंगारा	५६ जाइलवाल
१५ करणूसिया	३० कोरंटवाल	४५ गोलापूर्व	६० जाम्बू

६१ जालेरा	८७ पवई	११३ मांडलिया	१३९ श्रीमाल
६२ जेहराणा	८८ पंचमवंश	११४ मायर	१४० श्रीश्रीमाल
६३ जैनसंगवाल	८९ पुष्करवाल	११५ मारगय	१४१ सचाणा
६४ जैसवाल	९० पूर्वा	११६ मुँडेरा	१४२ सरसईया
६५ टीहू	९१ पेरूआ	११७ मुहवरिया	१४३ सहला
६६ डीसावाल	९२ पोरवाड़	११८ मेड़तवाल	१४४ सहसरड़ा
६७ तिलोरा	९३ पोहकरवाल	११९ मेवाड़ा	१४५ सहिलवाल
६८ तैलटा	९४ बघेरवाल	१२० मोढ़	१४६ साचुरा
६९ दसोरा	९५ बबणुरा	१२१ राजउरा	१४७ साभुरा
७० दहवड़	९६ बसाड़ू	१२२ रायकड़ा	१४८ साएडेरा
७१ दाहिथ	९७ बाचर	१२३ रायतवाल	१४९ सीदरा
७२ दोसखा	९८ वाल्मिकी	१२४ रोतकी	१५० सीरोहिया
७३ दोहिल	९९ बीधू	१२५ लाड़ीसखा	१५१ सीहउरा
७४ धाकड़	१०० बुदोतिया	१२६ लाड़ू	१५२ सुहड़वाल
७५ धावड़ा	१०१ ब्रह्माणी	१२७ लाडूआश्रीमाली	१५३ सुहवचाल
७६ धूमड़ा	१०२ भटनागर	१२८ लूँवेचा	१५४ सुराणा
७७ नरसिंहउरा	१०३ भटेवरा	१२९ लोहाणा	१५५ सेतरिया
७८ नागद्रहा	१०४ भड़िया	१३० लाँगा	१५६ सोनी
७९ नागर	१०५ भाटिया	१३१ वलहीया	१५७ सोरठिया
८० नागोरा	१०६ भुंगडिया	१३२ वागड़ू	१५८ सोरड़वाल
८१ नाणावाल	१०७ भूमा	१३३ वायड़ा	१५९ हरसुरा
८२ नाईल	१०८ महालिया	१३४ वांगलीय	१६० हालर
८३ निगमा	१०९ महाहटा	१३५ वैसुरा	१६१ हुम्बड़
८४ नीमानी	११० मंडोवरा	१३६ वोवड़ा	
८५ पद्मावतीपोरवाल	१११ मड़केसरा	१३७ श्रवणपगा	
८६ पल्लीवाल	११२ माथुर	१३८ श्रीगोड़	

इन चौरासी ज्ञातियों के नामों पर दृष्टिपात करने पर इनका नामकरण स्थानों के नाम से हुआ सिद्ध होता है।

'विमलप्रबंध आदि में वैश्यों की साढ़ी बारह नात की गाथा इस प्रकार है :—

श्री श्रीमाला, उएसा, पल्लीनमिण तहां मेडचे, विश्वेरा, डिंडूया, खण्डूया, तद नराणउरा।
हरिमउरा, जाईल्ला, पुष्कर तद डिडियड़ा, खडिएल्लवाल अद्धयं बारस जाइ अहिया ते॥

इनमें खण्डेलवालों को आधी ज्ञाति मानने का कारण स्पष्ट नहीं है। यदि इनमें आधे जैन और आधे जैनेतर दो भेद मान कर चलें तो भी विश्वेरा, खण्डूया आदि ज्ञातियों का जैन होने का कोई प्रमाण नहीं।

चौरासी जैन ज्ञातियों के संबंध में सौभाग्यनंदिसूरि का संवत् १५७८ में रचित 'विमल-चरित्र' बहुत-सी महत्त्वपूर्ण सूचनायें देता है। परन्तु उसकी प्रेसकापी मैंने मुनि जिनविजयजी से मंगवा कर देखी तो वह बहुत अशुद्ध होने से कुछ बातें अस्पष्ट सी प्रतीत हुई। इसलिये उनकी चर्चा यहां नहीं करता हूँ।

उक्त ग्रंथ में दसा-वीसा-भेद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी वर्त्तमान मान्यता से भिन्न ही प्रकार का वर्णन मिलता है। इसके अनुसार यह भेद प्राचीन समय से है। किसी बारहवर्षी दुष्काल के समय में अन्नादि नहीं मिलने से कुछ लोगों का खान-पान एवं व्यवहार दूषित हो गया। सुकाल होने पर भी वे कुछ बुरी बातों को छोड़ न सके, इसीलिये ज्ञाति में उनका स्थान नीचा माना गया और तब से दस विस्वा और बीस विस्वा के आधार से लघुशाखा वृहद्शाखा प्रसिद्ध हुई।

साढ़ी बारह न्यात और दसा-बीसा-भेद

वास्तव में विशेष कारणवश कभी किसी व्यक्ति या समाज में कोई समाजविरुद्ध व अनाचार का दोष आ गया हो उसका दण्ड जैनधर्म के अनुसार शुद्ध धर्माचरण के द्वारा मिल ही जाता है। कल का महान् पापी महान् धर्मात्मा बन सकता है। जैनधर्म कभी भी धर्माचरण के पश्चात् उसको अलग रखने या उसकी संतति को नीचा देखने का समर्थन नहीं करता। इसलिये अब तो इन दसा-बीसा-भेदों की समाप्ति हो ही जानी चाहिए। बहुत समय उनकी संतति ने दण्ड भोग लिया। वास्तव में उनका कोई दोष नहीं। समान धर्मी होने के नाते वे हमारे समान ही धर्म के अधिकारी होने के साथ सामाजिक सुविधाओं के भी अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज भी तो पहिले जैसा कि माना जाता है क्षत्रिय आदि विविध ज्ञातियों के थे और उनमें मांस, मदिरादि खान-पान की अशुद्धि थी ही। पर जब हम जैनधर्म के झण्डे के नीचे आ गये तो हमारी पहिले की सारी बातें एवं अनाचार भुलाये जाकर हम सब एक ही हो गये। इसी तरह उदार भावना से हमें अपने तुच्छ भेदों को विसार कर उन्हें स्वधर्मी वात्सल्य का नाता और सामाजिक अधिकार पूर्णरूप से देकर प्रामाणित करना चाहिए। जैनाचार्यों ने नमस्कारमंत्र के मात्र धारक को स्वधर्मी की संज्ञा देते हुये उनके साथ समान व्यवहार करने का उपदेश दिया है। अपने पूर्वाचार्यों के उन उपदेशों को श्रवण कर जैनधर्म के आदर्श को अपनाना ही हम सबका कर्त्तव्य है।

जैनधर्म में ज्ञातिवादसम्बन्धी क्या विचारधारा थी, किस प्रकार क्रमशः इन ज्ञातियों का तांता बढ़ता चला गया इन सब बातों की चर्चा ऊपर हो चुकी है। उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूलतः 'ज्ञाति' शब्द जन्म से सम्बन्धित था। एक प्रकार के व्यक्तियों के समूहविशेष का सूचक था। उससे होते २ यह शब्द बहुत सीमित अर्थ में व्यवहृत होने लगा, जिससे हम आज ज्ञातियों की संज्ञा देते हैं, वे वास्तव में कुल या वंश कहे जाने चाहिए। भारतवर्ष में ज्ञातियों के भेद और उच्चता नीचता का बहुत अधिक प्रचार हुआ। इससे हमारी संघ-शक्ति क्षीण हो गई। आपसी मत-भेद उग्र बने और उन्हीं के संघर्ष में हमारी शक्ति बरबाद हुई। आज हमें अपने पूर्व अतीत को फिर से याद कर हम सब की एक ही ज्ञाति है इस मूल भावना की ओर पुनरागमन करना होगा। कम से कम ज्ञातिगत उच्चता नीचता स्पर्शास्पर्श की भेदभावना, घृणाभावना और द्वेषवृत्ति का उन्मूलन तो करना ही पड़ेगा।

ज्ञातिवाद का कुप्रभाव और जैनेत्तर ग्रंथों में ज्ञातिवाद

ज्ञातियों और उनके गोत्रों सम्बन्धी जैनेतर साहित्य बहुत विशाल है। जैनसाहित्य में इसके सम्बन्ध में प्राचीन साहित्य है ही नहीं। इसके कारणों पर विचार करने पर मुझको एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक अंतर का पता चला।

वह यह है कि वैदिकधर्म में चारों वर्णों की स्थापना के पश्चात् उनके धार्मिक और सामाजिक अधिकार, आजीविका के धंधे आदि भिन्न २ निश्चित कर दिये गये, इसलिये उनके सामने बार २ यह प्रश्न आने लगा कि यह वर्णव्यवस्था की शुद्धता कैसे टिकी रहे। इसलिये उन्होंने रक्तशुद्धि को महत्त्व दिया और उच्चता नीचता और स्पर्शास्पर्श के विचार प्रबल रूप से रूढ़ हो गये। प्रत्येक व्यक्ति को अपने गोत्र आदि का पूरा स्मरण व विचार रहे; इसीलिये गोत्र शाखाप्रवर आदि की उत्पत्ति, उनके पारस्परिक संबंध आदि के संबंध में बहुत से ग्रंथों में विचार किया गया जब कि जैनधर्म इस मान्यता का विरोधी था। उसमें किसी भी ज्ञाति अथवा वर्ण का हो, उसके धार्मिक अधिकारों में कोई भी अन्तर नहीं माना गया। सामाजिक नियमों में यद्यपि जैनाचार्यों ने विशेष हस्तक्षेप नहीं किया, फिर भी जैनसंस्कृति की छाप तो सामाजिक नियमों पर भी पड़नी अवश्यंभावी थी। आठवीं शताब्दी के लगभग जब जैनाचार्यों ने एक नये क्षेत्र में जैनधर्म को पल्लवित और पुष्पित किया तो नवीन प्रतिबोधित ज्ञातियों का संगठन आवश्यक हो गया। उन्होंने इच्छा से श्रीमाल, पौरवाल और ओसवाल इन भेदों की सृष्टि नहीं की। ये भेद तो मनुष्य के संकुचित 'अहं' के सूचक हैं। इनका नामकरण तो निवासस्थान के पीछे हुआ है। जैनाचार्यों ने तो इन सब में एकता का शंख फूंकने के लिये स्वधर्मी वात्सल्य को ही अपना संदेश बनाया। उन्होंने अपने अनुयायी समस्त जैनों को स्वधर्मी होने के नाते एक ही संगठन में रहने का उपदेश दिया। भेदभाव को उन्होंने कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। यह तो मनुष्यों की खुद की कमजोरी थी कि जैनधर्म के उस महान् आदर्श एवं पावन सिद्धान्त को वे अपने जीवन में भलीभांति पनपा नहीं सके।

पर जब आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्यवर्त्ती जैन इतिहास को टटोलते हैं तो हमें जैनाचार्यों के आचारों में शिथिलता जोरों से बढ़ने लगी का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उसका मूल कारण उनका जैन चैत्यों में निवास करना था। इसी से यह काल 'चैत्यवास का प्राबल्य' के नाम से जैन इतिहास व साहित्य में प्रसिद्ध हुआ मिलता है। जब जैन मुनि निरन्तर विहार के महावीर-मार्ग से कुछ दूर हट कर एक ही चैत्य में अपना ममत्व स्थापित कर रहने लगे या लम्बे समय तक एक स्थान पर रहने से ममत्व बढ़ता चला गया; यद्यपि उनका चैत्यावास पहिलेपहिल सकारण ही होगा, मेरी मान्यता के अनुसार जब इन नवीन ज्ञातियों का संगठन हुआ तो इनको जैनधर्म में विशेष स्थिर करने के लिये जैन चैत्यों का निर्माण प्रचुरता से करवाया जाने लगा और निरंतर धार्मिक उपदेश देकर जैन आदर्शों से ओत-प्रोत करने के लिये मुनिगणों ने भी अपने विहार की मर्यादा को शिथिल करके एक स्थान पर—उन चैत्यों में अधिक काल तक रहना आवश्यक समझा होगा। परन्तु मनुष्य की यह कमजोरी है कि एक बार नीचे खिसे या फिर वह ऊँचे उठने की ओर अग्रसर नहीं होकर निम्नगामी ही बना चला जाता है। एक दोष से अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है। छोटे-से छिद्र से सुराख बढ़ता चला जाता है। चैत्यावास का परिणाम भी यही हुआ। अपने उपदेश से निर्माण करवाये गये मन्दिरों की व्यवस्था भी उन जैन मुनियों को संभालनी पड़ी। उन चैत्यों में अधिक आय हो, इसलिए देवद्रव्य का माहात्म्य बढ़ा। द्रव्य अधिक संग्रह होने से उसके व्यवस्थापक जैनाचार्यों की विलासिता भी बढ़ी। क्रमशः शिष्य और अनुयायियों का लोभ भी बढ़ा। अपने अनुयायी किसी दूसरे आचार्य के पास नहीं चले जावें, इसलिए बाड़ाबंदी भी प्रारंभ हुई। 'तुम तो हमारे अमुक पूर्वज के प्रतिबोधित हो; इसलिए तुम्हारे ऊपर हमारा अधिकार है, तुम्हें इसी चैत्य अथवा गच्छ को मानना चाहिए' इत्यादि बातों ने श्रावकों के दिलों में एक दीवार खड़ी करदी। अपने २ गच्छ, आचार्य

एवं चैत्यों का ममत्व सभी को प्रभावित कर विशाल जैन संघ की उदार भावना को एक संकुचित वाड़ाबंदी में सीमित कर बैठा । संक्षिप्त में जैनधर्म के आदर्शों से च्युत होने की यही कथा है । हम में एक समय किसी कारणवश कोई खराबी आगई तो उससे चिपटा नहीं रहना है । उसका संशोधन कर पुनः मूल आदर्श को अपनाना है। हमारे आचार्यों ने यही किया । आठवीं शताब्दी के महान् आचार्य हरिभद्रसूरि ने चैत्यवासी की बड़ी भर्त्सना की। ग्यारहवीं शताब्दी में खरतरगच्छ के आचार्य जिनेश्वरसूरि ने तो पाटण में आकर चैत्यवासियों से बड़ी जोरों से टक्कर ली । इनसे लोहा लेकर उन्होंने उनके सुदृढ़ गढ़ को शिथिल और श्रीहीन बना दिया । चैत्यवास के खण्डहर जो थोड़े बहुत रह सके, उन्हें जिनवल्लभसूरि और जिनपतिसूरि ने एक बार तो ढ़ाहसा दिया । 'गणधरसार्धशतकबृहद्वृत्ति' और 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' में इसका वर्णन बड़े विस्तार से पाया जाता है । 'संघपट्टकवृत्ति' आदि ग्रंथ भी तत्कालीन विकारों एवं संघर्ष की भलीभांति सूचना देते हैं ।

हां तो मैं जिस विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता था वह है स्वधर्मी वात्सल्य इसका विशद् निरूपण आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के ग्रंथों में मिलता है और हमारी भेद-भावना को छिन्न-भिन्न कर देने में यह स्वधर्मी वात्सल्य एक अमोघ शास्त्र है । जो जैनधर्म की पावन छाया के नीचे आगया वह चाहे किसी भी ज्ञाति का हो, किसी भी वंश का हो, उसके पूर्वज या उसने स्वयं इतः पूर्व जो भी बुरे-से बुरे काम किये हो, जैन होने के बाद वह पावन हो गया, श्रावक हो गया, जैनी हो गया, श्रमणोपाशक हो गया और उससे पूर्व सैकड़ों वर्षों से जैन धर्म को धारण करने वाले श्रावकों का स्वधर्मी बंधु हो गया । अब तो गले से गले मिल गये, एक दूसरे के सुख-दुख के भागी बन गये, परस्पर में धर्म के प्रेरक बन गये, धर्म से गिरते हुए भाई को उठा कर उसे पुनः धर्म में प्रतिष्ठित करने वाले बन गये—वहां भेद-भाव कैसा ?

इस आदर्श के अनुयायियों के लिये अंतरज्ञातीय विवाह का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए । वास्तव में जैनधर्म में अन्तरज्ञाति कोई वस्तु है ही नहीं । जैनधर्म में तो कोई ज्ञाति है ही नहीं । है तो एक जैनज्ञाति । सब के धार्मिक और सामाजिक अधिकार समान हैं । ज्ञातियों के लेबल तो तीन कारणों से होते हैं । पहला कारण है प्रतिष्ठित वंशज के नाम से उसकी संतति का प्रसिद्ध होना, दूसरा आजीविका के लिये जिस धंधे को अपनाया जाय उस कार्य से प्रसिद्धि पाना जैसे किसीने भण्डार या कोठार का कार्य किया तो वे भंडारी या कोठारी हो गये, किसी ने तीर्थयात्रार्थ संघनिकाला तो वे संघवी होगये, याने किसी कार्यविशेष से उस कार्यविशेष की सूचक जो संज्ञा होती है वह आगे चल कर ज्ञाति व गोत्र बन जाते हैं । तीसरा स्थानों के नाम से । जिस स्थान पर हम निवास करते हैं, उस स्थान से बाहर जाने पर हमें कोई पूछता है कि आप कहां के हैं, कहां से आये तो हम उत्तर देते हैं कि अमुक नगर अथवा ग्राम से आये हैं और उसी नगर, ग्राम के नामों से हमारी प्रसिद्धि हो जाती है । जैसे कोई रामपुर से आये तो रामपुरिया, फलोदी से आने वाले फलोदिया । अतः हमें इन भेदों पर अधिक बल नहीं देना चाहिए ।

जो बातें मूलरूप से हमारी अच्छाई और भलाई के लिये थीं, हमारे उन्नत होने के लिये थीं वे ही हमारे लिये घातक सिद्ध हो गई । आज तो हमारे में खराबी यहाँ तक घुस गई है कि हमारा वैवाहिक संबंध जहां तक हमारे ग्राम और नगर में हो दूसरे ग्राम में करने को हम तैयार नहीं होते । दूसरे प्रान्त वाले तो मानों हमारे से बहुत ही भिन्न हैं । साधारण खान-पान और वेष—भूषा और रीति-रिवाजों के अंतर ने हमारे दिलों में ऐसा भेद

जमा लिया है कि एक ही ज्ञाति के लोग दूसरे प्रान्त वालों के साथ वैवाहिक संबंध करने में सकुचाते हैं। खैर, उन में तो असुविधायें भी आगे आती हैं, पर एक ही ग्राम में बसने वाले ओसवाल, पौरवाल और श्रीमालों में तो खान-पान, वेष-भूषा और रीति-रिवाजों में कोई अन्तर नहीं होता तो फिर वैवाहिक संबंध में अड़चन क्यों। वास्तव में तो ऐसा संबंध बहुत ही सुविधाजनक होता है। अपनी ज्ञाति के लड़कों में मान लीजिये वय, शिक्षा, संपत्ति, घर-घराना आदि की दृष्टि से चुनने में असुविधा हो, चूँकि बहुत थोड़े सीमित घरों में से चुनाव करने पर मनचाहा योग्य वर मिलना कठिन होता है जब कि जरा विस्तृत दायरे में योग्य वर मिलने की सुविधा अधिक रहती है। इसलिये इन भेदभावों का अंत तो हो ही जाना चाहिए। भूमिका आवश्यकता से अधिक लम्बी होगई, अतः मैं अब अन्य बातों का लोभ संवरण कर उपसंहार कर देता हूँ।

प्रस्तुत इतिहास के लेखक श्री लोढ़ाजी की दृष्टि ऐतिहासिक तथ्यों को प्राप्त कर प्रकाश में लाने की अधिक रही है। वास्तव में यही इतिहासकार का कर्त्तव्य होता है। अंधकार तो सर्वत्र व्याप्त है ही। उसमें से प्रकाश की चिन्गारी जहां भी, जो भी, जितनी भी मिल जाय, उससे लाभ उठा लेना ही विवेकी मनुष्य का कर्त्तव्य है। वैज्ञानिक दृष्टि सत्य की जिज्ञासा से संबंधित रहती है। वह ढेर कचरे में से सार पदार्थ को ग्रहण कर अथवा ढूँढ कर स्वीकार करता है। जैन ज्ञातियों का इतिहास-निर्माण करना भी बड़ा बीहड़ मार्ग है। स्थान-स्थान पर भयंकर जंगल लगे हुये हैं, इससे सत्य एवं प्रकाश की झांकी मंद हो गई होती है। उसमें से तथ्य को पाना बड़ा श्रमसाध्य और समयसाध्य होता है। अभी तक ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी और अन्य ज्ञातियों के जो इतिहास के बड़े २ पोथे प्रकाशित हुये हैं, उनमें अधिकांश के लेखक इन मध्यवर्त्ती जंगलों के कारण भटक गये-से लगते हैं। कुछ एक ने तथ्य को पाने का प्रयत्न किया है, पर साधनों की कमी, अप्रामाणिक प्रवादों और किंवदन्तियों का बाहुल्य उनको मार्ग प्रशस्त करने में कठिनाई उपस्थित कर देता है। लोढ़ाजी को भी वे सब असुविधायें और कठिनाइयें हुई हैं; पर उन्होंने उनमें नहीं उलझ कर कुछ सुलझे हुये मार्ग को अपनाया है यही उल्लेखनीय बात है।

साधनों की कमी एवं अस्त-व्यस्तता के कारण इस इतिहास में भी कुछ बातें ठीक-सी सुलझ नहीं सकी हैं। इसलिये निर्भ्रान्त तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी यह प्रयत्न अवश्य ही सत्योन्मुखी होने से सराहनीय है।

अभी सामग्री बहुत अधिक बिखरी पड़ी है। उन्हें जितनी प्राप्त हो सकी, एकत्रीकरण करने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया, पर मार्ग अभी बहुत दूर है, इसलिये हमें इस इतिहास को प्रकाशित करके ही संतोष मान कर विराम ले लेना उचित नहीं होगा। हमारी शोध निरन्तर चालू रहनी चाहिए और जब भी, जहां कहीं भी जो बात नवीन एवं तथ्यपूर्ण मिले उसको संग्रहित करके प्रकाश में लाने का प्रयत्न निरंतर चालू रखना आवश्यक है।

अन्त में अपनी स्थिति का भी कुछ स्पष्टीकरण कर दूं। यद्यपि गत पचीस वर्षों से मैं निरन्तर जैन-साहित्य और इतिहास की शोध एवं अध्ययन में लगा रहा हूं और जैनज्ञातियों के इतिहास की समस्या पर भी यथाशक्य विचारणा, अन्वेषणा और अध्ययन चालू रहा है। फिर भी संतोषजनक प्राचीन सामग्री उपलब्ध नहीं होने से जैसी चाहिए वैसी सफलता अभी प्राप्त नहीं हो सकी। इसलिये विशेष कहने का अधिकारी मैं अपने आपको अभी अनुभव नहीं करता।

गत वर्ष मेरे यहां श्रीयुत् लोढ़ाजी पधारे और इस इतिहास की भूमिका लिख देने का अनुरोध किया। मैंने अपनी अनधिकार और अयोग्यता का अनुभव होते हुये भी उनके प्रेमपूर्ण आग्रह को इसलिये स्वीकार किया कि इसी निमित्त से अपने अब तक के अध्ययन का परिणाम जैन विचार-धारा और अपने विचार प्रकाश में लाने का कुछ सुयोग मिलेगा ही। मुझको संतोष है कि मैं अपने उन विचारों को मूर्त्तरूप देने को इस भूमिका के द्वारा समर्थ हुआ हूं।

मैं प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति के इस सद्प्रयत्न की प्रशंसा करता हुआ उनकी सफलता की बधाई देता हूँ। उन्होंने जिस धीरज और द्रव्य के सदुव्यय द्वारा इस कार्य को सुचारु रूप से संपन्न होने में दक्षता बतलाई है वह अवश्य ही अनुकरणीय है। इतिहास का कार्य कोई झटपट और खड़ेदम करना चाहे तो वह इतिहास बनेगा नहीं, किंवदन्तियों और ढकोसलों का एक संग्रहमात्र हो जावेगा। इसलिये पद-पद पर जिसके लिए साधन अपेक्षित हों, प्रमाण के बिना एक अक्षर भी लिखना कठिन हो उस इतिहास के साधनों को जुटाने, उनको सिलसिलेवार सजाने और उनमें से तथ्य को समझाने में समय लगता ही है। उतावल और अधैर्य का यह कार्य नहीं है। समिति के संचालकों ने इस कार्य की गुरुता को समझ कर उसे सफल बनाने में जो सहयोग दिया है यह बहुत ही सराहनीय है।

श्रीयुत् लोढ़ाजी के प्रेमपूर्ण आग्रह से मुझे यह भूमिका लिखने का सुयोग प्राप्त हुआ, इसलिये मैं उनको भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। उनकी काव्य-प्रतिभा के साथ सत्य की जिज्ञासा और इतिहास की रुचि दिनोंदिन बढ़ती रहे यही मेरी मंगल कामना है।

नाहटों की गवाड़
अभय जैन ग्रन्थालय
बीकानेर
आश्विन कृष्णा ५ सं० २०१०

—अगरचन्द नाहटा



लेखकः श्री दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी. ए.

प्रस्तावना

भारतवर्ष का सर्वांगीण इतिहास और उस पर ज्ञातियों का इतिहास एवं जैन इतिहास के प्रति उदासीनता बनी रहने पर प्रभाव

साहित्य में धर्मग्रन्थ और इतिवृत्त ये दो पक्ष होते हैं। धर्मग्रन्थों में आगम, निगम, श्रुति, संहिता, स्मृति आदि ग्रन्थों की और इतिवृत्त में काव्य, कथा, पुराण, चरित्र, नाटक, कहानी, इतिहास आदि पुस्तकों की गणना मानी जाती है। भारत निवृत्तिमार्गप्रधान देश विश्रुत रहा है, अतः यहाँ धर्मग्रन्थों का सृजन ही प्रमुखतः हुआ है और काव्य, कथा, पुराण, चरित्र, नाटक, कहानी, इतिहास भी धर्मवीर, धर्मात्मा, धर्मध्वज, धर्म पर चलने वाले अवतार, तीर्थंकर, संत, योगी, ऋषि, मुनियों के ही लिखे गये हैं। भारत में जब से मुसलमानों के आक्रमण होने प्रारम्भ होने लगे, तब से यवन-आक्रमणकारियों से लोहा लेनेवाले राजपुत्र राजाओं के वर्णन लिखने की प्रथा प्रचलित हुई। इस प्रथा का आदिप्रवर्तक भाट चंद वरदाई है, जिसने सर्व प्रथम दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की ख्याति अमर करने के लिए 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। हम 'पृथ्वीराज रासो' को काव्य तो कहते हैं, साथ में उसको इतिहास का सर्वप्रथम ग्रन्थ भी कह सकते हैं।

भारत के सर्वांगीण इतिहास में कठिनाइयाँ

साहित्य के धर्मग्रन्थपक्ष के विषय में यहाँ कुछ नहीं कहना है। इतिवृत्तपक्ष भी धर्म और धर्मात्मापुरुषों से ही वैसे पूर्णरूपेण प्रभावित है। ऐसे निवृत्तिमार्ग प्रधान भारत के वाङ्मय में फिर सर्वसाधारण वर्ग, ज्ञाति, कुल-संबंधी वर्णनों का पूरा २ मिलना तो दूर यत् किंचित् भी मिल जाना आश्चर्य की वस्तु ही समझनी चाहिए।

विक्रम की आठवीं शताब्दी में जैन कुलगुरुओं ने अपने २ श्रावकों के कुलों का वर्णन लिखने की प्रथा को प्रचलित किया था। मेरे अनुमान से चारणों ने एवं भट्टकवियों ने राजपुत्र कुलों एवं अन्य ज्ञातियों के कुल, वंशों के वर्णनों के लिखने की परिपाटी भी इसी समय के आस-पास प्रारंभ की होगी। इससे पहिले विशिष्ट पुरुषों, राजवंशों के ही वर्णन लिखने की प्रथा रही है।

इतिवृत्तग्रंथों में इतिहास का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। काव्य, कथा, नाटक, चरित्र, कहानीपुस्तकों में कोई एक अधिनायक के पीछे कथावस्तु होती है; परन्तु इतिहास एक देश, एक राज्य, एक प्रान्त, एक ज्ञाति, एक कुल, एक वर्ग, एक दल, एक युग अथवा समय विशेष का होता है। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय से राजपुत्र राजाओं

के शौर्य, वीरता, निडरता ने भारत के लेखकों को प्रभावित किया और वे उनकी कीर्त्ति में काव्य, कथा, रास, रासो, नाटक, चंपू लिखने लगे। राजाओं ने अपनी राजसभा में बड़े २ विद्वानों, कवियों एवं लेखकों को आश्रय दिया और उनसे अपनी कीर्त्ति में अनेक प्रशंसाग्रन्थ लिखवाये और उन्होंने स्वतः भी लिखे। भारत में मुसलमानी राज्य लगभग सात सौ वर्षों से भी ऊपर जमा रहा। इस काल में कई राजा हुये, कई राज्य बने और नष्ट हुये; कई प्राचीन राजकुल नष्ट हुये और कई नवीन राजकुल उद्भूत हुये। ऐसी असंबद्ध एवं क्रमभंग स्थिति में बहुत ही कम राज्य और राजकुल यवनशासन के सम्पूर्ण समय भर में अपनी अक्षुण्ण स्थिति बनाये रखने में समर्थ हो सके। उदयपुर (मेदपाटप्रदेश) के महाराणाओं का ही एक राजवंश ऐसा है, जिसका राज्य उदयपुर (मेदपाटप्रदेश) पर पूरे एक सहस्र वर्षों से अर्थात् बापा रावल से लगा कर आज तक अनेक विषम परिस्थितियों, कष्टों, विपत्तियों का सामना करके भी अपने कुलधर्म की रक्षा करता हुआ अपना राज्य आज तक विद्यमान रख सका है। जो राजवंश जब तक प्रभावक रहा, उसके यशस्वी पुरुषों, राजाओं का वर्णन लिखा जाता रहा और जब वह उखड़ा, उसके भावी पुरुषों का वर्णन ग्रन्थबद्ध नहीं हो सका और उस राजवंश के वर्णन की शृंखला भंग हो गई। नवीन राजवंश ने प्राचीन राजवंश द्वारा संग्रहीत एवं लिखवाये हुवे साहित्य को भी नष्ट करने में अपनी तृप्ति मानी। यवन-शासकों ने जहाँ भी अपना राज्य जमाया, वहां पहिले जिस राजवंश का राज्य था उसकी कीर्त्ति को अमर रखने वाली वस्तुओं का सर्वप्रथम नाश किया, उसे राज्य के मंदिरों को तोड़ा, उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित किया, साहित्य-भंडारों में अग्नि लगाई, ग्रंथों को सरोवरों में प्रक्षिप्त करवाये। यवन-शासकों के इन अमानुषिक कुकृत्यों से भारत की कला को और भारत के साहित्य को अत्यधिक हानि पहुँची है; जिसकी कल्पना करके भी हमारा हृदय भर आता है। फिर भी हमारे पूर्वजों ने दुर्गम स्थानों में साहित्यभण्डारों को पहुँचा करके बहुत कुछ साहित्य की रक्षा की है। जैसलमेर का जगविश्रुत जैन ज्ञान भण्डार आज भी अपनी विशालता एवं अपने प्राचीन ग्रंथों के कारण देश, विदेश के विद्वानों को आकर्षित कर रहा है। यवनों ने भारत का साहित्य बहुत ही नष्ट किया; परन्तु फिर भी जो कुछ प्राप्त है अगर वह भी निश्चित शैली से शोधा जाय तो विश्वास है कि भारत का क्रमबद्ध इतिहास बहुत अधिक सफलता के साथ लिखा जा सकता है। आज भी अगणित ताम्रपत्र, शिलालेख, प्रतिमालेख, प्रशस्तिग्रंथ, पट्टावलियां, ख्यातें और काव्य, नाटक, कहानियां, चंपू प्राप्य हैं; जिनमें कई एक राजवंशों का, श्रीमंतपुरुषों का, दानवीर, धर्मात्माजनों का एवं कुलों का वर्णन प्राप्त हो सकता है और अतिरिक्त इसके भिन्न २ समय के रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, कला-कौशल, व्यापार आदि के विषय में बहुत कुछ परिचय मिल सकता है।

हमारे लिए यह बहुत ही लज्जा एवं दुःख की बात है कि भारत का क्रमबद्ध अथवा यथासंभवित इतिहास लिखने का भाव भी पहिले पहिल पाश्चात्य विद्वानों के मस्तिष्कों में उत्पन्न हुआ और उन्होंने परिश्रम करके भारत का इतिहास जैसा उनसे बन सका उन्होंने लिखा। आज जितने भी भारत में इतिहास लिखे हुये मिलते हैं, वे या तो पाश्चात्य विद्वानों के लिखे हुये हैं या फिर उनकी शोध का लाभ उठाकर लिखे गये हैं अथवा अनुवादित हैं। पाश्चात्य विद्वान् संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं और भारत का अधिकांश साहित्य प्राकृत और संस्कृत में उल्लिखित है और अवशिष्ट प्रान्तीय भाषाओं में। कोई भी विदेशी विद्वान् जो किसी अन्य देश की प्रचलित एवं प्राचीन भाषाओं में अनिष्णात रह कर उस देश का इतिहास लिखने में कितना सफल हो

सकता है, सहज समझ में आ सकता है—इस दोष के कारण पाश्चात्य विद्वानों ने भारत का इतिहास लिखने में बड़ी २ त्रुटियां की हैं। उन्होंने जो मिला, जैसा उसका अर्थ, आशय समझा उसके आधार पर अपना मत स्थिर करके लिख दिया और वह कुछ का कुछ लिखा गया। फिर भी हम इतना उनका आभार मानेंगे कि भारत में क्रमबद्ध इतिहास लिखने की प्रेरणा एवं भावना पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ही हमारे मस्तिष्कों में उत्पन्न हुई।

उपर्युक्त कथन से यह नहीं अर्थ निकाला जा सकता कि भारत में इतिहास-विषय से अवगति थी ही नहीं। 'महाभारत' भी तो एक इतिहास का ही रूप है। परन्तु तत्पश्चात् ऐसे ग्रन्थ क्रमशः नहीं लिखे गये। अगर लिखे गये होते तो आज भारत के इतिहास में जो क्रमभंगता दृष्टिगत होती है, वह नहीं होती और पूर्वजों का क्रमबद्ध इतिहास सहज लिखा जा सकता। सम्राट् अशोक का इतिहासज्ञ सदा आभार मानेंगे कि जिसने सर्व प्रथम शिला-लेख लिखवाने की प्रथा को जन्म दिया। यह प्रथा आगे जाकर इतनी व्यापक, प्रिय और सहज हुई कि राजवंशों ने, प्रतिष्ठित कुलों ने, श्रीमंतों ने शिलापट्टों में अपनी प्रशस्तियां उत्कीर्णित करवाईं, प्रतिमाओं पर अपने परिचययुक्त लेख खुदवाये, जो आज भी सहस्रों की संख्या में प्राप्त हैं। यवनशत्रु जितना साहित्य को नष्ट कर सके, उतना शिला-लेखों को नहीं, कारण कि वे प्रतिमाओं के मस्तिष्क भाग को ही तोड़ कर रह जाते थे और शिला-लेख तो प्रतिमाओं के नीचे अथवा आशनपट्टों पर एवं पृष्ठ भागों पर उत्कीर्णित होते हैं, फलतः वे यवनों के क्रूरकरों द्वारा नष्ट एवं भंग होने से अधिकांशतः और प्रायः बच गये। आक्रमण के समय हमारे पूर्वज भी प्रतिमाओं को गुप्तस्थलों में, भूगृहों में स्थानान्तरित कर देते थे और इस प्रकार भी अनेक प्रतिमायें खण्डित होने से बचाली गईं। मंदिरों में जो आज भी गुप्तभंडार, जिनको भूगृह भी कहते हैं बनाये जाते हैं, इनको बनाने की प्रथा प्रमुखतः यवन-आततायियों के आक्रमण के भय के कारण ही संभूत हुई अथवा वृद्धि को प्राप्त हुई प्रतीत होती है। इतिहास के प्रमुख एवं विश्वस्त साधनों में शिला-लेख, ताम्रपत्र ही अधिक मूल्य की वस्तुयें मानी जाती हैं। यह तो हुआ भारतवर्ष के इतिहास और उसकी साधन-सामग्री के विषय में।

ज्ञातीय-इतिहासों के प्रति हमारी उदासीनता और उसका दुष्प्रभाव

अब बड़ी दुःख की बात जो प्रायः मेरे अनुभव में आई है वह यह है कि आज के राष्ट्रीयवादी एवं अपने को भारतमाता का भक्त समझने वाले, ज्ञातिभेद के विरोधी यह धारणा रखते हैं कि अब ज्ञातीय इतिहास लिखना ज्ञातिमत को और सुदृढ़ करना अथवा उसको पुष्ट बनाना है। अच्छे २ इतिहासज्ञ एवं इतिहासकार भी इस धारणा से ग्रस्त हैं। मैं स्वयं भी ज्ञातिमत का पोषक एवं समर्थक नहीं हूँ और फिर जैन इतिहासकार तो ज्ञातिमत का समर्थन ही कैसे करेगा, जबकि जैनमत ज्ञातिभेद का प्रबल शत्रु रहा है और जैनसमाज की संस्थापना ज्ञातिमत के विरोध में ही हुई है। जब मैंने इस प्राग्वाट-इतिहास का लेखन प्रारंभ किया था, तो मेरे अनेक मित्र इस कार्य से अप्रसन्न ही हुये कि तुमने ज्ञातीय भेद को सुदृढ़ करने वाला यह कैसा कार्य उठा लिया। इस कार्य को प्रारम्भ करने के पहिले मैंने भी इस पर बहुत ही विचार किया कि मैं युग की शुभेच्छा के विरुद्ध तो नहीं चलना चाहता हूं, मैं विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपने इस कार्य से कोई हानि तो नहीं पहुँचाऊंगा। अन्त में मैं इस अन्त पर पहुँचा कि कोई भी सबल राष्ट्र अगर अपने राष्ट्र का सर्वाङ्गीय इतिहास बनाना चाहेगा तो उसे इतिहासकार्य को कई एक विभागों में विभक्त करना पड़ेगा और

ऐसा प्रत्येक विभाग उन्हीं पुरुषों के अधिकार में देना पड़ेगा कि उस विभाग में आने वाले विषयों से उनका परम्परित सम्बन्ध रहा होगा। समझिये हम भारतवर्ष का ही सर्वाङ्गीण इतिहास लिखने बैठें। ऐसे सर्वाङ्गीण इतिहास में भारतवर्ष में रही हुई सर्वज्ञातियों को स्थान मिलेगा ही। विषयों की छटनी करने के पश्चात् कुल, ज्ञाति, वंशों के नामोल्लेख करके ही हम भूतकाल में हुए महापुरुषों के वर्णन लिखने के लिये बाधित होंगे। जैसे वीरों के अध्याय में भारतभर के समस्त वीरों को यथायोग्य स्थान मिलेगा ही, फिर भी वह वीर क्षत्रिय था, ब्राह्मण था वैश्य था अथवा अन्य ज्ञाति में उत्पन्न हुआ था—का उल्लेख उसके कुल का परिचय देते समय तो करना ही पड़ेगा। कुल का परिचय देते समय भी वह क्षत्रिय था अथवा अमुक ज्ञातीय—इतना लिख देने मात्र से अर्थ सिद्ध नहीं होता। वह रघुवंशी था अथवा चन्द्रवंशी। फिर वह शीशोदिया कुलोत्पन्न था अथवा चौहान, राठोड़, परमार, तौंमर, सोलंकी इत्यादि। अब सोचिये ज्ञातिभेद के विरोधी इतिहासप्रेमी और इतिहासकार को जब उक्त सब करने के लिये बाध्य होना अनिवार्य्यतः प्रतीत होता है, तब सीधा क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मणज्ञाति का इतिहास लिखने में अथवा किसी पेटाज्ञाति का इतिहास लिखने में जो अपेक्षाकृत सहज और सीधा मार्ग है फिर आनाकानी क्यों। मैं तो इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि प्रत्येक पेटाज्ञाति अथवा ज्ञाति अपना सर्वांगीण एवं सच्चे इतिहास का निर्माण करावे और फिर राष्ट्र के उत्तरदायी महापुरुष ऐसे ज्ञातीय इतिहासों की साधन-सामग्री से अपने राष्ट्र का सर्वांगीण इतिहास लिखवाने का प्रयत्न करे तो मेरी समझ से ये पगडंडियां अधिक सफलतादायी होंगी और राष्ट्र का इतिहास जो लिखा जायगा, उसमें अधिक मात्रा में सर्वांगीणता होगी और ज्ञातिभेद को पोषण देनेवाली अथवा उसका समर्थन करने वाली जैसी कोई वस्तु उसमें नहीं होगी। राष्ट्र के अग्रगण्य नेता जब भी भारतवर्ष का इतिहास लिखवाने का प्रयत्न प्रारम्भ करेंगे, उनको उपरोक्त विधि एवं मार्ग से कार्य करने पर ही अधिक से अधिक सफलता प्राप्त हो सकती है। ऐसा विचार करके ही मैंने यह प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखने का कार्य स्वीकृत किया है कि मेरा यह कार्य भारत के सर्वांगीण इतिहास के लिये साधन-सामग्री का कार्य देगा और इसमें आये हुए महापुरुषों को और अन्य ऐतिहासिक बातों को तो कैसे भी हो सहज में न्याय मिलेगा ही और सर्वांगीण इतिहास लेखकों का कुछ तो श्रम, समय, अर्थव्यय कम होगा ही।

भारतवर्ष के इतिहास में अब तक जैनज्ञाति को न्यायोचित स्थान नहीं मिला

मैं जितना काव्य और कविता का प्रेमी हूँ उतना ही इतिहास का पाठक भी। रूस, चीन, जापान, फ्रांस, इटली, इङ्गलैण्ड आदि आज के समुन्नत देशों के कई प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास पढ़े और उनसे मुझको अनेक भांति २ की प्रेरणायें और भावनायें प्राप्त होती रहीं। प्रमुख भाव जो मुझ को सब से प्राप्त हुआ वह यह है कि हमारे भारत के इतिहास में सर्वसाधारण ज्ञातियों के साथ में न्याय नहीं वर्ता गया। जहाँ पाश्चात्य देशों के इतिहासों में बिना भेद-भाव के इतिहास के पृष्ठों की शोभा बढ़ाने वाले प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु विशेष को स्थान ससंमान प्रदान किया गया है, वहाँ हम आज से १० वर्ष पूर्व लिखा गया भारतवर्ष का कोई भी छोटा-बड़ा इतिहास उठा कर देखें तो उसमें अतिरिक्त क्षत्रिय राजा और मुसलमान बादशाहों के वर्णनों के और कुछ नहीं मिलेगा। क्षत्रियज्ञाति के साथ ही साथ भारत में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रज्ञातियां भी रहती आई हैं। ये भी समुन्नत हुई हैं और गिरी भी हैं। इन्होंने भी भारत के उत्थान और पतन में अपना भाग भजा है। इनमें भी अनेक वीर, संत, श्रीमंत, दानवीर, अमात्य, महामात्य, बलाधिकारी, महाबलाधिकारी, बड़े २ राजनीतिज्ञ, दंडनायक, संधिविग्रहक, बड़े २ व्यापारी, देशभक्त, धर्मप्रवर्त्तक,

सुधारक, योद्धा, रणवीर, सेवक हुये हैं। फिर इन किसी एक को भी भारत के इतिहास में स्थान नहीं मिलने का क्या कारण हैं ? यह विचार मुझको आज तक भी सताता रहा है। अब हमारे राष्ट्रीय भावना वाले इतिहासज्ञों का विचार और दृष्टिकोण विशाल बनने लगा है और वे न्यायनीति को लेकर इतिहास के क्षेत्र में परिश्रम करते हुये दिखाई भी देने लगे हैं।

भारत के मूलनिवासी जैन और वैष्णव इन दो मतों में ही विभक्त हैं। फिर क्या कारण हैं कि भारत के इतिहास में वैष्णवमतपक्ष ही सर्व पृष्ठों को भर बैठा है और जैनपक्ष के लिए एक-दो पृष्ठ भी नहीं। जब हम वैष्णव-मतपक्ष के न्यायशील, उद्‌भट विद्वानों के मतों, प्रवचनों को पढ़ते हैं तो वे यह स्वीकार करते हुये प्रतीत होते हैं कि जैनसाहित्य अगाध है, उसकी प्रवरता, उसकी विशालता संसार के किसी भी देश के बड़े से बड़े साहित्य से किसी भी प्रकार कम नहीं है और जैनवीर, महापुरुष, तीर्थङ्कर, विद्वान, कलाविज्ञ भी अगणित हो गये हैं, जिन्होंने भारत की संस्कृति बनाने में, भारत की कीर्त्ति और शोभा बढ़ाने में अपनी अमूल्य सेवाओं का अद्‌भुत योग दिया है। परन्तु जब भारत का इतिहास उठा कर देखें तो जैनसाहित्य के विषय में एक भी पंक्ति नहीं और किसी एक जैनवीर, महापुरुष का भी नामोल्लेख नहीं। अधिक तो क्या चरमतीर्थङ्कर भगवान् महावीर जिनको समस्त संसार अहिंसा-धर्म के प्रबल समर्थक और पुनःप्रचारक मानता है, उनका वर्णन भी अब २ दिया जाने लगा है तो फिर अन्य जैन प्रतिष्ठित पुरुषों, संतों, नीतिज्ञों, वीरों की तो बात ही कौन पूछे। इस कमी के दोषियों में स्वयं जैन विद्वान् भी अग्रगणित होते हैं। आज तक जैनियों ने अपने विस्तृत एवं विशाल साहित्य को, ऐतिहासिक महापुरुषों को, स्थानों को, कलापूर्ण मंदिरों को, दानवीर, धर्मात्मा, देश भक्त, सिद्ध, अरिहंतों को, वीरों को, मंत्रियों को, दंडनायकों को प्रकाश देने का समुचित ढंग एवं निश्चित नीति से प्रयत्न ही नहीं किया है। तब अगर अन्यपक्ष के विद्वानों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में, इतिहासों में उनको स्थान नहीं दिया गया एवं प्रकाश में नहीं लाया गया तो इसके लिये केवल मात्र उन्हीं को दोषी ठहराना न्यायसंगत नहीं है। यह विचार भी मुझको सदा प्रेरित करता ही रहा है कि मैं कभी ऐसा ग्रन्थ एवं पुस्तक अथवा इतिहास लिखूँ कि जिसके द्वारा जैन महापुरुषों का परिचय, जैन मंदिरों की कला का ज्ञान और ऐसे ही अन्य ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक गौरवशाली बातों को अन्यमतपक्ष के विचारकों, लेखकों एवं विद्वानों, कलाविज्ञों के समक्ष रक्खूँ और उनकी दिशा को बदलूँ अथवा उनको कुछ तो आकृष्ट कर सकूँ। इसी विचार को लेकर मैंने लगभग एक सहस्र हरिगीतिका छंदों में 'जैन-जगती' नामक पुस्तक लिखी, जो वि० सं० १९९९ में प्रकाशित हुई। पाठक उसको पढ़ कर मेरे कथन की सत्यता पर अधिक सहजता एवं सफलता से विचार कर सकते हैं। कोई भी इतरमतावलंबी उक्त पंक्तियों से यह आशय निकालने की अनुचित धृष्टता नहीं करें कि मैं जैनमत का ममत्व रखता हूं। मैं आर्य-समाजी संस्थाओं का स्नातक हूँ और आर्यसमाजी संयासियों का मेरे जीवन में अधिक प्रभाव है। धर्मदृष्टि से मैं कौन मतावलंबी हूँ, आज भी नहीं कह सकता हूं। इतना अवश्य कह सकता हूं कि सब ही अच्छी बातों, अध्यवसायों से मुझ को प्रेम है और समभाव है। ऊपर जो कुछ भी कहा है वह एक इतिहासप्रेमी के नाते, न्याय-नीति के सहारे। वैसे कोई भी व्यक्ति जो इतिहास लिखने का श्रम करेगा, वह अपने श्रम में निष्पक्ष, ममत्वहीन, असाम्प्रदायिक रहकर ही सफल हो सकता है। ये गुण जिस इतिहास-लेखक में नहीं होंगे अथवा न्यून भी होंगे, वह उतना ही असफल होगा, निर्विवाद सिद्ध है।

श्री ताराचन्द्रजी से परिचय और इतिहास-लेखन

श्री ताराचन्द्रजी मेघराजजी और मुझ में इतिहास-लेखन के कोई दो वर्ष पूर्व कोई परिचय नहीं था। व्याख्यान-वाचस्पति जैनाचार्य श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज सा० के द्वारा हम दोनों वि० सं० २००० में परिचित हुए और वह इस प्रकार। वि० सं० २००० में आचार्य श्री का चातुर्मास सियाणा (मारवाड़) में हुआ था। चातुर्मास पश्चात् आप श्री अपनी साधुमण्डली एवं शिष्य-समुदाय सहित बागरा ग्राम में पधारे। श्री ताराचन्द्रजी गुरुमहाराज सा० के परमभक्त और अनन्य श्रावक हैं। आप भी बागरा गुरुदेव के दर्शनार्थ आये। बागरा में वि० सं० १९९५ आश्विन शुक्ला ६ तदनुसार सन् १९३८ सितम्बर २९ को गुरुदेव के सदुपदेश से उन्हीं की तत्त्वावधानता में संस्थापित 'श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल' में उन दिनों में मैं प्रधानाध्यापक के स्थान पर कार्य कर रहा था।

आचार्य श्री से मेरा परिचय और उनके कारण श्री ताराचंद्रजी से मेरा परिचय

आचार्य श्री के संपर्क में मैं कैसे आया और उनकी बढ़ती हुई कृपा का भाजन कैसे बनता गया यह भी एक रहस्य भरी वस्तु है। मैं गुरुकुल की स्थापना के ११ दिवस पूर्व ही ता० १९ सितम्बर को बागरा बुला लिया गया था। इससे पूर्व मैं 'श्री नाथूलालजी गोदावत जैन गुरुकुल,' सादड़ी (मेवाड़) में गृहपति के स्थान पर २१ नवम्बर सन् १९३६ से सन् १९३८ सितम्बर १७ तक कार्य कर चुका था और वहीं से बागरा आया था। प्रधानाध्यापक के स्थान के लिये अनेक प्रार्थनापत्र आये थे। मेरा प्रार्थनापत्र स्वीकृत हुआ, उसका विशेष कारण था। गुरुकुल की कार्य-कारिणी-समिति ने प्रधानाध्यापक की पसंदगी गुरुमहाराज साहब पर ही छोड़ दी थी। 'बागरा में अध्यापकों की आवश्यकता' शीर्षक से 'ओसवाल' में विज्ञापन प्रकाशित हुआ था। विज्ञापन में प्रधानाध्यापक की योग्यता एफ० ए० अथवा बी० ए० होना चाही थी और साथही धार्मिकज्ञान भी हो तो अच्छा। मैं एफ० ए० ही था और शास्त्राध्ययन की दृष्टि से मुझको 'नमस्कारमंत्र' भी शुद्ध याद नहीं था। कई एक कारणों से मैं सादड़ी के गुरुकुल को छोड़ना चाह रहा था, मैंने उक्त विज्ञापन देखकर प्रधानाध्यापक के स्थान के लिये प्रार्थनापत्र भेज ही दिया और रेखांकित करके स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि अगर प्रधानाध्यापक में शास्त्रज्ञान का होना अनिवार्यतः वांच्छित ही हो तो कृपया उत्तर के लिये पोस्टकार्ड का व्यय भी नहीं करें और अगर धर्मप्रेमी प्रधानाध्यापक चाहिए तो मेरे प्रार्थनापत्र पर अवश्य विचार कर उत्तर प्रदान करें। मेरी इस स्वभाविक स्पष्टता ने आचार्य श्री को आकर्षित कर लिया। उन्होंने मुझको ही प्रधानाध्यापक के लिये चुन कर पत्र द्वारा शीघ्रातिशीघ्र बागरा पहुँचने के लिये सूचित किया। मैं रू० ३५) मासिक वेतन पर नियुक्त होकर ता० १९ सितम्बर को बागरा पहुँच गया। गुरुदेव और मेरे में परिचय कराने वाला यह दिन मेरे इतिहास में स्वर्णदिवस है। गुरुदेव की कृपा मेरे पर उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती ही रही और आज तक होती ही जा रही है। आपश्री की प्रेरणा एवं आज्ञा पर ही मैंने सर्व प्रथम श्री श्रीमद् शांति-प्रतिमा मुनिराज मोहनविजयजी का संक्षिप्त जीवन गीतिका छंदों में लिखा, जो उसी वि० सं० १९९६ (ई० सन् १९३९) में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् आपकी ही प्रेरणा पर फिर 'जैन-जगती' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लगभग एक सहस्र हरिगीतिका छंदों में लिखी, जो वि० सं० १९९९ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने जैन-समाज में एक नवीन हिलोर उठाई। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र ने 'जैन-जगती' में अपने दो शब्द लिखते हुये लिखा 'मैं नहीं जानता कि जैन आपस में मिलेंगे। यह जानता हूं कि नहीं मिलेंगे तो मरेंगे।

यह पुस्तक उनमें मेल चाहती है। अतः पढ़ी जायगी तो उन्हें सजीव समाज के रूप में मरने से बचने में मदद देगी।' श्री श्रीनाथ मोदी 'हिन्दी-प्रचारक',जोधपुर ने लिखा 'जैन-जगती' जागृति करने के लिये संजीवनी-बूटी है। फैले हुये आडम्बर एवं पाखण्ड को नेस्तनाबूद करने के लिये बम्ब का गोला है' इसी प्रकार श्री भंवरलाल सिंघवी, कलकत्ता ने भी अपना 'जैन-जगती' पर आकर्षक ढंग से 'जैन-जगती और लेखक' शीर्षक से अभिमत भेजा। स्वर्गीय राष्ट्रपिता बापू ने भी इस पर अपने गुप्तमंत्री द्वारा दो पंक्ति में उत्साहवर्धक शुभाशीर्वाद प्रदान किया। पुस्तक को हिन्दू और जैन दोनों पत्रों ने अपनाया। गुरुदेव की कृपा 'जैन-जगती' के प्रकाशन से कई गुणी बढ़ गई, जो बढ़ कर आज मुझको प्राग्वाट-इतिहास-लेखक का यशस्वी-पद प्रदान कर रही है। ऐसे कृपालु गुरुदेव के द्वारा मुझमें और श्री ताराचन्द्रजी में सर्वप्रथम परिचय वि० सं० २००० में बागराग्राम में हुआ।

आचार्यश्री का प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखाने के लिए उपदेश और श्री ताराचन्द्रजी का उसको शिरोधार्य करना और पौरवाड़ संघ-सभा द्वारा उसको कार्यान्वित करवाना.

मध्याह्नि में आचार्य श्री विराज रहे थे। पास में कुछ श्रावकगण भी बैठे थे। उनमें श्री ताराचन्द्रजी भी थे। आचार्य श्री ने बैठे हुए श्रावकों को प्रसंगवश प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखवाने की ओर प्रेरित किया। श्री ताराचन्द्रजी परमोत्साही, कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। आचार्य श्री ने इनकी ओर अभिदृष्टि करके कहा कि यह कार्य तुमको उठाना चाहिए। ज्ञाति का इतिहास लिखवाना भी एक महान् सेवा है। इस उपदेश से ताराचन्द्रजी प्रोत्साहित हुये ही, फिर वे आचार्य श्री के परमभक्त जो ठहरे, तुरन्त गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करके प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखवाने की प्रेरणा उन्होंने स्वीकृत करली। गुरुदेव ने भी आपको शुभाशीर्वाद दिया। उसी दिन से प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखवाना आचार्यश्री और श्री ताराचन्द्रजी का परमोद्देश्य बन गया। दोनों में इस सम्बन्ध पर समय २ पर पत्र-व्यवहार होता रहा। वि० सं० २००१ माघ कृष्णा ४ को सुमेरपुर में 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग हाउस' के विशाल भवन में श्री 'प्राग्वाट-संघ-सभा' का द्वितीय अधिवेशन हुआ। श्री ताराचन्द्रजी ने ज्ञाति का इतिहास लिखवाने का प्रस्ताव श्रीसभा के समक्ष रक्खा। सभा ने सहर्ष उक्त प्रस्ताव को स्वीकृत करके श्री 'प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति' नाम की एक समिति सर्वसम्मति से निम्न सभ्य १—सर्व श्री ताराचन्द्रजी पावावासी (प्रधान), २—सागरमलजी नवलाजी नाडलाईवासी, ३—कुन्दनमलजी ताराचन्द्रजी बालीवासी, ४—मुल्तानमलजी सन्तोषचन्द्रजी बालीवासी, ५—हिम्मतमलजी हुक्माजी बालीवासी को चुनकर बना दी और उसको इतिहास का लेखन करवाने सम्बन्धी सर्वाधिकार प्रदान कर दिये। अर्थसम्बन्धी भार सभा ने स्वयं अपने ऊपर रक्खा।

आचार्यश्री द्वारा मेरी लेखक के रूप में पसन्दगी और इतिहासकार्य का प्रारम्भ.

ताराचन्द्रजी ने उक्त समाचारों से आचार्य श्री को भी पत्र द्वारा सूचित किया। जब से प्राग्वाट-इतिहास की चर्चा चली, तब से ही गुरुदेव और मेरे बीच भी इस विषय पर समय २ पर चर्चा होती रही। इतिहास किस से लिखवाया जाय—इस प्रश्न ने पूरा एक वर्ष ले लिया। वि० सं० २००२ में आचार्य श्री का चातुर्मास बागरा में ही था। आचार्यश्री की बागरा में स्थिरता देखकर श्री ताराचन्द्रजी आचार्यश्री के दर्शनार्थ एवं इतिहास लिखवाने के प्रश्न पर आचार्यश्री से परामर्श करने के लिए आश्विन शु० १० को बागरा आये। आचार्यश्री, ताराचन्द्रजी और मेरे बीच इतिहास लिखवाने के प्रश्न पर दो तीन बार घन्टों तक चर्चा हुई। निदान गुरुदेव ने इतिहास-लेखन का भार मेरी निबल

लेखनी की तीखी नोंक पर ही आश्विन शु० १२ शनिश्चर तदनुसार ता० २१ जुलाई सन् १९४५ को डाल ही दिया और साथ ही आधे दिन की सेवा पर रु० ५०) मासिक वेतन भी निश्चित कर दिया। गुरु की आज्ञा मैं भी कैसे उल्लंघित करता।

'शनिश्चर' दिन की मेरे पर सदा से सुदृष्टि रही है। मेरे महत्त्व के कार्य प्रायः इस ही दिन प्रारम्भ होते देखे गये हैं और मुझको उनमें मेरी शक्ति अनुसार साफल्य ही प्राप्त हुआ है। या तो मैं शनिश्चर की प्रतीक्षा करता हूँ या शनिश्चर मेरी। शनिश्चर का और मेरा अभी तक ऐसा ही चौली-दामन का संयोग चला आ रहा है। यद्यपि मैं मुहूर्त विशेष देखने का कायल नहीं हूँ, जो आत्मा ने कह दिया, बस वह उसी क्षण कार्यान्वित मैंने भी कर ही दिया। फिर नहीं तो आगे सोचता हूँ और नहीं पीछे। गुरु, शुक्र (अर्थलाभ) और शनिश्चर का इष्टयोग—फिर क्या विचारना रहा। ताराचन्द्रजी ने उस समय तक कुछ साधन-पुस्तकों का संग्रह कर लिया था। उन्होंने स्टे० राणी से वे सर्व पुस्तकें मेरे पास में बागरा भेज दीं और मेरा अवलोकन-कार्य चालू हो गया। उसी दिन से आचार्यश्री ने भी ऐतिहासिक पुस्तकों की शोध और नोंध प्रारम्भ की। ताराचन्द्रजी नव २ पुस्तकों के मंगाने में लग गये। मैं प्राप्त पुस्तकों के अवलोकन में जुट गया, यद्यपि मेरे पास में समय की अत्यन्त कमी थी। प्रातः ७ से ९॥ बजे तक मैं या तो स्वाध्याय करता था या अपने निजी ग्रन्थ लिखता था या आचार्य श्री का कोई लेखन-कार्य होता तो वह करता था। सन् १९४६ में होने वाली बी० ए० की परीक्षा का प्रवेश-पत्र भर चुका था। १०॥ बजे से ५ बजे (सायंकाल) तक गुरुकुल की सेवा बजाता। इतिहास का कार्य करने के लिए दिन में तो कोई समय बच ही नहीं रहता था। अतः मैंने इस कार्य को रात्रि में करने का ही निश्चय किया। अब मैं रात्रि को प्रायः आठ बजे सोने लगा। लगभग रात्रि के १२ या १ बजे मेरी नींद खुल जाती थी। नेत्रों का प्रक्षालन करके मैं पुस्तकों का अवलोकन प्रायः ३ या ४ बजे तक करता रहता। जब तक बागरा में रहा, तब तक मेरा कार्यक्रम इस ही प्रकार नियमित रूप से चलता रहा। पाठक इस प्रकार के घोर श्रम एवं रात्रि में नियमित रूप से तीन या चार घण्टों का जागरण देखकर यह नहीं सोचे कि इसका प्रभाव गुरुकुल के कार्य पर किंचित् मात्र भी पड़ा हो। मुझको एक भी दिन ऐसा स्मरण नहीं है कि बी० ए० की किसी भी पुस्तक की एक भी पंक्ति मैंने गुरुकुल के समय में पढ़ी हो। पढ़ता भी कैसे, जब पुस्तक तक वहाँ नहीं ले जाता था। विपरीत तो यह हुआ कि कई एक पुरुष अपने जीवन में अनेक कार्य एक ही साथ करते हुये सुने और पढ़े गये हैं, मुझको भी यह शुभावसर मिला है—इस विचार से मैं द्विगुण उत्साह से पहिले की अपेक्षा कार्य करने लगा। मेरे संयम ने मेरी सहायता की और मैं यह भार सहन कर सका। परन्तु कुछ एक इर्षालु व्यक्तियों से जो मेरे स्वतन्त्र स्वभाव, एकान्तप्रियता तथा सर्व समभावदृष्टि से चिढ़े हुए थे यह सहन नहीं हो सका और उन्हें अवसर मिला। उन्होंने मनगढ़ंत बातें बनाना प्रारम्भ कर ही दिया।

ई० सन् १९४६ मार्च मास में मैंने जोधपुर जा कर बी. ए. की परीक्षा हिन्दी, इतिहास, अंग्रेजी, राजनीति इन चार विषयों में दी। वहाँ मैं एक मास पूर्व जा कर रहा था। बागरा में स्वाध्याय के लिये समय पूरा नहीं मिल रहा था, अतः ऐसा करना पड़ा, इतिहास कार्य तब तक बंध रहा। ई० सन् १९४७ अप्रेल ५ को मैंने गुरुकुल की सेवाओं से अपने को बड़े ही दुःख के साथ मुक्त किया।

बागरा में इतिहास-कार्य

ई० सन् १९४५ जुलाई २१ से सन् १९४७ अप्रेल ५ तक इतिहास-कार्य बागरा में आधे दिन की सेवा पर कुल १ वर्ष ६ मास और एक दिन बना। इस समय में लगभग १५० से ऊपर प्रायः बड़े २ ऐतिहासिक ग्रन्थों का

अवलोकन किया और उनमें प्राप्त ऐतिहासिक साधन-सामग्री को उद्धृत और चिह्नित, संक्षिप्त रूप से उल्लिखित और निर्णीत किया। महामात्य वस्तुपाल, दंडनायक तेजपाल, मंत्री विमलशाह आदि कई एक महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को इतिहास का रूप दे दिया गया। इन थोड़े महिनों में ही इतिहास-कार्य के निमित्त रात्री में एक-सा श्रम करना, बी. ए. की परीक्षा के लिये प्रातः स्वाध्याय करना, दिन में गुरुकुल की सेवा करना, बी. ए. की परीक्षा के पश्चात् प्रातःकाल में 'जैन-जगती' के छंदों का अर्थ नियमित रूप से लिखना (जिनके लिये श्री आचार्य श्री के सदुपदेश से शाह हजारीमल बनेचंद्रजी ने ५००) का पारिश्रम्य सन् १९४६ जुलाई ६ को दिया था।) आदि निरंतर बने रहे हुये श्रम के कारण मेरा स्वास्थ्य विकासोन्मुख नहीं रह सका और अब तक भी उसको अवसर नहीं मिल पाया है।

जैन शिक्षण-संस्थाओं के प्रति उदासीनता और सुमेरपुर में इतिहास-कार्य

भोपालगढ़ की श्री 'शांति जैन पाठशाल' की उन्नति के लिये मैंने अपनी सर्व शक्तियां पूरी २ लगादी थीं। आप आश्चर्य करेंगे कि मैं नित्य और नियमित एक साथ पूरी पांच और कभी २, ७ कक्षाओं को अध्यापन कराता था और वह भी सर्व विषयों में। पाठशाला उन्नत हुई, विद्यार्थी अच्छे निकले; परन्तु मुझको छोड़ने के लिये बाधित होना पड़ा। सादड़ी के गुरुकुल की सेवा भी बड़ी तत्परता, कर्तव्यपरायणता, एकनिष्ठता से की और फलतः छात्रालय में अपूर्व अनुशासन वृद्धिगत रहा, परन्तु वहाँ से भी मुझको बाधित होकर छोड़ना पड़ा। बागरा के गुरुकुल की नींव का प्रस्तर ही मैंने अपने हाथों डाला था और सोचा था, यह मेरी साधना का फलाभवन होगा। वह जन्मा, उन्नत हुआ, उसने स्वस्थ, चरित्रवान्, परिश्रमी और प्रतिभावान् विद्यार्थी पैदा करने प्रारंभ किये कि मुझको वह भी छोड़ने के लिये विवश होना पड़ा। बागरा के गुरुकुल के छोड़ने के विचार पर मेरा मन ही अब आगे जैन-शिक्षण-संस्थाओं की सेवा करने से उदासीन हो गया। परन्तु फिर भी गुरुमहाराज सा० के उद्बोधन पर और श्री ताराचंद्रजी के आग्रह पर 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग' सुमेरपुर के गृहपतिपद को स्वीकार करके मैं ई० सन् १९४७ अप्रेल ६ को वहाँ पहुँचा और अपना कार्य प्रारंभ किया। प्राग्वाट-इतिहास के लेखन के लिये मेरा वेतन जनवरी सन् १९४७ से ही ५०) के स्थान पर ६०) कर दिया गया था, अतः सुमेरपुर में छात्रालय की ओर से रु० १००) और इतिहास-कार्य के लिये रु० ६०) कुल वेतन रु० १६०) मिलने लगा।

हम सब ने यही सोचा था कि इतिहास-कार्य के लिये सुमेरपुर में विशेष सुविधा और अनुकूलता मिलेगी, परन्तु हुआ उल्टा ही। छात्रालय के बाहर और भीतर दोनों ओर से व्यवस्था अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। राजकीय स्कूल के अध्यापकों ने छात्रालय के छात्रों को श्रीमंतों के पुत्र समझ कर ट्यूशन का क्षेत्र बना रक्खा था। मैं जब छात्रालय में नियुक्त हुआ, उस समय लगभग १०० छात्रों में से चालीस छात्र ट्यूशन करवाते थे और अध्यापकों के घरों पर जाते थे। अध्यापक उन छात्रों को पढ़ाने की अपेक्षा इस बात पर अधिक ध्यान रखते थे कि छात्र उनके हाथों से निकल नहीं जावे। वे सदा छात्रालय के कर्मचारियों और छात्रों में भेद बनाये रखने की नीति को दृष्टि में रख कर ही उनके साथ में अपना मीठा संबंध बढ़ाते रहते थे। संक्षेप में छात्रालय में अनुशासन पूर्ण भंग हो चुका था। फल यह हो रहा था कि छात्रगण अध्यापकों और छात्रालय के कर्मचारियों के बीच पिस रहे थे। स्कूल और छात्रालय दोनों में कटुतर संबंध थे। मैं ट्यूशन को विद्यार्थियों के शोषण का पंथ मानकर

उसका सदा से प्रबल एवं घातक शत्रु रहा हूं। ईश्वर की कृपा से मेरे पढ़ाये हुये और मेरे आधीन अध्यापकों के द्वारा भी पढ़ाये हुये विद्यार्थियों को कभी स्वप्न में भी ट्यूशन करने की कुभावना शायद ही उत्पन्न हुई होगी। गृहपतिपद का भार संभालते ही मैंने छात्रों को उपदेश और शिक्षण देना प्रारंभ किया और लगभग मेरे जाने के तीसरे ही दिन छात्रालय के सर्व छात्रों ने ट्यूशन करवाना वंद कर दिया। मैंने भी उनको इन शब्दों में आश्वासन दिया कि मेरे रहते तुमको कोई अन्याय और अनीति से दवा नहीं सकता और जो छात्र अनुत्तीर्ण होगा, अगर तुमको मेरे शब्दों में विश्वास है तो मैं उसका पूर्णतः उत्तरदायी होऊंगा। इस पर स्कूल के अध्यापकों में बैचेनी और भारी क्रोध की बाढ़ आगई। ट्यूशन के कलह ने पूरा एक वर्ष लिया। यद्यपि इस एक वर्ष के समय में छात्रालय के अंदर और बाहर अनेक चारित्रिक, धार्मिक, अभ्याससंबंधी, स्वास्थ्यादि दृष्टियों से ठोस सुधार किये गये। जैसे सब छात्र मिल कर एक मास में प्रायः २००) से ऊपर रुपये चाट आदि व्यर्थ व्यय में उड़ा देते थे, आवारा भ्रमण करते थे, स्वाध्याय की दशा बिगड़ी हुई थी. सुगंधी-तेल का प्रयोग करते थे। ये सब उड़ गये और रह गया साधारण और सात्विक जीवन। उच्च कक्षा के छात्र नियमित रूप से अपने से नीची कक्षा के छात्रों को पढ़ाने लगे। एक दूसरे को ऊँचा उठाने में अपना पूर्ण उत्तरदायित्व अनुभव करने लगे।

अध्यापकों ने छात्रों को अनेक प्रकार से धमकाया, अनुत्तीर्ण करने की गुरुपद को लांच्छित करने वाली धमकियां दीं, पर्वों पर वर्जित कार्य करवाये। छात्रों ने मेरे आश्वासन और विश्वास पर सब सहन किया, अंत में अध्यापकगण थक गये। शिक्षा-विभाग, जोधपुर तक से ट्यूशन के कलह को लेकर पत्र-व्यवहार चला। एक वर्ष बाद राजकीय स्कूल में से ऐसे अध्यापकों को भी राज ने स्थानान्तरित कर दिया, जिनके बुरे कृत्यों के कारण स्कूल और छात्रालय के संबंध बिगड़ गये थे। दूसरे वर्ष श्री पुखराजजी शर्म्मा, प्रधानाध्यापक बन कर आये। वे सज्जन और उदार और समझदार थे। दोनों संस्थाओं में प्रेम बना और बढ़ता ही गया और मैं जब तक वहां रहा, प्रेमपूर्ण बने हुये संबंध को किसी ने भी तोड़ने का फिर प्रयत्न नहीं किया।

उधर स्कूल के अध्यापकों से लड़ना और इधर छात्रों की स्वाध्याय में नियमित रूप से सहायता करना, उनके व्यर्थ व्ययों को रोकना, स्वास्थ्य और चरित्र को उठाना आदि बातों ने मेरा पूरा एक वर्ष ले लिया। एक वर्ष पश्चात् अब छात्रगण ही अपने स्वनिर्वाचित मंत्रीमण्डल द्वारा अपनी समस्त व्यवस्थायें करने लगे और मेरे ऊपर केवल निरीक्षण कार्य ही रह गया, जो सारे दिन और रात्रि में मेरा कुल मिला कर डेढ या दो घंटों का समय लेता था। पाठकगण नीचे दिये गये श्री रा० वी० कुम्भारे, प्रिन्सीपल, महाराज कुमार इन्टर कालेज, जोधपुर के अभिप्राय से देख लेंगे कि छात्रालय कितनी उन्नति कर चुका था और उस की व्यवस्था कैसी थी।

अभिप्राय—

'मैंने ४ दिसम्बर १९४९ के प्रातःकाल 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग हाऊस', सुमेरपुर का निरीक्षण किया। छात्रावास-भवन, भोजनशाला, पढ़ाई की व्यवस्था, स्वच्छता इत्यादि छात्रावास के मुख्य अंगों को देखने का प्रयत्न किया। समीप का उपवन भी देखा। छात्रावास के सुयोग्य गृहपति दौलतसिंहजी लोढ़ाजी से छात्रावास की समग्र व्यवस्था के संबंध में बातचीत भी की। इस छात्रावास को देखकर मुझे महान् संतोष हुआ। मैंने कई छात्रावास देखे हैं; किन्तु श्री वर्द्धमान जैन छात्रावास एक अनोखी संस्था है। छात्रावास के सारे कार्य छात्रों द्वारा यंत्रवत् संपादित होते हैं तथा क्रियान्वित होते हैं। इस कार्यपरायणता में छात्रों की अन्तःप्रेरणा वस्तुतः श्लाघनीय है।

गृहपति की मध्यस्थता तनिक भी आवश्यक प्रतीत नहीं होती। किसी कार्य में शिथिलता एवं न्यूनता आने पर छात्र गुण खोता है तथा सद्व्यवहार पूर्ण समयोचित कार्य संपन्न करने पर उसे गुण प्राप्त होते हैं। स्पर्द्धा की इस शुद्ध प्रणाली द्वारा गुण विवरण करने वाली गुणपत्रिका (Marks-Register) भी मैंने देखी। सुव्यवस्था एवं छात्रों की अन्तरस्फूर्ति के कारण छात्रावास में शांति का वातावरण है। स्वास्थ्य, व्यायाम तथा चरित्र जीवन के तीन मुख्य स्तम्भों पर आधारित छात्रों का जीवन कुल निर्मित है। मुझे पूर्ण आशा है नवयुग की नवराष्ट्र-साधना में यह छात्रावास देश के शिक्षा-इतिहास में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा।' डा० श्री० कुम्भारे

मेरे भाग्य में छात्रालय में वृद्धिंगत होते अनुशासन की शांति का आनन्द लेना और इतिहास-कार्य को सुचारु रूप से करना थोड़े ही महिनों के लिये लिखा था। ज्योंही मैंने आंतरिक व्यवस्था की ओर ध्यान दिया कि मेरे और वहां कमेटी की ओर से सदा रहने वाले मंत्रीजी में विचार नहीं मिलने के कारण कटुता बढ़ने लगी। मैंने जो किया, वह उन्होंने काटा और नहीं काट सके तो उसको हानि तो पहुँचाई ही सही। इसी गतिविधि से अब मेरा जीवन वहां चलने लगा। कई बार लोगों ने हम दोनों को समझाया, कमेटी के कुछ प्रतिष्ठित सभ्यों ने एकत्रित होकर हमारी दोनों की बातें सुनीं। हमारे दोनों के बीच दो बार समझौते हुये। परन्तु सब व्यर्थ।

आप अब उक्त पंक्तियों के संदर्भ पर समझ ही गये होंगे कि सुमेरपुर के छात्रालय में यद्यपि मैं ई० सन् १९४७ अप्रेल ६ से ई० सन् १९५० नवम्बर ६ तक पूरे ३ वर्ष ७ मास और १ दिन रहा; परन्तु इतिहास का कार्य कितना कर सका होऊँगा ? जितना किया उसका विवरण निम्नवत् दिया जाता है। पूर्व के पृष्ठों में लिख चुका हूँ कि इतिहास-कार्य को आधे दिन की सेवा मिलती थी। इस दृष्टि से ३ वर्ष ७ मास और एक दिन की अवधि में इतिहास का पूरे दिनों का कार्य १ वर्ष ९ मास और १५ दिन पर्यन्त हुआ समझना चाहिए। और वह भी ऊपर वर्णित परिस्थिति में।

सुमेरपुर छोड़ा तब तक साधन-सामग्री में लगभग ३१८ पुस्तकों का संग्रह हो चुका था। १५० पुस्तकों का अध्ययन तो बागरा में ही किया जा चुका था, शेष का अध्ययन सुमेरपुर में हुआ और उनमें प्राप्त सामग्री को चिह्नित, उद्धृत, संक्षिप्त रूप से उल्लिखित तथा निर्णीत की गई। श्री मुनि जिनविजयजी, श्री मुनि जयन्तविजयजी, श्री पूर्णचन्द्रजी नाहर आदि द्वारा प्रकाशित शिला-लेख-पुस्तकों में से प्राग्वाटज्ञातीय शिला-लेखों की छटनी की गई और उनका काल-क्रम, व्यक्तिक्रम से वर्गीकरण किया गया। महामन्त्री पृथ्वीकुमार, धरणाशाह आदि के चरित्र लिखे गये। महामन्त्री वस्तुपाल, तेजपाल, विमलशाह के चरित्रों को पूर्णता दी गई।

इस ही समय में महामना प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० गौरीशंकर ओझा और प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता जैन पंडित श्री लालचन्द्र भगवानदास, वड़ोदा से श्री ताराचन्द्रजी ने पत्र-व्यवहार करके उनकी सहयोगदायी सहानुभूति प्राप्त की और फलतः मेरा उनसे पत्र-व्यवहार प्रारंभ हुआ। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस के सन् १९४८ के नवम्बर मास में जयपुर में होने वाले अधिवेशन में कार्य-कर्त्ता के रूप से मैं जिला कांग्रेस कमेटी, शिवगंज की ओर से भेजा गया था। वहाँ मैंने २ नवम्बर से २१ नवम्बर तक Ticket selling in-charge-officer का कार्य किया था। जयपुर से लौटते समय प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता मुनि जिनविजयजी से मिला था और इतिहास के विषय में कई एक

प्रसिद्ध इतिहासज्ञों से पत्र-व्यवहार और भेंट तथा श्री पं० लालचन्द्र भगवानदास से विशेष संपर्क.

प्रश्नों पर लगभग एक घंटे भर चर्चा हुई थी। उक्त सज्जनों से जो समय-समय पर सहयोग मिलता रहा, उसका अपने २ स्थान पर आगे उल्लेख मिलेगा ही। यहां केवल इतना ही लिखना आवश्यक है कि पंडितवर्य्य श्री लालचन्द्र भगवानदास, वड़ौदा ने जिनकी सहृदयतापूर्ण सहानुभूति का आभार अलग माना जायगा मेरे किये हुये कार्य का अवलोकन करने की मेरी प्रार्थना को स्वीकृत करके यथासुविधा मुझको निमंत्रित किया। मैं २ जून सन् १९४९ को सुमेरपुर से रवाना होकर अहमदाबाद होता हुआ वड़ौदा पहुँचा। पंडितजी मुझ से बड़ी ही सहृदयता से मिले और उनके ही घर पर मेरे ठहरने की उन्होंने व्यवस्था की। मैं वहां पूरे ग्यारह ११ दिवस पर्यन्त रहा। पंडितजी ने तब तक के किये गये समस्त इतिहास-कार्य का वाचन किया और अपने गंभीरज्ञान एवं अनुभव से मुझको पूरा २ लाभ पहुंचाया और अनेक सुसंमतियां देकर मेरे आगे के कार्य को मार्गपाथेय दिया। इतना ही नहीं इस कार्यभार के लिये उन्होंने पूरा २ सहयोग देने की पूरी २ सहानुभूति प्रदर्शित की।

इसही अन्तर में प्राग्वाटज्ञातिश्रृङ्गार श्री धरणाशाह द्वारा विनिर्मित श्री त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार नामक श्री राणकपुरतीर्थ का इतिहास में वर्णन लिखने की दृष्टि से उसका अवलोकन करने के प्रयोजन से मैं ता० २९ मई सन् १९५० को सुमेरपुर से रवाना होकर गया था। 'श्री आनन्दजी कल्याणजी की पीढ़ी,' अहमदाबाद का पत्र पीढ़ी की ओर से सादड़ी में नियुक्त उक्त तीर्थ-व्यवस्थापक श्री हरगोविंदभाई के नाम पर मेरे साथ में था, जिसमें मुझको तीर्थसम्बन्धी जानकारी लेने में सहाय करने की तथा मुझको वहां ठहरने के लिये सुविधा देने की दृष्टि से सूचना थी। पीढ़ी के व्यवस्थापक का कार्यालय सादड़ी में ही है। श्री हरगोविंदभाई मेरे साथ तीर्थ तक आये और मेरे लिये जितनी सुविधा दे सकते थे, उन्होंने दीं। मैं वहां चार दिन रहा और जिनालय का वर्णन शिल्प की दृष्टि मे लिखा तथा वहां के प्रतिमा-लेखों को भी शब्दान्तरित करके उनमें से प्राग्वाटज्ञातीय लेखों की छटनी की। उनमें वर्णित पुरुषों के पुण्यकृत्यों के वर्णन तो फिर सुमेरपुर आकर लिखे।

श्री राणकपुरतीर्थ की यात्रा

सुमेरपुर के छात्रालय में गृहपति के पद का कर्त्तव्य निर्वाहित करता हुआ इतिहास-लेखन को जितना आगे बढ़ा सका, वह संक्षिप्त में ऊपर दिया जा चुका है। अगर इतना समय इतिहास-कार्य के लिये ही स्वतंत्र रूप से मिलता तो यह बहुत संभव था कि इतिहास के दोनों भागों का लेखन अब तक संभवतः पूर्ण भी होगया होता। परन्तु ताराचन्द्रजी उधर छात्रालय के भी उप-सभापति ठहरे और इधर इतिहास लिखवाने वालों में भी मंत्री के स्थान पर आसीन जो रहे। दोनों पक्षों में जिधर मेरी सेवायें अधिक और अधिक समय के लिये वांच्छित रहीं, उधर ही मुझको स्वतंत्ररूप से समय देने दिया, नहीं तो डोर का निभना कठिन ही था। जब स्कूल का समय प्रातः काल का होता मैं इतिहास-कार्य (जब लड़के स्कूल चले जाते) सवेरे ७ से ११ बजे तक करता और जब लड़कों का स्कूल जाने का समय दिन का होता, मैं इतिहास-लेखन का कार्य दिन के १ बजे से ४ या ५ बजे तक करता। कभी २ रात्रि को भी १२ बजे से ३ या ४ बजे तक करता था। फिर भी कहना पड़ेगा कि इतिहास-कार्य को सुमेरपुर में अधिकतर हानि ही पहुँचती रही।

मेरी उदासीनता जो बढ़ती ही गई, मैं उस ओर से मुड़ने में पाप समझता हुआ भी अपने परिश्रम पर पानी

फिरता देखकर उस ही दिशा में आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सका। मेरी धर्मपत्नी लाडकुमारी 'रसलता' ने मेरे साथ बीती बागरा में भी देखी थी और यहाँ भी। वह स्त्री होकर भी अधिक दृढ़ और संकल्पवती है। उसने मुझको उसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए फिर सोचने ही नहीं दिया और मैं भी नहीं चाह रहा था। मेरी जन्म-भूमि धामणियाग्राम, थाना काछोला, तहसील मांडलगढ़, प्रगणा भीलवाड़ा, विभाग उदयपुर (मेदपाट) में है। भीलवाड़ा से धामणिया तीस मील पूर्व में है और मोटर-सर्विस चलती है। मेरे सम्बन्धी भी अधिकांशतः इस ही क्षेत्र में आ गये हैं। भीलवाड़ा स्वयं राजस्थान में व्यापार और कला-कौशल की दृष्टि से समृद्ध एवं प्रसिद्ध नगर है। यहाँ रेल, तार, टेलीफोन; कॉलेज, पुस्तकालय आदि के आधुनिक साधन उपलब्ध हैं। इन सुविधाओं पर तथा मेरे ज्येष्ठ भ्राता पूज्य श्री देवीलालजी सा० लोढ़ा, सपरिवार कई वर्षों से उनकी मेवाड़-टेक्स-टाईल-मील में नौकरी होने के कारण वहीं रहते हैं। इन आकर्षणों से मैंने भीलवाड़ा में ही रहना निश्चित किया और वहीं इतिहास-कार्य करने लगा। श्री ताराचन्द्रजी सा० तथा पूज्य गुरुदेव को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं हुई। यह मेरे में उनके अनुपम विश्वास होने की बात है और अतः मेरे लिए गौरव की बात है। भीलवाड़ा जब मैं आया, मेरे पास दो कार्य थे। एक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज सा० का स्वयं का जीवन-चरित्र का लिखना, जिसको लिखने का मैं कभी से संकल्प कर चुका था और द्वितीय यह इतिहास-कार्य ही। फलतः मैंने यह ही उचित समझा कि 'गुरुग्रंथ' का कार्य यथासम्भव शीघ्र समाप्त कर लिया जाय और तत्पश्चात् सारा समय इतिहास-कार्य में लगाया जाय। नवम्बर १ (एक) सन् १९५० से ३ (तीन) जून सन् १९५१ तक लगभग ७ मास पर्यन्त में दोनों कार्यों को आधे दिन की सेवादृष्टि से साथ ही साथ करता रहा। ४ जून से इतिहास का कार्य पूरे दिन से किया जाने लगा। पूरे १ वर्ष ७ मास ९ दिवस इतिहास-कार्य चलकर इतिहास का यह प्रस्तुत प्रथम भाग आज सानन्द पूर्ण हो रहा है। इतिहास को अधिकतम सच्चा, सुन्दर और विशाल बनाने की दृष्टियों से सारे प्रयास भी इस ही समय में हो पाये हैं।

भीलवाड़ा में इतिहास-कार्य

भीलवाड़ा में रहकर किये गये इतिहास-लेखन-कार्य का संक्षिप्त सूचीगत परिचयः—

आमुख—

१–इतिहास के उपदेशक परमोपकारी श्रीमद् जैनाचार्य विजययतीन्द्रसूरिजी का साहित्य-सेवा की दृष्टि से संक्षिप्त जीवन-चरित्र.

२–इतिहास के गरुतम भार को उठाने वाले एवं साहस, धैर्य, शांति से पूर्णतापर्यन्त पहुँचाने वाले श्री ताराचन्द्रजी मेघराजजी का परिचय.

३–प्रस्तावना (प्रस्तुत)

प्रथम खण्ड (सम्पूर्ण)—

१–भ० महावीर के पूर्व और उनके समय में भारत। २–भ० महावीर के निर्वाण के पश्चात्।
३–स्थायी श्रावक-समाज का निर्माण करने का प्रयास। ४–प्राग्वाटश्रावकवर्ग की उत्पत्ति।
५–प्राग्वाट-प्रदेश। ६–शत्रुंजयोद्धारक परमार्हत श्रे० सं० जावड़शाह। ७–सिंहावलोकन।

द्वितीय खण्ड—

१—वर्तमान जैन-कुलों की उत्पत्ति । २—प्राग्वाट अथवा पौरवालज्ञाति और उसके भेद ।
३—राजमान्य महामंत्री सामंत । ४—कासिंद्रा के श्री शांतिनाथ-जिनालय के निर्माता श्रे० वामन।
५—अनन्य शिल्प-कलावतार अर्बुदाचलस्थ श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय ।
६—मंत्री पृथ्वीपाल द्वारा विनिर्मित विमलवसति की हस्तिशाला । ७—व्ययकरणमंत्री जाहिल ।
८—महामात्य सुकर्मा । ९—महुअकनिवासी श्रे० हांसा और उसका यशस्वी पु० श्रे० जगडू ।
१०—श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ श्री विमलवसतिकाख्य चैत्यालय तथा हस्तिशाला में अन्य प्राग्वाट-बंधुओं के पुण्य-कार्य।
११—श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ श्री विमलवसति की संघयात्रा और कुछ प्राग्वाटज्ञातीय बंधुओं के पुण्य-कार्य ।
१२—श्री जैन श्रमण-संघ में हुये महाप्रभावक आचार्य और साधु ।
१३—श्री साहित्यक्षेत्र में हुये महाप्रभावक विद्वान् एवं महाकविगण ।
१४—न्यायोपार्जित द्रव्य का सद्व्यय करके जैनवाङ्मय की सेवा करने वाले प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थ ।
१५—सिंहावलोकन ।

तृतीय खण्ड—

१—न्यायोपार्जित स्वद्रव्य को मंदिर और तीर्थों के निर्माण और जीर्णोद्धार के विषयों में व्यय करके धर्म की सेवा करने वाले प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थः—सर्व श्री श्रे० पेथड़ और उसके वंशज डूङ्गर और पर्वत, श्रीपाल, सहदेव, पाल्हा, धनपाल, वंभदेव के वंशज, लक्ष्मणसिंह, भ्राता हीसा और धर्मा, मण्डन और भादा, खीमसिंह और सहसा।
२—श्री सिरोहीनगरस्थ श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय का निर्माता कीर्त्तिशाली श्री संघमुख्य सं० सीपा और धर्म-कर्मपरायणा उसका परिवार। ३—तीर्थ एवं मंदिरों में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमा-प्रतिष्ठादिकार्य ।
४—तीर्थादि के लिए प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों द्वारा की गई संघयात्रायें ।
५—जैन श्रमणसंघ में हुये महाप्रभावक आचार्य और साधु ।
६—श्री साहित्यक्षेत्र में हुये महाप्रभावक विद्वान् एवं महाकविगण ।
७—न्यायोपार्जित द्रव्य का सद्व्यय करके जैनवाङ्मय की सेवा करने वाले प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थ ।
८—विभिन्न-प्रान्तों में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें ।
९—प्राग्वाटज्ञातीय कुछ विशिष्ट व्यक्ति और कुल । १०—सिंहावलोकन ।

सिरोही (राजस्थान) और गूर्जर-काठियावाड़ का भ्रमण

भीलवाड़ा से सन् १९५१ जून ४ को इतिहासकार्य के निमित्त भ्रमणार्थ निकल कर सिरोही, अर्बुदगिरितीर्थ, गिरनारतीर्थ होता हुआ प्रभासपत्तन (सोमनाथ) तक पहुँचा और वहां से लौटकर पुनः भीलवाड़ा जुलाई ८ को आया ।

अजमेर—यहां दो दिन ठहरा । मुद्रण-यंत्रालयों से वातचीत की, फोटोग्राफरों से मिला ।

पावा—मंत्री श्री ताराचन्द्रजी पावा थे । अतः स्टे० रानी से कोशीलाव होकर उनसे मिलने पावा गया । इसमें तीन दिन लग गये ।

मांडवगढ़तीर्थ—श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरि महाराज उन दिनों श्री मांडवगढ़तीर्थ में विराज रहे थे। इतिहास-कार्य का विवरण देने के लिये उनसे मिलना अत्यावश्यक था। स्टे० एरनपुर होकर, सुमेरपुर, जालोर होता हुआ मैं श्री मांडवगढ़तीर्थ पहुँचा। वहां दो दिन ठहरा और तब तक हुये इतिहास-कार्य एवं गुरुग्रंथ की प्रगति से उनको परिचित किया तथा अनेक विषयों पर विस्तृत चर्चा हुई। ता० १४ जुलाई को वहां से रवाना होकर बागरा एक दिन ठहर कर ता० १५ जुलाई को सिरोही पहुँचा।

सिरोही—यहां प्राग्वाटज्ञातीय सं० सीपा का बनाया हुआ चतुर्मुखादिनाथ-जिनालय बड़ा ही विशाल है। उसका शिल्प की दृष्टि से यथासंभव समूचा वर्णन लिखा और उसमें तथा अन्य जिनालयों में प्राग्वाटज्ञातीय बन्धुओं द्वारा करवाये गये पुण्य एवं धर्म के विविधकार्य जैसे, प्रतिष्ठोत्सव, प्रतिमा-स्थापनादि का लेखन करने की दृष्टियों से पूरी २ विज्ञप्ति प्राप्त की। यहां ता० १६ से १६ चार दिवसपर्यन्त ठहरा। सिरोही के प्रतिष्ठित प्राग्वाट-ज्ञातीय बन्धुओं से मिलकर उनको इतिहासकार्य से अवगत किया।

कुंभारियातीर्थ—ता० २० जून को सिरोही से प्रस्थान करके आबू-स्टेशन पर मोटर द्वारा पहुंचा और वहां से मोटरद्वारा 'अम्बाजी' गया। अम्बाजी देवी के दर्शन करता हुआ ता० २१ जून को प्रातःकाल श्री आरासणतीर्थ वर्तमान नाम श्री कुंभारियातीर्थ को पहुँचा। 'आनन्दजी कल्याणजी की पीढ़ी', अहमदाबाद का मेरे पास में पीढ़ी के मुनीम के नाम पर पत्र था। परन्तु मुनीम विचित्र प्रकृति का निकला। उसने मुझको मंदिरों का अध्ययन करने के लिये कोई सुविधा प्रदान नहीं की। मुझसे जैसा बन सका मैंने कुछ सामग्री एकत्रित की। जिसके आधार पर ही 'आरासणतीर्थ की प्राग्वाट-बन्धुओं द्वारा सेवा' के प्रकरण में लिखा गया है। श्री कुंभारियातीर्थ से ता० २१ की संध्या को पुनः अम्बाजी लौट आया और वहां से ता० २२ जून को प्रातः मोटर द्वारा आबू-स्टेशन पर आ गया और उसी समय आबूकैंप के लिये जाने वाली मोटर तैयार थी, उसमें बैठ कर आबूकैंप उतरा और वहां से देलवाड़ा पहुँच गया; जहां जगविश्रुत विमलवसहि और लूणसिंहवसहि संसार के विभिन्न २ प्रान्तों, देशों से भारत में आने वाले विद्वानों, पुरातत्त्ववेत्ताओं, राजनीतिक यात्रियों को आकर्षित करते रहते हैं।

आबू—यहां ता० २२ जून से २८ पर्यन्त अर्थात् ७ दिवस ठहरा। जगविश्रुत, शिल्पकलाप्रतिमा विमल-वसतिका, लूणसिंहवसतिका का शिल्प की दृष्टियों से पूरा २ अध्ययन एवं मनन करके उनका विस्तृत वर्णन लिखने की दृष्टि से सामग्री एकत्रित की। यहाँ एक रोमांचकारी घटना घटी। ऐसे कार्य करने वालों के भाग्य में ऐसी ही घटनायें लिखी ही होती हैं। पाठकों को इस कठिन मार्ग का कुछ २ परिचय देने के प्रयोजन से उसको यहाँ संक्षिप्त विवरण देना उचित समझता हूँ।

आबूगिरि में अनेक छोटी-बड़ी गुफायें हैं। उनमें वैष्णव, सनातनी सन्यासीगण अपनी धूणियां लगा कर बैठे रहते हैं। वहां उन दिनों में एक बंगाली सन्यासी की अधिक ख्याति प्रसारित थी। लोग उसको बंगाली बाबा कहते थे। उसके विषय में अच्छे २ व्यक्ति यह कहते सुने गये कि वह सौ वर्ष का है, वह जो कहता है वह होकर ही रहता है, वह जिस पर कृपा दृष्टि कर देता है, उसका जीवन सफल ही समझिये; वह बड़ा शांत, गंभीर और ज्ञानी है आदि अनेक चर्चाओं ने मुझको भी उसके दर्शन करने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि मेरे

पास में समय का नितांत अभाव था। सवेरे दूध-चाय पी करके जिनालय में प्रविष्ट होता था, जो कहीं एक या डेढ बजे बाहर आता था और वह समय भी थोड़ा लगता था और परन्तु बीत जाता-सा प्रतीत होता था। भोजनादि करके तीन बजे पुनः मंदिरजी में चला जाता था और सूर्योदय तक अध्ययन करता रहता था। रात्रि में फिर किये गये कार्य का अवलोकन और मनन करता था। 'श्री आनन्दजी परमानन्दजी' नामक पीढ़ी ने जो सिरोही संघ की ओर से वहाँ तीर्थ की व्यवस्था करती है, मुझको हर प्रकार की सुविधायें प्रदान की थीं। वह यहाँ अवश्यमेव धन्यवाद की पात्र और स्मरण करने के योग्य है।

एक दिन मैं एक भटकुड़े साथी के साथ में बंगाली बाबा से मिलने को चला, परन्तु उनकी गुफा नहीं मिली और हम निराश लौट आये। एक दिन और समय निकालकर हम दोनों चले और उस दिन हमने निश्चय कर लिया था कि आज तो बंगाली बाबा से मिलकर ही लौटेंगे। संयोग से हम तुरन्त ही बंगाली बाबा की गुफा के सामने जाकर खड़े हो गये। बाबाजी जटा बढ़ाये, लम्बा चुग्गा पहिने, पैरों में पावड़ियाँ डाले गुफा के बाहिर टहल रहे थे। हमने विनयपूर्वक नमस्कार किया और बाबाजी ने आशीर्वाद दिया। अब हम तीनों गुफा में प्रविष्ट हुये। बाबाजी अपनी सिंहचर्म पर बैठे और हम जूट की थैलियों पर। कुछ क्षण मौन रहने पर आत्मा और परमात्मा पर चर्चा आरम्भ हुई। बाबाजी ने बड़ी ही योग्यता एवं बुद्धिमत्ता से चर्चा का निर्वाह किया। यह चर्चा लगभग १२–१५ मिनट पर्यन्त चली होगी कि बीकानेर की राजमाता के दो सेवक फलादि की कुछ भेंट लेकर उपस्थित हुये और नमस्कार करके तथा भेंट बाबाजी के सामने सादर रख करके पीछे पांव लौट कर हमारे पास में आकर बैठ गये। बीच में उन में से एक ने बात काट कर कहा कि गुरुदेव! कल तो यहां सत्याग्रह चालू होने वाला है। इस पर मैंने कहा कि जब आबू-प्रदेश के निवासियों की भाषा, रहन-सहन और संबंधीगण भी राजस्थानीय है, केवल प्राचीन इतिहासक के पृष्ठों पर अर्वाचीन संमति को राजस्थान से अलग करके गूर्जरभूमि में मिला देना अन्याय ही माना जायगा। इस पर बाबाजी ने प्रश्न किया, 'वे इतिहास के पृष्ट कौन से हैं?' मैंने कहा, 'आपके यहाँ के जैन मंदिरों को ही लीजिये। ये यहाँ पर विनिर्मित सर्व मंदिरों में अधिकतम प्राचीन और शिल्प और मूल्य की दृष्टियों से दुनिया भर में बेजोड़ हैं। ये गूर्जरसम्राटों के महामात्य और दंडनायकों के बनाये हुये हैं। एक विक्रम की ग्यारहवीं और दूसरा तेरहवीं शताब्दी में बना है। ये सिद्ध करते हैं कि एक सहस्र वर्ष पूर्व यह भाग गूर्जरसाम्राज्य का विशिष्ट एवं समाहृत अंग था। इस पर बाबाजी क्रोधातुर हो उठे और इतने आग-बबूला हुये कि उनको अपनेपन का भी तनिक भान नहीं रहा और उबल कर बोले, 'तू क्या जाने कल का लोंडा।' ये मंदिर मुसलमानों के समय में हिन्दूओं की छाती को चीर कर बनाये गये हैं और तीन सौ चार सौ वर्ष के पहिले बने हैं। बस मत पूछिये, मेरा भी पारा चढ़ गया। मैंने भी तुरन्त ही उत्तर दिया, 'महाराजजी! मैं आपसे मिलने के लिए आपको संन्यासी जान कर और वह भी फिर मुझको अनेक जनों ने प्रेरित किया है, तब मिलने आया हूं। मैं आपसे आपको इतिहासकार अथवा इतिहासवेत्ता या पुरातत्त्ववेत्ता समझ कर मिलने नहीं आया हूँ। अगर आप अपने को इतिहास का पंडित समझते हैं, तो फिर मैं आप से उस धरातल पर बातचीत करूँ। आप साधु हैं और साधु को क्रोध करना अथवा मिथ्या बोलना सर्वथा निंदनीय है। आप तो फिर नग्न झूठ बोल रहे हैं और फिर तामस ऊपर से। यह आपको योग्य नहीं। बस संन्यासीजी को मेरे इन शब्दों ने नहीं मालूम मस्तिष्क की किस धरा में पहुंचा दिया। वे थरथर कांपने लगे, ओष्ट फड़काने लगे। आशन पर से उठे और गुफा

के एक कोने की ओर चले। उस कोने में कुछ कुल्हाड़ियां, एक बल्लम, एक कटार और ऐसे ही कुछ और हथियार पड़े थे। बाबाजी उनमें से एक कुल्हाड़ी उठा लाये और मेरे सामने आकर उसको मेरे शिर पर तान कर बोले, 'मारता हूँ अभी, मुझको झूठा और क्रोधी कहने वाले को।' मैं उसी प्रकार स्थिर और शांत बैठा रहा। मेरा साथी और वे नवागन्तुक दोनों बीकानेरी पुरुष देखते रह गये, यह क्या से क्या हो गया। मैंने कहा, 'महाराज! सत्य पर झूठ आक्रमण करता ही है, इसमें आश्चर्य और नवीन बात कौन सी; परन्तु हार झूठ की ही होती है। आप में अगर कुछ भी सत्यांश होता, यह आपकी कुल्हाड़ी अब तक अपना कार्य कर चुकी होती, लेकिन आप मुझको पूछ जो रहे हैं, यह झूठ का निष्फल प्रयास है।' बस इतना कह कर मैं भी फिर कुछ नहीं बोला। बाबाजी एक दो मिनट उसी क्रोधपूर्णमुद्रा में कुल्हाड़ी ताने खड़े रहे और फिर जाकर अपने आसन पर बैठ गये। तीन, चार मिनट व्यतीत होने पर मैं उठा और यह कह कर, 'बाबाजी! मैं तुमको साधु समझ कर तुम से मिलने आया था, परन्तु निकले तुम पर धर्म के द्वेषी और पूरे पाखण्डी।' 'राम राम' कह कर मैं गुफा से बाहर निकल आया। मेरा साथी भी मेरे ही पीछे उठ कर बाहर आगया। हम दोनों इस विचित्र एवं अनोखी घटना पर चर्चा करते हुये आबूकैम्प गये और वहां बंगाली बाबा की पोपलीला का मोटर-स्टेन्ड पर खड़े हुये सैकड़ों स्त्री-पुरुषों के बीच भंडा-फोड़ किया और फिर वहाँ से लौट कर संध्या होते २ देलवाड़ा की जैनधर्मशाला में लौट आये और प्रेरणा देने वाले साथियों से यह सब कह सुनाया; परन्तु उन अंधभक्तों को इसमें कुछ निमक-मिर्च मिला-सा ही लगा, ऐसा मेरा अनुभव है। यह चर्चा आबूकैम्प और देलवाड़े में सर्वत्र फैल गई। दो दिन के बाद में सुना कि वर्षों से वहां रहने वाला वह बंगाली बाबा कहीं चला गया है।

विमलवसति और लूणसिंहवसति तथा भीमवसति मंदिरों का अध्ययन करके जो सामग्री उद्धृत की तथा उसके आधार पर जो उन पर लिखा गया वह इतिहास में पढ़ने को मिलेगा ही; अतः सामग्री के विषय में यहां कुछ भी कहना मैं अनावश्यक तो नहीं समझता, परन्तु फिर भी उसको लम्बा विषय समझ कर, उसको आगे के लिये यहां छोड़ देना चाहता हूँ।

अचलगढ़—ता० २९ जून की प्रातः वेला में मैं मोटर द्वारा अचलगढ़ की ओर चला। मार्ग में गुरुशिखर की चोटी के दर्शन किये और वहां से लौट कर संध्या होते २ अचलगढ़ मोटर द्वारा पहुंचा। ता० ३० जून को वहां ठहरा और प्राग्वाटज्ञातीय सं० सहसा द्वारा विनिर्मित श्री चतुर्मुखादिनाथ-जिनालय के दर्शन किये और उसका शिल्प की दृष्टि से परिचय तैयार किया। अन्य मन्दिरों से भी प्राप्त होने वाली सामग्री एकत्रित की और यह सर्व कार्य करके ता० ३० जून की संध्या को ही देलवाड़ा पुनः लौट आया।

गिरनार—ता० १ जुलाई को देलवाड़ा से प्रातःकाल रवाना होकर आबूस्टेशन से सवेरे की गाड़ी से गिरनार के लिये चला। ता० २ जुलाई से ता० ४ तक जूनागढ़ ठहरा। पीढ़ी की सौजन्य से मुझको गिरनार-गिरिस्थ 'श्री वस्तुपाल-तेजपाल ट्रंक' का अध्ययन करने की पूरी २ सुविधा मिल गई। इतिहास के योग्य सामग्री एकत्रित करके वहां से ता० ४ को प्रभासपत्तन के लिये रवाना हो गया। 'वस्तुपाल-तेजपाल ट्रंक' का सविस्तार विवरण तथा अन्य प्राग्वाटबन्धुओं के प्रशंसनीय कार्यों का यथासंभव लेख यहां तैयार कर लिया था।

प्रभासपत्तन—इस नगरी का जैन और वैष्णव ग्रंथों में बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। सोमनाथ का ऐतिहासिक मन्दिर इसी नगरी में बना हुआ है। महामात्य वस्तुपाल तेजपाल ने प्रभासपत्तन में अनेक निर्माण-कार्य करवाये थे, परन्तु दुःख है कि आज उनमें से एक भी उनके नाम पर नहीं बचा है। नगरी में से सोमनाथ-मन्दिर की ओर जाने का जो राजमार्ग है, उसमें पूर्वाभिमुख एक देवालय-सा बना हुआ है। मैंने उसका बड़ी ही सूक्ष्मता से निरीक्षण किया तो वह जिनालय प्रतीत हुआ। यवनशासकों के समय में वह नष्ट-भ्रष्ट किया जाकर मैस्जिद बना दिया गया था। आज वह अजायबगृह बना दिया गया है और वर्तमान सरकार ने उसमें सोमनाथ-मन्दिर के खण्डित प्रस्तर-अंश रख कर उसको उपयोग में लिया है। सारी प्रभासपत्तन में प्राचीन, विशाल और कला की दृष्टि से यही एक भवन है, जो प्रभासपत्तन के कभी रहे अति समृद्ध एवं गौरवशाली वैभव का स्मरण कराता है। मेरे अनुमान से महामात्य वस्तुपाल द्वारा प्रभासपत्तन में जो अनेक निर्माणकार्य करवाये गये हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय उसके इतिहास में आगे दिया गया है, यह देवालय-सा भवन उसका बनाया हुआ कोई जिनालय है। स्तंभों में रही हुई कीचकाकार मूर्त्तियां तोड़ दी गई हैं। गुम्बजों में रही हुई तथा नृत्य करती हुई, संगीतवाद्यों से युक्त देवी-आकृतियां खण्डित की हुई हैं। फिर भी अपराधियों के हाथों से कहीं २ कोई चिह्न बच गया है, जो स्पष्ट सिद्ध करता है कि यह भवन किस धर्म के मतानुयायियों द्वारा बनाया गया है। सोचा था वहां महामात्य वस्तुपाल द्वारा विनिर्मित अनेक निर्माण के कार्यों में से कुछ तो देखने को मिलेंगे, परन्तु कुछ भी नहीं मिला और जो ऊपर लिखित एक भवन मिला, उसको देखकर दुःख ही हुआ और पूर्ण निराशा। प्रभासपत्तन से ता० ५ जुलाई को लौट चला और स्टे० राणी एक दिन ठहर कर ता० ८ जुलाई को अजमेर होकर रात्रि को ३ बज कर २० मिनट पर पहुँचने वाली गाड़ी से भीलवाड़ा सकुशल पहुंच गया।

संयुक्तप्रान्त-आग्रा-अवध का भ्रमण

भीलवाड़ा से 'अखिल भारतवर्षीय पुरवार-ज्ञातीय महासम्मेलन' के अधिवेशन में, जो १३-१४ अक्टोबर सन् १९५१ को महमूदाबाद (लखनऊ) में हो रहा था, सभा के मानद मन्त्री द्वारा निमंत्रित होकर ता० ८-१०-५१ को गया था और पुनः ता० २०-१०-५१ को भीलवाड़ा लौट आया था।

वैद्य बिहारीलालजी पोरवाल जो अभी फिरोजाबाद में चूड़ियों का थोक-धन्धा करते हैं कुछ वर्षों पहिले वे आहोर (मारवाड़) आदि ग्रामों में वैद्य का धन्धा करते थे। इनके पिता श्री भी इधर ही अपना धन्धा करते रहे थे। मन्त्री श्री ताराचन्द्रजी की इनसे पहिचान थी। इन्होंने जब किसी प्रकार यह जान पाया कि प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखा जा रहा है, इन्होंने ताराचन्द्रजी से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया और उसके द्वारा इनका मेरे से भी परिचय हुआ। वैसे ये उधर पुरवार कहलाते हैं, परन्तु ये पुरवार और पौरवाल को एक ही ज्ञाति समझते हैं, अतः ये अपने को पौरवालज्ञातीय लिखते हैं और इनकी फर्म का नाम भी 'पौरवाल एन्ड ब्रदर्स' ही है। इन्होंने मेरा परिचय उक्त सभा के मानद मन्त्री श्री जयकान्त से करवाया। अधिवेशन में जाने के लगभग दो वर्ष पूर्व ही हमारा सम्बन्ध श्री जयकान्त से सुदृढ़ बन गया था। हम दोनों में प्राग्वाट-इतिहास को लेकर सदा पत्र-व्यवहार चलता रहा। मेरी भी इच्छा थी और श्री जयकान्त की भी इच्छा थी कि मैं उनकी सभा के निकट में होने वाले

अधिवेशन में सक्रिय भाग लूँ। मुझको और श्री ताराचन्द्रजी दोनों को उक्त अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रण मिले। श्री ताराचन्द्रजी ने मुझे अकेले को ही भेजा। भीलवाड़ा से ता० ८ अक्टोबर को मैं महमूदाबाद के लिए रवाना हुआ और दो दिन दिल्ली ठहर कर ता० ११ को महमूदाबाद पहुँच ही गया।

महमूदाबाद—सभा के सदस्यगण, प्रधान और मंत्री श्री जयकान्त तथा वैद्य विहारीलालजी आदि प्रमुख जन मेरे से पहिले ही वहाँ आ चुके थे। ये सर्व सज्जन मुझ से बड़ी सौजन्यतापूर्ण मिले और मैं उन्हीं के साथ पंडाल में ठहराया गया। ता० १३ को निश्चित समय पर सभा का अधिवेशन प्रारंभ हुआ। उस दिन मेरा सारा समय एक-दूसरे से परिचित होने में और पुरवारज्ञातीय प्रतिष्ठित एवं अनुभवी जन, पंडित, विद्वान्गणों से पुरवारज्ञाति संबंधी ऐतिहासिक चर्चा करने में ही व्यतीत हो गया। ता० १४ को प्रातः समय अधिवेशन लगभग ८ बजे प्रारंभ हुआ। उस समय मेरा लगभग ४५-५० मिनट का पुरवारज्ञाति और पौरवालज्ञाति में सज्ञातीयतत्त्व पर ऐतिहासिक आधारों पर भाषण हुआ। उससे सभा में उपस्थित जन अधिकांशतः प्रभावित ही हुये और बाद में जो भी मुझ से मिले, वे आश्चर्य प्रकट करने लगे कि हमको तो ज्ञात ही नहीं था कि प्राग्वाट अथवा पौरवालज्ञाति और हम एक ही हैं। एतद् संबंधी जो कुछ भी साधन-सामग्री मुझको उस समय और पीछे से मिल सकी, उसका उपयोग करके मैंने प्रस्तुत इतिहास के पृष्ठों में अपने विचार लिखे हैं। उनको यहां लिखने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता हूँ।

यहाँ भी मेरे साथ में एक अद्भुत घटना घटी और वह इस सुधारवाद के युग में कम से कम अद्भुत और विचारणीय है। ता० १४ को प्रातः होने वाले खुले अधिवेशन में एक पुरवारबंधु ने स्टेज पर खड़े होकर भाषण दिया था। अपने भाषण में उन्होंने यह कहा, 'लोढ़ाजी के साथ बैठ कर जिन २ सज्जनों ने कल कच्चा भोजन किया, क्या उन्होंने ज्ञाति के नियमों का उल्लंघन नहीं किया?' बस इतना कहना था कि सभा के मंत्री, प्रधान एवं अधिकांशतः सदस्य और आगेवान् पंडित, विद्वानों में आग लग गई। वे सज्जन तुरन्त ही बैठा दिये गये। इस पर मान्य मंत्री जयकान्त ने 'ओसवालज्ञाति' और उसके धर्म, आचार, विचारों पर अति गहरा प्रकाश डालते हुये उक्त महाशय को अति ही लज्जित किया। यह बात यहीं तक समाप्त नहीं हुई। जब भोजन का समय आया तो समाज के कुछ जनों ने, जो उक्त महाशय के पक्षवर्त्ती थे यह निश्चय किया कि लोढ़ाजी के साथ में भोजन नहीं करेंगे। यह जब मुझको प्रतीत हुआ, मैंने श्री जयकान्त और सभापतिजी आदि से निर्भिमानता पूर्वक कहा कि अगर मेरे कारण सम्मेलन की सफलता में बाधा उत्पन्न होती हो और समाज में संमति के स्थान पर फूट का जोर जमता हो तो मुझको कहीं अन्यत्र भोजन करने में यत्किंचित् भी हिचकचाहट नहीं है। इस पर वे जन बोल उठे, 'हम जानते हैं जैनज्ञातियों का स्तर भारत की वैश्य एवं महाजन समाजों में कितना ऊंचा है और वे आचार विचार की दृष्टियों से अन्य ज्ञातियों से कितनी आगे और ऊंची हैं। यह कभी भी संभव नहीं हो सकता है कि किसी मूर्ख की मूर्खता प्रभाव कर जावे। जहां हरिजनों से मेल-जोल बढ़ाने के प्रयास किये जा रहे हैं, वहां हम वैश्य २ जिनमें सदा भोजन-व्यवहार होता आया है, अब क्योंकर साथ भोजन करने से रुक जावें। अगर यह मूर्खता चल गई तो पुरवारज्ञाति अन्य वैश्यसमाजों से कभी भी अपना प्रेम और स्नेह बांधना तो दूर रहा, उनके साथ बैठकर पानी पीने योग्य भी नहीं रहेगी और सुधार के पंथ में आगे बढ़ने के स्थान में कोसों पीछे हट जायगी। यह कभी भी नहीं हो सकता कि आप उच्च कुलीन, उच्च ज्ञातीय होने पर भी और वैश्य होते हुये अलग भोजन करें

और हम अलग करें। तिस पर आप फिर सभा द्वारा निमंत्रित होकर आये हैं। उपस्थित जनों में से आगेवान इस बात पर दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये और मुझको विवशतः उनके साथ ही भोजन करना पड़ा। उस व्यक्ति ने अपने प्रयत्न में अपने को असफल हुआ देखकर, प्रमुख २ जनों के समक्ष अपने बोले और किये पर गहरा पश्चात्ताप किया और ओसवालज्ञाति के सामाजिक स्तर से अपने को अनभिज्ञ बतला कर अपनी भूल प्रकट की।

जिन समाजों में ऐसे विरोधी प्रकृति के पुरुष अधिक संख्या में होंगे, वे समाज अभी अपनी उन्नति की आशायें लगाना छोड़ दें। उक्त घटना से मुझको किंचित् भी अपमान का अनुभव नहीं हुआ। सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने वालों में तो ऐसी और इससे भी अधिक भयंकर और अपमानजनक परिस्थितियों का सामना करने की तैयारी होनी ही चाहिये। इतना अवश्य दुःख हुआ कि वैश्यसमाजों के भाग्य में अभी ग्रह बुरा ही पड़ा हुआ है और फलतः वे एक-दूसरे के अधिकतर निकट नहीं आ रही हैं।

फिरोजाबाद—महमूदाबाद से ता० १५ अगस्त को मैं प्रस्थान करके वैद्य श्री बिहारीलालजी के साथ में फिरोजाबाद आया। यहाँ जैन दिगम्बरमतानुयायी परवारज्ञाति के आठ सौ ८०० के लगभग घर हैं। मैं इस ज्ञाति के अनुभवी पंडितों, विद्वानों और वकीलों से मिला और उनकी ज्ञाति की उत्पत्ति का समय, उत्पत्ति का स्थान और दूसरे कई एक प्रश्नों पर उनसे बात-चीत की। परवारज्ञाति का अभी तक नहीं तो कोई इतिहास ही बना है और नहीं तत्संबंधी साधन-सामग्री ही कहीं अथवा किसी के द्वारा संकलित की हुई प्रतीत हुई। फिरोजाबाद में ता० १६, १७, १८ तक ठहरा और फिर ता० १९ को वहां से रवाना होकर ता० २० अगस्त को रात्रि की गाड़ी से ३ बज कर २० मिनट पर भीलवाड़ा पहुँच गया।

महमूदाबाद के इस अधिवेशन में भाग लेने से बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि संयुक्तप्रान्त-आगरा-अवध, बरार, खानदेश, अमरावती-प्रान्तों के अनेक नगर, ग्रामों से सम्मेलन में संमिलित हुये व्यक्तियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जो नगर-नगर, ग्राम-ग्राम जाने से बनता। अतः मैंने इस भ्रमण को संयुक्तप्रान्त-आगरा-अवध का भ्रमण कहा है।

मालवा-प्रान्त का भ्रमण

भीलवाड़ा से मालवा-प्रान्त का भ्रमण करने के हित ता० १४ जनवरी ई० सन् १९५२ को प्रस्थान करके इन्दौर, देवास, धार, माण्डवगढ़, रतलाम, महीदपुर, गरोठ, रामपुरा आदि प्रमुख नगरों में भ्रमण करके पुनः भीलवाड़ा ता० २५ जनवरी को लौट आया था।

इन्दौर—भीलवाड़ा से दिन की गाड़ी से प्रस्थान करके दूसरे दिन इन्दौर संध्या समय पहुँचने वाली ट्रेन से पहुंचा। वहाँ शाह वीरीदास मीठालाल, कापड़ मार्केट, इन्दौर की दुकान पर ठहरा। इस फर्म के मालिक सेठ श्री छगनलालजी और उनके पुत्र मीट्ठालालजी ने मेरा अच्छा स्वागत किया। मेरे साथ जहाँ उनका चलना आवश्यक प्रतीत हुआ सेठजी साथ में आये। ता० १६ से ता० १८ तक तीन दिवसपर्यन्त वहाँ ठहरा। अनेक अनुभवी प्राग्वाटज्ञातीय सज्जनों से मिला और मालवा में रहने वाले प्राग्वाटकुलों के संबंध में इतिहास की

सामग्री प्राप्त करने का पूरा २ प्रयत्न किया। पद्मावतीपौरवालज्ञातीय शिवनारायणजी से जिनसे पत्रों द्वारा पूर्व ही परिचय स्थापित हो चुका था, मिलना प्रमुख उद्देश्य था। सिरोहीराज्य में ब्राह्मणवाड़तीर्थ में वि० सं० १६६० में 'श्री अखिल भारतवर्षीय पोरवाड़-महासम्मेलन' का प्रथम अधिवेशन हुआ था। उस अवसर पर श्री शिवनारायणजी इन्दौर, ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी देवास, समर्थमलजी सिंघवी सिरोही आदि साहित्यप्रेमियों ने प्राग्वाट-इतिहास लिखाने का प्रस्ताव सभा के समक्ष उपस्थित किया था। सम्मेलन के पश्चात् भी इस दिशा में इन सज्जनों ने कुछ कदम आगे बढ़ाया था। परन्तु समाज ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और उनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पाई। ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी 'पौरवाड़ महाजनों का इतिहास' नामक एक छोटी-सी इतिहास की पुस्तक लिख चुके हैं। शिवनारायणजी 'यशलहा' इन्दौर ऐसा प्रतीत होता है इतिहास के पूरे प्रेमी हैं। उन्होंने प्राग्वाट-ज्ञातिसंबंधी सामग्री 'प्राग्वाट-दर्पण' नाम से कभी से एकत्रित करना प्रारंभ करदी थी। वह हस्तलिखित प्रति के रूप में मुझको उन्होंने बड़ी ही सौजन्यतापूर्ण भावनाओं से देखने को दी। मुझको वह उपयोगी प्रतीत हुई। विशेष बात जो उसमें थी, वह पद्मावतीपौरवाड़संबंधी इतिहास की अच्छी सामग्री। मैंने उक्त प्रति को आद्योपांत पढ़ डाला और शिवनारायणजी से उक्त प्रति की मांग की। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, 'मैं कई एक कारणों से प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखने की अपनी अभिलाषा को पूर्ण नहीं कर पाया, परन्तु अगर मैं किन्हीं भाई को, जो प्राग्वाट-इतिहास लिखने का कार्य उठा चुके हैं, अपनी एकत्रित की हुई साधन-सामग्री अर्पित कर सकूँ और उसका उपयोग हुआ देख सकूँ, तो भी मुझको पूरा २ संतोष होगा।' उन्होंने सहर्ष 'प्राग्वाट-दर्पण' को मेरे अधिकृत कर दिया और यह अवश्य कहा कि इसका उपयोग जब हो जाय, यह तुरन्त मुझको लौटा दी जाय। बात यथार्थ थी, मैंने सहर्ष स्वीकार किया और उनको अपने श्रम की अमूल्य वस्तु को इस प्रकार एक अपरिचित व्यक्ति के करों में उपयोगार्थ देने की अद्वितीय सद्भावना पर अनेक बार धन्यवाद दिया। पश्चात् मैंने उनसे यह भी कहा कि इसका मूल्य भी आप चाहें तो मैं सहर्ष देने को तैयार हूं। इस पर वे बोले 'क्या मैं पौरवाड़ नहीं हूं ? क्या मेरी ज्ञाति के प्रति मेरा इतना उत्तरदायित्व भी नहीं है ?' मैं चुप रहा। वस्तुतः शिवनारायणजी अनेक बार धन्यवाद के पात्र हैं।

देवास—ता० १६ जनवरी को प्रातः टेक्सीमोटर से मैं देवास के लिए रवाना हुआ। 'पौरवाड़-महाजनों का इतिहास' नामक पुस्तक के लेखक ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी देवास में रहते हैं। उनसे मिलना आवश्यक था। उक्त पुस्तक के लिख जाने के पश्चात् भी वे यथाप्राप्य सामग्री एकत्रित ही करते रहे थे। वह सब हस्तलिखित कई एक प्रतियों के रूप में मुझको देखने को मिली। जो-जो अंश मुझको उपयोगी प्रतीत हुये, मैंने उनको उद्धृत कर लिया और उन्होंने भी सहर्ष उतारने देने की सौजन्यता प्रदर्शित की। ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी जैसे इतिहास के प्रेमी हैं, वैसे चित्रकला के भी अनुपम रागी हैं। ज्ञाति के प्रति उनके मानस में बड़ी श्रद्धा है। उनके द्वारा प्राप्त सामग्री का इतिहास में जहाँ २ उपयोग हुआ है, वहाँ २ उनका नाम निर्देशित किया गया है। वस्तुतः वे भी अनेक बार धन्यवाद के पात्र हैं।

धार—ता० १६ को ही दोपहर को इन्दौर के लिये लौटने वाली टेक्सीमोटर से मैं देवास से रवाना हो गया और इन्दौर पर धार के लिये जाने वाली टेक्सी के लिए बदली करके संध्या होते धार पहुँच गया। धार में

श्री गट्टूलालजी पौरवाड़ बड़े ही मिलनसार एवं प्रतिष्ठित सज्जन हैं। ये ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी के संबन्धी हैं। ठाकुर साहब ने मुझको इनके नाम पर एक पत्र लिखकर दिया था। श्री गट्टूलालजी कई वर्षों से श्री माण्डवगढ़तीर्थ की देखभाल करते हैं और आप तीर्थ की व्यवस्था करने वाली कमेटी के प्रधान भी हैं। इनसे धार, राजगढ़, कुक्षी, अलिराजपुर, नेसाड़, मलकापुर आदि नगरों, ग्रामों में रहने वाले प्राग्वाटकुलों के विषय में बहुत अधिक जानने को मिला।

माण्डवगढ़—ता० २० को मैं माण्डवगढ़ पहुँचा। श्री गट्टूलालजी ने तीर्थ की पीढ़ी के मुनीम के नाम पर पत्र भी दिया था। माण्डवगढ़ में अतिरिक्त एक छोटे-से जिनालय के जैनियों के लिये और कोई आकर्षण की वस्तु नहीं है। उनको ही तीर्थ बनाकर माण्डवगढ़तीर्थ का गौरव बनाये रखने का तीर्थसमिति ने प्रयास किया है।

रतलाम—माण्डवगढ़ से ता० २१ की प्रातः टेक्सी से धार और धार से इन्दौर और इन्दौर से दिन की ट्रेन द्वारा रतलाम आगया। रतलाम में इतिहास के लिये कोई वस्तु प्राप्त नहीं हुई। ता० २२ को संध्या की गाड़ी से प्रस्थान करके कोटा जाने वाली ट्रेन से सहीदपुर पहुँचा।

सहीदपुर—यहां जागड़ा पौरवालों के अधिक घर हैं। उनके प्रतिष्ठित कुछ व्यक्तियों से मिला; परन्तु इस शाखा के विषय में अधिक उपयोगी वस्तु कोई प्राप्त नहीं हो सकी।

गरोठ—सहीदपुर से ता० २३ की प्रातः ट्रेन द्वारा गरोठ पहुँचा। गरोठ में जांगड़ा पौरवाड़ों के लगभग १०० से ऊपर घर हैं। गरोठ में श्रीमान् कंचनमलजी साहब वांठिया के यहां मेरा स्वसुरालय भी है। मैं वहीं जा कर ठहरा। एक पंथ दो कार्य। वहां के प्रतिष्ठित एवं अनुभवी पौरवाड़ सज्जनों से मिला और कई एक दंतकथायें सुनने को मिली; परन्तु प्रामाणिक वस्तु कुछ भी नहीं।

मेलखेड़ा और रामपुरा—ता० २४ की प्रातः गरोठ से रवाना होकर प्रथम मेलखेड़ा गया, परन्तु जिन व्यक्ति से मिलना था, वे वहां नहीं थे; अतः तुरन्त ही लौटकर आ गया और रामपुरा पहुँचा। 'पौरवाल ऑइल ब्रदर्स' के मालिक बाबूलालजी से मिला। आप अध्यापक भी रहे हैं। परन्तु यहां भी कोई ऐतिहासिक वस्तु जानने को नहीं मिली।

ता० २५ को रामपुरा से बहुत भोर रहते चलने वाली टेक्सीमोटर से रवाना होकर नीमच पहुँचा और दिन को तीन बजे पश्चात् भीलवाड़ा पहुंचने वाली गाड़ी से भीलवाड़ा सकुशल पहुंच गया।

जोधपुर-बीकानेर का भ्रमण

भीलवाड़ा से ता० १९ अप्रेल सन् १९५२ को दोपहर पश्चात् अजमेर जाने वाली ट्रेन से रवाना होकर अजमेर होता हुआ स्टे० राणी पहुँचा।

खुड़ाला और बाली—ता० २० को दिन भर स्टे० राणी ही ठहरा। रात्रि के प्रातः लगभग ४ बजे पश्चात् जाने वाली यात्रीगाड़ी से मैं और श्री ताराचन्द्रजी दोनों खुड़ाला गये। वहाँ बनेचन्द नवला जी का कुल प्राग्वाट-

ज्ञाति में गौरवशाली माना जाता है। इस कुल में सुखमलजी नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हो गये हैं। सुखमलजी वि० सं० १७६० से ८० तक सिरोही के दीवान रहे हैं ऐसा कहा जाता है। इनके विषय में इतिहास में लिखा गया है। शाह वनेचन्द्र नवलाजी के कुल में श्री संतोषचन्द्रजी बड़े ही सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं। हम उनके ही यहाँ जाकर ठहरे। श्री संतोषचन्द्रजी ने हमको अपने पूर्वजों को मिले कई एक पट्टे, परवाने दिखाये। भोजन कर लेने के पश्चात् मैं वाली चला गया, क्योंकि वहाँ कुलगुरु भट्टारक श्री मियाचन्द्रजी से भी मिलना था और धरणाशाह के वंशजों के विषय में उनसे जानकारी प्राप्त करनी थी। वे वहां नहीं मिले और मैं वापिस लौट आया और फालना से संध्या समय अजमेर की ओर आने वाली यात्रीगाड़ी से स्टे० राणी आ गया। ता० २१ को दिन भर राणी ही ठहरा।

धाणसा—ता० २१ को चार बजे पश्चात् आने वाली यात्रीगाडी से स्टे० ऐरनपुरा होकर सुमेरपुर पहुँचा और दूसरे दिन प्रातः टेक्सीमोटर से जालोर और जालोर से ट्रेन द्वारा स्टे० मोदरा उतर कर संध्या समय धाणसा ग्राम में पहुँचा। धाणसा में श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी महाराज सा० अपनी शिष्य एवं साधुमण्डली सहित विराजमान थे। वहां दो दिन ठहरा और तब तक हुये इतिहास-कार्य से, उनको भलीविध परिचित किया।

जोधपुर—ता० २४ अप्रेल को धाणसा से प्रातः की यात्रीगाड़ी से रवाना होकर संध्या समय जोधपुर पहुंचा। दूसरे दिन वयोवृद्ध, अथक परिश्रमी मुनिराज श्री ज्ञानसुन्दरजी (देवगुप्तसूरि) से मिला। आपने छोटी-बड़ी लगभग १५० से ऊपर पुस्तकें लिखी हैं। 'पार्श्वनाथ-परम्परा' भाग दो अभी आपकी लिखी बड़ी जिल्द वाली पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उसमें आपने उपकेशगच्छीय आचार्यों का क्रमवार जीवन-चरित्र देने का प्रयास किया है। उपकेशगच्छीय आचार्यों का जीवन-चरित्र लिखते समय उनकी नीश्रा में श्रावकों द्वारा करवाये गये पुण्य एवं धर्म के कार्यों का भी यथासंभव उल्लेख किया है। आपने उक्त पुस्तकों में के प्रत्येक प्रकरण को संवत् और स्थल से पूरा २ सजाया है। प्राग्वाटज्ञातीय बन्धुओं के भी उक्त दोनों पुस्तकों में कईएक स्थलों पर नाम और उनके कार्यों का लेखा है। कई वर्षों पहिले आपश्री 'जैन जातिमहोदय' नामक एक बड़ी पुस्तक भी लिख चुके थे। उसमें आप श्री ने श्रीमालज्ञाति; प्राग्वाटज्ञाति और ओसवालज्ञाति के विषय में ही बहुत कुछ लिखा है। आपसे कईएक प्रश्नों पर चर्चा करके आपके गम्भीर अनुभव का लाभ लेने की मेरे हृदय में कई वर्षों से भावना थी और इतिहासकार्य के प्रारम्भ कर लेने के पश्चात् तो वह और बलवती हो गई। आपसे अच्छी प्रकार बातचीत हुई। आपने स्पष्ट शब्दों में कहा:—'मैंने तो यह सर्व ख्यातों और पट्टावलियों के आधार पर लिखा है। जिसको इन्हें प्रामाणिक मानना हो वे प्रामाणिक मानें और जिनको कल्पित मानना हो वे वैसा समझें।' आपने हस्तलिखित उपकेशगच्छपट्टावली देखने को दी, जो अभी तक अप्रकाशित है। उसमें से मैंने प्राग्वाटज्ञाति के उत्पत्तिसम्बंधी कुछ श्लोकों को उद्धृत किया। आपश्री से श्री ताराचन्द्रजी का पत्र-व्यवहार तो बहुत समय पूर्व से ही हो रहा था। मैंने भी आपश्री को २-३ पत्र दिये थे, परन्तु उत्तर एक का भी नहीं मिला था। अब मिलने पर उन सब का प्रयोजन हल हो गया। आपश्री के लिखे हुये कईएक ग्रन्थों का इतिहासलेखन में अच्छा उपयोग हुआ है। आपश्री इस दृष्टि से हृदय से धन्यवाद के योग्य हैं। यहां मैं ता० २६ तक ठहरा।

बीकानेर—ता० २६ अप्रेल को रात्रि की गाड़ी से रवाना हो कर दूसरे दिन ता० २७ को संध्या-समय बीकानेर पहुँचा। दूसरे दिन नाहटाजी श्री अगरचंद्रजी से मिला। आपके विषय में अधिक कहना व्यर्थ है। आप साहित्यक्षेत्र में पूरे परिचित हैं और अपने इतिहासज्ञान एवं पुरातत्त्व-अनुभव के लिये भारत के अग्रगण्य विद्वानों में आप अति प्रसिद्ध हैं। आपका संग्रहालय भी राजस्थान और मालवा में अद्वितीय है। उसमें लगभग पंद्रह सहस्र प्रकाशित पुस्तकें और इतनी ही हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों का संग्रह है। ऐतिहासिक पुस्तकों का संग्रह अपेक्षाकृत अधिक और सुन्दर है। आपसे मिल कर और बातचीत करके मुझको अत्यन्त आनंद हुआ और साथ में पश्चात्ताप भी। पश्चात्ताप इसलिये कि मैं आपसे अब मिल रहा हूं जब कि इतिहास का प्रथम भाग अपनी पूर्णता को प्राप्त होने जा रहा है। प्राग्वाटज्ञाति की उत्पत्ति एवं प्राचीनता पर आपने समय २ पर अपने लेखों में प्रकाश डाला है। आपके उस अनुभव एवं ज्ञान का मुझको भी उपयोग करना था और इस ही दृष्टि से मैं आपसे ही मिलने बीकानेर गया था। आप बड़ी ही सरलता, सहृदयता, सौजन्य से मिले और जितना मैं ले सका और जितना मैंने लेना चाहा, उतना आपने अपने से और अपने संग्रहालय से मुझको लेने दिया। आप से जो कुछ सामग्री मैंने ली है, उसका इतिहास में जहाँ २ उपयोग हुआ है, आपका वहाँ २ नाम अवश्य निर्देशित किया गया है। आप से मिलकर मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। विशेष आपने मेरी प्रार्थना पर प्रस्तुत इतिहास की भूमिका लिखना स्वीकृत किया, यह मेरे जैसे इतिहास-क्षेत्र में नवप्रविष्ट युवक लेखक के लिये अपूर्व सौभाग्य की बात है। आप कई बार धन्यवाद के योग्य हैं। यहाँ मैं पूरे दो दिन ठहरा।

बीकानेर से ता० २९ की संध्यासमय की यात्रीगाड़ी से प्रस्थान करके अजमेर होता हुआ ता० ३० की पिछली प्रहर में तीन बजकर बीस मिनट पर भीलवाड़ा पहुँचने वाली यात्रीगाड़ी से सकुशल भीलवाड़ा पहुँच गया।

पत्र-व्यवहार

इतिहास का विषय अनन्त और महा विस्तृत एवं विशाल होता है। इस कार्य में अधिक से अधिक व्यक्ति कलमें मिलाकर बढ़ें, तो भी शंका रह जाती है कि कोई इतिहास पूर्णतः लिखा जा चुका है। ऐसी स्थिति में अगर किसी लेखक के भाग्य में किसी इतिहास के लिखने का कार्य केवल उसकी ही कलम पर आ पड़े, तो सहज समझ में आ सकता है कि वह अकेला कितनी सफलता वरण कर सकता है।

मैं इस वस्तु को भलिविध समझता था। लेकिन दुःख है कि मेरी इस उलझन अथवा समस्या अथवा कठिनाई को दूसरों ने बहुत ही कम समझा। हो सकता है उनके निकट इतिहास का या तो महत्त्व ही कम रहा हो या एक दूसरे को सहयोग देने की भावना की कमी या ऐसा ही और कुछ। विद्वानों, अनुभवशील व्यक्तियों, इतिहास प्रेमियों से सम्पर्क बढ़ाने का जितना प्रयास मुझसे बन सका, उतना मैंने किया। एक यही लाभ कि मुझको अधिक से अधिक अगर गढ़ी-गढ़ाई वस्तु कोई मिल जाय तो बस मैं उसको अपनी में ढाल लूँ। प्रस्तुत इतिहास में जो बात अधिक उलझन की थी, वह था प्राग्वाटज्ञाति की उत्पत्ति का लेख। और इसमें मैं अधिक से अधिक विद्वानों के परिपक्व अनुभव का लाभ लेना चाहता था। दूसरी बात थी—साधन-सामग्री का जुटाना। सरी बात तो परिश्रम और अर्थ से सिद्ध होने वाली थी, उसको गुरुदेव ने, श्री ताराचंदजी ने और मैंने तीनों ने

मिल कर यथाशक्ति संतोषजनक स्तर तक जुटा ली। परन्तु प्रथम बात तो दूसरों के हृदय की रही। वे चाहे तो जिज्ञासु को लाभ पहुँचा सकते हैं और चाहे तो नहीं। सर्व प्रथम निम्न छः प्रश्नों को लिखकर मैंने श्री ताराचन्द्रजी को दिये कि वे इनके उत्तर बड़े २ अनुभवशील व्यक्तियों, आचार्यों से मंगवावें और उनको एकत्रित करें।

६ प्रश्नः—

१—'प्राग्वाट' शब्द की उत्पत्ति कब और कहाँ हुई ?

२—'पुरु' राजा कहाँ का रहने वाला था, उसका 'प्राग्वाट' शब्द से कितना सम्बन्ध है ?

३—भिन्नमाल से पौरवाड़ों की उत्पत्ति प्राग्वाट ब्राह्मणों से जैन दीक्षित हो जाने पर हुई अथवा क्षत्रियों से ?

४—विमलशाह ने किन बारह (१२) सुलतानों को कब और कहाँ परास्त किया था ? उस समय मुसलमान बादशाहों का राज्य भी नहीं जमने पाया था, तब एक दम १२ सुलतानों की सम्भावना कहाँ तक मान्य है ?

५—मं० वस्तुपाल ने किस बादशाह की माता को मक्के जाते समय सहयोग दिया था ? उस समय दिल्ली की गद्दी पर बादशाह अल्तमश था और वह था गुलाम (खरीदा हुआ)। उसकी माता वहाँ (दिल्ली में) नहीं हो सकती थी ?

६—मुंजाल महता को प्रसिद्ध किया श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने। मेरुतुंगाचार्य ने मुंजाल के विषय में अपनी 'प्रबन्ध-चिंतामणि' में केवल एक पंक्ति लिखी और वह भी चलते हुये—क्या मुंजाल इतना प्रसिद्ध हुआ है ? (मुंजाल प्राग्वाटज्ञातीय नहीं था, यह मुझको पीछे ज्ञात हुआ)

उक्त प्रश्न जैनाचार्यों में सर्व श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी, श्रीमद् विजयवल्लभसूरिजी, श्रीमद् उपाध्याय कल्याणविजयजी, श्रीमद् विजयेन्द्रसूरिजी, श्रीमद् मुनिराज जयंतविजयजी, श्रीमद् विजयरामसूरिजी, श्रीमद् विजयनेमिसूरिजी, श्रीमद् मुनिराज विद्याविजयजी (कराची), मुनिराज ज्ञानसुन्दरजी (देवगुप्तसूरि) आदि से कई एक पत्र लिखकर अथवा स्वयं मिलकर पूछे। श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी का तो इतिहास-कार्य में प्रारम्भ से ही पूर्ण योग चला आया है। शेष में मुनिराज जयंतविजयजी का उत्तर उत्साहवर्द्धक था और उन्होंने इस कार्य में पूर्ण सहयोग देने की बात लिखी थी। देव का प्रकोप हुआ, वे इसके थोड़े ही समय पश्चात् स्वर्ग सिधार गये।

उक्त छः प्रश्न विद्वान् एवं इतिहासकारों में सर्व श्री महामहोपाध्याय हीराचन्द्र गौरीशंकर ओझा—अजमेर, अगरचन्द्रजी नाहटा—बीकानेर, पं० लालचन्द्र भगवानदास—बड़ौदा, पं० शिवनारायण 'यशलहा'—इन्दौर से पूछे गये। महामना ओझाजी का उत्तर बहुत ही उत्साहवर्द्धक प्राप्त हुआ था; परन्तु वे भी थोड़े समय पश्चात् स्वर्गस्थ होगये। नाहटाजी का उत्तर तो प्राप्त हो गया था; परन्तु पश्चात्ताप है कि उनसे साक्षात्कार करने की भावना इतिहास की पूर्णता होते २ जाग्रत हुई। पं० लालचन्द्र भगवानदास की सहानुभूति हमको अखण्ड मिलती रही। जिसके विषय में श्रमण के प्रकरण में भी कहा जा चुका है। पं० शिवनारायणजी से भी ऐसी ही सराहनीय सहानुभूति मिली।

परवार, पुरवार और पौरवाड़ तीनों शब्दों में वर्णों की पूर्ण समता है और मात्राओं में भी अधिकतम समता ही है। इन तीनों में सज्ञातीयतत्त्व हो अथवा नहीं हो, फिर भी कई एक साधारण जन इन तीनों ज्ञातियों को एक ही होना मानते-से सुने जाते हैं। इस दृष्टि से परवार, पुरवारज्ञाति के विद्वानों से और अनुभवशील व्यक्तियों से भी पत्र-व्यवहार किया गया। जिसका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

निम्न ११ प्रश्न सर्वश्री नाथूरामजी 'प्रेमी'—बम्बई, कामताप्रसादजी जैन—अलीगंज; श्री अजितकुमारजी शास्त्री—दिल्ली, नन्नूमलजी जैन—दिल्ली और श्री भा० दिगम्बर जैन संघ—चौरासी मथुरा को भेजे गये।

१–पुरवार, परवार, पौरवाड़ क्या एक शब्द है ?

२–आपकी ज्ञाति की उत्पत्ति कब, कहां और किन आचार्य के प्रतिबोध पर हुई है ?

३–अथवा आपकी ज्ञाति का वर्तमान रूप अनादि है ?

४–आपकी ज्ञाति में प्राचीन गोत्र कितने हैं, कौन हैं, आज कितने विद्यमान हैं ?

५–वे कौन प्राचीन एवं प्रामाणिक ऐतिहासिक पुस्तकें हैं जिनमें आपकी ज्ञाति की ऐतिहासिक साधन-सामग्री प्राप्य है ?

६–आपके कुलगुरु कौन और कहाँ २ के हैं ?

७–भारतभर में आपकी ज्ञाति के कितने घर हैं ?

८–आपकी ज्ञाति में कौन २ ऐतिहासिक व्यक्ति हो गये हैं ?

९–राजनीतिक दृष्टि से आपकी ज्ञाति का स्थान अन्य ज्ञातियों में क्या महत्त्व रखता है ?

१०–आपकी ज्ञाति संयुक्तप्रान्त-आगरा में ही अधिकतर क्यों बसी है ?

११–आपकी ज्ञाति स्वतंत्र ज्ञाति है अथवा किसी ज्ञाति की शाखा ?

दिगम्बर जैन संघ, मथुरा का उत्तर मिलाः—'आपके लिये उत्तर देने लायक कोई सामग्री हमारे यहां नहीं है।'

श्री कामताप्रसादजी के उत्तर का संक्षिप्त सारः—

१–हां, ये तीनों शब्द एक ही अर्थ को बताते हैं। बोलचाल के भेद से अन्तर है।

२–१२वीं शती के लेखों में भी हमें यदुवंशी लिखा है। अतः हम लोग जन्मतः जैन हैं।

३–गोत्रों में काश्यपगोत्र प्राचीन है।

४–हम ज्ञातियों को अनादि नहीं मानते। मनुष्यजाति अनादि है।

५–हमारे यहां की गुरुपरम्परा नष्ट हो गई।

श्री नाथूरामजी प्रेमी का उत्तर वस्तुतः सहानुभूति और सहयोग की भावनाओं से अधिकतम सज्जित प्राप्त हुआ। उन्होंने जितने इस विषय पर लेख लिखे, उनकी क्रमवार सूची उतार कर भेज दी और लिखा कि मेरे सारे लेख श्री अगरचन्द्रजी नाहटा, बीकानेर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। आप उनका उपयोग कर सकते हैं।

जैसा पूर्व लिखा जा चुका है कि 'अखिल भारतवर्षीय पुरवार महासभा, अमरावती' के मानद मंत्री श्री जयकान्त पुरवार से हमारा परिचय स्थापित हो चुका था और उसके फलस्वरूप ही मैं महमूदाबाद में होने वाले उक्त सभा के अधिवेशन में निमंत्रित किया गया था। पश्चात् इसके मैंने उनको सोलह १६ प्रश्न लिख कर भेजे और उनमें प्रार्थना की कि अपनी ज्ञाति के पंडितों, अनुभवशील व्यक्तियों से इनके उत्तर लेकर मुझको भेजने की कृपा करें। मेरे उन १६ प्रश्नों को श्री जयकान्तजी ने अलग पत्र पर मुद्रित करा कर अपनी ज्ञाति के कई एक पंडितों को भेजा और उनसे तुरन्त उत्तर देने की प्रार्थना की। उनके मुद्रित पत्र की प्रतिलिपि नीचे दी जाती है।

अ० भा० पुरवार महासभा,
कार्यालय-अमरावती

'प्रिय महोदय,

श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति की ओर से निम्न प्रश्नों के उत्तर मांगे गये हैं। आपको ज्ञात ही है कि उक्त समिति प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास (अपभ्रंश-परवार, पौरवाल, पुरवार) लिखाने की व्यवस्था कर रही है। ये प्रश्न उसी इतिहास से संबंधित हैं। आशा है आप इनके उत्तर ता० २५-१२-५१ तक महासभा-कार्यालय में भेजने की कृपा करेंगे, ताकि वे शीघ्र उस समिति के पास भेजे जा सकें।

१-परवार, पौरवाल और पुरवार एक ही अर्थ वाले शब्द हैं। इसमें यह अन्तर (मात्रा का) प्रान्तीय भाषाओं के कारण पड़ा है—क्या आप मानते हैं ? पुरवार नाम क्यों पड़ा ? लिखिये।

२-क्या पुरवारज्ञाति जिस रूप में है अनादि है ?

३-पुरवारज्ञाति की उत्पत्ति २६०० वर्षों के भीतर की है—क्या आप स्वीकार करते हैं ?

४-पुरवारज्ञाति मूल में जैन थी और कारणवश अन्य धर्मी बनी—क्या आप यह स्वीकार कर सकते हैं ?

५-पुरवारज्ञाति का उत्पत्तिस्थान राजस्थान अथवा मालवा हो सकता है, जहाँ से यह भारत के अन्य भागों में फैली—क्या आप मान सकते हैं।

६-पुरवारज्ञाति शुद्ध व्यापारी ज्ञाति रही है—क्या आप स्वीकार करते हैं ?

७-पुरवारज्ञाति किस प्रान्त में और किन २ नगरों में बसती है ?

८-पुरवारज्ञाति के प्राचीन एवं अर्वाचीन गोत्र कौन हैं और किस ज्ञाति से यह उत्पन्न हुई है ?

९-आप पुरवारज्ञाति की उत्पत्ति कहाँ से, कब से मानते हैं और किस ज्ञाति से यह उत्पन्न हुई है ?

१०-आपके पूर्वज कहां से उठे हैं और क्यों और कहां फैले हैं ?

११- आपके कुलगुरु अर्थात् पट्टियां कहां रहते हैं और वे कब से हैं ? उनका धर्म और ज्ञाति क्या है ?

१२-पुरवारज्ञाति के अति प्रसिद्ध-पुरुष कौन हुए हैं ?

१३-क्या पुरवारज्ञाति में छोटे-बड़े अर्थात् दशा पुरवार और बीशा पुरवार जैसे भेद हैं ?

१४—क्या पुरवारज्ञाति का कोई इतिहास प्राप्य है ?
१५—पुरवारज्ञाति संबंधी सामग्री किन २ साधनों से मिल सकती है ?
१६—पुरवारज्ञाति के भारत भर में कुल घर और जनसंख्या कितनी होगी ?

आपका
जयकान्त पुरवार, मंत्री'

उक्त प्रश्नों का उत्तर एक तो स्वयं श्री जयकान्तजी ने दिया था। वे भावुक हैं और उत्तर भी उसी धरातल पर बना था। दूसरा पत्र श्री रामचरण मालवीय, आर्य-समाज-प्रचारक—भर्थना का था, जिसका सार इतिहास में लिखा गया है।

वैसे प्रसिद्ध पं० लालचन्द्र भगवानदास—वड़ौदा, अगरचन्द्रजी नाहटा—बीकानेर, पुरातत्त्ववेत्ता मुनि जिनविजयजी—चंदेरिया, श्रीमद् विजयेन्द्रसूरिजी—अजमेर, पं० शिवनारायणजी 'यशलहा'—इन्दौर, श्री ताराचन्द्रजी डोसी—सिरोही, मुनिराज श्रीमद् ज्ञानसुन्दरजी—जोधपुर से मैं स्वयं जाकर मिला था और इतिहास-संबंधी बड़े २ प्रश्नों पर इनसे चर्चा की थी और इनके अनुभवों का लाभ उठाया था। ये सर्व सज्जन सहृदय, सहयोगभावना वाले, अनुभवशील व्यक्ति हैं। इन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया और पूरी सहानुभूति प्रदर्शित की। मैं इन सर्व विद्वान् सज्जनों की हृदय से सराहना करता हूं।

विज्ञप्ति और विज्ञापन

विज्ञप्ति—मन्त्री श्री ताराचन्द्रजी ने निवेदन के साथ में एक छोटी-सी विज्ञप्ति १८×२२=१६ आकार की आठ पृष्ठ की ५०० प्रतियां प्रकाशित की थीं और उसको बड़े २ विद्वानों, अनुभवशील व्यक्तियों, इतिहासप्रेमियों को तथा इतिहास की अग्रिम सदस्यता रु० १०१) देकर लेने वाले सज्जनों को अमूल्य भेजी थी। निवेदन में समिति ने जो इतिहास-लेखन का भगीरथ कार्य उठाया था उसका परिचय था और प्राग्वाटज्ञाति के इतिहास का महत्त्व। इतिहासज्ञों, इतिहासप्रेमियों और ज्ञाति और समाज के हितचिन्तकों से तन, मन, धन, ज्ञान, अनुभव आदि प्रत्येक ऐसी दृष्टि से सहानुभूति और सहयोग की याचना की थी।

विज्ञप्ति में प्राग्वाट-इतिहास की रूपरेखा थी और उसमें इसके प्राचीन और वर्तमान दो भाग किये जाने का तथा प्रत्येक भाग का विषय-सम्बन्धी पूरा २ उल्लेख था। इतिहास के विषयों, रचनासम्बन्धी वस्तु पर आगे लिखा जायगा, अतः उस पर यहाँ कुछ लिखना उसके मूल्य को घटाना है। अन्तिम पृष्ठ पर लेखक ने भी जैन-समाज के ही नहीं, भारत के अन्य समाजों के सर्व इतिहासज्ञों से, पुरातत्त्ववेत्ताओं से तथा समाज के शुभचिन्तकों से, विद्वानों से हर प्रकार के प्रेमपूर्ण मार्ग-प्रदर्शन, रचना-सहयोग और शोध-सुविधा आदि के लिए प्रार्थना की थी और आशा की थी कि वे मेरे इस भगीरथ-कार्य को सफल बनाने में सहायभूत होंगे।

विज्ञापन—१ साप्ताहिक 'जैन' (गुजराती)—भावनगर (काठियावाड़), २ पाक्षिक श्वेताम्बर जैन (हिन्दी)—आगरा और ३ मासिक राजेन्द्र (हिन्दी)—मन्दसोर (मालवा) में लगातार पूरे एक मासपर्यन्त विज्ञापन प्रकाशित

करवाया था। विज्ञापन में भी जैन-समाज के विद्वानों, इतिहासप्रेमियों, पुरातत्त्ववेत्ताओं को चलती हुई रचना से परिचित करवाया गया था और उनसे सहानुभूति, सहयोग की प्रार्थना की थी तथा श्रीमन्तजनों से रु० १०१) की अग्रिम सदस्यता लेकर अर्थ-सहयोग प्रदान करने की प्रार्थना की थी।

पाठक अब स्वयं ही समझ सकते हैं कि हमने इतिहास को अधिकतम सच्चा, सुन्दर और प्रिय बनाने के लिये हर प्रयत्न का सहारा लिया है। वैसे प्रयत्नों का अन्त नहीं और प्रयत्न की अवधि भी निश्चित नहीं। शक्ति, समय, अर्थ की दृष्टि से हमारी पहुँच में से जितना बन सकता था, उतना हमने किया।

इतिहास की रूप-रेखा

मैं इतिहासप्रेमी रहा हूँ और पूर्वजों में मेरी पूरी २ श्रद्धा रही है। परन्तु इससे पहिले मैं इतिहास-लेखक नहीं रहा। मेरे लिये इतिहास का लिखना नवीन ही विषय है। परन्तु गुरुदेव में जो श्रद्धा रही और श्री ताराचन्द्रजी का इतिहास के प्रति जो प्रेम रहा—इन दोनों के बीच मैंने निर्भय होकर यह कार्य स्वीकृत किया। इतिहास लिखने में तीन बातों का योग मिलना चाहिये—(१) इतिहासप्रेमियों और इतिहासज्ञों की सहानुभूति और उनका सहयोग, (२) समृद्ध साधन-सामग्री और (३) सुयोग्य-लेखक। इन तीनों बातों में दो के ऊपर पूर्व पृष्ठों में बहुत कुछ कहा जा चुका है और तीसरी बात के ऊपर यह प्रस्तुत इतिहास-भाग ही कहेगा।

इतिहास के विभाग और खण्ड.

सर्व प्रथम प्रारम्भिक इतिहासकार्य को मैंने तीन कक्षों में विभाजित किया:—(१) प्राप्त साधन-सामग्री का अध्ययन (२) इतिहाससम्बन्धी बातों की नोंध और (३) अधिकाधिक साधन-सामग्री का जुटाना। इन बातों की साधना में कितना समय लगा और किस स्थान पर ये कितनी साधी गई—के विषय में भी पूर्व के पृष्ठों में लिखा जा चुका है। अब जब इतिहास की उपयोगी सामग्री ध्यान में निकाल ली गई, तब इतिहास की रूपरेखा बनाना भी अत्यन्त ही सरल हो गया।

यह प्राग्वाटइतिहास दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग प्राचीन और द्वितीय वर्तमान। प्रथम भाग में विक्रम संवत् पूर्व ५०० वर्षों से लगा कर वि० सं० १६०० तक का यथाप्राप्त प्रामाणिक साधन-सामग्री पर इतिहास लिखा गया है और द्वितीय भाग है वर्तमान, जिसमें वि० सं० १६०१ के पश्चात् का यथाप्राप्त वर्णन रक्खा गया है। यह प्रस्तुत पुस्तक प्रथम भाग (प्राचीन इतिहास) है, अतः यहां सब इसके विषय में ही कहा जायगा।

साधन-सामग्री के अध्ययन पर यह ज्ञात हुआ कि विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी से पूर्व का इतिहास अंधकार में रह गया है और पश्चात् का इतिहास शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, कुलगुरुओं की पट्टावलियों, ख्यातों में बिखरा हुआ है। आठवीं शताब्दी के पश्चात् का इतिहास भी दो स्थितियों में विभाजित हुआ प्रतीत हुआ। आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी के अंत तक प्राग्वाटज्ञाति का सर्वमुखी उत्कर्ष रहा और उसके पश्चात् अवनति प्रारंभ हो गई। इस प्रकार यह प्रस्तुत इतिहास अपने आप तीन खण्डों में विभाजित हो जाता है।

प्रथम खण्ड—विक्रम की आठवीं शताब्दीपर्यन्त ।

द्वितीय खण्ड—वि० नवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दीपर्यन्त ।

तृतीय खण्ड—वि० चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवींपर्यन्त । यह सब तो इतिहास लिखने में सुविधा मिलने की बात हुई । अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि इस इतिहास का कलेवर कई दिशाओं में घूम-फिर कर, कई ढांचों में ढल कर वैश्यवर्ग के रूप में बना और जैनधर्म से अनुप्राणित हुआ । फलतः यह अनिवार्य हो गया कि वैश्यवर्ग के ऊपर और जैनधर्म के ऊपर यद्वांच्छित लिखा ही जाना चाहिए । सारांश यह निकलता है कि प्राग्वाट-ज्ञाति का इतिहास एक जैनज्ञाति का इतिहास ही है । यह अपने आप बना । मेरी प्रारंभ में यह किंचित् भी भावना नहीं थी कि इस इतिहास-भाग को जैनधर्म की दिशा या दीक्षा दी जाय । प्राग्वाटज्ञाति की वैसे कई शाखायें हैं । समूची प्राग्वाटज्ञाति सदा जैनधर्मानुयायी ही रही हो; सो बात भी सिद्ध नहीं होती है । परन्तु विवशता है, जब इस ज्ञाति की अन्य मतावलंबी शाखाओं के इतिहास की मुझको कुछ भी तो साधन-सामग्री प्राप्त नहीं हो पाई । अगर इतनी ही-या इसके बराबर या न्यून भी सामग्री उपलब्ध हो जाती तो इतिहास के कलेवर का रूप और इसके व्यक्तियों के धर्म भिन्न ही होते । अन्य शाखाओं के इतिहास की साधन-सामग्री प्राप्त करने के लिये कितने प्रयत्न किये गये हैं, उन पर पूर्व के पृष्ठों में अच्छी प्रकार कहा जा चुका है । साधन-सामग्री जितनी प्राप्त हुई, जब वह जैनमतपक्ष की ही है, तब इस इतिहास के कलेवर को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण नहीं रखते हुये भी जैन प्राग्वाट-वैश्यों के इतिहास की सीमा में परिबद्ध करदें तो आश्चर्य और मेरा अपराध भी क्या और क्यों ?

प्रथम खण्ड

यह तो मैं ऊपर ही कह चुका हूँ कि विक्रम की आठवीं शताब्दी से पूर्व का अंश अंधकार में है । कुछ एक इतिहासज्ञों की ऐसी भी मनोकल्पना अथवा धारणा कहिए कि आठवीं शताब्दी के पूर्व ओसवाल, अगरवाल, पौरवाल, श्रीमाल, खण्डेलवाल आदि वैश्यज्ञातियां थीं ही नहीं । मैं इस मत अथवा धारणा को संशोधन करके मानना चाहता हूँ । वैश्यज्ञातियां तो अवश्य थीं और वे जैन, वैदिक दोनों ही मतों को मानने वाली थीं । बात इतनी ही थी कि वे इन नामों से आज जैसी उपाधिग्रस्त नहीं थीं । जैन ग्रन्थों में कई एक श्रेष्ठियों के दृष्टान्त आते हैं; जिनमें कहानियां, कथा और लंबे २ जीवन-चरित्र हैं । 'श्रेष्ठि' शब्द 'वैश्य' अथवा 'महाजन' शब्दों का ही पर्यायवाची है । यह हो सकता है कि उसके प्रयोग का भिन्न इतिहास और कारण हो और 'वैश्य' और 'महाजन' शब्दों के प्रयोग के इतिहास भिन्न २ दिशा में उठे हों । तीनों शब्द एक ही वर्ग के परिचायक, बोधक अथवा विशेषण हैं—इसमें कोई शंका नहीं । जैन ग्रंथों में श्रेष्ठि सुदर्शन, श्रेष्ठि शालीभद्र, विजय सेठ और विजया सेठानी आदि कई नाम उपलब्ध हैं, जो आठवीं शताब्दी से कई शताब्दियों पूर्व भी श्रेष्ठिवर्ग अथवा वैश्यवर्ग के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं; और वे वैश्य जैन और वेदमत दोनों के अनुयायी थे । आज के वैश्यकुल चाहे उस समय वैश्य कहे जाने वाले कुलों के ही उदरज अर्थात् पीढ़ियों में भले नहीं भी हों, लेकिन हैं उन्हीं की परंपरा में दीक्षित और उन्हीं के उत्तराधिकारी तथा उन्हीं के अनुगत । तब क्या कारण है कि अनुगामी का इतिहास लिखते समय उसके अग्रगामी का इतिहास छोड़ दिया जाय अथवा उसको भिन्न इतिहास कह कर टाल दिया जाय । मुझको तो अंतर इतना ही प्रतीत होता है कि आज के वैश्यवर्गों के नाम पीछे से पड़ गये और वे आज उन्हीं नामों से

प्रसिद्ध हैं और वे (आठवीं शताब्दी से पूर्व के) आज के अलग अलग अभिधानों से प्रसिद्ध नहीं थे। वरन् एक श्रेष्ठि अथवा 'वैश्य' शब्द ही उन सब के साथ में लगता था। इन अलग अलग नामों के पड़ने का भी कारण है और उसका इतिहास है—जिसके विषय में यथाप्रसंग लिखा गया है। यद्यपि मैं भी वर्तमान वैश्य-समाज के कुलों की उत्पत्ति आठवीं शताब्दी से पूर्व हुई स्वीकार नहीं करता हूँ, फिर भी वैश्य-परम्परा थी और वह भिन्न २ शाखाओं में भी थी। वे ही शाखायें आगे जाकर धीरे धीरे स्वतंत्रज्ञातियां और अलग २ नामों से मंडित होती गई। मैंने इस मत को स्थिर करके प्राग्वाट-वैश्यों का यह इतिहास वैश्य-परम्परा के उस स्थान से ही लिखना प्रारंभ किया है, जिसका मुझको परिचय हो गया है।

अगर कोई इतिहासकार यह हठ पकड़ कर बैठे कि मैं ऐसे कुल का ही इतिहास लिखूं, जो उसके मूल पुरुष से आज तक पीढ़ी-पर-पीढ़ीगत चला आया है। मेरी तो निश्चित् धारणा है कि संसार में ऐसा एक भी कुल मिलने का नहीं। कुल का इतिहास एक कल का होता है—सकल का नहीं और वह भी सीमित। ज्ञाति अथवा देश का इतिहास ही वस्तुतः इतिहास का नाम धारण करने का अधिकारी है। ज्ञाति घटती-बढ़ती रहती है। पहिले के समय में एक ज्ञाति से दूसरी ज्ञाति में कुल आ जा सकते थे। आज वह बात नहीं रही है; अतः बहुतसी ज्ञातियां तो नामशेष रह गई हैं। वे ज्ञातियां वर्ण थीं, वर्ग थीं और उनके द्वार अन्य कुलों के लिये खुले थे। आज की ज्ञातियां अपने अपने में हैं और उन्हीं कुलों पर आ थमी हैं और उन्हीं में सीमित होकर रूढ़ बन गई हैं। प्राग्वाट-ज्ञाति की भी यही दशा है। यह अन्य ज्ञातियों अथवा वर्णों से आये हुये कुलों से बनी है; परन्तु आज इसमें उसी प्रकार अन्य ज्ञाति अथवा वर्ण से आने वाले कुल के लिये स्थान नहीं है, अतः घटती चली जा रही है। परन्तु इसका भूतकाल का इतिहास जो लिखा गया है, वह इसकी आज की मनोवृत्ति को देख कर नहीं; वरन् पहिले से चली आती हुई प्रथा और परम्परा पर ही निर्भर रहा है। अतः प्रथमखण्ड में प्राग्वाटपरम्परा के उस वैश्य अथवा श्रावक-अंश पर लिखा गया है, जिसने आगे जा कर प्राग्वाट नाम धारण किया। फलतः इस खण्ड के निबन्धों की रचना भी इसही धारणा पर हुई है।

प्रथम खण्ड की रचना में ताम्रपत्र, शिलालेख एवं प्रशस्तियां जैसे कोई प्रामाणिक साधनों का उपयोग तो नहीं हो सका है, परन्तु जो लिखा गया है वह कल्पित भी नहीं है। भगवान् महावीर और उनके समय में भारत ब्राह्मणवाद से त्रस्त हो उठा था और जैनधर्म और बौद्धमत के जागरण का तात्कालिक कारण भी यही माना जाता है—यह प्रायः सर्व ही इतिहासकार मानते हैं। ब्राह्मणवाद की पाखण्डप्रियता से ही ज्ञाति जैसी संस्था का जन्म हुआ भी माना जाता है। वर्णों में ज्ञातिवाद उत्पन्न हो गया और धीरे २ अनेक नामवाली ज्ञातियां उत्पन्न हो गई। प्राग्वाटज्ञाति की उत्पत्ति भी ऐसी ही ज्ञातियों के साथ में हुई है। प्राग्वाटज्ञाति की उत्पत्ति के विषय में वि० सं० १३९३ में उपकेशगच्छीय आचार्य श्री कक्कसूरि द्वारा लिखित उपकेशगच्छपट्टावली में श्लोक १६ से २१ में लिखा है। मेरी दृष्टि से तो उक्त पट्टावली प्रामाणिक ही मानी जानी चाहिए, जब कि अन्य गच्छों की पट्टावलियां प्रामाणिक मानी गई हैं। प्राग्वाटज्ञाति की उत्पत्ति कब, क्यों हुई और किसने की आदि प्रश्नों का हल इस खण्ड में दिया गया है।

इस खण्ड में निम्न विषय आये हैं:— पृ०

द्वितीय खण्ड

इस खण्ड की सम्पूर्ण रचना शिलालेख, प्रतिमालेख, प्रशस्तियां, प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर की गई है। इसमें मेरी कोई स्वतंत्र उपज नहीं मिलेगी। जहां उलझन दिखाई दी, वहाँ मैंने अनेक विद्वानों के मतों पर विचार करके अपने ढंग से उसको सुलझाने का प्रयत्न अवश्य किया है।

इस खण्ड में निम्नवत् विषय आये हैं:— पृ०

तृतीय खण्ड

इस खण्ड की रचना भी प्रामाणिक साधनों के आधार पर ही द्वितीय खण्ड की रचना के समान ही की गई है। इस खण्ड में विषय निम्नवत् आये हैं:— पृ०

वर्णनशैली

यद्यपि वर्णन करने का ढंग स्वयं लेखक का होता है, परन्तु वह वर्ण्यवस्तु के वशवर्त्ती रह कर ही ढलता और विकशता है। प्रस्तुत इतिहास को प्रथम तो तीन खण्डों में विभाजित किया गया, जिसके विषय में और फिर प्रत्येक खण्ड में अवतरित हुये विषयों के विषय में भी पूर्व के पृष्ठों में कहा जा चुका है। अब यहां जो कहना है वह यही कि प्रत्येक खण्ड में आये हुये विषयों को काल के अनुक्रम से तो लिखना अनिवार्य है ही; परन्तु मैंने प्रस्तुत इतिहास में क्षेत्र को प्राथमिकता दी है और क्षेत्र में काल का अनुक्रम बांधा है। यह स्वीकार करते हुये तनिक भी नहीं हिचकता हूं कि प्रस्तुत इतिहास का प्रथम खण्ड प्राग्वाटज्ञाति का कोई इतिहास देने में सफल नहीं हो सका है। प्राग्वाटज्ञाति का सच्चा और इतिहास कहा जाने वाला वर्णन द्वितीय खण्ड में और तृतीय खण्ड में ही है। इन दोनों खण्डों के विषयों का वर्णन एक-सी निर्धारित रीति पर किया गया है। द्वितीय खण्ड के प्रारम्भ में 'वर्तमान जैन कुलों की उत्पत्ति', 'प्राग्वाट अथवा पौरवालज्ञाति और उसके भेद'—इन दो प्रकरणों के पश्चात् राजनीतिक्षेत्र में हुये मंत्री एवं दण्डनायकों और उनके यथाप्राप्त वंशों का वर्णन प्रारम्भ होता है। द्वितीय खण्ड में विक्रम की नवमी शताब्दी से लगा कर विक्रम की तेरहवीं शताब्दीपर्यन्त वर्णन है। इन शताब्दियों में जितने मंत्री, दण्डनायक अथवा यों कह दूं कि राजनीति और राज्यक्षेत्र में प्रमुखतः जितने उल्लेखनीय व्यक्ति इस इतिहास में आने वाले थे, वे सब काल के अनुक्रम से एक के बाद एक करके वर्णित किये गये हैं और तत्पश्चात्

अन्य क्षेत्र में हुये व्यक्तियों का वर्णन चला है। इस प्रकार के वर्गीकरण में जो सहजता और सुविधा दृष्टिगत हुई, वह यह कि एक ही क्षेत्र अथवा एक ही विषयवाले वर्णन काल के अनुक्रम से एक ही साथ आ गये और पाठकों को एक ही क्षेत्र में होने वाले ऐतिहासिक व्यक्तियों का परिचय अखण्ड धारा से एक साथ पढ़ने को प्राप्त हो सका। प्रस्तुत इतिहास के बाँहें पृष्ठ पर के शीर्षभाग पर 'प्राग्वट-इतिहास' लिखा गया है और दाँहिने पृष्ठ के शीर्षभाग पर वर्णन किया जाता हुआ विषय और उस विषय से संबन्धित व्यक्ति, वस्तुविशेष अथवा कुल का नामोल्लेख। दोनों खण्डों में विषयानुदृष्टि से वर्गीकरण निम्न प्रकार दिया गया है :—

द्वितीय खण्ड

१. राजनीति अथवा राज्यक्षेत्र में हुये व्यक्ति और कुल।
२. प्रा० ज्ञा० बन्धुओं के मन्दिर और तीर्थों में किये गये पुण्यकार्य और उनकी संघयात्रायें।
३. श्री जैन श्रमणसंघ में हुये महाप्रभावक आचार्य और साधु।
४. श्री साहित्यक्षेत्र में हुये महाप्रभावक विद्वान् एवं महाकविगण।
५. श्री जैनवाङ्मय की सेवा करने वाले सद्गृहस्थ।
६. सिंहावलोकन।

तृतीय खण्ड

१. मन्दिरतीर्थादि में निर्माण-जीर्णोद्धार कराने वाले सद्गृहस्थ।
२. तीर्थ एवं मन्दिरों में देवकुलिका-प्रतिमा-प्रतिष्ठादि कार्य कराने वाले।
३. तीर्थादि के लिये सद्गृहस्थों द्वारा की गईं संघयात्रायें।
४. श्री जैन श्रमणसंघ में हुये महाप्रभावक आचार्य और साधु।
५. श्री साहित्यक्षेत्र में हुये महाप्रभावक विद्वान् एवं महाकविगण।
६. श्री जैनवाङ्मय की सेवा करने वाले सद्गृहस्थ।
७, विभिन्न प्रान्तों में सद्गृहस्थों द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें।
८. कुछ विशिष्ट व्यक्ति और कुल।
९. सिंहावलोकन।

फिर प्रत्येक व्यक्ति, कुल एवं वस्तु के वर्णन को भी यथाभिलषित एवं आवश्यक प्रतीत होते हुये उपशीर्षक एवं आंशिकशीर्षकों (Side Headings) से संयुक्त करके वर्णितवस्तु को सहज गम्य एवं सुबोध बनाने का पूरा २ प्रयास किया है। विषयानुक्रमणिका के देखने से यह शैली और अधिक सरलता से समझ में आ सकती है, अतः इस पर पंक्तियों का बढ़ाना यहां अधिक उचित नहीं समझता हूँ।

शिल्प-स्थापत्य

जैन-समाज के ज्ञान-भण्डारों में रहा हुआ साहित्य जिस प्रकार बेजोड़ है, इसका जिनालयों में रहा हुआ शिल्पकाम भी संसार में अनुपम ही है। परन्तु दुःख है कि दोनों को प्रकाश में लाने का आज तक जैन-समाज

की ओर से सत्य और समीचीन प्रयास ही नहीं किया गया। पिछले कुछ वर्षों से इस दिशा में यत्किंचित् श्रम किया गया है, परन्तु वह श्रम इस स्तर तक फिर भी नहीं बन सका, जो साहित्यसेवियों एवं शिल्पप्रेमियों को आकर्षित कर सके। प्रस्तुत इतिहास में मुझको साहित्यसंबंधी सेवायें देने का तो अवसर नहीं मिल सका है, परन्तु जैन-मंदिरों में रहा हुआ जो अद्भुत शिल्पकाम है, उसको प्रकाश में लाने का अच्छा सुयोग अवश्य प्राप्त हो सका है और मैंने इस सुयोग को हाथ से नहीं जाने दिया—यह कहां तक मैं सही कह सकता हूं यह सब पाठकों की तृप्ति पर ही विदित हो सकता है।

प्राग्वाट-इतिहास केवल प्राग्वाटज्ञाति का ही इतिहास है। इसमें उन्हीं जिनालयों का वर्णन आया है, जो प्राग्वाटबंधुओं द्वारा विनिर्मित हुये हैं अथवा जिनमें प्राग्वाटबंधुओं ने उल्लेखनीय निर्माणकार्य करवाया है, अतः प्रस्तुत इतिहास में जितना शिल्पकाम अवसर पा सका है यद्यपि वह आंशिक ही कहा जा सकता है, परन्तु मेरा विश्वास है और अनुभव कि समस्त जैन-जिनालयों में जो उत्तम शिल्प एवं निर्माणसंबंधी वर्णनीय वस्तु है, वह अधिकांश में अवतरित हो गई है। जैन-जिनालयों में शिल्प एवं स्थापत्य की दृष्टि से अर्बुदगिरिस्थ श्री विमल-वसहि, लूणवसहि, भीमवसहि, खरतरवसहि, अचलगढ़दुर्गस्थ श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय और उसमें विराजित १४४४ मण पंचधातुविनिर्मित बारह जिनप्रतिमायें, गिरनारतीर्थस्थ श्री नेमिनाथटूँक, श्री वस्तुपाल-तेजपाल-टूँक, १४४४ स्तंभों वाला श्री राणकपुर-धरणविहार श्री आदिनाथ-चतुर्मुख-जिनालय सर्वोत्कृष्ट एवं अद्भुत ही नहीं, संसार के शिल्पकलामण्डित सर्वोत्तम स्थानों में अपूर्व एवं आश्चर्यकारी हैं और शिल्पविज्ञों के मस्तिष्क की अनुपम देन और शिल्पकारों की टाँकी का जादू प्रकट करने वाले हैं। उपरोक्त जिनालयों में श्री विमल-वसहि, लूणवसहि, वस्तुपाल-तेजपालटूँक, अचलगढ़स्थ श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय और श्री राणकपुरतीर्थ-धरणविहार प्राग्वाटज्ञातीय बंधुओं द्वारा विनिर्मित हैं और फलतः इनका प्रस्तुत इतिहास में वर्णन अनिवार्यतः आया है और मैंने भी इनमें से प्रत्येक के वर्णन को स्थान और स्तर अपनी कलम की शक्ति के अनुसार पूरा-पूरा देकर उसको पूर्णता देने का ही प्रयास किया है, जिसकी सत्यता पाठकगण प्रस्तुत इतिहास में आये इनके वर्णन पढ़ कर तथा शिल्पकला को पाठकों के समक्ष प्रत्यक्षरूप से रखने का प्रयास करने वाले शिल्पचित्रों से अनुभव कर सकेंगे।

इतिहास में भाषा सरल और सुबोध चलाई है। इतिहास की वस्तु को रेखांकित चरणलेखों से ऊपर लिखी है। जिसका जैसा और जितना वर्णन देना चाहिए, उतना ही देने का प्रयास किया गया है। सच्चाई को प्रमुखता ही नहीं दी गई, वरन् उसी को पूरा २ प्रतिष्ठित किया गया है। विवाद और कलह उत्पन्न करने वाली बातों को छूआ तक नहीं। इस इतिहास के लिखने का केवल मात्र इतना ही उद्देश्य रहा है कि प्राग्वाटज्ञाति में उत्पन्न पुरुषों ने अथवा प्राग्वाटज्ञाति ने अपने देश, धर्म और समाज की सेवा में कितना भाग लिया है और फलतः प्राग्वाट-ज्ञाति का अन्य जैनज्ञातियों में तथा भारत की अन्य ज्ञातियों में कौन-सा स्थान है। यह नाम से भले ही प्राग्वाट-ज्ञाति का इतिहास समझ लिया जाय, वरन् है तो यह जैनज्ञाति के एक प्रतिष्ठित अंग का वर्णन और उसके कार्य एवं कर्त्तव्य तथा धर्मपालन का लेखा।

समय

वैसे इतिहास के लिखने की चर्चा तो वि० सं० २००० में ही प्रारंभ हो गई थी और यह चर्चा कई ग्रामों

हुई हैं। आपश्री की निरभिमानता, सरलता, नवयुवक लेखकों के प्रति बहुत कम पंडितों में मिलने वाली सहृदयता एवं उदारता से मैं इतना प्रभावित हुआ हूँ कि मेरे पास में शब्द नहीं हैं कि मैं आपके इन दुर्लभ गुणों का वर्णन कर सकूँ। ऐसे बहुत ही कम पंडित मिलेंगे जो किसी अपरिचित लेखकको ग्यारह दिवसपर्यन्त अपने घर पर पूरे-पूरे आदर के साथ में रक्खे और उसके लेखनकार्य का अपना अमूल्य समय दे कर सद्भावना एवं लग्न से अमूल्य अवलोकन करें। इतिहास-कार्य के प्रसंग से मैं कई एक विद्वानों और पंडितों के सम्पर्क में आया हूं, परन्तु आपमें जो गुण मुझको देखने को मिले वे अन्य में बहुत कम दिखाई दिये। 'वि० सं० २००६ आश्विन शु० १३ मंगलवार तदनुसार ता० ३० सितम्बर १९५२ को 'श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति' के मंत्री श्री ताराचन्द्रजी ने समिति की ओर से समाज के अनुभवी एवं प्रतिष्ठितजनों की सुमेरपुर में विशेष बैठक प्रस्तुत भाग का अवलोकन करने के लिये बुलाई थी। उक्त बैठक में प्रस्तुत भाग को आप और आवश्यकता प्रतीत हो तो मुनि श्री जिनविजयजी को दिखाकर प्रकाशित करवाने का निर्णय किया गया था। एतदर्थ आप निमंत्रित किये और स्टे. राणी में शाह गुलाबचन्द्रजी मथूतमलजी की फर्म के भवन में आपने वि० सं० २००६ पौ० कृ० ७ तदनुसार ता० ८ दिसम्बर १९५२ से १९ दिसम्बर तक दिन ग्यारह पर्यन्त ठहर कर तत्परता से प्रस्तुत भाग का अवलोकन किया। कई स्थलों पर गंभीर चर्चायें हुईं। शेष कुछ अंश रह गया था, उसका अवलोकन आपने बड़ौदा में ता० २४-१२-५२से २-१-५३ तक किया। बड़ौदा में भी आपके साथ ही गया था। बडौदा जाने का अन्य हेतु यह था कि वहां के बड़े-बड़े पुस्तकसंग्रहालयों से कई एक मूलग्रन्थ देखने को मिल सकते हैं और संभव है और कुछ सामग्री प्राप्त हो सके। सामग्री तो नहीं मिल सकी, मूलग्रन्थ देखने को मिले' [ये पंक्तियां प्रस्तावना लिखी जाने के पश्चात् ता० ५-१-५३ के दिन लिखी गई] आपने इतिहास के कलेवर को स्वस्थ, प्रशस्त बनाने में जो सुसंमतियां देकर तथा अपने गंभीर अनुभव का लाभ पहुँचा कर मत्सरताविहीन मुक्तहृदय से सहानुभूति दिखाई है और सहयोग दिया है, उसके लिये लेखक आपका अत्यन्त आभारी है।

श्री ताराचन्द्रजी

इतिहास लिखने वाले इतिहास लिखते ही हैं। इसमें कोई नवीन बात नहीं। परन्तु मैं तो इतिहासकार था भी नहीं। गुरुवर्य श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरि महाराज सा० के वचनों पर विश्वास करके आपने प्रस्तुत इतिहास-लेखन का कार्य मुझको दिया यह तो आपकी गुरुश्रद्धा का परिणाम है जो शोभनीय और स्तुत्य है, परन्तु आपने मेरे में जैसा अद्भुत और अविचल विश्वास आज तक बनाये रक्खा, यह मान बहुत ही कम भाग्यशाली लेखकों को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं मैं बागरा में रहा, जहां इतिहास-कार्य की प्रगति का निरीक्षण करने वाला कोई नहीं था, मैं वहां से सुमेरपुर में आया और वहां इतिहास-कार्य जैसा बनना चाहिए था नहीं बन सका, सुमेरपुर से मैं भीलवाड़ा आ गया, जहाँ आप केवल एक बार ही आ सके, कोई देखने वाला और कहने वाला नहीं—मेरी नेकनियति में आपका यह विश्वास कम आश्चर्य की वस्तु नहीं। आपके इस विश्वास से मेरा जीवन अधिक वेग से ऊपर उठा है—यह मैं स्वीकार करता हूं और आपका हृदय से आभार मानता हूँ।

धर्मपत्नी श्रीमती लाडकुमारी 'रसलता'

आपका एक सच्ची अर्धांगिनी का सहयोग और प्रेम नहीं होता, तो निश्चित था कि इतिहासकार्य में मेरी सफलता घट जाती। मुझको हर प्रकार की सुविधा देकर, मेरे समय का प्रतिपल ध्यान रख कर इस अंतर में मेरे

जिम्मे का गृहस्थभार भी आपने वहन किया और मुझको अपने कार्य में प्रगति करने के लिये मुक्त-बंधन रक्खा यह मेरे लिये कम सौभाग्य की बात नहीं है। ऐसी अर्धाङ्गिनी को पाकर मैं अपना गृहस्थ-जीवन सफल समझता हूँ और आपका प्रेमपूर्वक आभार मानता हूँ।

अंत में जिन २ विद्वान् लेखकों की पुस्तकों का उपयोग करके मैं यह इतिहास-भाग लिख सका हूँ, उन सब का अत्यन्त ऋणी हूँ और उस ऋण को चुकता करने के लिये यह इतिहास-ग्रंथ सादर प्रस्तुत करता हूं और स्वीकार करता हूं कि इसमें जो कुछ है, वह सब उन्हीं का है। फिर भी ऊपर नाम रख कर जो मैंने विवशतया धृष्टता की है, उसके लिये चमा चाहता हूं और आभार प्रदर्शित करता हूँ।

वि० सं० २००६ आश्विन शुक्ला नवमी
ई० सन् १६५२ सितम्बर २७ शनिश्चर.

लेखक—दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी. ए.
अमरनिवास, भीलवाड़ा (मेवाड़-राजस्थान)

पुनश्च—

प्रस्तुत इतिहास के अवलोकनार्थ

सुमेरपुर में श्री प्राग्वाटइतिहास-प्रकाशक-समिति की बैठक और उसमें मेरी उपस्थिति तथा श्री पोसीना—(सावला-पोशीना, ईडर-स्टेट) तीर्थ की यात्रा.

प्रस्तुत इतिहास का लेखन सभूमिका जब समाप्त हो गया तो प्राग्वाटइतिहास-प्रकाशक-समिति के मंत्री श्री ताराचन्द्रजी ने समिति की ओर से समाज के अनुभवी और प्रतिष्ठितजनों की प्रस्तुत भाग का अवलोकन करने के लिये 'श्री वर्धमान जैन बोर्डिंग हाउस, सुमेरपुर में विशेष बैठक वि० सं० २००६ आश्विन शुक्ला १३ (त्रयोदशी) तदनुसार ता० ३० सितम्बर १६५२ को बुलाई। लेखक भी प्रस्तुत भाग की पाण्डुलिपि लेकर उक्त बैठक में निमंत्रित किया गया था। दिन के दो प्रहर पश्चात् शुभपल में इतिहास का वाचन इस विशेष बैठक में उपस्थित हुये बन्धुओं के समक्ष प्रारम्भ किया गया। सर्व प्रथम आचार्य श्री यतीन्द्रसूरिजी का संक्षिप्त परिचय और तत्पश्चात् मंत्री श्री ताराचन्द्रजी का परिचय पढ़ा गया। इनके पढ़ लेने के पश्चात् इतिहास का वाचन प्रारम्भ हुआ। प्रथम खण्ड में जहां 'प्राग्वाट-प्रदेश' के विषय में उल्लेख है, उसमें 'शक' ज्ञाति का यथाप्रसंग कुछ लेख आया है। 'शकज्ञाति' के नाम स्मरण पर ही बैठक में विवाद प्रारम्भ हो गया। विचार का आधार था कि 'शकज्ञाति' एक शूद्र ज्ञाति है और उत्पत्ति के प्रसंग में इस ज्ञाति के उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि प्राग्वाटज्ञाति की उत्पत्ति में शूद्रज्ञातियों का भी उपयोग हुआ है। उक्त विचार प्रकरण की किसी भी पंक्ति से यद्यपि नहीं निकल रहे थे, परन्तु विवाद जो उठ खड़ा हुआ, उसका सच्चा हेतु तो विवाद को प्रारम्भ करने वाले सज्जन ही सत्य २ कह सकते हैं। हेतु के विषय में मैं अपना अनुमान भी देना उचित नहीं समझता। विवाद इतना बढ़ गया कि 'प्राग्वाट-प्रदेश' का प्रकरण भी पूरा सुना नहीं गया और 'शकज्ञाति' के अवतरण के प्रसंग पर तो विचार ही नहीं किया गया। बात बैठती नहीं देख कर निदान मैंने यह सुझाव रक्खा कि मुनि श्री जिनविजयजी, पं० श्री लालचन्द्रजी, बड़ौदा और पंडित श्री अगरचन्द्रजी नाहटा भारत के प्रसिद्ध विद्वानों एवं पुरातत्त्वज्ञों में अग्रणी माने जाते हैं और ये तीनों इतिहासविषय के धुरंधर पण्डित हैं। इनमें से समिति एक, दो या तीनों से इतिहास का अवलोकन करालें और उनके अभिप्रायों पर विचार करके फिर जो कुछ निर्णय करना हो वह करें। यह प्रस्ताव

स्वीकृत कर लिया गया और पं० श्री लालचन्द्रजी, वड़ौदा को प्रस्तुत भाग का अवलोकन करने के लिये प्रथम निमंत्रित करना निश्चय किया गया और फिर आवश्यकता प्रतीत हो तो मुनि श्री जिनविजयजी से भी इसका अवलोकन कराना निश्चित् किया गया। तत्पश्चात् वैठक तुरंत ही विसर्जित हो गई।

मैं ता० २ अक्टोवर को सुमेरपुर से वागरा के लिये रवाना हुआ। वागरा में श्रीमद् यतीन्द्रसूरिजी महाराज विराज रहे थे। उनसे सब वीती सुनाई। वहां से लौट कर पुनः सुमेरपुर होता हुआ स्टेशन राणी आया और राणी से ता० ६ अक्टोबर को फालना होकर श्री राणकपुरतीर्थ आहुँचा। 'राणकपुरतीर्थ' के वर्णन में जो कुछ उल्लेख करने से रह गया था, उसकी वहां एक दिन ठहर कर पूर्त्ति की। तत्पश्चात् पुनः सादड़ी होकर स्टे० फालना आया और ता० ११ अक्टोवर को स्टेशन फालना से ऊंझा का टिकिट लेकर ट्रेन में वैठा। ऊंझा में स्व० मुनि श्री जयंतविजयजी महाराज साहब के सुयोग्य एवं साहित्यप्रेमी शिष्यप्रवर मुनि श्री विशालविजयजी विराज रहे थे। उनसे 'आबू' भाग १ में छपे हुये व्लॉकों की मांगणी करनी थी। मुनि श्री ने व्लॉक दिलवा देने की फरमाई।

ता० १२ अक्टोवर को ऊंझा से ईडर के लिये रवाना हुआ और वीशनगर हो कर सायंकाल के लगभग साढ़े पांच बजे मोटर से ईडर पहुंचा। यहां पहुंच कर पर्वत पर बने हुये जैन-मंदिरों के दर्शन किये और वहां के अनुभवी सज्जनों से मिल कर पोसीनातीर्थ के विषय में अभिलषित परिचय प्राप्त किया।

ता० १३ अक्टोवर को पोसीना पहुंचा और तीर्थपति के दर्शन करके अति ही आनंदित हुआ। पोसीना जाने का विशेष हेतु यह था कि श्रीमद् बुद्धिसागरजी महाराज साहिब द्वारा संग्रहीत जैन-धातु-प्रतिमा-लेख-संग्रह भा० प्रथम में लेखांक १४६८ में वि० सं० १२०० का एक लेख ओसवालज्ञातीय वृद्धशाखासंबंधी प्रकाशित हुआ है। यह लेख महामात्य वस्तुपाल और दंडनायक तेजपाल के पूर्व का है। यह दंतकथा कि दशा-वीशा के भेदों की उत्पत्ति उक्त मंत्री भ्राताओं के द्वारा दिये गये एक प्रतिभोज में उपद्रव खड़े हो जाने पर हुई मिथ्या हो जाती है और यह प्रत्यक्ष प्रमाणित हो जाता है कि ये भेद मंत्री भ्राताओं के जन्म के पूर्व विद्यमान थे। परन्तु दुःख है कि उस प्रतिमा के, जिस के ऊपर यह लेख था दर्शन नहीं हो सके। संभव है वह प्रतिमा किसी अन्य स्थान पर भेज दी गई हो। विचार यह था कि अगर उक्त प्रतिमा वहां मिल जाती तो उस पर के लेख का चित्र प्रस्तुत इतिहास में दिया जाता और वह अधिक विश्वास की वस्तु होती और दशा-वीशा के भेद की उत्पत्ति के विषय में प्रचलित श्रुति एवं दंतकथा में आपो-आप आमूल परिवर्त्तन हो जाता और तत्संबंधी इतिहास में एक नया परिच्छेद खुल कर एक अज्ञात भावना का परिचय देता। पोसीना से सीधा अहमदावाद स्टेशन हो कर ता० १४ को राणी पहुँचा और ता० १५ को सकुशल भीलवाड़ा पहुँच गया। दुःख यह रहा की यह यात्रा सर्वथा निष्फल ही रही।

वि. सं. २०१० श्रावण शु. १४. ई. सन् १९५३ जुलाई २४ सोमवार
रक्षा-बंधन, श्री गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस, ब्यावर।

लेखक—
दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी. ए.

साधन-सामग्री

संस्कृत, हिन्दी, गूर्जर, आंगलभाषाबद्ध

शिलालेख, प्रतिमालेखसंग्रह, प्रशस्तिग्रंथ, गुरुपट्टावली, इतिहास, चरित्र, रास, प्रबंध, कथाकोष, पुराण, कथाग्रन्थ, पुस्तकादि

संक्षिप्त नाम	पूर्ण नाम	लेखक, संपादक, संग्राहक, संशोधक	प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष
प्रा० जै० ले० सं०	प्राचीन जैनलेखसंग्रह भा०१ (संस्कृत)	संग्रा०, संपा० मु० जिनविजयजी	जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर.सं० १९७३
,,	,, भा०२ ,,	,,	,, ,, ,, १९७८
जै०धा०प्र०ले०सं०	जैन धातुप्रतिमालेखसंग्रह भा०१ (संस्कृत)	ले० बुद्धिसागरजी	अध्यात्मज्ञानप्रसारक मण्डल, बम्बई. सं० १९७३
,,	,, भा०२ ,,	,,	,, ,, ,, १९८०
जै० ले० सं०	जैन लेखसंग्रह भा० १ (संस्कृत)	संग्रा० पूर्णचन्द्रजी नाहर	जैनविविध-साहित्य-शास्त्रमाला, बनारस. सन् १९१८
,,	,, भा० २ ,,	,,	स्वयं, कलकत्ता. सन् १९२७
,,	,, भा० ३ ,,	,,	,, ,, ,, १९२९
प्रा० ले० सं०	प्रचीन लेखसंग्रह भा० १ (संस्कृत)	ले० श्री विजयधर्मसूरि	यशोविजय जैनग्रंथमाला, भावनगर. सन् १९२९
जै० प्र० ले० सं०	जैनप्रतिमा-लेखसंग्रह (संस्कृत)	संग्रा० श्री यतीन्द्रसूरि	यतीन्द्र-साहित्य-सदन, धामणिया (मेवाड़). सं० २००८
आबू	आबू भा० १ (हिंदी)	ले० मु० जयन्तविजयजी	कल्याणजी परमानन्दजी, सिरोही. सं०१९८९
अ०प्रा०जै०ले०सं०	अर्बुदप्राचीन-जैनलेखसंदोह आबू भा० २ (संस्कृत)	,,	विजयधर्मसूरि जैन ग्रन्थमाला, उज्जैन. सं० १९९४
अचलगढ़	आबू भा० ३ (गूर्जर)	,,	यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर. सं० २००२
अर्बुदाचलप्रदक्षिणा	आबू भा० ४ (संस्कृत)	,,	,, ,, ,, २००४
अ०प्र०जै०ले०सं०	अर्बुदाचलप्रदक्षिणा जैनलेख-संदोह आबू भा० ५ (संस्कृत)	,,	,, ,, ,, २००५
श० मा०	श्री शत्रुञ्जयमाहात्म्य श्री धनेश्वरसूरिकृत (गूर्जर)	ले०	श्री जैन धर्मप्रसारक सभा, भावनगर. सं० १९६१

श० प्र०	श्री शत्रुञ्जयप्रकाश (गूर्जर)	ले० देवचन्द दामजी	जैनपत्रनी ओफिस, भावनगर. ई० स० १९२५
सि० व०	सिद्धाचलजीनुं वर्णन (गूर्जर)	,,	....
श०म०ती०या०वि०	श्री शत्रुंजयमहातीर्थादिक यात्राविचार (गूर्जर)	यो० मु० कर्पूरविजयजी	श्री जैन श्रेयस्कर मण्डल, म्हेसाणा. सं० १९७०
श० ती० प्र०	शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारप्रबंध (हिन्दी)	संपा० मु० जिनविजयजी	श्री आत्मानन्द सभा, भावनगर. सं० १९७३
श० ती० द०	शत्रुञ्जयतीर्थदर्शन (गूर्जर)	प्रयो० फूलचन्द्र हरिचन्द्र दोसी	चन्द्रकान्त फूलचन्द दोसी, पालीताणा. सं० २००२
श० प० प०	शत्रुञ्जयपर्वत का परिचय (गूर्जर)	प्रयो० मु० जिनविजयजी	.... ,, ,,
गि० ग०	गिरनारगल्प (हिन्दी)	ले० मु० ललितविजयजी	श्री हंसविजयजी फ्री जैनलाईब्रेरी, अहमदाबाद. सं० १९७८
गि० ती० इति०	श्री गिरनारतीर्थनो इतिहास (गूर्जर)	ले०	जैन सस्ती वांचनमाला, भावनगर. सं० १९८९
गी० मा०	गिरनारमाहात्म्य ,,	ले० दोलतचन्द पुरुषोत्तमदास	स्वयं प्रकाशक सं० १९५०
जै० ती० मा०	जैन तीर्थमाला ,,	....	जैन सस्ती वांचनमाला, भावनगर. सं० १९८९
प्रा० ती० मा०	प्राचीन तीर्थमाला, संग्रह भा० १ ,,	संशो० विजयधर्मसूरि	श्री यशोविजयजी जैन ग्रन्थमाला भावनगर. सं० १९७८
वि० ती० क०	विविधतीर्थकल्प जिनप्रभसूरिविरचित (संस्कृत)	संपा० मु० जिनविजयजी	सिंघी जैन ज्ञानपीठ, शांतिनिकेतन, सं० १९९०
मा० म०	माण्डवगढ़नी महत्ता (गूर्जर)	ले० मु० धुरंधरविजयजी	जैन साहित्यवर्धक सभा, शिरपुर. सं० १९९८
जै० ती० भू०	जैन तीर्थ भूमिओ (गूर्जर)	ले० मु० जयन्तविजयजी	यशोविजयजी जैनग्रंथमाला, भावनगर. सं० २००७
जै० ती० इति०	जैनतीर्थनो इतिहास (गूर्जर)	ले० मु० न्यायविजयजी (त्रिपुटी)	श्री जै० साहित्य फण्ड, सूरत. सं० २००५
जै० पु० प्र० सं०	जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह भाग १ (संस्कृत)	संपा० मुनि जिनविजयजी	सिंघी जैनग्रन्थमाला—भारतीय विद्याभवन, बम्बई. सं० १९९९

प्र० सं०	श्री प्रशस्तिसंग्रह	संपा०	श्री देशविरति धर्माराधक समाज,
	(संस्कृत)	अमृतलाल मगनलाल शाह	अहमदाबाद. सं० १९९३
ना०नं०जि०प्र०	नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबंध	संपा०	श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ग्रंथमाला,
	कक्कसूरिविरचित (संस्कृत)	पं० भगवानदास हरखचंद	अहमदाबाद. सं० १९८५
प्र.चि. या प्र.चि.म.	प्रबंध-चिंतामणि	संपा०	सिंघी जैन ज्ञान पीठ-विश्वभारती,
	मेरुतुङ्गाचार्यविरचित(संस्कृत)	मुनि जिनविजयजी	शान्तिनिकेतन. सं० १९८९
,,	,,	अनु०	सिंघी जैन ग्रंथमाला,
	(हिन्दी)	हजारीप्रसाद द्विवेदी	अहमदाबाद, कलकत्ता. सं १९९७
पु० प्र० सं०	पुरातनप्रबंधसंग्रह	सं०	सिंघी जैन ज्ञानपीठ.
	(संस्कृत)	मु० जिनविजयजी	कलकत्ता. १९९२
प्र० को	प्रबंधकोश	सं०	सिंघी जैन ज्ञानपीठ,
	राजशेखरसूरिकृत (संस्कृत)	,,	शांतिनिकेतन. सं० १९९१
खं०प्रा०जैं०इति०	खंभातनो प्राचीन जैन इतिहास	ले०	श्री आत्मानंद-जन्मशताब्दी-स्मारक-ट्रस्टबोर्ड,
	(गूर्जर)	नर्मदाशंकर त्र्यंबकराम	बम्बई. सं० १९९६
प्रा० भा० व०	प्राचीन भारतवर्ष	ले०	शशिकान्त एण्ड कं०,
	भाग १,२,३,४,५, ,,	लहेरचंद्र त्रिभुवनदास	बड़ौदा. सं० १९९१–९७
मा० रा० इति०	मारवाड़राज्य का इतिहास	ले०	आर्कियॉलॉजिकल डिपार्टमेंट,
	भाग १,२ (हिन्दी)	पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ	जोधपुर. सं० १९९५
,,	,,	ले०	हिन्दी साहित्य मंदिर,
	,,	जगदीशसिंह गहलोत	जोधपुर. सं० १९८२
रा० इति०	राजस्थाननो इतिहास	अनु०	सस्तुं-साहित्यवर्धक कार्यालय,
	जेम्स टॉडप्रणीत (गूर्जर)	रत्नसिंह दीपसिंह परमार	अहमदाबाद. बम्बई. सं० १९८२
सि० रा० इति०	सिरोही-राज्य का इतिहास	ले०	स्वयं लेखक
	(हिन्दी)	पं० गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा	सं० १९६८
डूँ० रा० इति०	डूँगरपुर-राज्य का इतिहास	ले०	स्वयं लेखक
	(हिन्दी)	,,	सं० १९९२
खं० इति०	खंभातनो इतिहास	ले०	खंभात-राज्य
	(गूर्जर)	पं० रत्नमणिराव भीमराव	सं० १९९१
चौ० चं०	श्री चौलुक्यचंद्रिका	ले०	
	,,	विद्यानंदस्वामी	वासदा-स्टेट (लाट-गूर्जर) सं० १९९३
गु० म० रा० इति०	गुजरातनो मध्यकालीन	ले०	गूर्जर वर्ना० सोसाइटी,
	राजपूतइतिहास (गूर्जर)	दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री	अहमदाबाद. सं० १९९३

रा० जै० वीर	राजपूताने के जैन वीर (गूर्जर)	ले० अयोध्याप्रसाद गोयलीय	हिन्दी विद्या मंदिर, देहली. सं० १९९०
पो० ज्ञा० इति०	पोरवाड़ ज्ञातिनो इतिहास (गूर्जर)	ले० ठ० लक्ष्मणसिंह	स्वयं लेखक, देवास. सं० १९८६
उ० हि० जै० ध०	उत्तर हिन्दुस्थानमां जैनधर्म (गूर्जर)	ले० चीमनलाल जेचंद शाह	लॉंगमेन्स ग्रीन एण्ड कं०, बम्बई. सन् १९३७
जै० ज०	जैन जगती (हिन्दी)	ले० दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद'	श्री शांतिगृह, धामणिया(मेवाड़). सं०१९९८
जै०ऐ०रा०मा०	जैन ऐतिहासिक रासमाला भाग १ (गूर्जर)	संशो० सोहनलाल दलीचन्द शाह	श्री अध्यात्मज्ञानप्रसारक मण्डल, बम्बई. सं० १९६९
रा० मा०	फार्बससाहब लिखित रासमाला भाग १ (गूर्जर)	अनु० रणछोड़भाई उदयराम	दी फार्बस गुजराती सभा, बम्बई. सं० १९७८
,,	भाग २ ,,	,,	,, ,, ,, १९८३
ऐ० रा० सं०	ऐतिहास राससंग्रह भाग१,२,३,४ (गूर्जर)	ले० विजयधर्मसूरि	श्री यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर. सं० १९७६-७८
हि०शि०रा०र०	श्री हितशिक्षारासनो रहस्य (गूर्जर)	ले० कवि ऋषभदास	श्री जैनधर्मप्रसारक सभा, भावनगर. सं० १९८०
म.प.या अं.ग.म.प.	अंचलगच्छीय महोटी पट्टावली (गूर्जर)	....	श्री विधिपक्षगच्छस्थापक आर्यरक्षितसूरि-पुस्तकोद्धारखाता, कच्छ. सं०१९८५
त० प०	तपागच्छपट्टावली भाग १ ,,	ले० श्री कल्याणविजयजी	श्री विजयनीतिसूरीश्वरजी लाईब्रेरी, अहमदाबाद. सं० १९९६
त० श्र० सं०	तपागच्छ-श्रमण-संघ (गूर्जर)	ले० श्री जयंतीलाल छोटालाल	श्री चारित्र-स्मारक ग्रंथमाला, वीरमगाम. सं० १९९२
प० स०	पट्टावलीसमुच्चय भाग १ (संस्कृत)	संपा० मु० दर्शनविजयजी	,, ,, ,, १९८९
सो० सौ० का०	सोमसौभाग्य काव्य (गूर्जर)	अनु० मु० धर्मविजयजी	श्री जैन ज्ञानप्रसारक मण्डल, बम्बई. सं० १९६१
उ० ग० प०	उपकेशगच्छप्रबंध (संस्कृत)	ले० श्रीमद्ककसूरि	अप्रकाशित
गुर्वावली	.... ,,	ले० मु० सुन्दरसूरि	श्री यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर. सं० १९६७

पा० प०	पार्श्वनाथपरंपरा भाग १,२ (हिन्दी)	ले० मु० ज्ञानसुन्दरजी (देवगुप्तसूरि)	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान-पुष्पमाला, फलोदी. सं० २०००
ग०प्र०या जै०गी०	गच्छमतप्रबंध संघ-प्रगति तथा जैनगीता (गूर्जर)	ले० बुद्धिसागरसूरि	श्रीअध्यात्मप्रसारक मंडल, बम्बई. सं० १९७३
जै० जा० म०	जैनजातिमहोदय (हिन्दी)	ले० मु० ज्ञानसुन्दरजी	श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान-पुष्पमाला, फलोदी. सं० १९८६
म० वं० मु०	महाजनवंश-मुक्तावली (हिन्दी)	ले० मु० रामलाल गणि	श्री जैन विद्याशाला, बीकानेर. सं० १९६७
जै० गो० सं०	जैन गोत्रसंग्रह (गूर्जर)	ले० हीरालाल हंसराज	स्वयं लेखक, जामनगर. सं० १९८०
श्री० वा० ज्ञा० भे०	श्रीमाली वाणियोनो ज्ञातिभेद (गूर्जर)	ले० मणीभाई बकोरभाई	जैन बन्धुमण्डल, सूरत. सं० १९७७
जै० सं० शि०	जैन सम्प्रदाय-शिक्षा (हिन्दी)	ले० यति श्री बालचन्द्रजी	सेठ तुकाराम जावजी, सं० १९६७
गु० अ० इति०	गुजराती अटकोनो इतिहास (गूर्जर)	ले० प्रो० विनोदिनी नीलकंठ	गूर्जर वर्ना० सोसाइटी, अहमदाबाद. सं० १९९८
ब्रा० उत्प०	ब्राह्मणोत्पत्ति	ले० पं० हरिकृष्ण शास्त्री	खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई. सं० १९७९
पी० रि०	पीटरसन की रिपोर्ट भा० १, २ (अंग्रेजी)	ले० पीटरसन	....
जै० सा० सं० इति०	जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास (गूर्जर)	ले० मोहनलाल दलीचन्द शाह	श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई. सं० १९८९
जै० गु० क०	जैन गूर्जर कवि भा० १ ,,	,,	,, ,, १९८२
,,	,, भा० २ ,,	,,	,, ,, १९८७
,,	,, भा० ३ खं० १ ,,	,,	,, ,, २०००
,,	,, ,, खं० २ ,,	,,	,, ,, ,,
आ० का० म० मौ०	आनन्द-काव्य-महोदधि-मौक्तिक ८ कुमारपालरास (गूर्जर)	ले० कवि ऋषभदास	देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार-फण्ड, बम्बई, सं० १९८३
जि० र० को०	जिन रत्नकोश भा० १ (अंग्रेजी)	ले० पं० हरिदामोदर वेलंकर	भंडारकर ओरियन्टल रीसर्च इंस्टीट्यूट, पूना. सन् १९४४
लीं. भं. ह. प्र. सू. प.	लींबड़ी भंडार की हस्तलिखित प्रतियों का सूचीपत्र (गूर्जर)	संपा० मु० चतुरविजयजी	श्रीमती आगमोदय समिति, बम्बई. सं० १९८४

खं.शा.प्रा.ता. जै.ज्ञा.भं.	खंभात शांतिनाथ भंडार की प्राचीन ताड़पत्रीय पुस्तकों का सूचीपत्र (गूर्जर)	संयो० कुमुदसूरिजी	शांतिनाथ प्राचीन ताड़पत्रीय जैन ज्ञानभण्डार, खंभात. सं० १९९९
जै० ग्रं०	जैन ग्रंथावली (गूर्जर)	....	श्री जैन श्वेताम्बर सभा, बम्बई. सं० १९६५
सा० मा०	साधन-सामग्री (गूर्जर)	मुनि जिनविजयजी का भाषण	गुजरात साहित्य सभा, अहमदाबाद. सन् १९३३
प्र० च०	श्री प्रभावक चरित्र श्री प्रभाचंद्रसूरिकृत (गूर्जर)	श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर	श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर. सं० १९८७
कु० प्र०	कुमारपाल-प्रतिबोध	,, ,,	,, ,, ,, १९८३
कु० प्र० प्र०	कुमारपाल-प्रतिबोध-प्रबंध (संस्कृत)	,, ,,	,, ,, ,,
प्र० पु०	प्रभाविक पुरुषो (गूर्जर)	ले० सोहनलाल दीपचन्द	श्री जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर. सं० १९९९
जै० म० र०	जैननो महान् रत्नो ,,	ले० प्रभुदास अमृतलाल मेहता	जैन सस्तीवांचनमाला, भावनगर. सं० १९८२
गू०प्रा०मं०वं०प०	गूर्जर प्राचीन मंत्री वंश-परिचय (गूर्जर)	ले० पं० लालचंद्र भगवानदास	
वि० प्र०	विमल-प्रबन्ध पं० लावण्यसमयकृत ,,	संशो० मणिलाल बकोरभाई	स्वयं भाषान्तरकर्त्ता, सूरत. सं० १९७०
वि० रा०	विमलमंत्री-रास पं० लावण्यसमयरचित ,,	संशो० भीमसिंह माणके	स्वयं भाषान्तरकर्त्ता, बम्बई. सं० १९६८
व०च० या वच०	वस्तुपाल-चरित्र (संस्कृत)	ले० श्रीमद् हर्षसूरि	श्री क्षान्तिसूरि जैन ग्रंथमाला, महुवा (गूर्जर) सं० १९९७
न० ना० नं०	नरनारायणानंदकाव्य ,,	ले० वस्तुपाल	ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा. ई० सन् १९१६
की० कौ०	कीर्ति-कौमुदी ,,	ले० महाकवि सोमेश्वर	,, ,, ,, १८८३
ह० म० म०	हमीरमदमर्दननाटक ,,	ले० जयसिंहसूरि	,, ,, ,, १९२०
सु० सं०	सुकृतसंकीर्त्तनम् ,,	ले० महाकवि अमरसिंह	श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर. सं० १९७४

व० वि०	वसन्त-विलास (संस्कृत)	ले० बालचन्द्रसूरि	ऑरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा. सन् १९१७
ध० म०	धर्माभ्युदय महाकाव्य (संस्कृत)	ले० उदयप्रभसूरि	....
सुरथोत्सव	.... ,,	ले० महाकवि सोमेश्वर	तुकाराम जीवाजी, बम्बई. सन् १९०२
सु० की० क०	सुकृतकीर्त्तिकल्लोलिनी (संस्कृत)	ले० उदयप्रभसूरि	ओरियन्टल रीसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा. सन् १९२०.
व० ते० प्र०	वस्तुपालतेजपालप्रशस्ति (संस्कृत)	ले० जयसिंहसूरि	,, ,,
मं० व० प्र०	मंत्रीश्वर वस्तुपाल-प्रशस्ति (संस्कृत)	ले० नरेन्द्रप्रभसूरि	....
रे० गि० रा०	रेवंतगिरिरास ,,	ले० विजयसेनसूरि	....
व० ते० प्र०	वस्तुपाल-तेजपाल-प्रबन्ध (संस्कृत)	ले० राजशेखरसूरि	ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा. सन् १९१७
अ० म० द०	अलंकारमहोदधि नरेन्द्रप्रभ-सूरिविरचित (गूर्जर)	संपा० लालचन्द्र भगवानदास गांधी	,, ,, १९४२
गु० गौ०	गुजरातनो गौरव (गूर्जर)	ले० जगजीवन मावजी	श्री जैन ऑफिस, भावनगर. सन् १९१९
व० ते० रा०	वस्तुपाल तेजपालनो रास (गूर्जर)	पं० मेरुविजय	भीमसिंह माणके, बम्बई. सं० १९७६
ते० पा० वि०	तेजपालनो विजय ,,	ले० पं० लालचंद्र भगवानदास	अमयचंद्र भगवानदास गांधी भावनगर. सं० १९९१
सं० च०	श्री संघपतिचरित्र श्री उदयप्रभसूरिकृत	अनु० जगजीवनदास पोपटलाल	जैन आत्मानंद सभा, भावनगर. सं० २००३
व० वि० मं०	वस्तुपालनो विद्यामंडल (गूर्जर)	ले० भोगीलाल ज० सांडेसरा	जैन ऑफिस, भावनगर. सं० २००४
पा० च० प०	पाटणनी चढ़ती पड़ती (गूर्जर)	ले० जगजीवन मावजी	जैन ऑफिस, भावनगर. सं० १९७८
अ० आ० सू०	अणहिलपुरनो आथमतो सूर्य (गूर्जर)	ले० ,,	जैन ऑफिस, भावनगर. सं० १९८१

पा० प्र०	पाटण का प्रभुत्व के० एम० मुन्सीविरचित भा०१,२ (हिन्दी)	अनु० प्रवासीलाल वर्मा	हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई. सन् १९४१
गु० ना०	गुजरातनो नाथ (हिन्दी)	,,	,, ,, १९४२
ला० दं०	लाटनो दंडनायक महा० शांतू महता (गूर्जर)	ले० धीरजलाल धनजी	जैन ऑफिस भावनगर. सन्० १९३६
म० गु० मं०	महागुजरातनो मंत्री ,,	,,	जैन ऑफिस, ,, सन् १९३६
गु० ज०	गुजरातनो जयखण्ड भाग १, २ (गूर्जर)	ले० जवेरचंद्र मेघाणी	गूर्जरग्रंथरत्न कार्यालय, अहमदाबाद. सन् १९४४, ४६
म०गु०सु०यु०	महान् गुजरातनो सुवर्ण युग (गूर्जर)	ले० मंगलदास त्रिकमदास	प्राचीन साहित्य-संशोधक कार्यालय, थाणा. सं० २००५
की० को०	कीर्त्तिशाली कोचर ,,	ले० रा० सुशील	जैन सस्ती वांचनमाला, भावनगर. सं० १९८६
व० जा०	वज्रस्वामी अने जावड़शाह (गूर्जर)	ले० मणिलाल न्यालचन्द्र	जैन सस्ती वांचनमाला, पालीताणा. सं० १९८९
म० सं०	महान् सम्प्रति ,,	ले० ,,	जैन सस्ती वांचनमाला, भावनगर. सं० १९८२
शा० बा०	शाह के बादशाह (गूर्जर)	ले० विद्याविजयजी	श्री यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर. सं० १९८१
मे० मे० या०	मेरी मेवाड़यात्रा ,,	ले० ,,	श्री विजयधर्मसूरि जैन ग्रंथमाला, उज्जैन. सं० १९९२
मे० ने० या०	मेरी नेमाड़यात्रा (हिन्दी)	ले० यतीन्द्रसूरिजी	जोशी रावल सुरतिंगजी वन्नाजी, भूति. सं० १९९६
मे० गो० या०	मेरी गोड़वाड़यात्रा ,,	,,	....
य० वि० दि०	यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भाग १ (हिन्दी)	,,	१–श्री जैन संघ, फताहपुरा. मारवाड़ सं० १९८६
	भाग २ "	,,	२–श्री जैन संघ, हरजी. मारवाड़ सं० १९८८
	भाग ३ "	,,	३–शाह प्रतापचन्द्र धुड़ाजी, बागरा. " सं० १९९१
	भाग ४ "	,,	४–श्री जैन कुक्षी संघ, कुक्षी (मालवा). सं० १९९३
ती० या० व०	तीर्थयात्रा-वर्णन (गूर्जर)	संकलन ,,	श्री देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, सूरत. ......

म० च०	महावीर-चरित्र (संस्कृत)	ले० नेमिचन्द्रसूरि	श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर. सं० १९७३
उ० त०	उपदेश-तरंगिणि "	ले० रत्नमंदरगणि	श्री यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर. सं० १९६७
उ० मा०	उपदेश-माला "	ले० जिनदासगणि	श्री लींमड़ी जैन ज्ञानमंडार, लींमड़ी. ......

D. C. M. P. (G.O.S.V.no.LXXVI) पत्तनज्ञानभण्डार की सूचि Pablished by Oriental Institute, Baroda in 1942

जै० मं० सू० (G. O. S. V. no. XXI) जैसलमेर-भण्डार की सूचि " " ......

H.M.I. या M.I. History of Mediaval India by Isvariprasad.

H. I. G. Historical Inscriptions of Gujrat. part 1, 2,3rd. Published by The Forbus Gujarati Sabha, Bombay in 1933, 1935 & 1942 respectively.

G. G. The Glory that was Gurjardesa's. part 1, 2, 3rd. by K. M. Munshi. Published by Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay in 1943 & 1944 respectively.

H. M. M. Hammirmadamardan by Jaisinghsuri. Published by Oriental Institute, Baroda in 1920.

मासिक पत्रादि

पत्र का नाम	अङ्कसंख्या	प्रकाशनकर्त्ता व्यक्ति	प्रकाशक-समिति अथवा सभा
महावीर	अङ्क १,२,३,१०,११,१२	मंत्री समर्थमल रतनचन्द संघवी	अखिल भारतवर्षीय पौरवाल-महासम्मेलन, सिरोही.
अधिवेशन-अङ्क	श्री जैन श्वेताम्बरसभा के १३वें अधिवेशन का विशेषांक	मंत्री मोतीलाल वीरचन्द	जैन श्वेताम्बरसभा, बम्बई.
पु० पु०	पुरातत्त्व पुस्तक भा० २, ३, ४, ५	संपा० रसिकलाल छोटालाल परीख	गूजरात पुरातत्त्व मन्दिर, अहमदाबाद.
अनेकान्त	वर्ष ४, किरण ६, जुलाई-अगस्त सन् १९४१	संपा० जुगुलकिशोर मुख्तार	वीर सेवामन्दिर, सरसावा.
साहित्य-अङ्क	विशेष अङ्क वि० सं०१९८५	मंत्रीगण	यंगमेन्स जैन सोसाइटी, अहमदाबाद.
जै० सा० सं०	जैन साहित्य-संशोधक खण्ड २ अङ्क १,२,३-४	संपा० मु० जिनविजयजी	जैनसाहित्य-संशोधक कार्यालय, अहमदाबाद.
"	" खंड ३ अङ्क १,२,३,४	"	" "

जै० स० प्र०	जैन सत्यप्रकाश वर्ष ३ अङ्क १ से १२	तंत्री चीमनलाल गोकुलदास शाह	जैन धर्म सत्यप्रकाशक समिति, अहमदाबाद.
"	" " ४ " "	"	" "
"	" " ५ " "	"	" "
"	" " ७ " १,२,३	"	" "
"	" " ८ " १ से १२	"	" "
"	" " १० " "	"	" "
"	" " ११ " "	"	" "
प० ब०	परवारबन्धु-अधिवेशन-अङ्क सन् १९५१	संपा० जयन्तीलाल	अखिल भारतवर्षीय परवार महा-सम्मेलन, अमरावती.

जिज्ञासु दृष्टि से पढ़ी गईं विविध विषयक लगभग तीन सौ पुस्तकों में से उल्लेखनीय पुस्तकों के नाम

जैन श्वेताम्बर डिरेक्टरी—श्री जैन श्वेताम्बर सभा, बम्बई द्वारा प्रकाशित.
प्रकट प्रभावी पार्श्वनाथ—जैन सस्ती वांचनमाला, भावनगर द्वारा प्रकाशित.
जिनप्रभसूरि और सुलतान मुहमद—पं० लालचन्द्र भगवानदास गांधीलिखित.
पावागढ़ थी वड़ोदरा में प्रकट थयेला पार्श्वनाथ—पं० लालचन्द्र भगवानदास गांधीकृत.
अमेरीका में जैनधर्म की गूंज भाग १ से ६ पर्यन्त—सूर्यकान्त शास्त्रीलिखित.
अकबर अने हीरविजयसूरि—जैन ऑफिस, भावनगर द्वारा प्रकाशित.
जैन रौप्यमहोत्सव-अंक—जैन ऑफिस, भावनगर द्वारा प्रकाशित.
मध्यप्रांत, मध्यभारत, राजपूताने के स्मारक—पं० शीतलप्रसादजीलिखित.
हम्मीरगढ़— मुनि जयंतविजयजीलिखित
ब्राह्मणवाड़ा— "
उपरियालातीर्थ— "
श्री शंखेश्वरतीर्थ— "
कुम्भारियाजी— मथुरादास गांधीलिखित
हेमचन्द्राचार्य— जैन ऑफिस, भावनगर द्वारा प्रकाशित
सूरीश्वर अने सम्राट्— मु० विद्याविजयजीलिखित
भानुचंद्रगणिचरित— मु० जिनविजयजीसम्पादित
प्राचीन भारतवर्षनो सिंहावलोकन—विजयेन्द्रसूरिरचित
भारतवर्ष का इतिहास— गुलशनरायलिखित
मेवाड़-गौरव—हरिशंकर शर्म्माकृत
विजयप्रशस्तिसार— मु० विद्याविजयजीकृत
शत्रुँजयपर्वत का परिचय— मु० जिनविजयजीलिखित
मनुस्मृति— पं० केशवप्रसादसंपादित
जैन इतिहास भा० १, २— सूरजमल जैनलिखित
भारत का इतिहास और जैनधर्म— भागमल मोतूमल
जैनधर्म की विशेषतायें—
जैन दर्शन— विजयेन्द्रसूरिरचित
समाज के अधः पतन के कारण— फूलचंद्र अग्रवाल
परमार धारावर्ष भा १, २—
प्रतिमा-लेखसंग्रह— पं० कामताप्रसाद जैनसंपादित
प्रशस्ति-संग्रह— पं० भुजबलीसंपादित

जैन स्मारक—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकृत
प्राचीन मध्यभारत और राजपूताना— ,,
जैन शिलालेख-संग्रह— हीरालालसंग्रहीत
संक्षिप्त जैन इतिहास भा० १— पं० कामताप्रसादलिखित
" भा० २ खं० १ "
" भा० ३ खं० १,२,३ "
हिमांशुविजयजीना लेखो—
शत्रुंजयमाहात्म्य–विद्याशाला, अहमदाबादद्वारा प्रकाशित
देवकुलपाटक— विजयधर्मसूरिरचित
गृह्यसूत्र— पं० कृष्णदाससंपादित
इतिहास में मारवाड़ीज्ञाति का स्थान–बालचंद मोदीलिखित
जैनधर्म की प्राचीन अर्वाचीन स्थिति–बुद्धिसागरजीलिखित
जैन बालग्रंथावली—गूर्जर ग्रंथरत्न कार्यालय, अहमदाबाद
अहमदाबादनो जीवन-विकास–शंकरराम अमृतरामलिखित
श्राद्धविधि-प्रकरण— पं० तिलकविजयजीसंपादित
राधनपुर-डिरेक्टरी— जेठालाल बालाभाई ,,
आदर्श महापुरुष— साधुराम शास्त्रीलिखित
जैन इतिहास भाग २— पं० सूरजमललिखित
,, भाग ३— पं० मूलचंदलिखित
संयुक्तप्रान्त-स्मारक— पं० शीतलप्रसादजीलिखित
जैन शिलालेख-संग्रह— माणिकलालसंपादित
भोजन-व्यवहार तथा कन्या-व्यवहार
कच्छदेशनो इतिहास— आत्माराम केशवजीलिखित
वाघेला-वृत्तान्त— कृष्णराय गणपतरायकृत
शांतू महता— जैन ऑफिस, भावनगर द्वारा प्रकाशित
वीर वनराज— धूमकेतुलिखित
कुमारदेवी—लीलावती मुन्शी

संक्षिप्त अथवा सांकेतिक शब्दों की समझ

भ०, भट्टा०— भगवान्, भट्टारक
आ०— आचार्य
उपा०— उपाध्याय
पं०— पन्यास, पंडित
सा०— साधु
ले०— लेख, लेखक, लेखांक
श्रे०—श्रेष्ठि, श्रेयोर्थ
व्य, व्यव०— व्यवहारी
श्रा०— श्रावक, श्राविका, श्रावण
शा०— शाह
मं०— मंत्री
महं०— महत्तर मंत्री
महा०— महामात्य
दं०, दंड०— दंडनायक
ठ०— ठक्कुर, ठक्कुराज्ञि
सं०— संघवी, संघपति, संख्या, संवत्, संतानीय
वि०— विक्रम
वि० सं०— विक्रम संवत्
ई० सन्०— ईस्वी सन्
पू०— पूर्व
प्र०— प्रथम, प्रतिष्ठित
दे० कु०— देवकुलिका
मू० ना०— मूलनायक
द्वि०— द्वितीय
तृ०— तृतीय
रवि०— रविवार
सो०— सोमवार
मं०— मंगलवार

बुध०— बुधवार
गुरु०— गुरुवार
शु०— शुक्रवार
शनि०— शनिश्चर
ग०— गच्छ, गच्छीय
त०, तपा०— तपागच्छीय
अंच.,अंचल—अंचलगच्छीय
आ० ग०— आगमगच्छीय
पूर्णि० ग०— पूर्णिमागच्छीय
पू० प०— पूर्णिमापक्षीय
मड़ा०— मड़ाहड़गच्छीय
जीरा०— जीरापल्लीगच्छीय
ब्रह्माण०— ब्रह्माणगच्छीय
वृ०— वृहद्
वृ० तपा०— वृद्धतपागच्छीय
वृ० त०— ,,
प्र० संवत्— प्रतिष्ठा-संवत्
प्र० प्रतिमा०— प्रतिष्ठित प्रतिमा
प्र० आचार्य— प्रतिष्ठाकर्त्ता आचार्य
प्र० श्रावक— प्रतिष्ठा कराने वाला श्रावक
पि०— पितृ
मा०— मातृ
भ्रा०— भ्रातृ
पु०— पुत्र, पुत्री
भा०, स्वभा— भार्या, स्वभार्या
उप० ज्ञा०— उपकेशज्ञातीय
प्रा० ज्ञा०— प्राग्वाटज्ञातीय
श्री० ज्ञा०— श्रीमालज्ञातीय
गुज०— गुजराती
दो०— दोसी
गां०— गांधी
रु०— रुपया
शु०— शुक्ल
कृ०— कृष्ण
चै०— चैत्र
वै०— वैशाख
ज्ये०— ज्येष्ठ
आषा०— आषाढ़
आ० आश्वि०— आश्विन
का०— कार्त्तिक
पौ०— पौष
फा०— फाल्गुण

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चित्र—सूची

[प्रस्तुत इतिहास में आये हुये प्रायः सर्व हाफ्टोन चित्र अतिरिक्त सूरीश्वरजी के, गिरनारस्थ श्री वस्तुपाल-तेजपाल-ट्रॅंक, शत्रुंजयस्थ श्री विमलवसहिका के फोटोग्राफी में निष्णात एवं विशेषतः स्थापत्य-शिल्प के अत्यन्त प्रेमी अहमदाबाद—राजनगर के लब्ध-प्रतिष्ठित श्री जगन वी. महेता, प्रतिमा-स्टुडिओ, लालभवन, रीलीफ रोड, अहमदाबाद द्वारा श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति, स्टे. राणी के सर्वाधिकार के नीचे खींचे हुये हैं। महेता साहब का तत्परतापूर्ण श्रम एवं ऐतद् विषयक अनुभव इन चित्रों के सफल अवतरण का मूल एवं स्तुत्य कारण है। लेखक अत्यन्त आभारी है।

—लेखक]

॥ ॐ ॥

प्राग्वाट-इतिहास

प्रथम खण्ड

[विक्रम संवत् पूर्व पांचवी शताब्दी से विक्रम संवत् आठवीं शताब्दी पर्यन्त ।]

* ॐ *

प्राग्वाट-इतिहास

प्रथम खंड

महावीर के पूर्व और उनके समय में भारत

ब्राह्मणवर्ग और क्रियाकाण्ड में हिंसावाद

वर्तमान युग को महावीरकाल भी कह सकते हैं, जिसका इतिहास की दृष्टि से आरंभ विक्रम संवत् से पूर्व पांचवीं शताब्दी में जैन तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के निर्वाण-संवत् से होता है। कुरुक्षेत्र के महाभारत में रणप्रिय योद्धाओं का समय नष्टप्राय हो गया था। भारत की राजश्री नष्ट हो गई थी। भारत में महान् परिवर्तन होने वाला था। ब्राह्मणवर्ग का वर्चस्व उत्तरोत्तर बढ़ने लगा था। वर्ण-व्यवस्था कठोर बनती जा रही थी। ई० स० पू० १००० से ई० स० पू० २०० वर्षों का अन्तर बुद्धिवाद का युग समझा जाता है। इस युग में वर्णाश्रम-पद्धति के नियम अत्यन्त कठोर और दुःखद हो उठे थे। इसका यह परिणाम निकला कि धर्म के क्षेत्र में शूद्र वर्ण का प्रवेश भी अशक्य हो गया था। तेवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ ने इस बुद्धिवाद के युग में अवतरित होकर भारत की आर्य-भूमि पर बढ़ते हुए मिथ्याचार के प्रति भारी विरोध प्रदर्शित किया। भगवान् महावीर के निर्वाण से २५० वर्ष पूर्व १०० वर्ष की आयु भोग कर ये मोक्षगति को प्राप्त हुये थे। ब्राह्मणवर्ग प्रथम राजा एवं सामंतों के आश्रित था, पीछे वह उनका कृपापात्र बना और तत्पश्चात् गुरु-पद पर प्रतिष्ठित हुआ। ब्राह्मण पंडितों ने ब्राह्मण एवं अपने गुरु-पद का अपरिमित गौरव स्थापित किया और ऐसी-ऐसी निर्जीव कथा, कहानियाँ, दृष्टांत प्रचारित किये कि जनसमूह गुरु को ईश्वर से भी बढ़ कर समझने लगा। परिणाम

श्री पार्श्वनिर्वाणात् पञ्चाशदधिकवर्षशतद्वयेन श्री वीरनिर्वाणम्-कल्पसूत्र सुबोधिका टीका। पृष्ठ १३२

यह हुआ कि ब्राह्मणवर्ग निरंकुश एवं सत्ताभोगी हो बैठा। यज्ञ, हवन, योगादि की असत् प्रणालियाँ बढ़ने लगीं। यज्ञों में पशुओं की बलि दी जाने लगी। शूद्रों को हवन एवं यज्ञोत्सवों में भाग लेने से रोका जाने लगा। यह समय इतिहास में क्रियाकाण्ड का युग भी माना जाता है; परन्तु यह युग अधिक लम्बे समय तक नहीं टिक सका।

महावीर से पूर्व केवल दो संस्थायें ही भारत में रही हैं, एक धर्मसंस्था और दूसरी वर्णसंस्था। आज की ज्ञातियों का दुर्ग एवं जाल, श्रेणियों का दुर्भेद उस समय नितान्त ही नहीं था। वर्णसंस्था आज भी है और उसके अनुसार पूर्ववत् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण भी विद्यमान हैं, परन्तु आज ये सुदृढ़ ज्ञातियों के रूप में हैं, जबकि उस समय प्रत्येक पुरुष का वर्ण उसके कर्म के आधीन था।

ब्राह्मणवर्ग की सत्ताभोगी प्रवृत्ति से राजा एवं सामंत भी असंतुष्ट थे, उनके मिथ्याडम्बर से इतरवर्ग भी क्षुब्ध थे, उनके हिंसात्मक यज्ञ, हवनादि क्रियाकाण्डों से भारत का श्वास घुटने लग गया था। इस प्रकार भारत के कलेवर में विचारों की महाक्रांति पल रही थी, ब्राह्मणवर्ग के विरुद्ध अन्य वर्गों में विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। ब्राह्मणवर्ग की पीछे स्थिति बिगडी अथवा सुधरी, कुछ भी हो, परन्तु इस क्रियाकाण्ड के युग में ज्ञातीयता का बीजारोपण तो हो ही गया, जो आज महानतम वटवृक्ष की तरह सुदृढ़, गहरा और विस्तृत फैला हुआ है।

बाहरी आक्रमणों का प्रारंभ

ब्राह्मणवर्ग की सत्तालिप्सा, एकछत्र धर्माधिकारिता ने भारत के संगठन को अन्तप्रायः कर डाला। चारों वर्णों में जो पूर्व युगों में मेल रहा था, वह नष्ट हो गया। परस्पर द्वेष, मत्सर, विद्रोह, ग्लानि के भाव जाग्रत हो गये। राजागणों की राज्यश्री जैसा ऊपर लिखा जा चुका है ब्राह्मणवर्ग के चरणों में लोटने लगी। इस प्रकार ई० सन् से पूर्व छट्ठी शताब्दी में भारत की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक अवनति चरमता को पहुँच गई। उधर पड़ौसी शकप्रदेश में प्रतापी सम्राट् साइरस राज्य कर रहा था। उसने भारत की गिरती दशा से लाभ उठाना चाहा और फलतः उसने पंजाब प्रदेश पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिये और पंजाब का अधिकांश भाग अधिकृत कर लिया। सम्राट् डेरियस ने भी आक्रमण चालू रक्खे और उसने भी सिंध-प्रांत के भाग पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। भारत के निर्बल पड़ते राजा उन आक्रमणों को नहीं रोक सके। भारत के इतिहास में बाहरी आक्रमणों का प्रारम्भ इस प्रकार ई० सन् से पूर्व छट्ठी शताब्दी से होता है। वर्णाश्रम की सड़ान से भारत भीतर से विकल हो उठा और बाहरी आक्रमणों का संकट जाग उठा।

महान् अहिंसात्मक क्रान्ति, बौद्धधर्म की स्थापना और भगवान् महावीर का दया-धर्म और उसका प्रचार।

आज से ई० सन् पूर्व नवीं शताब्दी में भगवान् पार्श्वनाथ ने सर्व प्रथम ब्राह्मणवर्ग की बढ़ती हुई हिंसात्मक एवं स्वार्थपूर्ण मिथ्यापरता के विरोध में आन्दोलन को जन्म दिया था। उनके निर्वाण के पश्चात् २५० वर्ष पर्यन्त का समय ब्राह्मणवर्ग को ऐसा मिल गया, जिसमें उनका विरोध करने वाला कोई महान् प्रतापी पुरुष पैदा नहीं हुआ। इस अन्तर में ब्राह्मणवर्ग का हिंसात्मक क्रियाकाण्ड चरमता को लांघ गया। ई० सन् से पूर्व लगभग ५९९ वर्षों के भगवान् महावीर का अवतरण हुआ। भगवान् गौतमबुद्ध भी इसी काल में हुए। इन दो महापुरुषों ने हिंसात्मक क्रियाकाण्ड का अन्त करने के लिए अपने प्राण लगा दिये। उस समय की स्थिति भी दोनों महापुरुषों के

अनुकूल थी। राजाओं ने, जो ब्राह्मणवर्ग की निरंकुशता एवं सत्तालिप्सा से चिढ़े हुए थे इनके विचारों का समर्थन किया तथा तीनों वर्गों ने इनके विचारों को मान दिया और उन पर चलना प्रारंभ किया। समस्त उत्तर भारत में दयाधर्म का जोर बढ़ गया और ब्राह्मणवर्ग की प्रमुखता एवं सत्ता हिल गई। यहाँ तक कि स्वयं ब्राह्मणवर्ग के बड़े-बड़े महान् पंडित, इनके भक्त और अनुयायी बन कर इनके दया-धर्म का पालन और प्रचार करने लगे।

ई० सन् पूर्व की छट्ठी शताब्दी तक आर्यावर्त्त अथवा भारत में दो ही धर्म थे—जैन और वैदिक। चारों वर्णों के स्त्री पुरुष अपनी-अपनी इच्छानुकूल इन दो में से एक का पालन करते थे। ब्राह्मणवर्ग ने वैदिकमत का औदार्य दिनोंदिन कम करना प्रारंभ किया और उसका यह परिणाम हुआ कि वैदिकमत केवल ब्राह्मणवर्ग की ही एक वस्तु बन गई। फलतः अन्य वर्गों का झुकाव जैनधर्म के प्रति अधिक बढ़ा। इस ही समय बुद्धदेव का जन्म हुआ और उन्होंने तृतीय धर्म की प्रवर्तना की, जो उनके नाम के पीछे बौद्धमत कहलाया। अब भारत में दो के स्थान पर वैदिकमत; बौद्धमत और जैनमत इस प्रकार तीन मत हो गये। जैनमत और बौद्धमत मूल धर्म-सिद्धांतों में अधिक मिलते हैं। दोनों मतों में अहिंसा अथवा दया-धर्म की प्रधानता है, दोनों में प्राणीमात्र के प्रति समतादृष्टि है, दोनों में यज्ञ-हवनादि क्रियाकाण्डों का खण्डन है, चारों वर्णों के स्त्री-पुरुषों को बिना राव-रंक, ऊँच-नीच के भेद के दोनों मत एक-सा धर्माधिकार देते हैं। जैनमत से मिलता होने के कारण बौद्धमत को चारों वर्णों के स्त्री और पुरुषों ने सहज अपनाना प्रारंभ किया और जैनमत के साथ-ही-साथ वह भी बढ़ा। फिर भी उदारता, विशालता, क्षमता, सहिष्णुता की दृष्टियों से दोनों मतों में जैनमत का स्थान प्रमुख है। गौतम बुद्ध के अनुयायियों में अधिकतम ब्राह्मण और क्षत्रियवर्ग के लोग थे। परन्तु भगवान् महावीर के अनुयायियों में स्वतन्त्र रूप से चारों वर्ण थे। इसने वर्णाश्रम की सड़ान से लोगों का उद्धार किया। भगवान् महावीर की सत्यशील आत्मा ने मानव-मानव के बीच के भेद के विरोध में महान् आन्दोलन खड़ा कर दिया और समता के सिद्धांत की स्थापना की और प्रसिद्ध किया कि किसी भी शूद्र अथवा अन्य वर्ण का कोई भी व्यक्ति अपना जीवन पवित्र, निर्दोष एवं परोपकारी बना कर मोक्ष-मार्ग में आगे बढ़ सकता है और मोक्षगति प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार भगवान् ने लोगों में आत्मविश्वास की भावना को जाग्रत किया और उन्हें प्रोत्साहित किया तथा विश्वबन्धुत्व के सिद्धांत का पुनः प्रचार किया। इस प्रकार भगवान् ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के स्त्री-पुरुषों को समान रूप से धर्माधिकार प्रदान किया और उनमें प्रेम-धर्म की स्थापना की। भगवतीसूत्र के कथनानुसार भगवान् महावीर का जैनधर्म अंग, वंग, मगध, मलाया, मालव, काशी, कोशल, अच्छ (अत्स), वच्छ (वत्स), कच्छ, पाण्डय, लाढ़, वज्जी, मोली, अवह और सम्भुत्तर नामक सोलह महाजनपदों में न्यूनाधिक फैल गया था। इन प्रदेशों के राजा एवं माण्डलिक भी जैनधर्म के प्रभाव के नीचे न्यूनाधिक आ चुके थे। मगधपति श्रेणिक (बिंबिसार) और कौशलपति प्रदेशी (प्रसेनजित) भगवान् के अग्रगण्य नृपभक्तों में शिरोमणि थे। भगवान् के गौतम आदि ग्यारह गणधर थे, जो महान् पंडित, ज्ञानी, तपस्वी एवं प्रभावक थे। ये सर्व ब्राह्मणकुलोत्पन्न थे। और फिर इनके सहस्रों साधु शिष्य थे। चन्दनबालादि अनेक विदुषी साध्वियाँ भी थीं। ये सर्व धर्म-प्रचार, आत्मकल्याण एवं परकल्याण करने में ही दत्तचित्त थे। जैनधर्म का प्रचार करते हुए बहत्तर (७२) वर्ष की आयु भोग कर भगवान् महावीर जैन मान्यतानुसार

ई० सन् पूर्व ५२७ वर्ष में मोक्षगति को प्राप्त हुए[1]।

भगवान् की अहिंसात्मक क्रांति एवं जैनधर्म के प्रचार से नवीन बात यह हुई कि वर्णों में से जो भगवान् के दृढ़ अनुयायी बने उनका वर्णविहीन, ज्ञातिविहीन एक साधर्मीवर्ग बन गया जो श्रावक-संघ[2] कहलाया। श्रावक-संघ में ऊँच-नीच, राव-रंक का भेद नहीं रहा। इस श्रावक-संघ की अलग स्थापना ने वर्णाश्रम की जड़ को एक बार मूल से हिला दिया। भगवान् महावीर के पश्चात् आने वाले जैनाचार्यों ने भी चारों वर्णों को प्रतिबोध दे-देकर श्रावक-संघ की अति वृद्धि की। उनके प्रतिबोध से अनेक राजा, अनेक समूचे नगर ग्राम जैनधर्मानुयायी होकर श्रावक-संघ में सम्मिलित हुये। क्योंकि ब्राह्मणवाद के मिथ्याचार एवं ब्राह्मणगुरुओं की निरंकुशता एवं हिंसात्मक प्रवृत्तियों से उनको श्रावक-संघ में बचने का सुयोग मिला और सबके लिये धर्माधिकार सुलभ और समान हुआ।

श्रावक-संघ की स्थापना

इस प्रकार महावीर के जन्म के पूर्व जहाँ वर्णसंस्था और धर्मसंस्था दो थीं, उनके समय में वहाँ श्रावकसंस्था एक अलग तीसरी और उद्भूत हो गई तथा जहाँ जैन और वैदिक दो मत थे, वहाँ जैन, वैदिक और बौद्ध तीन मत हो गये।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात्

जैनाचार्यों द्वारा जैनधर्म का प्रसार करना

भगवान् महावीर हिंसावाद के विरोध में पूर्ण सफल हुए और अनेक कष्ट-बाधायें झेल कर उन्होंने 'अहिंसा-परमो धर्मः' का झंडा खड़ा कर ही दिया और दयाधर्म का संदेश समस्त उत्तरी भारत में घर २ पहुंचा दिया। जैन धर्म का सुदृढ़ व्यापक एवं विस्तृत प्रचार तो उनके पश्चात् आने वाले जैनाचार्यों ने ही किया था। यहाँ यह कहना उचित है कि भगवान् गौतमबुद्ध ने अपना उपदेशक्षेत्र पूर्वी भारत चुना था और भगवान् महावीर ने मगध और उसके पश्चिमी भाग को; अतः दोनों महापुरुषों के निर्वाणों के पश्चात् जैनधर्म उत्तर-पश्चिम भारत में अधिकतम रहा और बौद्ध-मत प्रधानतः पूर्वीभारत में। दोनों मतों को पूर्ण राजाश्रय प्राप्त हुआ था। मगधसम्राटों की सत्ता न्यूनाधिक अंशों में सदा सर्वमान्य, सर्वोपरि एवं सार्वभौम रही है। मगध के प्रतापी सम्राट् श्रेणिक (बिम्बिसार), कूणिक (अजातशत्रु)

१–भगवान् महावीर के मोक्ष जाने के वर्ष ई० सन् पूर्व ५२७ के होने में तर्कसंगत शंका है। गौतमबुद्ध का निर्वाण ई० सन् पूर्व ४७७ वर्ष में हुआ। वे अस्सी (८०) वर्ष की आयु भोग कर मोक्ष सिधारे थे। इस प्रकार उनका जन्म ई० सन् पूर्व ५५७ में ठहरता है। गौतम ने तीस वर्ष की वय में गृह-त्याग किया था अर्थात् ई० सन् पूर्व ५२७ में। अजातशत्रु बुद्धनिर्वाण के ८ वर्ष पूर्व राजा बना था और उसके राज्यकाल में दोनों धर्म-प्रचार कर रहे थे। महावीर निर्वाण और गौतम का गृहत्याग अगर एक ही संवत् में हुये होते तो अजातशत्रु के राज्यकाल में दोनों कैसे प्रचार करते हुये विद्यमान मिलते ?

२–श्रावक-संघ की स्थापना नवीन नहीं थी। जब २ जैनतीर्थङ्करों ने जैनधर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया, उन्होंने प्रथम चतुर्विध-श्रीसंघ की स्थापना की। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चार वर्गों के वर्गीकरण को ही चतुर्विध-श्रीसंघ कहा जाता है।

और उनके उत्तराधिकारी जैनधर्मावलम्बी थे। इनके पश्चात् मगध की सत्ता शिशुनागवंश और नन्दवंश के करों में रही। नन्दवंश में छोटे बड़े नव राजा हुये, जिनको नवनन्द कहा जाता है। ये जैनधर्मी नहीं भी रहे हों, फिर भी ये उसके द्वेषी एवं विरोधक तो नहीं थे। पश्चात् मौर्य-सम्राटों का समय आता है। प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त तो जैन-धर्म का महान् सेवक हुआ है। उसका उत्तराधिकारी बिन्दुसार भी जैन था। तत्पश्चात् वह बौद्धमतानुयायी बना और उसने बौद्धमत का प्रचार सम्पूर्ण भारत और भारत के पास-पड़ौस के प्रदेशों में बौद्धभिक्षुकों को भेज कर किया था। अशोक का पुत्र कुणाल था, कुणाल की विमाता ने उसको राज्यसिंहासन पर बैठने के लिये अयोग्य बनाने की दृष्टि से षड़यन्त्र रच कर उसको अन्धा बना दिया था। अतः अशोक के पश्चात् कुणाल का पुत्र प्रिय-दर्शिन जो अशोक का पौत्र था, सम्राट् बना। जैन-ग्रंथों में प्रियदर्शिन को सम्राट् संप्रति के नाम से उल्लिखित किया है। अशोक के समान सम्राट् संप्रति ने भी जैनधर्म का प्रचार समस्त भारत एवं पास-पड़ौस के प्रदेशों में जैनधर्म के अव्रती साधुओं[1] को, उपदेशकों को भेज कर खूब दूर २ तक करवाया था। उसने लाखों जिन-प्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाईं थीं और अनेक जैन-मन्दिर बनवाये थे। संप्रति के पश्चात्वर्ती मगध-सम्राट् निर्बल रहे और उनकी सत्ता मगध के थोड़े से क्षेत्र पर ही रह गई थी। अर्थ यह है कि ई० सन् पूर्व छट्ठी शताब्दी से ई० पूर्व द्वितीय शताब्दी तक समस्त भारत में जैन अथवा बौद्धमत की ही प्रमुखता रही।

शुंगवंश ने अपनी राजधानी मगध से हटा कर अवंती को बनाया, पश्चात् चहराटवंश और गुप्तवंश की भी, यही राजधानी रही। शुंगवंश के प्रथम सम्राट् पुष्यमित्र, अग्निमित्र आदि ने जैनधर्म और उनके अनुयायियों के ऊपर भारी अत्याचार बलात्कार किये, जिनको यहाँ लिखने का उद्देश्य नहीं है। उनके अत्याचारों से जैनधर्म की प्रसारगति अवश्य धीमी पड़ गई; परन्तु लोगों की श्रद्धा जैनधर्म के प्रति वैसी ही अक्षुण्ण रही। गुप्तवंश के सम्राट् वैदमतानुयायी थे; फिर भी वे सदा जैनधर्म और जैनाचार्यों का पूर्ण मान करते रहे। जैनधर्म की प्रगति से कभी उनको जलन और ईर्ष्या नहीं हुई। चहराटवंश तो जैनधर्मी ही था।

कलिंगपति चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल भी महान् प्रतापी जैन सम्राट् हुआ है। उसने भी जैनधर्म की महान् सेवा की है; जिसके संस्मरण में उसकी उदयगिरि और खण्डगिरि की ज्वलंत गुफाओं की कलाकृति, हाथीगुफा का लेख आज भी विद्यमान है। यह सब लिखने का तात्पर्य इतना ही है कि ई० सन् पूर्व छट्ठी शताब्दी से लेकर ई० सन् पूर्व द्वितीय शताब्दी तक जैनधर्म और बौद्धधर्म के प्रचार के अनुकूल राजस्थिति रही और उत्तर भारत में इन दोनों मतों को पूर्ण जनमत और राजाश्रय प्राप्त होता रहा। परन्तु कुछ ही समय पश्चात् बौद्धमत अपनी नैतिक कमजोरियों के कारण भारत से बाहर की ओर खिसकना प्रारम्भ हो गया था। जैनमत अपने उसी शुद्ध एवं शाश्वत रूप में भारत में अधिकाधिक सुदृढ़ बनता जा रहा था; चाहे वैदमत के पुनर्जागरण पर जैनधर्मानुयायियों की संख्या बढ़ने से रुक भले गई हो।

ई० सन् पूर्व छट्ठी शताब्दी से जैसा पूर्व लिखा जा चुका है भारत पर बाहरी ज्ञातियों एवं बाहरी सम्राटों के आक्रमण प्रारंभ हुए थे, जो गुप्तवंश के राज्यकाल के प्रारम्भ तक होते रहे थे। इन ६०० सौ वर्षों के

१-वे साधु, जो साधु के समान जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु आहार और विहार में वे साधुओं के समान पद-पद पर बन्धे नहीं होते हैं, जिनको हम आज के कुलगुरु कह सकते हैं अव्रती कहे गये हैं।

दीर्घ काल में भारत पर यवन, योन, शक अथवा शिथियन पल्लवाज आदि बाहरी ज्ञातियों ने अनेक बार आक्रमण किये थे और वे ज्ञातियाँ अधिकांशतः भारत के किसी न किसी भाग पर अपनी राज-सत्ता कायम करके वहीं बस गई थीं और धीरे २ भारत की निवासी ज्ञातियों में ही संमिश्रित हो गई थीं। ये ज्ञातियाँ पश्चिम और उत्तर प्रदेशों से भारत में आक्रमणकारी के रूप में आई थीं और इन वर्षों में भारत के पश्चिम और उत्तर प्रदेशों में जैनधर्म की प्रमुखता थी। अतः जितनी भी बाहर से आक्रमणकारी ज्ञाति भारत में प्रविष्ट हुई, उन पर भी जैन-धर्म का प्रभाव प्रमुखतः पड़ा और उनमें जो राजा हुये, उनमें से भी जैनधर्म के श्रद्धालु और पालक रहे हैं। यह श्रेय पंचमहाव्रत के पालक, शुद्धव्रतधारी, महाप्रभावक, दर्शनत्रय के ज्ञाता जैनाचार्यों और जैनमुनियों को है कि जो भगवान् महावीर के द्वारा जाग्रत किये गये जैनधर्म के प्रचार को प्राणप्रण से विहार, आहारादि के अनेक दुःख-कष्ट झेल कर बढ़ाते रहे और उसके रूप को अक्षुण्ण ही नहीं बनाये रक्खा वरन् अपने आदर्श आचरणों द्वारा जैनधर्म का कल्याणकारी स्वरूप जनगण के समक्ष रक्खा और विश्वबन्धुत्व रूपी प्रवाह राव के प्रासादों से लेकर निर्धन, कंगाल एवं दुःखीजन की जीर्ण-शीर्ण झोंपड़ी तक एक-सा प्रवाहित किया, जिसमें निर्भय होकर पशु, पक्षी तिर्यंच तक ने अवगाहन करके सच्चे सुख एवं शान्ति का आस्वादन किया।

स्थायी श्रावक-समाज का निर्माण करने का प्रयास

स्थायी श्रावक-समाज का निर्माण करने का प्रयास

जैसा पूर्व के पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि भगवान् महावीर ने श्री चतुर्विध-श्रीसंघ की पुनः स्थापना की थी और यह भी पूर्व लिखा जा चुका है कि भारत में अनादिकाल से दो धर्म—जैन और वैदिक चलते आ रहे हैं और प्रत्येक वर्ण का कोई भी व्यक्ति अपने ही वर्ण में रहता हुआ अपनी इच्छानुसार उपरोक्त दोनों धर्मों में से किसी एक अथवा दोनों का पालन कर सकता था। परन्तु इस अहिंसात्मक क्रांति के पश्चात् धर्मपालन करने की यह स्वतन्त्रता नष्ट हो गई। अतः भगवान् महावीर ने जो चतुर्विध श्रीसंघ की पुनः स्थापना की थी, वह सर्वथा वर्णविहीन और ज्ञातिविहीन अर्थात् वर्णवाद ज्ञातिवाद के विरोध में थी। जैसा पूर्व के पृष्ठों से आशय निकलता है कि वर्णवाद और ज्ञातिवाद मौर्य सम्राटों के राज्यकाल पर्यन्त दबा अवश्य रहा था, परन्तु उसका विष पूर्णतः नष्ट नहीं हुआ था। भगवान् महावीर के पश्चात्वर्त्ती जैनाचार्यों ने इसका भलीविध अनुभव कर लिया कि किसी भी समय भविष्य में वर्णवाद एवं ज्ञातिवाद का जोर इतना बढ़ेगा कि वह अपना स्थान जमा कर ही रहेगा, अतः जैनधर्म के पालन करने के लिये एक स्थायी समाज का निर्माण करना परमावश्यक है।

श्रावक के बारह-व्रत—"पांच अणुव्रत" १. स्थूलप्राणातिपातविरमणव्रत २. स्थूलमृषावादविरमणव्रत ३. स्थूल अदत्तादान-विरमणव्रत ४. स्थूलमैथुनविरमणव्रत ५. स्थूलपरिग्रहविरमणव्रत "तीन गुणव्रत" ६. दिग्व्रत ७, भोगोपभोग विरमणव्रत ८. अनर्थदण्ड विरमणव्रत "चार शिक्षाव्रत" ९. सामायिक व्रत १०. देशावकासिकव्रत ११. पौषधव्रत और १२. अतिथि-संविभागव्रत।

वैसे तो संसार के प्रत्येक धर्म का सच्ची विधि से पालन करना सर्व साधारण जन के लिये सदा से ही कठिन रहा है, परन्तु जैनधर्म का पालन तो और भी कठिन है, क्योंकि इसके इतने सूक्ष्म सिद्धान्त हैं तथा यह मानव की इच्छा, प्रवृत्ति, स्वभाव पर ऐसे-ऐसे प्रतिबन्ध कसता है कि थोड़ी भी वासना, आकांक्षा, निर्बलमानस-वाला मनुष्य इसका पालन करने में असफल रह जाता है। जैनधर्म की कठोरता का अनुभव करके ही इसके पालन करने वालों को श्रमण और श्रावक दो दलों में विभाजित कर दिया है। वैसे तो ये दल सर्व ही धर्मों में भी देखने को प्रायः आते हैं। श्रमणसंस्था संसार का त्याग करके भगवती दीक्षा लेकर पूर्णतः धार्मिक, लोकोपकारी जीवन व्यतीत करने वाले साधु-साध्वी, उपाध्याय, आचार्यों आदि की है और श्रावकसंस्था गृहस्थजनों की है, जिनकी प्रत्येक क्रिया में कुछ न कुछ पाप का अंश रहता ही है और वह पाप का अंश उस क्रिया-कर्म में अपनी अनिवार्य्य उपस्थिति के कारण ही नगण्य अवश्य है, परन्तु पाप की कोटि में अवश्य गिना गया है। इस दृष्टि को लेकर श्रावक के बारह व्रत निश्चित किये गये हैं और उसको जीवननिर्वाह के हेतु आवश्यक सावद्य क्रिया-कर्म करने की छूट दी गई है। परन्तु यह छूट भी इतनी थोड़ी और इतनी संयम-यम-नियमबद्ध है कि सर्वसाधारण जन श्रावक के बारह व्रत पालन करना तो दूर की और बड़ी बात है, श्रावक का चोला भी नहीं पहन सकता है। भगवान् महावीर के समय में इतना कठिनतया पालन किया जाने वाला जैनधर्म इसलिये चारों वर्णों के द्वारा स्वीकृत किया जा सका था कि ब्राह्मणवाद के निरंकुश एवं सत्ताभोगी रूप से अति सर्व-साधारण जन तो क्या राजा, महाराजा, सज्जनवर्ग भी दुखित, पीड़ित हो उठा था और उससे अपना परित्राण चाह रहा था। दुखियों, दीनों को तो सहारा चाहिए, जैनधर्म ने उनको राह बताई, शरण दी।

मौर्य-सम्राट् संप्रति (प्रियदर्शिन्) के समय में जैनधर्म के अनुयायियों की संख्या कई करोड़ों की हो गई थी। जैन-धर्म के मानने वालों की भगवान् के निर्वाण के पश्चात् लगभग ढाई सौ वर्षों में इतनी बड़ी संख्या में पहुंच जाना सिद्ध करता है कि ग्रामवार, नगरवार एक-एक या सौ-सौ व्यक्ति अथवा घर जैन नहीं बने थे; वरन अधिकांशतः ग्राम के ग्राम और समूचे नगर के नगर और बाहर से आई हुई ज्ञातियों के दल के दल जैनधर्मी बने होंगे, तब ही इतने थोड़े से वर्षों में इतनी बड़ी संख्या में जैन पहुंच सके यह कार्य जैनाचार्य्यों के अथक परिश्रम, प्रखर तेज, संयमशील चारित्र, अद्वितीय पाण्डित्य, अद्भुत लोकोपकारदृष्टि और सत्य, अहिंसा के एक-निष्ठ पालन पर ही संभव हुआ। आज तो जैन-धर्म के मानने वाले जैनियों की संख्या कुछ लाखों में ही है और वे भी अधिकतम क्या, पूर्णतया वैश्यज्ञातीय हैं। इतर वर्ण अथवा ज्ञाति के पुरुष जैनधर्म को छोड़ कर धीरे २ पुनः अन्य धर्मावलंबी बनते रहे हैं और तब ही जैन इतनी थोड़ी संख्या में रह गये हैं। उक्त पंक्तियों से यह और सिद्ध हो जाता है कि राजवर्ग शासन सम्बन्धी कई एक झंझटों के कारण, अपनी सत्ताशील स्थिति के कारण, अपनी परिग्रहमयी वैभवपूर्ण, सुखमय अवस्था के कारण जैन श्रावक के व्रतों के पालन करने में पीछे पड़ गया और इसी प्रकार बाहर से आई हुई ज्ञातियाँ, सेवा करने वाला दल और कृषकवर्ग भी अपनी कई प्रकार की अवदशा के कारण असमर्थ ही रहा और फलतः ये पुनः वैदिकधर्म के जागरण पर जैनधर्म को छोड़ कर अन्यमती बनते रहे, परन्तु जैनधर्म वैश्य-समाज में न्यूनाधिक संख्या एवं मात्रा में फिर भी टिक सका और टिक रहा है यह इस बात को सिद्ध करता है कि अन्य वर्णों, ज्ञातियों की अपेक्षा वैश्यवर्ण अथवा वर्ग को जैनधर्म के पालन में

अपेक्षाकृत विशेष सरलता, सुविधा का अनुभव होता है। वैश्यवर्ण अथवा वर्ग में आज कई अलग २ ज्ञातियाँ हैं और फिर उन ज्ञातियों में भी जैन और वैदिक दोनों धर्मों का पालन होता है। परन्तु जो आशय निकालना था वह यह ही कि वैश्यसमाज को जैन-धर्म के पालन करने में विशेष सुविधा और सरलता पड़ती है। वैश्यसमाज में श्रीमाल, पोरवाल, ओसवाल, अग्रवाल, बघेरवाल आदि कई ज्ञातियाँ प्रमुखतः मानी गई हैं और वे आज विद्यमान भी हैं। यहाँ पोरवाल अथवा प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास लिखना है; अतः अब चरण सीधा उधर ही मोड़ना है। अब तक जो लिखा गया है, आप पाठक यह सोचते रहे होंगे कि जैनधर्म पर इतिहास की दृष्टि से कोई निबन्ध लिखा जा रहा है, परन्तु बात यह नहीं है। वैश्यसमाज की उत्पत्ति, विकास और आज के रूप पर जैनधर्म का अति गहरा और गम्भीर प्रभाव रहा है और है तथा वैश्य-समाज का प्रमुख और बड़ा अंश जैनधर्मानुयायी है और इसका इतिहास जैनधर्म के महान् सेवकों का इतिहास है। दूसरा कारण प्रत्येक ज्ञाति किसी न किसी धर्म की पालक तो होती है और वह धर्म उसके उत्थान, पतन में भी साथ ही साथ रहता है; अतः किसी भी ज्ञाति का इतिहास उस ज्ञाति के धर्म के प्रवाह का इतिहास भी होता है। प्राग्वाट अथवा पोरवाल ज्ञाति का; जिसका इतिहास लिखा जा रहा है जैनधर्म से गहरा और घनिष्ट ही नहीं, उसके मूल से लगाकर आज तक के रूप से संबंध है और इसी लिये जैनधर्म के उपर जो कुछ लिखा गया है, उसकी पूर्ण सार्थकता अगले पृष्ठों में सिद्ध होगी।

भगवान् महावीर के श्री चतुर्विध-संघ में चारों वर्णों में से सम्मिलित होने वाले उनके भक्त और अनुयायी श्रावक और श्राविकायें व्यक्तिगत व्रत लेकर सम्मिलित हुये थे, फलतः उनकी संतानें अथवा उनके भविष्य में होने वाले वंशज उनके व्रतों एवं प्रतिज्ञाओं से बन्धे हुए नहीं थे। जैनाचार्यों ने जैनधर्म को श्रावक के कुल का धर्म बनाकर जैनधर्म के पालन की एक परम्परा स्थापित करने का जो प्रयास किया, स्वभावतः उसके फलस्वरूप ही स्थायी श्रावकवर्ग अथवा समाज का जन्म हुआ। श्रावकवर्ग का व्यवसाय वाणिज्य है और अतः वह वैश्य कहा जाता है। उसकी जैनधर्म के अनुकूल संस्कृति है, जिसके कारण उसके वर्ग में जैनधर्म का पालन अधिक सरलता और सुविधा से किया जा सकता है।

जैनाचार्यों ने किस प्रकार और कब से इस प्रकार के श्रावकसमाज अथवा श्रावकवर्ग की स्थापना करने का प्रयास किया था, उसका विशद् परिचय प्राग्वाट-श्रेष्ठिवर्ग की उत्पत्ति के लेख में मिल जायगा, अतः उसका यहाँ छेड़ना व्यर्थ नहीं, फिर भी अनावश्यक है। (वैदिक) वैश्यसमाज और (जैन) श्रावकसमाज का अन्तर तथा दोनों में समान रही हुई कई बातों का सम्बन्ध भी अगले पृष्ठों में ही अतः चर्चा जाना अधिक संगत प्रतीत होता है।

प्राग्वाटश्रावकवर्ग की उत्पत्ति

श्रीमत् स्वयंप्रभसूरि का अर्बुदप्रदेश में विहार और उनके द्वारा जैनधर्म का प्रचार तथा श्रीमालपुर में और पद्मावतीनगरी में श्रीमालश्रावकवर्ग और प्राग्वाटश्रावकवर्ग की उत्पत्ति

जैसा पूर्व के पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि भगवान महावीर के पश्चात् जैनाचार्यों ने जैनधर्म का ठोस एवं दूर-दूर तक प्रचार करना प्रारम्भ किया था। श्रीमालपुर भी उन्हीं दिनों में बस रहा था। सम्भवतः अर्बुदप्रदेश में भगवान् महावीर का भी पधारना नहीं हुआ था। अर्बुदप्रदेश का पूर्वभाग इन वर्षों में अधिक ख्यातिप्राप्त भी हो रहा था। जैनाचार्य्यों का ध्यान उधर आकर्षित हुआ। वि० सं० १३९३ में श्री कक्कसूरिविरचित उपकेशगच्छ-प्रबन्ध (अभी वह मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी के पास में हस्त-लिखित अवस्था में ही है) में लिखा है कि भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के पाँचवें पट्टधर श्री स्वयंप्रभसूरि ने अपने शिष्यों के सहित अर्बुदप्रदेश और श्रीमालपुर की ओर महावीर निर्वाण से ५७ (५२) वर्ष पश्चात् वि० सं० ४१३–४ पूर्व और ई० सन् ४७०–१ वर्ष पूर्व विहार किया।

श्रीमालपुर में श्रावकों की उत्पत्ति

श्रीमालपुर का आज नाम भिन्नमाल अथवा भिल्लमाल है। श्रीमालपुराण में इस नगरी की समृद्धता के विषय में बहुत ही अतिशयपूर्ण लिखा गया है। फिर भी इतना तो अवश्य है कि इस नगरी में श्रेष्ठ पुरुष, उत्तमश्रेणी के जन, श्रीमंत अधिक संख्या में आकर बसे थे और नगरी अति लम्बी चौड़ी बसी थी। तब ही श्रीमालपुर नाम पड़ सका और कलियुग में श्री अर्थात् लक्ष्मीदेवी का क्रीड़ास्थल अथवा विलासस्थान कहा जा सका। नगरी में बसनेवालों में अधिक संख्या में ब्राह्मणकुल और वैश्यवर्ग था। जैसा पूर्व के पृष्ठों से सिद्ध है कि श्रीमालपुर

मठशालासहस्राणि चत्वारि तद्विधा मठाः। पण्यविक्रयशालानामष्टसाहस्रिकं नृपः ॥२२॥
सभाकोटिषु सचक्रो व्युनिर्मन्मत्तवारणाः। आसन्नाप्रसहस्रं च सम्यानामुपवेशितुम् ॥२३॥
शातमौमिकसोपाना लक्षगेकं महीभृताम्। तथा षष्टिसहस्राणिचतुःपष्ट्यधिकानि च ॥२४॥

—श्रीमालपुराण (गुजराती अर्थ सहित) अ० १२ पृ० ८८

भगवान् के निर्वाण के पश्चात् अहिंसाधर्म का प्रचार करना ही जैनाचार्य्यों का प्रमुख उद्देश्य और कर्म रहा था और जनगण ने भी उसको अति आनन्द से अपनाया था, जिसके फलस्वरूप ही कुछ ही सौ वर्षों में कोटियों की संख्या में जैन बन गये थे।

तो क्या अभिनव बसी हुई भिन्नमालनगरी और अर्बलीप्रदेश के उपजाऊ पूर्वी भाग में जहाँ, ब्राह्मण पंडितों का पाखण्डपूर्ण प्रभाव जम रहा था और नित नव पशुबलीयुक्त यज्ञों का आयोजन हो रहा था, वहाँ कोई जैनाचार्य्य नहीं पहुँचे हों—कम मानने में आता है।

भारत में आज तक जैन, वैष्णव जितने भी शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनमें या तो हितोपदेश है, या वस्तुनिर्माता की प्रशस्ति अथवा प्रतिष्ठाकर्ता आचार्य, श्रावक, राजा, राज-वंश और श्रावक-कुल, संवत्, ग्राम का नाम आदि के सहित उल्लेख है। परन्तु ऐसी घटनाओं का उल्लेख आज तक किसी भी प्राचीन से प्राचीन शिलालेख में भी देखने को प्राप्त नहीं हुआ। चरित्रों में, कथाओं में ऐसे वर्णन आते हैं। उपकेशगच्छ-प्रबन्ध जो वि० सं० १३९३ में आचार्य कक्कसूरि द्वारा लिखी गई है उक्त घटना का उल्लेख देती है।

अथवा भिन्नमाल की स्थापना भगवान् महावीर के समय में ही हो चुकी थी, परन्तु इधर सम्भवतः नहीं तो भगवान् का ही विहार हुआ और नहीं अधिकांशतः जैनाचार्य्यों का, अतः इस अभिनव बसी हुई नगरी में और इसके समीपवर्ती अर्वली-प्रदेश में यज्ञ, हवन और पशुबली का वैसा ही जोर था और राजसभाओं में ब्राह्मण-पण्डितों का गहरा प्रभाव और आतंक था। श्रीमत् स्वयंप्रभसूरि कठिन विहार करके अपने शिष्य एवं साधु-समुदाय के सहित भिन्नमाल नगरी में पहुंचे। उस समय नगरी की सुख-समृद्धता के लिये राजा जयसेन की राजसभा में भारी यज्ञ के किये जाने का आयोजन किया जा रहा था—ऐसी कथा प्रचलित है। कुछ भी हो सूरिजी ने उस समय राजा को प्रतिबोध दिया और उसने तथा वहाँ बसने वाले नेऊ सहस्र (९००००) स्त्री-पुरुषों ने कुलमर्यादा रूप में जैनधर्म अंगीकृत किया।

श्रीमालपुर उन दिनों में बहुत ही बड़ा और अत्यन्त समृद्ध नगर था। यह अवंती और राजगृही की स्पर्धा करता था। आज दिल्ली और प्रभासपत्तन, सिंधुनदी तथा सोन नदी तक फैला हुआ जितना भूभाग है, उन दिनों में रहे हुये भारतवर्ष के इस भाग में श्रीमालपुर ही सब से बड़ा नगर था। इस नगर में अधिकांशतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बसते थे और वे भी उच्चकोटि के। नगर की रचना श्रीमाल-माहात्म्य में इस प्रकार वर्णित की गई है कि उत्कट धनपति अर्थात् कोटीश जिनको धनोत्कटा कहा गया है, श्रीमालपुर की दक्षिण दिशा में बसते थे और इनसे कमधनी (श्रीमंत) उत्तर और पश्चिम दिशा में बसते थे और वे श्रीमाली कहे गये हैं। स्वयं लक्ष्मीदेवी का क्रीड़ास्थल ही हो, श्रीमालपुर का ऐसा जो समृद्ध और वनराजि से सुशोभित पूर्व भाग था, जो श्रीमालपुर का पूर्ववाट कहा गया है उसमें बसने वाले प्राग्वाट कहे गये हैं।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि के कर-कमलों से जिन ९०००० (नेऊ सहस्र) स्त्री-पुरुषों ने जैनधर्म अंगीकृत किया था, वे जो धनोत्कटा थे धनोत्कटा श्रावक कहलाये, जो उनसे कम श्रीमंत थे वे श्रीमालीश्रावक कहलाये और जो पूर्ववाट में रहते थे, वे प्राग्वाटश्रावक कहलाये। इनकी परम्परा में हुईं इनकी सन्तानें भी श्रीमाली, धनोत्कटा और प्राग्वाट कहलाईं।

प्राग्वाट-वंश

श्री नेमिचन्द्रसूरिकृत श्री महावीरचरित्र की वि० सं० १२३६ में लिखित पुस्तिका की प्रशस्ति में एक श्लोक में कहा गया है कि प्राचीवाट में अर्थात् पूर्वदिशा में लक्ष्मीदेवी के द्वारा क्रीड़ास्थल बनवाया गया, जिसका नाम प्राग्वाट रक्खा। उस 'प्राग्वाट' नाम के क्रीड़ास्थल का जो प्रथम पुरुष अध्यक्ष निर्मित किया गया, वह अध्यक्ष प्राग्वाट नाम की उपाधि से विश्रुत हुआ। उस प्राग्वाट-अध्यक्ष की सन्तानें, जो श्रीमन्त रही हैं, ऐसा यह प्राग्वाट-अध्यक्ष का वंश 'प्राग्वाट-वंश' के नाम से जग में विश्रुत हुआ।

प्राच्यां वाटो जलधिसुतया कारितः क्रीडनाय, तन्नाम्नैव प्रथम पुरुषो निर्मितोऽध्यक्ष हेतोः।
तत्संतानप्रभवपुरुषैः श्रीभृतैः संयुतोऽयं, प्राग्वाटाख्यो भुवनविदितस्तेन वंशः समस्ति ॥
—श्री नेमिचन्द्रसूरिकृत महावीरचरित्र की प्रशस्ति

दशोनलक्षमेकं हि, श्रीमाले वणिजोऽभवन्। यस्य प्रतिगृहे योऽभूत्, तद्गोत्रं सोन्वपद्यत ॥२४॥
प्राग्वाटा दिशि पूर्वस्यां, दक्षिणस्यां धनोत्कटाः। श्रीमालिनः प्रतीच्यां वै उत्तरस्यां तथाविशन् ॥२५॥
श्री० म० अ० १३ पृ० ९२-९३.

मेरे अनुमान से उक्त भाव का यह तात्पर्य निकाला जा सकता है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि के द्वारा प्रतिबोध पाये हुये जनसमूह में से श्रीमालपुर के समृद्ध पूर्वेवाट में बसने वाले श्रावकों का समूह प्राग्वाट-पद से अलंकृत अथवा सुशोभित किसी श्रावक की अधिनायकता में संगठित हुआ और वे सर्व प्राग्वाट-श्रावक कहलाये। आगे भी श्रीमालप्रदेश और इसके समीपवर्ती अर्बुदाचल के पूर्ववाट में जिसने, जिन्होंने जहाँ २ जैनधर्म स्वीकार करके उक्त पुरुष के नेतृत्व को स्वीकृत किया अथवा उसकी परम्परा में सम्मिलित हुये वे भी प्राग्वाट कहलाये।

विहार करते हुये सूरिजी पद्मावतीनगरी में राजा की राजसभा में भारी यज्ञ का आयोजन श्रवण करके अपनी मण्डली सहित पहुंचे और वहाँ पचतालीश हजार अजैन क्षत्रिय एवं ब्राह्मण कुलों को प्रतिबोध देकर जैन-

पद्मावती में जैन बनाना

श्रावक बनाये और यज्ञ के आयोजन को बन्ध करवाया। पद्मावती के राजा ने भी जैनधर्म अंगीकृत किया था।

प्राग्वाट-श्रावकवर्ग की उत्पत्ति का चक्रवर्ती पुरुरवा और पंजाबपति पौरुष से कोई सम्बन्ध नहीं है। चक्रवर्ती पुरुरवा महाभारत के कुरुक्षेत्र में हुये रण से भी पूर्व हो गया है और पंजाबपति पौरुष स्वयंप्रभसूरि के निर्वाण से लगभग १०० वर्ष पश्चात् हुआ है। श्रीमाल-महात्म्य (पुराण) में श्रीमालपुर में १०००० दस हजार योद्धाओं की पूर्व दिशा से आकर उसके पूर्व भाग में बसने की और फिर उनके प्राग्वाट-श्रावक कहलाने की बात जो लिखी गई है भ्रमात्मक प्रतीत होती है। साधनों के अभाव में अधिक कुछ भी लिखा नहीं जा सकता।

१-श्री उपकेशगच्छ-प्रबन्ध (हस्तलिखित)

(कर्ता—आचार्य श्रीकक्कसूरि विक्रम संवत् १३९३)

केशिनामा तद्विनयो, यः प्रदेशी नरेश्वरम्। प्रबोध्य नास्तिकाद्धर्माज्जैनधर्मेऽध्यरोपयत् ॥१६॥
तच्छिष्याः समजायंत, श्री स्वयंप्रभसूरयः। विहरंतः क्रमेणेयुः, श्री श्रीमालं कदापि ते ॥१७॥
तत्र यज्ञे यज्ञियानां, जीवानां हिंसकं नृपम्। प्रत्यपेधीत्तदा सूरिः, सर्वजीवदयारतः ॥१८॥
नरायुतगृहस्थान्नृन्, सार्धं क्षमापतिना तदा। जैनतत्त्वं संप्रदर्श्य, जैनधर्मेऽन्ववेशयत् ॥१९॥
पद्मावत्यां नगर्यांञ्च, यज्ञस्यायोजनं श्रुतम्। प्रत्यरौत्सीत्तदा सूरि, गत्वा तत्र महामतिः ॥२०॥
राजानां गृहणञ्चैव, चत्वारिंशत् सहस्रकान्। बाण सहस्रसंख्यांञ्च, चक्रेऽहिंसाव्रताधरान् ॥२१॥

उक्त प्रति श्रीमद् ज्ञानसुन्दरजी (देवगुप्तसूरि) महाराज के पास में है। मैं उनसे ता० २५-६-५२ को जोधपुर में मिला था और उक्तांश उस पर से उद्धृत किया था।

२-पद्मावतीः—

(अ) *इण्डियन एण्टिक्वेरी प्र० खण्ड के पृ० १४६ पर खजुराहा के ई० सन् १००१ के एक लेख में इस नगरी की समृद्धता के विषय में अत्यन्त ही शोभायुक्त वाक्यों में लिखा गया है।*

(ब) *दिगम्बर जैन-लेखों से प्रतीत होता है कि पद्मावती अथवा पद्मनगर दक्षिण के विजयनगर राज्य में एक समृद्ध नगर था। परन्तु यहां वह पद्मावती असंगत है।*

(स) *मालवराज्य में झांसी-आगरा लाईन पर दबरा स्टेशन से कुछ अन्तर पर 'पदमपवाँया' एक ग्राम है। मुनि जिनविजयजी आदि का कहना है कि प्राचीन पद्मावती यहीं थी और यह नाम उसका बिगड़ा हुआ रूप है।*

उज्जयंती के प्राचीन राजाओं में राजा यशोधर का स्थान भी अति उच्च है। उसकी एक प्रशस्ति में उसको अनेक विशेषणों से अलंकृत किया गया है। 'पद्मावतीपुरपरमेश्वरः कनकगिरिनाथः' भी अनुक्रम से उसके विशेषण हैं। मरुप्रान्त के जालोर (जाबालीपुर) नगर का पर्वत जो आज भूगोल में सोनगिरि नाम से परिचित है, उसके सुवर्णगिरि और कनकगिरि भी नाम प्राचीन समय में रहे हैं—के प्रमाण मिलते हैं। 'पद्मावतीपुरपरमेश्वरः कनकगिरिनाथः' के अनुक्रम पर विचार करने पर भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि उक्त पद्मावती नगरी जालोर के समीपवर्त्ती प्रदेश में ही रही होगी।

मेरे अनुमान से पद्मावती अर्बुदपर्वत के उपजाऊ पूर्वी भाग में विवसित थी।

जैनाचार्यों ने श्रावकों के लिये केवल वाणिज्य करना ही कम पापवाला कार्य बतलाया है और वह भी केवल शुष्क पदार्थ, वस्तुओं का। वर्णव्यवस्था के अनुसार वैश्यवर्ग के व्यक्तियों का कृषि करना, गौपालन करना और वाणिज्य करना कर्तव्य निश्चित किया था, वहाँ जैनसिद्धान्तों के अनुसार जैनवैश्य (श्रावक) का प्रधानतः वाणिज्य करना ही कर्तव्य निश्चित किया गया है, क्योंकि जैन-धर्म अधिक पापवाले कार्य का और परिग्रह का खण्डन करता है और ऐसे प्रत्येक कार्य से बचने का निषेध करता है जो अधिक पाप और परिग्रह बढ़ाता है। जैनधर्म में पाप और परिग्रह को ही दुःख का मूल कारण माना है। यही कषायादि दुर्गुणों की उत्पत्ति के कारण हैं और यहीं मनुष्य की श्रेष्ठता, गुणवती बुद्धि और प्रतिभा दब जाती है। भिन्नमाल और पद्मावती में आज से २४७८-७९ वर्ष पूर्व अर्थात् वीरनिर्वाण से ५७ वर्ष पश्चात् जैन बने हुये श्रावकों से ही जैन श्रेष्ठिज्ञातियों का इतिहास प्रारम्भ होता है। क्यों कि यहीं से श्रावकों का शुष्क वस्तुओं एवं पदार्थों का व्यापार करना प्रमुखतः प्रारम्भ होता है, जो उनमें और वेदमतानुयायी वैश्य में अन्तर कर देता है। इस प्रकार अत्र से पश्चात् जो भी जैनश्रावक बने, उनका वैदिक वैश्यवर्ग से अलग ही जैनश्रावक (वैश्य) वर्ग बनता गया। भगवान् महावीर ने चतुर्विधसंघ की स्थापना करके चारों वर्णों के सद्गृहस्थ स्त्री और पुरुषों को श्राविका और श्रावक बनाये थे। ये श्रावक श्राविकायें अपने तक ही अर्थात् व्यक्तिगत सदस्यता तक ही सीमित थे। इनके वंशज उनकी प्रतिज्ञाओं और व्रतों में नहीं बंधे हुये थे। परन्तु स्वयंप्रभसूरि ने प्रमुखतः ब्राह्मण, क्षत्रियवर्णों के उत्तम संस्कारी कुलों को कुलगतपरम्परा के आधार पर जैन बनाया अर्थात् जैनधर्म को उनका कुलधर्म बनाया तथा उनका भिन्न २ नाम से जैनवर्ग स्थापित किया और जैन कुलों का व्यापार, धंधा जैनसिद्धान्तों के अनुसार निश्चित किया, जिससे जैनधर्म का पालन उनके कुलों में उनके पीछे आनेवाली संतानें परम्परा की दृष्टि से करती रहें और विचलित नहीं होवें।

जैनवैश्य और उनका कार्य

आगे जा कर एक स्थान के रहने वाले, एक साथ जैनधर्म स्वीकार करने वाले, पूर्व से एक कुल अथवा परंपरावाले कुलों का एक वर्ग ही बन गया और प्रांत, नगर अथवा प्रमुख पुरुष के नामों के पीछे उस वर्ग का अमुक नाम पड़ गया। उस वर्ग में पीछे से किसी समय और अमुक वर्षों के पश्चात् अगर कोई भी कुल अथवा समुदाय सम्मिलित हुआ, वह भी उसी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भारत में जैसे अयोध्या, द्वारिका पौराणिककाल में अति प्रसिद्ध नगरियां रही हैं। ऐतिहासिककाल में अर्थात् विक्रम संवत् से पूर्व पांचवीं, छट्ठी शताब्दी के पश्चात् राजगृही, धारा, अवंती, अथवा उज्जैन ताम्रावती, पद्मावती आदि अति समृद्ध और गौरवशालिनी नगरियां रही हैं। जिनको लेकर अनेक मनोरंजक एवं हितोपदेशक सच्ची, झूठी कहानियें—आज भी कही जाती हैं। यह तो निश्चित है कि पद्मावती नामक नगरी अवश्य रही है। मेरे अनुमान से तो वह अभिविश्रुत प्राग्वाट-प्रदेश की पाटनगरी थी और अर्बुदाचल के मैदान में उससे थोड़ी दूरी पर अथवा उसकी ही तलहटी में बसी हुई थी, जो भिन्नमाल से कोई सौ-पचहत्तर मील के अन्तर पर ही ही होगी।

यह और वे सब अनुमान ही अनुमान है। पद्मावती नगरी कहां थी?—यह शोध एक गंभीर विषय है।

प्राग्वाट-प्रदेश

वर्तमान् सिरोही-राज्य, पालनपुर-राज्य का उत्तर-पश्चिम भाग, गौड़वाड़ (गिरिवाड़-प्रान्त) तथा मेदपाटप्रदेश का कुम्भलगढ़ और पुर-मण्डल तक का भाग कभी प्राग्वाट-प्रदेश के नाम से रहा है। यह प्रदेश प्राग्वाट क्यों कहलाया—इस प्रश्न पर आज तक विचार ही नहीं किया गया और अगर किसी ने विचार किया भी तो वह अब तक प्रकाश में नहीं आया।

उक्त प्राग्वाट-प्रदेश अर्बुदाचल का ठीक पूर्व भाग अर्थात् पूर्ववाट समझना चाहिए। यह भाग आज भी राजस्थान में उपजाऊ और अपेक्षाकृत घना बसा हुआ ही है। जैसा पूर्व लिखा जा चुका है कि सिंध-सौवीर की राजधानी वीतमयपत्तन का जब प्रकृति के भयंकर प्रकोप से ई० सन् पूर्व ५३४-३५ में विध्वंश हुआ था, वर्तमान् थरपार का प्रदेश, जिसमें आज सम्पूर्ण जैसलमेर का राज्य और जोधपुर, बीकानेर के राज्यों के रेगिस्तान-खण्ड आते हैं, उस समय संभूत हुआ था। उस दुर्घटना से बचकर कई कुल थरपारकरप्रदेश को पार कर के अर्बलीपर्वत की ओर बढ़े और वे भिन्नमाल नगरी को बसा कर वहाँ बस गये तथा भिन्नमाल के आस-पास के अर्बलीपर्वत के उपजाऊ पूर्ववाट में भी बसे। ओसियानगरी की स्थापना भी इन्हीं वर्षों में कुछ समय पश्चात् ही हुई थी।

शकसम्राट् डेरियस के पश्चात् ई० सन् पूर्व पाँचवीं शताब्दी में शकदेश में भारी राज्यक्रान्ति हुई और शक-लोगों का एक बहुत बड़ा दल शकदेश का त्याग करके भारत में प्रविष्ट हुआ। सिंध-सौवीर का कुछ भाग तो वैसे शक-सम्राट् डेरियस ने पहिले ही जीत लिया था और भारत में शकलोगों का आवागमन चालू ही था तथा सिंध-सौवीपति राजर्षि जैन-सम्राट् उदयन और उसके भाणेज नृपति केशिकुमार के पश्चात् सिंध-सौवीर का राज्य भी छिन्न-भिन्न और निर्बल हो गया था। ऐसा कोई नृपति भी नहीं था, जो बाहर से आने वाली आक्रमणकारी अथवा भारत में बसने की भावना रखने वाली ज्ञाति अथवा दल का सामना करता। फल यह हुआ कि इस बहुत बड़े शकदल का कुछ भाग तो सीमा-प्रदेश में ही बस गया और कुछ भाग अर्बली-प्रदेश की समृद्धता और उपजाऊपन को श्रवण करके आगे बढ़ा और भिन्नमाल (श्रीमालपुर) अर्बलीपर्वत के समृद्ध एवं उपजाऊ पूर्ववाट में बसा। मुझको ऐसा लगता है कि उक्त कारणों से अर्बलीपर्वत का यह उपजाऊ पूर्वभाग अधिक ख्याति में आया और लोग इसको पूर्ववाड़ अथवा पूर्ववाट-प्रदेश के नाम से ही पुकारने लगे और समझने लगे।

अथवा जैसे शकस्तान के शक भारत में आकर बसने वाले शकपरिवारों को हिन्दी शक कहने लगे थे, उस ही प्रकार भारत की सीमा पर बसा हुआ शक लोगों का भाग अपने से पूर्व में नवसंभूत थरपारकर-प्रदेश के पार, बसे हुये अपने शक लोग के निवासस्थान को पूर्ववाड़ या पूर्ववाट कहने लगे हो।

भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग ५७ (५२) वर्ष पश्चात् श्रीपार्श्वनाथ-सन्तानीय (उपकेशगच्छीय) आचार्य श्रीमद् स्वयंप्रभसूरि ने अपने बहुत बड़े शिष्यदल के साथ में इस अर्बलीपर्वत के उक्त पूर्वभाग अथवा पूर्ववाट की ओर विहार किया था। जैसा प्राग्वाटश्रावकवर्ग की उत्पत्ति के प्रकरण में लिखा गया है, उन्होंने

श्रीमालपुर में ६०००० (नेऊ सहस्र) उच्चवर्णीय स्त्री-पुरुषों को जैनधर्म का प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। तत्पश्चात् श्रीमालपुरनगरी से विहार करके वे पुनः पूर्ववाट-प्रदेश में विहार करते हुये इस प्रदेश के राजपाटनगर पद्मावती में पधारे और वहाँ के राजा पद्मसेन ने गुरुश्री के प्रतिबोध पर ४५००० (पैंतालीस सहस्र) पुरुष-स्त्रियों के साथ में जैनधर्म अंगीकृत किया था।

श्रीमालपुर के पूर्ववाट में बसने के कारण जैसे वहाँ के जैन बनने वाले कुल अपने वाट के अध्यक्ष का जो प्राग्वाट-पद से विश्रुत था नेतृत्व स्वीकार करके उसके प्राग्वाट-पद के नाम के पीछे सर्व प्राग्वाट कहलाये, उसी दृष्टि से आचार्य श्री ने भी पद्मावती में, जो अर्बलीपर्वत के पूर्ववाटप्रदेश की पाटनगरी थी जैन बनने वाले कुलों को भी प्राग्वाट नाम ही दिया हो। वैसे अर्थ में भी अन्तर नहीं पड़ता है। पूर्ववाड़ का संस्कृत रूप पूर्ववाट है और पूर्ववाट का 'प्राच्यां वाटो इति प्राग्वाट' पर्यायवाची शब्द ही तो है। पद्मावतीनरेश की अधीश्वरता के कारण तथा पद्मावती में जैन बने बृहद् प्राग्वाटश्रावकवर्ग की प्रभावशीलता के कारण तथा अक्षुण्ण वृद्धिगत प्राग्वाट-परंपरा के कारण यह प्रदेश ही पूर्ववाट से प्राग्वाट नाम वाला धीरे २ हुआ हो।

उपरोक्त अनुमानों से ऐसा तो आशय ग्रहण करना ही पड़ेगा और ऐसे समुचित भी लगता है कि अर्बली-पर्वत का पूर्वभाग, जिसको मैंने पूर्ववाट करके लिखा है, उन वर्षों में अधिक प्रसिद्धि में आया और तब अवश्य उसका कोई नाम भी दिया गया होगा। प्राग्वाट श्रावकवर्ग के पीछे उक्त प्रदेश प्राग्वाट कहलाया हो अथवा यह अगर नहीं भी माना जाय तो भी इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्राग्वाटश्रावकवर्ग की उत्पत्ति

'प्राग्वाट' शब्द की उत्पत्ति पर और 'प्राग्वाट' नाम का कोई प्रदेश था भी अथवा नहीं के प्रश्न पर इतिहासकार एकमत नहीं हैं।

१–श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा का मतः—

आप मेरे छः प्रश्नों का ता० १०-१-१९४७ स्थान रोहीड़ा (सिरोहीराज्य) से एक पोस्टकार्ड में उत्तर देते हुये 'प्राग्वाट' शब्द पर लिखते हैं, (१) प्राग्वाट शब्द की उत्पत्ति मेवाड़ के 'पुर' शब्द से है। 'पुर' शब्द से पुरवाड़ और पौरवाड़ शब्दों की उत्पत्ति हुई है। 'पुर' शब्द मेवाड़ के पुर जिले का सूचक है और मेवाड़ के लिए 'प्राग्वाट' शब्द भी लिखा मिलता है।

२–श्री अगरचन्द्रजी नाहटा, बीकानेरः—

आप से ता० २९-६-१९५२ को बीकानेर में ही मिला था। प्राग्वाट-इतिहास सम्बन्धी कई प्रश्नों पर आपसे गम्भीर चर्चा हुई। आपने वर्तमान गौड़वाड़, सिरोहीराज्य के भाग का नाम कभी प्राग्वाटप्रदेश रहा था, ऐसा अपना मत प्रकट किया।

३–मुनि श्री जिनविजयजी, स्टे. चंदेरिया (मेवाड़) डब्ल्यू० आर० :—

आप से मैं ता० ७-७-५२ को चंदेरिया स्टेशन पर बने हुये आपके सर्वोदय आश्रम में मिला था। प्राग्वाट-इतिहास सम्बन्धी लम्बी चर्चा में आपने अर्बुदपर्वत से लेकर गौड़वाड़ तक के लम्बे प्रान्त का नाम पहिले प्राग्वाटप्रदेश था, ऐसा अपना मत प्रकट किया।

उक्त तीनों व्यक्ति पुरातत्त्व एवं इतिहासविषयों के प्रकांड और अनुभवशील प्रसिद्ध अधिकारी हैं।

४–वि० सं० १२३६ में श्री नेमिचन्द्रसूरिकृत महावीर–चरित्र की प्रशस्तिः—

'प्राच्यां' वाटो जलधिसुतया कारितः क्रीडनाय। तत्राग्नैव प्रथमपुरुषो निर्मितोध्यक्षहेतोः।
तत्संतानप्रभवपुरुषैः श्रीभृतैः संयुतोयं। प्राग्वाटाख्यो भुवनविदितस्तेन वंशः समस्ति॥

इस प्राचीन प्रशस्ति के सामने श्री ओझाजी का निर्णय संशोधनीय है और मुनिजी एवं नाहटाजी के मत मान्य हैं। निश्चित शब्दों में वैसे प्राग्वाटप्रदेश कौन था और कितना भू-भाग, कब था और यह नाम क्यों पड़ा–पर लिखना कठिन है। अतः निश्चित प्रमाणों के अभाव में संगत अनुमानों पर ही लिखना शक्य है।

और मूलनिवास के कारणों का तथा धीरे-धीरे सर्वत्र इस भाग में विस्तारित होती हुई उसकी परंपरा की प्रभावशीलता एवं प्रमुखता का इस देश का नाम प्राग्वाट पड़ने पर अत्यधिक प्रभाव रहा है। आज भी प्राग्वाटज्ञाति अधिकांशतः इस भाग में बसती है और गूर्जर, सौराष्ट्र और मालवा, संयुक्तप्रदेश में जो इसकी शाखायें नामों में थोड़े-कुछ अन्तर से बसती हैं, वे इसी भूभाग से गयी हुई हैं ऐसा वे भी मानती हैं।

शत्रुञ्जयोद्धारक परमार्हत श्रेष्ठि सं० जावड़शाह

वि० सं० १०८

सौराष्ट्र में विक्रम की प्रथम शताब्दी में कांपिल्यपुर नामक नगर अति समृद्ध एवं व्यापारिक क्षेत्र था। वहाँ अनेक धनी, मानी, श्रेष्ठिजन रहते थे। प्राग्वाटज्ञातीय भावड़ श्रेष्ठि भी इन श्रीमन्तजनों में एक अग्रणी थे।

श्रेष्ठि भावड़ और उसकी पति-परायणा स्त्री तथा उनकी निर्धनता.

दैववशात् उनको दारिद्र्य ने आ घेरा। दारिद्र्य यहां तक बढ़ा कि खाने, पीने तक को पूरा नहीं मिलने लगा। भावड़शाह की स्त्री सौभाग्यवती भावला अति ही गुणगर्भा, देवीस्वरूपा और संकट में धैर्य और दृढ़ता रखने वाली गृहिणी थी। भावड़शाह और सौभाग्यवती भावला दोनों बड़े ही धर्मात्मा जीव थे। नित्य ब्रह्ममुहूर्त में उठते और ईश्वर-भजन, सामायिक, प्रतिक्रमण करते थे। तत्पश्चात् सौभाग्यवती भावला गृहकर्म में लग जाती और भावड़शाह विक्री की सामग्री लेकर कांपिल्यपुर की गलियों और आस-पास के निकटस्थ ग्रामों में चले जाते और बहुत दिन चढ़े, कभी २ मध्याह्न में लौटते। सौभाग्यवती भावला तब भोजन बनाती और दोनों प्रेमपूर्वक खाते। कभी एक बार खाने को मिलता और कभी दो बार। एक समय था, जब भावड़शाह सर्व प्रकार से अति समृद्ध थे, अनेक दास-दासी इनकी सेवा में रहते थे, अनेक जगह इनकी दुकानें थीं और अपार वैभव था। अब भावड़शाह ग्राम २ चक्कर काटते थे, दर-दर

जावड़शाह का इतिहास अधिकतर श्री धनेश्वरसूरिविरचित श्री शत्रुंजय-महात्म्य (जिसका रचना-समय वि० सं० ४७७ संभवित माना जाता है) के गुजराती भाषान्तर, श्री जैनधर्म-प्रसारक-सभा, भावनगर की ओर से वि० सं० १९६१ में प्रकाशित पर से लिखा गया है। श्री रत्नशेखरसूरिरचित श्री श्राद्ध-विधि प्रकरण में भी जावड़शाह का इतिहास ग्रंथित है। वह भी प्रतीत होता है उक्त श्री शत्रुञ्जय-महात्म्य पर ही विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी में लिखा गया है। श्री नाभिनन्दन-जिनोद्धार-प्रबन्ध में जिसके कर्ता श्री कक्कसूरि हैं, जिन्होंने उसको वि० सं० १३९३ में लिखा है जावड़शाह को 'प्राग्वाटकुलसंभव' लिखा है तथा जावड़ को जावड़ी और जावड़ के पिता भावड़ के स्थान पर जावड़ लिखा है। यह अन्तर क्यों कर घटा—समझ में नहीं आता है। (पिता) भावड़ की जगह जावड़ मुद्रित हो गया प्रतीत होता है। (पुत्र) जावड़ के स्थान पर जावड़ी लिखा है। यह अन्तर तो फिर भी अधिक नहीं खटकता है।

'भवित्री भावला नामा, तत्पत्नी तीव्रशीलभा। धर्माश्रिता ख्यातिरिव, रेजे या भावड़ानुगा ॥५॥

—श० म० पृ० ८०८ से ८२४

१-वि० सं० १३९३ में श्री कक्कसूरिविरचित ना० नं० जि० प्र० पृ० १११ से ११६, श्लोक १०३ से १६२

२-वि० पन्द्रहवी शताब्दी में श्री रत्नशेखरसूरिविरचित श्रा० वि० प्र० पृ० २२९ से २३७ (कर्ज पर भावड़शाह का दृष्टान्त)

३-वि० सं० ४७७ में श्री धनेश्वरसूरिविरचित-संस्कृतपद्यात्मक श्री श० म० के गुजराती भाषान्तर पर पृ० ५०१ से ५१०

घूमते थे, फिर भी पेट भरने जितना भी नहीं कमा पाते थे। परन्तु दोनों स्त्री-पुरुष अति संस्कारी और गुणी थे। संसार में आनेवाले सुख, दुःखों से पूर्व ही परिचित थे, अतः दारिद्र्य उनको अधिक नहीं खलता था; परन्तु अपने घर आये अतिथि का उचित सत्कार करने योग्य भी वे नहीं रह गये थे—यह ही उनको अधिक खलता था।

एक दिन दो जैनमुनि उनके घर आहार लेने के लिये आये। भावड़शाह और उनकी धर्ममुखा पत्नी सौभाग्यवती भावला ने अति ही भाव-भक्तिपूर्वक मुनियों को आहार-दान दिया। मुनि इनकी भाव-भक्ति देखकर अति ही प्रसन्न हुए। उनमें से बड़े मुनि बोले,—'श्रेष्ठि! अब तुम्हारे दुःख और दारिद्र्य के दिन गये। समय आये वैसी ही पूर्व जैसी धन-समृद्धि और पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। कुछ दिनों पश्चात् बाजार में एक लक्षणवंती घोड़ी बिकने को आवेगी, उसको खरीद लेना। उस घोड़ी के घर में आते ही धन-धान्य की वृद्धि दिन-दूनी और रात-चौगुणी होने लगेगी।' इतना कह कर मुनिराज चले गये। दोनों स्त्री-पुरुष मुनिराज की भविष्यवाणी सुनकर अति ही प्रसन्न हुये और लक्षणवंती घोड़ी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

मुनियों को आहार-दान और उनकी आशीर्वादयुक्त भविष्यवाणी

कुछ ही दिनों पश्चात् एक अश्व-व्यापारी एक लक्षणवंती घोड़ी लेकर कांपिल्यपुर के बाजार में बेचने को आया। घोड़ी का मूल्य सौ स्वर्ण-मुद्रायें सुनकर उसको कोई नहीं खरीद रहा था। भावड़शाह को ज्योंही घोड़ी के आगमन की सूचना मिली, वे तुरन्त वहाँ पहुंचे और सौ स्वर्ण-मुद्रायें देकर घोड़ी को खरीद लिया। एकत्रित लोग भावड़शाह के साहस को देखकर दंग रह गये। भावड़शाह घोड़ी को लेकर प्रसन्नचित्त घर आये और उसका पूजन किया और घर में अच्छे स्थान पर उसको बाँधा। दोनों स्त्री-पुरुष घोड़ी की अति सेवा-सुश्रूषा करते और उसे तनिक भी भूख-प्यास का कष्ट नहीं होने देते। घोड़ी गर्भवती थी। समय पूर्ण होने पर उसने एक अश्वरत्न को जन्म दिया। घोड़ी जिस दिन से भावड़शाह के घर में आई थी, भावड़शाह का व्यापार खूब चलने लगा और अत्यधिक लाभ होने लगा। फिर अश्वरत्न के जन्म-दिवस से तो भावड़शाह को हर व्यापार और कार्य में लाभ ही लाभ होने लगा और थोड़े ही समय में पूर्व-से श्रीमंत एवं वैभवपति हो गये। नवकर (नौकर), चारकर (चाकर), दास-दासियों, मुनिमों का ठाट लग गया। अश्वरत्न जब तीन वर्ष का हुआ तो उसको कांपिल्यपुर-नरेश तपनराज ने तीन लक्ष स्वर्ण-मुद्राओं में खरीद लिया और भावड़शाह का अति सम्मान किया तथा अनेक रहने, करने सम्बन्धी अनुकूलतायें प्रदान कीं।

लक्षणवंती घोड़ी का खरीदना और उससे बहुमूल्य वत्स की प्राप्ति तथा कांपिल्यपुर-नरेश को उसे बेचना

भावड़शाह के पास अब अपार धन हो गया था। उसने घोड़ों का व्यवसाय खूब जोरों से प्रारंभ किया। एक ही ज्ञाति की लक्षणवंती घोड़ियाँ खरीदीं। एक ज्ञाति के लक्षणवान् अश्वकिशोरों की संख्या बढ़ाने का भावड़शाह का सतत् प्रयत्न रहा। कुछ ही वर्षों में भावड़शाह के पास एक ज्ञाति के अनेक अश्व लक्षणवान् अश्वकिशोरों की अच्छी संख्या हो गई। खरीददार कोई न मिल रहा था, भावड़शाह को यह चिंता होने लगी। उस समय अवंती में पराक्रमी विक्रमादित्य राज्य कर रहा था। भावड़शाह ने विचार किया कि इन सर्व एक ही ज्ञाति के और अधिक मूल्य के घोड़ों को एक साथ खरीदने वाला, अतिरिक्त सम्राट् विक्रमादित्य के और कोई नहीं

घोड़ों का व्यापार और एक ज्ञाति के अनेक घोड़ों को सार्वभौम सम्राट् विक्रमादित्य को भेंट करना और मधुमती-जागीर की प्राप्ति।

दिखाई देता । उसकी स्त्री सौभाग्यवती भावला ने भी भावड़शाह को सम्राट् विक्रम के पास घोड़ों को ले जाने की सम्मति दी। वैसे घोड़ों के अलग २ व्यापारी आते थे, लेकिन भावड़शाह और उसकी स्त्री दोनों ने उन सर्व को पुत्रों की तरह बड़े लाड़-प्यार से पाल-पोश कर बड़े किये थे, अतः वे उनको अलग २ बेचकर एक-दूसरे से अलग-अलग करना नहीं चाहते थे। वे एक ऐसे व्यापारी की प्रतीक्षा में थे, जो उन सर्व को एक साथ खरीदने की शक्ति रखता हो और उसके यहाँ उनको लालन-पालन सम्बन्धी किसी प्रकार का किञ्चित् भी कष्ट नहीं हो। शुभ मुहूर्त देखकर भावड़शाह उन सर्व अश्व-किशोरों को लेकर अवंती की ओर चले। अवंती पहुँच कर सम्राट् विक्रमादित्य की राज-सभा में अपने आने और अपने मनोरथ की सूचना दी। सम्राट् ने अपने विश्वासपात्र पुरुषों द्वारा भावड़शाह का परिचय प्राप्त किया। वह अश्व-किशोरों के रूप, लावण्य और गुणों की अत्यधिक प्रशंसा सुनकर भावड़शाह से मिलने को अति ही आतुर हुआ और तुरन्त राज्यसभा में भावड़शाह को बुलवाया। सम्राट् का निमन्त्रण पाकर भावड़शाह राज्य-सभा में उपस्थित हुए। वे विधिपूर्वक सम्राट् को नमन करके हाथ जोड़कर बोले, 'सम्राट्! मैं आपको भेंट करने के लिए एक ज्ञाति और एक ही रूप, वय के अनेक अश्व-किशोर जो सर्व लक्षणवान् हैं, युद्ध में विजय दिलाने वाले हैं, आपको भेंट करने लाया हूँ, आशा है आप मेरी भेंट स्वीकार करेंगे।' सम्राट् यह सुनकर अचरज करने लगे कि लाखों की कीमत के घोड़े यह श्रेष्ठि भेंट कर रहा है, परन्तु मैं सम्राट् होकर ऐसी अमूल्य भेंट बिना मूल्य चुकाये कैसे स्वीकार कर लूँ? सम्राट् ने भावड़शाह से कहा कि मैं भेंट तो स्वीकार नहीं कर सकता, उन अश्व-किशोरों को खरीद सकता हूँ। भावड़शाह बोले—'सम्राट्! मैं उनको आपको भेंट कर चुका, भेंट की हुई वस्तु का मूल्य नहीं लिया जाता। आप मुझको विवश नहीं करें और अब मैं उन अश्व-किशोरों को अपने घर भी पुनः लौटा कर नहीं ले जा सकता। मैंने उनको आपश्री को भेंट करने के लिये ही पाल-पोश कर बड़ा किया है। वे सम्राट् के अश्व-स्थल में शोभा पाने योग्य हैं। वे आपकी सवारी के योग्य हैं। आप उन पर विराज कर जब युद्ध करेंगे, अवश्य विजय प्राप्त करके ही लौटेंगे, क्योंकि वे सर्व लक्षणवान् हैं, वे अपने स्वामी का यश, कीर्ति और गौरव बढ़ाने वाले हैं। लक्षणवान् अश्व पर आरूढ़ होकर मंद भाग्यशाली भी सुख और विजय प्राप्त करता है तो आप तो भारत के सम्राट् हैं, महापराक्रमी हैं, अति सौभाग्यशाली हैं। आप से वे सुशोभित होंगे और आप उन पर आरूढ़ होकर अति ही शोभा को प्राप्त होंगे।' सम्राट् ने भावड़शाह का दृढ़ निश्चय देखकर अश्व-किशोरों को भेंट रूप में स्वीकार कर लिया और भावड़शाह का अत्यधिक सम्मान किया तथा कुछ दिनों अवंती में राज्य-अतिथि के रूप में रहने का आग्रह किया। भावड़शाह ने अपने प्राणों से प्यारे अश्व-किशोरों को सम्राट् विक्रम द्वारा भेंट में स्वीकार कर लेने पर सुख की श्वास ली और राज्य-अतिथि के रूप में अवंती में ठहरे।

जब बहुत दिवस व्यतीत हो गये, तब एक दिन सम्राट् से भावड़शाह ने अपने घर जाने की इच्छा प्रकट की। सम्राट् ने अनुमति प्रदान कर दी। दिन को सम्राट् ने भावड़शाह की विदाई के सम्मान में भारी राज्य-सभा बुलाई और भावड़शाह की सराहना करते हुये सर्व मण्डलेश्वरों, सामन्तों, भूमिपतियों, महामात्य, अमात्यों तथा राज्य के प्रतिष्ठित कर्मचारियों, श्रीमन्तों, सम्मानित व्यक्तियों के समक्ष भावड़शाह को पश्चिमी समुद्रतट पर आये

उ० त० पृ० २७० पर '४ ग्रामसंयुक्तमधुमतीनगरीराज्यं लब्धम्।' लिखा है; परन्तु, बारहग्रामसंयुक्तमधुमती का प्रगणा मिलने की बात अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है।

हुये मधुमती नामक नगर का बारह ग्रामों का समृद्ध मण्डल प्रदान किया। भावड़शाह को इस प्रकार सम्राट् द्वारा अश्व-किशोरों का मूल्य चूकता करता हुआ देखकर सर्वजनों ने सम्राट् के न्याय और चातुर्य्य की अतिशय प्रशंसा की। सम्राट् ने भावड़शाह को बड़े हर्ष और धूम-धाम से विदाई दी।

अब मण्डलेश्वर भावड़शाह हर्षयुक्त अपने नगर कांपिल्यपुर की ओर चले। जब वे सानन्द नगर में पहुंचे तो उनके मधुमती का मण्डलेश्वर बनने की चर्चा नगर में घर-घर प्रसारित हो गई। राजा तपनराज ने भी जब यह सुना तो वह भी अति ही हर्षित हुआ। राजा तपनराज ने भावड़शाह का अति सम्मान किया। सौभाग्यवती भावला आज सचमुच सौभाग्यवती थी। कुछ दिन कांपिल्यपुर में ठहर कर भावड़शाह ने शुभ मुहूर्त में अपने परिवार और धन, जन के साथ में मधुमती के लिये प्रस्थान किया। कांपिल्यपुर-नरेश और नागरिकों ने हर्षाश्रु के साथ में भावड़शाह को विदा दी।

मधुमती में प्रवेश और मण्डल का शासन

भावड़शाह के मधुमती पहुँचने के पूर्व ही सम्राट् विक्रम का आज्ञापत्र मधुमती के राज्याधिकारी को प्राप्त हो चुका था कि मधुमती का प्रगणा श्रेष्ठि भावड़शाह को भेंट किया गया है। मधुमती के राज्याधिकारी ने अपने प्रगणे में सम्राट् की घोषणा को राज्यसेवकों द्वारा प्रसिद्ध करवा दिया था। मधुमती की जनता अपने नव स्वामी के गुण और यश से भली-विध परिचित हो चुकी थी, अतः अत्यधिक उत्कण्ठा से भावड़शाह के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही थी तथा उसके स्वागत के लिये विविध प्रकार की शोभापूर्ण तैयारी कर रही थी।

मधुमती पश्चिमी समुद्रतट के किनारे सौराष्ट्र-मण्डल के अति प्रसिद्ध बन्दरों और समृद्ध नगरों में से एक था। यहाँ से अरब, अफगानिस्तान, तुर्की, मिश्र, ईरान आदि पश्चिमी देशों से समुद्र-मार्ग द्वारा व्यापार होता था। मधुमती में अनेक बड़े २ श्रीमन्त व्यापारी रहते थे, जो अनेक जलयानों के स्वामी थे और अगणित स्वर्ण-मुद्राओं के स्वामी थे। मधुमती का नव-स्वामी स्वयं श्रेष्ठिज्ञातीय श्रीमन्त हैं और स्वयं प्रसिद्ध व्यापारी हैं—यह श्रवण कर मधुमती के व्यापारियों के आनन्द का पार नहीं था। साधारण जनता यह सुनकर कि नव-स्वामी स्वयं दारिद्र्य भोग चुके हैं और अपने शुभ कर्मों के प्रताप से इस उच्च पद को प्राप्त हुये हैं—श्रवण कर अति ही प्रसन्न हो रहे थे कि अब उनकी उन्नति में कोई अड़चन नहीं आने पावेगी। इस प्रकार श्रीमन्त, रंक समस्त भावड़शाह के शुभागमन को अपने लिये सुख-समृद्धि का देने वाला समझ रहे थे। भावड़शाह मधुमती के निकट आ गये हैं, श्रवण करके छोटे-बड़े राज्याधिकारी, सैनिक, नगर के आबाल-वृद्ध तथा समीपस्थ नगर एवं ग्रामों की जनता अपने नव-स्वामी का स्वागत करने वढ़ीं और अति हर्ष एवं आनन्द के साथ श्रेष्ठि भावड़शाह का नगर-प्रवेश करवाया। नगर उस दिन अद्भुत वस्त्रों, अलंकारों से सजाया गया था। घर, हाट, चौहाट, राजपथ, मन्दिर, धर्मस्थान, राजप्रासादों की उस दिन की शोभा अपूर्व थी। भावड़शाह ने नगर में प्रवेश करते ही गरीबों को खूब दान दिया, मन्दिरों में अमूल्य भेंटें भेजीं और जनता को प्रीतिभोज तथा सधर्मी बन्धुओं को साधर्मिक-वात्सल्य देकर प्रेम और कीर्ति प्राप्त की।

भावड़शाह सदा दीनों को दान, अनाथ एवं हीनों को आश्रय देता था। उसने सम्राट् के राज्याधिकारी से प्रगणे का शासन सम्भाल कर ऐसी सुव्यवस्था की कि थोड़े ही वर्षों में मधुमती का व्यापार चौगुणा बढ़ गया,

जनता सुखी और समृद्ध हो गई। मानव को तो क्या, उसके आधीन क्षेत्र में कीड़ी और कीट तक को कोई भी सताने वाला नहीं रहा। जँगल के पशु और पक्षी भी निर्भय रहने लगे। दुःख और दारिद्रय उड़ गया। दूर २ तक भावड़शाह के रामराज्य की कीर्त्ति प्रसारित हो गई। विदेशों में मधुमती में बढ़ते हुये धन की कहानियाँ कही जाने लगीं। प्रगणों में चोर, डाकू, लूटेरों, ठग, प्रवंचकों, पिशुनों का एक दम अस्तित्व ही मिट गया। स्वयं भावड़शाह रात्रि को और दिन में अपनी प्यारी जनता की सुरक्षा और सुख की खबर प्राप्त करने स्वयं भेष बदल कर निकलता था। इस प्रकार मधुमती के प्रगणे में आनन्द, शान्ति और सुख अपने पूरे बल पर फैल रहा था। प्रजा सुखी थी, भावड़शाह और सौभाग्यवती भावला भी अपनी प्यारी प्रजा को सुखी और समृद्ध देखकर फूले नहीं समाते थे; परन्तु फिर भी एक अभाव सदा उन्हें उद्विग्न और व्याकुल बना रहा था—वह था पुत्ररत्न का अभाव।

पुत्ररत्न की प्राप्ति और उसकी शिक्षा

यद्यपि मुनिराज के वचनों में दोनों स्त्री-पुरुष को विश्वास था। और जैसा मुनिराज ने कहा था कि बाजारों में लक्षणवंती घोड़ी बिकने आवेगी, उसको खरीद लेना, वह तुम्हारे भाग्योदय का कारण होगी और हुआ भी वैसा ही। मुनिराज ने दो बातें कही थीं—लक्षणवंती घोड़ी का खरीदना और अवसर आये पुत्ररत्न की प्राप्ति। इन दो बातों में से एक बात सिद्ध हो चुकी थी। अतः दोनों स्त्री-पुरुषों को दृढ़ विश्वास हो गया था कि दूसरी बात भी सत्य सिद्ध होगी; परन्तु अपार धन और वैभव के भाव में पुत्र का अभाव और भी अधिक खलता है। श्रे० भावड़शाह आज अपनी पूरी उन्नति के शिखर पर था। समाज, राज, देश में उसका गौरव बढ़ रहा था। न्याय, उदारता, धर्माचरण के लिये वह अधिकतम प्रख्यात था, अतुल वैभव और समृद्धि का स्वामी था और इन सब के ऊपर मधुमती जैसे समृद्ध और उपजाऊ प्रगणा का अधीश्वर था। ऐसी स्थिति में पुत्र का नहीं होना सहज ही अखरता है। मधुमती की प्रजा भी अपने स्वामी के कोई संतान नहीं देखकर दुःखी ही थी। जब अधिक वर्ष व्यतीत हो गये और कोई संतान नहीं हुई, तब भावड़शाह और उसकी स्त्री ने अपने अतुल धन को पुण्य क्षेत्रों में व्यय करना प्रारंभ किया। नवीन मंदिर बनवाये, जीर्ण मंदिरों का उद्धार करवाया, बिम्बप्रतिष्ठायें करवाईं, स्थल २ पर प्रपायें लगवाईं। सत्रागार खुलवाये, पौषधशाला और उपाश्रय बनवाये, साधर्मिक वात्सल्य और प्रीतिभोज देकर संघसेवा और प्यारी प्रजा का सत्कार किया, निर्धनों को धन, अनाथों को शरण, अपंगों को आश्रय, बेकारों को कार्य और गरीबों को वस्त्र, अन्न, धन देना प्रारंभ किया। पुण्य की जड़ पाताल में होती है, अंत में सौभाग्यवती भावला एक रात्रि को शुभ मुहूर्त में गर्भवती हुई और अवधि पूर्ण होने पर उसकी कुक्षी से अति भाग्यशाली एवं परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम जावड़शाह रक्खा गया। यह शुभ समाचार मधुमती की जनता में अपार आह्लाददायी और सुख एवं शांति का प्रसार करने वाला हुआ। समस्त जनता ने अपने स्वामी के पुत्र के जन्म के शुभ लक्ष्य में भारी समारोह, उत्सव किया, मंदिरों में विविध पूजायें बनवाई गईं। ग्राम २ में प्रीतिभोज और साधर्मिक—वात्सल्य किये गये और प्रत्येक जन ने यथाशक्ति अमूल्य भेंट देकर भावड़शाह को बधाया।

जावड़शाह चंद्रकला की भांति बढ़ने लगा। छोटी वय में ही उसने वीरोचित शिक्षा प्राप्त कर ली, जैसे घोड़े की सवारी, तलवार, बर्छी, बल्लम के प्रयोग, तैरना, मल्लयुद्ध, धनुर्विद्या आदि। मल्लयुद्ध और धनुर्विद्या में जावड़शाह इतना प्रख्यात हुआ कि उसकी कीर्ति और बाण चलाने की अनेक चर्चायें दूर २ तक की जाने लगीं। भावड़शाह

ने जावड़शाह को जैसी वीरोचित शिक्षा दिलवाई, उससे अधिक अपने धर्म की शिक्षा भी दिलवाई थी । जावड़शाह बहुत ही उदारहृदय, दयालु और न्यायप्रिय युवराज था । जावड़शाह को देख कर मधुमती की जनता अपने भाग्य पर फूली नहीं समाती थी ।

जावड़शाह सर्वकलानिधान और अनेक विद्याओं में पारंगत हो चुका था । पिता के शासनकार्य में भाग लेने लग गया था । वृद्ध पिता, माता अब अपने घर के आंगन में पुत्रवधू को घूमती, फिरती देखने में अपने सौभाग्य की चरमता देख रहे थे । परन्तु जावड़शाह के योग्य कोई कन्या नहीं दिखाई दे रही थी । अन्त में जावड़शाह की सहगति करने-सम्बन्धी भार भावड़शाह ने जावड़शाह के मामा श्रेष्ठि सोमचन्द्र के कन्धों पर डाला । मामा सोमचन्द्र अपने भाणेज के गुणों पर अधिक ही मुग्ध थे । वे उसको प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे, तथा धर्म और समाज का उसके द्वारा उद्धार होना मानते थे । अच्छे मुहूर्त में वे मधुमती से भाणेज के योग्य कन्या की शोध में निकल पड़े । घेटी ग्राम में वे मोतीचन्द्र श्रेष्ठि के यहाँ ठहरे । घेटी ग्राम पहाड़ों के मध्य में बसा हुआ एक सुन्दर मध्यम श्रेणी का नगर था। वहाँ प्राग्वाट-ज्ञातीय शूरचन्द्र श्रेष्ठि रहते थे । उनकी सुशीला नामक कन्या अत्यन्त ही गुणगर्भा और रूपवती थी । मोतीचन्द्र श्रेष्ठि द्वारा सुशीला की कीर्ति श्रवण करके सोमचन्द्र ने शूरचन्द्र श्रेष्ठि को बुलवा भेजा और उनके आने पर उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की । इस चर्चा में सुशीला की उपस्थिति भी आवश्यक समझी गई । अतः वे सर्व उठकर शूरचन्द्र श्रेष्ठि के घर पहुंचे और सुशीला से उसकी सहगति सम्बन्धी बात-चीत प्रारम्भ की । सुशीला ने स्पष्ट कहा कि वह उसी युवक के साथ में विवाह करेगी, जो उसके चार प्रश्नों का उत्तर देगा । शत्रुंजय-महात्म्य-में लिखा है कि श्रे० सोमचन्द्र सुशीला को और उसके परिवार को साथ में लेकर मधुमती आये । सधर्मी बन्धुओं की एवं नगर के प्रतिष्ठित जनों की सभा बुलाई गई और उसमें सुशीला ने कुमार जावड़ से प्रश्न किया कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों का क्या अर्थ होता है, समझाइये । कुमार जावड़ बड़ा योग्य, धर्मनीति का प्रतिभा-सम्पन्न युवक था । उसने उक्त पुरुषार्थों का ठीक २ वर्णन करके सुना दिया । सुशीला उत्तर सुनकर मुग्ध हो गई और उसने जावड़ के गले में जयमाला पहिरा दी ।

जावड़शाह का सुशीला के साथ विवाह

शुभ मुहूर्त में जावड़शाह और सुशीला का विवाह भी हो गया । अब भावड़शाह और भावला पूर्ण सुखी थे । उनकी कोई सांसारिक इच्छा शेष नहीं रह गई थी । केवल एक कामना थी और वह पौत्र का मुख देखने की । कुछ वर्षों पश्चात् जावड़शाह के जाजनाग, जिसको जाजण भी कहा जाता है, पुत्र उत्पन्न हुआ । पौत्र की उत्पत्ति के पश्चात् भावड़शाह और सौभाग्यवती भावला त्यागमय जीवन व्यतीत करने लगे । सांसारिक और राजकीय कार्यों से मुंह मोड़ लिया और खूब दान देने लगे और तपस्यादि कठिन कर्मों को करने लगे । अन्त में दोनों अपना अन्तिम समय आया जानकर अनशन-व्रत ग्रहण करके स्वर्ग को सिधारे ।

जावड़शाह का विवाह और माता-पिता का स्वर्गगमन

माता-पिता के स्वर्गगमन के पश्चात् प्रगणा का पूरा २ भार जावड़शाह पर आ पड़ा । जावड़शाह योग्य और दयालु शासक था । वैसी ही योग्या और गुणगर्भा उसकी स्त्री सुशीला थी । दोनों तन, मन, धन से धर्म

मधुमती पर मलेच्छों का आक्रमण और जावड़शाह को कैदी बनाकर ले जाना

और अपनी प्यारी प्रजा का पालन करने लगे। मधुमती की समृद्धता बढ़ती ही गई। भारत के पश्चिम में जितने देश थे, वे मलेच्छों के आधीन थे। इन देशों के मलेच्छ सैन्य बनाकर प्रतिवर्ष भारत पर आक्रमण करते और यहाँ से धन, द्रव्य लूट कर ले जाते थे। मधुमती की प्रशंसा सुनकर वे एक वर्ष बड़ी संख्या में मधुमती पर चढ़कर समुद्रमार्ग से आये। जावड़शाह और उसके सैनिकों ने उनका खूब सामना किया, परन्तु अन्त में मलेच्छ संख्या में कई गुणे थे, युद्ध में विजयी हुये। मधुमती को खूब लूटा और अनेक दास-दासी कैद करके ले गये। जावड़शाह और सुशीला को भी वे लोग कैद करके ले गये। मलेच्छों के सम्राट् ने जब जावड़शाह और सुशीला की अनेक कीर्ति और पराक्रम की कहानियाँ सुनी, उसने उनको राज्यसभा में बुलाकर उनका अच्छा सम्मान किया और मलेच्छ-देश में स्वतन्त्रता के साथ व्यापार और अपने धर्म का प्रचार करने की उनको आज्ञा दे दी। थोड़े ही दिनों में जावड़शाह ने अपनी धर्मनिष्ठा एवं व्यापार-कुशलता से मलेच्छ-देश में अपार प्रभाव जमा लिया और खूब धन उपार्जन करने लगा।

सम्राट् संप्रति ने जैनधर्मोपदेशकों को भारत के समस्त पास-पड़ौस के देशों में भेजकर जैनधर्म का खूब प्रचार करवाया था। तभी से जैन उपदेशकों का आना-जाना चीन, ब्रह्मा, आसाम, अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की, ग्रीक, अफ्रीका आदि प्रदेशों में होता रहता था। जावड़शाह ने वहाँ महावीर-स्वामी का जिनालय बनवाया और ठहरने तथा आहार-पानी की ठौर २ सुविधायें उत्पन्न कर दीं। फलतः मलेच्छ-देशों में जैन-उपदेशकों के आगमन को प्रोत्साहन मिला और संख्या-बंध आने लगे। एक वर्ष चातुर्मास में एक जैन-उपदेशक ने जो शास्त्रज्ञ और प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता थे, अपने व्याख्यान में कहने लगे कि प्रसिद्ध महातीर्थ शत्रुंजय का जैन-जनता से विच्छेद हो गया है, वहाँ पिशुन और मांसाहारी लोगों का प्राबल्य है, मन्दिरों की घोर आशातनायें हो रही हैं, जावड़शाह नाम के एक श्रेष्ठि से अब निकट-भविष्य में ही उसका उद्धार होगा। श्रोतागणों में जावड़शाह भी बैठा था। जावड़शाह ने यह सुनकर प्रश्न किया कि वह जावड़शाह कौन है, जिसके हाथ से ऐसा महान् पुण्य का कार्य होगा। उन्होंने जावड़शाह के लक्षण देखकर कहा कि वह जावड़शाह और कोई नहीं, तुम स्वयं ही हो। समय आ रहा है कि मलेच्छ-सम्राट् तुम्हारे पर इतना प्रसन्न होगा कि जब तुम उससे स्वदेश लौटने की अपनी इच्छा प्रकट करोगे वह तुमको परिवार, धन, जन के साथ में लौटने की सहर्ष आज्ञा दे देगा।

जैन उपदेशकों का आगमन और जावड़शाह को स्वदेश लौटने की आज्ञा

उस ही चातुर्मास में मलेच्छ सम्राट् की अध्यक्षता में राज्यप्रांगण में अनेक मल्लों में बल-प्रतियोगिता हुई। उनमें मलेच्छ सम्राट् का मल्ल सर्वजयी हुआ। सम्राट् का मल्ल हर्ष और आनन्द के साथ जयध्वनि कर रहा था। जावड़शाह उसका यह गर्व सहन नहीं कर सका। वह अपने आसन से उठा और सम्राट् के समक्ष आकर विजयी मल्ल से द्वंद्वयुद्ध करने की आज्ञा माँगी। सम्राट् ने तुरन्त आज्ञा प्रदान कर दी। दर्शकगण सम्राट् के बलशाली और सर्वजयी मल्ल के सम्मुख जावड़शाह को बढ़ता देखकर आश्चर्य्य करने लगे। थोड़े ही समय में दोनों में उलटा-पलटी होने लगी, अन्त में जावड़शाह ने एक ऐसा दाव खेला कि सम्राट् का मल्ल चारों-खाने-चित्त जा गिरा। जावड़शाह को विजयी हुआ देख कर दर्शकगण, स्वयं सम्राट् और उसके सामन्त आदि अत्यन्त ही आश्चर्यचकित रह गये। सम्राट् ने अति प्रसन्न होकर जावड़शाह से कोई वरदान माँगने का आग्रह किया। जैन-उपदेशक के वे शब्द

कि सम्राट् प्रसन्न होकर तुमको स्वदेश लौटने की आज्ञा दे देगा जावड़शाह को स्मरण तो थे ही। जावड़शाह ने सुन्दर अवसर देखकर सम्राट् से निवेदन किया कि वह अपने परिवार और धन, जन सहित स्वदेश लौटने की आज्ञा चाहता है। जावड़शाह की इस प्रार्थना को सम्राट् ने सहर्ष स्वीकार किया और जब इच्छा हो, जाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

जावड़शाह का स्वदेश को लौटना

मलेच्छ-सम्राट् से योग्य सहायता लेकर जावड़शाह अपने परिवार, धन, जन सहित शुभ मुहूर्त में प्रयाण करके स्वदेश को चला। मार्ग में वह तक्षशिलानगरी के राजा जगन्मल्ल के यहाँ ठहरा। राजा जगन्मल्ल जावड़शाह को शत्रुंजय के उद्धार के निमित्त जाते हुए श्रवण कर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ और धर्म-चक्र के आगे प्रगट हुआ दो पुण्डरीकजी वाला श्री आदिनाथ-बिंब शत्रुंजयमहातीर्थ पर स्थापित करने के लिये जावड़शाह को अर्पित किया। जावड़शाह ने स्नान आदि करके शरीर शुद्धि की और प्रभु का पूजन अतिशय भावभक्तिपूर्वक किया और बिंब को लेकर सौराष्ट्र-मण्डल की ओर चला। मार्ग में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं होवे, इसलिए उसने एकाशन-व्रत का तप प्रारम्भ किया और अनेक विघ्न-बाधाओं को जीतता हुआ वह सौराष्ट्र-मण्डल में पहुंचा।

मार्ग में जब ग्राम, नगर, पुरों के धर्म-प्रेमी जनों ने सुना कि जावड़शाह शत्रुंजयमहातीर्थ का उद्धार करने के लिये जा रहा है, उन्होंने अनेक प्रकार की अमूल्य भेंटें ला ला कर भगवान् आदिनाथ-बिंब के आगे रक्खीं और अनन्त द्रव्य तीर्थ के ऊपर उद्धार में व्यय करने के निमित्त भेंट किया। इस प्रकार जावड़शाह ग्राम २ में नगर-नगर में आदर-सत्कार पाता हुआ और अनन्त भेंटें लेता हुआ अपनी राजधानी मधुमती पहुंचा। मधुमती के प्रगणा की जनता ने जब यह सुना कि उसका स्वामी अनन्त ऋद्धि और द्रव्य के साथ स्वस्थान को लौट रहा है और शत्रुंज्यमहातीर्थ का उद्धार उसके हाथ से होगा, वह फूली नहीं समायी और अपने स्वामी का स्वागत करने के लिये बहुत धूम-धाम से आगे आई। अत्यन्त धूम-धाम, सज-धज के साथ जनता ने जावड़शाह का नगर में प्रवेश करवाया। जावड़शाह ने अपने वियोग में दुःखी अपनी प्यारी जनता के दर्शन करके अपने भाग्य की सराहना की। जावड़शाह ने पूर्व जो जहाज करियाणा-सामग्री से भर कर विदेशों में महाचीन, चीन तथा भोट देशों में समुद्र-मार्ग से भेजे थे, वे भी बिक्री करके अमूल्य निधि लेकर ठीक इस समय में लौट आये। यह सुनकर जावड़शाह को अत्यन्त हर्ष हुआ और शत्रुञ्जयजीर्णोद्धार-कार्य में व्यय करने के लिये अब उसके पास बहुत द्रव्य हो गया।

समस्त सौराष्ट्र, गुजरात, कच्छ, राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, विंध्यप्रदेश, संयुक्तप्रान्त, उत्कल, बंगाल और दक्षिण भारत की जैन-जनता को ज्योंही यह शुभ समाचार पहुंचे कि मधुमती का स्वामी जावड़शाह मलेच्छ-देश से लौट आया है और शत्रुंजय का उद्धार करेगा अत्यन्त ही प्रसन्न हुई। संघ-प्रयाण के शुभ दिवस के पहिले २ अनन्त जैन और अजैन जनता मधुमती में एकत्रित हो गई। जावड़शाह ने आगत संघों की अति अभ्यर्थना की और शुभ मुहूर्त में महातीर्थ का उद्धार करने के हेतु वज्रस्वामी जैसे समर्थ आचार्य की तत्त्वावधानता में प्रयाण किया।

शत्रुञ्जय-महातीर्थ पर इस समय कपर्दि नामक असुर का अधिकार था। वह और उसके दल वाले तीर्थ पर रहते थे। समस्त तीर्थ मांस और मदिरा से लिप-पुत गया था। प्रभुदर्शन तो दूर रहे, नित्य पूजन भी बन्ध हो

गया था। शत्रुंजयतीर्थ के आस-पास के प्रदेश पर भी इस कपर्दि असुर का अधिकार था। इसके अत्याचारों से घबरा कर जनता अपने घर-द्वार छोड़कर दूर २ भाग गई थी। शत्रुंजयतीर्थ के मार्ग ही बन्द हो गये थे। इस प्रकार तीर्थ का उच्छेद लगभग ५० वर्ष पर्यन्त रहा। जनता को यह सहन तो नहीं हो रहा था, परन्तु अत्याचारी नरभक्षक असुरों के आगे उसका कोई वश नहीं चलता था। जब कपर्दि असुर ने सुना कि जावड़शाह अनन्त सैन्य के साथ शत्रुंजयमहातीर्थ का उद्धार करने के लिये चला आ रहा है, अत्यन्त क्रोधातुर हुआ और उसने मार्ग में अनेक विघ्न उत्पन्न करने प्रारम्भ कर दिये; परन्तु जावड़शाह जैसे धर्मिष्ठ के मन को कौन डिगा सकता था ? वह सब बाधाओं को झेलता हुआ, पार करता हुआ आगे बढ़ता ही गया। वज्रस्वामी अनन्त ज्ञान और पूर्वभवों के ज्ञाता थे। इनकी सहाय पाकर जावड़शाह निर्विघ्न शत्रुंजयतीर्थ की तलहट्टी में पहुंचा। शुभ मुहूर्त में संघ ने तीर्थपर्वत पर चढ़ना प्रारम्भ किया, यद्यपि असुरों ने अनेक विघ्न डाले, विकराल रूप बना बना कर लोगों को डराया, लेकिन वज्रस्वामी के तेज के आगे उनका कोई छल-मन्त्र सफल नहीं हुआ और शुभ पल में आदिनाथमन्दिर में जावड़-शाह, वज्रस्वामी और संघ ने जाकर प्रभु के दर्शन किये। तीर्थ छोड़कर असुर सब भाग गये। जावड़शाह ने सर्व विघ्नों को अन्तप्रायः हुआ देखकर तीर्थ को कई बार धुपवाया और समस्त पर्वत मांस-मदिरा से जो लिप-पुत गया था तथा हड्डियों से ढँक चुका था, उसको साफ करवाया। मन्दिरों का जीर्णोद्धार प्रारंभ करवाया और शुभ मुहूर्त में नवप्रभु-आदिनाथ के बिंब की स्थापना की। शत्रुंजयमहातीर्थ का यह तेरहवाँ उद्धार था, जो वि० सं० १०८ में पूर्ण हुआ।

मन्दिर के ऊपर दोनों पति और पत्नी जब भक्ति-भावपूर्वक ध्वजा फर्का रहे थे, उसी समय उन दोनों की दिव्य आत्मायें नश्वर पंचभूत शरीरों को छोड़ कर देवलोक को सिधार गईं। जब अधिक समय हो गया और दोनों नीचे नहीं उतरे तो लोगों को शंका हुई कि क्या हुआ। जब ऊपर जाकर देखा तो दोनों हाथ जोड़े खड़े हैं और देहों में प्राण नहीं हैं। जाजनाग को यह जान कर अत्यन्त शोक हुआ, परन्तु समर्थ वज्रस्वामी ने उसको धर्मोपदेश देकर इस प्रकार देह-त्याग करने के शुभयोग को समझाया। जीर्णोद्धार का शेष रहा कार्य जाजनाग ने पूर्ण करवाया था।

जावड़शाह और सुशीला का स्वर्गगमन

भारत-भूमि पर जब तक शत्रुंजयमहातीर्थ और उसका उज्ज्वल गौरव स्थापित रहेगा, शत्रुंजयतीर्थ के तेरहवें उद्धारक श्रे० जावड़शाह और उसकी धर्मात्मा पत्नी सुशीला की गाथा घर घर गाई जाती रहेगी।

सिंहावलोकन

●

विक्रम संवत् पूर्व पाँचवीं शताब्दी से विक्रम संवत् आठवीं शताब्दी पर्यन्त जैनवर्ग की विभिन्न स्थितियाँ और उनका सिंहावलोकन

●

धर्म-क्रांति

हिंसावाद के विरोध में भगवान् महावीर और गौतमबुद्ध ने अहिंसात्मक पद्धति पर प्रबल आन्दोलन खड़ा किया। भारत में वर्षों से जमी वर्णाश्रमपद्धति की जड़ हिल गई और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों में से कई एक नवीन ज्ञातियाँ और दल बन गये। महावीर ने श्रीचतुर्विधसंघ की स्थापना की और गौतमबुद्ध ने बौद्धसमाज की। यह क्रांति विक्रम संवत् के आरंभ तक अपने पूरे वेग से चलती रही है। इससे यह हुआ कि भारत की आर्यज्ञाति वेद, बौद्ध और जैन इन तीनों वर्गों में विशुद्धतः विभक्त हो गई। वर्णों में जहाँ वेद अथवा जैनमत का पालन व्यक्तिगत रहता आया था, अब कुलपरंपरागत हो गया। कुछ शताब्दियों तक तो किसी भी धर्म का पालन किसी भी वर्ण, वर्ग अथवा ज्ञाति का कुल अथवा व्यक्ति करता रहा था, परन्तु पीछे से यह पद्धति बदल दी गई। जैनाचार्यों ने एवं बौद्ध भिक्षुकों ने अन्य मतों से आनेवाले कुलों एवं व्यक्तियों को दीक्षा देना प्रारंभ किया और उन कुलों को अपने कुल के अन्य परिवारों से, जिन्होंने धर्म नहीं बदला सामाजिक एवं धार्मिक सम्बन्धों का विच्छेदप्रायः करना पड़ा। बौद्धमत अपनी नैतिक कमजोरियों के कारण अधिक वर्षों तक टिक नहीं सका। जैन और वेद इन दोनों मतों में संघर्ष तेज-शिथिल प्रायः बना ही रहा। श्रीमाल, प्राग्वाट, ओसवाल, अग्रवाल, खण्डेलवाल, चितौड़ा, माहेश्वरी आदि अनेक वैश्यज्ञातियों का जन्म हुआ। बाहर से आयी हुई शकादि ज्ञातियों के कारण क्षत्रियों में भी कई एक नवीन ज्ञातियों का उद्भवन हुआ। ब्राह्मणवर्ग में भी कई एक नवीन गोत्रों, ज्ञातियों की स्थापना हुई और फिर उनमें भी उत्तम, मध्यम जैसी श्रेणियाँ स्थापित हुईं। शूद्रवर्ण भी इस प्रभाव से विमुक्त नहीं रहा। कालान्तर में जा कर यह हो गया कि उत्तम वर्ण, वर्ग अथवा ज्ञाति का कोई परिवार अपने से नीचे के वर्ण, वर्ग अथवा ज्ञाति में उसका धर्म स्वीकार करके संमिलित हो सकता था, परन्तु नीचे का अपने से ऊँची स्थितिवाले वर्ण, वर्ग अथवा ज्ञाति में उसका धर्म स्वीकार करने पर भी संमिलित नहीं हो सकता था।

धार्मिक जीवन

श्रावकवर्ग की उत्पत्ति ब्राह्मण एवं क्षत्रिय, वैश्य कुलों से हुई है, जो कुल अधिकतर वेदमतानुयायी थे। जैनधर्म स्वीकार करने पर इस वर्ग में आनेवाले कुलों को श्रावकव्रत स्वीकार करना पड़ा। जहाँ ये कुल प्रधानतः कृषि करते थे, गौपालन करते और हर प्रकार का व्यापार करते थे, वहाँ जैन बनने पर अधिक पापवाले कर्मों के करने से बचना इनके लिये प्रमुख कर्त्तव्य रहा। ये अधिकतर व्यापार ही करने लगे और वह भी ऐसी वस्तुओं का कि जिनके उत्पादन में, संग्रह में, जिनकी प्राप्ति, क्रय और विक्रय में तथा अधिक समय तक संचित रखने में कम से कम पाप लगता हो। ये बड़े ही दयालु, परोपकारी,

दृढ़प्रतिज्ञ होते थे। काल-दुष्काल में निर्धन, गरीब, कालपीड़ित जनों को सर्वस्व देकर अन्न-धन से सहायता करते थे। किसी की आत्मा को तनिक-मात्र भी कष्ट पहुंचाना ये पाप समझते थे। संसार के सर्व जीवों पर इनकी दयादृष्टि रहती थी। सब से इनकी मित्रता थी। किसी भी प्राणी से इनकी शत्रुता नहीं रहती थी। धर्म के नाम पर एवं प्राणीहितार्थ अपने द्रव्य का पूरा २ सदुपयोग करना इनका एकमात्र लक्ष्य रहता था। बड़े २ श्रीमन्त अपने जीवनकाल में बड़े २ तीर्थों की विशाल संघ के साथ में तीर्थयात्रायें करते थे, मार्ग में पड़ते जिनालयों का जीर्णोद्धार करवाते चलते थे और इस ही प्रकार अनेक भांति से अपने सधर्मी बन्धुओं की कई एक अवसरों पर लक्षों, करोड़ों रुपयों का व्यय करके सेवा-भक्ति करते थे। धन-संचय करना इनका कर्त्तव्य रहता था, परन्तु अपने लिये वह नहीं होता था। धन का संचय ये न्यायमार्ग से करते थे और धर्म के क्षेत्रों में, दीन-दुःखियों की सेवाओं में उसका पूरा २ व्यय करते थे। आज भारतवर्ष में जितने अति प्रसिद्ध जैनतीर्थ हैं, ये उस समय में अपनी सिद्धस्थिति के लिये अत्यधिक प्रसिद्ध थे और इन पर इनकी शोभावृद्धि के लिये नहीं, वरन् अपनी श्रद्धा और भक्ति से लोग विपुल द्रव्य का व्यय करते थे। अधिकांश पुरुष और स्त्री चतुर्थाश्रम में साधुव्रत अंगीकार करना पसन्द करते थे। जब कोई परिवार भागवती दीक्षा ग्रहण करता था, वह अपने भवन का द्वार खुला छोड़ कर निकल जाता था। उसकी जितनी भी सम्पत्ति लक्षों, कोटियों की होती वह धर्मक्षेत्रों में, दीन-दुःखियों की सेवा में व्यय की जाती थी। उस समय में ऐसी पद्धति थी कि घर का प्रमुख व्यक्ति जब साधु-दीक्षा ग्रहण करता था, तो उसके माता, पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्रवधुयें भी प्रायः दीक्षा ले लिया करती थीं।

सामाजिक जीवन और आर्थिक स्थिति

जैसा आज प्राग्वाट, ओसवाल, श्रीमालवर्ग जैनसमाज में अपना अलग स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है, वैसा उस समय में नहीं था। जैनसमाज एक वर्ग था। सब थे जैन और एक। परस्पर भोजन-कन्या व्यवहार सरलता से होता था। प्रत्येक अपने सधर्मी बन्धु की सेवा-भक्ति करना अपना परम कर्त्तव्य मानता था। समाज पर साधुओं एवं आचार्यों का पूरा प्रभाव रहता था। समस्त समाज इनके ही आदेशों पर चलता था। जैनधर्म स्वीकार करने वाले प्रत्येक सुसंस्कृत कुल को जैनसमाज में प्रविष्ट होने की पूरी २ स्वतन्त्रता थी और प्रविष्ट हो जाने पर उस कुल का मान समाज में अन्य जैनकुलों के समान ही होता था। जैनसमाज को छोड़कर जाने वाले कुल के साथ में भी समाज की ओर से कोई विरोध खड़ा नहीं किया जाता था। राजसभाओं एवं नगरों में जैनियों का बड़ा मान था और वे श्रेष्ठि समझे जाते थे। अधिकांश जैन बड़े ही श्रीमन्त और धनाढ्य होते थे। ये इतने बड़े धनी होते थे कि बड़े २ सम्राट् तक इनकी समृद्धता एवं वैभव की बराबरी नहीं कर सकते थे। स्वर्णमुद्राओं पर इनकी गणना होती थी—ऐसे अनेक उदाहरण प्राचीन जैनग्रन्थों में मिलते हैं। भारतवर्ष का सम्पूर्ण व्यापार इनके ही करों में संचालित रहता था। भारत के बाहर भी ये दूर देशों में जा-जाकर जहाजों द्वारा व्यापार करते थे। इनकी व्यापारकुशलता के कारण भारत उस समय इतना समृद्ध हो गया था कि वह स्वर्ण की चिड़िया कहलाता था। धर्म के नाम पर तीर्थों में, मन्दिरों में एवं पर्व और त्यौहारों पर तथा तीर्थसंघयात्रादि जैसे संघभक्ति के कार्यों में प्रत्येक जैन अपनी शक्ति के अनुसार खूब द्रव्य का व्यय करता था।

जैनं जयति शासनम्

॥ ॐ ॥

प्राग्वाट-इतिहास

द्वितीय खण्ड

●

[विक्रम संवत् की नवमी शताब्दी से विक्रम संवत् तेरहवीं शताब्दी पर्यन्त ।]

●

* ॐ *

प्राग्वाट-इतिहास

द्वितीय खंड

●

वर्तमान् जैनकुलों की उत्पत्ति

श्रावकवर्ग में वृद्धि के स्थान में घटती

●

श्रावकसमाज में जो वृद्धि होकर, उसकी गणना करोड़ों पुरुषों तक पहुँची थी, अनेक महान् जैनाचार्य्यों के श्रथक परिश्रम का वह सुफल था। परन्तु क्रमबद्ध विवरण नहीं मिलने के कारण श्रावकसमाज की वृद्धि का इतिहास आज तक नहीं लिखा जा सका।

गुप्तवंश के राज्य की स्थापना तक जैनधर्म का प्रभाव और प्रसार द्रुतगति से बढ़ता रहा था। गुप्तवंश के राजा वैष्णवमतानुयायी थे। उनके समय में फिर से ब्राह्मणधर्म जाग्रत हुआ और अश्वमेधयज्ञों का पुनरारम्भ हुआ। परन्तु इतना अवश्य है कि गुप्तवंश के सम्राट् अन्य धर्मों के प्रति भी उदार और दयालु रहे थे। फिर भी जैनधर्म की प्रसार-गति में धीमापन अवश्य आ गया था।

गुप्तकाल से ही जैनाचार्यों का विहार मध्यभारत, मालवा, राजस्थान और गुजरात तक ही सीमित रह गया था। इनसे पहिले के जैनाचार्य्यों का विहार उधर उत्तर-पश्चिम में पंजाब, गंधार, कंधार, तक्षशिला तक और पूर्व में विहार, बंगाल, कलिंग तक होता था और उसी का यह परिणाम था कि जैनधर्म के मानने वालों की संख्या कई कोटि हो गई थी। जब से जैनाचार्य्यों ने लम्बा विहार करना बन्द किया और मालवा, राजस्थान, मध्य-भारत, गुजरात में ही भ्रमण करके अपनी आयु व्यतीत करना प्रारम्भ किया, जैनधर्म के मानने वालों की संख्या

भी दिनों-दिन घटने लगी और नवीन जैन बनने बंद-से हो गये । विक्रम की सातवीं और आठवीं शताब्दी में जैन संख्या में ६ और ७ कोटि के बीच में रह गये थे । उक्त प्रदेशों में जैनाचार्य्यों का विहार बंद पड़ जाने के कारण और वेदमत के पुनर्जागरण के कारण उनमें से कई अथवा अनेक वैष्णवधर्मी बन गये हों । वैष्णवधर्म का प्रचार विक्रम की आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य के समय से ही द्रुतगति से समस्त भारत में पुनः प्रबल वेग से बढ़ने लगा था । जैनाचार्य्यों को स्वभावतः जैनसमाज की निरन्तर घटती हुई संख्या पर चिन्ता होनी आवश्यक थी । सम्भव है उसी के फलस्वरूप विक्रम की आठवीं, नौवीं शताब्दी में जैनाचार्य्यों ने नवीनतः अजैनकुलों को जैन बनाने का दुर्धर कार्य प्रारम्भ किया । यह निश्चित है कि अब उनका यह कार्य प्रमुखतः राजस्थान, मालवा तक ही सीमित रहा था और ये प्रदेश ही विक्रम की पाँचवीं-छट्ठी शताब्दियों से उनके प्रमुखतः विहार-क्षेत्र भी थे । वर्तमान् जैनसमाज बहुत अंशों में पश्चात् की शताब्दियों में जैनधर्म स्वीकार करने वाले कुलों की ही सन्तान है ।

वर्तमान् जैनसमाज अथवा जैनज्ञाति की स्थापना पर विचार और कुलगुरु-संस्थायें

वर्तमान् जैनसमाज का अधिकांश भाग पंजाब, राजस्थान, मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र (काठियावाड़) संयुक्त-प्रान्त, मध्यभारत, बरार, खानदेश में ही अधिकतर बसता है और जैनेतर वैष्णव वैश्यसमाज उत्तरी भारत में पंजाब से बरार, खानदेश और सिंध से गंगा-यमुना के प्रदेशों में सर्वत्र बसता है । जैनकुलों का वर्णन अथवा इतिहास कुलगुरुओं ने और वैष्णव वैश्यकुलों का वर्णन अथवा इतिहास भट्ट, ब्राह्मणों, चारणों ने लिखा है और अभी तक ये लोग अपने २ श्रावककुल अथवा यजमानकुलों का वर्णन परम्परा से लिखते ही आरहे हैं । जैनकुल-गुरुओं के पास में जो जैनश्रावककुलों की ख्यातें हैं, उनमें ऐसी अभी तक कोई भी विश्वसनीय ख्यात बाहर नहीं आई, जो किसी वर्तमान् जैनकुल की उत्पत्ति वि० सं० की आठवीं शताब्दी से पूर्व सिद्ध करती हो । आज तक प्रकाशित हुये अगणित जैनप्रतिमा-लेखों, प्रशस्तियों, ताम्रपत्रों पर से भी यही माना जा सकता है कि वर्तमान् जैन-समाज के कुलों की उत्पत्ति विक्रम की आठवीं-नौवीं शताब्दी में तथा पश्चात् की ही है । यह भी ख्यातों से सिद्ध है कि वर्तमान् जैनकुलों की उत्पत्ति अधिकांशतः राजस्थान और मालवा में हुई है । अन्य प्रान्तों में कालान्तर में वे जाकर बसे हैं । इन जैनकुलों के कुलगुरुओं की पौषधशालायें भी अधिकांशतः राजस्थान और मालवा में ही रही हैं और आज भी वहीं हैं । अन्य प्रान्तों में पौषधशालायें कहीं-कहीं हैं । जैनकुल जब किसी परिस्थितिवश अन्य प्रान्त में जाकर बसा, उसके कुलगुरु उसके साथ में जाकर वहां नहीं बसे थे । इस प्रकार जन्म-स्थान को छोड़ कर अन्य प्रान्त में जाकर बसने वाले जैनकुलों का उनके कुलगुरु से जब से सम्बन्ध-विच्छेद हुआ, तब से उनके कुलों का वर्णन अथवा इतिहास का लिखा जाना भी बन्द हो गया । अतः अतिरिक्त राजस्थान और मालवा में बसने वाले जैनकुलों का और नहीं छोड़कर जाने वाले जैनकुलों का वर्णन अथवा इतिहास उनके कुलगुरु बराबर लिखते

रहे हैं। तभी राजस्थान और मालवा में वर्तमान् जैनकुलों के गोत्र, नख और अटकों की विद्यमानता है और यहाँ से छोड़कर जाने वाले कुलों के लोगों के वंशज धीरे २ अपने गोत्र, नख और अटक भूलते गये और अब उनका गोत्र, नख अथवा अटक जैसा कुछ भी नहीं रह गया है। वे सीधे ओसवाल, प्राग्वाट और श्रीमाल हैं। गुजरात में जितने जैनकुल हैं, उनके गोत्रों का कोई पता नहीं लग सकता है और नहीं उनको ज्ञात है कि उनके पूर्वज किस गोत्र के थे।

उक्त अवलोकन पर से तो यह कहना पड़ता है कि अधिकांशतः वर्तमान् जैनकुलों की उत्पत्ति वि० संवत् की आठवीं शताब्दी में और तत्पश्चात् ही हुई है।[1] इससे यह मत स्थिर नहीं हो जाता कि जैनकुलों की स्थापना वि० संवत् की आठवीं शताब्दी से पूर्व हुई ही नहीं थी। भगवान् महावीर के निर्वाण के ५७ (५२) वर्ष पश्चात् ही स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमाल-श्रावककुलों की, प्राग्वाट-श्रावककुलों की और रत्नप्रभसूरि ने ७० वर्ष पश्चात् ही ओसवाल-श्रावकवर्ग के कुलों की उत्पत्तियाँ कीं और अन्य कई आचार्यों ने भिन्न २ समयों में अजैनकुलों को जैन बनाकर उक्त जैनकुलों में सम्मिलित किये अथवा अग्रवाल, खण्डेलवाल, बघेरवाल, चित्रवाल जैसे फिर स्वतन्त्र जैनवर्गों की उत्पत्तियाँ कीं।

वर्तमान् जैनसमाज की स्थापना कब से मानी जानी चाहिये इस पर नीचे लिखी पंक्तियों पर विचार करके उसका निर्णय करना ठीक रहेगा।

प्रथम प्रयास—भगवान् महावीर के संघ में जो श्रावक सम्मिलित हुये थे, उन्होंने अधिकांशतया व्यक्तिगत रूप से जैनधर्म स्वीकार किया था। उनके कुलों और उनकी भविष्य में आने वाली सन्तानों के लिये जैनधर्म का पालन कुलधर्म के रूप में अनिवार्य नहीं बना था। यह प्रथम प्रयास था, जिसमें श्रावकदल की उत्पत्ति हुई।

दूसरा प्रयास—स्वयंप्रभसूरि, रत्नप्रभसूरि और अन्य जैन आचार्यों ने अजैनकुलों को जैनकुल बनाने का दूसरा प्रयास किया। जैनसमाज की स्थापना का शुभ मुहूर्त सच्चे अर्थ में तब से हुआ। उक्त प्रथम प्रयास इसकी भूमिका कही जा सकती है।

तीसरा प्रयास—सम्राट् संप्रति और खारवेल के समय में जैनधर्म के मानने वालों की संख्या बढ़ाकर बीस कोटि पर्यन्त पहुँचाने का तीसरा प्रयास हुआ।

शंकराचार्य के समकालीन श्री बप्पभट्टिसूरि के समय में अथवा विक्रम की नौवीं शताब्दी में जैनों की संख्या सात और आठ कोटि के बीच में रह गई थी। श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य के समय में अर्थात् तेरहवीं शताब्दी में जैन-गणना लगभग पाँच कोटि थी। आज घटते घटते ग्यारह और बारह लाख के लगभग रह गई है।

उक्त संकेतों से यह सिद्ध है कि जैन बने और जब बढ़े, संख्या बढ़ी; जब जैन अजैन बनने लगे या बने, संख्या घटी। पर यह भी बहुत सम्भव है कि स्वयंप्रभसूरि आदि अन्य आचार्यों द्वारा जैन बनाये गये कुल और

१-मुनि श्री जिनविजयजी और अगरचन्दजी नाहटा जैसे प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता भी वर्तमान जैनसमाज के अधिकांश जैनकुलों की उत्पत्ति विक्रम की आठवीं शताब्दी से पूर्व की होना स्वीकार नहीं करते हैं।

२-जैनकुलों में सम्मिलित हुए क्षत्रियकुलों की और चारों वर्णों के जैनधर्म मानने वाले स्त्री-पुरुषों की मिलाकर बीस कोटि संख्या भी ऐसा समझना कठिन लगता है।

वर्ग भी पुनः विषम परिस्थितियों के वश जैनधर्म छोड़कर अन्य धर्मी बन गये हों। ऐसा ही हुआ था, तब ही तो पुनः २ अजैन कुलों को जैन बनाने का प्रयास करना पड़ा और विक्रम की आठवीं शताब्दी में वह द्रुतवेग से राजस्थान में, मालवा में हुआ। उस ही प्रयास का सुफल वर्तमान् जैनसमाज कहा जा सकता है। अन्यथा अगर ऐसा नहीं होता तो जहाँ एक बार जैन स्त्री-पुरुषों की संख्या बीस कोटि बन जाय, वहाँ फिर घटने का और वह भी इस द्रुतगति से—फिर अन्य कारण क्या हो सकता है। अतः अगर पाँचवीं शताब्दी से अथवा सातवीं, आठवीं शताब्दी से पूर्व जैन बने हुये कुलों की आज विद्यमानता नहीं नजर आती है, अथवा अगर कुछ हैं भी तो भी वह विश्वसनीय रूप से नहीं मानी जाती है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है; जब कि वर्तमान् में जो जैनसमाज है, उसके अधिकांश कुलों की जैनधर्म स्वीकार करने की तिथि विक्रम संवत् की आठवीं अथवा इससे पूर्व की नहीं मिलती है। आठवीं शताब्दी में नये जैनकुलों की मालवा और राजस्थान में जो उत्पत्तियाँ की गईं—यह नवीन प्रयास हुआ। वर्तमान् जैनकुलों की उत्पत्ति का इतिहास यहीं से प्रारम्भ हुआ समझना चाहिए

उक्त पंक्तियों का यही निष्कर्ष है कि वर्तमान् जैनसमाज की सर्व ज्ञातियाँ विक्रम संवत् की आठवीं-नौवीं शताब्दी में और उनके भी पश्चात् उत्पन्न हुई हैं और उनका उत्पत्तिस्थान मालवा और राजस्थान* ही अधिकतः है। यह बात वैष्णवमतावलंबी अन्य वैश्यज्ञातियों की उत्पत्ति के विषय में भी मानी जा सकती है कि उनका अन्य धर्म स्वीकार करके वैष्णवधर्मी बनकर जैनेतर वैश्य बनना विक्रम की आठवीं शताब्दी में उत्पन्न शंकराचार्य के जैन और बौद्धमत का प्रबल विरोध करने का तथा बाद में रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य के उपदेशों का परिणाम है अर्थात् वैष्णव वैश्यज्ञातियाँ भी विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दी में और पश्चात् ही बनी हैं।

ई० सन् की आठवीं शताब्दी में श्री हरिभद्रसूरि द्वारा अनेक अजैन कुलों को जैन बनाकर प्राग्वाटश्रावकवर्ग में सम्मिलित करना।

ई० सन् की आठवीं शताब्दी में हरिभद्रसूरि एक महान् पंडित एवं तेजस्वी जैनाचार्य्य हो गये हैं। ये गृहस्थावस्था में ब्राह्मणकुलीन थे और चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) के रहने वाले थे। इन्होंने जैन-साधुपन की दीक्षा लेकर जैनागमों का गम्भीर अध्ययन किया था। ये अपने समय के महान् पण्डित थे। इन्होंने १४४४ ग्रन्थ लिखे थे—ऐसा अनेक ग्रन्थों में लिखा मिलता है। इनके समय में हिन्दूधर्म के मानने वाले सम्राटों का प्रभाव घटना

*कमलकुमार शास्त्री का 'परवारों की उत्पत्ति का विचित्र इतिहास' शीर्षक से 'जैनमित्र' वर्ष ४१, अंक ४, पृष्ठ ६३ पर सचमुच विचित्र ही लेख छपा हुआ था। जिस पर परवारसमाज में भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया था और उक्त लेख का अनेक परवार-पंडितों ने अनेक लेख लिखकर घोर खण्डन और विरोध किया था। श्री नाथूरामजी 'प्रेमी' प्रसिद्ध साहित्यमहारथी का अन्त में २२ पृष्ठों का लम्बा और भ्रमनिवारक लेख 'परवारज्ञाति के इतिहास पर कुछ प्रकाश' शीर्षक से परवारबन्धु: वर्ष ३-४ अप्रैल मई सन् १६४० पृ० २५ पर प्रकाशित हुआ। उक्त लेख में पृ० ३१ पर 'वैश्यों की करीब २ सभी ज्ञातियाँ राजस्थान से ही निकली हैं', पृ० ३८ पर 'वर्तमान् ज्ञातियाँ नौवीं-दसवीं शताब्दी में पैदा हुई होना चाहिये' आदि लिखा है।

प्रारम्भ हो गया था और फलतः ब्राह्मण-धर्म का प्रचार भी पुनः शिथिल पड़ने लग गया था। इन्होंने मालवा और मेवाड़ में अनेक उच्च एवं सुसंस्कृत अजैनकुलों को श्रावकधर्म की दीक्षा देकर जैन बनाये थे और उनको प्राग्वाटवर्ग में सम्मिलित किया था।

श्री शंखेश्वरगच्छीय आचार्य उदयप्रभसूरि द्वारा विक्रम संवत् ७६५ में श्री भिन्नमालपुर में आठ ब्राह्मण-कुलों को जैन बनाकर प्राग्वाटश्रावकवर्ग में उनका संमिलित करना।

भिन्नमाल के राज्यसिंहासन पर वि० सं० ७१६ में जयंत नामक राजा विराजमान हुआ था। जयंत के पश्चात् उसका छोटा भाई जयवंत वि० सं० ७४६ में राजा बना। उसने श्री शंखेश्वरगच्छीय सर्वदेवसूरि के सदुपदेश से जैन-धर्म अंगीकृत किया था। उसके पश्चात् उसका पौत्र भाणजी, जो बना का पुत्र था वि० सं० ७६४ में राजा बना। भाण बड़ा प्रतापी राजा हुआ है। उसने गंगा तक अपने राज्य का विस्तार किया था।

भिन्नमाल में जैन राजा भाण द्वारा संघयात्रा और कुल-गुरुओं की स्थापना

'समराईच्चकहानीकर्त्ता-हरिभद्र जैन परम्परा प्रमाणे विक्रम संवत् ५८५ मां अथवा वीर संवत् १०५५ मां एटले ई० स० ५२६ मां काल पाम्या। आवी जैन मान्यता ई० स० ना १३ मां सैकानी शरुआत थी नजरे पड़े छे। छतां आ तारीख खोटी ठरावामां आवी हती, कारण के ई० स० ६५० मां थयेला धर्मकीर्तिना तात्त्विक विचारो थी हरिभद्र परिचित हता।' उद्योतन नो 'कुवलयमाला' नाम नो प्राकृतग्रंथ शक संवत् ७०० ना छेल्ले दिवसे एटले ई० स० ७७६ ना मार्च नी २१ मी तारीखे पुरो पाड़वामां आव्यो हतो। 'आ ग्रंथनी प्रशस्ति मां उद्योतन हरिभद्र ने पोताना दर्शनशास्त्र नां गुरु तरीके जणावे छे।' आ ऊपर थी आपणे ए समय, अगर ई० स० ७५० के ते पछीनो समय एमना सात्तरजीवन तरीके लई शकिये-मु०जि०वि०

—जै० सा० सं० खं० ३ अङ्क ३ पृ० २८३-८४.

भीलवाड़ा नगर से दक्षिण में लगभग ५ मील के अन्तर पर अभी भी पुर नामक छोटा कस्बा है। गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा आदि कुछ विद्वान् इस ही पुर से प्राग्वाटज्ञाति की उत्पत्ति के होने का अनुमान करते हैं। मेरे अनुमान से अगर 'पुर' से अजैनों को जैन बना कर प्राग्वाटवर्ग में सम्मिलित किया भी गया हो तो सम्भव है कि यह कार्य श्री हरिभद्रसूरि द्वारा ही सम्पन्न हुआ होगा, क्योंकि वे 'पुर' से थोड़ी दूरी पर स्थित चित्तौड़गढ़ के निवासी थे और मालवा, राजस्थान और विशेषतः मेवाड़ में उनका अधिक विहार हुआ था।

हरिभद्रसूरि ने अजैनों को ई० सन् की आठवीं शताब्दी में जैन बना कर उनको प्राग्वाट-श्रावकवर्ग में सम्मिलित किया, इससे एक आशय यह निकलता है कि मालवा और मेवाड़ में अवश्यमेव श्रीमालवर्ग, ओसवालवर्ग की अपेक्षा प्राग्वाटवर्ग का अधिक प्रभाव था। इससे यह और सिद्ध हो जाता है कि अर्बुदाचल से लेकर गोडवाड़ (गिरिवाड़) तक का प्रदेश पुर-जिले से मिला हुआ था और वह प्राग्वाटप्रदेश ही कहा जाता था। गुप्तवंश के राज्य में समूचा राजस्थान सम्मिलित था। बहुत सम्भव है पुर-जिला प्राग्वाटप्रदेश में उस समय में रहा हो। मेदपाट (मेवाड़) को प्राग्वाटप्रदेश भी कहा जाता था, ऐसा कई स्थलों पर लिखा मिलता है।

श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के द्वितीय भाग में संवत् १९७८ में एक लेख लिखा है और करन-बेल के एक शिलालेख के आधार पर मेदपाटप्रदेश का दूसरा नाम प्राग्वाटप्रदेश होना भी माना है। उक्त लेख के एक श्लोक में मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा हंसपाल, वैरीसिंह के नाम आते हैं और उनको प्राग्वाटप्रदेश का राजा होना लिखा है।

'प्राग्वाटे धनिपाल-भालतिलकः श्रीहंसपालो भवत्तस्माद्। भूभृत्सुदसुत सत्यसमितिः श्री वैरिसिंहाभिधः ॥

आप रोहिड़ा से ता० १०-१-१९४७ के कार्ड में लिखते हैं, 'प्राग्वाट' शब्द की उत्पत्ति मेवाड़ के पुर शब्द से है। 'पुर' से 'पुरवाड़' और 'पौरवाड़' शब्दों की उत्पत्ति हुई। 'पुर' शब्द मेवाड़ के पुर-जिले का सूचक है और मेवाड़ के लिये 'प्राग्वाट' शब्द भी लिखा मिलता है।'

आचार्यश्री से निवेदन किया। आचार्य ने कहा कि अगर तुम सपरिवार श्रावकधर्म को अंगीकृत करो और कुरजी को हमको शिष्य रूप से अर्पित करो तो तुम्हारा पुत्र स्वस्थ और चिरंजीव बन सकता है। नाना ने आचार्यश्री के कथन को मानकर जैनधर्म स्वीकार किया और कुरजी को स्वस्थ होने पर दीक्षा देने का वचन दिया। आचार्यश्री ने मंत्रबल से सिकोतरीदेवी को कुरजी के शरीर से बाहिर निकाल दिया। कुरजी का अब स्वास्थ्य दिन-दिन सुधरने लगा और थोड़े ही दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

कुरजी जब पूर्ण स्वस्थ हो गया तो आचार्यश्री ने उसको भागवतीदीक्षा देने का विचार किया। कुरजी का विवाह स्थानीय किसी श्रेष्ठि की कुमारी से होना निश्चित हो चुका था। जब कुरजी की दीक्षा देने के समाचार उक्त कुमारी को प्राप्त हुये, वह उपाश्रय में आचार्यश्री के समक्ष जाकर प्रार्थना करने लगी कि कुरजी उसका भविष्य में पति बनने वाला है, उसको अतः दीक्षा देना मुझ निरपराध बाला पर अन्याय करना है। इस पर आचार्यश्री ने उक्त कुमारी से कहा कि उसका रोग श्रावकधर्म स्वीकार करने से दूर हो गया है, अतः अगर वह भी और उसके माता, पिता सपरिवार श्रावकधर्म स्वीकार करें, तो कुरजी को दीक्षा नहीं दी जावेगी और उसको उसके माता-पिता को पुनः अर्पित कर दिया जावेगा। कुमारी ने उक्त बात से अपने माता-पिता को अवगत किया। कुमारी का पिता भी जैनधर्म का श्रद्धालु और अत्यन्त धनी और महाप्रभावक पुरुष था। उसने तुरन्त जैनधर्म अंगीकृत करना स्वीकार किया। १ पारायणगोत्रीय श्रेष्ठि नाना, २ पुष्पायनगोत्रीय श्रे० माधव, ३ अग्नियगोत्रीय श्रे० जूना, ४ वच्छसगोत्रीय श्रेष्ठि माणिक, ५ कारिसगोत्रीय श्रे० नागड़, ६ वैश्यकगोत्रीय श्रे० रायमल्ल ७ माढ़रगोत्रीय श्रे० अनु इन सातों पुरुषों ने अपने सातों परिवारों के सहित एक साथ जैनधर्म स्वीकार किया। आचार्यश्री ने उनको वि० सं० ७९५ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को जैन बनाया और उनको प्राग्वाट-श्रावकवर्ग में सम्मिलित किया।

राजस्थान की अग्रगण्य कुछ पौषधशालायें और उनके प्राग्वाटज्ञातीय श्रावककुल

सेवाड़ी की कुलगुरु-पौषधशाला

गोडवाड़-प्रान्त का सेवाड़ी ग्राम बालीनगर से थोड़े कोशों के अन्तर पर ही बसा हुआ है। यहाँ की पौषधशाला* राजस्थान की अधिक प्राचीन पौषधशालाओं में गिनी जाती है। इस पौषधशाला के भट्टारकों के आधिपत्य में ओसवाल और प्राग्वाट ज्ञाति के कई एक कुलों का लेखा है। जिनमें प्राग्वाटज्ञाति के संख्या में चौदह (१४) गोत्र हैं। इन गोत्रों के कुल अधिकांशतः गोडवाड़प्रान्त के बाली और देसूरी के प्रगणों में बसते हैं। कुछ के परिवार अन्य प्रांतों में भी जाकर बस गये हैं और कुछ नामशेष भी हो गये हैं।

४–वि० सं० १७४३ में श्री अमरसागरसूरि ने चौथा भाग लिखा।
५–वि० सं० १८२८ में सूरत में उपा० ज्ञानसागरजी ने पांचवां भाग लिखा।
६–वि० सं० १९८४ में मुनि धर्मसागरजी ने छट्ठा भाग लिखा।
**गोत्रों की सूचि उक्त पौषधशाला के भट्टारक कुलगुरु मणिलालजी के सौजन्य से प्राप्त हुई है।*

१–कासिंद्रागोत्र चौहाण, २–कुंडलगोत्रीय देवड़ा चौहाण, ३–हरणगोत्र चौहाण, ४–चन्द्रगोत्र परमार
५–कुंडालसागोत्र चौहाण, ६–तुंगीयानागोत्र चौहाण, ७–कुंडलगोत्रीय, ८–अग्निगोत्रीय,
९–डीडोलचागोत्रीय, १०–आनन्दगोत्रीय, ११–विशालगोत्रीय, १२–बावरेचा चौहाण,
१३–गोतगोत्र, १४–धारगोत्रीय ।

उक्त गोत्रों के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुषों का प्रतिबोध-समय विक्रम की सातवीं शताब्दी से पूर्व की शताब्दियों के वर्ष बतलाये जाते हैं ।

घाणेराव नाम का नगर मरुधरप्रान्त के गोडवाड़ (गिरिवाट) नामक भाग में बसा हुआ है । यहाँ एक कुलगुरु-पौषधशाला विद्यमान है ।* यह इस प्रान्त की प्राचीन शालाओं में गिनी जाती है । यह पौषधशाला अभी कुछ वर्ष पूर्व हुये भट्टारक किस्तूरचन्द्रजी के नाम के पीछे श्री भट्टारक किस्तूरचन्द्रजी की पौषधशाला कहलाती है । इस पौषधशाला के भट्टारक ओसवाल एवं प्राग्वाट-ज्ञाति के कई एक श्रावककुलों के कुलगुरु हैं । इनके आधिपत्य में प्राग्वाट-ज्ञातीय निम्नलिखित २६ (छब्बीस) गोत्रों का लेखा है:—

घाणेराव की कुलगुरु-पौषधशाला

१ भडलपुरा सोलंकी, २ वाड़ेलिया सोलंकी, ३ कुम्हारगोत्र चौहाण, ४ भुरजभराणिया चौहाण,
५ दुगड़गोत्र सोलंकी, ६ मुदड़ीया काकगोत्र चौहाण, ७ लांबगोत्र चौहाण, ८ ब्रह्मशांतिगोत्र चौहाण,
९ वड़वाणिया पंडिया, १० वड़ग्रामा सोलंकी, ११ अंबावगोत्र परमार, १२ पोसनेचा चौहाण,
१३ कच्छोलियावाल चौहाण, १४ कासिद्रगोत्र तुमर, १५ साकरिया सोलंकी, १६ ब्रह्मशांतिगोत्र राठोड़ ।

इन उपरोक्त सोलह गोत्रों के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुषों का प्रतिबोध-समय विक्रम की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ के वर्ष बतलाये जाते हैं ।

१७ कासवगोत्र राठोड़	१८ मणाडिया सोलंकी	१९ स्याणवाल गहलोत
२० जावगोत्र चौहाण	२१ हेरुगोत्र सोलंकी	२२ निवजिया सोलंकी
२३ तवरेचा चौहाण	२४ बूटा सोलंकी	२५ सीपरसी चौहाण

इन ग्यारह गोत्रों के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुषों का प्रतिबोध-समय विक्रम की दशमी शताब्दी के प्रारम्भ के वर्ष बतलाये जाते हैं ।

२६ खिमाणदी परमार—इस गोत्र के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुष का प्रतिबोध-वर्ष विक्रम की बारहवीं शताब्दी के चतुर्थ भाग में बतलाया गया है ।

यद्यपि आज के युग में जैनयति वैसे तेजस्वी और प्रसिद्ध विद्वान् नहीं भी हों, परन्तु उनका मंत्रबल तो आज भी माना जाता है और अनेक रोग उनके मंत्रबल से दूर होते सुने गये हैं । जब कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य के प्रबल विरोध के फलस्वरूप और उनको राजाश्रय जो प्राप्त हुआ था, उसके कारण जब स्थल २ ग्राम, नगर में लोग पुनः वेदमत अथवा वैष्णवधर्म स्वीकार करने लगे, उस समय जैनाचार्यों ने मंत्रबल, देवी-सहाय एवं चमत्कार-प्रदर्शन की विद्याओं का सहारा लेकर श्रावककुल की अन्यमती बनने से बहुत अंशों में रक्षा की थी और कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य के मरण पश्चात् पुनः अनेक अन्यमती नये कुलों को श्रावकधर्म में दीक्षित किया था, यह बात प्रत्येक जैन, अजैन इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं ।

* *इन गोत्रों की सूची मणिलालजी के सौजन्य से प्राप्त हुई है ।*

इन गोत्रों के कुल अधिकतर गोडवाड़, जालोर के प्रगणों में ही बसते हैं। कई एक कुलों के गोत्र मालवा, गुजरात के प्रसिद्ध नगरों में भी जाकर बस गये हैं।

सिरोही की कुलगुरु-पौषधशाला

सिरोही (राजस्थान) में एक मड़ाहड़गच्छीय कुलगुरु-पौषधशाला विद्यमान है।[१] इस पौषधशाला के भट्टारक ओसवाल एवं प्राग्वाटज्ञाति के कई एक श्रावककुलों के कुलगुरु हैं। इनके आधिपत्य में प्राग्वाट-ज्ञातीय निम्नलिखित ४२ (बयालीस) गोत्रों का लेखा है। इन गोत्रों के कुल अधिकांशतः सिरोही-राज्य में और मारवाड़ (जोधपुर) राज्य के गोडवाड़ (बाली और देसूरी-प्रगणा), जालोर, भिन्नमाल, जसवन्तपुरा, गढ़सिवाणा के प्रगणों में बसते हैं। कुछ कुल मालवान्तर्गत के रतलाम, धार, देवास जैसे प्रसिद्ध नगरों और उनके प्रगणों में भी रहते हैं।

१ वांकरिया चौहाण	२ विजयानन्दगोत्र परमार	३ गौतमगोत्रीय	४ स्वेतविर परमार
५ धुणिया परमार	६ विमलगोत्र परमार	७ रत्नपुरिया चौहाण	८ पोसीत्रागोत्रीय
९ गोयलगोत्रीय	१० स्वेतगोत्र चौहाण	११ परवालिया चौहाण	१२ कुंडलगोत्र परमार
१३ ऊड़ेचागोत्र परमार	१४ भुणशखा परमार	१५ मंडाड़ियागोत्रीय	१६ गूर्जरगोत्रीय
१७ भीलड़ेचा बोहरा	१८ नवसरागोत्रीय	१९ रेवतगोत्रीय	२० डमालगोत्रीय
२१ नागगोत्र बोहरा	२२ वर्द्धमानगोत्र बोहरा	२३ डणगोत्र परमार	२४ विशाला परमार
१५ बीवलेचा परमार	२६ माढ़रगोत्रीय	२७ जावरिया परमार	२८ दताणिया परमार
२९ सांडवाड़ा चौहाण	३० काकरेचा चौहाण	३१ नाहरगोत्र सोलंकी	३२ बोराराठोड़ मंडलेचा
३३ कुसारगोत्रीय	३४ धीणोलिया परमार	३५ मलाणिया परमार	३६ कासवगोत्र परमार
३७ वसन्तपुरा चौहाण	३८ नागगोत्र सोलंकी		

इन उपरोक्त अड़तीस गोत्रों के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुषों का प्रतिबोध-समय विक्रम की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ के वर्ष बतलाये जाते हैं।

३९ आंबलगोत्र कोठारी	४० बाचागोत्रीय	४१ बोरागोत्रीय	४२ कोलरेचागोत्रीय

इन चार गोत्रों के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुषों का प्रतिबोध-समय जिनमें, प्रथम एक का विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में और शेष तीन के वर्ष बारहवीं शताब्दी में बतलाये जाते हैं।

बाली की कुलगुरु-पौषधशाला

बाली नामक नगर मरुधरप्रदेश के गोडवाड़ (गिरिवाट) नामक प्रान्त में बसा हुआ है। यहाँ भी एक कुलगुरु-पौषधशाला विद्यमान है।[२] इस पौषधशाला के भट्टारक ओसवाल और प्राग्वाटज्ञाति के कई एक श्रावककुलों के कुलगुरु हैं। इनके आधिपत्य में प्राग्वाटज्ञातीय निम्नलिखित ८ (आठ) गोत्रों का लेखा है। इन गोत्रों के कुल भी अधिकतर बाली, देसूरी के प्रगणों में ही बसते हैं।

१–उक्त गोत्रों की सूची उक्त पौषधशाला के भट्टारक कुलगुरु श्री रत्नचन्द्रजी के सौजन्य से प्राप्त हुई है।
२–गोत्रों की सूची उक्त पौषधशाला के भट्टारक कुलगुरु मियाचन्द्रजी के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

१ रावलगोत्रीय, २ अंबाईगोत्रीय, ३ ब्रह्मशांतागोत्रीय चौहाण

इन तीनों गोत्रों के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुषों का प्रतिबोध-समय विक्रम की दशवीं शताब्दी के प्रारम्भ के वर्ष बतलाये जाते हैं :—

४ जैसलगोत्र राठोड़, ५ कासवगोत्र, ६ नीवगोत्र चौहाण, ७ सांकरिया चौहाण, ८ फलवधागोत्र परमार।

इन पाँचों गोत्रों के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले मूलपुरुषों का प्रतिबोध-समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के वर्ष बतलाये जाते हैं।

प्राग्वाट अथवा पौरवालज्ञाति और उसके भेद

प्राग्वाटश्रावकवर्ग आज पौरवालज्ञाति कहलाता है। प्राग्वाटश्रावकवर्ग की उत्पत्ति भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् लगभग ५७ (५२) वर्ष श्री पार्श्वनाथ-संतानीय श्रीमत् स्वयंप्रभसूरि ने भिन्नमाल और पद्मावती में की थी। श्रीमालश्रावकवर्ग की भी उत्पत्ति उक्त आचार्य ने उस ही समय में की थी। इन आचार्य के निर्वाण पश्चात् श्रावकवर्ग की उत्पत्ति और वृद्धि का कार्य परचाद्वर्ती जैनाचार्यों ने बड़े वेग से उठाया और वह बराबर वि० सं० पूर्व १५० वर्ष तक एक-सा उन्नतशील रहा। गुप्तवंश की अवंती में सत्ता-स्थापना से वैदिकमत पुनः जाग्रत हुआ। अब जहाँ अजैन जैन बनाये जा रहे थे; वहाँ जैन पुनः अजैन भी बनने लगे। जैन से अजैन बनने का और अजैन से जैन बनने का कार्य वि० सातवीं-आठवीं शताब्दियों में उद्भटविद्वान् कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य के वैदिक-उपदेशों पर और उधर जैनाचार्यों के उपदेशों पर दोनों ही ओर खूब हुआ। रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य के वैष्णवमत के प्रभावक उपदेशों से अनेकों जैनकुल वैष्णव हो गये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वैश्यवर्गों में भी धीरे २ वैदिक और जैनमत दोनों को मानने वाले दो सुदृढ़ पक्ष हो गये। उसी का यह फल है कि आज भी वैष्णव पौरवाल और जैन पौरवाल, वैष्णव खंडेलवाल और जैन खंडेलवाल, वैष्णव अग्रवाल और जैन अग्रवाल विद्यमान

प्राग्वाट अथवा पौरवालवर्ग का जैन और वैष्णव पौरवालों में विभक्त होना

अन्य कई एक पौषधशालाओं से भी इस सम्बन्ध में निरन्तर पत्रव्यवहार किये; परन्तु अनेक ने गोत्रों की सूची नहीं दी। अतः अधिक प्रकाश डालने में विवशता ही है।

सेवाड़ी, घाणेराव और बाली तीनों ही राजस्थान के मरुधरप्रान्त के विभाग गोड़वाड़ (गिरिवाड़) के प्रमुख एवं प्राचीन नगर हैं। सिरोही अपने राज्य की राजधानी रही है। ये चारों ही ग्राम, नगर भूतकाल में प्राग्वाटप्रदेश के नाम से विश्रुत रहे क्षेत्र में ही बसे हुये हैं। अतः प्राग्वाट-श्रावककुलों का विवरण रखने वाली इन पौषधशालाओं का प्राग्वाट-इतिहास की दृष्टि से महत्त्व बढ़ जाता है।

'प्राग्वाट' शब्द के स्थान में 'पौरवाल' शब्द का प्रयोग कब से चालू हुआ यह कहना अति ही कठिन है। ठेट से 'प्राग्वाट' लिखने में और 'पौरवाल' बोलचाल में व्यवहृत हुआ है। लेखक पण्डित और विद्वान् होते हैं और बोलचाल करने वाले पण्डित और

हैं इसी प्रकार प्राग्वाटवर्ग भी दोनों मतों में विभक्त हो गया। जैन पौरवाल और वैष्णव पौरवाल दोनों विद्यमान हैं।

भगवान् महावीर के निर्वाण पश्चात् और ईसवी शताब्दी आठवीं के मध्यवर्ती समय में अर्थात् हरिभद्रसूरि के युगप्रधानपद तक बने हुये जैन और जैनकुल, जैसा लिखा जा चुका है ई० सन् से पूर्व लगभग तीन सौ वर्षों तक तो प्रथम संख्या में बढ़ते ही गये; परन्तु पश्चाद्वर्त्ती वर्षों में घटने लगे और बीस कोटि की संख्या से ७ या ६ कोटि ही रह गये। जैसा पूर्व लिखा जा चुका है कि श्रावक अथवा जैनकुल वे ही कुल बनाये गये थे, जिनकी उच्चवृत्ति थी और जैनधर्म जैसे कठिन धर्म को कुलमर्यादा-पद्धति से पाल सकते थे अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्गों में से प्रतिबोध पाये हुये वे जैनकुल बने थे। अब यह कहना अति ही कठिन है कि वर्तमान् जैन वैश्यसमाज के अन्तर्गत जो कुल विद्यमान हैं, उनमें कौन २ कुल उनकी सन्तानें हैं। प्राचीनतम शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों और कुलगुरुओं की ख्यातों के प्रामाणिक अंशों से तो वर्तमान् जैनकुलों में विक्रम की पाँचवीं-छट्ठी शताब्दी से पूर्व जैन बने हुये कुल कठिनतया ही देखने में आते हैं अर्थात् अधिकांशतः बाद में जैन बने कुलों के वंशज हैं। बाद में जैन बने कुलों अथवा गोत्रों की ख्यातें प्रायः उपलब्ध हैं। इन ख्यातों में लिखे हुये वर्णनों की सत्यता में इतिहासकार कुछ कम विश्वास करते हैं, परन्तु फिर भी इतना तो नहीं माना जायगा कि सब ही ख्यातों का एक-एक अक्षर ही झूठ है। घटनाओं का वर्णन भले ही बढ़ा-चढ़ाकर किया गया हो, परन्तु व्यक्तियों का नाम निर्देश और समय तथा वर्षों के अंकन सर्वथा कल्पित तो नहीं हैं।

किन २ कुलों से वर्तमान् जैन प्राग्वाटवर्ग की उत्पत्ति हुई

उपलब्ध चरित्र, ताम्रपत्र, प्रशस्ति, शिलालेखों से, ख्यातों से और वर्तमान जैनकुलों के गोत्रों के नामों से तथा उनके रहन-सहन, संस्कार, संस्कृति, आकृति, कर्म, धन्धों से स्पष्टतया और पूर्णतया सिद्ध है कि ये कुल वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणकुलोत्पन्न हैं।

जैसा लिखा जा चुका है कि मूल में जैनसमाज एक वर्णविहीन अथवा ज्ञातिविहीन संस्था है। आज इसमें भी अनेक श्रावकदल हैं, जो ज्ञातियाँ कहलाते हैं, परन्तु इन श्रावकदलों के कुलों ने मूलवर्ण अथवा ज्ञाति का परित्याग करके जैनधर्म स्वीकार किया था यह स्मरण रखने की वस्तु है। वैष्णव-ज्ञातियों के अनुसार इन श्रावकदलों ने भी कालान्तर में धीरे २ वैसे ही ज्ञाति के नियमों को स्वीकार करके अपनी २ सचमुच आज ज्ञाति बनाली हैं। ऐसे श्रावकदलों में प्राग्वाट-

ज्ञाति, गोत्र और अटक तथा नखों की उत्पत्ति और उनके कारणों पर विचार

अनपढ़ दोनों हैं। विद्वान् एक समय में होवे और अनपढ़ दूसरे समय में ऐसा आज तक नहीं सुना गया। दोनों देह-छाया की तरह साथ ही साथ रहते, जीते, बसते हैं। अतः मेरी सम्मति में दोनों शब्दों का व्यवहार भी साथ-साथ ही होता रहा है। प्राग्वाट 'शब्द' का व्यवहार लेखनकला का आधार पाकर प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों के द्वारा अपने प्रयोग की यथाप्राप्त तिथियों की सूचि दे सकता है। 'पौरवाल' शब्द बोलचाल में प्रयुक्त हुआ है, अतः उसके प्रयोग की तिथियों की सूची तैयार नहीं की जा सकती। कुतर्क को यहां स्थान नहीं है कि आज पौरवाल कहे जाने वाले 'प्राग्वाट' लिखे गये व्यक्तियों से भिन्न ज्ञातीय हैं। 'प्राग्वाट' संस्कृत शब्द है और 'पौरवाल' शब्द बोलचाल का है। दोनों के अन्तर का यही कारण है; बाकी दोनों शब्द एक ही वर्ग अथवा ज्ञाति के परिचायक अथवा नाम हैं और यह निर्विवाद है तथा दोनों का प्रयोग भी साथ-साथ होता आया है—एक का विद्वानों द्वारा और दूसरे का सर्व साधारणजन द्वारा।

'पौरवाल' शब्द राजस्थानी में मारवाड़ी भाषा का शब्द है। इससे यह और सिद्ध है कि पौरवालज्ञाति का राजस्थान से घनिष्ट ही नहीं उसकी उत्पत्ति से गहरा सम्बन्ध रहा हुआ है।

श्रावकदल भी एक है, जो आज प्राग्वाट-ज्ञाति कहलाता है। यह श्रावकदल अनेक विभिन्न २ उच्च कुलों का समुदाय है। इसके अधिकांश कुल वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण ज्ञातियों में से बने हैं। इसके वंशों एवं कुलों के गोत्रों के नाम अपने २ मूलक्षत्रिय-गोत्र अथवा ब्राह्मण-गोत्रों के नामों पर ही पड़े हुये हैं। जैसे प्राग्वाटज्ञातीय-काश्यप-गोत्रीय, चौहानवंशीय। फिर कुलों की अटकें भी बनी हुई हैं, जिनकी उत्पत्ति के कई एक विभिन्न कारण हैं। एक वंश से उत्पन्न कुलों की भी कई भिन्न २ अटकें हैं। जैसे 'सोलंकी-वंश' के कई कुलों ने भिन्न २ समय, परिस्थिति, स्थान पर भिन्न २ जैनाचार्यों द्वारा प्रतिबोध प्राप्त करके जैनधर्म स्वीकार किया तो उनमें किसी कुल की अटक प्रसिद्ध मूलपुरुष, जिसने अपने कुल में सर्व प्रथम जैनधर्म सपरिवार स्वीकार किया था के नाम पर पड़ी, जैसे 'बूटासोलंकी' अर्थात् जैनधर्म स्वीकार करने वाला मूलपुरुष सोलंकीवंशीय बूटा था तो 'सोलंकी' गोत्र रहा और 'बूटा' अटक पड़ गई। किसी कुल की, जिस ग्राम में अथवा स्थान पर उसने जैनधर्म स्वीकार किया था उस ग्राम के नाम पर, जैसे 'बड़गामा सोलंकी' अर्थात् इस कुल ने बड़ग्राम में जैनधर्म स्वीकार किया अतः 'बड़गामा' अटक हुई। इसी प्रकार 'निम्बजिया सोलंकी'—इस कुल ने नीमवृक्ष के नीचे प्रतिबोध ग्रहण किया था, अतः यह कुल इस 'निम्बजिया' अटक से प्रसिद्ध हुआ। ऐसे ही अन्य कुलों की अटकों की भी उत्पत्तियाँ हुई। नखों की उत्पत्ति प्रायः धंधों पर पड़ी है, जैसे सुगन्धित द्रव्यां इत्तरादि का धन्धा करने से 'गांधी' नख उत्पन्न हुई।

आज प्राग्वाटज्ञाति को हम गुजरात, सौराष्ट्र (काठियावाड़), मालवा, मध्यभारत, राजस्थान आदि प्रायः भारत के मध्यवर्ती सर्व ही प्रदेशों, प्रान्तों में बसती हुई देखते हैं। इस ज्ञाति के लोग उक्त भागों में अपने मूलस्थानों से विभिन्न २ समयों में विभिन्न कारणों से, सम-विषम-परिस्थितियों के वशीभूत हो कर उनमें जाकर बसे हैं और कई एक कुल तो उनमें वहीं उत्पन्न हुये हैं।

प्राग्वाटज्ञाति में शाखाओं की उत्पत्ति.

किसी भी ज्ञाति के कुल अथवा उसके अनेक कुलों का समुदाय जब अपने मूल जन्मस्थान अथवा कई शताब्दियों के निवासस्थान का त्याग करके अन्य किसी नवीन भिन्न प्रांत, प्रदेश में जा कर अपना स्थायी निवास बनाता है, उस दूसरे प्रांत, प्रदेश का नाम भी उन कुलों की ज्ञाति के नाम के साथ में कभी २ जुड़ जाता है।

प्राग्वाट-श्रावकवर्ग ठेट से समृद्ध और व्यापार-प्रधान रहा है। सम-विषम एवं अति कठिन और भयंकर परिस्थितियों में अतः इस ज्ञाति के कुलों को अपना कई वर्षों का वास त्याग करके अन्यत्र जा कर बसना पड़ा है। मूलस्थान में रही हुई ज्ञाति के कुलों में और अन्य प्रान्त में जाकर स्थायी वास बना लेने वाले उस ज्ञाति के कुलों में कुछ पीढ़ियों तक तो परिचय बना रहता है; परन्तु धीरे २ वह धीमा पड़ने लगता है और अंत में अन्य प्रांत में जाकर बसने वाले कुलों का समुदाय एक अलग शाखा का रूप और नाम धारण कर लेता है और वह प्रसिद्ध बन जाता है।

प्राग्वाटज्ञाति इस प्रकार पड़ी हुई निम्न प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध शाखाओं में विभक्त देखी जाती है। जिनमें केवल भोजन-व्यवहार होता है, कन्या-व्यवहार बिलकुल नहीं। कन्या-व्यवहार कब से बंद हुआ, यह कहना अति ही

गोत्र, अटक, नखों के आगे के पृष्ठों में विस्तृत वर्णन मिलेंगे, अतः यहाँ इनकी सूची देना अथवा इन पर यहीं लिख जाना अनावश्यक है।

कठिन है। इतना अवश्य है कि जब अन्य वर्णों एवं वर्गों की पेटाज्ञातियों की अन्तरशाखाओं में परस्पर कन्या-व्यवहार बन्द होने लगा होगा। उस समय के आस-पास प्राग्वाटज्ञाति की शाखाओं में भी वह बन्द हुआ समझना चाहिये।

१ सौरठिया-पौरवाल	२ कपोला-पौरवाल	३ पद्मावती-पौरवाल
४ गूर्जर-पौरवाल	५ जांगड़ा-पौरवाड़	६ नेमाड़ी और मलकापुरी-पौरवाल
७ मारवाड़ी-पौरवाल	८ पुरवार	९ परवार

सौरठिया और कपोला-पौरवाल

●

इस ज्ञाति के कौन कुल और कब किस-किस प्रदेश, प्रान्त में जाकर बसे, इतिहास में इसकी कोई निश्चित तिथि और संवत् उपलब्ध नहीं है। भिन्नमाल गूर्जरदेश का पाटनगर रहा है और यह नगरी तथा प्राग्वाट-प्रदेश गूर्जरभूमि से जुड़ा हुआ है। सम-विषम परिस्थितियों में एक-दूसरे प्रान्तों में जाकर कुल बसते रहे हैं। अवंती-सम्राट् नहपाण की मृत्यु के पश्चात् उसके दामाद ऋषभदत्त ने जब जूनागढ़ को भिन्नमाल के स्थान पर अपनी राजधानी नियुक्त किया था, तब और विक्रम की तृतीय, आठवीं शताब्दी और बारहवीं शताब्दी के (११११) प्रारम्भ के वर्षों में भिन्नमाल और प्राग्वाट-प्रदेश के ऊपर बाहर की ज्ञातियों के भयंकर आक्रमण हुये तब भिन्नमाल, पद्मावती तथा प्राग्वाटदेश के अन्य स्थानों से कुलों के दल के दल अपने जन्मस्थान का परित्याग करके मालवा, सौराष्ट्र, गुजरात में जाकर बसे हैं।

ऊपर की पंक्तियों से इतना ही आशय यहाँ ले सकते हैं कि प्राग्वाट-प्रदेश तथा भिन्नमाल के ऊपर जब जब आक्रमण हुये तथा राज्यपरिवर्तन हुआ, इन स्थानों से तब-तब अनेक कुल अन्य स्थानों में जा-जा कर बसे हैं। उन बसने वालों में प्राग्वाट-ज्ञातीयकुल भी थे। जो प्राग्वाट-ज्ञातीयकुल सौराष्ट्र एवं कुंडल-महास्थान में जाकर स्थायी रूप से बस गये थे, वे आगे जाकर सौराष्ट्रीय अथवा सौरठिया-पौरवाल और कुण्डलिया तथा कपोला-पौरवाल कहलाये। मेरे अनुमान से सौराष्ट्र और कुण्डल में जो अभी सौरठिया, कपोला-पौरवालों के कुल बसे हुये हैं, वे विक्रम की आठवीं शताब्दी के पश्चात् जाकर वहाँ बसे हैं, जब कि अणहिलपुरपत्तन की वनराज चावड़ा ने नींव डाल कर अपने महाराज्य की स्थापना की थी और निन्नक को जो पौरवालज्ञातीय था अपना महामात्य बनाया

खलीफा हसन के समय सिंध के हाकिम जुनेदे ने भिन्नमाल पर आक्रमण किया था।
—'सुधा' वर्ष २ खण्ड १ सं० १ श्रावण पृ० ६

'गालवा स्थापिता ह्यते गालवाः सन्तुनामतः। तत्रापि कपोलाख्याः कपोलाद्भुतकुण्डलाः ॥
प्राग्वाटाः सुरभिख्याता गुरुदेवार्चने रताः। येषां प्राग्वाटा भवेद्वाड़ो (?) महीपस्थापनात्मकः ॥
ते प्राग्वाटा अभिज्ञेयाः सौराष्ट्रा राष्ट्रवर्द्धनाः।'....... ....
—स्कंधपुराण

था। भिन्नमाल और प्राग्वाटदेश पर वि० सं० ११११ में यवनों का भयंकर आक्रमण हुआ था और उन्होंने भिन्नमाल और उसके आस-पास के प्रदेश को सर्वनष्ट कर डाला था, उस समय अनेक श्रावककुल अपने जन-धन का बचाव करने के हेतु मूलस्थानों का त्याग करके गुजरात, सौराष्ट्र और मालवा में जाकर बसे थे। जो प्राग्वाट-ज्ञातीय थे वे आज गूर्जर-पौरवाल, सौरठिया-पौरवाल, मालवी-पौरवाल कहे जाते हैं। उनको वहाँ जाकर बसे हुये आज नौ सौ वर्षों के लगभग समय व्यतीत हो गया है। उनका अपने मूलस्थान में रहे हुये अपने सज्ञातीयकुलों से आवागमन के सुविधाजनक साधनों के अभाव में सम्बन्ध कभी का टूट चुका था और वे अब स्वतन्त्र शाखाओं के रूप में सौरठिया-पौरवाल, कपोला-पौरवाल, गूर्जर-पौरवाल और मालवी-पौरवाल कहे जाते हैं। इन शाखाओं में प्रथम दो शाखाओं के नाम तो चिरपरिचित और प्रसिद्ध हैं और शेष दो शाखाओं के नाम कम प्रसिद्ध हैं।

गूर्जर-पौरवाल

गूर्जर-पौरवाल वे कहे जाते हैं, जो अहमदाबाद, पालनपुर, अणहिलपुर, धौलका आदि नगरों में इनके आस-पास के प्रदेश में बसे हुये हैं। ये कुल विक्रम की आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी के अन्तर में वहाँ जाकर बसते रहे हैं और इसका कारण एक मात्र यही है कि गूर्जर सम्राटों के अधिकतर महामात्यपदों पर और अन्य अति प्रतिष्ठित एवं उत्तरदायीपदों पर प्राग्वाटज्ञातीय पुरुष आरूढ़ होते रहे हैं। अकेले काश्यपगोत्रीय निन्नक के कुल की आठ पीढ़ियों ने वनराज चावड़ा से लगाकर कुमारपाल सम्राट् के राज्य-समय तक महामात्य-पदों पर, दंडनायक जैसे अति सम्मानित पदों पर रहकर कार्य किया है। महामात्य निन्नक, दण्डनायक लहर, धर्मात्मा मन्त्रीवीर, गूर्जर-महाबलाधिकारी विमल, गूर्जरमहामात्य—सरस्वतीकंठाभरण वस्तुपाल, उसका भ्राता महाबलाधिकारी दंडनायक तेजपाल जैसे प्राग्वाटवंशोत्पन्न अनेक महापुरुषों ने गूर्जर-सम्राटों की और गूर्जर-भूमि की कठिन से कठिन और भयंकर परिस्थितियों में प्राणप्रण एवं महान् बुद्धिमत्ता, चतुरता, भक्ति एवं श्रद्धा से सेवायें की हैं। गूर्जरभूमि को गौरवान्वित करने का, समृद्ध बनाने का, गूर्जरमहाराज्य की स्थापना करने का श्रेय इन प्राग्वाटज्ञातीय महापुरुषों को ही है, जिनके चरित्र गूर्जरभूमि के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे हुये हैं। इस प्रकार इन पांच सौ वर्षों के समय में प्राग्वाटज्ञातीय कुलों को गूर्जरभूमि में जाकर बसने के लिए यह बहुत बड़ा और सीधा आकर्षण रहा है। इन वर्षों में जो भी कुल जाकर गूर्जरभूमि में बसे वे अधिकांशतः अहमदाबाद, धौलका, अणहिलपुरपत्तन आदि प्रसिद्ध नगरों में और इनके आस-पास के प्रान्तों में बसे थे और वे अब गूर्जर-पौरवाल कहे जाते हैं, परन्तु 'गूर्जर-पौरवाल' नाम बहुत ही कम प्रसिद्ध है।

'ततो राजप्रसादान् समीपुरनिवासितो वणिजः प्राग्वाटनामानो बभूवः।
आद्यो शुद्धप्राग्वाटाः द्वितीया सुराष्ट्रगता किंचित् सौराष्ट्रप्राग्वाटाः
तदवशिष्टाः कुण्डलमहास्थाने निवासितोऽपि कुण्डलप्राग्वाटा बभूवः। —उपदेशमाला

प्रस्तुत इतिहास के पढ़ने से भलिभांति सिद्ध हो जायगा कि प्राग्वाटज्ञातीय पुरुषों ने गूर्जर-भूमि की किस श्रद्धा, भक्ति से सेवायें की हैं।

आज सौरठिया-पौरवाल, कपोला-पौरवाल एवं गूर्जर-पौरवाल शाखाओं के कुलों के गोत्र और कुलदेवियों के नाम विस्मृत हो गये हैं। कारण इसका यह है कि इन कुलों के कुलगुरुओं से इन कुलों का दूर प्रान्तों में जाकर बस जाने से संबंधविच्छेद कई शताब्दियों पूर्व ही हो चुका है और फलतः गोत्र बतलानेवाली और कुलों का वर्णन परंपरित रूप से लिखने वाली संस्थाओं के अभाव में गोत्रों और कुलदेवियों के नाम धीरे २ विस्मृत हो गये। उक्त प्रान्तों में बसनेवाले पौरवाल ही क्या अन्य जैनज्ञातियों के कुलों के गोत्र भी इन्हीं कारणों से विलुप्त हैं। कहावत भी प्रचलित है, 'गुजरात में गोत्र नहीं और मारवाड़ में छोत (छूत) नहीं' अर्थात् स्पर्शा-स्पर्श का विचार नहीं। विक्रम की चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी तक तो उक्त प्रान्तों में बसनेवाली शाखाओं के कुलों के गोत्र विद्यमान थे, तब ही तो पन्द्रहवीं शताब्दी में हुये अंचलगच्छीय मेरुतुंगसूरि अपने द्वारा लिखित अंचलगच्छ-पट्टावली के द्वितीय भाग में अनेक गोत्रों के नाम और उनके कुल कहाँ २, किन २ नगर, ग्रामों में बसते थे, का वर्णन लिख सके हैं।

मेरुतुंगसूरि द्वारा लिखी गई अञ्चलगच्छीय-पट्टावली में उक्त प्राग्वाटज्ञातीय शाखाओं में निम्न गोत्रों की विद्यमानता प्रकट की है।

१ गोतम,	२ सांस्कृत,	३ गार्ग्य,	४ वत्स,	५ पाराशर,	६ उपमन्यु,
७ वंदल,	८ वशिष्ठ,	९ कुत्स,	१० पौल्कश,	११ काश्यप,	१२ कौशिक,
१३ भारद्वाज,	१४ कपिष्ठल,	१५ सारंगिरि,	१६ हारीत,	१७ शांडिल्य,	१८ सनिकि,

अर्थात् अन्य गोत्र विलुप्त हो गये। विलुप्त गोत्रों में पुष्पायन, आग्नेय, पारायण, कारिस, वैश्यक, माढ़र प्रमुख हैं।

उक्त गोत्र अधिकतर ब्राह्मणज्ञातीय हैं। अतः यह सिद्ध स्वभाव है कि उक्त गोत्र वाले प्राग्वाटज्ञातीय कुलों की उत्पत्ति ब्राह्मणवर्ग के उक्त गोत्रवाले कुलों में से हुई है।

पद्मावती-पौरवाल

भिन्नमाल और उसके समीपवर्त्ती प्राग्वाट-प्रदेश पर वि० संवत् ११११ में जब भयंकर आक्रमण हुआ था, उस समय अपने जन-धन की रक्षा के हेतु इस शाखा के प्रायः अधिकांशतः कुल अपने स्थानों का त्याग करके मालवा प्रदेश में और राजस्थान के अन्य भागों में जा कर बसे थे। इस शाखा के कुलों की गोत्रजादेवी अंबिकादेवी है। नवविवाहिता स्त्री चार वर्ष पर्यन्त अंबिकादेवी का व्रत करती है और लाल कपड़े के उपर लक्ष्मी अथवा अंबिकादेवी की आकृति छपवा कर उसका पूजन करती है। इस शाखा के कुल राजस्थान में बूँदी और कोटा राज्य के हाडोती, सपाड़ और ढूढ़ाड़पट्टों में, इन्दौर और आस-पास के नगरों में अधिकांशतः बसते हैं। लगभग सौ वर्षों से कुछ कुल दक्षिण में बीड़शहर, परण्डानामक कस्बों में भी जा बसे हैं और वहीं व्यापार-धंधा करते हैं। इस शाखा में भी जैन और वैष्णव दोनों मतों के माननेवाले कुल हैं और उनमें भोजन-व्यवहार

और कन्या-व्यवहार निर्बाध होता है। जो जैन हैं, वे अधिकतर दिगम्बर-आमनाय के माननेवाले हैं, श्वेताम्बर-आमनाय के माननेवाले कुल इस शाखा में बहुत ही कम हैं। इस शाखा के कुलों के गोत्र पीछे से बने हैं, जहाँ बीसा-मारवाड़ी-पौरवाल, गूर्जर-पौरवालों के गोत्र उनके जैनधर्म स्वीकार करने के साथ ही उस ही समय निश्चित हुये हैं। चूँकि यह शाखा राजस्थान और मालवा में ही बसती है और राजस्थान और मालवा में कुलगुरुओं की पौषधशालायें ठेट से स्थापित रही हैं, फलतः इस शाखा का कुलगुरुओं से संबंध बराबर बना रहा है अतः इसके गोत्र और कुलदेवियों के नाम विलुप्त नहीं हो पाये हैं। इस शाखा के २८ अट्ठाईस गोत्र उपलब्ध हैं और नकी सत्रह कुलदेवियाँ हैं।

गोत्र	कुलदेवियाँ	गोत्र	कुलदेवियाँ	गोत्र	कुलदेवियाँ
१ यशलहा	सेहवंत	२ डंगाहड़ा	सेहवंत	३ कूचरा	सेहवंत
४ चरवाहदार	,,	५ ननकरया	,,	६ चौपड़ा	,,
७ सांपुरिया	,,	८ तवनगरिया	आशापुरी	९ कर्णजोल्या	आशापुरी
१० राहरा	आशापुरी	११ हिंडोणीयासद्दा	सांकिली	१२ आमोत्या	आंमण
१४ मंडावरिया	सोहरा	१४ लचटकिया	लूकोड	१५ समरिया	सिंहासिनी
१६ दुष्कालिया	वाणावती	१७ चौदहर्णा	दादिणी	१८ मोहरीवाल	यक्षिणी
१९ रोहल्या	नागिनी	२० धनवंता	नागिनी	२१ विहेड्या	विलीणी
२२ बोहचरा	कहाची	२३ पंचोली	पालिणी	२४ उर्जरघोल	पालिणी
२५ कुशणिया	पालिणी	२६ मूदारादा	लोहिणी	२७ अवेड़ा	दुःखाहरण
२८ मोहलसद्दा	वाणाकिनी				

जांगड़ा-पौरवाल अथवा पौरवाड़

पौरवाल और पौरवाड़ एक ही शब्द है। मालवा में कहीं 'ल' को 'ड़' करके भी बोला जाता है। यहाँ भी 'पौरवाल' के 'ल' को 'ड़' करके बोलने से मालवा-प्रान्त में 'पौरवाल' शब्द 'पौरवाड़' भी बोला जाता है।

जांगड़ा-पौरवाल शाखा को लघुसन्तानीय, दस्साभाई, लघुसज्जनीय भी कह सकते हैं; क्यों कि इस शाखा में केवल दस्सा पौरवाल ही हैं अर्थात् यह शाखा एक प्रकार से दस्सा अथवा लघुसन्तानीय कहे जाने वाले पौरवालकुलों का ही संगठन है। लघुसन्तानीय जब कोई शाखा अगर कही जा सकती है, तो बृहत् सन्तानीय भी कोई शाखा होनी चाहिए के भाव स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। और यह भी सिद्ध हो जाता है कि दोनों शाखायें एक ही ज्ञाति के दो पक्ष हैं अर्थात् लघुपक्ष और बृहत्पक्ष। यह तो निर्विवाद है कि जांगड़ा पौरवालों की शाखा के कुल सौरठिया, कपोलिया, मारवाड़ी, गूर्जर शाखाओं के कुलों के ही लघुसन्तानीय (भाई) हैं

इस शाखा के प्रथम जैनधर्म स्वीकार करने वाले कुलों की उत्पत्ति वि० संवत् की आठवीं शताब्दी में ही हुई थी। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक यह शाखा जैनधर्म ही मुख्यतया पालती रही। परन्तु जब बृहत्पक्ष और लघुपक्ष में अधिक घृणा के भाव बढ़ने लगे तो इस शाखा के अधिकांश कुलों ने रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य के प्रभावक व्याख्यानों एवं उपदेशों को श्रवण करके वैष्णवधर्म स्वीकार कर लिया और जैन से वैष्णव हो गये। अब तो इस शाखा में रामस्नेही-पंथ के अनुयायी भी बहुत कुल हैं। इस शाखा के लगभग १००० एक हजार घर नेमाड़प्रान्त में भी रहते हैं, वे सर्व जैन हैं, जिनके विषय में अलग लिखा जायगा।

जैसे अन्य शाखायें सौरठिया, कपोला, पद्मावती, गूर्जर कहलाती हैं यह लघुसन्तानीय शाखा जांगड़ा कहलाती है। जांगड़ा शब्द जंगल से बनता है। जंगल का विशेषणशब्द जंगली बनता है। राजस्थानी भाषा में जंगली को जांगडूस अथवा जांगड़ा कहते हैं। जांगड़ा शब्द अधिक प्रचलित है। कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि इस शाखा के ज्ञाति-नाम के साथ में जांगड़ा शब्द कब और क्यों प्रयुक्त हुआ। अनुमान से विचार करने पर इतना अवश्य समझ में आता है कि इस ज्ञाति को विषम परिस्थितियों का भयंकर सामना करना पड़ा है और अपने प्राण, धन, जन, मान की रक्षा के लिये सम्भव है जंगल में जीवन व्यतीत करना पड़ा है अथवा 'जंगल' नाम के किसी प्रदेश में रहना पड़ा है। बीकानेर के राजा की 'जंगल-धरबादशाह' उपाधि है। इस ज्ञाति के वृद्धजन एवं अनुभवी पुरुष कहते हैं कि इस ज्ञाति के अधिकांश घर पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग दिल्ली और जहानाबाद नगरों में और उनके आस-पास के ग्रामों में बसे हुये थे। ये घर वहाँ कब जाकर बसे और क्यों यह भी कहना उतना ही कठिन, जितना इस प्राग्वाटज्ञाति की अन्य शाखाओं के लिये अन्य प्रान्तों में जाकर बसने की निश्चित तिथि अथवा संवत् कहने के विषय में था। परन्तु इतना अवश्य सत्य है कि इस शाखा के घर विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक राजस्थान, गुजरात में बसे हुये थे।

जांगड़ा उपाधि कब और क्यों ग्रहण की गई

एक दन्तकथा ऐसी प्रचलित है कि सम्राट् अकबर के राज्यकाल में इस शाखा के कई घर दिल्ली में बसते थे। अकबर सम्राट् के लिये यह तो प्रसिद्ध ही है कि उसने भारत के प्रसिद्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकुलों से डोले लिये थे। इस शाखा के एक अति प्रतिष्ठित, कुलवंत श्रीमन्त सज्जन दिल्ली में रहते थे। उनकी एक परम रूपवती कन्या का किसी वर्ष में विवाह हो रहा था। किसी प्रकार सम्राट् अकबर ने उस रूपवती कन्या को देख लिया और कन्या के पिता से उस कन्या का डोला माँगा। कुमारी कन्या का डोला भी जहाँ यवनों को देना बड़ा घृणा का विषय था, विवाही जाने वाली कन्या का डोला देना तो और अधिक घृणात्मक था। इस शाखा में ही नहीं, समस्त वैश्यज्ञाति में सम्राट् की इस अनुचित माँग से खलबली मच गई। सम्राट् के दरबार में राजा टोडरमल का बड़ा मान था। टोडरमल स्वयं वैश्य थे, उनको भी बादशाह की यह माँग बहुत ही बुरी प्रतीत हुई। इस लघुपक्ष के प्रतिष्ठित लोग टोडरमल के पास में गये और बादशाह को समझाने की प्रार्थना की। राजा टोडरमल अकबर के हठाग्राही स्वभाव को जानते थे, फिर भी उन्होंने आये हुये लघुपक्ष के सज्जनों को आश्वासन दिया और कहा कि वह बादशाह को समझा लेगा। दूसरे दिन जब राजा टोडरमल बादशाह से मिलने गये तो बादशाह ने भी टोडरमल से उसी बात की चर्चा की कि तुम्हारी वैश्यज्ञाति की उस लड़की का डोला तुरन्त रणवास में

आना चाहिये, नहीं तो मैं समस्त वैश्यज्ञाति को कुचलवा दूंगा। राजा टोडरमल बातों में बड़े चतुर थे और सम्राट् अकबर के अति विश्वासपात्र एवं प्रेमी मित्रों में से थे। बड़ी चतुराई से उन्होंने सम्राट् को समझाया कि शीघ्रता करने से लाभ कम और हानि अधिक होती है। लड़की का पिता कोई शक्तिशाली सम्राट् अथवा राजा नहीं है, जो सम्राट् की इच्छा को सफल नहीं होने देवे। राजा टोडरमल ने स्वयं स्वीकार किया कि सम्राट् एक माह की अवधि प्रदान करें और इस अन्तर में वह लड़की के माता-पिता तथा ज्ञाति के लोगों को समझा कर डोला दिलवा देगा और इस प्रकार सम्राट् बहुत बड़ी बदनामी अथवा कलह की उत्पत्ति से बच जावेगा।

राजा टोडरमल ने घर आकर कन्या के पिता और ज्ञाति के विश्वासपात्र पुरुषों को बुलवा करके सम्राट् का जो दृढ़ निश्चय था, वह सुना दिया। यह श्रवण करके कन्या के पिता एवं अन्य सर्व पुरुषों का मुँह उतर गया और कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ा। राजा टोडरमल भी अपनी वैश्यसमाज के गौरव को धक्का लगता देखकर गम्भीर चिन्तन में पड़ गये। अन्त में उन्होंने अपने ही प्राणों को जोखम में डालने का दृढ़ निश्चय करके उनसे कहा कि सम्राट् से उन्होंने डोले के लिये एक माह की अवधि ली है। अब वे दिल्ली छोड़कर इस अन्तर में कहीं अन्यत्र जाकर उस लड़की और उस लड़की के कुल को छिपा सकते हैं तो ज्ञाति अपमानित होने से बच सकती है। बस फिर क्या था। लघुपक्ष के जितने भी घर दिल्ली में बसते थे, वे सर्व संगठित होकर प्राणों से प्रिय ज्ञाति के गौरव की रक्षा करने के लिये अपने धन-माल की परवाह नहीं करके दिल्ली का तुरन्त त्याग करके निकल चले। कुछ कुल बीकानेर-राज्य के जंगली प्रदेशों में, जिनमें अधिक भाग रेतीला है जाकर छिपे और कुछ कुल लखनऊ, महमूदाबाद, सीतापुर, कालपी आदि नगरों में जाकर बस गये। जो बीकानेर-राज्य के जंगली प्रदेश में बसे वे धीरे २ जांगड़ा कहे जाने लगे। इस कथा में कितना सत्य है और इस घटना में वर्णित कथानक पर 'जांगड़ा' शब्द की उत्पत्ति कहाँ तक मान्य है—तोलना और कहना अति ही कठिन है। इतना अवश्य है कि अभी लखनऊ, महमूदाबाद, सीतापुर के जिलों में और उधर के अन्य नगरों में 'पुरवार' कही जाने वाली ज्ञाति के घर बसते हैं, वे भी उक्त घटना का ही वर्णन करते हैं और जांगड़ा-पौरवाड़ कही जाने वाली ज्ञाति के वृद्ध एवं अनुभवी जन भी उक्त घटना का ही वर्णन करते हैं। यह कथा मैंने स्वयं इन ज्ञातियों के क्षेत्रों में भ्रमण करके अनुभवी एवं वृद्धजनों से मिलकर सुनी है।

जब सम्राट् अकबर की मृत्यु हो गई और डोले लेने की प्रथा भी प्रायः बन्द-सी हो गई, बीकानेर-राज्य के जंगलप्रदेश में बसने वाले इस शाखा के कुल वहां कोई व्यापार-धन्धा नहीं पनपता हुआ देखकर, उस स्थान का परित्याग करके दिल्ली से दूर मालवा-प्रान्त में आकर बस गये। मालवा में वे जांगड़ा-पौरवाड़ कहे जाने लगे। 'जांगड़ा' उपाधि की उत्पत्ति का कारण यह नहीं होकर भले ही कोई दूसरा होगा, जिसका सम्भव है कभी पता भी लग सकता है, परन्तु इतना तो अवश्य है कि प्राग्वाट-ज्ञाति की जैसे सौरठिया, कपोला, गूर्जर-शाखायें हैं यह भी उसकी शाखा है और उसके लघुसंतानीयकुलों का यह एक अलग संगठन है। जैनधर्म से जब से इस पक्ष का विच्छेद हुआ, जैनकुलगुरुओं ने भी इस पक्ष से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। मूलगोत्रों के नाम और कुलदेवियों के नाम या तो विस्मृत हो गये या वैष्णवमत अंगीकार करने के पश्चात् इनके गोत्र फिर से नये बने हों। अब इस पक्ष के कुलों का वर्णन लिखने वाले वैष्णव भाट हैं, जिस प्रकार अन्य वैष्णव-ज्ञातियों के होते हैं।

वर्तमान् में इस शाखा का जैसा, लिखा जा चुका है निवास प्रमुखतः मालवा और कुछ राजस्थान के कोटा, झालावाड़ और मेवाड़-राज्य के लगभग १५० ग्रामों में है।

प्रमुख ग्राम, नगर जिनमें इस जांगड़ापक्ष के कुल रहते हैं:—

इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, देवास, महीदपुर, ताल, आलोट, खाचरौद, सुजानपुरा, बंबोरी, जावरा, बरखेड़ा (ताल), मोतीपुरा, जरोद, गरोट, रामपुरा, खड़ावदा, सेमरोल, देहथली, बरखेड़ा (गांगाशाह), साटरखेड़ा, चचोर, टेला, कोला, नागदा, नारायणगढ़, खेजड़या, सावन, भेलखेड़ा, चंदवासा, शामगढ़, रूनीजा, धसोई, सुवासड़ा, धलपट, अजेपुर, भवानीमंडी, पंचपहाड़, सीतामऊ, बालागढ़, जन्नोद, मनासा, मन्दसोर, सूठी, श्यामपुर, नाहरगढ़, लीबांवास, पड़दा, भाटकेड़ी, महागढ़, झालरापाटन, बड़नगर, उन्हेल, वाचखेड़ी, घड़ोद, चचावदा।

उक्त नगरों के समीपवर्त्ती छोटे २ ग्रामों में यह पक्ष फैला हुआ है। इस लघुशाखा वाली जांगड़ा-पौरवाड़ कही जाने वाली स्वतन्त्र ज्ञाति में इस समय लगभग १०००० दश हजार घरों की संख्या है।

इस जांगड़ा-शाखा के चौवीस गोत्र हैं, जो निम्न दिये जाते हैं:—

१ चौधरी, २ सेठ्या, ३ मजावद्या, ४ दानगढ़, ५ कामल्या, ६ धनोत्या, ७ रत्नावत, ८ फरक्या, ९ काला, १० केसोटा, ११ मून्या, १२ घाट्या, १३ वेद, १४ मेथा, १५ बड़चा, १६ मँडवाच्या, १७ नमेपुत्या, १८ भूत, १९ डबकरा, २० खरड्या, २१ मांदल्या, २२ उधा, २३ वाड़वा, २४ सरखंड्या।

तेईसवें और चौवीसवें गोत्रों के कुल प्रायः नष्ट हो गये हैं। ये गोत्र इस शाखा के मूल गोत्र नहीं हैं। ये तो अटकें हैं, जो वैष्णवमतावलम्वी बनने पर धन्धा और व्यवसायों पर बने हैं, जो कालान्तर में धीरे २ पड़ी हैं। वैष्णव बनने पर इस शाखा के कुलों का जैनकुलगुरुओं से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया और उसका फल यह हुआ कि इनके मूल गोत्र धीरे २ विलुप्त और विस्मृत हो गये और अटकें ही गोत्र मान ली गईं।

नेमाड़ी और मलकापुरी-पौरवाड़

ये दोनों शाखायें जांगड़ा-पौरवाड़ों की ही अंगभूत हैं। इनका अलग पड़ने का कारण समझदार एवं अनुभवी लोग यह बतलाते हैं कि इस ज्ञाति के किसी श्रेष्ठि के यहाँ लड़के का विवाह था। उन दिनों में इस ज्ञाति में यह प्रथा थी कि जिस घोड़े पर वह चढ़कर तौरण-वध करता था, उस घोड़े के ऊपर जितने आभूषण चढ़े हुए

वैष्णव वैश्यज्ञातियों के प्रसिद्ध पुरुषों का ही जब इतिहास नहीं उपलब्ध है, तो साधारण पुरुषों और ज्ञाति जैसी बड़ी इकाई का इतिहास तो कैसे मिल सकता है। जैनसमाज में जैसे प्रतिमादि पर शिलालेख, ग्रंथों में प्रशस्तियां लिखाने की जो प्रथा रही है, अगर वैसी ही अथवा ऐसी ही कोई अन्य प्रथा इन वैष्णवमतालम्वी वैश्यवर्ग में भी होती तो सम्भव है कुछ इतिहास की सामग्री उपलब्ध हो सकती थी और उससे बहुत कुछ लिखा जा सकता था। परन्तु दुःख है कि इतिहास की दृष्टि से ऐसी प्रामाणिक साधन-सामग्री इस

होते, वे सर्व आभूषण उस कुल के विवरण लिखने वाले कुलभाट को दान में दे दिये जाते थे और बड़ा हर्ष मनाया जाता था। उक्त श्रेष्ठि ने घोड़े के ऊपर जो आभूषण लगाये थे, वे किसी के यहाँ से मांगे हुये लाये गये थे। तौरण-वध कर लेने के पश्चात् कुलभाट ने आभूषणों की याचना की, इस पर वर का पिता कुपित हो गया और उसने आभूषण देने से अस्वीकार किया। इस घटना से वरातिथियों एवं कन्यापक्ष के लोगों में दो पक्ष बन गये। एक पक्ष आभूषण कुलभाट को दिलाना चाहता था और दूसरा पक्ष इस प्रथा को बन्द ही करवाना चाहता था। अन्त में बात बैठी ही नहीं। विवाह के पश्चात् यह झगड़ा जांगड़ा-पौरवाड़ों की समस्त ज्ञाति में विख्यात कलह बन गया। अन्त में वर के पिता के पक्ष में रहे हुए समस्त लोगों को ज्ञाति ने बहिष्कृत कर दिया। ये लोग अपने २ मूलस्थानों को त्याग करके नर्मदा नदी के पार नेमाड़-प्रान्त में जाकर बस गये। ये वहाँ जाकर वि० सं० १७६० के लगभग बसे, ऐसा लोग कहते हैं। सनावद, महेश्वर, मण्डलेश्वर, खरगौण आदि नगरों में इनके आस-पास के छोटे-बड़े ग्राम कस्बों में ये लोग वहाँ बसे हुए हैं। ये जैनधर्म की दिगम्बर-आम्नाय को मानते हैं और संख्या में लगभग १००० एक हजार घरों के हैं। नेमाड़-प्रान्त में रहने से अब नेमाड़ी-पौरवाल कहलाने लगे हैं।

मलकापुरी-पौरवाल इन्हीं नेमाड़ी-पौरवालों के घर हैं, जो मलकापुर में जा बसने के कारण अब मलकापुरी कहलाते हैं। लगभग १५० वर्षों से अब इनमें बेटी-व्यवहार का होना बन्द हो गया है।

जांगड़ा-पौरवाड़ों के और उक्त दोनों शाखाओं के प्रगतिशील व्यक्ति अब पुनः इनमें एकता और बेटी-व्यवहार स्थापित करने का कुछ वर्षों से प्रयत्न कर रहे हैं।

उक्त घटना से यह सिद्ध हो गया है कि उक्त दोनों शाखाओं का झगड़ा अपनी ज्ञाति में प्रचलित कुलभाटों को वर के घोड़े पर लगे हुये समस्त आभूषणों को प्रदान करने की प्रथा के ऊपर था। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि इनका कुलभाटों से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।

कुलभाटों से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने का परिणाम यह हुआ कि उक्त शाखाओं में गोत्र धीरे २ विलुप्त हो गये और इस समय इनमें गोत्रों का प्रचलन ही बन्द हो गया है।

जांगड़ा-पौरवालशाखा की बिल्कुल ही नहीं मिलती है और न उसके प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन-चरित्र ही बने हुये हैं और अगर कहीं होंगे भी तो अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं। इन साधनों के अभाव में इस पक्ष के विषय में मेरे नानी श्वसुर श्री देवीलालजी सुराणा, गरोठनिवासी के सौजन्य से मेलखेड़ानिवासी श्री किशोरीलालजी गुप्ता (जांगड़ा-पौरवाड़) कार्याध्यक्ष, श्री पौरवाड़-महासभा ने एक बृहद्पत्र लिख कर जो परिचय मुझको दिया है, उसके आधार पर और मैंने भी मालवा में भ्रमण करके जो कुछ इस पक्ष के विषय में सामग्री एकत्रित की थी के आधार पर ही यह लिखा गया है।

मैंने बहुत ही श्रम किया कि इस शाखा की इतिहास-साधन-सामग्री प्राप्त हो, परन्तु मेरी अभिलाषा सफल नहीं हो पाई। इस शाखा की कुछ भी साधन-सामग्री नहीं मिलने की स्थिति में इसका इतिहास मैं कुछ अंशों में भी नहीं दे सक रहा हूँ।

नेमाड़ी-शाखा के इतिहास की भी साधन-सामग्री पूरा २ श्रम करने पर भी उपलब्ध नहीं हो पाई है, फलतः इसका भी कुछ भी इतिहास नहीं लिखा जा सका है।

बीसा-मारवाड़ी-पौरवाल

जोधपुर-राज्य के दक्षिण में बाली, देसूरी, जालोर, भीनमाल, जसवंतपुर के प्रगणों के प्रायः अधिकांश ग्रामों में उक्त नगरों में और अन्य नगर, कस्बों में और सिरोही के राज्य भर में या यों भी कह सकते हैं कि प्राचीन समय में कहे जाने वाले प्राग्वाट-प्रदेश में ही इस शाखा के घर बसे हुये हैं। ये सर्व वृद्धसज्जनीय (बीसा) पौरवाल कहे जाते हैं। इस शाखा के प्रायः अधिकांश कुलों के गोत्र क्षत्रियज्ञाति के हैं और विक्रम की आठवीं शताब्दी में अधिकांशतः जैनधर्म में दीक्षित हुये थे। जैसा आगे के पृष्ठों से सिद्ध होगा आज इस शाखा के प्रायः अधिकांशतः घर धन की दृष्टि से सुखी और सम्पन्न हैं, जिनकी बम्बई-प्रदेश और मद्रास, बेजवाड़ा के गंटूर-जिलों में अधिकांशतः दुकानें हैं और बड़े २ व्यापार करते हैं। मारवाड़ में इनका कोई व्यापार-धंधा नहीं है। कुछ लोग जोधपुर और पाली में अवश्य सोना-चाँदी अथवा आड़त एवं थोक माल की दुकानें करते हैं। मालवा में उज्जैन, इन्दौर, रतलाम, जैसे बड़े २ नगरों में भी कुछ लोग व्यापार-धन्धा करते हैं। इस शाखा के कुछ घर सिरोही के ऐयाशी राजा उदयभाण से झगड़ा हो जाने से सिरोही (प्रमुख) से और सिरोही-राज्य के कुछ अन्य ग्रामों से लगभग डेढ़ सौ से कम वर्ष हुये होंगे रतलाम में सर्व प्रथम जाकर बसे थे और फिर वहाँ से धीरे २ अन्य ग्राम, नगरों में फैल गये। मालवा के कुछ-एक प्रमुख नगरों में बीसा-मारवाड़ी पौरवालों का कई शताब्दियों पूर्व भी निवास था ही। पहिले के बसे हुये और पीछे से आकर बसे हुये बीसा-मारवाड़ी-पौरवाल घरों की गणना 'पौरवाड़-महाजनों का इतिहास' के लेखक देवासनिवासी ठक्कुर लक्ष्मणसिंह ने ता० २२-६-१६२५ में की थी। यद्यपि वह अपूर्ण प्रतीत होती है; फिर भी इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि इस शाखा के लगभग ३००-३५० घर जिनमें स्त्री-पुरुष, बच्चे लगभग १५००-१६०० होंगे। आज मालवा के छोटे-बड़े ग्राम नगरों में निवास करते हैं। प्रमुख नगरों के नाम नीचे दिये जाते हैं:—

देवास, इन्दौर, शहजहाँपुर, भरेड़, दुवाड़ा, नलखेड़ा, भोपाल, रतलाम, सारंगपुर, कानड़, आगर, कुक्षी, धार, उज्जैन, मौना, राजगढ़, अलिराजपुर, सुजाणपुर।

उक्त कुलों के कुलगुरु मारवाड़ में सेवाड़ी, बाली, घाणेराव, सोजत तथा सिरोही, सियाणादि ग्राम, नगरों में रहते हैं और मालवा में पहिले और पीछे से जाकर बसने वाले कुलों का बहुत दूर होने के कारण स्वभावतः कुलगुरुओं से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि पूर्व के बसे हुये कुलों के गोत्र तो कभी के विलुप्त प्रायः हैं। पीछे से मालवा में जाकर बसने वाले कुल जब सर्व प्रथम रतलाम में जाकर बसे थे, तब रतलाम के सेवड़े लोग इनका कुल-वर्णन लिखने लगे थे और कुछ वर्षों तक वे लिखते भी रहे, परन्तु पश्चात् उनमें परस्पर किसी बात पर इनसे झगड़ा हो गया और उन्होंने इनके कुलों का वर्णन लिखना ही बन्द कर दिया और अब तक का जो कुछ लिखा हुआ था, उन पुस्तक, बहियों को कुओं में डाल दिया। उक्त दोनों कारणों से इनमें गोत्रों की विद्यमानता शिथिल बन गई। परन्तु मारवाड़ में रहे हुये कुलों के गोत्र जैसा बाली, सेवाड़ी, सिरोही, घाणेराव में स्थापित कुलगुरु-पौषधशालाओं से प्राप्त-गोत्र-सूचियों से सिद्ध है ज्यों के त्यों विद्यमान हैं।

मारवाड़ी-शाखा के गोत्र प्रायः सर्व क्षत्रिय और ब्राह्मण गोत्र हैं। अन्य शाखाओं में अटकें नहीं के बराबर हैं, परन्तु इस शाखा में अटक और नख दोनों विद्यमान हैं। निष्कर्ष में यही समझना है कि इस शाखा के कुल अधिकांशतः विक्रम की आठवीं शताब्दी में जैन दीक्षित हुये थे तथा इस शाखा के गोत्रों के नामों में यह विशेषता एवं ऐतिहासिक तथ्य रहा है कि इस शाखा के सर्व कुलों के गोत्र जैनधर्म स्वीकार करने के पूर्व जो उनका कुल था, उस नाम के ही हैं; अतः यह विवाद ही उत्पन्न नहीं होता कि ये किस कुल में से जैन बने थे। अपने आप सिद्ध है कि ये क्षत्रिय और ब्राह्मणकुलों से बने हैं। इस वीसा-मारवाड़ी-पौरवालशाखा के गोत्र और अटकों की सूची पूर्व के पृष्ठ ३६, ४० पर आ चुकी है; अतः फिर यहाँ देना ठीक नहीं समझता हूँ।*

पुरवार

इस ज्ञाति के प्रसिद्ध, अनुभवी वृद्ध एवं पण्डित अपनी ज्ञाति की उत्पत्ति राजस्थान से मानते हैं। ये दिल्ली के श्रेष्ठि की विवाहिता होती हुई कन्या और अकबर बादशाह द्वारा उसका डोला मांगना तथा राजा बीरबल द्वारा उसमें बीच-बचाव करने की कथा को अपनी ज्ञाति में घटी हुई मानते हैं। ये राजा पुरु से अपनी उत्पत्ति होना भी समझते हैं। जांगड़ा-पौरवाड़ भी उक्त श्रुतियों एवं दन्तकथाओं को अपनी ज्ञाति में घटी बतलाते हैं। अतः हो सकता है यह ज्ञाति जांगड़ा-पौरवाड़ों की ही शाखा है, जो संयुक्तप्रान्त, बुन्देलखण्ड, मध्यभारत में बसकर उनसे अलग पड़ गई और अलग स्वतन्त्र ज्ञाति बन गई।*

इस ज्ञाति में न तो गोत्र ही हैं और न दस्सा, बीसा जैसे भेद। यह ज्ञाति वर्तमान् में समूची वैष्णव-मतावलम्बी है। इस ज्ञाति के कुलों का वर्णन लिखने वाले वैष्णवमतानुयायी पट्टियाँ हैं। संयुक्तप्रान्त, मध्यभारत, बुन्देलखण्ड में पीछे से जैनज्ञाति और जैनधर्म जैसा पूर्व लिखा जा चुका है, अन्तप्रायः हो गये थे। उनमें वैष्णव-

---

*'पुरवार' 'पौरवाड़' और 'पौरवाल' तीनों एक ही शब्द हैं। इनमें रहा हुआ अन्तर प्रान्तीय-भाषाओं के प्रभाव के कारण उद्भूत हुआ है। संयुक्तप्रान्त में गुड़ को गुर, गाड़ी को गारी कहते है। यहाँ भी वाड़ का 'वार' बन गया है।

*अखिल-भारतवर्षीय-पुरवार-महासभा का अधिवेशन ता० १३, १४ अक्टोबर सन् १९५१ में महमूदाबाद में हुआ था। उक्त सभा के मानद मंत्री श्री जयकान्त पुरवार अमरावतीनिवासी के साथ मेरा पत्र-व्यवहार लगभग तीन वर्ष से अधिक हुये हो रहा था। यह सम्बन्ध वैद्य श्री बिहारीलालजी पुरवार, पौरवाल-बन्धु के मालिक, फिरोजाबाद के द्वारा और उनकी प्राग्वाट इतिहास के प्रति अगाध रुचि और सद्भावना के फलस्वरूप जुड़ गया था। उक्त सम्मेलन में मुझको और श्री ताराचन्द्रजी दोनों को आमन्त्रण मिला था। मैं उक्त सम्मेलन में सम्मिलित हुआ और पुरवारज्ञाति के कईएक पण्डित, युवक, पत्रकार, अनुभवी एवं वृद्धगण और श्रीमंत सज्जनों से मिलने और वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ था। मेरे 'पुरवारज्ञाति का पौरवालज्ञाति से सम्बन्ध' विषय पर लम्बा व्याख्यान भी हुआ था। उक्त सम्मेलन से मुझको यह अनुभव करने को मिला कि पुरवारज्ञाति और पौरवालज्ञाति में उत्पत्ति, डोलावाली कथा को लेकर कई एक दंतकथायें एक-सी प्रचलित हैं। पुरवारज्ञाति में अभी भी जैन-संस्कृति विद्यमान है। इस ज्ञाति के अनेक कुल प्याज, लहसन जैसी चीज का उपयोग नहीं करते हैं। मातायें रात्रि-भोजन का निषेध करती हैं।

धर्म पनप रहा था, अतः इस शाखा ने वैष्णवमत स्वीकार कर लिया। प्रसिद्ध आर्य-समाज-प्रचारक श्री रामचरन 'मालवीय' मेरठनानिवासी मुझको अपने ता० २०-१२-१९५१ के पत्र में अपनी ज्ञाति को पौरवालज्ञाति की शाखा होना, इसके पूर्वजों द्वारा जैनधर्म का पालन करना आदि कई एक मिलती-जुलती बातें लिखकर अन्त में स्वीकार करते हैं कि पुरवार और पौरवाल एक ही ज्ञाति हैं।

पुरवारज्ञाति* का नहीं कोई लिखा हुआ इतिहास है और नहीं कोई साधन-सामग्री ही। हमारे अथक एवं सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त हुई है कि जिसके आधार पर कुछ भी तो वर्णन दिया जा सके। अतः प्राग्वाट-इतिहास में इस ज्ञाति का इतिहास नहीं गूँथा गया है।

परवारज्ञाति

इस ज्ञाति के कुछ प्राचीन शिला-लेखों से सिद्ध होता है कि 'परवार' शब्द 'पौरपाट' 'पौरपट्ट' का अपभ्रंश रूप है। 'परवार', 'पौरवाल' और 'पुरवार' शब्दों में वर्णों की समता देखकर बिना ऐतिहासिक एवं प्रामाणित आधारों के उनको एक ज्ञातिवाचक कह देना निरी भूल है। कुछ विद्वान् परवार और पौरवालज्ञाति को एक होना मानते हैं, परन्तु वह मान्यता भ्रमपूर्ण है। पूर्व लिखी गई शाखाओं के परस्पर के वर्णनों में एक दूसरे की उत्पत्ति, कुल, गोत्र जन्मस्थान, जनश्रुतियों, दन्तकथाओं में अतिशय समता है, वैसी परवारज्ञाति के इतिहास में उपलब्ध नहीं है। यह ज्ञाति समूची दिगम्बरजैन है। यह निश्चित है कि परवारज्ञाति के गोत्र ब्राह्मणज्ञातीय हैं और इससे यह सिद्ध है कि यह ज्ञाति ब्राह्मणज्ञाति से जैन बनी है। प्राग्वाट अथवा पौरवाल, पौरवाड़ कही जाने वाली ज्ञाति से यह

---

*सम्मेलन के पश्चात् इस ज्ञाति के इतिहास की सामग्री प्राप्त करने के लिए जी तोड़ प्रयत्न किया गया। एक पत्र पर १६ प्रश्नों को छपवा कर इस ज्ञाति के पण्डित, विद्वान्, अनुभवी पुरुषों के पास में वे उत्तरार्थ भेजे गये। यह समस्त कार्य मानदमंत्री श्री जयकान्त पुरवार ने अपने द्वारा सम्पादित होते पत्र 'पुरवार बन्धु' के सहारे और सहज बना दिया था। 'पुरवार बन्धु' अमरावती में मेरा 'महाजन-समाज और उसके मूलपुरुषों का धर्म' नामक लेख वर्ष २ अंक २ सितम्बर सन् १९५१ पृ० ३३ पर प्रकाशित हुआ था। इसी अंक के पृ० १८ से २० पर भी श्री जयकान्तजी का सम्पादकीय लेख भी पुरवारज्ञाति के ऊपर 'जातीयइतिहास की खोज में' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। पृ० १८, १९ पर वे लिखते हैं, 'पुरवार-वैश्यदर्पण' नामक पुस्तक के पृ० ६ से लेकर १५ तक पुरवारों की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखते हैं। इसमें लिखा है कि हम लोग मारवार-बीकानेर से आये, क्योंकि अधिकतर वैश्यज्ञातियां उसी तरफ से आई।

अतिरिक्त इसके नीचे लिखी बातें भी मननीय हैं, जो इसी लेख में लिखी गई हैं:—

१-'हम लोग राजा पुरुखा (पुरु) के वंशज हैं अतः पुरवार कहलाये।'

२-'हमारे पूर्वज पूर्व दिशा से आये और अतः पुरवा कहलाये।'

३-'कुछ लोगों के कथनानुसार हम लोगों का उद्गम राजस्थान का भिन्नमाल गाँव है।'

४-'कुछ सज्जनों के कहने के अनुसार हम लोग गुजरात में पाटन नामक नगर के रहने वाले हैं।'

उक्त सारे मत और सारी शंकायें संकेत करती हैं कि पौरवालज्ञाति की पुरवारज्ञाति शाखा है, जो विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में अलग पड़ गई है। इतना प्रयत्न करने पर भी दुःख है कि इस ज्ञाति की एक पृष्ठ भर भी उत्पत्ति, विकास-सम्बन्धी साधन-सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी।

सर्वथा भिन्न और स्वतंन्त्र ज्ञाति है और इसका उत्पत्ति-स्थान राजस्थान भी नहीं है। अतः प्राग्वाट-इतिहास में इस ज्ञाति का इतिहास भी नहीं गूँथा गया है।*

लघुशाखीय और वृहद्शाखीय अथवा लघुसंतानीय और वृहद्संतानीय-भेद और दस्सा-बीसा नाम और उनकी उत्पत्ति

लघुशाखीय और वृहद्शाखीय अथवा लघुसंतानीय और वृहद्संतानीय नामों को व्यवहार में प्रायः लोड़े-साजन और बड़े-साजन, छोटे भाई और बड़े भाई कहते हैं। परन्तु प्राचीन प्रतिमा-लेखों में, शिला-लेखों में, प्रशस्तियों में लघुसंतानीय अथवा लघुशाखीय और वृहद्संतानीय अथवा वृहद्शाखीय शब्दों का ही प्रायः प्रयोग हुआ मिलता है। अतः यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि मूल शब्द तो लघुसंतानीय अथवा लघुशाखीय और वृहद्संतानीय अथवा वृहद्शाखीय ही हैं और शेष नाम इनके पर्यायवाची शब्द हैं, जिनकी उत्पत्ति अथवा जिनका प्रयोग बोल-चाल में सुविधा की दृष्टि से अमुक अमुक समय अथवा वातावरण के आधीन हुआ है।

लघुशाखीय और वृहद्शाखीय, लघुसंतानीय और वृहद्संतानीय शब्दों का अर्थ होता है लघुसंतान अथवा लघुशाखा-सम्बन्धी और वृहद्संतान अथवा वृहद्शाखा-संबंधी। लघुसंतान, लघुशाखा और वृहद्संतान। वृहद्शाखा दोनों में संतान और शाखा शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि दोनों में भ्राता का सम्बन्ध है, दोनों एक ज्ञाति ही की संतति हैं, दोनों दल किसी एक ही वर्ग के दो अंग हैं, जिनके धर्म, देश, इतिहास, पूर्वज, संस्कार, संस्कृति, भाषा, वेष-भूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, साधु-पर्व, त्योहार आदि सब एक ही हैं। परन्तु इतना अवश्य है कि जिस कारण वे दो दलों में विभाजित हो गये हैं, उस कारण का प्रभाव उनके सामाजिक अवसरों पर मिलने, जुलने पर जैसे परस्पर होने वाले प्रीतिभोजों पर और ऐसे ही अन्य सामाजिक संबंधों, संमेलनों पर अवश्य पड़ा है। उक्त दोनों दल अथवा शाखायें हिन्दू और जैन दोनों ही ज्ञातियों में पाई जाती हैं। परन्तु जिन २ ज्ञातियों में ये छोटी बड़ी शाखायें हैं, उन २ में इनके जन्म का कारण एक ही हो यह बात नहीं है और और न ही ऐसा कभी संभव भी हो सकता है।

---

*'पचराई' के शान्तिनाथ-जिनालय का संवत् ११२२ का लेखांशः—

'पौरपट्टान्वये शुद्धे साधु नाम्ना महेश्वरः। महेश्वरेय विख्यातस्तत्सुतः धर्मसंज्ञकः॥'

—'परवार बन्धु' द्वितीय वर्ष, संख्या ३, ४ अप्रेल, मई १९४०

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री अगरचन्द्रजी नाहटा भी पौरवाड़ और परवारज्ञाति को एक नहीं मानते हैं। देखो उनका लेख 'क्या परवार और पौरवाड़ जाति एक ही है?' 'परवार बन्धु' वर्ष तृतीय, संख्या ४, मई १९४१ पृ० ४, ५, ६.

परवारज्ञाति के सम्बन्ध में इतिहास-सामग्री भी प्रायः नहीं मिलती है। इस ज्ञाति के प्रसिद्ध पुरुषों, अन्य दिगम्बर-जैन विद्वानों से इस ज्ञाति की उत्पत्ति, विकाश के सम्बन्ध में लम्बा पत्र-व्यवहार किया गया, परन्तु वे कुछ भी नहीं दे सके। इस ज्ञाति में उत्पन्न उत्साही विद्वानों के लिये यह विचारणीय है। (प्रस्तावना में देखिये)

इनके जन्म का निश्चित संवत् और दिन तो संभवतः अद्यावधि कोई भी पुरातत्त्व एवं इतिहासवेत्ता के ज्ञान में अब तक नहीं आ पाया है, परन्तु जहाँ तक जैनसमाज के अंतर्गत वर्गों का सम्बन्ध है इतना अवश्य निश्चित है कि अब वर्तमान् जैनकुल विक्रम की आठवीं शताब्दी में और उसके पश्चात्वर्त्ती वर्षों में बने हैं, तो ये शाखायें भी विक्रम की आठवीं शताब्दी के पश्चात् ही उत्पन्न हुई समझी जानी चाहिए। प्राग्वाटज्ञाति का ऐतिहासिक, परंपरित एवं विशेष सम्बन्ध ओसवाल, श्रीमालज्ञातियों से रहा है और है और इन तीनों में ये ही छोटी, बड़ी शाखायें विद्यमान हैं। यह भी निश्चित है कि इन तीनों वर्गों में ये दोनों शाखें एक ही कारण से, एक ही समय पर और एक ही क्षेत्र अथवा स्थान पर उत्पन्न हुई हैं और फिर पश्चात् के वर्षों में बढ़ती रही हैं, इसका कारण यह है कि तीनों एक ही जैनसमाज की प्रजा हैं और इन तीनों वर्गों का प्रायः धर्म एक रहा है और आज भी है तथा तीनों के प्रतिबोधकगुरु, धर्माचार्य, तीर्थ, धर्मग्रंथ एक ही हैं और परस्पर बेटी-व्यवहार भी रहा है।

विशेष फिर यह भी है कि प्राग्वाटज्ञाति के भीतर और वैसे ही ओसवाल और श्रीमाल-ज्ञातियों के भीतर रही हुई इन दोनों शाखाओं के कुलों के गोत्र परस्पर मिलते हैं और व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे को भाई कहते हैं और लिखते हैं। भोजन-व्यवहार सम्मिलित होता है और दोनों शाखाओं के व्यक्ति एक ही थाली में भोजन भी करते हैं। कहीं २ नहीं भी होता है, तो वह ब्राह्मणप्रभाव के कारण है। इतनी समानतायें तो यही सिद्ध करती हैं कि छोटे-बड़े साजन जब गोत्रों में, धर्म में और ऐसे ही सारे अन्य अंगों में मिलते हैं तो दोनों में जो भेद पड़ गया है, वह ऊँच, नीच होने के कारण अथवा खान-पान में अन्तर पड़ने के कारण नहीं, वरन् किसी समय किसी सामाजिक समस्या, प्रश्न अथवा घटना के कारण है, जिसने उनको दो दलों अथवा दो शाखाओं में बुरी तरह विभाजित कर दिया है और धीरे २ वह पूरे वर्ग में प्रायः फैल गया है अथवा फैला दिया गया है और पक्का अथवा सुदृढ़ होता रहा है। कुछ ही कुल ऐसे हैं, जिनमें दो शाख नहीं पड़ी हैं और वे बृहद्शाखीय कहे जाते हैं।

आजकल लघुसन्तानीय के लिए दस्सा और बृहद्सन्तानीय के लिये बीसा शब्दों का ही प्रयोग अधिकतर होता है। एक दूसरी शाख भी एक दूसरी के लिये इनका ही प्रयोग करती है और वह अपने को भी लघुशाखा हुई तो दस्सा और बृहद्शाखा हुई तो बीसा कहती है। यह प्रयोग भी आजकल से नहीं होने लगा है। इसको भी सैकड़ों वर्ष हो गये हैं। परन्तु मेरे मत से है यह मुसलमानी राज्यकाल में चला हुआ। एक बीघा बीस विस्वा का होता है। दस्सा से प्रयोजन मूल्य, आदर, प्रमाण, जो कुछ भी ऐसा समझा जाय दश विस्वा और बीसा से प्रयोजन बीस विस्वा से है और अर्थ भी ऐसे ही लगाये जाते हैं। लोग इसका यह आशय लेते हैं कि दस्सावर्ग बीसावर्ग से कुल की श्रेष्ठता में आठ आना भर है। ऐसा उनका कहने का एक ही आधार यह है कि दश विस्वा बीस विस्वा का आधा होता है, अतः दस्सावर्ग बीसावर्ग से श्रेष्ठता में आधा है। परन्तु यहाँ तो यह अनुमान बैठाया हुआ अथवा देखा-देखी निकाला हुआ अर्थ है और अनैतिहासिक है। इसका ऐतिहासिक आधार नहीं है। बात यह है कि मुसलमानों के राज्यकाल में क्षेत्रों का माप बीघा, विस्वा और विस्वान्सियों पर होता था और यह ही पद्धति समस्त भारत भर में फैल गई थी। यह पद्धति इतनी फैली और इतनी बढ़ी अथवा प्रिय हुई कि साधारण से साधारण अनपढ़ भी इस पद्धति से पूरा २ परिचित हो गया और जैसे यह वस्तु चार आनी, आठ आनी अच्छी है, अमुक बारह आनी अच्छी है, उस ही प्रकार विस्वाओं पर अनेक वस्तुओं का बोलचाल में

मूल्यांकन किया जाने लगा। इस वातावरण में लघुसन्तानीय अथवा लघुशाखीय को दस्सा और वृहद्शाखीय अथवा वृहद्सन्तानीय को बीसा कहने की प्रथा पड़ गई और वह निकटतम भूत में उत्पन्न हुई के कारण आज भी प्रचलित है।* परन्तु शिलालेखों में ताम्रपत्रों में, प्रशस्ति-लेखों में, इसका कहीं प्रयोग देखने में नहीं आया है। प्राचीन से प्राचीन संवत्, जिनमें, ज्ञातिबोधक एवं शाखाबोधक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ है, प्रमाण की दृष्टि से नीचे दिये जाते हैं।

'प्राग्वाट' शब्द का सर्वप्राचीन प्रयोग सिरोही-राज्य में कासंद्रा नामक ग्राम के जिनालय की देवकुलिकाओं में अनेक लेख हैं, उनमें से एक लेख वि० सं० १०९१ का है, उसमें हुआ है। उस लेख में लिखा है कि भिन्नमाल से निकला हुआ प्राग्वाटज्ञाति का वणिकवर, श्रीपति, लक्ष्मीवन्त, राजपूजित, गुणनिधान, बन्धुपद्मदिवाकर गोलंच्छी (?) नामक प्रसिद्ध पुरुष था।[१] उसके जज्जुक, नम्म और राम तीन पुत्र थे। उनमें से जज्जुक के पुत्र वाम ने संसार से भयभीत होकर मुक्ति की प्राप्ति के अर्थ इस जिनालय का निर्माण करवाया। वि० सं० १०९१।

'उकेशज्ञाति' और 'वृहद्शाखा' शब्दों का प्रयोग श्री बुद्धिसागरजी द्वारा संग्रहित धातु-प्रतिमा लेखों वाली पुस्तक 'श्री जैन-धातु-प्रतिमा-लेख-संग्रह भाग १' के पोसीनातीर्थ के लेखों में लेखांक १४६८ में वि० सं० १२०० में सर्वप्राचीन हुआ मिलता है। लेख का सार यह है कि सं० १२०० वर्ष की वैशाख कृष्णा २ के दिन श्री सावली-नगर में रहने वाली उकेशज्ञातीय वृद्धशाखा ने श्री अजितनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।[२]

'श्रीमाल' शब्द का भी सर्वप्राचीन प्रयोग मुनि श्री जयंतविजयजी द्वारा संग्रहित 'श्री अर्बुद प्राचीन-जैन-लेख-संदोह भाग २' के लेखांक ५२३ में हुआ है। लेख का सार यह है कि श्रीमाल-ज्ञातीय सेठ आसपाल और उसकी स्त्री आसदेवी, इन दोनों के श्रेयार्थ श्राविका आसदेवी ने इस प्रतिमा को भराया, जिसकी प्रतिष्ठा सं० १२२६ अथवा १२३६ के वैशाख शुक्ला १० को श्री धर्मचन्द्रसूरि ने की।[३]

उक्त लेखों के सारों से यह भलीविध सिद्ध हो जाता है कि विक्रम की आठवीं, नवीं, दशवीं शताब्दियों तक 'प्राग्वाट, ओसवाल, श्रीमाल' जैसे ज्ञातिबोधक शब्दों का प्रयोग करने की प्रथा ही नहीं थी। प्राचीनतम

*'दस्सा. बीसा के पर्यायवाची नाम लघु, वृद्धशाखा भी है' (श्रीमाली जाति नो वणिक भेद)

—जै० सा० सं० इति० पृ० ३६०

प्रा० जै० ले० स० भाग २ लेखांक ४२७ पृ० २६१ (कासंद्रा के जिनालय में)

१–'श्री भिन्नमालनिर्यातः प्राग्वाटः वणिजां वरः। श्रीपतिरिव लक्ष्मीयुग्गोलंच्छी राजपूजितः॥
आकरो गुणरत्नानां बन्धुपद्मदिवाकरः। जज्जुकस्तस्य पुत्रः स्यात् नम्मरामौ ततोऽपरौ॥
जज्जुसुतगुणाढ्येन वामनेन भवाद्भयम्॥ दृष्ट्वा चक्रे गृहं जैनं मुक्त्यै विश्वमनोहरम्॥ संवत् १०९१

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ लेखांक १४६८ पृ० २५५ (सावली–पोसीनातीर्थ में)

२–'सं० १२०० वैशाख वदी २ दिने श्री सावलीनगरे वास्तव्य उकेशज्ञातीय वृद्धशाखा श्री अजितनाथबिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं॥'

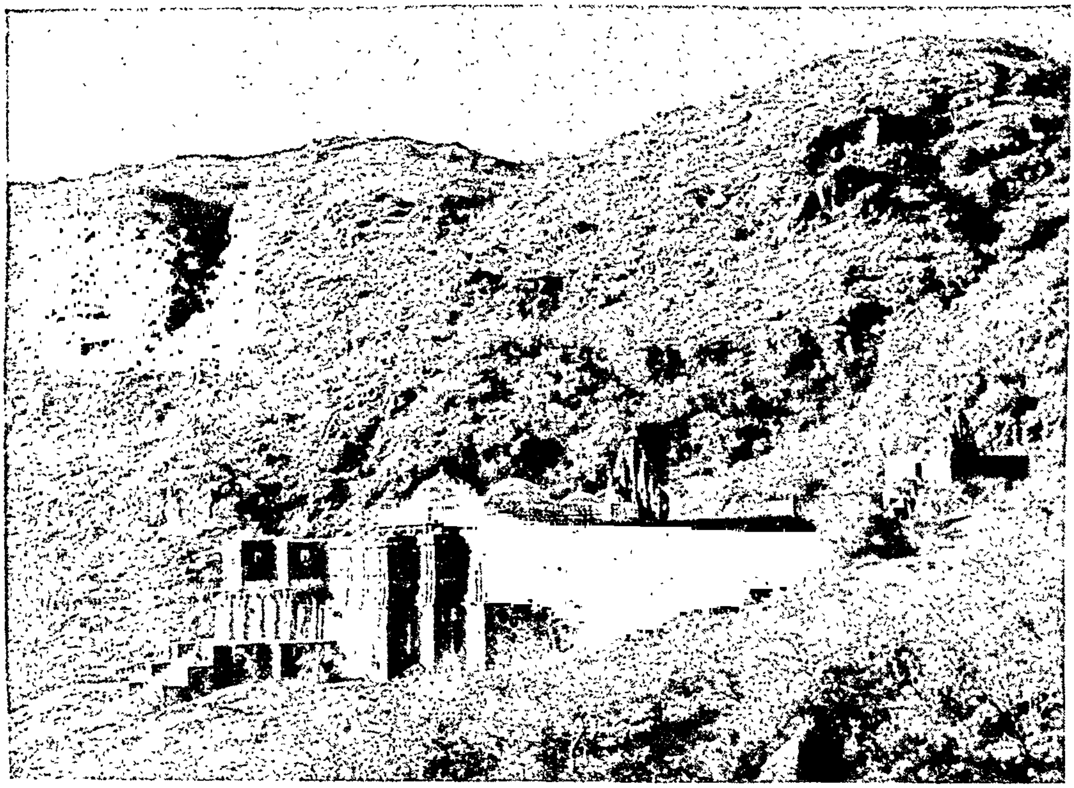
अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ५२३ पृ० ५३२

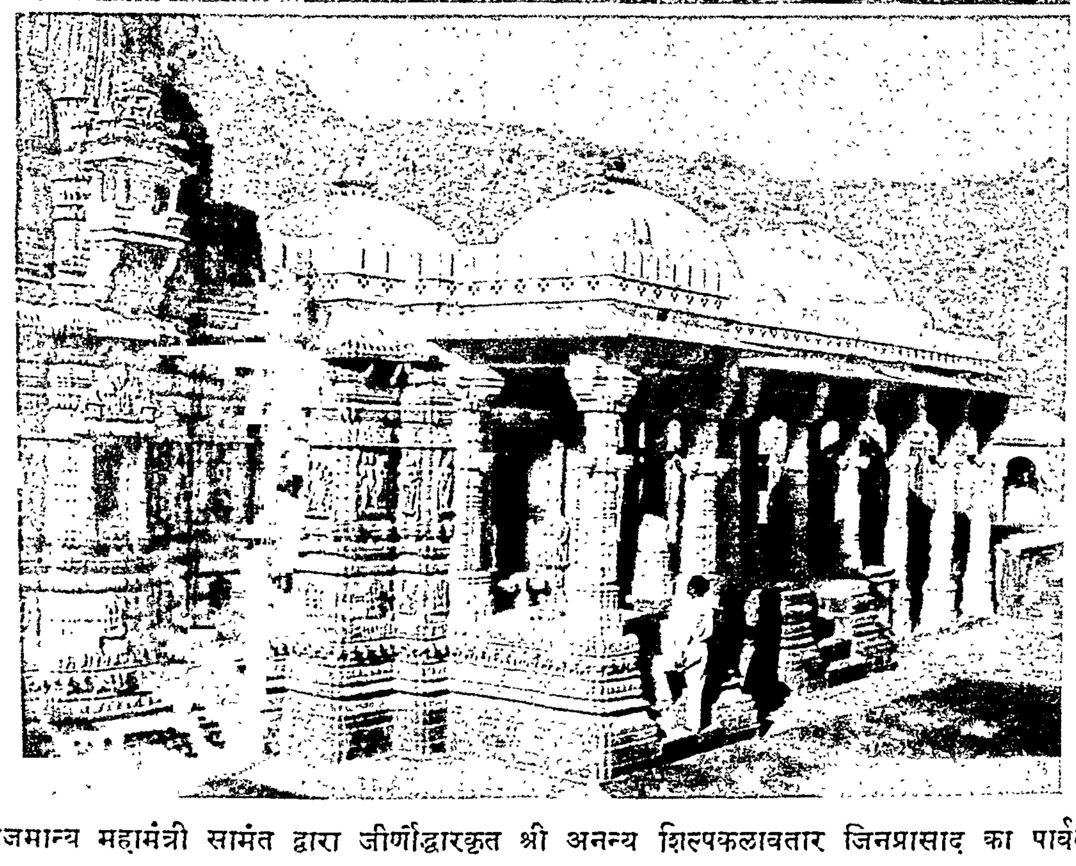
३–'सं० १२२६ (३६) वैशाख शु० १० श्रीमालीय व्य० आसपाल भार्या आसदेवी।
अनयोः पुण्यार्थं सुतासदि""(तया) आसदेव्या बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री धर्मचन्द्रसूरिभिः॥'

लेखों में तो केवल प्रतिष्ठा-संवत् और बिंब का नाम ही मिलता है। फिर प्रतिष्ठाकर्ता आचार्य का नाम दिया जाने लगा और इस प्रकार बढ़ते २ प्रतिमा बनवाने वाले श्रावक का नाम और उसके पूर्वजों तथा परिवार-जनों के नाम भी दिये जाने लगे। परन्तु इन भावनाओं की उत्पत्ति हुई सामाजिक संगठन के शिथिल पड़ने पर, अपने २ वर्ग और फिर अपने २ कुल के पक्ष-मण्डन पर। उन शताब्दियों में ज्ञातिवाद सुदृढ़ और प्रिय बन चुका था और जैनकुल भी उसके प्रभाव से विमुक्त नहीं रहे थे। अतः यह सम्भव है कि जैनकुल, जैनसमाज के जिस २ वर्ग के पक्ष के थे, उस २ वर्ग के नाम से अपने २ को कहने और लिखने लगे हों। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इन शब्दों का प्रयोग एक दम बढ़ने लगा—इससे यह सिद्ध होता है कि जैनसमाज के उक्त तीनों वर्गों में उस शताब्दी से ही अन्तर पड़ना प्रारम्भ हुआ है और अपना २ स्वतन्त्र अस्तित्व एवं कार्य दिखाने की भावनायें प्रबल हो उठी हैं। यह ही प्राग्वाट, ओसवाल और श्रीमालवर्गों का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने की बात हुई।

पोसीनातीर्थ के सं० १२०० के लेख में 'बृहद्शाखीय' शब्द इस बात को सिद्ध करता है कि उस शताब्दी में 'बृहद्शाखा' विद्यमान थी, अतः यह भी सिद्ध हो जाता है कि लघुशाखा भी थी। यह जनश्रुति कि वस्तुपाल तेजपाल के प्रीतिभोज पर बृहद्शाखा और लघुशाखा की उत्पत्ति हुई मनगढ़ंत और निराधार प्रतीत होती है। उक्त मत की पुष्टि में मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी ने कई एक प्रमाण दिये हैं; परन्तु उनमें अधिकांश १८, १९ वीं शताब्दियों के हैं और कुछ अप्रामाणिक और मनगढ़ंत हैं। श्री अगरचन्द्रजी नाहटा, बीकानेर भी इस मत के विरोध में अपने 'दस्सा-बीसा-भेद का प्राचीनत्व'* लेख में लिखते हैं, 'दस्सा-बीसा-भेद के प्राचीनत्व को सिद्ध करने वाला प्राचीन प्रमाण है खरतर जिनपतिसूरिरचित 'समाचारी'। उक्त समाचारी की रचना वि० सं० १२२३ और १२७७ के बीच में हुई है। सूरिजी सं० १२७७ में स्वर्गवासी हुये।' यह अवश्य सम्भव हो सकता है कि उक्त दोनों भ्राताओं ने कई बार बड़े २ संघभोज दिये थे; जिनमें अगणित ग्रामों, नगरों से श्रीसंघ और सद्गृहस्थ सम्मिलित हुये थे, किसी एक में कोई कारण से झगड़ा उत्पन्न हो गया हो और उस पर समाज में तनातनी अत्यधिक बढ़ चली हो और लघुशाखा वस्तुपाल के पक्ष में रही हो और वृद्धशाखा विरोध में और तब से ही वे अधिक प्रकाश में आई हों, अधिक सुदृढ़ और निश्चित (Conformed) बन गई हों। परन्तु यह श्रुति कि लघुशाखा और वृद्धशाखा का जन्म ही वस्तुपाल तेजपाल द्वारा दिये गये किसी प्रीतिभोज में झगड़ा उत्पन्न हो जाने पर हुआ, पोसीना के वृद्ध-शाखा वाले सं० १२०० के लेख से झूठी ठहरती है; क्योंकि संवत् १२०० में तो वस्तुपाल तेजपाल का जन्म ही नहीं था और फिर इनके प्रीतिभोज तो वि० सं० १२७३–७५ के पश्चात् प्रारम्भ हुये थे और वृद्धशाखा इनके जन्म के कई वर्षों पूर्व ही विद्यमान थी। बात तो यह है कि जब जैनसमाज के उक्त तीनों वर्ग प्राग्वाट, ओसवाल और श्रीमाल अपने २ वर्ग का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करना चाहने लगे और उस दिशा में प्रयत्न करने लगे तथा उसके कारण परस्पर होते कन्या-व्यवहार में स्वभावतः बाधा उत्पन्न होने लगी अथवा कन्या-व्यवहार अपने २ वर्ग में ही करने की भावनायें जोर पकड़ने लगीं, तब समाज के कुछ लोगों ने इन भावनाओं को मान नहीं दिया और अगर उन पर जैनसमाज के अन्दर के अन्य वर्गों में कन्या-व्यवहार करने पर प्रतिबन्ध लगाये तो उनको स्वीकार नहीं किया और बराबर पूर्ववत् कन्या-व्यवहार चालू रक्खा; ऐसे उन कुछ लोगों का पक्ष थोड़ी संख्या में होने के कारण

*नाहटाजी का उक्त सारा लेख पठनीय है।





हम्मीरपुर : राजमान्य महामंत्री सामंत द्वारा जीर्णोद्धारकृत श्री अनन्य शिल्पकलावतार जिनप्रासाद का पार्वतीय सुषमा के मध्य एवं उसका उत्तम शिल्पमण्डित आन्तर दृश्य। देखिये पृ० ५९ पर।

लघुशाखा के नाम से पुकारा जाने लगा और अन्य पक्ष में कन्या-व्यवहार नहीं करने वाले अधिक संख्या में होने के कारण उनका पक्ष समाज में सर्वत्र ही वृहद्शाखा के नाम से कहा जाने लगा। दोनों में फिर मेल किये जाने के या तो प्रयत्न ही नहीं किये गये और या ऐसे किये गये प्रयत्न निष्फल ही रहे। कटुता बढ़ती ही गई और वृहद्शाखावाले और लघुशाखावाले अपने २ पक्ष की प्रसिद्धि करने के लिये तथा प्रचार करने की भावनाओं से अपनी २ शाखा के नाम लिखने लग गये। वस्तुपाल द्वारा दिये गये किसी भोज में झगड़े पर लघुशाखा के कुल वस्तुपाल के पक्ष में रहे हों और वृहद्शाखा में से भी अनेक नवीन कुल वस्तुपाल के पक्ष में रहे हों, जो अनेक ग्राम और नगरों के थे और इस प्रकार वह ही झगड़ा दोनों पक्षों को स्पष्टतः प्रकट और दूर २ तक तथा सर्वत्र जैनसमाज में और अन्य समाजों में भी धीरे २ प्रसिद्ध करने वाला हुआ हो। महान् व्यक्तियों के पीछे पड़ने वाले झगड़े भी तो महान् प्रभावक, लम्बे और विस्तृत एवं दृढ़ होते हैं, जो समस्त समाज को अनिश्चित काल के लिये या सदा के लिये समाक्रांत कर लेते हैं। अब पाठक समझ गये होंगे कि लघुशाखा और वृहद्शाखा जैसे पक्षों का जन्म तो जैनसमाज में अपने २ वर्ग का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने की फूटवाली भावनाओं के साथ ही मंत्रीभ्राताओं के जन्म से कई वर्षों पूर्व ही हो चुका था और वे बनती भी जा रही थीं। वस्तुपाल द्वारा दिये गये किसी महान् संघ-भोजन पर उन दोनों शाखाओं में दृढ़ता आई और वे सदा के लिये अपना अलग अस्तित्व स्थापित करके विश्रान्त हुई—मेरा ऐसा मत है। बाद में लघुशाखा के कुलों में भी कन्या-व्यवहार अपने २ वर्ग के कुलों में ही सीमित हो गया।

राजमान्य महामन्त्री सामन्त

वि० सं० ८२१

यह विक्रम की नवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ है। यह बड़ा ही धनी एवं जिनेश्वरदेव का परम भक्त श्रावक था। इसने भगवान् महावीर के उनत्तीसवें (२९) पट्टनायक श्रीमद् जयानंदसूरि के सदुपदेश से ९०० नव सौ जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार अनंत द्रव्य व्यय करके करवाया था तथा सिद्धान्तों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से भंडारों की स्थापनायें की थीं।१

सिरोही-राज्यान्तर्गत (राजस्थान) हम्मीरगढ़ नामक एक छोटा सा ग्राम है। यह दो सहस्र वर्ष से भी प्राचीन ग्राम है। उस समय इसका प्राचीन नाम दूसरा था। सम्राट् संप्रति का बनवाया हुआ यहाँ एक मन्दिर विद्यमान है, जिसका मंत्री सामंत ने उक्त आचार्य के उपदेश से वि० सं० ८२१ में जीर्णोद्धार करवाया था।२

१–त० पट्टा० पृ० ६६.

२–हम्मीरगढ़ पृ० २१.

कासिन्द्रा के श्री शांतिनाथ-जिनालय के निर्माता श्रे० वामन
वि० सं० १०६१

●

श्रे० वामन के पूर्वज ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व भिन्नमालपुर में रहते थे। श्रे० वामन के पितामह श्रे० गोलंच्छी भिन्नमाल का त्याग करके कासिन्द्रा ग्राम में आकर बसे थे।[१-२] श्रे० गोलंच्छी के जज्जुक, नम्म और राम तीन पुत्र थे। श्रे० गोलंच्छी अत्यन्त ही धनवान था। उसका राजा महाराजाओं में भारी संमान था। वह गुणरूपी रत्नों की खान माना जाता था और अपने वंशरूपी कमल के लिये सूर्य के समान सुख पहुंचाने वाला था। ऐसे श्रेष्ठिवर्य्य गौलंच्छी के तीनों पुत्र भी महागुणाढ्य एवं धर्ममूर्त्ति ही थे। श्रे० वामन श्रे० जज्जुक का पुत्र था। श्रे० वामन भी महागुणी और सदा मोक्ष की इच्छा रखने वाला शुद्धव्रतधारी श्रावक था। श्रे० वामन ने भगवान् शान्तिनाथ का अति ही मनोहर जिनालय वि० सं० १०६१ में बंधवा कर महामहोत्सवपूर्वक उसको प्रतिष्ठित करवाया और उसमें भगवान् शान्तिनाथ की दिव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई।

प्राचीन गूर्जर-मन्त्री-वंश
गूर्जरमहाबलाधिकारी दण्डनायक विमल और उसके पूर्वज एवं वंशज
गूर्जरसम्राट् वनराज : वि० सं० ८०२ से गूर्जरसम्राट् कुमारपाल : वि० सं० १२३३ पर्यन्त

●

महामात्य निन्नक

विक्रम की आठवीं शताब्दी में प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर श्रीमालपुर में निना, निनाक या निन्नक नामक[३] कुलश्रेष्ठि गर्भश्रीमंत प्राग्वाटज्ञातीय एक पुरुष रहता था। वह कुलदेवी अंबिका का परम भक्त था। श्रीमालपुर[४] के प्रसिद्ध धनीजनों में वह अग्रगण्य था। देववशात् उसका द्रव्य कुछ कम हो गया और उसको श्रीमालपुर में रहने में लज्जा का अनुभव होने लगा। वह श्रीमालपुर को परित्यक्त करके गूर्जरप्रदेश के अन्तर्गत आये हुये गांभू नगर में जा बसा। वहाँ वह कुछ ही समय में अपनी बुद्धि, पराक्रम

दंडनायक विमल का प्रपितामह श्रे० निन्नक

१-अ० प्र० जै० ले० सं० लेखांक ६२१. २-प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ४२७.

३-श्री विधिपक्ष (अंचल) गच्छीय 'महोटी पट्टावली', जिसका गुजराती-भाषांतर जामनगर निवासी पं० हीरालाल हंसराज ने किया है के पृ० ८३-११५ देखिये। निन्नक को काश्यपगोत्रीय नरसिंह का पुत्र होना लिखा है, परन्तु इसकी किसी प्रशस्ति-लेख से पुष्टि नहीं होने के कारण यह मान्य नहीं किया गया है।

४-श्रीमालपुराण, हेमचन्द्राचार्यकृत द्वयाश्रय, उपदेशकल्पवल्ली, विमलप्रबन्धादि प्राचीन ग्रंथों में श्रीमालपुर के भिन्नमालपुर, पुष्पमालपुर, रत्नमालपुर और भिन्नमालपुर नाम भिन्न २ युगों में पड़े हैं का उल्लेख मिलता है। वर्तमान् में यह नगर मरुधरप्रान्त के अन्तर्गत है और 'भिन्नमाल' नगर के नाम से प्रख्यात है। मरुधरप्रान्त की राजधानी 'जोधपुर' से भिन्नमालनगर १७ मील दक्षिण, पश्चिम में ७५ मील दूर तथा अर्बुदगिरि से वायव्यकोण में लगभग ५० मील दूर तथा अणहिलपुरपत्तन (गुजरात) से उत्तर में ८० मील पर है।

एवं परिश्रम से पुनः वैसा ही कोटीश्वर एवं प्रसिद्ध हो गया। जब वि० सं० ८०२ में वनराज ने अणहिलपुरपत्तन की नींव डाली, तब वह निन्नक को बड़े सम्मान के साथ अणहिलपुरपत्तन में स्वयं लेकर आया और उसको मन्त्रीपद पर आरूढ़ किया। गूर्जरेश्वर वनराज निन्नक का सदा पितातुल्य सम्मान करता रहा। निन्नक ने भी गूर्जरभूमि एवं गूर्जरेश्वर की तन, मन, धन से सेवा की। निन्नक ने अणहिलपुर में ऋषभ-भवन (आदीश्वर-जिनमन्दिर) बनाया तथा उक्त मन्दिर को ध्वज-पताकाओं से सुशोभित किया।

गूर्जरेश्वर वनराज पर शीलगुणसूरि तथा निन्नक का अतिशय प्रभाव था। इन दोनों को वह अपने संरक्षक एवं पितातुल्य समझता था। फलतः उसके ऊपर जैनधर्म का भी अतिशय प्रभाव पड़ा। गूर्जरेश्वर वनराज ने शीलगुणसूरिगुरु के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के अभिप्राय से पंचासर-पार्श्वनाथ नामक एक विशाल जैनमन्दिर बनाया। इसमें निन्नक के प्रभाव का अधिक फल था।

वनराज पर जैनधर्म का प्रभाव

महामात्य निन्नक की स्त्री का नाम नारंगदेवी था। नारंगदेवी की कुक्षि से महापराक्रमी पुत्र लहर का जन्म हुआ। लहर अपने पिता के तुल्य ही बुद्धिमान, शूरवीर एवं रणनिपुण निकला। नारंगदेवी वीर एवं धर्मात्मा पति की धर्मानुरागिणी एवं उदार चित्तवाली पत्नी थी। उसने अणहिलपुरपत्तन में नारिंगण-पार्श्वनाथस्वामी की वि० सं० ८३८ में प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई। महामात्य निन्नक ने अपनी पतिपरायणा स्त्री के नाम से नारंगपुर नामक एक नगर बसाया और उस नगर में उसके श्रेयार्थ श्री पार्श्वनाथ-चैत्यालय बनाया, जिसकी प्रतिष्ठा शंखेश्वरगच्छीय श्रीमद् धर्मचन्द्रसूरिजी के उपदेश से हुई। सम्राट् वनराज का देहावसान वि० सं० ८६२ में हुआ। इसकी मृत्यु के २-४ वर्ष पूर्व ही महामात्य निन्नक स्वर्गवासी हुआ। महामात्य निन्नक अपनी अन्तिम अवस्था तक गूर्जर-साम्राज्य की सेवा करता रहा। इसमें कोई शंका नहीं कि अगर गूर्जरसम्राट् वनराज अणहिलपुर एवं अपने वंश का प्रथम गूर्जरसम्राट् था, तो निन्नक गूर्जरसाम्राज्य की नींव को सुदृढ़ करने वाला प्रथम महामात्य था। वनराज की मृत्यु के पूर्व ही लहर ने अपने योग्य वृद्ध पिता का अमात्य-भार सम्भाल लिया था।

निन्नक की स्त्री नारंगदेवी व पराक्रमी पुत्र लहर

दंडनायक लहर

गूर्जरसम्राट् वनराज को हाथियों का बड़ा शौक था। महामात्य निन्नक ने भी हाथियों का एक विशाल दल खड़ा किया था। लहर वीर एवं महा बुद्धिमान था। पिता की उपस्थिति में ही वह दंडनायक-पद पर आरूढ़ हो चुका था। वह अपने पिता के सदृश ही अजेय योद्धा, महापराक्रमी पुरुष था। एक महाबलशाली गूर्जर-सैन्य लेकर विंध्याचलगिरि की ओर चला। मार्ग में आई हुई अनेक बाधाओं को पार करता हुआ, विहड़ वन, उपवन, अगम्य पार्वतीय संकीर्ण मार्गों में होकर विंध्यगिरि के

दंडनायक विमल का पितामह दंडनायक लहर

---

*चन्पुमहणाह अणहिल्लपुरे पणरायनिवइनीएण। विञ्झाहरगच्छेरिसहजिणहरं तेण कारवियं ॥

D. C. M. P. (G. O. V. L XXVI.) P. 253 (चन्द्रप्रभस्वामी-चरित्र)

विषम प्रदेश में पहुँचा। अनेक हाथियों को पकड़ा और उनको लेकर अपने देश को लौटा। लहर को इस प्रकार हाथियों को ले जाता हुआ सुनकर, देखकर अनेक नरेन्द्रों ने लहर पर आक्रमण किये। परन्तु महापराक्रमी लहर और उसके वीर एवं दुर्जेय योद्धाओं के समक्ष किसी शत्रु का बल सफल नहीं हुआ। इस प्रकार लहर अनेक उत्तम हाथियों को लेकर अपने प्रदेश गूर्जर में प्रविष्ट हुआ। सम्राट् वनराज ने जब सुना कि दंडनायक लहर अनेक उत्तम हाथियों को लेकर सकुशल आ रहा है, वह भी अणहिलपुरपत्तन से लहर का सम्मान करने के लिये संडस्थलनगर पहुंचा। लहर के इस साहस पर सम्राट् वनराज अत्यन्त मुग्ध हुआ और लहर को जागीर में संडस्थलनगर और टंकशाल-अधिकार प्रदान किया। दंडनायक लहर ने संडस्थलनगर में एक विशाल मन्दिर बनवाया और उसमें लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करवाई। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि वह जैसा लक्ष्मी का पुजारी था, वैसा ही अनन्य पुजारी सरस्वती का भी था। दंडनायक लहर को उपरोक्त विजययात्रा में विपुल द्रव्य-समूह की भी प्राप्ति हुई थी। उसने अपनी टंकशाल में उक्त द्रव्य की स्वर्ण-मुद्रायें बनवाकर उन पर लक्ष्मी की मूर्त्ति अंकित करवाई।

लहर* दीर्घायु था और वह लगभग डेढ़ सौ (१५०) वर्ष पर्यन्त जीवित रहा तथा लगभग १३० वर्ष वह दंडनायक और अमात्यपद जैसे महान् उत्तरदायी पदों पर रहकर गूर्जर-भूमि एवं गूर्जर-सम्राटों की अमूल्य सेवा करता रहा। महामात्य निन्नक तथा दंडनायक लहर की दीर्घकालीन एवं अद्वितीय सेवाओं का ही प्रताप था कि

*चावड़ावंश के शासकों के नामों में तथा उनके शासनारूढ़ होने के संवतों में जो भ्रम है, वह तब तक दूर नहीं होगा, जब तक कोई अधिक प्रकाश डालने वाला आधार प्राप्त नहीं होगा। फिर भी जैसा अधिक इतिहासकार कहते हैं कि चावड़ावंश का राज्य वि० सं० ८०२ से वि० सं० ६६२ तक रहा, मैं भी ऐसी ही मान्यता रखता हूँ। वनराज चावड़ा का महामात्य निन्नक, नानक नाम वाला पुरुष था, जिसको मैंने निन्नक करके वर्णित किया है। महामात्य निन्नक का अन्तिम पुत्र लहर और लहर का अन्तिम पुत्र वीर था। वनराज वि० सं० ८०२ में शासनारूढ़ हुआ और बालक मूलराजचालुक्य वि० सं० ६६३ में। इस १६१ वर्ष के अन्तर में केवल निन्नक और लहर का ही अमात्यकाल प्रवाहित रहा, यह कुछ इतिहासकारों को खटकता है। वनराज की आयु जब ११० वर्ष और उसके पुत्र योगराज की आयु १२० वर्ष की थी, तब समझ में नहीं आता इतिहासकार लहर को दीर्घायु मानने में क्यों शंका करते हैं। 'History stands on its own legs and not others' provided'. वनराज के अन्तिमकाल में लहर ने अपने पिता निन्नक का अमात्यभार सम्भाल लिया था। लहर ने लगभग वि० सं० ८६० में अमात्यपद ग्रहण किया और वह इस पद पर आरूढ़ होने के पश्चात् लगभग १३० वर्ष पूर्ण महामात्य रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, अगर हम उसकी आयु १५० वर्ष के लगभग मानने में आश्चर्य नहीं करते हैं तो।

वे इतिहासकार जो लहर को इतना दीर्घायु होना नहीं मानते, वीर को लहर का पुत्र होना भी नहीं मानते हैं; क्योंकि वीर मूलराज चालुक्य का महामात्य था, जो वि० सं० ६६८ से शासन करने लगा था।

श्री हरिभद्रसूरिविरचित 'चन्द्रप्रभस्वामी चरित्र' के अन्त में दी हुई श्री विमलशाह के वंश की प्रशस्ति वि० सं० १२२३ के अनुसार भी वीर लहर का पुत्र सिद्ध होता है, क्योंकि इस प्रशस्ति में लहर और वीर के बीच किसी अन्य पुरुष का वर्णन नहीं है। अर्बुदगिरिस्थ विमलवसति में वि० सं० १२०१ का दशरथ का शिलालेख है। जिससे सिद्ध है कि दशरथ वीर मंत्री के पौत्र का पौत्र (प्रपौत्र-पुत्र) था और वीर मंत्री का शरीरान्त वि० सं० १०८५ में हुआ। इस प्रकार वीर से पांचवीं पीढ़ी में दशरथ हुआ है। दशरथ जैसा प्रतिभासम्पन्न पुरुष सौ वर्ष से कम पूर्व हुये अपने प्रपितामह के विश्रुत पिता और प्रपितामह के नामों को नहीं जाने या अपनी अति विश्रुत मात्र पांच या छः पीढ़ियों के क्रमवार नाम उत्कीर्ण करवाने में भूल कर जाय अमाननीय है। वीर जब चालुक्य मूलराज का, जो वि० सं० ६६८ में शासन चलाने लगा था, महामात्य है और वह वि० सं० १०८५ में स्वर्गवासी हुआ, तथा वह लहर का पुत्र था, सहज सिद्ध हो जाता है कि लहर दीर्घायु था और उसका अमात्यकाल १३० एक सौ तीस वर्ष पर्यन्त रहा है।

चावड़ावंशीय सम्राट् गूर्जर-साम्राज्य को जमाने में सफल हो सके। लहर ने क्रमशः पाँच गूर्जर-सम्राटों की सेवायें की। निन्नक और लहर की सेवाओं का गूर्जरभूमि एवं गूर्जर-सम्राटों पर अद्वितीय प्रभाव पड़ा और परिणाम यह हुआ कि निन्नक के वंशज उत्तरोत्तर गूर्जर-सम्राट् कुमारपाल के शासनकाल तक अमात्य तथा दंडनायक जैसे महोत्तरदायी पदों पर लगातार आरूढ़ होते रहे।

दंडनायक लहर का वीर नामक पुत्र था। लहर के समय में ही वह योग्य पद पर आरूढ़ हो चुका था। अपने पिता के समान ही वीर भी शूरवीर, नीतिज्ञ एवं दीर्घायु हुआ। इसने चालुक्यवंशीय प्रथम गूर्जर-सम्राट्

दंडनायक विमल के पिता महात्मा वीर

मूलराज से लेकर उसके पश्चात् गूर्जरभूमि के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होने वाले सम्राट् चामुण्डराज, वल्लभराज एवं दुर्लभराज की दीर्घकाल तक सेवायें कीं।

और देखिये! गुर्जरेश्वर सम्राट् कुमारपाल के महामात्य पृथ्वीपाल के अर्बुदगिरिस्थ विमलवसतिगत वि० सं० १२०४ के लेख से भी वीर मंत्री लहर का पुत्र था और लहर निन्नक का पुत्र था सिद्ध होता है।

पृथ्वीपाल और दशरथ में से एक या दोनों ने अपने क्रमशः पितामह धवल और लालिग को देखा होगा और धवल और लालिग में से एक या दोनों ने अपने दीर्घायु पितामह वीर को देखा होगा और वीर के मुँह से उन्होंने निन्नक और लहर की कीर्त्ति-कथाओं का कभी वर्णन सुना ही होगा और अपने पौत्र पृथ्वीपाल और दशरथ को उनकी कीर्त्तिकथायें कभी कही ही होंगी। आज भी अगर हम किसी प्रौढ़ समझदार व्यक्ति से उसके कुछ पूर्वजों के नाम पीढ़ीक्रम से पूछना चाहें तो शायद ही कोई व्यक्ति मिलेगा जो क्रमशः अपने ४-५ पीढ़ियों में हुये परंपरित पूर्वजों के नाम नहीं बता सकता हो। यह बात केवल साधारण श्रेणी के पुरुषों के लिये है। असाधारण प्रतिभासम्पन्न पुरुषवरों के लिये क्रमशः अपने असाधारण पराक्रमी ५-६ पीढ़ियों में उत्पन्न हुये पूर्वजों के नाम जानना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इतना अवश्य मानना पड़ेगा और सिद्ध भी हो जाता है कि दीर्घायु लहर निन्नक का अन्तिम पुत्र था और लहर का वीर अन्तिम पुत्र, जिसका जन्म लहर की सौ वर्ष की आयु पश्चात् हुआ होगा। इस विषमकाल में आज भी कोई न कोई ऐसे दीर्घायु पुरुष मिल ही जावेंगे, जिनकी आयु १५० वर्ष के लगभग होगी। अतः मुनिराज साहब जयंतविजयजीका अपनी 'अ० प्रा० जै० ले० संदोह' के अवलोकन भाग पृ० २७१ की चरणपंक्तियों में यह लिखना कि 'मं० वीर लहर नो साक्षा पुत्र नहीं, पण तेमना वंशमां पाछल थयेल मानी शकाय'—इतने प्राचीन लेख, प्रशस्ति आदि की विद्यमानता पर केवल कल्पना प्रतीत होती है। इतिहासकारों के निकट अर्वाचीन कल्पनाओं की अपेक्षा प्राचीन शिलालेख एवं प्रशस्तियों का मूल्य अधिक है।

'विमल-प्रबन्ध के कर्त्ता ने लिखा है 'नीन मंत्रि गामुं जाणीउ, बेटा लहिर सहित आणीउ'। यह लिखना कि निन्नक स्वयं महामात्यपद पर आरूढ़ हुआ था, लहर उत्पन्न हो चुका था—अमान्य है। विमलप्रबन्ध के कर्त्ता का उद्देश्य केवल चरित्रनायक की कीर्त्ति ग्रथित करने का था; अतः अगर ऐतिहासिक तत्त्वों की ऐसे प्रसङ्गों पर अवहेलना हो जाती है तो सम्भाव्य है।

वग्गंततुरयघट्टस्स विंझगिरिसंनिवेसपत्तस्स। समग्गगहियकुंजरघडस्स तह नियपुरसमुहं॥
आगमिरस्स रिऊहिं तग्गयगहणूसुएहिं सह समरे। जस्सेह विंझवासिणीदेवी घणुहम्मि अवइन्ना॥
ता पत्तसत्तुविजएण तेण सा विंझवासिणीदेवी। पणयजणपूरियासा ठविया रू (सं) डत्थलग्गामे॥
अह लच्छि-सररसईओ सहम्मगुणाणुरंजियाओ व्व। जस्सुज्झियईसाउ मुंचंति न संनिहाणं पि॥
तह सिरिवल्लो वल्लो वित्तपड़ो जेण टंकसालाए। संठविओ लच्छी व्व निवेसिया सयलमुद्दासु॥

D. C. M. P. (G. O. V. LXXVI.) P. 254. (चन्द्रप्रभस्वामी-चरित्र)

लंणइ लहिर लहिर आपणी, वेगि गयु वंध्याचल भणी। 'गरथ चडई गज घट ल्यावीउ', तु राजा सम्मुख मानीउ॥४४॥

वि० प्र० खं० ३ पृ० १००

चिह्नित पंक्ति का अर्थ लालचन्द्र-भगवानदास यह करते हैं कि 'गरथ चड़े गज घटा लाव्या' परन्तु, अर्थ यह है कि 'गज घटा रूपी बृहद् द्रव्य को लाया'। उक्त प्रकार विमल-प्रबन्ध के कर्त्ता विंध्याचल के संनिवेश में से हाथियों के लाने की घटना का ही वर्णन करते हैं।

भारतवर्ष के इतिहास में दशवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी उस समय के छोटे-बड़े राजाओं में चलती प्रतियोगिता एवं प्रतिद्वंद्वताओं के लिये अधिक कुप्रसिद्ध हैं, जिसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष पर यवनों के आक्रमण हुये हैं। इन शताब्दियों में समूचा उत्तर-भारत धीरे २ यवन-आक्रमणकारियों से पद्दलित हुआ, अपने गौरव एवं मान से भ्रष्ट हुआ। ऐसे विषम एवं महाविपत्तिपूर्ण समय में कोई जो लगातार चार महापराक्रमी सम्राटों का महामात्य रहा हो वह कितना वीर, योग्य एवं दृढ़ साहसी व बुद्धिमान होगा और वह भी फिर गूर्जरभूमि जैसी सम्पत्ति एवं वैभवपूर्ण धरा का।

सम्राट् चामुण्डराज की महामात्य वीर पर अधिक प्रीति रही। इसका कारण यह था कि चामुण्डराज की अधिक आयु हो जाने पर भी उसको पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। एक समय महाप्रभावक आचार्य वीरगणि अणहिलपुर-पत्तन में पधारे। सम्राट् चामुण्डराज आचार्य वीरगणि का बड़ा भक्त था। एक दिन सम्राट् चामुण्डराज ने महा-मन्त्री वीर को कहा कि मेरे तुम्हारे जैसा महात्मा महामात्य है और महाप्रभावक वीरसूरि जैसे गुरु हैं, फिर भी

साडथले लीधूं मेहलाण, गज देपी रा थयु हराण। साडथलूं तव किद्ध पसाइ, लोक भणइ न वरांशिउ राइ ॥४५॥
चिहुँ दिशि मुहुत लहिरनि चड्या, टंकसालि सोनैया पड्या। टंकसाल कीधी आपणी, राजन मया करि छि घणी ॥४६॥
—वि० प्र० स० ३ पृ० १००-१०१.

यह पूर्व ही चरणपंक्ति में लिखा जा चुका है कि चावड़ावंश के सम्राटों के नामों में तथा उनके शासनारूढ़ होने के संवतों में भ्रम है। परन्तु यह तो सिद्ध है कि प्रथम चालूक्यसम्राट् मूलराज वि० सं० ६६८ से शासन करने लगा था।

शासन—काल

(विक्रम-संवतों में)

रासमाला		प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास		प्रबन्ध चिन्तामणि	
१—वनराज	८०२-८६२	१—वनराज	८२१-८३६	१—वनराज	८०२-८६२
२—योगराज	८६२-८६७	२—चामुंडराज	८३६-८६२	२—योगराज	८६२ ८६७
३—क्षेमराज	८६७-६२२	३—योगराज	८६२-८६१	३—क्षेमराज	८६७-६२२
४—भुवड़ (विथु)	६२२-६५१	४—रत्नादित्य	८६१-८६४	४—भूवड़	६२२-६५१
५—वैरीसिंह (विजयसिंह)	६५१-६७६	५—वैरीसिंह	८६४-६०५	५—वैरीसिंह	६५१-६७६
६—रत्नादित्य (रावतसिंह)	६७६-६६१	६—क्षेमराज	६०५-६३७	६—रत्नादित्य	६७६-६६१
७—सामंतसिंह	६६१-६६८	७—चामुंडराज	६३७-६६४	७—सामंतसिंह	६६१-६६८
	१६६	८—घाघड़	६६५-६६२		१६६
		६—भूभूट	६६३-१०१७		
			१६६		

रा० मा० भा० १ पृ० ३६, ३७, ३८. प्र० चि० पृ० १४, १५ (वनराजादि प्रबन्ध)

सो चालुक्कसिरिमूलराय-चामुण्डरायरज्जेतु। वल्लहराय-णराहिवदुल्लहरायाणमवि काले॥
निच्चं पि एक्कमंती जाओ पज्जंतचरियचारित्तो। सिरिमूलरायनरवइरज्जालयंकुरो वीरो॥

D. C. M. P. (G. O. V. no. LXXVI.) (चन्द्रप्रभस्वामी-चरित्र) P. 254.

श्रीमन्मूलनरेन्द्रसंनिधिसुधानिस्यंदसंसेकित प्रज्ञापात्रमुदात्तदानचरितस्तत्सूनुरासीद (द्व) रः ॥४॥
निजकुलकमलदिवाकरकल्पः सकलार्थिसार्थककल्पतरुः। श्रीमद् वीरमहत्तम इति यः ख्यातः क्षमावलयेः ॥५॥
—अ० प्र० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ५१

एक चिंतारूप ज्वर मुझको रात-दिन पीड़ित करता रहता है। महात्मा वीर ने राजा की चिंता के कारण को वीरसूरिजी[1] के समक्ष निवेदन किया। सूरिजी महाराज ने वीर मन्त्री को अभिमन्त्रित वासक्षेप प्रदान किया और कहा कि इसको राणी के मस्तिष्क पर डालने से राजा को यथावसर पुत्र की प्राप्ति होगी। यथावसर राजा को वल्लभराज एवं दुर्लभराज दो पराक्रमी पुत्रों की प्राप्ति हुई। सम्राट् चामुण्डराज महात्मा वीर का आयु भर आभार मानता रहा और उसके पश्चात् उसके दोनों पुत्रों ने भी महात्मा वीर का मान अक्षुण्ण बनाये रक्खा।

वीर की स्त्री और उसके पुत्र नेढ़ और विमल

वीर की स्त्री का नाम वीरमति था। वीरमति की कुक्षी से नेढ़[2] और विमल नामक दो महामति एवं पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुये। वीर जैसा योग्य महामात्य था, शूरवीर योद्धा था, वैसा ही उत्तम कोटि का श्रावक[3] एवं धर्मवीर था। उसने अपनी अन्तिम अवस्था में समस्त सांसारिक वैभव, अतुल सम्पत्ति, प्रिय स्त्री, पुत्र, कलत्र, महामात्यपद को छोड़कर चारित्र (साधुपन) ग्रहण किया और इस प्रकार परलोकसाधन करता हुआ वि० सं० १०८५ में स्वर्गवासी हुआ।[4] उसके दोनों पुत्र नेढ़ और विमल उसकी

१-संडेरकगच्छीय चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य प्रभाचन्द्रसूरि ने वि० सं० १३३४ में 'प्रभावकचरित्र' नामक एक अमूल्य ग्रंथ की रचना की है। उक्त ग्रंथ में १५वां वीरसूरि-प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध में उक्त घटना का वर्णन है। घटना सच्ची प्रतीत होती है, परन्तु वीरगणी का समय ग्रंथकर्त्ता ने इस प्रकार लिखा है, जो मिथ्या है।

जन्म—सं० ९३८ दीक्षा—सं० ९८० निर्वाण सं०—९९१।

सम्राट् चामुण्डराज का शासनकाल वि० सं० १०५३-६६,
,, वल्लभराज का ,, ,, १०६६-६६३
,, दुर्लभराज का ,, ,, १०६६३-७७

इन शासन-संवतों से तो यही प्रतीत होता है कि तब दशवीं शताब्दी में उत्पन्न वीरसूरि और कोई दूसरे आचार्य होंगे। इस नाम के अनेक आचार्य हो गये हैं। या ग्रंथकर्त्ता ने भूल से अन्य इसी नाम के आचार्य का काल उक्त आचार्य का निर्देश कर दिया है।

२-श्रीमन्नेढ़ो धीधनो धीरचेता आसीन्मंत्री जैनधर्मैकनिष्ठः। आद्यः पुत्रस्तस्य मानी महेच्छः त्यागी भोगी बंदुपद्माकरेन्दुः ॥६॥
द्वितीय को द्वैतमतावलंबी दण्डाधिपः श्री विमलो बभूव।...॥७॥
अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ५१ (विमलवसतिगत लेख)

वीरकुमर गेहड़ी मझारी, वीरमती परणाविउ नारि। राजकाज छांड्या व्यापार, मनशुद्धई माडिउ व्यवहार ॥५०॥
जोउ जोउ विमल जनम हूउरे, जोउ जोउरे हौआ त्रिभुवन जाण तु।...॥६२॥
वि० प्र० पृ० १०२,१०५

विमलप्रबन्ध के कर्ता का उद्देश्य चरित्रनायक की कीर्त्तिकथा वर्णन करने का है, नहीं कि ऐतिहासिक दृष्टि से कारणकार्य पर विचार करते हुए समय, स्थान का पूर्ण ध्यान रखते हुये घटनाओं का क्रम सजाने का। जैसा सिद्ध है कि विमल का ज्येष्ठ भ्राता नेढ़ था, परन्तु विमलप्रबन्धकर्त्ता ने नेढ़ का यथास्थान उल्लेख नहीं किया है जो अखरता है।

पचासवीं गाथा की द्वितीय पंक्ति भी यहां अखरती है। 'राज्यकार्य छोड़ दिया, आत्मा की शुद्धि में लग गये' और फिर ६२वीं (बासठवीं) गाथा में पुत्रोत्पत्ति का वर्णन करना रचनाशैली की दृष्टि से आलोच्य है।

उत्तमकोटि का श्रावक वह ही कहा जा सकता है जो श्रावक के १२ बारह व्रतों का परिपालन करने का व्रत लेता है और यथाविध उनको आचरता है।

३-प्राणिवधो[1] मृषावादो[2] ऽदत्तं[3] मैथुनं[4] परिग्रहश्चैव[5]। दिग्[6] भोगो[7] दंडः[8] सामायिक[9] देशस्तथा[10] पोषधा[11] विभागः[12]॥

४-उपदेशकल्पवल्ली और विमल-प्रबन्ध में लिखा है कि जब मंत्री वीर के स्वर्गारोहण के पश्चात् विधवा वीरमती दारिद्र्य से अति पीड़िता हो उठी और द्वेषी मनुष्यों से सताई जाने लगी, तब वह पत्तन छोड़ कर अपने पुत्रों सहित अपने पिता के घर चली गई और वहीं दुःख के दिवस निकालने लगी। यह कथा असत्य एवं निराधार प्रतीत होती है। कारण कि वि० सं० १०८८ में विमलशाह ने अर्बुदगिरि पर विमलवसति नामक जगद्विख्यात मन्दिर (१८,५३,००,०००) रुपये व्यय करके विनिर्मित करवाया तथा कई वर्ष इससे पहिले वह विवाहित हो चुका था, सम्राट् भीमदेव उसकी वीरता एवं पराक्रम से प्रसन्न होकर उसको महादंडनायकपद पर आरूढ़ कर चुके थे,

जीवित अवस्था में ही क्रमशः महामात्यपद एवं दंडनायकपदों पर आरूढ़ हो चुके थे। पत्तनवासी श्रे० श्रीदत्त की गुणशीला एवं अति रूपवती कन्या श्रीदेवी के साथ में विमल का विवाह हुआ था।

महामात्य नेढ़

●

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, नेढ़ महात्मा वीर का ज्येष्ठ पुत्र था। नेढ़ प्रखर बुद्धिमान, धर्मात्मा एवं शान्तप्रकृति पुरुष था। गूर्जर-सम्राट् भीमदेव प्रथम के शासन-समय में यह महामात्य रहा।* गूर्जर-महामात्यों में नेढ़ अपने स्वाभिमान के लिये प्रसिद्ध रहा है। अतिरिक्त इन अनेक गुणों के वह महादानी तथा दृढ़ जैनश्रावक था।

दंडनायक विमल का ज्येष्ठ भ्राता महामात्य नेढ

महाबलाधिकारी दंडनायक विमल

●

यह नेढ़ का कनिष्ठ भ्राता था। यह बचपन से ही अत्यन्त वीर एवं निडर था। विमल को धनुपविद्या, घुड़सवारी और अन्य अस्त्र-शस्त्र के प्रयोगों में बड़ी रुचि थी। वह ज्यों-ज्यों बड़ा हुआ, उसकी वीरता एवं निडरता की चर्चा दूर-दूर तक फैलने लगी। विमल जैसा वीर एवं निडर था, वैसा ही अद्वितीय रूपवान, गुणवान, ब्रह्मव्रती, धर्मव्रती था। विमल को अनेक गुणों में अद्वितीय देखकर उस समय के लोग कल्पना करने लगे थे कि उसको ये सारे विशिष्ट गुण आरासण की अम्बिकादेवी ने उसके शील और धर्मव्रत पर प्रसन्न होकर प्रदान किये हैं। कुछ भी हो विमल अद्वितीय धनुर्धर-योद्धा

विमल का दंडनायक बनना

वह सौराष्ट्र, कुंकण, दम्भण, सजाये, चीखली, सौपारक आदि अनेक प्रदेशों के राजाओं को परास्त कर चुका था तथा चन्द्रावती को आधीन करके वहीं शासन कर रहा था। उपरांत इनके वि० सं० १०८५ में पिता की मृत्यु के समय और इससे भी पूर्व नेढ़ और विमल योग्य एवं महत्वशाली पदों पर आरूढ़ हो चुके थे।

*तत्थ य निहणियदोसो पयड़ियकमलोदओ दिणयरो व्व। सिरिभीमएवरज्जे नेढो त्ति महामई पढमो॥

D. C. M. P. (G. O. V, LXX VI.) P. 254 (चन्द्रप्रभस्वामि-चरित्र).

श्रीमन्नेढो धीधनो धीरचेता आसीन्मंत्री जैनधर्मैकनिष्ठः। आद्यः पुत्रस्तस्य मानी महेच्छः भोगी बन्धुपद्माकरेंदुः॥६॥

अ० प्रा० जै० ले० स० भा० २ लेखाङ्क ५१ (विमलवसतिगत प्रशस्ति)

विमलवसति से सम्बन्धित हस्तिशाला में विनिर्मित दश हाथियों में एक हाथी महामात्य नेढ़ के स्मरणार्थ बनवाया गया है:—

(४) सं० १२०४ फागु (ल्गु) ण सुदि १० शनौ दिने महामात्य श्री नेढ़कस्य।

—अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखाङ्क २५१

महामात्य नेढ का इससे अधिक उल्लेख नहीं मिलता है।

था। अद्वितीय-धनुर्धर विमल की ख्याति को गूर्जरसम्राट् भीमदेव तक पहुंचने में अधिक समय नहीं लगा। सम्राट् भीमदेव ने विमल को गूर्जर-महासैन्य का महाबलाधिकारी दंडनायक नियुक्त किया।*

गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्र० के समय में महमूद गजनवी के आक्रमणों का प्रकोप, जो उसके पिता सम्राट् दुर्लभराज के समय में उत्तर भारत में प्रारम्भ हो चुका था, अत्यन्त बढ़ गया और गूर्जरभूमि महमूद गजनवी के आक्रमणों की भयंकरता से त्रस्त हो उठी। वि० सं० १०८२ में महमूद अजमेर को जीतकर, गूर्जरभूमि में होता हुआ सोमनाथ की विजय को बढ़ा। मार्ग में गूर्जरसम्राट् भीमदेव ने अपनी महाबलशाली सैन्य को लेकर महमूद का सामना किया, परन्तु महमूद की प्रगति को रोकने में असफल रहा। महमूद जब सोमनाथ मन्दिर पर पहुंचा, तब भी भीमदेव महागूर्जर सैन्य को लेकर सोमनाथ की

महमूद गजनवी और भीमदेव में प्रथम मुठभेड़

*नव यौवन नवलु संयोग, देवी देवइ चंङ्गई भोग। कुंअर कहइ परनारी नीम अएपरएिइ तुह्य मानूं किम ॥७१॥
शील लगइ तूठी अम्बिका, जिणि वर दीधा पोतइ थेका। बाण प्रमाण गाउ ते पंचे, हय लक्षणनां लक्ष प्रपंच ॥७२॥
नव नव रूपे निरतई निर्मला, श्रीजी अद्भुत अक्षर कला। .... ॥७३॥

विमल जब १३ वर्ष का था, तब आरासणनगर की अम्बिकादेवी ने उसके रूप पर मुग्ध होकर उसके शील की परीक्षा करनी चाही। अम्बिका ने एक परम रूपवती कन्या का रूप धारण किया और विमल के आगे केली-क्रीड़ा करके उसको विमोहित करने लगी। परन्तु विमल अपने ब्रह्मचर्यव्रत में अडिग रहा। अन्त में देवी ने प्रसन्न होकर विमल को तीन वरदान दिये कि वह बाणविद्या, अक्षर-कला एवं अश्व-परीक्षा में अद्वितीय होगा। उक्त किंवदन्ती से हमको मात्र इतना ही आशय लेना चाहिये कि विमल सुरबालाओं को विमोहित करने वाले अद्वितीय रूप-सौन्दर्य का धारक था। वह जैसा रूपवान था, वैसा अद्वितीय धनुर्धर एवं सफल अश्वारोही था। विमल का बाण बहुत दूर २ तक जाता था।

अर्बुदगिरिस्थ विमलवसति नामक जगद्विख्यात आदीश्वरचैत्य में दंडनायक विमल ने आरासण की खान का आरासण नामक प्रस्तर का उपयोग किया है। आरासणस्थान यहां पर अवस्थित अम्बिकादेवी के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक है। आदीश्वर-चैत्य के बनाने में आरासण की अम्बिकादेवी ने विमल की सहायता की थी। क्योंकि बिना किसी दैवी-सहायता के ऐसा अलौकिक, अद्भुत देवों से भी दुर्विनिर्मित चैत्य कैसे बनाया जा सकता है, ऐसा उस समय के तथा पीछे के लोगों ने अनुमान किया है। अनेक देशों के महापराक्रमी राजाओं को जीतने में भी विमल को अवश्य किसी दैवीशक्ति का सहाय रहा हुआ होगा, ऐसी कल्पना करना भी उस समय के या पीछे के लोगों के लिये सहज था। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लोगों ने पराक्रमी विमल के विषय में उसके बचपन से ही यह अनुमान लगा लिया कि आरासण की अम्बिका उसको अपने ब्रह्मचर्यव्रत में अडिग देखकर उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुई और विमल जब तक जीवित रहा, उस पर उसकी कृपा सदा एकसी बनी रही।

एक दिवस गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्र० अपने अजेय योद्धाओं की बाणकला का अभ्यास देख रहे थे। अनेक योद्धाओं के बाण निशानें तक नहीं पहुँच रहे थे। अनेक बाण निशान के इधर उधर होकर निकल जाते थे। स्वयं सम्राट् भी निशाना बेंधने में असफल रहे। विमल यह सब दूर खड़ा-खड़ा देख रहा था और हँस रहा था। सम्राट् ने विमलशाह को निकट बुलाया और निशाना बेंधने का आदेश दिया। विमल ने बात की बात में निशाना बेंध दिया। इस पर सम्राट् अत्यन्त प्रसन्न हुआ और यह जान कर कि विमल का बाण १० मील तक जाता है और वह पत्र-बींधन, कर्णफूल-छेदन जैसे महा कठिन कलाभ्यासों में भी प्रवीण है, उसने विमल को पांच सौ अश्व और एक लक्ष रुपयों का पारितोषिक देकर महाबलाधिकारी-पद से विभूषित किया।

विमल-प्रबन्धकर्त्ता ने वि० प्र० सं० ६ के पद्य २१, २७ में पृ० १८२, १८३ पर उक्त घटना का वर्णन किया है। हमको उक्त घटना से केवल यह ही अर्थ लेना है कि विमल धनुर्विद्या में अद्वितीय कलावान था और उसमें साहस, निडरता, स्वाभिमान जैसे वे समस्त गुण थे, जो एक सफल सेनाधीश में होने चाहिए।

विमल की माता का विमल को लेकर अपने पिता के घर जाकर रहना, वहां विमल का पशु चराना और ऐसी ही अन्य बातें लिख देना—ये सब विमल-प्रबन्ध के कर्त्ता की केवल परिकल्पना है। जिसका वंश ही मंत्री-वंश हो और जिसका ज्येष्ठ भ्राता महामात्य हो, उसको इतना निर्धन लिख देना कितना सत्य-संगत हो सकता है—विचारणीय है।

रक्षार्थ पहुँचे। महमूद भीमदेव की इस चेष्टा से अत्यन्त कुपित हुआ। भीमदेव सोमनाथ से लौटकर खान्दादुर्ग में पहुँचा और महमूद से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। महमूद भी अपने धर्मान्ध सैन्य को लेकर उक्त दुर्ग की ओर बढ़ा और उसको चारों ओर से घेर लिया। अन्त में महमूद की विजय हुई। परन्तु महमूद के हृदय पर गूर्जरसैन्य के पराक्रम का भारी प्रभाव पड़ा और भीमदेव से सन्धि करके वह गजनी लौट गया। इन रणों में गूर्जरमहाबलाधिकारी दंडनायक विमलशाह का पराक्रम एवं शौर्य्य कम महत्व का नहीं रहा होगा।[१]

महमूद गजनवी के सोमनाथ के आक्रमण के समय भीमदेव प्र० का राज्य मात्र कच्छ, सौराष्ट्र और सारस्वत तथा सतपुरामण्डल पर ही था। महमूद गजनवी जब गजनी लौट गया तो भीमदेव ने दंडनायक विमल[२] की तत्त्वावधानता में गूर्जरसैन्य को लेकर सिंध के राजा पर आक्रमण किया और उसको परास्त किया और फिर तुरन्त सौराष्ट्र और कच्छ के माण्डलिकों को जो महमूद गजनवी के सोमनाथ-आक्रमण का लाभ उठाकर स्वतन्त्र हो चुके थे, परास्त कर डाला और उनके राज्यों को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। इससे भीमदेव प्र० का राज्य और सम्पत्ति अतुल बढ़ गई। महाबलाधिकारी दंडनायक विमल ने इन रणों में भारी पराक्रम प्रदर्शित किया। जिसके फलस्वरूप उसको अपार धनराशि भेंट तथा पारितोपिक रूप में प्राप्त हुई। इस प्रकार भीमदेव प्र० के लिये यह कहा जा सकता है कि महमूद गजनवी के आक्रमणों से उसको अर्थ-हानि होने के स्थान में लाभ ही पहुंचा और इसका अधिक श्रेय उसके योग्य मन्त्रियों को है जिनमें महामात्य नेढ़ और दंडनायक विमल भी हैं।

दंडनायक विमल की बढ़ती हुई ख्याति, शक्ति एवं समृद्धि को प्रतिस्पर्द्धी मन्त्रीगण एवं अन्य राजमानीता व्यक्ति सहन नहीं कर सके। भीमदेव प्र० को उन लोगों ने विमलशाह के विरुद्ध बहकाना, भड़काना प्रारम्भ किया। अन्त में विमलशाह को पता हो गया कि भीमदेव के हृदय में उसके प्रति डाह उत्पन्न हो गई है और पत्तन में अब

१—भारतवर्ष में आज तक लिखे गये प्राचीन, अर्वाचीन समस्त इतिहास केवल मात्र राजपुत्रों, राजाओं एवं सम्राटों तथा उनके परिजनों के इतिहास मात्र रहे हैं। अन्य वर्ण, वर्ग, ज्ञाति, गोत्रों के महापराक्रमी पुरुषों का वर्णन इनमें आज तक किसी ने नहीं किया है। अतः अगर गुर्जरमहाबलाधिकारी दण्डनायक विमल की वीरता का वर्णन हमको उक्त इतिहासों में तथा ऐसे अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं मिलता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। महाबलाधिकारी-पद से ही हम सहज समझ सकते हैं कि उक्त पद का अधिकारी कोई अद्वितीय रणनिपुण, महापराक्रमी अजेय योद्धा ही हो सकता है और वह किसी भी प्रबल शत्रु के द्वारा किये गये आक्रमण को विफल करने के लिये किसी भी यत्न में अनुपस्थित नहीं रह सकता है। विमल के पराक्रम की पुष्टि एक इस घटना से भी हो जाती है कि विमलशाह ने रोमनगर में बारह सुलतानों को एक साथ परास्त किया था। इस घटना का वर्णन प्रसंगवश आगे किया जायगा।

M. I. by Ishwariprasad P. 102-107

२—येन सिंधुधराधीश संग्रामे दारुणे पुनः। व्यधायि वीररत्नेन, सहाय्यं निजभूभुजः ॥१५॥ व० च० प्र० ८

(1) In 1025 A. C. .. ..Bhim was just a vassal king ruling over Sarasvata and Satyapura Mandalas, and Kachha and parts of Saurastra. V. P. 135.

Bhim was one of the leaders of the pursuing army and obtained a victory over the king of Sind. VI. P. 141.

His dominions had grown rich in money and architecture, for, it was in 1030 A. C. that his minister Vimala built the world famous temples at Abu. V. P. 136

G. G. Part III.

अधिक ठहरना संकटविहीन नहीं है। दंडनायक विमल चाहता तो उपद्रव खड़ा कर सकता था, जिसको शान्त करना भीमदेव के लिये सरल नहीं था और भीमदेव को भारी मूल्य चुकाना पड़ता, परन्तु धर्मव्रती एवं स्वामिभक्त विमल के लिये ऐसा सोचना भी तुच्छता थी। वह तुरन्त अपने चुने हुये योद्धाओं, पैदलों तथा सहस्रों घोड़ों और सुवर्ण और चाँदी, रत्न, जवाहरातों से भरे ऊँटों को लेकर पत्तन छोड़कर चल निकला।* उस समय चन्द्रावती का राजा धंधुक भीमदेव की आज्ञाओं की अवहेलना कर रहा था तथा स्वतन्त्र होने का प्रयत्न कर रहा था। वमल अपना वशाल सैन्य लेकर चन्द्रावती की ओर ही चल पड़ा। चन्द्रावतीनरेश धंधुक ने जब सुना कि दंडनायक विमल मालवण तक आ पहुंचा है और चन्द्रावती पर आक्रमण करने के लिये भारी सैन्य के साथ बढ़ा चला आ रहा है, वह चन्द्रावती छोड़कर सपरिवार भाग निकला और मालवपति सम्राट् भोज की शरण में जा पहुंचा। विना युद्ध किये ही विमल को चन्द्रावती का राज्य प्राप्त हो गया। विमल जैसा पराक्रमी, शूरवीर था, वैसा ही स्वामिभक्त था। वह चाहता तो आप चन्द्रावती का स्वतन्त्र शासक बन सकता था, लेकिन ऐसा करना उसने अपने कुल में कलंक लगाना समझा। तुरन्त उसने चन्द्रावती राज्य में महाराजा भीमदेव प्रथम की

Bhim no doubt emerged stronger through his conflict with Mahmud. In 1026 A. C. he had added Saurastra and Kachha to his dominions.

Vimala, the son of Mahatma Vira, was as great minister as a military chief. V. P. 142
G. G. Part III.

*भीमदेव प्रथम और दंडनायक विमल में अन्तर कैसे बढ़ता गया का वर्णन वि० प्र० स० ६, ७ में निम्न प्रकार दिया है और उससे पाठकों को केवल इतना ही तात्पर्य ग्रहण करना है कि विमल की उन्नति उसके दुश्मनों को सहन नहीं हो सकी और अन्त में विमल को पत्तन छोड़ कर जाना उचित लगा।

१—विमल के शत्रुओं ने राजा को बहकाया कि विमल आपको नमस्कार नहीं करता है, वरन् वह जब आपके समक्ष झुकता है, उस समय वह अपने दाँये हाथ की अंगुलिका की अंगुठी में रही हुई जिनेश्वरदेव की चित्रमूर्ति को ही नमस्कार करता है। भीमदेव प्र० ने जाच की तो बात सत्य थी कि विमल दाँये हाथ को आगे करके ही प्रणाम करता है।

२—शत्रुओं ने राजा भीमदेव प्र० को बहकाया कि विमल के घर इतनी धन-समृद्धि है कि उतनी किसी राजा के घर नहीं होगी। भीमदेव प्र० कारण निकालकर एक दिवस दंडनायक विमल के घर प्राहुत हुआ और विमल के वैभव को देख कर दंग रह गया और भय खाने लगा कि विमल मेरा एक दिवस राज्य छीन ही लेगा; अतः उसको किसी युक्ति से मरवा डालना चाहिये। परन्तु यह काम सरल नहीं था।

३—विमल के शत्रुओं से मंत्रणा करके राजा भीमदेव प्र० ने नगर में एक भयंकर सिंह को पिंजरे में से छुड़वा दिया। वह सिंह नगर में उत्पात मचाने लगा। नगरजन स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे सर्व भयभीत होकर अपने २ घरों में घुस बैठे। भीमदेव प्र० ने राज्य-सभा में विमल की ओर देख कर कहा, "विमलशाह! कोई वीर है जो इस सिंह को जीवित पकड़ लावे।" इतना सुनना था कि दंडनायक विमल उठा और सिंह के पीछे दौड़ा और सिंह को पकड़ कर राज-सभा में ला उपस्थित किया। विमल के शत्रुओं के तेज ढीले पड़ गये।

४-विमल के शत्रुओं ने विमल के लिये भीमदेव प्र० के एक महाबली मल्ल से भिड़ने का षड्यंत्र रचा। परन्तु विमल उसमें भी सफल हुआ और मल्ल विमल से परास्त हुआ।

५—विमल के शत्रुओं ने जब देखा कि उनके सारे यत्न निष्फल जा रहे हैं, तब अन्त में उन्होंने राजा भीमदेव को यह सम्मति दी कि वे विमल से छप्पनकोटि का कर्ज जो उसके पूर्वजों में राज्य-कोष का शेष निकलता है चुकाने को कहे। विमल जब निर्धन हो जायेगा, तब उसका यश, मान एवं पराक्रम अपने आप कम पड़ जावेगा। विमल ने जब यह सुना तब वह समझ गया कि राजा को मुझसे ईर्ष्या उत्पन्न होने लग गयी है, अतः अब यहाँ रहना उचित नहीं है, ऐसा सोच कर वह पत्तन छोड़ कर चन्द्रावती की ओर चला गया।

आन प्रवर्ता दी और महाराजा भीमदेव के पास पत्तन में यह शुभ समाचार अपने दूत द्वारा भिजवा दिया। महाराजा भीमदेव विमल की स्वामिभक्ति पर अत्यन्त ही मुग्ध हुआ और उसने अपने मन्त्रियों को बहुमूल्य उपहारों के साथ चन्द्रावती भेजा और चन्द्रावती-राज्य का शासक दंडनायक विमल को ही बना दिया।[१] दंडनायक विमल तो धर्मव्रती श्रावक था, वह किसी अन्य के धन, राज्य का उपभोक्ता कैसे बनता। चन्द्रावती-नरेश धंधुक को, जो मालवपति भोज की शरण में था बुलाकर और समझा-बुझाकर उसे पुनः महाराजा भीमदेव की आधीनता स्वीकार करवाने और चन्द्रावती का राज्य उसको पुनः सौंप देने का विचार रखता हुआ दंडनायक विमल महाराजा भीमदेव के प्रतिनिधि के अधिकार से चन्द्रावती के राज्य पर शासन करने लगा। नाडोल के राजा ने विमलशाह को स्वर्णसिंहासन अर्पण किया और जालोर, शाकंभरी के राजाओं ने भी अमूल्य भेंटें भेजकर विमलशाह की प्रसन्नता प्राप्त की। विमल यवनों का कट्टर शत्रु था। महमूद गजनवी के यद्यपि आक्रमण अब बन्द हो गये थे; फिर भी उसकी कुछ फौजें, जो हिन्दुस्तान में रह रही थीं, उत्पात करती थीं और लोगों को हैरान करती थीं।[२]

'१—अह भीमएव नरवइवयणेण गहीयसयलरिउविहवो। चड्डावल्लीविसयं स पहुवलइं ति भुंजंतो ॥'

D. C. M. P. (G. O. V. LXX. VI) P. 254. (चन्द्रप्रभस्वामी-चरित्र)

He (Vimala) is credited with having quelled a rebellion of Dhandhuka, the Paramara king of Candravati near Abu.

G. G. Part III VI. P. 152.

'जै मन्दिरि सामहणी करी, साढ़ि सोलसिइं सोविन भरी। पाखरि पंचसया असवार, बीजा पंच सहस तोखार ॥१४॥
पायक सहस मिल्या दस सार, अवर अनेरा वर्ण अढार। पोताना गज सथिइं लीध, बीजा तुरी अढारणी कीद्ध ॥१५॥'

—वि० प्र० स० ७ पृ० ११२

'चन्द्रावती को प्राकृत में चड्डावली कहते हैं। 'चड्डावलीविसयं स पहुवलइं ति भुंजंतो।'

D. C. M. P. (G. O. V. L XXVI.) P. 254 (चन्द्रप्रभस्वामी-चरित्र)

चन्द्रावती-प्रदेश को अर्बुदप्रदेश, अष्टादशशत (ती) मंडल—अष्टादशशतग्राम-मण्डल भी कहते हैं। जिसका अर्थ यह है कि चन्द्रावती-राज्य में १८०० ग्राम, नगर थे।

चन्द्रावती सम्बन्धी न्यूनाधिक वर्णन, परिचय हरिभद्रसूरिकृत चन्द्रप्रभस्वामि-चरित्र के अन्त में दी गई विमल-प्रशस्ति में, विमल-चरित्र में, हेमद्वयाश्रय में, विनयचन्द्रसूरिकृत काव्य-शिक्षा में, प्रभाचन्द्रसूरिकृत प्रभावक-चरित्र में विमलवसति के तथा लूणिगवसति के अनेक लेखों में तथा अन्य अनेक ग्रंथों में मिलता है।

अन्य प्राचीन ग्रंथ एवं पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में रची गयी तीर्थमाला के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रावती अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध नगरी थी। इस में ८४ चौटा थे, महा विशाल एवं भोयरावाले अट्ठारह जिन मन्दिर थे। बम्बई सरकार की ओर से वि० सं० १८८७ में प्रकाशित 'गुजरातसर्वसंग्रह' के आधार पर जाना जाता है कि चन्द्रावती अर्बुदाचल से १२ माईल के अन्तर पर बसी हुई थी। पांचवीं शताब्दी से लगाकर १५वीं शताब्दी तक यह अत्यन्त समृद्धिशाली नगरी रही है। पन्द्रहवीं शताब्दी में सुल्तान अहमदशाह ने चन्द्रावती के भव्य एवं विशाल भवनों को तोड़ कर, प्राप्त सामग्री का उपयोग अहमदाबाद को रमणीक नगर बनाने में किया था। यह परमार राजाओं की राजधानी रही है। व्यापार, धन, समृद्धि, रमणीकता आदि अनेक बातों से यह अति प्रसिद्ध नगरी थी।

—वि० प्र० खं० ७.

२—रोमनगर के युद्ध की घटना को इतिहासकार एक दम सच्ची नहीं मानते हैं। इसका एक ही कारण यह है कि रोमनगर नाम तो पाश्चात्यशैली का नाम है और इस नाम का नगर अभी तक सुनने में भी नहीं आया है। दूसरा कारण यह है कि जब यवनों का राज्य १२वीं शताब्दी में जमने लगा था, उसके बहुत पूर्व ११वीं शताब्दी में हिन्दुस्तान में यवनसुल्तानों का होना और वह एक नहीं बारह

विमलशाह ने युद्ध की तैयारी की और एक बहुत बड़ा सैन्य लेकर उक्त यवनों से युद्ध करने चल पड़ा। रोमनगर के स्थान पर दोनों के बीच भारी संग्राम हुआ। यवन-सैन्य जो महमूद गजनवी के प्रसिद्ध बारह सैन्यपदाधिकारी सामन्तों, जिन्हें सुल्तान भी कहते हैं की आधीनता में थीं, परास्त हुई। उक्त बारह सुल्तानों ने अपने ताज विमलशाह को अर्पण करके उसकी आधीनता स्वीकार की। इस प्रकार जय प्राप्त कर विमल चन्द्रावती लौट आया। चन्द्रावती आकर उसने धंधुक को, जो मालवपति की शरण में रह रहा था बुलवाकर समझाया। जब उसने भीमदेव प्र० की आधीनता पुनः स्वीकार कर ली, तब दंडनायक विमल ने भीमदेव प्र० की आज्ञा लेकर चन्द्रावती का राज्य उसको लौटा दिया। विमल के त्याग, शौर्य्य, औदार्य्य और निस्पृह गुणों का यहाँ परिचय मिलता है।

चन्द्रावती का राज्य धंधुक को पुनः देकर दंडनायक विमलशाह ने चार कोटि स्वर्ण-मुद्रायें व्यय करके विशाल संघ के साथ में श्री विमलाचलतीर्थ (शत्रुंजय महातीर्थ) की यात्रा की। इस संघयात्रा में गूर्जर, मालव एवं राजस्थान के अनेक संघपति, सामन्त, श्रीमन्त एवं सद्गृहस्थ लाखों की संख्या में सम्मिलित हुये थे। ऐसा विशाल संघ कई वर्षों से नहीं निकला था। संघ में सहस्रों बैलगाड़ियां, शकट और सुखासन थे। संघ की रक्षा के लिये विमल के चुने हुये वीर योद्धा एवं अनेक सामन्त और मांडलिक राजा थे। संघयात्रा करके जब विमलशाह चन्द्रावती लौटा तो उसने बहुत बड़ा सधार्मिक वात्सल्य करके सधर्मी बन्धुओं की अपार संघभक्ति की और विपुल द्रव्य दान दिया।

सम्राट् भीमदेव विमलशाह के शौर्य्य एवं पराक्रम से पहिले तो भयभीत-सा रहता था, परन्तु उसकी चन्द्रावती की जय और चन्द्रावती-राज्य में गूर्जरपति के नाम से शासन की घोषणा, पुनः गूर्जरभूमि के कट्टर शत्रु यवनों की विमल के हाथों पराजय श्रवण करके वह विमल को तथा उसकी देश एवं राजभक्ति को भली विध पहिचान गया। ऐसे न्यायी, निस्वार्थ एवं अद्वितीय योद्धा का अपमान करके भीमदेव अत्यन्त दुःख एवं पश्चात्ताप करने लगा। उसने विमल को प्रसन्न करने के अनेक प्रयत्न किये, पुनः पत्तन में आकर सम्राट् की सेवा में रहने का आग्रह किया; परन्तु विमल ने चन्द्रावती और उसके प्रदेश में ही रहने का अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया। जब विमलशाह विमलाचलतीर्थ की संघयात्रा करके चन्द्रावती लौटा तो गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्र० ने दंडनायक विमलशाह को चन्द्रावती एवं अन्य गूर्जरराज्य के अधीन राजाओं के ऊपर निरीक्षक नियुक्त कर दिया। अजमेर, शाकंभरी

और उन सब को एक स्थान पर परास्त करना अघटित-सी लगती है। मेरी समझ में ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ एकदम सांगोपांग असत्य नहीं हो सकती है। वर्णन में अंतर भले ही न्यूनाधिक आ सकता है। महमूद के चले जाने पर भी गुजरात, कन्नौज, सिंध, उत्तर-पश्चिमी भारत पर उसका अवश्य प्रभाव रहा है। अतः यह बहुत सम्भव है कि विमलशाह जैसे पराक्रमी दंडनायक से उसकी फौज से अवश्य मुठभेड़ हुई है। यह अधिक सम्भव लगता है कि यवनसैन्य में बारह उच्च कोटि के सामन्त अथवा सैन्य-पदाधिकारी होंगे। उच्च यवन-पदाधिकारी सुल्तान भी कहे जा सकते हैं। H. M. I.

खरतरगच्छ की एक पट्टावली में जिसकी रचना सत्तरवीं शताब्दी में हुई प्रतीत होती है, वर्द्धमानसूरि का परिचय देते हुए लेखक ने लिखा है, 'गाजण ना १२ पातिशा होना छत्रोना उद्दालक, चन्द्रावती नगरीना स्थापक विमल दंडनायके करील विमलवसति मां ध्यानबलथी, वश करेल वालीनाह क्षेत्रपाले प्रकट करेल धनमय आदीश्वरमूर्तिना तेओ स्थापक हता।'

—गू० म० पृ० ६७ पर दिये चरण लेख नं० १७.

गाजणापति का अर्थ गजनवी है। उक्त अंश से भी यही सिद्ध होता है कि दंडनायक विमल ने १२ गजनवी सुल्तानों को परास्त किया था। कहीं २ बारह और कहीं २ तेरह सुल्तानों को विमल ने परास्त किये के उल्लेख मिलते हैं। जै० सा० सं० इति पृ० २१०

के राजा, नाडोल तथा जालोर के राजाओं के साथ में गूर्जरसम्राट् की अनबन थी, इस दृष्टि से भी दंडनायक जैसे पराक्रमी एवं नीतिज्ञ व्यक्ति का ऐसे स्थान में, जहाँ से वह शत्रु राजाओं की हलचल को सतर्कता से देख सकता था तथा उनपर अंकुश रख सकता था, रहना उचित ही था। चन्द्रावती ही एक ऐसा स्थान था जो सर्व प्रकार से उपयुक्त था। अतः विमलशाह अपने अन्तिम समय तक चन्द्रावती में ही रहा। वैसे चन्द्रावती से विमलशाह को व्यक्तिगत स्नेह भी था। विमलशाह आरासण की अम्बिकादेवी का परमभक्त था। आरासणस्थान चन्द्रावती के सन्निकट तथा चन्द्रावती-राज्य के अन्तर्गत ही था। उसके लिये चन्द्रावती में रहने के विभिन्न कारणों में प्रबल कारण एक यह भी था।*

विमलशाह ने अपने शासन-समय में चन्द्रावतीनगरी की शोभा बढ़ाने में अतिशय प्रयत्न किया था। विमलशाह के वहाँ रहने से वह नगरी अत्यन्त सुरक्षित मानी जाने लगी थी। उसका व्यापार, कला-कौशल एक दम उन्नत हो उठा था। अनेक श्रीमन्त जैनकुटुम्ब और प्रसिद्ध कलामर्मज्ञ, शिल्पकार वहाँ आकर बस गये थे। कुम्भारियातीर्थ तथा अर्बुदगिरितीर्थ के जैन एवं जैनेतर मन्दिरों के निर्माण में अधिक श्रम चन्द्रावती के प्रसिद्ध एवं कुशल कारीगरों का है, ऐसा कहने में कोई हिचक नहीं है। धंधुक को चन्द्रावती का राज्य पुनः सौंप देने से भी चन्द्रावती की बढ़ती हुई शोभा एवं उन्नति में कोई अन्तर नहीं आया था, क्योंकि महापराक्रमी एवं अतुल वैभवशाली दंडनायक विमल चन्द्रावती तथा अचलगढ़ दुर्ग में ही अन्तिम समय तक अपने प्रसिद्ध अजेय सैन्य के साथ रहा था। समस्त चन्द्रावती-प्रदेश से ही उसको संमोह-सा हो गया था।

अभी जहाँ जगद् विख्यात विमलवसतिका अवस्थित है, वहाँ उस समय चम्पा के वृक्ष उगे हुये थे। किसी एक चम्पा वृक्ष के नीचे भगवान् आदिनाथ की जिनप्रतिमा निकली। दंडनायक विमल को जब यह आनन्ददायी समाचार प्राप्त हुये वह अर्बुदगिरि पर पहुंचा और उक्त प्रतिमा के दर्शन कर अति आनन्दित हुआ। प्रतिमा को उसने सुरक्षित स्थान पर रखवा दी और पूजन-अर्चन की समस्त व्यवस्था करके चन्द्रावती लौट आया। उन्हीं दिनों में चन्द्रावती में प्रसिद्ध आचार्य धर्मघोषसूरि विराजमान थे। दंडनायक विमल उनकी सेवा में पहुंचा और उनसे उक्त प्रतिमा सम्बन्धी वर्णन निवेदन किया। दंडनायक विमल को महान् धर्मात्मा जानकर आचार्यजी ने

*ध्यानलीन मनास्तथौ, विमलोऽपि ततः स्थिरम्। अम्बिकापि जवादित्य, तमाचष्टेति तद्यथा ॥४७॥ वि० च० प्र० ८ पृ० ११७
सचिरमर्बुदाधिपत्यमभुनक्, गुर्ज्जरेश्वर प्रसत्तेः। प्र० को० १४७ पृ० १२१ (वि० प्र०)

चन्द्रावती-राज्य अर्बुदप्रदेश कहाता था। अर्बुदाचल से ठीक थोड़ी दूरी पर पूर्व, दक्षिण में मेदपाट, पूर्वोत्तर में नाडोल, उत्तर में अजमेर तथा पश्चिमोत्तर में जालोर के राज्य थे। चन्द्रावती अवशेष हो गई, परन्तु अन्य सर्व नगर आज भी विद्यमान हैं। अर्बुदाचल से बीस मील दक्षिण पूर्व में आरासण की पर्वतमाला आई हुई है। इस पर्वतश्रेणी के मध्य में आरासणनगर बसा हुआ था। पीछे से गरासीज्ञाति के कुम्भा नामक किसी व्यक्ति ने आरासण पर अपना अधिकार स्थापित किया। उस समय से यह स्थान कुम्भारिया नाम से प्रसिद्ध हुआ। वर्तमान् में यह दाताभवानगढ़-राज्य के अन्तर्गत है।

विमल आरासण की अम्बिकादेवी का परम भक्त था। जैसा ऊपर कहा गया है कि आरासण चन्द्रावती-राज्य के अन्तर्गत था, दंडनायक विमल अर्बुदाचल की रमणीय एवं उन्नत पर्वतश्रेणियों, पार्वतीय समतल स्थलों से भलीभांति परिचित ही नहीं था, लेकिन उनसे उसको अति मोह भी हो गया था। आरासण जाते-आते इन्हीं स्थलों में होकर जाना पड़ता है तथा शत्रुओं को छकाने में भी इन स्थलों का उपयोग बड़ा ही लाभकारी सिद्ध हो चुका था। विमल जैसे पराक्रमी एवं धर्मवती पुरुष को अगर ऐसे स्थलों से अधिक मोह उत्पन्न हो जाय तो आश्चर्य की बात नहीं थी।

उसी स्थान पर जहाँ मूर्त्ति प्रकट हुई थी, एक अति विशाल एवं शिल्पकला का ज्वलंत उदाहरणस्वरूप जिन-प्रासाद बनवाकर उक्त प्रतिमा को उसमें प्रतिष्ठित करने की सुसम्मति दी। विमलशाह आचार्यश्री की सम्मति पाकर बड़ा ही आनन्दित हुआ और घर आकर अपनी पतिपरायणा, धर्मानुरागिणी स्त्री से सर्व घटना कह सुनाई। दोनों स्त्री-पुरुषों ने विचार किया कि संतान-प्राप्ति की इच्छा तो एक मोह का कारण है और सन्तान कैसी निकले यह भी कौन जानता है, परन्तु जिनशासन की सेवा करना तो कुल, ज्ञाति, देश एवं धर्म के गौरव को बढ़ाने वाला है। ऐसा विचार कर विमलशाह ने उक्त स्थान पर श्री आदिनाथ-बावन-जिनालय बनवाने का दृढ़ संकल्प कर लिया। जैसलमेर के श्री सम्भवनाथ-मन्दिर की एक बृहद् प्रशस्ति में लिखा है कि खरतरविधिपक्ष के आचार्य श्रीमद् वर्धमानसूरि के वचनों से मन्त्री विमल ने अर्बुदाचल पर जिनालय बनवाया। विमलवसहि की प्रतिष्ठा के अवसर पर भिन्न २ गच्छों के ४ चार आचार्य उपस्थित थे, ऐसा तो माना जाता है।

वह स्थान जहाँ पर आदिनाथ-जिनालय बनवाने का था, वैष्णवमती ब्राह्मणों के अधिकार में था। दंडनायक विमल जैसा धर्मात्मा महापुरुष भला ब्राह्मणों के स्वत्व को नष्ट करके कैसे अपनी इच्छानुसार उक्त स्थान को उपयोग में लाने का और वह भी धर्मकृत्य के ही लिये कैसे विचार करता। उक्त स्थान को उसने चौकोर स्वर्णमुद्रायें बिछाकर मोल लिया। इस कार्य से विमल की न्यायप्रियता, धर्मोत्साह जैसे महान् दिव्य गुण सिद्ध

'चन्द्रकुले श्री खरतरविधिपक्षे श्रीवर्धमानाभिधसूरि राजो जाताः क्रमादर्बुदपर्वताग्रे। मंत्रीश्वर श्री विमलाभिधानः प्राचीकरद्यद्वचनेन चैत्यं' ॥१॥
जै० ले० सं० भा० ३ पृ० १७ ले० २१३६ (१०)

उक्त घटना को विमलशाह सम्बन्धी ग्रंथों में निम्न प्रकार वर्णित किया गया है:—

एक रात्रि को आरासण की अम्बिकादेवी ने विमलशाह को स्वप्न में दर्शन दिया और वरदान मांगने को कहा। विमलशाह ने दो वरदान मांगे। एक तो यह कि उसके पराक्रमी सन्तान उत्पन्न होवे, द्वितीय यह कि वह अर्बुदगिरि पर जगद्-विख्यात आदिनाथ जिनालय बनवाना चाहता है, उसमें वह सहायभूत रहे। देवी ने उत्तर में कहा कि वह उसका एक विचार पूर्ण कर सकती है। इस पर विमलशाह ने अपनी पतिपरायण एवं धर्मानुरागिणी स्त्री की संमति लेकर अम्बिका से प्रार्थना की कि वह आदिनाथ-जिनालय बनवाना चाहता है। देवी ने तथास्तु कह कर उक्त कार्य में पूर्ण सहायता करने का अभिवचन दिया।

यह अनुभवसिद्ध है कि मुहुर्मुहु हम जिस बात का अधिक चिंतन करते हैं, तद्संबन्धी स्वप्न होते ही हैं। अतः विमलशाह को स्वप्न का आना असत्य अथवा अस्वाभाविक कल्पना मानना मिथ्या है। प्राचीन समय के लोगों में अपने इष्ट स्वप्नों में पूर्ण विश्वास होता था और वे फिर उसी प्रकार वर्तते भी थे। अनेक प्राचीन ग्रंथ इस बात की पुष्टि करते हैं।

प्र० को० ४७, पृ० १२१ (व० प्र०)

मूर्ति सम्बन्धी घटना इस प्रकार है कि जब विमलशाह का विचार अर्बुदगिरि पर आदिनाथ-जिनालय के बनवाने का निश्चित हो गया तो उसने कार्य प्रारम्भ करना चाहा, परन्तु वैष्णवमतानुयायियों ने यह कह कर अड़चन डाली कि अर्बुदगिरि आदिकाल से वैष्णवतीर्थ रहा है, अतः उसके ऊपर जिनालय बनवाना उसके धर्म पर आघात करना है। इस पर फिर विमलशाह को स्वप्न हुआ कि अमुक स्थान पर भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा भूमि में दबी हुई है, उसको बाहर निकालने से अर्बुदगिरि पर जैनमन्दिर पहिले भी थे सिद्ध हो जायगा। दूसरे दिन विमलशाह ने उक्त स्थान को खुदवाया तो भगवान् आदिनाथ की अति प्राचीन भव्य प्रतिमा निकली और इस प्रकार अर्बुदगिरि जैनतीर्थ भी सिद्ध रहा।

इस बाधा के हट जाने पर जब मन्दिर बनवाने का कार्य प्रारम्भ किया जाने को था तो वैष्णव ब्राह्मणों ने यह आन्दोलन किया कि यह भूमि जहां मन्दिर बनवाया जा रहा है, उनकी है। अतः अगर वहां मन्दिर बनवाना अभिष्ट हो, तो उक्त जमीन को चौकोर स्वर्ण-मुद्राएँ बराबर बराबर बिछा कर मोल लेवें। विमलशाह ने ऐसा ही करके उक्त भूमि को मोल ली।

होते हैं। इस प्रकार वि० सं० १०८६ में मन्दिर का निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ। संसार के अति प्राचीनतम एवं शिल्पकला के अति प्रसिद्ध एवं विशाल नमूनों में विमलवसति का स्थान बहुत ऊँचा है, ऐसा भव्य जिनालय वि० सं० १०८८ में बन कर तैयार हो गया। उक्त मन्दिर के बनवाने में कुल १८,५३,००,०००) रुपयों का सद्व्यय हुआ। १५०० कारीगर और २००० हजार मजदूर नित्य काम करते थे—ऐसा लिखा मिलता है।

दण्डनायक विमलशाह द्वारा अनन्य शिल्प-कलावतार श्री अर्बुदगिरिस्थ आदिनाथ—विमलवसहि की व्यवस्था

वि० सं० १०८८ में स्नात्र-महोत्सव करके दंडनायक विमलशाह ने १८ भार (एक प्रकार का तोल) वजन में स्वर्णमिश्रित पीत्तलमय सपरिकर ५१ एकावन अंगुल प्रमाण श्री आदिनाथबिंब को ध्वजाकलशारोहण के साथ प्रतिष्ठित करवा कर श्री विमलवसहि के मूलगर्भगृह में श्री मूलनायक के स्थान पर संस्थापित करवाया।

मन्दिर की देख-रेख रखने के लिये तथा प्रतिदिन मन्दिर में स्नात्रपूजादि पुण्यकार्य नियमित रूप से होते रहने के लिए दंडनायक विमल ने अर्बुदगिरि की प्रदक्षिणा में आये हुये मुंडस्थलादि ३६० ग्रामों में प्राग्वाटकुलों को बसाया और प्रत्येक ग्राम अनुक्रम से प्रतिदिन विधिसहित मन्दिर में स्नात्रादि पुण्यकार्य करें ऐसी प्रतिज्ञा से उनको अनुबंधित किया। उक्त ३६० ग्रामों में बसने वाले प्राग्वाटकुलों को राज्यकर से मुक्त करके तथा अनेक भाँति से उन पर परोपकार करके उनको महाधनी बनाया, जिससे वे मन्दिरजी की देख-रेख सहज और सुविधापूर्वक नित्य एवं नियमित तथा अनुक्रम से कर सकें।

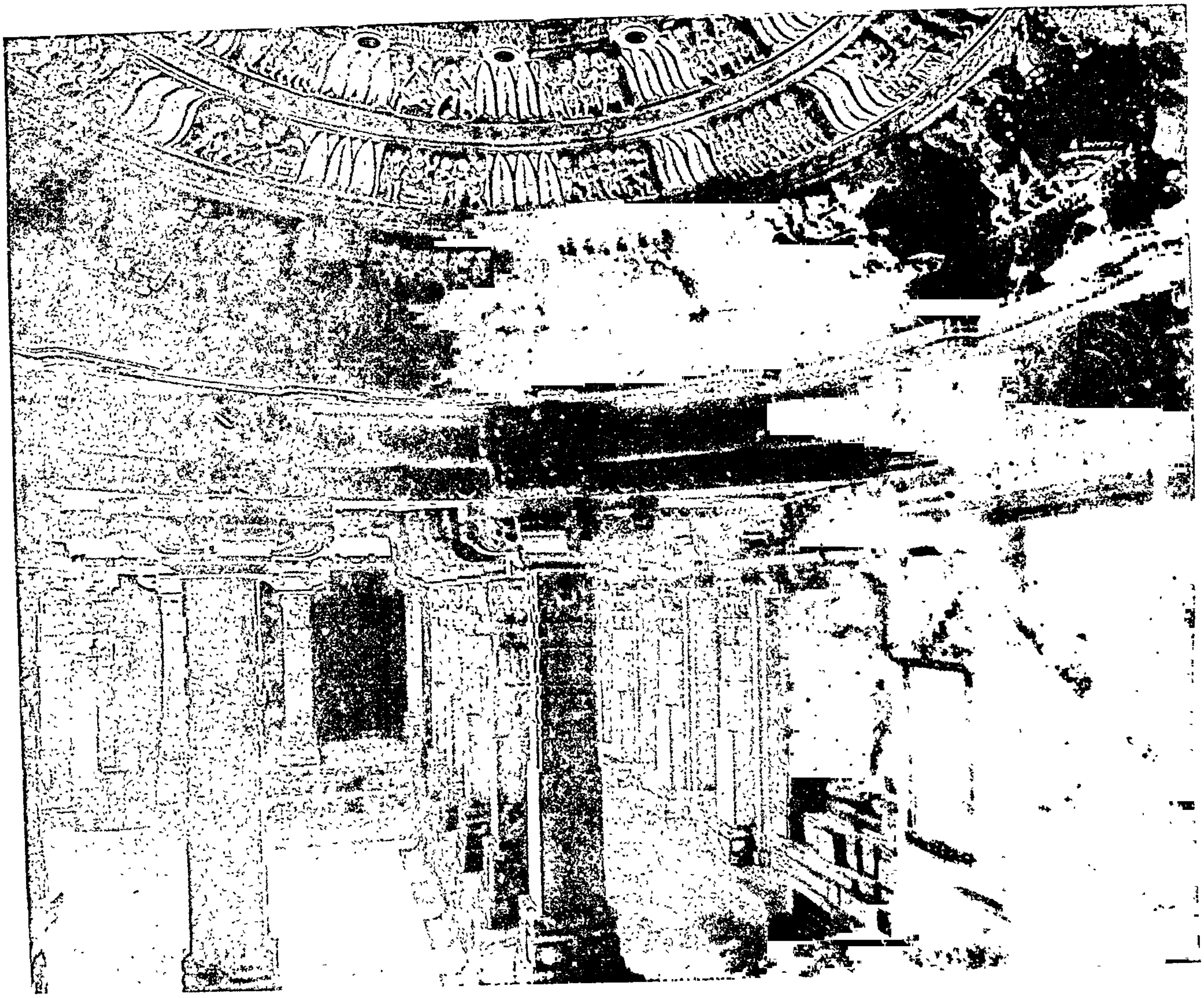
तीसरी बाधा फिर यह उत्पन्न हुई कि जब मन्दिर का कार्य प्रारम्भ हुआ तो उक्त स्थान पर रहने वाले वालिनाह नामक एक भयंकर यक्ष ने उत्पात मचाना शुरू किया। दिन भर में जितना निर्माण-कार्य होता वह यक्ष रात्रि में नष्ट कर डालता। अन्त में वालिनाह और विमल में द्वंद्व युद्ध हुआ। उसमें वालिनाह परास्त हुआ और अपना स्थान छोड़ कर अन्यत्र चला गया। तत्पश्चात् निर्माण कार्य निरापद चालू रहा।

विमलशाह के समय में मजदूरी अत्यन्त ही सस्ती थी। आज के एक साधारण मजदूर को जो रोजाना मिलता है, उतना उस समय में १०० मजदूरों को मिलता था। अब पाठक अनुमान लगा लें। कितने सहस्र मजदूर एवं कारीगर कार्य करते होंगे।

पं० श्री लालचन्द्रजी भगवानदासजी वालिनाह को उस भूमि का कोई ठक्कुर—भूमिपति वालिनाथ नाम का होना अनुमान करते हैं।

'चन्द्रावतीनगरीशेन श्री विमलदण्डनायकेन स्व कारिताऽर्बुदाचलमण्डन श्री विमलवसति मूलनायक १८ भारमितस्वर्णमिश्ररीरीमय सपरिकर ५१ अंगुल प्रमाणाऽऽदीश्वरस्य प्रत्यह स्नात्राध्वजारोपोत्सवार्थ मुण्डस्थलादि ३६० ग्रामेषु प्राग्वाट वासिताः सर्वप्रकारकरमोचनेनोपकारकरणेन महाधनाढ्याः कृताः, ततः प्रत्यहं स्ववारकक्रमेण मुण्डस्थलादि श्री संघैः स्नात्रादिपुण्यानि व्यधीयन्त॥

इत्युपदेश: ४४॥ उ० त० पृ० २२४



श्री शत्रुंजयतीर्थस्थ श्री विमलवसहि । देखिये पृ० ७५ पर ।

श्री साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद के सौजन्य से।

श्री शत्रुंजयमहातीर्थ में विमलवसहि

श्री शत्रुंजयमहातीर्थ की सर्व टूँकों एवं मन्दिरों में श्री आदिनाथ-टूँक का महत्व सर्वाधिक है। श्री आदिनाथ-टूँक को मोटी टूँक और दादा की टूँक भी कहते हैं। इस टूँक का प्रथम द्वार रामपोल है। रामपोल के पश्चात् ही विमलवसहि का स्थान है। वाघणपोल के द्वार से हस्तिपोल के द्वार तक के भाग को विमलवसहि कहते हैं। विमलवसहि के दोनों पक्षों पर अनेक देवालय और कुलिकाओं की हारमाला है। विमलशाह द्वारा विनिर्मित यहाँ इस समय न ही कोई देवालय ही है और न ही कोई अन्य देवस्थान। श्री शत्रुंजयमहातीर्थ पर यवन-आततायियों के अनेक बार आक्रमण हुये हैं और अनेक जिनालय नष्ट-भ्रष्ट किये गये हैं। पश्चात् उनके स्थानों पर नवीन २ जिनालयों का निर्माण होता रहा है। विमलवसहि नाम ही अब महाबलाधिकारी दंडनायक विमलशाह का नाम और उसके द्वारा महातीर्थ की की गई महान् सेवाओं का स्मरण कराता है।

महामात्य धवल का परिवार और उसका यशस्वी पौत्र महामात्य पृथ्वीपाल

महामति नेढ़ के धवल और लालिग नामक दो प्रतिभाशाली पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र धवल धर्मात्मा, विवेकवान, गम्भीर, दयालु, महोपकारी, साधु एवं साध्वियों का परम भक्त तथा बुद्धिमान एवं रूपवान पुरुष था। गूर्जरसम्राट् कर्णदेव के यह प्रसिद्ध मन्त्रियों में से था। धवल के आनन्द नामक महामति पुत्र था।

मन्त्री धवल और उसका पुत्र मन्त्री आनन्द

आनन्द भी महाप्रभावशाली पुरुष था। पिता के सदृश महामति, गुणवान एवं धर्मानुरागी था। यह गूर्जर-सम्राट् सिद्धराज जयसिंह के अति प्रसिद्ध मन्त्रियों में था। आनन्द के दो स्त्रियाँ थीं। पद्मावती और सलूणा। दोनों स्त्रियाँ पतिपरायणा एवं धर्मानुरागवती थीं। पद्मावती के पृथ्वीपाल नामक अति प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। सलूणा के नाना नामक पुत्र था। पृथ्वीपाल का विवाह नामलदेवी नामक अति रूपवती कन्या से तथा नाना का विवाह त्रिभुवनदेवी नामक कन्या से हुआ। पृथ्वीपाल के जगदेव और धनपाल नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये और

जै० ती० इति० पृ० ५२ से ६३.

प्रा० प्रा० जै० ले० सं० भाग २ ले० ५१, पृ० २६ श्लोक ८ में लालिग का नाम आया है।

अह नेढ़महामइणो सिरिकण्णरायरज्जंमि। जाओ निजयसधवलियभुवणो धवलो त्ति सचिविंदो॥
तत्तो रेवंतकदप्पसायसंपत्तउत्तिमसमिद्धी। धणुहाविदेवयासंनिहाए निवड्ढउवसग्गो॥
जयसिंहदेवरज्जे गुरुगुणवमउल्लसंतमाहप्पो। जाओ भुवणाणंदो आणंदो नाम सचिविंदो॥

D. C. M. P. (G. O. V, LXX VI.) P. 255 (चन्द्रप्रभस्वामि-चरित्र)

Dhawalaka, the son of Vimala's brother Mantri Nedha, was also a minister of his (Karna).

G. G. Part III.VI. P. 157.

नाना के भी नागपाल और नागार्जुन दो पुत्र थे। जगदेव का विवाह मालदेवी से तथा धनपाल का रूपिणी के साथ हुआ। जगदेव और धनपाल के महणदेवी नामक एक छोटी बहिन थी।

मन्त्री धवल के परिवार में पृथ्वीपाल अति प्रसिद्ध पुरुष हुआ। यह महाबुद्धिशाली, उदारहृदय, कुशलनीतिज्ञ एवं धर्मात्मा पुरुष था। गूर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह तथा कुमारपाल का यह अत्यन्त विश्वासपात्र मन्त्री था।

महामहिम महामात्य पृथ्वीपाल

पृथ्वीपाल के अनेक गुणों एवं सुकृत कार्यों के कारण मन्त्री धवल के परिवार की ख्याति राज्य, समाज एवं राजसभा में अत्यधिक बढ़ गई। पूर्वजों के सदृश मन्त्री पृथ्वीपाल ने अपने अतुल धन को नव जिन-मन्दिरों के बनाने में, नवजिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाने में तथा जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करने में श्रद्धा एवं भक्ति के साथ व्यय किया।

अणहिलपुरपत्तन में मन्त्री पृथ्वीपाल ने जालिहरगच्छ के आदिनाथ-जिनालय में पिता के श्रेयार्थ, पंचासरा-पार्श्वनाथमंदिर में माता के श्रेयार्थ तथा चंद्रावतीगच्छ के जिनमंदिर में अपनी मातामही (नानी) के श्रेयार्थ मंडप बनवाये।

पत्तन और पाली में निर्माण-कार्य

मरुधर-प्रदेश के अन्तर्गत पाली एक प्रसिद्ध नगर है। पाली को प्राचीन ग्रंथों में पल्लिका लिखा है। पाली के महावीर-मंदिर में जिसको नवलखामन्दिर भी कहते हैं, मंत्री पृथ्वीपाल ने अपने कल्याण के लिये भ० अनंतनाथ और भ० विमलनाथ के बिंबों की वि० सं० १२०१ ज्येष्ठ कृ० ६ रविवार को प्रतिष्ठा करवाई। नवलखामन्दिर एक भव्य एवं प्राचीन जिनालय है। रोह आदि बारह ग्रामों का एक मंडल है। इस मंडल में आये हुये सायणवाड़पुर में अपने मातामह अर्थात् नाना के श्रेयार्थ श्रीशांतिनाथ-जिनालय बनवाया। इस से यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीपाल का अपने नाना और नानी के प्रति कितना भक्तिभरा प्रेम था।

'.................. ....श्री पृथ्वीपालात्मजमहामात्य [धनपालेन महामा] त्य श्री पृथ्वीपालसत्कमातृश्रीपद्मावतीश्रेयार्थं [श्री अभिनं] दनदेवप्रतिमा कामहृदगच्छे श्री सिंहसूरिभिः ॥' अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १०३

'संवत् १२१२ [वर्षे] माघ सुदि बुधे दशम्यां महामात्य श्रीमदानन्द महं० श्री सलूणयोः पुत्रेण ठ० श्री नानाकेन ठ० श्री.......'

'त्रिभुवनदेवीकुक्षिसमुद्भूतस्वसुत...............' अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १६६

'...............श्री पृथ्वीपालभार्या महं० श्री नामलदेव्या आत्मश्रेयसे...............' अ० प्रा० जै० ले० स० भा० २ ले० १०४

'तस्स (आणंदस्स) ससिविमलसीलालंकारविरायमाणसव्वंगी। गुरु विणय.................................रत्तमणा ॥
अहवा... मंजूसा। पउमावइ.................................पिययमा जाया ॥'

D. C. M. P. (G. O. V. LXX VI.) P. 254 (चन्द्रप्रभस्वामि-चरित्र)

'श्री शांतिनाथस्य ॥ संवत् १२४५ वर्षे वैशाख वदि ५ गुरौ महामात्यश्रीपृथ्वीपालात्मजमहामात्यश्रीधनपालेन वृ० भ्रातृ ठ० श्री जगदेवश्रेयसे श्री शांतिनाथ प्रतिमा...............' अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ९८

'श्री मदानन्द सुत ठ० श्रीनाना सुत ठ० श्रीनागपालेन मातृ त्रिभुवनदेव्याः....' अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १५३

'....ठ० श्री नानाकेन ठ० श्री त्रिभुवनदेवीकुक्षिसमुद्भूतस्वसुत दंड० श्री नागार्जुन...' अ० प्रा० जै० ले०सं०भा० २ ले० १६६

'........श्री पृथ्वीपालात्मज ठ० श्री जगदेवपत्नि ठ० श्रीमालदेव्या...............' अ० प्रा० ले० जै० सं० भा० २ ले० १०८

'....प्राग्वाटवंशतिलकायमान [महा] मात्य श्रीधनपालभार्या महं० श्री०रूपिन्या(ण्या)....' अ०प्रा०जै०ले०सं०भा० २ ले० १०९

गु० प्रा० मं० वं० परि० नं० २ पृ० ११६३.

जालिहरगच्छ विद्याधरगच्छ की एक शाखा थी। इस शाखा में प्रसिद्ध विद्वान् देवसूरि हुये हैं, जिन्होंने वि० सं० १२५४ में चड्ढावाण नगर में 'पद्मप्रभ-चरित्र' नामक ग्रंथ की प्राकृत भाषा में रचना की है। —गु० प्रा० मं० वंश पृ० ११६० च० ले० नं० १

अर्बुदाचलस्थ श्री विमलवसति की जो हस्तिशाला है, उसका निर्माण मं० पृथ्वीपाल ने करवाया और उसमें वि० सं० १२०४ फाल्गुण शुक्ला दशमी शनिश्चरवार को महामात्य निन्नक, दंडनायक लहर, महामात्य वीर और नेढ़ तथा सचिवेन्द्र धवल, आनंद और अपने स्मरणार्थ सात हाथियों को चन्नाकर प्रतिष्ठित किया और प्रत्येक हाथी पर उक्त व्यक्तियों में से एक एक की मूर्त्ति स्थापित की और प्रत्येक मूर्त्ति के पीछे दो-दो चामरधरों की मूर्त्तियाँ भी निर्मित करवाईं तथा हस्तिशाला के द्वार के मुख्य भाग में विमल मंत्री की घुड़सवार मूर्त्ति स्थापित की।

विमलवसति की हस्तिशाला का निर्माण

मंत्री पृथ्वीपाल का प्रसिद्ध एवं अति महत्वशाली कार्य अर्बुदगिरिस्थ विमलवसति का अद्भुत जीर्णोद्धार है। यह जीर्णोद्धार उसने वि० सं० १२०६ में करवाकर श्रीमद् शीलभद्रसूरि के शिष्यप्रवर श्रीमद् चन्द्रसूरि के करकमलों से प्रतिष्ठित करवाया। मं० पृथ्वीपाल ने इस शुभ अवसर पर अर्बुदगिरि की संघ सहित यात्रा की और प्रतिष्ठा-कार्य अति धाम-धूम से करवाया। समुद्धार जैसा गौरवशाली कार्य और वह भी फिर अर्बुदाचल पर विनिर्मित अति विशाल, सुख्यात विमलवसति का, जिसमें अतुल धन व्यय किया गया होगा, मं० पृथ्वीपाल ने उसका लेख एक साधारण श्लोक में करवाया, इससे उसकी निरभिमानता, निरीहता और सत्यधर्मनिष्ठा प्रतीत होती है। मंत्री पृथ्वीपाल अपने नाम के अनुसार ही सचमुच पृथ्वीपालक था। जैसा वह धर्मानुरागी था, वैसा ही साहित्यसेवी एवं प्रेमी भी था। वह स्त्री और पुरुषों की परीक्षा करने में अति कुशल था। हाथी, घोड़े और रत्नों का भी वह अद्वितीय परीक्षक था। इन्हीं गुणों के कारण वह श्रीकरण जैसे उच्च पद पर प्रतिष्ठित था।

विमलवसति का जीर्णोद्धार

'अह निन्नयकारियजालिहारयगच्छरिसहजिणभवणे। जणयकए जणणीए उण पंचासरयपासगिहे॥
पड्डावल्लीयमि उ गच्छे मायामहीए सुहहेउं। अणहिल्लवाडयपुरे कराविया मंडवा जेण॥
.......जो रोहाइयवासगे सायणवाडयपुरे उ मंतिस्स। जिणभवणं कारवियं मायामहवोल्हस्स कए॥
ता अब्बुयगिरिसिरि नेढ़-विमल जिणमन्दिरे करावेउं। मउयक्कमइन्नजणयं मज्झे पुणो तस्स॥'

D. C. M. P. (G. O. V. LXXVI.) P. 255. (चन्द्रप्रभस्वामि-चरित्र)

१—प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २८१.
२—अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २३३.
सं० १२०६॥

'श्री शीलभद्रसूरीणां शिष्यैः श्रीचन्द्रसूरिभिः। विमलादिसुसंघेन युतैस्तीर्थमिदं स्तुतं॥
अयं तीर्थसमुद्धारोऽत्यद्भुतोऽकारि धीमता। श्रीमदानन्दपुत्रेण श्रीपृथ्वीपालमंत्रिणा॥'

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले०७२

अंचलगच्छीय 'मोटी पट्टावली' (गुजराती) प्रकाशित वि० सं० १६८५ कात्तिक शु० पूर्णिमा पृ० ११७ पर पृथ्वीपाल के पितामह धवल के लघु भ्राता लालिग के पौत्र दशरथ के नेढ़ा और वेढ़ा नामक दो पुत्रों का होना तथा उनका गुर्जर-सम्राट् कर्ण के मंत्री होना, उनके द्वारा आरासण, चंद्रावती में अनेक जिनमन्दिरों का बनवाना तथा विमलवसति की हस्तिशाला का भी उन्हीं के द्वारा बनवाया जाना लिखा है, परन्तु इतने शिलालेखों में नेढ़ा-वेढ़ा का कोई लेख प्राप्त नहीं हुआ है अतः विमलवंश में उनकी यहाँ परिगणना नहीं की गई है।

महामात्य पृथ्वीपाल की स्त्री का नाम नामलदेवी था। उसकी कुक्षी से दो प्रसिद्ध पुत्रों का जन्म हुआ। ज्येष्ठ पुत्र जगदेव या जगपाल था और कनिष्ठ पुत्र धनपाल था। धनपाल अपने पिता के समान प्रख्यात हुआ। धनपाल ने अर्बुदाचलतीर्थस्थ विमलवसतिका में समय २ पर अनेक जीर्णोद्धार और नवीन बिंबप्रतिष्ठादि के धर्मकार्य करवाये। महामात्य पृथ्वीपाल द्वारा विनिर्मित हस्तिशाला में विनिर्मित दश हस्तियों में से सात स्वयं महामात्य पृथ्वीपाल द्वारा विनिर्मित हैं और दो हस्ति महामात्य धनपाल ने एक अपने ज्येष्ठ भ्राता जगदेव के नाम पर और दूसरा अपने नाम पर बनवाकर वि० सं० १२३७ अषाढ़ शु० अष्टमी बुधवार को प्रतिष्ठित करवाये।

महामात्य धनपाल और उसका ज्येष्ठ भ्राता जगदेव तथा धनपाल द्वारा हस्तिशाला में तीन हाथियों की संस्थापना

महा० धनपाल ने कासहृदगच्छीय श्री उद्योतनाचार्यीय श्रीमद् सिंहसूरि की तत्त्वावधानता में श्री अर्बुदाचल-तीर्थस्थ श्री विमलवसतिकाख्यतीर्थ की अपने समस्त परिवार तथा अन्य प्रतिष्ठित नगरों के अनेक प्रसिद्ध कुलों और व्यक्तियों के सहित यात्रा की। जाबालीपुरनरेश का प्रसिद्ध मंत्री यशोवीर भी अपने कुटुम्ब सहित इस अवसर पर अर्बुदतीर्थ के दर्शन करने आया था। श्रे० जसहड़ का पुत्र पार्श्वचन्द्र भी अपने विशाल परिवार सहित इस यात्रा में सम्मिलित हुआ था। अन्य कुल भी आये थे। प्रसिद्ध २ व्यक्तियों का यथासंभव वर्णन दिया जायगा। महा० धनपाल ने विमलवसतिका की तेवीसवीं, चौवीसवीं, पच्चीसवीं और छब्वीसवीं देवकुलिकाओं का जीर्णोद्धार करवाया और उनमें वि० सं० १२४५ वैशाख कृ० ५ पंचमी गुरुवार को श्रीमद् सिंहसूरि के करकमलों से क्रमशः अपने ज्येष्ठ भ्राता ठ० जगदेव के श्रेयार्थ श्री ऋषभनाथप्रतिमा और श्री शांतिनाथप्रतिमा, अपने कल्याणार्थ श्री संभवनाथप्रतिमा, अपनी मातामही पद्मावती के श्रेयार्थ श्री अभिनन्दनदेवप्रतिमा प्रतिष्ठित करवाकर स्थापित करवाई[1]।

धनपाल द्वारा श्री विमलवसतिकातीर्थ में सपरिवार प्रतिष्ठादि धर्मकृत्यों का करवाना

महामात्य धनपाल की स्त्री रूपिणी (अपर नाम पिणाई) ने अपने कल्याणार्थ तीसवीं देवकुलिका का जीर्णोद्धार करवाकर उसमें उपरोक्त शुभावसर पर श्रीसिंहसूरि के कर-कमलों से ही श्रीचन्द्रप्रभबिंब की प्रतिष्ठा करवाई। जगपाल ने भी अट्ठावीसवीं देवकुलिका और उसकी स्त्री मालदेवी ने उनतीसवीं देवकुलिका का जीर्णोद्धार करवाया और दोनों ने क्रमशः अपने २ श्रेयार्थ उनमें श्री पद्मप्रभबिंब और श्री सुपार्श्वबिंबों की स्थापना उक्त आचार्य के द्वारा उपरोक्त शुभावसर पर ही करवाई[2]। महामात्य पृथ्वीपाल की पत्नी श्रीनामलदेवी ने भी इसी शुभावसर पर अपने श्रेयार्थ सत्तावीसवीं देवकुलिका का जीर्णोद्धार करवाया और उसमें श्रीसुमतिनाथ प्रतिमा को श्रीसिंहसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाई।

धनपाल की स्त्री रूपिणी तथा जगदेव और उसकी स्त्री द्वारा जीर्णोद्धार कार्य

नाना आनन्द का छोटा पुत्र था। यह पृथ्वीपाल का लघुभ्राता था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि नाना का विवाह त्रिभुवनदेवी के साथ हुआ था। त्रिभुवनदेवी की कुक्षी से दो पुत्र नागार्जुन और नागपाल नामक उत्पन्न हुये। नागपाल का पुत्र आसवीर था। विमलवसति के जीर्णोद्धार-कार्य में नाना ने भी यथाशक्ति भाग लिया। तरेपनवीं देवकुलिका में वि० सं० १२१२ मार्ग शुक्ला १० बुद्धवार को श्रीसम्भवनाथबिंब की प्रतिष्ठा श्रीमद् वैरस्वामिसूरि के द्वारा

नाना और उसका परिवार तथा उनके द्वारा प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार कार्य

१—'मल्लिनाथ-चरित्र की प्रशस्ति' गु० प्रा० सं० घ० चरणलेख पृ० ११६१
२—अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २३३
३— ,, ,, ,, ले० ९५, ९८, १००, १०३, १०६.

अपने ज्येष्ठ पुत्र नागार्जुन के श्रेय के लिये करवाई। नाना के कनिष्ट पुत्र नागपाल ने अपनी माता त्रिभुवनदेवी के श्रेयार्थ सेतालीसवीं देवकुलिका में वि० सं० १२४५ वैशाख कृ० ५ गुरुवार को श्री महावीरबिंब श्रीमद् रत्नसिंहसूरि के करकमलों से स्थापित करवाया तथा पुत्र आसवीर के श्रेयार्थ श्रीमद् देवचन्द्रसूरि के द्वारा नेमनाथप्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया।

मंत्री लालिग का परिवार और उसके यशस्वी पौत्र हेमरथ, दशरथ

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि महामात्य नेढ़ का लालिग छोटा पुत्र था। यह भी अपने पिता एवं ज्येष्ठ भ्राता के सदृश उदारचेता, धर्मात्मा, दीनबन्धु, नीतिनिपुण और अत्यन्त रूपवान था। लालिग का अधिकतर मन सुकृत करने में ही लगता था। लालिग का पुत्र महिंदुक भी अति धर्मात्मा, सत्संगी, महोपकारी एवं अनेक उत्तम गुणों की खान था। वह जिनेश्वरदेव एवं साधु-साध्वियों का परम भक्त था। महिंदुक ने अपने पापकर्मों का क्षय करने के लिये अनेक सुकृत किये और विपुल यश प्राप्त किया।

लालिग और उसका पुत्र महिंदुक

महिंदुक के दो यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुये। बड़ा पुत्र हेमरथ अत्यन्त विवेकवान, शान्त, अत्यन्त दयालु, निस्पृह, शरणवत्सल, सदाचारी एवं सुविचारी, उच्चकोटि का आगम-रहस्य को समझने वाला जैन श्रावक था। छोटा पुत्र दशरथ भी सर्वगुणसम्पन्न, दृढ़ जैनधर्मी, गम्भीर दानी, सद्पुरुषार्थी एवं कुलदेवी अम्बिका का परम भक्त था। उसने विमलवसति की सर्वश्रेष्ठ दशमी देवकुलिका का जीर्णोद्धार करवाया और उसमें अपने और अपने ज्येष्ठ भ्रातृ हेमरथ के श्रेयार्थ वि० सं० १२०१ ज्येष्ठ माह की [कृ० या शु०] एकम शुक्रवार को भगवान् नेमिनाथ की अत्यन्त मनोहर प्रतिमा तथा एक अत्यन्त सुन्दर मूर्त्तिपट जिसमें निन्नक, लहर, वीर, नेढ़, विमल, लालिग तथा हेमरथ और स्वयं दशरथ की मूर्त्तियाँ अंकित हैं, स्थापित करवाये। दशरथ यद्यपि अणहिलपुरपत्तन में रहता था, परन्तु अपने पूर्वजों की मातृभूमि प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी श्रीमालपुर को नहीं भूला था। श्रीमालपुर नगरी के प्रति उसके हृदय में वही सम्मान था, जो एक सच्चे मातृभूमिभक्त के हृदय में होता है। इस देवकुलिका में

हेमरथ और दशरथ और उनके द्वारा दशवीं देवकुलिका का जीर्णोद्धार और उसमें जिनबिंब और पूर्वजपट्ट की स्थापना

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १५३, १६६, १४४.

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ५१ [विमलवसहि की प्रसिद्ध-प्रशस्ति]

श्री० मुनिराज जयन्तविजयजी और पं० लालचन्द्र भगवानदास गांधी का यह मत है कि उक्त प्रशस्ति के द्वितीय श्लोक के प्रथम चरण की आदि में 'श्रीमालकुलोत्थ' के स्थान पर 'श्रीमालपुरोत्थ' चाहिए था। मुनिराज जयन्तविजयजी फिर इस शंका में भी विश्वास रखते प्रतीत होते हैं कि मंत्री निन्नक की माता श्रीमालज्ञाति की थी और पिता पोरवाड़ज्ञाति के थे। वे कहते हैं कि माता की ज्ञाति के नाम से कुल और पिता की ज्ञाति के नाम से ।'ग्र के नाम पड़ते हैं। इस दृष्टि से 'श्रीमालकुलोत्थ' का प्रयोग संगत ही प्रतीत

दशरथ ने १७ सत्रह श्लोकों की एक प्रशस्ति शिलापट्ट पर उत्कीर्णित करवाई, जिसमें उसने अपने महागौरवशाली-कीर्त्तिवंत पूर्वजों एवं उक्त प्रतिष्ठा का सविस्तार वर्णन करवाया तथा मंगलाचरण के पश्चात् श्रीमालपुर का नामोल्लेख द्वितीय श्लोक में बड़े आदर के सहित करवाया।

होता है। यह समाधान केवल अनैतिहासिक कल्पना है जो अर्थ तथा संगति बैठाने की दृष्टि से गढ़ी गई है। प्रथम मत पर विचार करते समय मैं भी यही यह मान लेता हूँ, जैसा अनुभव कहता है कि नकल करने वाले ने 'पुरोत्थ' के स्थान पर 'कुलोत्थ' उत्कीर्ण कर दिया और लेख शिला पर होने के कारण पुनः शुद्ध नहीं करवाया जा सका। दशरथ जैसे बुद्धिमान् एवं श्रीमंत ने यह अशुद्धि सहन कैसे की?— यह प्रश्न उठता है। इस शंका का निराकरण इस अर्थ से हो जाता है कि 'श्री श्रीमालकुलोत्थ' श्रीमालपुर (भिन्नमाल) के कुल से उत्पन्न अर्थात् यह प्राग्वाटवंश श्री श्रीमालपुर में निवास करने वाले कुल से जैनदीक्षित होकर संभूत हुआ है और 'श्री श्रीमालपुरोत्थ' का अर्थ भी यही है कि श्री श्रीमालपुर से उत्पन्न अर्थात् श्रीमालपुर इस प्राग्वाटवंश का आदि पैतृक जन्म-स्थान है। दोनों अर्थों का आशय एक ही है, कुछ भी अन्तर नहीं है। अतः दशरथ ने इस शिला-लेख के आरोपण में अधिक आगा-पीछा विचार करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझी। परन्तु बात यह नहीं होनी चाहिए। अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ४७ में, जो दशरथ के द्वारा ही उत्कीर्णित करवाया हुआ है 'श्रीमालकुलोद्भव' का प्रयोग किया गया है। अतः यह प्रयोग समझ कर ही किया गया है सिद्ध होता है। यह दशरथ की पैत्रिक जन्म-भूमि के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का प्रतीक है ही माना जायगा।

मुनिराज जिनविजयजी ने भी 'श्रीमालकुलोद्भव' शब्द को लेकर अपनी प्रा० जै० ले० सं० भा० २ के अवलोकन-विभाग पृ० १४ पर लिख दिया है, 'वीर महामन्त्री अने नेढ़ आदि तेना पुत्र-पौत्रों प्राग्वाट नहीं पण श्रीमालज्ञातिना हता'

श्रीमालपुरोत्थ प्राग्वाट-वंशावतंस प्राचीन गूर्जर-मन्त्री–कोष्ठक

प्राचीन गूर्जरराजवंश
वनराज चावड़ा
वि० सं० ८०२ से ८६२
|
सोलंकी मूलराज
वि० सं० ९९८ से १०५२
|
चामुण्डराज
वि० सं० १०५२ से १०६५
|
वल्लभराज
वि० सं० १०६५ से १०७७
|
भीमदेव प्रथम
वि० सं० १०७७ से ११२०
|
कर्णदेव प्रथम
वि० सं० ११२० से ११५०
|
जयसिंह
वि० सं० ११५० से ११९९
|
कुमारपाल
वि० सं० ११९९ से १२३०
|
अजयपाल
वि० सं० १२३० से १२३३
|
मूलराज द्वितीय
वि० सं० १२३३ से १२३५
|
भीमदेव द्वितीय
वि० सं० १२३५ से १२९६ (९८)

महामात्य ठक्कुर निन्नक
|
दंडनायक लहर
|
महामात्य वीर
वि० सं० १०८५ में स्वर्गवासी
|
महामात्य नेढ़ — दंडनायक विमल

महामात्य नेढ़
|
सचिवेन्द्र धवल
|
महामात्य आनन्द
|
महामात्य पृथ्वीपाल
|
महामात्य धनपाल
वि० सं० १२४५

श्रीमालपुरोत्थ प्राग्वाटवंशावतंस प्राचीन गूर्जर-मंत्री—वंश-वृक्ष

- महामात्य ठ० निन्नक [नारंगदेवी]
  - दंडनायक लहर
    - महामन्त्री वीर [वीरमति]
      - महामात्य नेढ़
        - महामात्य धवल
          - महामात्य आनन्द [पद्मावती, सलूणा]
            - महामात्य पृथ्वीपाल [नामलदेवी]
              - जगदेव [मालदेवी]
              - महामात्य धनपाल [रूपिणी]
              - महणदेवी
            - नाना [त्रिभुवनदेवी]
              - नागार्जुन
              - नागपाल
                - आसवीर
        - लालिग
          - महिंदुक
            - हेमरथ
            - दशरथ
      - दंडनायक विमल [श्रीदेवी]

प्र० चि० (संस्कृत) पृ० १४, १५, १६, २०, ५४, ५५, ७६, ८६, ८७.

D. C. M. P. (G. O. V. LXX. VI) P. 253–56. (चन्द्रप्रभस्वामी-चरित्र)

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४७, ५०, ५१ तथा विमलवसहि की देवकुलिकाओं के विमलवंशसम्बन्धी अनेक लेख, हस्तिशाला का ले० २३३ इत्यादि।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमळवसहि के निर्माता गूर्जरमहाबलाधिकारी दंडनायक विमलशाह की हस्तिशाला मे प्रतिष्ठित अश्वारूढ मूर्त्ति।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमळवसहि की भ्रमती के उत्तर पक्ष के एक मण्डप में सरस्वतीदेवी की एक सुन्दर आकृति। एक ओर हाथ जोड़े हुये विमळशाह और दूसरी ओर गज लिये हुये सूत्रधार हाथ जोड़े हुये दिखाये गये हैं।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमळवसहि का बाहिर देखाव। देखिये पृ० ८३ पर।

अनन्य शिल्प-कलावतार अर्बुदाचलस्थ श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय

मूलगंभारा, गूढ़मण्डप, नवचौकिया, रंगमण्डप, भ्रमती और सिंहद्वार आदि का शिल्पकाम

अर्बुदाचल पर जो बारह ग्राम बसे हैं, देलवाड़ा भी उनमें एक है। ग्राम तो वैसे इस समय छोटा ही है और स्थान के अध्ययन से यह भी प्रतीत हुआ कि पहिले भी अथवा वहाँ जो मन्दिर बने हैं, उनके निर्माण-समय में भी वह कोई अति बड़ा अथवा समृद्ध नहीं था, क्योंकि जैसे अन्य बड़े और समृद्ध नगर, ग्रामों के वासियों के अनेक शिलालेख अथवा अन्य धर्मकृत्यों का उल्लेख सहज मिलता है, वैसा यहाँ के किसी वासी का नहीं मिलता। वैसे देलवाड़ा ऐसी जगह बसा है, जहाँ बड़े और समृद्ध नगर का बसना भी शक्य नहीं, परन्तु देलवाड़ा जैनमन्दिरों के कारण छोटा होकर भी बड़े नगरों की ईर्षा का भाजन बना हुआ है। यहाँ वैष्णव धर्मस्थान भी छोटे २ अनेक हैं। यह जैन और वैष्णव दोनों के लिये तीर्थस्थान है।

देलवाड़ा और उसका महत्व

देलवाड़े के निकट एक ऊँची टेकरी पर पाँच जैन-मन्दिर बने हैं। १—दंडनायक विमलशाह द्वारा विनिर्मित विमलवसति, २—दंडनायक तेजपाल द्वारा विनिर्मित लूणवसति, ३—भीमाशाह द्वारा विनिर्मित पित्तलहरवसति, ४—चतुर्मुखी खरतरवसति और ५—वर्द्धमान-जिनालय। वैसे तो महाबलाधिकारी दंडनायक विमल का इतिहास लिखते समय विमलवसति का निर्माण कब और क्यों हुआ पर लिखा जा चुका है। यहाँ उसका वर्णन शिल्प की दृष्टि से आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य्य समझ कर देना चाहता हूँ।

टेकरी पर पाँच जैन-मन्दिर और उनमें विमलवसतिका

एक जैन-मन्दिर में जितने अंगों की रचना होनी चाहिए वह सब इसमें है; जैसे मूलगंभारा, चौकी, गूढ़मंडप, नवचौकिया और उसमें दोनों ओर आलय, सभामण्डप, भ्रमती, देवकुलिका की चतुर्दिक् हारमाला और उसके आगे स्तम्भवती शाला, सिंहद्वार और उसके भीतर, बाहर की चौकियाँ और चतुर्दिक् परिकोट इत्यादि। विमलवसति सर्वाङ्गपूर्ण ही नहीं, सर्वाङ्ग सुन्दर भी है। दूर से इसका बाहरी देखाव जैसा अत्यन्त सादा और कलाविहीन है, उतना ही इसका आभ्यन्तर नख-शिख कलापूर्ण और संसार में एकदम असाधारण है, जो पूर्णरूपेण अवर्णनीय और अकथनीय है।

परिकोट देवकुलिकाओं के पृष्ट भाग से बना है। इसकी ऊँचाई मध्यम और लम्बाई १४० फीट और चौड़ाई ६० फीट है। यह ईंट और चूने से बना है। इसमें पूर्व दिशा में द्वार है, जो इसके अनुसार ही छोटा और सादा है और यह ही द्वार सर्वाङ्गपूर्ण और सर्वाङ्गसुन्दर जगद्-विख्यात शिल्पकलाप्रतिमा, देवलोकदुर्लभ, इन्द्रसभातीत विमलवसति का सिंह-द्वार है। सिंह-द्वार के आगे शृङ्गार-चौकी है।

परिकोट और सिंह-द्वार

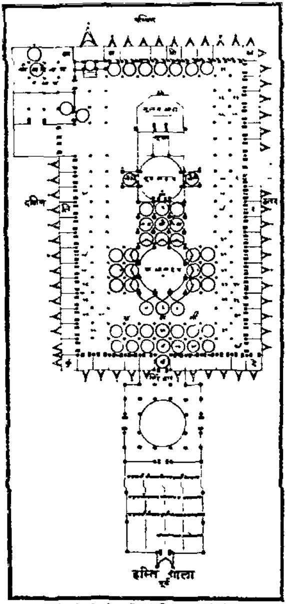
आज की निर्माणरुचि और पद्धति इससे उल्टी है। आज मन्दिर और धर्मस्थानों का बाह्यान्तर उनके आभ्यन्तर की अपेक्षा अधिकतम कलापूर्ण और सुन्दर बनाने की धुन रहती है। यह निष्फल और व्यर्थ प्रयास है। शीत, वात, आतप और वर्षा के व्याघातों को खाकर वे सर्व सुन्दर बाह्यांग विकृत, खण्डित और मैले और रूपविहीन हो जाते हैं और फल यह होता है कि दर्शकों को लुभाने, उनमें रुचि और पुनः २ यात्रा करने की भावना और भक्ति को उत्पन्न और वृद्धिंगत करने के स्थान में उनकी रुचि से उतर जाते हैं। इस प्रकार बाह्यान्तर को सजाने में व्यय किया हुआ पैसा कुछ वर्षों तक प्रभावकारी रहकर फिर अवशिष्ट भविष्य के लिये उस स्थान के महत्त्व, प्रभाव और लाभ को सदा के लिये कम करने वाला रह जाता है। विमलशाह इस विचार से कितना ऊँचा बुद्धिमान् ठहरता है—समझने का वह एक विषय है। हमारे पूर्वज बाहरी देखाव, आडम्बर को पाखण्ड, झूठा, अस्थायी, निरर्थक, समय-शक्ति-द्रव्य-ज्ञान-प्रतिष्ठा-गौरव का नाश करने वाला समझते थे और इसीलिये वे आभ्यन्तर को सजाने में तन, मन और धन सर्वस्व अर्पण कर देते थे—यह भाव हमको इस अलौकिक सुन्दर विमलवसति के बाहर और भीतर के रूपों को देखने से मिलते हैं—शिक्षा की चीज है।

मूलगम्भारा और गूढ़मंडप और उनकी सादी रचना में विमलशाह की प्रशंसनीय विवेकता

विमलवसति का मूलगंभारा और गूढ़मण्डप दोनों सादे ही बने हुये हैं। इन दोनों में कलाकाम नहीं है। शिखर नीचा और चपटा है। फलतः गूढ़मण्डप का गुम्बज भी अधिक ऊँचा नहीं उठाया गया है। गूढ़मण्डप चौमुखा बना हुआ है। प्रत्येक मन्दिर का मूलगम्भारा और गूढ़मण्डप उसका मुख भाग अर्थात् उत्तमांग होता है। अन्य अंगों की रचना कलापूर्ण और अद्वितीय हो और ये सादे हो तो इसका कारण जानने की जिज्ञासा प्रत्येक दर्शक को रहती है। विमलशाह ने अपनी आँखों सोमनाथ-मन्दिर का विधर्मी महमूद गजनवी द्वारा तोड़ा जाना और सोमनाथ प्रतिमा का खण्डित किया जाना देखा था। सोमनाथ मन्दिर समुद्रतट पर मैदान में आ गया है। बुद्धिमान् एवं चतुर नीतिज्ञ विमलशाह ने उससे शिक्षा ली और विमलवसति को अतः निर्जन, धनहीन भूभाग में आये हुये दुर्गम अर्बुदाचल के ऊपर स्तह से लगभग ४००० फीट ऊँचाई पर बनाया, जिससे आक्रमणकारी दुश्मन को वहाँ तक पहुँचने में अनेक कष्ट और बाधायें हों और अन्त में हाथ कुछ भी नहीं लगे, धन और जन की हानि ही उठाकर लौटना पड़े या खप जाना पड़े। कोई बुद्धिमान् विधर्मी आक्रमणकारी दुश्मन ऐसा निरर्थक श्रम नहीं करेगा ऐसा ही सोचकर विमलशाह ने ऐसे विकट एवं दुर्गम और इतने ऊँचे पर्वत पर विमलवसति का निर्माण करवाया और मूलगम्भारा और गूढ़मण्डपों की रचना एकदम सादी करवाई, जिससे विधर्मी दुश्मन को अपनी क्वेच्छाओं की तृप्ति करने के लिये तोड़ने फोड़ने को कुछ नहीं मिले और इस प्रकार मूल पूज्यस्थान क्षुद्रहृदयों के विधर्मी-जनों के पामर हाथों से अपमानित होने से बच जाय। यहाँ हमें विमलशाह में एक विशेषता होने का परिचय मिलता है। वह प्रथम जिनेश्वरोपासक था और पश्चात् सौन्दर्य्योपासक। वह अत्यन्त सौन्दर्य्यप्रेमी था, विमलवसति इसका प्रमाण है, परन्तु इससे भी अधिक वह जिनोपासक था कि उसने मूलगंभारे और गूढ़मण्डप में सौन्दर्य्य को स्थान ही नहीं दिया और उन्हें एक दम आकर्षणहीन और सौन्दर्य्य-विहीन और सुदृढ़ बनाया, जिससे उसको उसके प्रभु जिनेश्वर की प्रतिमा का गुण्डेजनों के हाथों अपमानित होने का कारण नहीं बनना पड़े।

मन्दिर के शिखर और गुम्बज अधिक ऊँचे नहीं बने हैं—इसका तो कारण यह है कि अर्बुदाचल पर वर्ष में एक-दो बार भूकम्प का अनुभव होता ही रहता है; अतः उनके अधिक ऊँचे होने पर टूटने और गिरने की शंका

सर्वांग सुन्दर अनन्य शिल्पकलावतार
अर्बुदाचल स्थ श्री विमलवसति
देलवाड़ा



TRACED BY
DRAWN BY

सदा बनी रहती है, नीचे होने से कैसा भी भयंकर भूकम्प क्यों नहीं आये, उसका उनपर कोई हानिकर भयंकर प्रभाव नहीं पड़ पाता। यहाँ भी विमलशाह और विमलवसति के शिल्पियों की प्रशंसनीय विवेकता, बुद्धिमानी और दूरदर्शिता का परिचय मिलता है।

फिर भी दुश्मन के हाथों से मन्दिर पूर्णतया सुरक्षित नहीं रह सका। यवन प्रथम तो भारत में आक्रमणकारी ही रहे। परन्तु महमूद गौरी ने पृथ्वीराज को परास्त करके भारत का शासन छीन लिया और अपना प्रतिनिधि दिल्ली में नियुक्त कर दिया। स्थानीय शासक रहकर भी अगर कोई विधर्मी शासक अन्य धर्मों के धर्मस्थानों को तोड़े, नष्ट-भ्रष्ट करें, तो उसका तो विवशता एवं परतन्त्रता की स्थिति में उपाय ही क्या। देलवाड़े के जैन-मन्दिरों को जो स्थानीय विधर्मी शासकों ने हानि पहुँचाई, उसका यथास्थान आगे वर्णन किया जायगा।

मूलगंभारे में वि० सं० १०८८ में विमलशाह ने वर्धमानसूरि द्वारा श्री आदिनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवा कर शुभमुहूर्त में प्रतिष्ठित किया। परन्तु इस समय वह बिंब नहीं है। उसके स्थान पर वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ कृष्णा ९ सोमवार को माण्डव्यपुरीय संघवी सा० लाला और वीजड़ द्वारा श्री धर्मघोषसूरि के पट्टधर श्री ज्ञानचन्द्रसूरि के उपदेश से प्रतिष्ठित अन्य पंचतीर्थी परिकर वाली श्री आदिनाथ-प्रतिमा संस्थापित है।

मूलगंभारे के बाहर सुदृढ़ चौकी है। इसमें उत्तर और दक्षिण की दिवारों में दो आलय हैं। चौकी से लगता हुआ ही गूढ़मण्डप है। गूढ़मण्डप के उत्तर और दक्षिण दिशाओं में भी द्वार हैं और चौकियाँ हैं। दोनों ओर के चौकियों के स्तम्भों, स्तम्भों के ऊपर की शिला-पट्टियों में सुन्दर कलाकृतियाँ हैं। मूलगंभारे के बाहर तीनों दिशाओं में तीनों आलयों में एक-एक सपरिकर जिनप्रतिमा विराजमान हैं और प्रत्येक आलय के ऊपर तीन २ जिनमूर्त्तियाँ और छः २ कायोत्सर्गिक मूर्त्तियों की आकृतियाँ विनिर्मित हैं। इस प्रकार कुल २७ मूर्त्ति-आकृतियाँ बनी हैं।

१–मूलगंभारे में वि० सं० १६६१ में महामहोपाध्याय श्री लब्धिसागरजी द्वारा प्रतिष्ठित श्री हीरविजयसूरि की सपरिकर प्रतिमा बाईं ओर विराजमान है।

२–गूढ़मण्डप में—प्रतिष्ठित सपरिकर पार्श्वनाथ भगवान् की दो कायोत्सर्गिक प्रतिमायें। प्रत्येक के परिकर में दो इन्द्र, दो श्रावक, दो श्राविकायें और चौवीश जिनेश्वरों की मूर्त्ति-आकृतियाँ खुदी हुई हैं।

३–धातु-मूर्त्तियाँ २ दो। *४–पंचतीर्थी परिकर वाली मूर्त्तियाँ ३ तीन।*
५–सामान्य परिकर वाली मूर्त्तियाँ ४ चार। *६–परिकररहित मूर्त्तियाँ २१ इक्कीस।*
७–संगमरमरप्रस्तर का जिन-चौवीसी पट्ट १ एक। *८–श्रावक और श्राविकाओं की प्रतिमायें ५ पांच :–*
(१) गोसल (२) सुहागदेवी (३) गुणदेवी (४) मुहणसिंह (५) मीणलदेवी
९–अम्बिकादेवी की प्रतिमा १ एक। *१०–धातु-चौवीशी १ एक।*
११–धातु-पंचतीर्थी २ दो। *१२–धातु की छोटी प्रतिमायें २ दो।*

इस प्रकार गूढ़-मण्डप में इस समय ३५ जिन-बिंब, २कायोत्सर्गिक-बिंब, १ चौवीसी-पट्ट, १ अम्बिकाप्रतिमा, २ श्रावकप्रतिमा, ३ श्राविकामूर्त्तियाँ हैं। *आबू भा० १ पृ० ४२.*

गूढ़मण्डप का द्वार, उसकी बाहर की दोनों भित्तियाँ, दोनों ओर की भित्तियों में बने हुये दोनों आलय, नव चौकियाँ के बारह स्तंभ, नव मण्डपों का प्रत्येक पत्थर, पट्टी, स्तंभ, देहली-मस्तिका, रिक्तभाग (गाला), कोण, छत, शिखर, चाप, इधर-उधर, ऊपर-नीचे कहीं से भी बिना उत्तम प्रकार की कलाकृति के कोई भी अल्पतम अंग नहीं बना है। ऐसा तिल भर भी स्थान नहीं है, जहाँ शिल्पकार की कुशलटांकी का जादू नहीं भरा हो। इनको देख कर ही तृप्ति हो सकती है, पढ़कर तो दर्शन करने के लिये आतुरता और व्याकुलता बढ़ेगी।

गूढ़मण्डप का द्वार और नवचौकिया

१—गूढ़मण्डप के द्वार के बाहिर नवचौकिया में दोनों ओर की भित्ति में आये हुये दोनों स्तंभों में पांच २ खण्डों में अभिनय करती हुई नर्त्तकियों के दृश्य हैं।

२—गूढ़मण्डप के द्वार के दाहिनी ओर के स्तंभ के और दाहिनी ओर के आलय के बीच के रिक्तभाग (गाला) में सात खण्ड करके कुछ दृश्य अंकित किये गये हैं। ऊपर के प्रथम खण्ड में एक श्राविका हाथ जोड़ कर खड़ी है। उसके पास ही में एक श्रावक भी खड़ा है। दूसरे खण्ड में पुष्पमाला लिये हुए दो श्रावक और एक अन्य श्रावक हाथ जोड़ कर खड़ा है। तीसरे खण्ड में गुरु महाराज दो शिष्यों को क्रिया कराते हुये उनके मस्तिष्क पर वासक्षेप डाल रहे हैं। गुरु महाराज उच्च आसन पर बैठे हैं और उनके सामने छोटे २ आसनों पर उनके शिष्य बैठे हैं। बीच में स्थापनाचार्य्य एक पट्टे पर प्रतिष्ठित हैं। नीचे के चारों खण्डों में क्रमशः तीन साधु, तीन साध्वियाँ, तीन श्रावक और तीन श्राविकायें खड़ी हैं।

३—इसी प्रकार द्वार के बाहे स्तंभ और बाहे पक्ष के आलय के बीच के रिक्तभाग में भी ऐसे ही दृश्य अंकित हैं। प्रथम सर्वोच्च भाग में एक श्रावक हाथ जोड़ कर चैत्यवंदन कर रहा है और पास में एक श्राविका हाथ जोड़ कर खड़ी है और इसके पास में एक अन्य श्राविका और खड़ी है। दूसरे खण्ड में श्रावक अपने हाथों में पुष्पमालायें लिये हुये हैं। तीसरे में गुरु महाराज उपदेश कर रहे हैं। इसके नीचे के चारों खण्डों में क्रमशः तीन साधु, तीन साध्वियाँ, तीन श्रावक और तीन श्राकिकायें खड़ी हैं।

४—नवचौकिया तीन खण्ड में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड में तीन चौकी हैं। प्रथम खण्ड गूढ़मण्डप के द्वार से लगा है। द्वितीय खण्ड मध्यवर्त्ती और तृतीय खण्ड रंगमण्डप से लगा हुआ है। नवचौकिया के नव मडण्पों के कलादृश्यों का वर्णन गूढ़मण्डप के द्वार से लगे हुये प्रथम खण्ड की मध्यवर्त्ती चौकी के मण्डप से प्रारम्भ किया गया है, जो उत्तर से पूर्व, फिर दक्षिण और फिर पश्चिम दिशाओं के मण्डपों का परिक्रमण-विधि से परिचय देता हुआ मध्यवर्त्ती खण्ड की मध्य चौकी के मण्डप का अन्त में परिचय देता है।

१. प्रथम खण्ड का मध्यवर्त्ती मण्डप—यह मण्डप पाँच ऐकेन्द्रिक वृत्तों से बना है। प्रत्येक वृत्त समान आकार के काचला (Semi round parts) अर्थात् अर्ध गोल खण्डों से गर्भित है। केन्द्रस्थ गोल खण्ड पूर्ण है,

---

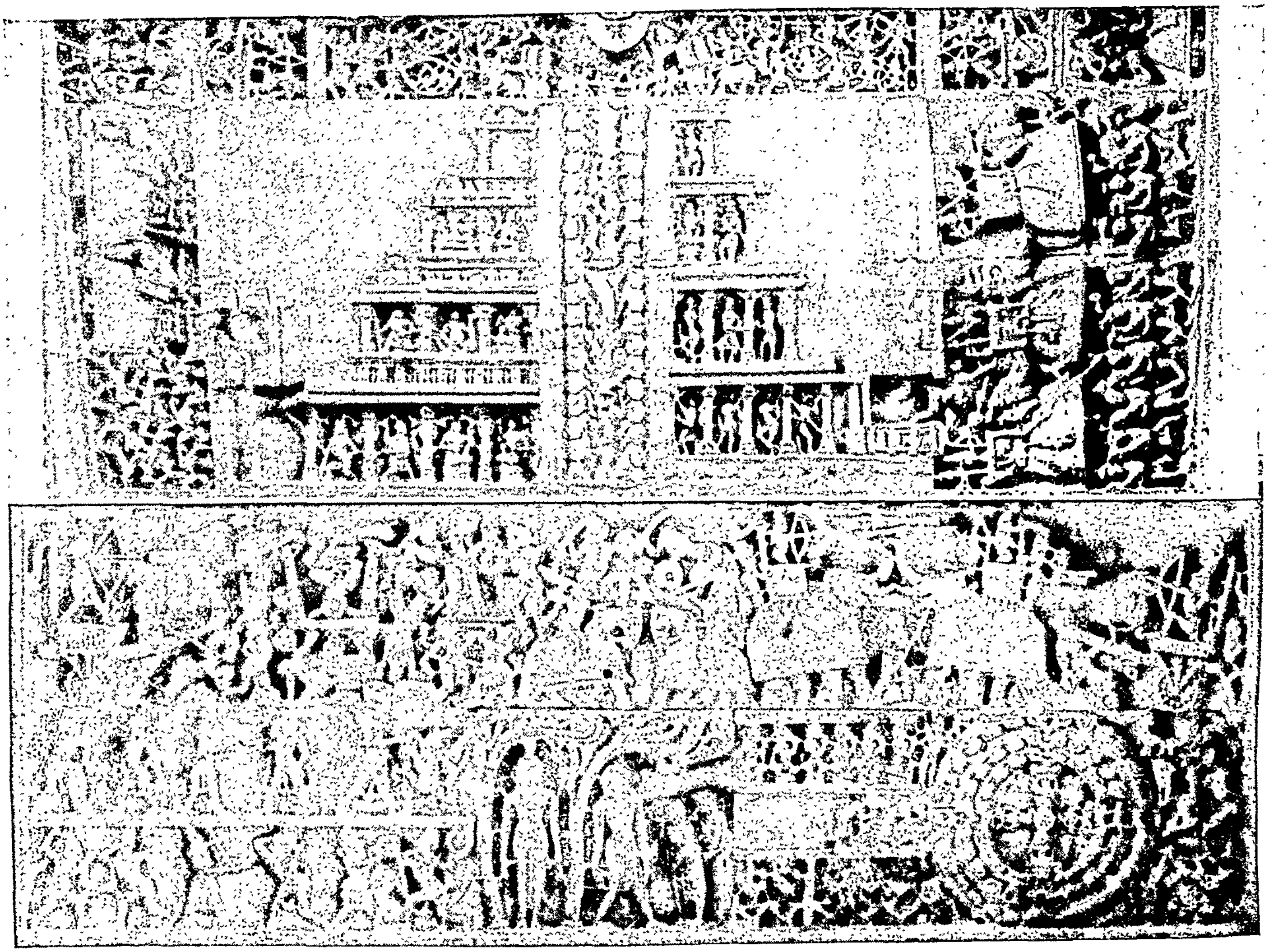
नवचौकिया के मण्डपों के कला-दृश्यों का वर्णन संख्या (१) एक से प्रारम्भ किया गया है। वर्णन का परिक्रमण-ढंग इस संख्या-कोष्ठक के अनुसार है।

८	१	२
७	९	३
६	५	४



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमलवसहि के नवचौकिया के एक मण्डप की छत में कल्पवृक्ष की अद्भुत शिल्पमयी आकृति

देखिये पृ० ८७(७) पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमलवसहि के रङ्गमण्डप के पूर्व पक्ष की भ्रमती के मध्यवर्त्ती गुम्बज के बड़े खण्ड में भरत बाहुबली के बीच हुये युद्ध का दृश्य। देखिये पृ० ८८(६) पर।

जो केन्द्र दण्डहीन है। इस मण्डप में आठ देवियों की नाट्यमुद्रायें हैं। वृत्तों के आधार में वायव्य कोण में एक ध्यानस्थ जिन बिंबाकृति है, जिसके आस-पास श्रावक पूजोपकरण लेकर खड़े हैं। इसके सामने आग्नेय कोण में दूसरी ओर एक आचार्य आसन पर बैठे हैं। उनको एक शिष्य साष्टांग नमस्कार कर रहा है, श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हैं। अवशिष्ट भाग में संगीत और नृत्य के पात्र हैं। इस आधार-वृत्ताकार-पट्टी के बाहिर चारों कोणों में एक-सी आकृति की चार सुन्दर देवी-आकृतियाँ हैं, जिनके पास में पुष्पमालादि लिये हुये अन्य आकृतियाँ हैं।

२. नवचौकिया के वायव्य कोण में बना हुआ मण्डप भी काचलागर्भित ऐकेन्द्रिक वृत्तों से बना है। केन्द्र में लटकता हुआ दण्ड है। दण्ड में, वृत्ताधार में, नीचे की चतुर्दिशी पट्टियों के चारों कोणों में अभिनय करती आकृतियाँ और अनेक सुन्दर देवी-आकृतियाँ हैं।

३. यह मण्डप भी काचलागर्भित ऐकेन्द्रिक वृत्तों से बना है। नीचे की चतुर्दिशी पट्टियों और उनके कोणों में अनेक देवी-आकृतियाँ हैं।

४. यह मण्डप त्र्येकेन्द्रिक वृत्ताकार है, केन्द्र में कलाकृति है। इसके प्रथम वलय में पैदल-सैन्य, द्वि० वलय में अश्वारोहीदल और तृ० वलय में हस्तिशाला का देखाव है। नीचे की चतुर्दिशी पट्टियों के भीतर की ओर आग्नेय कोण में अभिषेकसहित लक्ष्मीदेवी की आकृति और वायव्य कोण में दो हाथियों का युद्ध-दृश्य है।

५. यह भी काचलायुक्त ऐकेन्द्रिक वृत्तों से बना है। केन्द्र और द्वितीय वलय के प्रत्येक काचले में दण्ड हैं। केन्द्र के दण्ड में, प्रथम वलय में और द्वितीय वलय के दो-दो दण्डों के मध्य में अभिनय करती आठ देवी-आकृतियाँ हैं, जो आधार-वलय में चैत्यवंदन करती स्त्री-मुद्राओं के पृष्ट भागों पर स्थित पट्टों पर आरूढ़ हैं। आधार-वलय के बाहर चतुर्दिशी पट्टियों के भीतर की ओर उनके कोणों में हाथी, घोड़े आदि वाहनयोग्य पशु-आकृतियाँ हैं, जिनकी नंगी पीठों पर मनुजाकृतियाँ हैं।

६. काचलायुक्त त्र्येकेन्द्रिक वृत्तमयी यह मण्डप है। द्वितीय और तृतीय वलयों में बतकों की पंक्तियाँ और आधारवलय में अलग-अलग प्रासादों में बैठी हुई देवी-आकृतियाँ हैं।

७. इस मण्डप की छत में कल्प-वृक्ष का देखाव है। इसके नीचे की चतुर्दिशी आधार-शिलापट्टियों पर प्रासादस्थ अनेक देवी-आकृतियाँ खुदी हैं तथा इसके नीचे के तल पर काचलाकृतियाँ हैं।

८. काचलायुक्त त्र्येकेन्द्रिकवृत्तमयी यह मण्डप है। केन्द्र में दण्ड है। चारों दिशाओं में स्त्री-आकृतियों के पृष्ठ भागों पर रक्खी हुई पट्टियों के ऊपर अभिनय करती देवी-आकृतियाँ तथा आधारवलय में भी देवी-आकृतियाँ हैं।

९. इस मण्डप में केवल वृत्तों में अर्ध-गोल खण्ड अर्थात् अतिसुन्दर काचलों का संयोजन है।

उपरोक्त मण्डपों के वर्णन से मण्डपों की भीतरी रचना दो प्रकार से अधिक होती सिद्ध होती है—वलयाकृत और भुजाकृत।

ऐकेन्द्रिक वृत्त—एक ही बिन्दु पर एक से अधिक वृत्त अलग परिधि के बने हों वे ऐकेन्द्रिक वृत्त कहलाते हैं।

यह बारह स्तम्भों पर बना वसति का सबसे बड़ा मण्डप है। बारह स्तम्भों पर बारह तोरण लगे हैं। मण्डप में बारह वलय हैं, जो आठ स्तम्भों पर आधारित हैं। मण्डप में विशेष उल्लेखनीय भिन्न २ आयुध-शस्त्र और नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ सोलह विद्यादेवियाँ भिन्न २ मुद्राओं में खड़ी हैं। केन्द्र में एक लटकन और उसके पास के दूसरे वलय में काचलों से बने चतुष्कोणक्षेत्रों में भिन्न २ बारह लटकन लटक रहे हैं। मण्डप के नैऋत्य कोण में अम्बिकादेवी की सुन्दर मूर्त्ति बनी है (५C) अन्य तीन कोणों में भी ऐसी ही सुन्दर देवी-मूर्त्तियाँ बनी हैं। प्रत्येक स्तम्भ के सबसे नीचे के भाग में अद्भुत और आनन्ददायी नाट्य करती हुई स्त्री-आकृतियाँ हैं। यह मण्डप अधिकतम कलापूर्ण और शिल्पविशेषज्ञों की प्रतिभा और टांकी की नौंक और उसकी क्रिया का ज्वलंत उदाहरण है। तोरण और स्तम्भों की कोरणी इतनी उत्तम है कि सभामण्डप इन्द्रसभा-सा प्रतीत होता है। सचमुच नवचौकिया और सभामण्डप दोनों मिलकर इन्द्र के बैठने के स्थान और देवों के बैठने की सुसज्ज देवसभा का स्थान पूर्णरूपेण धारण किये हुये-से इन्द्रसभा की साक्षात् प्रतिमा ही हैं। देख कर मूक सहसा जिह्वायुक्त हो जाता है और इतना आनन्दविभोर और आत्मविस्मृत हो जाता है कि वाह-वाह किये बिना रह ही नहीं सकता।

रङ्गमण्डप और उसके दृश्यों का वर्णन

सभामण्डप, नवचौकिया, गूढ़मण्डप और मूलगंभारा के चारों ओर फिरती भ्रमती बनी है। सभामण्डप के उत्तर, दक्षिण और पूर्व पक्षों पर यह गुम्बजवती छतों से ढ़की है; शेष खुली है। उपरोक्त तीनों पक्ष की छतों में तीन-तीन गुम्बज हैं।

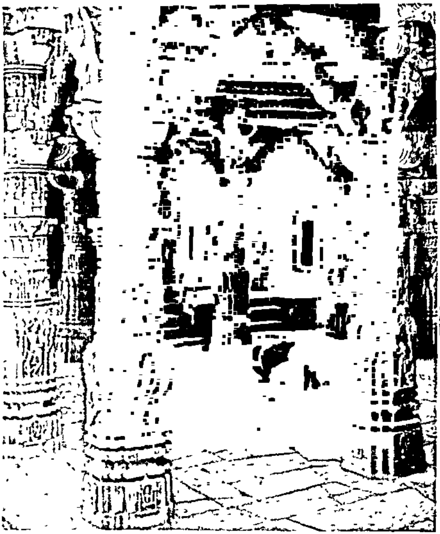
भ्रमती और उसके दृश्य

सभामण्डप के उत्तर पक्ष की भ्रमती के मध्यवर्ती (५A) गुम्बज की उत्तर दिशा की भींत में सरस्वती की मूर्त्ति और दक्षिण पक्ष की भ्रमती के मध्यवर्ती (५B) गुम्बज की दक्षिण दिशा की भींत में लक्ष्मीदेवी की मूर्त्ति खुदी है और इनके इधर-उधर नाटक के पात्र विविध नाट्य कर रहे हैं। उपरोक्त दोनों मूर्त्तियाँ एक-दूसरे के ठीक आमने-सामने हैं।

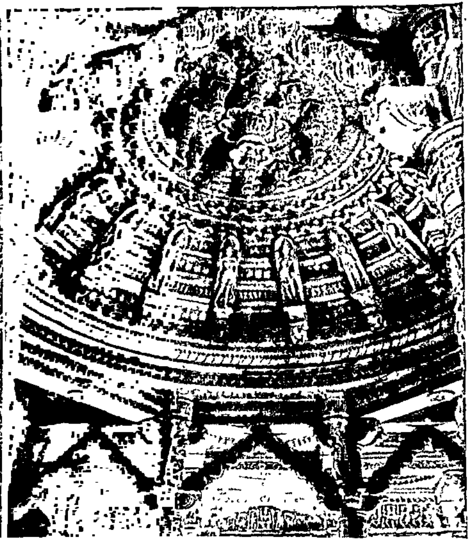
(६) सभामण्डप के पूर्व पक्ष की भ्रमती के मध्यवर्त्ती गुम्बज के बड़े खण्ड में भरत-बाहुबली के बीच हुये युद्ध का दृश्य है। वह इस प्रकार है:—

दृश्य के आदि में एक ओर अयोध्या (६A) नगरी का देखाव है और दूसरी ओर तक्षशीला नगरी (६B) का देखाव है। अयोध्यानगरी (६A) की प्रतोली में अलग २ पालकियों में बैठी हुई क्रमशः भरत की बहिन ब्राह्मी, माता सुमंगलादि समस्त अन्तःपुर की स्त्रियाँ, जिनमें प्रमुखा स्त्रीरत्न सुन्दरी है का देखाव है। प्रत्येक स्त्री-आकृति पर उस स्त्री का नाम लिखा हुआ है। इसके पश्चात् संग्राम करने के लिये रवाना होती हुई चतुरंगिणी सैन्य का देखाव है, जिसमें पाटहस्ति विजयगिरि और उस पर बैठा हुआ वीरवेश में महामात्य मतिसागर, सेनापति सुसेन और श्री भरत चक्रवर्त्ती आदि की मूर्त्तियाँ सनाम खुदी हुई हैं। तत्पश्चात् हाथी, घोड़े, रथ, पैदलसैन्यों का प्रदर्शन है।

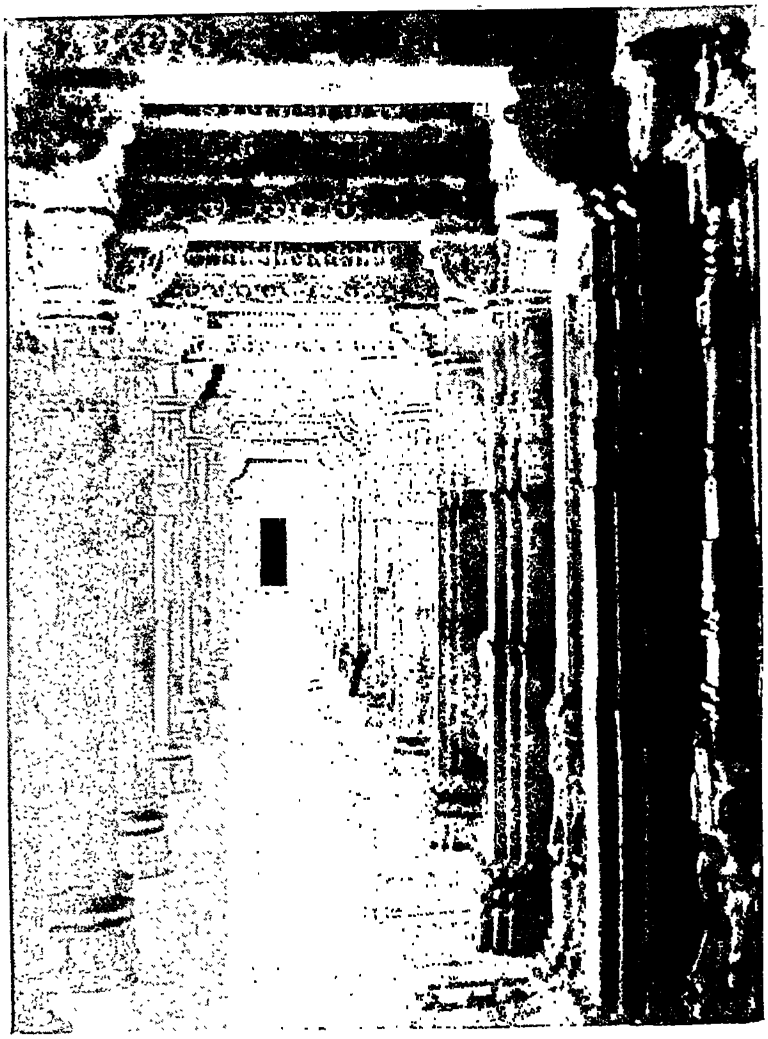
अम्बिकादेवी की मूर्त्ति को ५ से चिह्नित किया हुआ है। —आबू



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमलवसहि के अद्भुत शिल्पकलापूर्ण रङ्गमण्डप का दृश्य। देखिये पृ० ८८ पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमलवसहि के अद्भुत शिल्पकलापूर्ण रङ्गमण्डप के सोलह देवीपुत्तलियोंवाले घूमट का देखाव। देखिये पृ० ८८ पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमळवसहि के उत्तर पक्ष पर विनिर्मित देवकुलिकाओं की हारमाला का एक आन्तर दृश्य।

दूसरी ओर तक्षशिला नगर (६ B) के दृश्य में क्रमशः पुत्री जशोमती और रथ करने के लिये प्रस्थान करती हुई चतुरंगिणीसैन्य, सेनापति सिंहरथ, हाथी पर कुँ० सोमयश, अन्य हाथी पर मंत्री बहुलमति, पालकी में अंतः-पुर की स्त्रियां, जिनमें प्रमुखा स्त्री-रत्न सुभद्रा और तत्पश्चात् हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसैन्य का दर्शन है। प्रत्येक मूर्त्ति और प्रदर्शन पर अपने २ नाम लिखे हैं। एक रथ में रणवस्त्रों से सुसज्जित होकर एक पुरुष बैठा है, सम्भव है वह स्वयं बाहुबली हैं। इस पर नाम नहीं है (६C) रणक्षेत्र का दृश्य है। एक मृत मनुष्य पर अनिलवेग और दूसरे मनुष्य पर सेनापति सिंहरथ, पाटहस्ति विजयगिरि पर बैठा हुआ आदित्यजस, घोड़े पर बैठा हुआ सुवेगदूत की आकृतियां बनी हैं। सब पर अपने २ नाम खुदे हुये हैं। तत्पश्चात् द्वंद्वरण का दृश्य है (६D), दो पंक्तियों में भरत, बाहुबली के बीच हुआ छः प्रकार का युद्ध-दृश्य—दृष्टियुद्ध, वाक्युद्ध, बाहुयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दंडयुद्ध, चक्रयुद्ध अंकित हैं और प्रत्येक युद्ध-दृश्य पर उसका नाम लिखा है—जैसे भरतेश्वर-बाहुबली-दृष्टियुद्ध इत्यादि।

उपरोक्त दृश्य के पश्चात् कायोत्सर्गावस्था में बाहुबली का तप करने, लताजाल से आवृत्त होने, ब्राह्मी, सुन्दरी की बाहुबली को समझाती हुई मुद्राओं में मूर्त्तियाँ, बाहुबली को केवल ज्ञान और उसके पास ही पुनः व्रतिनी बांभी (ब्राह्मी) सुन्दरी की मूर्त्तियाँ आदि दृश्य (६E) खुदे हुये हैं और प्रत्येक पर नाम लिखा है।

उपरोक्त दृश्य के पश्चात् भगवान् ऋषभदेव के तीन गढ़, चौमुखजी सहित समवशरण की रचना का दृश्य (६F) है। जानवरों के कोष्ट में 'मंजारी-मूषक, सर्प-नकुल, सिंह-वत्स सहित गौ और सिंह तथा श्राविकाओं के कोष्ठ में सुनन्दा, सुमंगला, तत्पश्चात् पुरुषसभा और ब्राह्मी और सुन्दरी की विनय करती हुई खड़ी मूर्त्तियां और भगवान् की प्रदक्षिणा करते हुए भरत चक्रवर्ती की मूर्त्ति के दृश्य खुदे हैं। एक ओर अंगुली को देखते हुए भरत महाराज को केवलज्ञान होने का देखाव है और उनको रजोहरण प्रदान करते हुये देवों की मूर्त्तियों के दृश्य अंकित हैं।

इस गुम्बज के पास में जो सभामण्डप का तोरण पड़ता है, उसमें उसके मध्य भाग में दोनों ओर भगवान् की एक प्रतिमा खुदी है।

(७) उपरोक्त गुम्बज के दक्षिण पक्ष पर आये हुये गुम्बज की चतुर्दिशी नीचे की पट्टियों में से पूर्व दिशा की पट्टी में एक जिनप्रतिमा और दोनों कोणों में आसनस्थ दो गुरु-मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। पास में पूजा-सामग्री लिये श्रावकगण खड़े हैं। उत्तर दिशा की पट्टी में भी एक जिनप्रतिमा खुदी है। दक्षिण दिशा की पट्टी में तीन स्थानों पर सिंहासनारूढ़ राजा अथवा कोई प्रधान राजकर्मचारी बैठे हैं और उनके पास में सैनिकगण आदि मूर्त्तित हैं। पश्चिम दिशा की पट्टी में मल्लयुद्ध का दृश्य है। गुम्बज के मध्य में चतुर्विंशति कोण वाली कांचलामयी रचना है। प्रत्येक कोण की नोंक पर हाथ जोड़ी हुई एक-एक मूर्त्ति खुदी है।

(८) उत्तर पक्ष पर बने गुम्बज के नीचे की चतुर्दिशी पट्टियों में राजा, सैनिक आदि के दृश्य हैं। उत्तर दिशा की पट्टी में आसनारूढ़ आचार्य की, उनके पास में दो खड़े श्रावकों की, टवणी और पश्चात् बैठे हुये श्रावक लोगों की मूर्त्तियां खुदी हैं।

उपरोक्त दृश्य ६A, ६B, ६C, ६D, ६E, ६F में दिखाये गये हैं। —मारू

(६-१०) सिंहद्वार के भीतर जो पहला गुम्बज है, उसमें झूमर की प्रथम पंक्ति में व्याख्यान-सभा का दृश्य है, जिसमें आसनारूढ़ आचार्य-मूर्त्ति, ठवणी और पास में बैठे हुये श्रोता श्रावकगणों की मूर्त्तियाँ हैं (६)। दूसरा गुम्बज (१०) सिंह-द्वार के भीतर देवकुलिकाओं की भ्रमती में पड़ता है। इसमें आर्द्रकुमार-हस्तिप्रतिबोध का दृश्य है। दृश्य में एक हाथी अपनी सूँड और अगले दोनों पैर झुका कर साधु महाराज को नमस्कार कर रहा है। साधु महाराज उसको उपदेश दे रहे हैं। उनके पीछे दो अन्य साधु हैं। कोण में भगवान् महावीर कायोत्सर्ग-ध्यान में हैं। हाथी के एक ओर एक मनुष्य और सिंह में मल्ल-युद्ध हो रहा है।

सिंह-द्वार और उसके भीतर के दो गुम्बजों का दृश्य

देवकुलिकायें और उनके गुम्बजों में, द्वार-चतुष्कों में, गालाओं में, स्तम्भों में खुदे हुये कलात्मक चित्रों का परिचय

●

(सिंह-द्वार के दक्षिणपक्ष से उत्तरपक्ष को)

दे० कु० १—काचलाकृतियाँ दोनों मण्डपों के वृत्ताकार आधारवलयों में चारों ओर सिंहाकृतियाँ।

,, ,, २—काचलाकृतियाँ। प्र० मण्डप के प्रथम वलय में नाट्य-प्रदर्शन और द्वितीय वलय में हस्तिदल तथा द्वि० मण्डप में अश्वदल।

,, ,, ३—काचलाकृतियाँ। प्र० मण्डप में अश्वदल और द्वि० मण्डप में सिंहदल।

उपरोक्त तीनों देव-कुलिकाओं के मुखद्वार, द्वार-चतुष्क, स्तम्भ और इनके मध्य का अन्तर भाग आदि सर्व अति सुन्दर शिल्पकृति से मण्डित हैं। दे० कु० २, ३ के द्वारों के बाहर के दोनों ओर के दृश्यों (११) में श्रावक-श्राविकायें पूजा-सामग्री लेकर खड़े हैं।

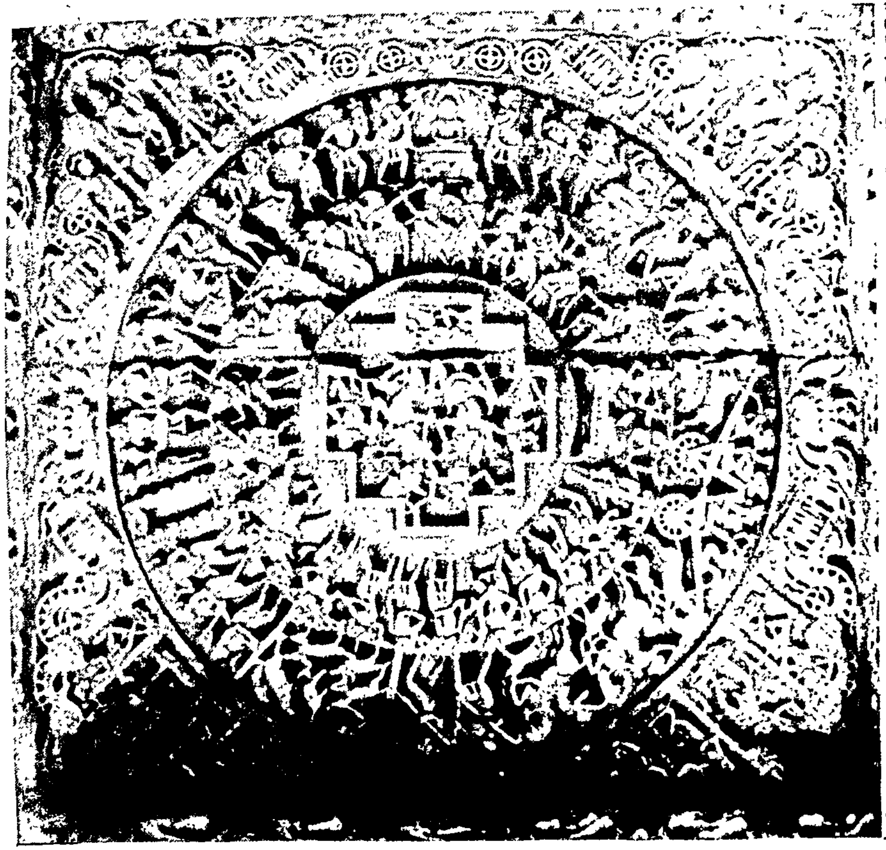
दे० कु० ४—साधारण।

,, ,, ५— ,,

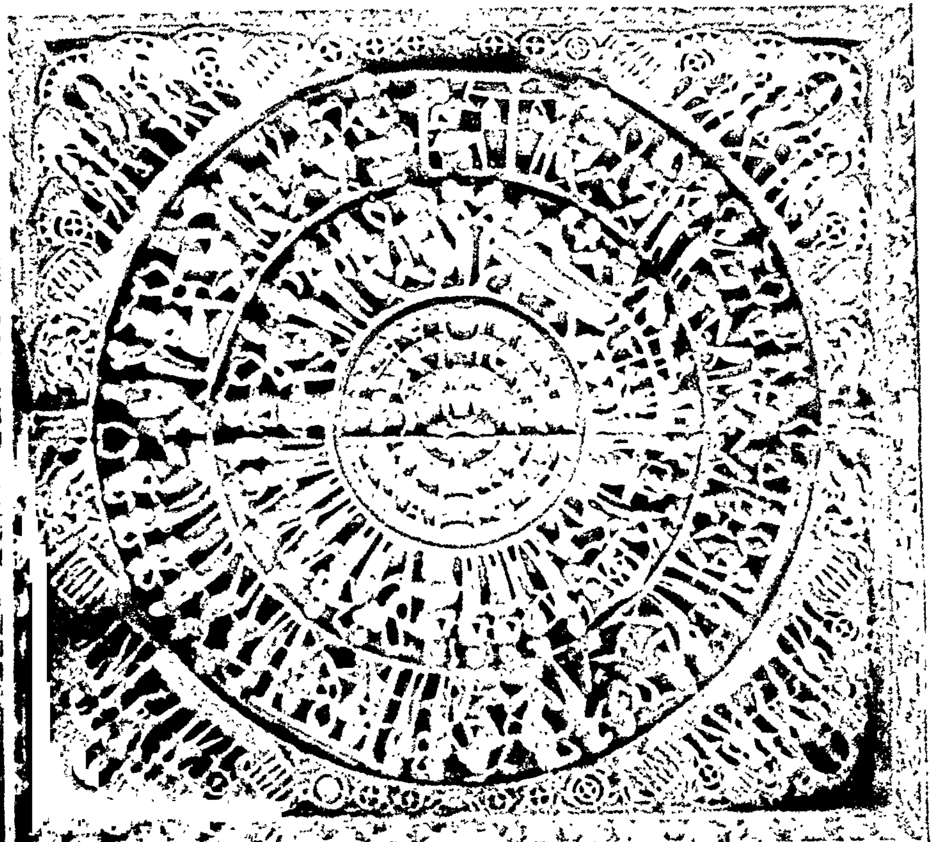
,, ,, ६—देवकुलिका के बाहर का भाग सुन्दर कोरणी से विभूषित है। मण्डपों की रचना सादी ही है।

,, ,, ७—प्र० मण्डप की चतुर्भुजाकार आधार-पट्टियों पर वतकों की आकृतियाँ। और द्वि० मण्डप (१२) के नीचे की पट्टियों में उपाश्रय का दृश्य है। एक ओर दो साधु खड़े हैं और एक श्रावक उनको पंचांग नमस्कार कर रहा है और अन्य तीन श्रावक हाथ जोड़कर खड़े हैं। दूसरी ओर एक साधु कायोत्सर्ग-अवस्था में है। तीसरी ओर एक कोण में आसन पर आचार्य महाराज बैठे हैं। एक शिष्य उनकी चरण-सेवा कर रहा है, एक शिष्य नमस्कार कर रहा है और श्रावक और साधुगण खड़े हैं।

८—प्रथम मण्डप (१३) के केन्द्र में समवशरण और चौमुखजी की रचना है। द्वितीय और तृतीय वलयों में एक-एक व्यक्ति सिंहासनारूढ़ हैं और अवशिष्ट भागों में घोड़े, मनुष्यादि की आकृतियाँ हैं। पूर्वदिशा



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमलवसहि की दक्षिण पक्ष पर बनी हुई देव-कुलिका सं० १० के प्रथम मण्डप की छत में श्री नेमिनाथ चरित्र का दृश्य। देखिये पृ० ९१ (दे० कु० १०)।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री विमलवसहि की दक्षिण पक्ष पर बनी हुई देव-कुलिका सं० १२ के प्रथम मण्डप की छत में श्री शांतिनाथ भगवान् के पूर्वभव का दृश्य। देखिये पृ० ९१ (दे० कु० १२)।

की पंक्ति में एक ओर भगवान् की प्रतिमा और दूसरी ओर एक कायोत्सर्गिक प्रतिमा खुदी हैं। पश्चिम दिशा की पंक्ति में एक कोण में दो साधुओं की आकृतियाँ हैं। तत्पश्चात् आसनारूढ़ आचार्य उपदेश दे रहे हैं। उनके सामीप्य में स्थापनाचार्य और श्रोतागणों का देखाव है।

द्वितीय मण्डप (१४) के नीचे की पश्चिम दिशा की पंक्ति के मध्य में तीन साधु खड़े हैं, एक श्रावक अब्भुट्ठिओ खमा रहा है, अन्य श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हैं। पूर्व दिशा की पंक्ति के मध्य में दो साधु खड़े हैं और उनको एक तीसरा साधु पंचाँग नमस्कारपूर्वक अब्भुट्ठिओ खमा रहा है, अन्य श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हैं। इसके पास ही एक दृश्य में एक हाथी मनुष्यों का पीछा कर रहा है और वे भाग रहे हैं।

दे० कु० ६–प्रथम मण्डप (१५) में पंच-कल्याणक का दृश्य है। प्रथम वलय में जिनप्रतिमायुक्त समवशरण, द्वि० वलय में च्यवन-कल्याणक अर्थात् माता पलंग पर सोती हुई चौदह स्वप्न देख रही है, जन्म-कल्याणक अर्थात् इन्द्र भगवान् को गोद में लेकर जन्माभिषेक-महोत्सव कर रहे हैं, दीक्षा-कल्याणक अर्थात् भगवान् खड़े २ लोच कर रहे हैं, केवलज्ञान-कल्याणक अर्थात् समवशरण में बैठे हुये भगवान् देशना दे रहे हैं। दूसरे वलय में भगवान् कायोत्सर्ग-अवस्था में ध्यान कर रहे हैं अर्थात् मोक्ष सिधारे हैं। तीसरे वलय में राजा, हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्यों की आकृतियाँ हैं। द्वि० मण्डप में आधार-पट्टियों में चारों ओर सिंह-दल और काचलाकृतियाँ बनी हैं।

दे० कु० १०–प्रथम मण्डप (१६) में श्री नेमिनाथ-चरित्र का दृश्य है। प्रथम वलय में श्री नेमिनाथ के साथ श्री कृष्ण और उनकी स्त्रियों की जल-क्रीड़ा का दृश्य। द्वि० वलय में श्री नेमिनाथ का श्रीकृष्ण की आयुधशाला में जाना, शंख बजाना और श्री नेमिनाथ एवं श्रीकृष्ण की बल-परीक्षा, तृ० वलय में राजा उग्रसेन, राजिमती, चौस्तम्भी (चौरी), पशुओं का बाड़ा, श्री नेमिनाथ की बरात, श्री नेमिनाथ का लौटना, दीक्षा-उत्सव समारोह, दीक्षा एवं केवलज्ञान-उत्पत्ति के दृश्य दिखलाये गये हैं।

द्वि० मण्डप की आधार-पट्टियों में हस्तिदल और काचलाकृतियाँ हैं। इस देवकुलिका के द्वार के बाहर बाँयी ओर दिवार में (१७) वर्तमान चौवीसी के १२० कल्याणकों की तिथियाँ, चौबीस तीर्थङ्करों के वर्ष, दीक्षातप, केवलज्ञानतप तथा निर्वाणतपों की तिथिसूची-पट्ट लगा है।

दे० कु० ११–इस देवकुलिका के द्वार के बाहर दोनों ओर द्वार-चतुष्कट, स्तम्भ और इनके मध्य के अन्तर भाग में अति सुन्दर शिल्पकाम है। प्रथम मण्डप में चौदह हाथ वाली (१८) देवी की मनोहर मूर्त्ति बनी है और द्वि० मण्डप में काचलाकृतियाँ और अश्वदल का दृश्य है।

दे० कु० १२–प्रथम मण्डप में शान्तिनाथ-प्रभु के पूर्वभव के मेघरथ राजा के रूप से सम्बन्धित कपोत और बाज का दृश्य तथा पंचकल्याणक का दृश्य अङ्कित है। (१९) गुम्बज के नीचे की चारों दिशाओं की चारों पट्टियों के मध्य में एक-एक जिनप्रतिमा और उसके आस-पास में पूजा-सामग्री लिये हुये श्रावकगणों की मूर्त्तियाँ खुदी हैं। द्वि० मण्डप में हस्तिदल है।

दे० कु० १३–प्रथम मण्डप की छत में देवी-आकृतियाँ और आधार-पट्टियों पर अश्वारोहीदल तथा उनके नीचे नृत्य-प्रदर्शन के दृश्य हैं। द्वि० मण्डप में काचलाकृतियाँ और सिंहदल।

दे० कु० १४–प्रथम मण्डप में काचलाकृतियाँ, देवी-नृत्य का दृश्य और दूसरे वलय में प्रमुख देवियाँ और आधार-पट्टियाँ पर सिंह-दल। द्वि० मण्डप में काचलाकृतियाँ और सिंहदल।

दे० कु० १५–साधारण।

दे० कु० १६–प्रथम मण्डप (२०A) में पंच-कल्याणक का दृश्य हैं। प्रथम वलय के मध्य में जिनप्रतिमा सहित समवशरण की रचना है।

दे० कु० १७–प्रथम मण्डप की आधार-पट्टियों पर सिंहाकृतियाँ, उनके नीचे प्रासादस्थ देवियाँ और काचलयुक्त रचना। द्वि० मण्डप में काचलाकृतियाँ और अश्वारोहियों की घुड़दौड़।

दे० कु० १८–साधारण।

देवकुलिका सं० ८ से १८ तक की में एक कुलिका सं० ११ का द्वार का वहिर भाग अति सुन्दर शिल्पकाम से अलंकृत है। अन्य कुलिकाओं के द्वारों के वहिर भाग शिल्पकाम की दृष्टि से साधारण ही है।

केसर घोटने का स्थान—देवकुलिका अट्ठारहवीं के पश्चात् दो देवकुलिकाओं के स्थान जितनी जगह खाली है, अन्य कुलिकाओं के बराबर का स्थान खुला छोड़ कर दो कोठरियाँ बनी हैं। खाली स्थान में केसर घोटी जाती है।

दे० कु० १९–द्वि० मण्डप में नीचे की पट्टी में बीच-बीच में पाँच स्थानों पर जिनबिंब खुदे हैं और उनके आस-पास श्रेणी में श्रावकगण चैत्यवंदन करते हुये, हाथों में पूजा की विविध सामग्री जैसे पुष्पमाला, कलश, फल, फूल, चामरादि लिये तथा विविध प्रकार के वाद्यंत्र लेकर बैठे हैं।

दे० कु० २०–यह एक बड़ा गंभारा है। शिल्पकाम की दृष्टि से इसमें कोई अंग उल्लेखनीय नहीं है। भिन्न २ कालों के प्रतिष्ठित अनेक बिंब इसमें विराजमान हैं।

दे० कु० २१–इसमें अंबिकादेवी की प्रतिमा है। शिल्पकाम बिल्कुल नहीं है।

,, ,, २२–साधारण।

,, ,, २३–प्रथम मण्डप (२०B) में अन्तिम वृत्ताकार पंक्ति के नीचे उत्तर और दक्षिण की दोनों सरलरेखाओं के मध्य में भगवान् की एक-एक प्रतिमा खुदी है। उनके पास में पुष्पमालादि लेकर श्रावकगण खड़े हैं। अवशिष्ट भाग में प्रथम वलय में वतकें और द्वि० वलय में नाटक-दृश्य वाद्यंत्र आदि खुदे हैं। मण्डप के केन्द्र में काचलाकृतियाँ हैं।

,, ,, २४–काचलाकृतियाँ। प्र० वलय में मल्ल-युद्ध और आधार-पट्ट में नाटक-दृश्य।

,, ,, २५–काचलाकृतियाँ। प्र० वलय में नृत्य। द्वि० वलय में अश्वारोहीदल और तृ० वलय ने हस्तिदल।

दे० कु० २६–काचलाकृतियाँ। प्रथम वलय में वतर्के। गोल आधार-पट्ट में नृत्य।

„ „ २७–काचलाकृतियाँ। प्र० वलय में वतर्के। आधार-पट्ट में अश्वारोहीदल।

„ „ २८–काचलाकृतियाँ। गोल आधार-वलय में सिंह-दल।

„ „ २९–प्रथम मण्डप (२१) में कृष्ण-कालीयअहिदमन का दृश्य है। केन्द्र में कालीय सर्प भयंकर फण करके खड़ा है। कृष्ण उसके कन्धे पर बैठकर उसके मुँह में नाथ डाल रहे हैं और उसका दमन कर रहे हैं। सर्प थक कर विनम्रभाव से खड़ा है। उसके आस-पास उसकी सात नागिनियाँ खड़ी २ हाथ जोड़ रही हैं। मण्डप के एक ओर कोण में पाताल-लोक में श्री कृष्ण शय्या पर सो रहे हैं, लक्ष्मी पंखा झल रही है; एक सेवक चरणसेवा कर रहा है। इस दृश्य के पास में कृष्ण और चाणूर नामक माल का द्वन्द्व-युद्ध दिखाया गया है। दूसरी ओर श्रीकृष्ण, राम और उनके सखा गेंद-डण्डा खेल रहे हैं।

„ „ ३०–३१–काचलाकृतियाँ। मण्डप के चारों कोणों में प्रासादस्थ एक-एक देवी-आकृति। दोनों देवकुलिकायें एक ही कोण के दोनों पक्षों पर बनी हैं, अतः दोनों का मण्डप भी एक ही है।

„ „ ३२–काचलाकृतियाँ। नीचे की चतुर्भुजाकार पट्टियों में उत्तर दिशा की पट्टी पर विविध नाट्य-दृश्य और शेष तीन ओर की पट्टियों पर राजा की सवारी का दृश्य है।

„ „ ३३–काचलाकृतियाँ। मण्डप के प्र० वलय में विविध अंगचालन-क्रियायें। द्वि० वलय में भिन्न २ प्रासादों में बैठी हुई देवियों की आकृतियाँ। द्वि० मण्डप में काचलाकृतियाँ और चतुर्भुजाकार आधार-पट्टियों पर हस्तिदल का देखाव।

„ „ ३४–प्र० मण्डप (२२) में नीचे की पूर्व दिशा की शिलपट्टी के मध्य में एक कायोत्सर्गस्थ प्रतिमा। द्वि० मण्डप (२३) में चारों आधार-पट्टियों के मध्य में भगवान् की एक-एक प्रतिमा और उसके आस-पास पूजा-सामग्री लिये हुये श्रावकगणों का देखाव।

देवकुलिका १९ से ३४ तक की में सं० २३ से २८ के द्वारों के बाहर दोनों ओर सुन्दर शिल्पकाम है। शेष कुलिकाओं के द्वारों के बाहरी भाग शिल्पकाम की दृष्टि से साधारण ही हैं।

दे० कु० ३५–प्रथम मण्डप (२४) के नीचे की चारों ओर की पंक्तियों के मध्यभागों में एक-एक कायोत्सर्गस्थ प्रतिमा है। प्रत्येक के आस-पास पूजा-सामग्री लेकर श्रावकगण खड़े हैं। द्वि० मण्डप (२५) में सोलह भुजाओं वाली एक सुन्दर देवी की आकृति लगी है।

„ „ ३६–काचलाकृतियाँ। अनेक देवियों की आकृतियाँ। द्वि० मण्डप में काचलाकृतियाँ और प्रासादस्थ देवी-मूर्त्तियाँ।

„ „ ३७–प्र० मण्डप में काचलाकृतियाँ और नृत्य का देखाव। द्वि० मण्डप में नीचे की आधार-पट्टियों में प्रासादस्थ देवी-आकृतियाँ।

" " ३८—प्र० मण्डप (२६) के नीचे की चारों पंक्तियों के मध्य में भगवान् की एक-एक प्रतिमा है। एक ओर एक जिनप्रतिमा के दोनों पक्षों पर एक-एक कायोत्सर्गस्थ प्रतिमा है। प्रत्येक जिनप्रतिमा के दोनों पक्षों पर एक-एक कायोत्सर्गिक प्रतिमा है। प्रत्येक जिनप्रतिमा के आस-पास पूजा-सामग्री लेकर श्रावकगण खड़े हैं। द्वि० मण्डप (२७) में देव-देवियों की सुन्दर मूर्त्तियाँ हैं।

दे० कु० ३६—प्र० मण्डप का देखाव साधारण। काचलाकृतियाँ और प्रासादस्थ द्वि० मण्डप (२८) में हँसवाहिनी सरस्वतीदेवी तथा देवियाँ। गजवाहिनी लक्ष्मीदेवी की मूर्त्तियाँ हैं।

" " ४०—प्र० मण्डप में विकसित कमल-पुष्प। प्र० वलय में हाथ जोड़ी हुई मनुजाकृतियाँ। द्वि० वलय में मन्दिरों के शिखर। तृ० वलय में गुलाब के पुष्प हैं।

द्वि० मण्डप (२६) के बीच लक्ष्मीदेवी की मूर्त्ति है। उसके आस-पास अन्य देव-देवियों की आकृतियाँ हैं। मण्डप के नीचे की चारों ओर की पंक्तियों के बीच २ में एक २ कायोत्सर्गिक मूर्त्ति, प्रत्येक कायोत्सर्गिक मूर्त्ति के आस-पास हंस और मयूर पर बैठे हुये विद्याधर हैं, जिनके हाथों में कलश और फल हैं। घोड़ों पर मनुष्य अथवा देव, हाथों में चामर लिये हुये हैं। देवकुलिका सं० ३५ से ४० में से सं० ३७ के द्वार के बाहर का शिल्पकाम साधारण और अन्य कु० के द्वार के बाहर सुन्दर हैं।

दे० कु० ४१—इस देवकुलिका के द्वार-चतुष्क, स्तंभ तथा इन दोनों के मध्य का अन्तर भाग आदि अति सुन्दर शिल्पकाम से मंडित है। मण्डप के केन्द्र में विकसित कमल-पुष्प और कमलगट्टों के दृश्य हैं। प्र० वलय में विविध देवी-नृत्य हैं। दोनों मण्डपों के नीचे की आधार-पट्टियों में प्रासादस्थ देवियों के देखाव हैं।

" " ४२—प्र० मण्डप में देवी-नृत्य के दृश्य और अश्वारोही दल हैं। द्वि० मण्डप (३०) के नीचे की दोनों ओर की पट्टियों पर अभिषेकसहित लक्ष्मीदेवी की सुन्दर मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

" " ४३, ४४, ४५—इन तीनों देवकुलिकाओं के प्रथम मण्डप तो साधारण बने हैं। प्रत्येक के द्वितीय मण्डप (३१, ३२, ३३) में १६ सोलह भुजावाली एक २ देवी की सुन्दर मूर्त्ति खुदी है। कुलिका ४४ के द्वार का बाहिर भाग भी अति सुन्दर है। कुलिका ४२, ४३ का सुन्दर और ४५ का साधारण है।

४३ प्र० मण्डप में काचलाकृतियाँ। नीचे की पट्टी में प्रासादस्थ देवियाँ और उनके नीचे वृत्ताकृतियाँ।

४४ प्र० मण्डप में चारों ओर आधार-पट्टियों पर अश्वारोहीदल और उनके नीचे चौवीस प्रासादों में चौवीस देवियों की अलग २ मूर्त्तियाँ।

कुलिका ४५वीं के प्रथम मण्डप (३४) के नीचे की चारों पंक्तियों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति है। पूर्वदिशा की जिनप्रतिमा के दोनों ओर एक २ कायोत्सर्गिक मूर्त्ति है। प्रत्येक

जिनमूर्त्ति के दोनों ओर. हंस तथा घोड़े पर देव या मनुष्य बैठे हैं और उनके हाथ में फल अथवा कलश और चामर हैं।

,, ,, ४६–प्रथम मण्डप (३५) के नीचे की चारों ओर की. पट्टियों के बीच २ में एक २ प्रभुमूर्त्ति है। उत्तर दिशा की प्रभुमूर्ति के दोनों ओर एक २ कायोत्सर्गस्थ मूर्त्ति है। प्रत्येक प्रभुमूर्त्ति के आस-पास श्रावक पुष्पमालायें लेकर खड़े हैं। द्वि० मण्डप (३६) में नरसिंह द्वारा हिरण्यकश्यप के वध करने का दृश्य है। देवकुलिका के द्वार के बाहर दोनों ओर शिल्पकाम साधारण ही है।

दे० कु० ४७–प्रथम मण्डप (३७) में छप्पन दिक्कुमारियाँ भगवान् का जन्माभिषेक कर रही हैं। प्रथम वलय में भगवान् की मूर्त्ति है। दूसरे और तीसरे वलयों में देवियाँ कलश, पंखा, दर्पण आदि सामग्री लेकर खड़ी हैं। अतिरिक्त इन दृश्यों के तृतीय वलय में एक ओर देवियाँ भगवान् अथवा उनकी माता का स्नेह-मर्दन कर रही हैं, दूसरी ओर स्नान कराने का दृश्य है। चारों ओर की नीचे की आधार-पट्टियों के मध्य में चारों दिशा की पंक्ति में दो कायोत्सर्गिक मूर्त्तियाँ बनी हैं। इनके आस-पास में श्रावक-गण पुष्प-मालायें लेकर खड़े हैं। द्वि० मण्डप में काचलाकृतियाँ। द्वार के बाहर का भाग साधारण है।

,, ,, ४८–प्रथम मण्डप की रचना साधारण है। वृक्ष और पुष्पों के दृश्य हैं। द्वि० मण्डप (३८) के केन्द्र में अति सुन्दर शिल्पकाम है। यह बीस खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड में अलग २ कृतकाम है। एक खण्ड में भगवान् की मूर्त्ति और एक दूसरे अन्य खण्ड में उपाश्रय का दृश्य है। आसन पर आचार्य बैठे हैं, एक शिष्य एक हाथ शिर पर रख कर पंचांग नमस्कार कर रहा है, अन्य दो शिष्य हाथ जोड़ कर खड़े हैं।

,, ,, ४९–देवकुलिका सं० ४८ के अनुसार ही इसके प्रथम मण्डप में बीस खण्ड हैं और उनमें भिन्न २ प्रकार का शिल्पकौशल दिखाया गया है।

,, ,, ५०, ५१–कृतकाम की दृष्टि से दोनों देवकुलिकाओं के दोनों मण्डप अति सुन्दर है।

,, ,, ५२–प्रथम मण्डप में काचलाकृतियाँ। द्वि० मण्डप के प्रथम वलय में शृंखलायें। द्वि० वलय में गुलाब के पुष्प तथा नीचे की पट्टी पर हाथ जोड़े हुये मनुष्यों की मूर्त्तियां और नीचे के अष्टभुजाकार आधारों पर प्रासादस्थ देवियाँ।

,, ,, ५३–प्रथम मण्डप (४०) के नीचे की पट्टी में एक ओर भगवान् कायोत्सर्गावस्था में मूर्त्तित हैं। उनके आस-पास श्रावक खड़े हैं। दूसरी ओर आचार्य महाराज बैठे हैं, उनके समीप में ठवणी है और श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हुये हैं। द्वि० मण्डप में काचलाकृत्तियाँ। अष्टभुजाकार आधार की पट्टियों पर प्रासादस्थ देवियाँ। इसके नीचे चारों कोणों में लक्ष्मीदेवी की एक सुन्दर मूर्त्ति और अन्य देवियाँ।

,, ,, ५४–प्रथम मण्डप (४१) नीचे की पंक्ति में चारों ओर हाथियों का देखाव है। तत्पश्चात् उत्तर दिशा की नीचे की पंक्ति में एक कायोत्सर्गिक मूर्त्ति है। आस-पास में श्रावक पूजा-सामग्री

लेकर खड़े हैं। मण्डप के केन्द्र में काचलाकृतियाँ। वृत्ताकार आधार-वलय में हस्तिदल। नीचे के भाग पर विविध स्त्री-नृत्य। द्वि० मण्डप में आठ देवियों का देखाव है:—

देवकुलिका ४८, ४६, ५०, ५१ और ५२, ५३, ५४ के द्वारों के बाहर के दोनों ओर के शिल्पकाम क्रमशः सुन्दर और अति सुन्दर हैं।

इस वसति का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है:—

१–सशिखर मूलगंभारा और उसके द्वार के बाहर की चौकी।

२–विशाल गुम्बजदार गूढ़मण्डप, जिसके उत्तर और दक्षिण में दो चौकियाँ।

३–नवचौकिया जिसमें दो झरोखे।

४–नवचौकिया से चार सीढ़ी उतर कर सभा-मण्डप।

५–सभा-मण्डप में अति सुन्दर बारह तोरण।

६–बावन देवकुलिका और एक अम्बिकादेवी की कुलिका तथा एक मूलगंभारा-कुल ५४। इनमें देवकुलिका सं० १, २, ३, ११, ४१, ४४, ५२, ५३, ५४ के द्वारों के बहिर भाग अति सुन्दर शिल्पकाम से अलंकृत हैं।

देवकुलिका सं० ६, ७, २३, २४, २५, २६, २७, २८, ३५, ३६, ३८, ३६, ४०, ४२, ४३, ४८, ४६, ५०, ५१ के द्वारों के बहिर भाग सुन्दर शिल्पकाम से सुशोभित हैं। शेष कुलिकाओं के द्वारों के बहिर भाग और उनके स्तंभ साधारण बने हैं।

७–११६ मण्डप हैं।

३–गूढ़मण्डप १ और उसके उत्तर तथा दक्षिण की चौकियों के। ६–नवचौकिया के।

१६–सभामण्डप १ और उसके उत्तर ६, दक्षिण ६, पूर्व में भ्रमती में ३। ६१–देवकुलिकाओं के।

८–५६ गुम्बज छत पर बने हैं:—

३–गूढ़मण्डप के ऊपर और दोनों चौकियों के ऊपर। ६–नवचौकियों के।

१६–सभामण्डप का १ और भ्रमती के ऊपर १५। १२–पूर्व दिशा की पश्चिमाभिमुख देवकुलिकायें सं० १, २, ३, ५२, ५३, ५४ के मंडपों के ऊपर दो-दो।

३–सिंहद्वार १ और उसके भीतर २। ८–पश्चिम पक्ष पर देवकुलिकाओं के।

४–देवकुलिका १६, २०वीं। १–देवकुलिका ३३वीं।

६–२१३ स्तंभ हैं, जिनमें से १२१ संगमरमर के हैं:—

८–गूढ़मण्डप में। ८–दोनों चौकियों के। १२–नवचौकिया के। १८–सभामण्डप के] अति सुन्दर।

६१–देवकुलिकाओं की मुखभित्ति के। ८७–देवकुलिकाओं के मण्डपों के (५०+३७) }
१२–देवकुलिका १६, २०वीं। ३–अंबिकाकुलिका के भीतर। ४–सिंहद्वार और चौकी } साधारण।

जो उसके महावलाधिकारी दंडनायकपन और राजत्व को सिद्ध करती है और दाहें हाथ में पूजा-सामग्री उसके विनयी भक्तरूप को दिखाती है। इसकी रचना कक्ष के मध्य में ठीक द्वार के भीतर ही वसति के मूलगंभारे में प्रतिष्ठित मू० ना० आदिनाथ-प्रतिमा का दर्शन करती हुई की गई है, जो उसके अनन्य पूजारी एवं वसति के निर्मातापन को अथवा वसतिविषय में उसकी प्रमुखता को सिद्ध करती है।

महामन्त्री नेढ़ के पुत्र आनन्द के शिर पर गूजरी भाँत और वेड़ादार पगड़ी बंधी है, जो उसके वैभव और सुखी-जीवन का परिचय देती है। पृथ्वीपाल की मूर्त्ति के शिर पर भी पगड़ी है और पीछे दो चामरधरों की रचना है, जो उसके मन्त्री होने को सिद्ध करती है।

समस्त मन्त्रियों के शिर पर लम्बे २ केश हैं, जो पीछे को सवारे गये हैं और पीछे उनमें ग्रन्थी दी हुई है। प्रत्येक महावतमूर्त्ति के मस्तिष्क पर गुंगरदार केश हैं, सवारे हुये हैं, पीछे को उनमें ग्रन्थी दी हुई है तथा मस्तिष्क नंगे हैं। समस्त मंत्रियों के शिर पर पगड़ी की रचना उनके श्रेष्ठिपन को तथा श्रीमन्तभाव को सिद्ध करती है और हस्ति पर उनकी आरूढ़ता उनके मन्त्रीपन को प्रकट करती है तथा चामरधरों की मूर्त्तियाँ सम्राटों द्वारा प्रदत्त उनके विशेष सम्मान और गौरव को प्रकट करती हैं।

मं० पृथ्वीपाल ने हस्तिशाला में तीन पंक्तियों में उपरोक्त प्रतिमाओं को निम्नवत् संस्थापित करवाया।

दक्षिण पक्ष पर	द्वार के सामने	उत्तर पक्ष पर
१—महामन्त्री निन्नक	५—महावलाधिकारी विमल	४—महामन्त्री नेढ़
२—दंडनायक लहर	[समवशरण की रचना]	६—महामन्त्री धवल
३—महामन्त्री वीर	८—मन्त्री पृथ्वीपाल	७—मन्त्री आनन्द
	९—समवशरण	

यह तृगढ़ीय समवशरण विमलशाह के अश्व के ठीक पीछे लहर और धवल के मध्य में बना है। इसमें तीन दिशाओं में साधारण और चौथी दिशा में त्रय तीर्थी के परिकरवाली जिनप्रतिमा विराजमान हैं। यह वि० सं० १२१२ में कोरंटगच्छीय नन्नाचार्य-संतानीय ओसवालज्ञातीय मन्त्री धंधुक ने बनवाया था।

८, ९ और १० वाँ हस्ति पृथ्वीपाल के कनिष्ठ पुत्र धनपाल ने अपने तथा अपने ज्येष्ठ भ्राता जगदेव और अपने किसी एक परिजन के निमित्त वि० सं० १२३७ में बनवा कर निम्नवत् संस्थापित किये हैं। जगदेव की मूर्त्ति हस्ति पर झूल पर ही बैठाई गई है। इसका आशय यह हो सकता है कि वह मन्त्रीपद से अलंकृत नहीं था।

धनपाल द्वारा तीन हस्ति विनिर्मित

१०—किसी परिजन	११—मंत्री धनपाल	१२—जगदेव (अंगरक्षक)

आठवें और दशवें हस्ति पर महावतमूर्त्तियाँ और नौवें हस्ति पर अंबावाड़ी बनी है। शेष अन्य वस्तुयें चिह्नशेष हैं। विमलवसति के पूर्व पक्ष में एक ओर कोण में लक्ष्मी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

हस्तिशाला आठसौ वर्ष प्राचीन है। फिर भी हस्तियों के लेख, हस्तियों पर आरूढ़ मूर्त्तियों के पूर्ण अथवा खण्डित रूपों के अवलोकन से विमलशाह के वंश की प्रतिष्ठा और गौरव का भलीविध परिचय मिलता है कि इस वंश ने गूर्जरदेश और उसके सम्राटों की सेवायें निरन्तर अपनी आठ पीढ़ी पर्य्यन्त की। विमलशाह उन सर्व में अधिक गौरवशाली और कीर्त्तिवान् हुआ। इस आशय को उसके वंशज पृथ्वीपाल ने उसकी छत्र—मुकुटधारीमूर्त्ति बनवाकर तथा अश्व पर आरूढ़ करके उसको स्वविनिर्मित-हस्तिशाला में प्रमुख स्थान पर संस्थापित करके प्रसिद्ध किया।

एक भी चामरधर की मूर्त्ति इस समय विद्यमान नहीं है, केवल उनके पादचिह्न प्रत्येक हस्ति की पीठ पर विद्यमान हैं। महावत-मूर्त्तियों में से केवल नेढ़ और आनन्द के हस्तियों पर उनकी मूर्त्तियाँ रही हैं, शेष अन्य हस्तियों पर उनके लटकते हुये दोनों पैर रह गये हैं। जगदेव के हस्ति के नीचे एक घुड़सवार की मूर्त्ति है। इसका आशय उसके ठक्कुर होने से है ऐसा मेरा अनुमान है।

विशेष बात जो इस हस्तिशाला में हस्तियों पर आरूढ़ मूर्त्तियों के विषय में लिखनी है वह यह है कि प्रत्येक मूर्त्ति के चार-चार हाथ हैं। चार हाथ आज तक केवल देवमूर्त्तियों के ही देखे और सुने गये हैं। मेरे अनुमान से यहाँ पुरुषप्रतिमाओं में चार हाथ दिखाने का कलाकार और निर्माता का केवल यह आशय रहा है कि इन सच्चे गृहस्थ पुरुषवरों ने चारों हाथों अपने धन और पौरुष का धर्म, देश और प्राणी-समाज के अर्थ खुल कर उपयोग किया।*

हस्तिशाला चारों ओर दिवारों से ढके एक कक्ष में है। इसके पूर्व की दिवार में एक लघुद्वार है, जो अभी बन्द है। इस द्वार के बाहर चौकी बनी हुई है। चौकी के अगले दोनों स्तंभों में प्रत्येक में आठ-आठ करके जिनेश्वर भगवानों की १६ सोलह मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। इन स्तम्भों पर तोरण लगा है। तोरण के प्रथम वलय में आठ, दूसरे में अट्ठाईस और तीसरे वलय में चालीस; इस प्रकार कुल छहत्तर जिनेश्वर मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। इस प्रकार स्तम्भ और तोरण दोनों में कुल बानवें मूर्त्तियाँ हुईं। हो सकता है चौवीस अतीत, चौवीस अनागत, चौवीस वर्तमान और बीस विहरमान भगवानों की ये मूर्त्तियाँ हों। इसी तोरण के पीछे के भाग में बहत्तर जिन-प्रतिमायें और खुदी हुई हैं। ये तीनों चौवीसी हैं।

चौकी के छज्जे में भी दोनों तरफ जिन चौवीसी बनी है। समस्त हस्तिशाला के बाहर के चारों ओर के छज्जों के ऊपर की पंक्ति में पद्मासनस्थ प्रतिमायें खुदवा कर एक चौवीसी बनाई गई है।

हस्तिशाला के पश्चिमाभिमुख द्वार के दोनों ओर की अवशिष्ट दिवाल झालीदार पत्थरों से बनी है।

---

*अविवाहित दो हाथ वाला और विवाहित चार हाथ वाला अर्थात् गृहस्थ कहलाता है। यहाँ स्त्री और पुरुष दोनों ने अपने चारों हाथों से गृहस्थाश्रम को धन, बल, पौरुष का उपयोग करके सफल किया। वैसे तो सब ही गृहस्थ चार हाथ वाले होते हैं, परन्तु चार हाथ वाले सफल और सच्चे गृहस्थ तो वे हैं, जिन्होंने अर्थात् दोनों स्त्री और पुरुष ने धर्म, देश और समाज के हित तन, मन, धन का पूरा २ उपयोग किया हो। मैं ता० २२-६-५१ से २८-६-५१ तक विमलवसति और लूणवसति का अध्ययन करने के हेतु देलवाड़ा में रहा। जैसा मैंने देखा और समझा वैसा मैंने लिखा है। मुनिराज साहब श्री जयन्तविजयजीविरचित 'आबू' भाग १ मेरे अध्ययन में सहायक रहा है।
—लेखक

गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्रथम का व्ययकरणमंत्री प्राग्वाटज्ञातीय जाहिल

उसका पुत्र महत्तम नरसिंह और पौत्र महाकवि दुर्लभराज विक्रम संवत् ग्यारहवीं शताब्दी से विक्रम संवत् तेरहवीं शताब्दी पर्यन्त

गूर्जर-सम्राट् भीमदेव प्रथम के राजमंत्रियों में प्राग्वाटज्ञातीय मंत्रीयों का स्थान अधिक ऊँचा रहा है। महामात्य नेढ़, महाबलाधिकारी विमलशाह और अन्य अनेक ऐसे ही प्रतिष्ठित प्राग्वाटकुलोत्पन्न मंत्री थे, जिनमें व्ययकरणमंत्री, जिसको मुद्राव्यापारमंत्री भी कहते थे, प्राग्वाटज्ञातीय जाहिल नामक अर्थशास्त्र का महापंडित, नीतिज्ञ एवं चतुर व्यक्ति था। वह गणित में अद्वितीय था। वह जैसा बुद्धिमान् एवं चतुर था, वैसा ही नेक और विश्वासपात्र था। सम्राट् भीमदेव उसका बड़ा विश्वास करता था। साम्राज्य के समस्त राजकीय व्यय पर जाहिल का निरीक्षण था। यह जाहिल की ही बुद्धिविलक्षणता का परिणाम था कि सम्राट् भीमदेव का कोप सदा समृद्ध एवं अनन्त द्रव्य से पूर्ण था और वह अवंति के सम्राट् सरस्वतीपुत्र, विद्वानों का आश्रय, कविकुलपोषक महाराजा भोज की विद्वानों, कवियों को आश्रय देने में, पारितोषिक देने में बराबरी कर सका था।

व्ययकरणमंत्री जाहिल

व्ययकरणमंत्री जाहिल का पुत्र नरसिंह था। नरसिंह भी पिता के सदृश चतुर और नीतिज्ञ था। सम्राट् भीमदेव प्रथम की नरसिंह पर सदा कृपादृष्टि रही। सम्राट् ने नरसिंह की कार्यकुशलता से प्रसन्न होकर उसको मन्त्री का पद प्रदान किया था। महत्तम नरसिंह का पुत्र महाकवि दुर्लभराज हुआ है। दुर्लभराज अति ही प्रतिभासम्पन्न पुरुष था। दुर्लभराज अपने पाण्डित्य एवं काव्यशक्ति के लिये राजसभा के अग्रगण्य विद्वानों एवं कवियों में था। दुर्लभराज ने वि० सं० १२१६ में 'सामुद्रिकतिलक' नामक ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रन्थ ज्योतिषविषय के उत्तम ग्रन्थों में गिना जाता है। सम्राट् कुमारपाल ने इसको इसके ज्योतिषज्ञान से प्रसन्न होकर अपने मन्त्रियों में महत्तम का पद देकर नियुक्त किया था।

महत्तम नरसिंह और उसका पुत्र महाकवि दुर्लभराज

महत्तम कविमन्त्री दुर्लभराज का पुत्र जगदेव था। जगदेव भी विद्वान् और कवि था।

One Jahilla was the minister of finance. G. G. part III; P. 154

जै० सा०सं० इति० पृ० २७७-७८.

श्रीमान् दुर्लभराजस्तदपत्यं बुद्धिधाम सुकविरभूत्। यं श्री कुमारपालो महत्तमं क्षितिपतिः कृतवान् ॥

—सामुद्रिकतिलक

नाडोलनिवासी सुप्रसिद्ध प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० शुभंकर के यशस्वी पुत्र पूतिग और शालिग

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में

नाडूलाई अथवा नाडोल में विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुश्रावक शुभंकर अति प्रसिद्ध जैन व्यक्ति हो गया है। उसके पुत्र पूतिग और शालिग अति ही धार्मिक, साधुव्रती और दृढ़ जैनधर्मपालक एवं अहिंसा के परमोपासक हो गये हैं। ये दोनों भ्राता अपने दृढ़ अहिंसाव्रत के पालन के लिए गूर्जर, सौराष्ट्र, राजस्थान में दूर २ प्रसिद्ध हो गये थे। नाडोल के राजा की राज्यसभा में भी इनका पूरा २ सम्मान था तथा नाडोल का राजा धर्मसंबंधी इनके प्रत्येक प्रस्ताव को सम्मान प्रदान करता था। अन्य राजाओं की राजसभा में तथा ग्रामपतियों की सभाओं में भी इनका बड़ा भारी सम्मान था।

रत्नपुर नामक ग्राम जोधपुर-राज्य के अन्तर्गत है और दक्षिण में आया हुआ है। वहाँ के ग्रामस्वामी पूनपाचदेव की महारानी श्री गिरिजादेवी से, जिसने संसार की असारता को भलीविध समझ लिया था प्राणियों को अभयदान दिलाने के लिये इन दोनों भ्राताओं ने उनकी कृपा प्राप्त करके अभयदानपत्र प्राप्त किया, जिसको श्री पूनपाचदेव ने स्वहस्ताक्षर करके प्रमाणित किया और परीक्षक लक्ष्मीधर के पुत्र ठ० जसपाल ने प्रसिद्ध किया और फिर वह रत्नपुर के शिवालय में आरोपित किया गया, जो आज उन दयावतार दोनों भ्राताओं की अहिंसाभावना का ज्वलंत परिचय दे रहा है। इस अभयदानपत्र का भावार्थ इस प्रकार है:—

रत्नपुर के शिवालय में अभयदान-लेख

'महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परमेश्वर, पार्वतीपति लब्धप्रौढ़प्रताप श्री कुमारपालदेव के राज्यकाल में महाराज भूपाल श्री रामपालदेव के शासन-समय में रत्नपुर नामक संस्थान के स्वामी पूनपाचदेव की महाराणी श्री गिरिजादेवी ने संसार की असारता को विचार कर प्राणियों को अभयदान देना महादान है ऐसा समझकर, नगर-निवासी समस्त ब्राह्मण, आचार्य (पुजारीगण), महाजन, तंबोली आदि सर्व प्रजाजनों को सम्मिलित करके उनके समक्ष इस प्रकार अभयदान-पत्र लिखकर प्रसिद्ध किया कि अमावस्या के पर्वदिन पर स्नान करके देवता और पितृजनों को तर्पण देकर तथा नगरदेवता की पूजा करके इहलोक और परलोक में पुण्यफल प्राप्त करने और कीर्ति की वृद्धि करने की इच्छा से प्राणियों को अभयदान देने के निमित्त यह अभयदानपत्र प्रसिद्ध किया है कि प्रत्येक माह की एकादशी, चतुर्दशी और अमावस्या—कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों की इन तिथियों को कोई भी किसी भी प्रकार की जीवहिंसा हमारे राज्य की भूमि में नहीं करें तथा हमारी संतति में उत्पन्न प्रत्येक व्यक्ति, हमारा प्रधान, सेनापति, पुरोहित और सर्व जागीरदार इस आज्ञा का पालन करें और करावें। जो कोई इस आज्ञा का उल्लंघन करे तो उसको दंड देवे। अमावस्या के दिन ग्राम के कुम्भकार भी कुम्भ आदि को पकाने के लिये आरम्भ नहीं करें। इन तिथियों में जो कोई व्यक्ति आज्ञा का उल्लंघन करके जीवहिंसा करेगा उस पर चार (४) द्राम का दंड होगा। नाडोलनगर के निवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० शुभंकर के पुत्र पूतिग और शालिग ने जीवदयातत्पर रह कर प्राणियों के हितार्थ विनती करके यह शासन प्रकट करवाया है।'

गूर्जरसम्राट् कुमारपाल के राज्य में किरातकूप, लाटहृद, और शिवा के सामन्तराजा, महाराजा श्री अल्हणदेव के शासनसमय वि० सं० १२०६ माघ कृ० १४ शनिश्चर को शिवरात्रि के शुभ पर्व पर श्रे० पूतिग और शालिग की विनती पर महाराजा अल्हणदेव ने अभयदानपत्र प्रसिद्ध किया, जिसको महाराजपुत्र केल्हण और गजसिंह ने अनुमोदित किया। इस आज्ञापत्र को सांधिविग्रहिक वेलादित्य ने लिखा था। अभयदानलेख को लिखवा कर किरातकूप, जिसको हाल में किराडू कहते हैं के शिवालय में आरोपित किया, जो आज भी विद्यमान है। अभयदानलेख का सार इस प्रकार है:—

किराडू के शिवालय में अभयदान-लेख

'प्राणियों को जीवितदान देना महान् दान है ऐसा समझ कर के पुण्य तथा यशःकीर्त्ति के अभिलाषी होकर महाजन, तांबुलिक और अन्य समस्त ग्रामों के मनुष्यों को प्रत्येक माह की शुक्ला और कृष्णा अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी के दिनों पर कोई भी किसी भी प्रकार के जीवों को नहीं मारने की आज्ञा की है। जो कोई मनुष्य इस आज्ञा की अवज्ञा करेगा और कोई भी प्राणी को मारेगा, मरवावेगा तो उसको कठोर दण्ड की आज्ञा दी जावेगी। ब्राह्मण, पुरोहित, अमात्य और अन्य प्रजाजन इस आज्ञा का एक सरीखा पालन करें। जो कोई इस आज्ञा का भंग करेगा, उसको पाँच द्राम का दण्ड दिया जायगा, परन्तु जो राजा का सेवक होगा, उसको एक द्राम का दण्ड मिलेगा।'*

इस प्रकार इन धर्मात्मा श्रे० पूतिग और शालिग ने, जिनका सम्मान राजा और समाज दोनों में पूरा २ था और जो अपनी अहिंसावृत्ति के लिए दूर २ तक विख्यात थे, नहीं मालूम कितने ही पुण्यकार्य किये और करवाये होंगे, परन्तु दुःख है कि उनकी शोध निकालने की साधन-सामग्री इस समय तक तो अनुपलब्ध ही है।

नाडोलवासी प्राग्वाट-ज्ञातीय महामात्य सुकर्मा

वि० सं० १२१८

नाडोल के राजा अल्हणदेव बड़े धर्मात्मा राजा थे। इनकी राजसभा में जैनियों का बड़ा आदर-सत्कार था। इन्होंने जैन-शासन की शोभा बढ़ाने वाले अनेक पुण्यकार्य किये थे। इनका महामात्य प्राग्वाटकुलावतंस श्रे० धरणिग का पुत्र सुकर्मा था। सुकर्मा पवित्रात्मा प्रतिभासम्पन्न, लक्ष्मीपति और जैनशासन की महान् सेवा करने वाला नरश्रेष्ठ था। उसके वासल नामक सुयोग्य पुत्र था। अमात्य सुकर्मा की विनती पर महाराज अल्हणदेव ने संडेरकगच्छीय श्री महावीर-जिनालय के लिए पाँच द्राम मंडिपाशुल्क प्रतिमाह धूपवेलार्थ प्रदान करने की आज्ञा इस प्रकार प्रचारित की।

'सं० १२१८ श्रावण शु० १४ (चतुर्दशी) रविवार को चतुर्दशीपर्व पर स्नान करके, श्वेत वस्त्र धारण करके, त्रयलोकपति परमात्मा को पंचामृत अर्पित करके, विप्रगुरु की सुवर्ण, अन्न, वस्त्र से पूजा करके, ताम्रपत्र को श्रीधर नामक

*प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३४५, ३४६.

प्रसिद्ध लेखक से लिखवाकर और स्वहस्ताक्षरों से उसको प्रमाणित करके प्रसिद्ध किया। यह ताम्रपत्र श्रीआदिनाथ-जिनालय में आज भी विद्यमान है और महामात्य सुकर्मा और महाराज अल्हणदेव के यश एवं गौरव का परिचय दे रहा है।* ऐसे प्रसिद्ध पुरुषों का समुचित परिचय प्राप्त करने का साधन-सामग्रियों का अभाव अत्यधिक खटकता है।

महूअकनिवासी महामना श्रे० हांसा और उसका यशस्वी पुत्र श्रे० जगडू

विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अन्त में महूअक (महुआ) में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० हांसा एक अति श्रीमन्त श्रावक हो गया है। वह जैसा धनी था वैसा लक्ष्मी का सदुपयोग करने वाला भी था। उसकी धर्मपत्नी जिसका नाम मेघारुदेवी था, बड़ी ही धर्मात्मा पतिपरायणा स्त्री थी। इनके जगडू नामक महाकीर्त्तिशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रे० हांसा सम्पूर्ण आयु भर दान, पुण्य करता रहा और धर्म के सातों ही क्षेत्रों में उसने अपने द्रव्य का अच्छा सदुपयोग किया। वह जब मरने लगा, तब उसने अपने आज्ञाकारी पुत्र जगडू को बुलाकर अपनी इच्छा प्रकट की और कहा कि उसने सवा-सवा कोटि मूल्य के जो पाँच रत्न उपार्जित किये हैं, उनमें से एक को श्रीशत्रुंजयतीर्थ पर भ० आदिनाथ-प्रतिमा के लिये, एक श्री गिरनारतीर्थ पर श्री नेमिनाथप्रतिमा के लिये, एक श्री प्रभासपत्तन में श्री चन्द्रप्रभप्रतिमा के लिये और दो आत्मार्थ व्यय कर देना। श्रे० जगडू अपने धर्मात्मा पिता का धर्मात्मा पुत्र था। वह अपने कीर्त्तिशाली पिता की आज्ञा को कैसे टाल सकता था। उसने तुरन्त पिता को आश्वासन दिलाया कि वह पिता की आज्ञानुसार ही उन अमूल्य रत्नों का उपयोग करेगा। श्रे० हांसा ने पुत्र के अभिवचनों को श्रवण करके सर्वजीवों को खमाया और श्री आदिनाथ भगवान् का स्मरण करके अपनी इस असार देह का शुक्ल-ध्यान में त्याग किया।

श्रे० जगडू योग्य अवसर देख रहा था कि उन अमूल्य रत्नों का पिता की आज्ञानुसार वह उपयोग करें। थोड़े ही वर्षों के पश्चात् गूर्जर-सम्राट् कुमारपाल ने अपना अन्तिम समय आया हुआ निकट समझ कर कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य्य की आज्ञा से उनकी ही तत्त्वावधानता में श्री शत्रुंजयतीर्थ, गिरनारतीर्थ एवं प्रभासपत्तनतीर्थों की संघयात्रा करने के लिये भारी संघ निकाला, जिसमें गूर्जर-राज्य के अनेक सामन्त, राजा, माण्डलिक, ठक्कुर, जैनश्रावक, संघपति दूर २ से आकर सम्मिलित हुये थे। श्रे० जगडू भी अपनी विधवा माता के साथ में इस संघ में सम्मिलित हुआ था। संघ सानन्द श्री शत्रुंजयतीर्थ पर पहुँचा, संघ में सम्मिलित श्रावकों ने, अन्य जनों ने, आचार्य, साधुओं ने श्री आदिनाथ-प्रतिमा के दर्शन किये और अपनी संघयात्रा को सफल किया। संघ ने सम्राट् कुमारपाल को संघपति का तिलक करने के लिये महोत्सव मनाया। मालोद्घाटन के अवसर पर माला की प्रथम बोली श्रीमाल-ज्ञातीय गूर्जरमहामन्त्री श्रे० उदयन के पुत्र महं० वागभट की चार लक्ष रुपयों

---

*जै० ले० सं० १ ले० ८३६.

की थी। वह बढ़ते बढ़ते सवा कोटि रुपयों तक पहुंच गई। बोली समाप्त होने पर सपादकोटि की बोली बोलने वाले सज्जन को खड़ा करने की सम्राट् ने महं० वागभट को आज्ञा दी। श्रे० वागभट के सम्बोधन पर मलीन-वस्त्रधारी, दुर्बलगात, निर्धन-सा प्रतीत होता हुआ श्रे० जगडू उठा। श्रे० जगडू की मुखाकृति एवं उसकी वेष-भूषा को देखकर किसी को भी विश्वास नहीं हुआ कि वह इतना धनी होगा कि सवा कोटि रुपया दे सके। उसको देखकर कई हँसने लगे, कई उसका उपहास करने लगे और कई क्रोधित भी हो गये। स्वयं सूरीश्वर हेम-चन्द्राचार्य्य और सम्राट् कुमारपाल भी विचार करने लगे। इतने में श्रे० जगडू ने मलीन वस्त्र की एक पोटली को खोलकर, उसमें से सवा कोटि मूल्य का एक जगमग करता माणिक निकाला और संघपति को अर्पित किया। संघसभा यह देखकर अवाक् रह गई। तत्पश्चात् श्रे० जगडू ने कहा कि उसका पिता धर्मात्मा हँसराज जब मरा था, तब वह यह कहकर मरा था कि सवा कोटि मूल्य का एक रत्न श्री शत्रुंजयतीर्थ पर, एक श्री गिरनारतीर्थ पर, एक श्री प्रभासतीर्थ में और दो उसके श्रेयार्थ लगा देना। स्वर्गस्थ पिता की अभिलाषा के अनुसार ही मैं यह एक रत्न यहाँ भ० आदिनाथ की प्रतिमा के मुकुट में लगाने के लिये दे रहा हूँ। यह सुनकर सभा अति हर्षित हुई और उसका धन्यवाद करने लगी। श्रे० जगडू के कथन पर माला उसकी विधवा माता सेघारुदेवी को पहिनाई गई। श्रे० जगडू ने तत्काल स्वर्णमुकुट बनवा कर, उसमें उक्त रत्न को जटित करवाया और अति आनन्द के साथ में वह मुकुट महामहोत्सवपूर्वक मूलनायक श्री आदिनाथ-प्रतिमा को धारण करवाया गया। धन्य है ऐसे योग्य, धर्मात्मा श्रीमन्त पिता और पुत्र को, जिनके चरित्रों से यह इतिहास उज्ज्वल समझा जायगा।

कु० प्र० प्र० पृ० ६७. 'मालोदघट्टन प्रस्तावे............................तेन जगड़ेन वणिजा तन्माणिक्यं हेम्ना खचित्वा ऋषभाय कण्ठाभरणं राजा कारयामास।'

मन्त्री-भ्राताओं का गौरवशाली गूर्जर-मंत्री-वंश

वीरशिरोमणि गूर्जरमहामात्य वस्तुपाल एवं गूर्जरमहाबलाधिकारी दंडनायक तेजपाल और उनके पूर्वज एवं वंशज गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्रथम से महामण्डलेश्वर विशलदेव पर्यन्त

गूर्जरमहामात्य चंडप और मुद्राव्यापारमंत्री चंडप्रसाद

मूल पुरुष चंडप और उसका पुत्र चंडप्रसाद

प्राग्वाटज्ञाति में चंडप नामक एक महान् राजनीतिज्ञ एवं वीरपुरुष हुआ है। गूर्जर-प्रदेश की राजधानी अणहिलपुरपत्तन में वह रहता था। वस्तुपाल-तेजपाल के वंश का वह मूलपुरुष कहा जाता है। उसने नागेन्द्र-गच्छ के महा प्रभावक आचार्य महेन्द्रसूरि को अपना धर्मगुरु स्वीकृत किया था।१ चंडप जैसा वीर था, वैसा ही महादानी एवं उदारहृदय भी था। गूर्जरसम्राट् के मन्त्रियों में वह मन्त्री-मुकुट माना जाता था। गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्रथम एवं कर्ण के शासनकाल में इसने महामन्त्री-पद पर आरूढ़ रहकर गूर्जर-भूमि की प्राणपण से सेवा की थी। उसने अपनी नीतिज्ञता से, बुद्धिमत्ता से जो गूर्जरसम्राटों की सेवा की थी, उसका उल्लेख मिलता है।२ उसकी स्त्री का नाम चांपलदेवी था३, जो अत्यन्त गुणगर्भा थी। चांपलदेवी से चण्डप्रसाद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। चण्डप्रसाद भी वीरता में, उदारता में अपने पिता के सदृश ही था। सरस्वती का वह अनन्य भक्त था। गूर्जरसम्राट् कर्ण की चण्डप्रसाद पर वैसी ही कृपा थी, जैसी उसके महान् वीर पिता चण्डप पर। वह कर्ण का अति विश्वासपात्र मन्त्री था और राज्य का मुद्राव्यापार-कार्य४ (कोषाध्यक्ष) वही करता था। चण्डप्रसाद उदारहृदय होने से महादानी हुआ। कवि और विद्वानों का वह सदा समादर करता था। उसकी उदारता एवं दान की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। चण्डप्रसाद की पतिपरायणा स्त्री का नाम जयश्री था।

१–'आसीच्चण्डपमंडितान्वयगुरुनागेन्द्रगच्छश्रियश्चूडारत्नमयप्रसिद्धमहिमासूरिर्महेन्द्राधिपः ॥६८॥'

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २५०

'प्र' के स्थान में 'स' तथा 'त्र' श्री जिनविजयजी एवं मुनिराज जयन्तविजयजी द्वारा प्रकाशित लेख-संग्रह ग्रंथो में छपा है।

२–'वाग्देवताचरणकाञ्चननूपुरश्रीः श्रीचंडपः सचिवचक्रशिरोऽवतंसः।
प्राग्वाटवंशतिलकः किल कर्णपूरलीलायितान्यपितगुर्जरराजधान्याः ॥४०॥
मतिकल्पलता यस्य मनः स्थानंकरोपिता। फलं गुर्जरभूपानां सङ्कल्पितमकल्पयत् ॥४१॥
वाग्देवीप्रसादः सुनुश्चंडप्रसाद इति तस्य। निजकीर्तिवैजयन्त्या अनयत गगनाङ्गणे गङ्गाम् ॥४२॥'

ह० म० म० परि० प्र० पृ० ६ (ध० ते० प्र०)

३–प्र० प्रां० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३२० (हस्तिशालास्थलेख)

४–'गेहिन्येर वदान्योये नृपव्यापारमुद्रया ॥८॥'

की० कौ० ५० २१ (मंत्रीश्यादना)

'जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स' के सन् १६१५ के विशेषांक में प्रकाशित 'तपगच्छ-पट्टावली' के आधार पर 'पोरवाड़ महाजनों के इतिहास' के लेखक ने पृ० ६१ पर वस्तुपाल तेजपाल का गोत्र 'उंवरड' लिखा है।

स्वाभिमानी कोषाधिपति मन्त्री सोम

शूर और सोम का पूरा नाम शूरसिंह तथा सोमसिंह हैं। जयश्री[१] के ये दो पुत्र उत्पन्न हुये। शूर[२] अति पराक्रमी और वीर था। सोम[३] परम शांत और कुशाग्रबुद्धि था। वह गूर्जरसम्राट् सिद्धराज का रत्नकोषाध्यक्ष था।

शूर और सोम

सोम अपने जिनधर्म में दृढ़ एवं वचनों में अडिग था। उसने जिनेश्वरदेव के अतिरिक्त किसी अन्य देव को देव नहीं माना, धर्मगुरु हरिभद्रसूरि के अतिरिक्त किसी अन्य साधु, आचार्य को गुरु नहीं माना तथा गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह के अतिरिक्त किसी अन्य सम्राट् को उसने अपना स्वामी नहीं माना। पूर्वजों के सदृश ही वह भी महादानी एवं उदारहृदयी था।

सोम की स्त्री का नाम सीता था। सीता से सोम को अश्वराज, त्रिभुवनपाल (तिहुणपाल) नामक दो पुत्र तथा केलीकुमारी नामक एक पुत्री की प्राप्ति हुई।[४]

१—'शास्त्रार्थवारिभरहारिहृदालवालसंरोपिता मतिलता वितता नितान्तम्।
यस्य प्रकाशितरविग्रहतापवद्भिश्छायार्थिभिर्नृपकुलैः फलदा सिषेवे ॥६॥'
'पुण्यस्य पापपटली जयिनो जयश्रीरासीत्तदीयदयिता नयभूर्जयश्रीः।७।' न० ना० नं० सर्ग १६
'समजनि जिनसेवानित्यहेवाकवृत्तिःप्रगुणगुणगणश्रीस्तस्य कान्ता जयश्रीः।१०१।' ह० म० म० परि० तृ० (सु०की०क०)

२-३—'स श्रीमानुदयाचलोज्ज्वलरुचिर्मैत्र्यं दधानो जने। शूरः क्रूरतमः समुच्चयभिदाशूरः कथं वर्ण्यते ॥१०३॥'
'भ्राता वातायन इव धियां तस्य निःसीमकीर्त्तिस्तोमः सोमः समजनि जनालोकनीयः कनीयान्।'
देवो देवेष्विव जिनपतिर्मानसे मानसेकाद्यस्यावश्यं नृपतिषु पतिः सिद्धराजो रराज ॥१०४॥'
ह० म० म० परि० तृ० (सु० की० क०)
'तत्र श्रीसिद्धराजोपि रत्नकोशं न्यवीविशत् ॥१४॥' की० कौ० पृ० २२ (मन्त्री-स्थापना)
'चूडामणिकृतजिनाङ्घ्रिनखप्रपंचः कर्णस्फुरद्गुरुसुवर्णविभूषणश्रीः।
सद्वर्त्मनि प्रचलदुर्मदमोहचौरःदुसञ्चरेपि विललास य एव शूरः ॥१०॥'
'सोमाभिधस्तदनुजःसुजनाननाब्जसूर्योऽभवद्विबुधसिंधुविशुद्धबुद्धिः।
यन्मानसेऽद्भुतरसे विललास वार्द्धिक्षितिौर्वतापविधुरेव सरस्वतीयम् ॥१२॥'
'देवःपरं जिनवरो हरिभद्रसूरिः सत्यं गुरुः परिवृढः खलु सिद्धराजः।१४॥ न० ना० नं० सर्ग १६

३—॥द०॥ सं० १२८४ वर्षे॥ 'विश्वानन्दकरः सदागुरुरुचिर्जीमूतलीलां दधौ, सोमश्चारुपवित्रचित्रविकसद्वेशधर्म्मोन्नतिः। चक्रे मार्गणपाणि शुक्ति कुहरे यः स्वातिवृष्टिव्रजैर्मुक्तं मौक्तिकनिर्मलं शुचि यशो दिक्कामिनीमंडनं ॥१॥ युक्तं य·······सोमसच्चिवः कुन्देन्दुशुभ्रैर्गुणैरिद्धः सिद्धनृपं विमुच्य सुकृति चक्रे न कंचिद्विभुं। रंगद् (त्तुं) गमदप्रदच्छदभरः (मदः) श्री सद्मपद्मं किमु। सो (स्वो) ल्लासाय विहाय भास्करमहस्तेजोऽन्तरं वाञ्छति ॥२॥ पर्यणैषीदसौ सीतामविश्वामित्रसंगतः अभूतत्रि (१क) तमहाधर्मलाघवो राघवोऽपरः॥३॥
जै० स० प्र० वर्ष ३ अङ्क ४ पृ० १४८ (अभ्यासगृहपत्रिका, पाटण वर्ष ६ अङ्क ३)

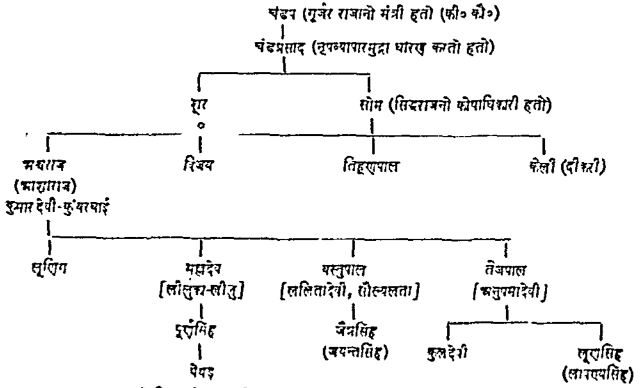
४—'अनुजोऽस्यापि सुगनुजास्त्रिभुवनपालस्तथा स्वसाकेली आशाराजस्याजनि जाया च कुमारदेवीति ॥८॥'
जै० ले० सं० ले० १७६३ (खंभातस्थलेखाः)

रासमाला भा० २ पृ० ४६५ पर दिये वंशवृत्त से जो यहां भी दिया जाता है से प्रगट होता है कि सोम के तीन पुत्र थे। उक्त वंशवृत्त का आधार रासमाला के गुजरातीभाषान्तरकर्त्ता ने उक्त पृ० के चरणलेख में लिखा है 'प्राग्वाटवंशवर्णन अेवा मथालानुं एक प्राचीन पानुं असारी पासे छे, ते कीर्त्ति कौमुदीना पारशिष्ट अ मां, तेमज भावनगर लेखमाला ना पृ० १७४ मां आबू पर्वत ऊपरना देलवाड़ा मां आदिनाथ ना देरासर नी पासे नी धर्मशाला नी एक भींत मां संवत् १२६७ (ई० स० १२११) फाल्गुन बदी १० सोमवार नो शिलालेख छे', ते ऊपरथी लखेलो छे, कीर्ति-कौमुदी (संस्कृत एवं गुजराती भाषान्तर) के परिशिष्ट अ में उक्त लेख नहीं मिला।—लेखक

मंत्री अश्वराज और उसका परिवार

सोम का प्रौढ़ आयु में ही शरीरान्त हो गया[1]। त्रिभुवनपाल[2] भी अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गया। सोम की मृत्यु के समय अश्वराज भी छोटा ही था। घर का समस्त भार सीता के स्कंधों पर आ पड़ा। अश्वराज जैसा रूपवान् था, वैसा ही गुणवान् भी था। वह अपनी माता का बड़ा आदर करता था और उसका परम आज्ञाकारी पुत्र था। उसने माता सीता को फिर से सुखी बना दिया। वह गूर्जरसम्राट् के अति विश्वासपात्र मंत्रियों में से था। वह सोहालकग्राम में प्रमुख राज्याधिकारी था। अपने पूर्वजों के समान ही वह भी महादानी एवं धर्मिष्ठ था। इसने अनेक स्थलों में जहाँ यात्रियों का आवागमन अधिक रहता था अथवा जो तीर्थधामों के मार्गों में पड़ते थे कुएँ बनवाये, वापिकायें खुदवाई और प्रपायें लगवाई।[3]

सीता और उसका पुत्र अश्वराज



1—अश्वराज के विवाह के समय सोम नहीं था।

2—त्रिभुवनपाल का विशेष उल्लेख कहीं देखने को नहीं मिला तथा जैसा मन्त्रीभ्राताओं ने अपने समस्त पूर्वजों और उनकी सन्तानों के श्रेयार्थ और स्मरणार्थ अनेक धर्मस्थलों में स्मारक बनवाये, शिलालेख खुदवाये, उनमें ऐसा कोई लेख अथवा स्मारक नहीं है जो त्रिभुवनपाल की संतति को सूचन करता हो। इससे सिद्ध है कि वह अविवाहित तथा अल्प अवस्था में ही स्वर्गस्थ हो गया था।

3—'तस्यात्मजः स्थिरमानुभावो महत्त्वमोदेन [illegible]। [illegible] ॥५६॥'
'[illegible] सती [illegible]। [illegible] ॥६०॥'
'स तत्र [illegible] कुमारदेवीमिह [illegible]। [illegible] ॥६२॥'
व० वि० सर्ग० ३ पृ० १४

अपनी माता सीता के साथ उसने शत्रुंजय और गिरनारतीर्थों की सात यात्रायें कीं१। इस प्रकार उसने पूर्वजों के द्वारा संचित सम्पत्ति का सदुपयोग किया। इन्हीं दिव्य गुणों के कारण वह पुरुषोत्तम कहलाया। उसका विवाह कुमारदेवी से हुआ।२ कुमारदेवी एक परम रूपवती एवं गुणशालिनी स्त्री थी। वह चौलुक्य-सम्राट् भीमदेव द्वि० के दण्डाधिपति श्रीमालज्ञातीय आभू की स्त्री लक्ष्मीदेवी की कुक्षी से उत्पन्न हुई थी।*

*दण्डाधिपति आभू का वंश
(सामन्तसिंह)
|
शान्ति
|
मणनाग
|
आमदत्त
|
नागड़
|
आभू
[लक्ष्मीदेवी]
|
कुमारदेवी

१—सु० सं-सर्ग ३ पृ० २५ श्लोक ५१ से ५३
व० च-प्रस्ताव १ पृ० १ श्लोक ३१ से ३६ पृ० २ श्लोक ६३
न० ना० नं० सर्ग १६ पृ० ६० श्लोक २१ से २६
ह० म० म० परि० ३ पृ० ८२ श्लोक १०७ से ११० (सु० की० क०)
की० कौ० पृ० २२-२३ श्लोक १७ से २२ (मन्त्री-स्थापना)

२—'कुमारदेवी बाल-विधवा थी और अश्वराज के साथ उसका पुनर्लग्न हुआ था यह जनश्रुति अधिक प्रसिद्ध है' व० च० में पृ० १ श्लोक ३१ में उसको प्रा० ज्ञा० दण्डेश आभू की पुत्री होना लिखा है; परन्तु दण्डेश आभू प्रा० ज्ञातीय नहीं था; वरन् श्रीमालज्ञातीय था—यह अधिक माना गया है। वस्तुपाल के समकालीन आचार्यों, लेखकों एवं कवियों की कृतियों में जिनमें 'सुकृत संकीर्तनम्', 'हमीरमदमर्दन', नर-नारायणानन्द, वसन्त विलास, धर्माभ्युदय अधिक विश्रुत हैं और ये सर्व ग्रंथ स्वयं वस्तुपाल तेजपाल के विषय में ही लिखे गये हैं—में ऐसा कोई उल्लेख कहीं भी नहीं दिया गया है जो कुमारदेवी को बाल-विधवा होना कहता हो और अश्वराज के साथ उसका पुनर्लग्न होना चरितार्थ करता हो। जनश्रुति अगर सच्ची भी हो तो भी अश्वराज का जीवन उससे उठता ही है यह निर्विवाद है।

मेवाड़ के महाराणाओं का राजवंश अपने कुल की उज्ज्वलता एवं यश, कीर्त्ति, गौरव, प्रतिष्ठा के लिये भारतवर्ष में ही नहीं, जगत् में अद्वितीय है। महाराणा हमीरसिंह का विवाह मालवदेव की बाल-विधवा पुत्री के साथ हुआ था। चाहे उक्त विवाह छल-कपट से सम्पन्न हुआ हो। परन्तु उक्त विवाह से महाराणाओं के वंश की मान-प्रतिष्ठा में उस समय या उसके पश्चात् भी कोई कमी प्रतीत हुई हो, इतिहास नहीं कहता है। सो तो उस समय के राजपूत विधवा-विवाह को अति घृणित एवं अपमानजनक मानते थे। मालवदेव की विधवा पुत्री ने अपने प्रथम पति का सहवास प्राप्त करना तो दूर, मुख तक भी नहीं देखा था। ऐसी अनवद्यांगी बाल-विधवा का उद्धार कर गौरवशाली वंश में उत्पन्न हमीर ने साधारण समाज के समक्ष अनुकरणीय आदर्श रक्खा।

अश्वराज भी तो गौरवशाली मन्त्रीकुल में ही उत्पन्न हुआ था। वह उन्नत विचारशील था और कुमारदेवी भी अनवद्यांगी बाल-विधवा थी। वह रूपवती और महागुणवती थी परन्तु अश्वराज कुमारदेवी पर इन गुणों के कारण मुग्ध नहीं हुआ था। अश्वराज कुमारदेवी के साथ पुनर्लग्न करने को क्यों तैयार हुआ, वह प्रसंग इस प्रकार है:—

"कदाचिच्छ्रीमत्पत्तने भट्टारकश्री हरिभद्रसूरिभिर्व्याख्यानावसरे कुमारदेव्यभिधाना काचिद्विधवातीव रूपवती [बाला] मुहुर्मुहु-र्निरीक्ष्यमाणा तत्रस्थितस्याशराजमन्त्रिणश्चित्तमाचकर्ष। तद्विसर्जनानन्तरं मन्त्रिणानुयुक्ता गुरव इष्टदेवतादेशाद्—'अमुष्या कुक्षौ सूर्याचन्द्र-मसोर्भाविनमवतारं पश्यामः। तत्सामुद्रिकानि भूयो भूयो विलोकितवन्तः' इति प्रभोर्विज्ञाततत्त्वः स तामपहृत्य निजां प्रेयसीं कृतवान्।"

प्र० चि० पृ० ६८ (वस्तुपाल-तेजपाल प्रबन्धः १०)

अन्तरज्ञातीय विवाह करने के विरोधियों को प्रा० ज्ञा० अश्वराज का विवाह श्री० ज्ञा० दण्ड० आभू की पुत्री कुमारदेवी के साथ होना बुरा लगा हो और पीछे से विधवा होने का प्रबन्ध जोड़ दिया हो—सम्भव लग सकता है। कारण कि उन दिनों में अपने वर्ग में ही कन्या-व्यवहार

अश्वराज अपनी विधवा माता सीतादेवी के साथ सोहालकग्राम में ही रहता था। कुमारदेवी की कुक्षि से क्रमशः लुणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल नामक चार महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए तथा क्रमशः जाल्हू, माउ, साऊ, धनदेवी, सोयगा, वयजू और पद्मल या पदमला ये सात पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

अश्वराज का गार्हस्थ्य-जीवन

अश्वराज और कुमारदेवी का विवाह गूर्जरसम्राट् भीमदेव द्वितीय के राज्यारोहण के[1]

करना चाहिए के प्रश्न को लेकर समस्त जैनसमाज में दो मत चल रहे थे। विरोध करने वालों की संख्या अधिक थी और पक्ष में बोलने वालों की कम और इसी कारण से संभवतः उनके दल वृहत्शाखा और लघुशाखा वर्ग कहलाये। कुमारदेवी विधवा थी के मान की सूक्ष्म रेखा व० च० और की० कौ० में भी मिलती है। परन्तु उनका अर्थ भी विचारणीय है; एकदम मान्य नहीं।

'ततः सूरिभ्यादिष्टदेवतादेशतोऽभवत्। भार्या कुमारदेवीति, प्रथिता तस्य मन्त्रिणः ॥५६॥
अनया प्रियया मन्त्री, श्रियेव पुरुषोत्तमः। लेभे सुमनसां मध्ये, ख्यातिं लोकातिशायिनीम् ॥६०॥
मातुः पितुश्च पत्युश्च, कुलत्रयमियं सती। गुणैः पवित्रयामास, जाह्नवीव जगत्त्रयम् ॥६१॥
तामादाय स्फुरद्भाग्यमङ्गी स्वस्याङ्गिनीमिव। समं स्वपरिवारेण स्वजनानुमतेस्ततः ॥६२॥
प्रसन्नेन क्रमाद्दत्ते, भूभर्त्ता चुलुकोद्भुवा। अश्वराजो व्यधाद्वासं, पुरे सुहालकाभिधे ॥६३॥'

व० च० प्रस्ताव १ पृ० २

समय को जानने वाले, अवसर को पहचानने वाले, दीन और दुखियों के सहायक पतितों के उद्धारक को ही तो पुरुषोत्तम कहा जाता है—ग्रन्थकर्ता ने अश्वराज के इन गुणों से मुग्ध होकर ही संभवतः उसको 'पुरुषोत्तम' कहा है।

'प्रायश्चित्तं रेणुकाबाधां स्मरन्ननुशयादिव। मातुर्विशेषतश्चक्रे भक्तिं यः पुरुषोत्तमः ॥२०॥'

की० कौ० सर्ग० ३ पृ० २२

'प्रावश्चितं रेणुकावध्यं स्मरन्ननुशयादिव। मातुर्विशेषतश्चक्रे भक्तिं यः पुरुषोत्तमः ॥६०॥'

व० च० प्र० १ पृ० ३

व० च० के कर्त्ता जिनहर्षगणि ने की० कौ० में से उक्त श्लोक को अपनी रचना में कैसे समाविष्ट किया—यहाँ यह विवाद नहीं छेड़ना है। तात्पर्य इससे इतना ही लेना है कि वह कौनसी भावना है, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने ऐसा किया। जहाँ की० कौ० के कर्त्ता ने उक्त श्लोक को अश्वराज की महिमार्थ लिखा है, वहाँ व० च० के कर्त्ता ने वस्तुपाल की महिमार्थ इसका उपयोग किया है। विचारणीय बात जो है वह यह कि रेणुका जैसी अपमानिता स्त्री का स्मरण यहाँ क्यों आया। दोनों ग्रन्थों की रचनाधारा को देखते हुये उक्त प्रसंग ठूंसा हुआ प्रतीत होता है। फिर ऐसे सफल ग्रन्थकर्त्ताओं के हाथों यह हुआ है इसमें कुछ रहस्य है। विशेषतः और 'पुरुषोत्तमः' शब्दों के प्रयोगों का भी कोई गुप्त अर्थ है। मेरी समझ में जो आता है वह यह है कि परशुराम-अवतार में जो माता रेणुका का पिता की आज्ञा से वध किया गया था, उसी का आशाराज तथा वस्तुपाल-अवतार में विधवा स्त्री से विवाह करके तथा पुनर्लग्न-कृता माता की अत्यन्त सेवा करके प्रायश्चित्त किया गया। उक्त ग्रन्थकर्त्ताओं ने खुले शब्दों में पुनर्लग्नप्रसंग का वर्णन नहीं कर अलंकारों की सहायता से उसे मण्डित किया है। फिर भी मेरा इन श्लोकों से उक्त आशय निकालने में यही मत है कि अन्य विद्वानों की जब तक ऐसी ही मिलती हुई सम्मति नहीं प्राप्त हो उक्त आशय को उपयुक्त नहीं माना जाय।

१—अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक २५०

" " " " २२५, २८, २३०-३१, २३७

'सं० १२४६ वर्षे संघपति स्वपितृ ठ० श्री आशाराजेन समं महं० श्री वस्तुपालेन श्री विमलाद्रौ रैवते च यात्रा कृता। सं० ५० वर्षे तेनैव समं स्थान द्वये यात्रा कृता।' Waston Museum, Rajkot

[प्र० वि० प्रस्ता० चारणलेख १ पृ० ११]

चारों भाईयों एवं सातों बहिनों के जन्म-संवतों का अनुमानः—

'महं० श्री जयंतसिंहे सं० ७६ वर्ष पूर्व स्तम्भतीर्थे मुद्राव्यापारान् व्यापृणवति'—वि० प्र०

उक्त पंक्ति पर विचार करने से जयंतसिंह की आयु सं० १२७६ में लगभग १८-२० वर्ष की तो होनी ही चाहिए। तब वस्तुपाल का विवाह लगभग वि० सं० १२५६-५८ में हुआ होना चाहिए और तेजपाल का विवाह सं० १२६० तक तो हो ही गया होगा।

समय जो वि० सं० १२३५ में सम्पन्न हुआ के लगभग ही हुआ होगा। अश्वराज ने सम्वत् १२४६, १२५० में अपनी विधवा माता सीतादेवी के साथ में शत्रुंजय और गिरनारतीर्थों की यात्रायें कीं। इन यात्राओं में लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल भी साथ में थे और चौथा पुत्र तेजपाल शिशु-अवस्था में था। अश्वराज ने चारों पुत्रों को अच्छी शिक्षा दिलवाई। सातवीं पुत्री पद्मल के जन्म के आस-पास ही ठ० अश्वराज की मृत्यु हो गई।[१] कुमारदेवी विधवा हो गई। विधवा कुमारदेवी सोहालकग्राम को छोड़कर मंडिलकपुर में जा रही और वहीं अपने जीवन के शेष दिन बिताने लगी।[२] वस्तुपाल का मन पढ़ने में अधिक लगता था। और फलतः वह अधिक आयुपर्यन्त पत्तन में विद्याध्ययन करता रहा। प्रथम पुत्र लूणिग का भी निस्सन्तान अल्पायु में ही शरीरान्त हो गया।[३] मल्लदेव जो द्वितीय पुत्र था वह भी एक पुत्र पुण्यसिंह और दो पुत्रियाँ सहजल और पद्मल को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गया।[४] दोनों पुत्रों की असामयिक मृत्यु से विधवा कुमारदेवी को भारी धक्का लगा। कुमारदेवी भी वि० सं० १२७१-७२ के आस-पास स्वर्ग सिधार गई।[५]

कुछेक वर्णन ऐसे भी मिले हैं, जिनसे तेजपाल का विवाह वस्तुपाल के विवाहित होने से पूर्व होना प्रतीत होता है। लूणिग और मल्लदेव वस्तुपाल के विवाहित होने से पूर्व ही विवाहित हो चुके थे।

सं० १२४६ में तेजपाल शिशु अवस्था में था और सं० १२५६-५८ में वस्तुपाल का विवाहित होना अनुमान किया जा सकता है, तब वस्तुपाल का जन्म संवत् वि० सं० १२४२-४४ सिद्ध होता है। इस प्रकार लूणिग का सं० १२३८-४०, मल्लदेव का १२४०-४२ और तेजपाल का १२४४-४६ जन्म-संवत् ठहरते हैं। इसी प्रकार दो-दो वर्षों के अन्तर से सातों बहिनों के जन्म संवतों को भी माना जाय तो अन्तिम पुत्री पद्मल का जन्म वि० सं० १२५८-६० में हुआ होना ठहरता है। यह अनुमानशैली अगर उपयुक्त जचती है तो कुमारदेवी का पुनर्लग्न या विवाह वि० सं० १२३५ में हुआ होना ही अधिक सत्य है।

१—पद्मल की जन्म-तिथि के पश्चात् ऐसा कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है, जिसके आधार पर यह कहा या माना जा सकता हो कि ठ० अश्वराज अधिक समय तक जीवित रहे।

अधिकतर विद्वान् यही मानते हैं कि लूणिग की मृत्यु के समय अश्वराज अनुपस्थित थे। लूणिग की मृत्यु उसके निरसंतानस्थिति में हुई। इस मत के आधार पर लूणिग की मृत्यु वि० सं० १२६१-६२ के आस-पास हुई। तब ठ० अश्वराजकी मृत्यु का काल सं० १२६० के आस-पास माना जाय तो कोई अनुपयुक्त नहीं।

२—'त्यक्त्वा तातवियोगार्तिपिशुनं तत्पुरं ततः। सुकृत-श्रेणिजननी (जननी) जननी जननीतिवित् ॥८४॥
वस्तुपाल समादाय, विदधे बन्धुभिः समम्। मण्डलीनगरे वासं भूमिमण्डलमण्डने ॥८५॥' व० च० प्र० १ पृ० ३

३-४—लूणिग की मृत्यु को मल्लदेव की मृत्यु से पीछे हुई मानना सर्वथा अनुपयुक्त है। लूणिग अल्पायु में ही निस्संतान मर गया यह अधिक मान्य है और मल्लदेव जो लूणिग से छोटा था, एक पुत्र और दो पुत्रियाँ छोड़ कर मरा है अवश्य लूणिग के शरीरांत होने के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुआ है।

५—वि० सं० १२७३ में वस्तुपाल तेजपाल ने स्वर्गस्थ पिता, माता के श्रेयार्थ शत्रुञ्जय एवं गिरनार-तीर्थों की यात्रा की थी। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसी संवत् के पूर्व या इसी के आस-पास कुमारदेवी स्वर्गस्थ हुई।

वस्तुपाल के महामात्य बनने के पूर्व गुजरात

महमूद गजनवी के आक्रमणों से समस्त उत्तर भारत की शांति भङ्ग हो चुकी थी। वि० सं० १०८१-२ (ई० सन् १०२५) में सोमनाथ के मन्दिर पर जो महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ था वह उत्तर भारत के समस्त राजाओं का पराजय था[१]। गूर्जरभूमि ने सम्राट् कर्ण, सिद्धराज, कुमारपाल जैसे महापराक्रमी नरवीर उत्पन्न किये थे, जिन्होंने पुनः गूर्जरप्रदेश को समृद्ध और सुखी बनाया। अणहिलपुरपत्तन इन सम्राटों के काल में भारत के अति समृद्ध एवं वैभवशाली प्रमुख नगरों में गिना जाता था। परन्तु सम्राट् कुमारपाल के पश्चात् गूर्जरभूमि के सिंहासन पर अजयपाल और मूलराज राजा आरूढ़ हुये, वे अधिक योग्य नहीं निकले। गुजरात की दशा बराबर बिगड़ती गई। योग्य मन्त्रियों का भी अभाव ही रहा। सामन्त एवं माण्डलिक राजागण धीरे २ स्वतन्त्र हो गये। इसके उपरान्त वि० सं० १२४९ (ई० सन् ११९२) में मुहमदगोरी के हाथों तहराइन के रणक्षेत्र में हुई पृथ्वीराज की पराजय का कुप्रभाव सर्वत्र पड़ा। दिल्ली यवनों के अधिकार में आ गया और मुसलमान आक्रमणकारियों का आतंक एवं प्रभुत्व द्रुतवेग से बढ़ चला। कुतुबुद्दीन ऐबक ने भीम द्वि० के समय में वि० सं० १२५४ (ई० सन् ११९७) में गूर्जरभूमि पर भारी आक्रमण किया। सम्राट् भीमदेव द्वितीय उसके आक्रमण को निष्फल नहीं कर सके। अणहिलपुरपत्तन पर यवनों का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस प्रकार कुतुबुद्दीन ने भीमदेव द्वि० के हाथों हुई मुहमदगोरी की पराजय का पुनः बदला लिया। कुतुबुद्दीन समस्त गूर्जरभूमि को नष्ट-भ्रष्ट कर दिल्ली लौट गया। सैन्य एकत्रित करके भीमदेव द्वि० ने वि० सं० १२५६ (ई० सन् ११९९) में यवनों पर पुनः आक्रमण किया और उन्हें परास्त करके गूर्जरभूमि से बाहर निकाल दिया।

सम्राट् भीमदेव[२] और उनके सामन्त जब पत्तन में स्थित यवनशासक को परास्त कर चुके तो यवनशासक पत्तन छोड़कर अपना प्राण लेकर भागा। सम्राट् ने उस समय पत्तन के राजसिंहासन पर बैठकर आनन्द एवं हर्ष मनाने के स्थान में यह अधिक उचित समझा कि यवनों को गूर्जरभूमि से ही बाहर निकाल दिया जाय। यह कार्य अभी जितना सरल है, यवनों के पुनः सशक्त एवं संगठित हो जाने पर उतना ही कठिन हो जायगा। ऐसा विचार करके सम्राट् ने पत्तन में जयन्तसिंह नामक विश्वासपात्र सामन्त को अपना प्रतिनिधि बनाकर उसको पत्तन की रक्षा का भार अर्पित किया और पत्तन में कुछ सैन्य छोड़कर, सम्राट् अपनी विजयी सैन्य के सहित पलायन करते हुये यवनों के पीछे पड़ा और कठिन श्रम एवं अनेक छोटे-बड़े रण करके यवनों को अन्त में वह गूर्जरभूमि से बाहर निकालने में सफल हुआ। गूर्जरभूमि से यवनों को बिलकुल बाहर निकालने के उक्त प्रयत्न में कुछ समय लग ही गया। इस अन्तर में सामन्त जयंतसिंह ने, जिसको सम्राट् ने यवनों का पीछा करने के लिये जाते समय अपना प्रतिनिधि बनाकर पत्तन में नियुक्त किया था, पत्तन का सिंहासन हस्तगत कर बैठा और उसने राजसिंहासन पर बैठकर अपने को गूर्जरसम्राट् घोषित कर दिया। सम्राट् भीमदेव द्वि० यवनों को गूर्जरभूमि से बाहर करके जब

१—H. M. I. (III edi.) P. 22, 102, 148, 154.
२—G. G. Part III P. 204, 207.

पत्तन की ओर मुड़े तो उन्होंने विश्वासघातक जयन्तसिंह के पत्तन के राजसिंहासन पर बैठने के समाचार सुने। अन्त में सम्राट् और जयंतसिंह के मध्य भयंकर रण हुआ और जयंतसिंह परास्त होकर सम्राट् का वन्दी बना। इस युद्ध में मन्त्री अश्वराज और उपसेनापति आभूशाह ने बड़ी नीतिज्ञता एवं स्वामिभक्ति का परिचय दिया था तथा जयंतसिंह को परास्त करने में सम्राट् की प्राणप्रण से सहायता की थी। मण्डलेश्वर गूर्जरसेनाधिपति लवणप्रसाद और उसके पुत्र वीरधवल ने प्राणों की बाजी लगाकर यवनों को गूर्जरभूमि से बाहर निकालने में तथा जयंतसिंह को उसके दुष्कृत्य का फल चखाने में सम्राट् की भुजायें बनकर सम्राट् के मान और प्रतिष्ठा की पुनः प्राप्ति की एवं सम्राट् का पत्तन के राजसिंहासन पर पुनः अधिकार जमाने में पूरी २ सहायता की।

सम्राट् भीमदेव जब पुनः इस बार पत्तन के राजसिंहासन पर विराजमान हुये तो उन्होंने अपने विश्वासपात्र, सामन्त, माण्डलिक, मन्त्री एवं अन्य राज्यकर्मचारियों को एकत्रित करके मण्डलेश्वर लवणप्रसाद को उसकी अमूल्य सेवाओं से मुग्ध होकर महामण्डलेश्वर का पद प्रदान किया तथा महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद के पुत्र वीर, धीर, स्वामीभक्त वीरधवल को अपना युवराज बनाने की इच्छा प्रगट की और इस इच्छा के अनुसार युवराजपद प्रदान करने की घोषणा का दिन निश्चय करने का भार सम्राट् ने स्वयं अपने उपर रक्खा। उपस्थित सर्व सामन्त, मन्त्री, माण्डलिकों एवं नगर के प्रमुख श्रेष्ठियों ने सम्राट् की योग्य इच्छाओं का मान करते हुये उनका समर्थन किया। पत्तन का राजसिंहासन जो इस वार सम्राट् भीमदेव ने पुनः प्राप्त किया था, उसमें उन्होंने स्वर्गस्थ सम्राट् सिद्धराज जयसिंह जैसा शौर्य्य एवं पराक्रम प्रदर्शित किया था अतः पत्तन के राजसिंहासन पर बैठकर सम्राट् ने *'अभिनव सिद्धराज' की उपाधि ग्रहण की। पत्तन का सिंहासन तो प्राप्त कर लिया परन्तु फिर भी वह गूर्जरभूमि

कु० च०
H. I. G. Part II.
*(अ) वि० सं० १२५६ भाद्रपद कृष्णा अमावस्या मंगलवार

प्रथम ताम्र-पत्र

१४-'पराभूतदुर्ज्जयगर्ज्जनकाधिराज श्री मूलराजदेवपादानुध्यात परमभट्टा-
१५-रक महाराजाधिराज परमेश्वराभिनवसिद्धराज श्रीमद्भीमदेव स्वभुज्य' Ms. No. 158

(ब) वि० सं० १२६३ श्रावण शुक्ला २ रविवार

प्रथम ताम्र-पत्र

११-'श्रीमूलराज देवपादानुध्यातपरमभट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वराभिनवसिद्धराज —
१२-श्रीमद्भीमदेव' .... Ms. No. 160

(स) वि० सं० १२६६. सिंह सं० ९६

द्वितीय ताम्र-पत्र

१८-..........................'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वराभिनवसिद्धराज-
१९-देववाल नारायणावतार श्रीभीमदेव कल्याण' .... Ms. No. 162

'परमेश्वराभिनवसिद्धराज' पद केवल द्वि० भीमदेव के साथ ही लगा है—ऐसा गूर्जरसम्राटों के अनेक शिलालेख एवं ताम्र-पत्रों से सिद्ध होता है।

पं० लालचन्द्र भगवानदासजी गांधी 'जयन्तसिंह' के नाम को 'सिद्धराज जयसिंह' उपाधि के पद 'जयसिंह' का जयन्तसिंह भ्रम से हुआ मानते हैं। वे इस नाम का पुरुष नहीं मानते।

को पुनः समृद्ध और सुखी बनाने में असमर्थ रहा। कुछ सामन्त एवं माण्डलिक राजाओं के अतिरिक्त सर्व स्वतन्त्र हो गये। भीमदेव द्वि० की राज्य-सत्ता पत्तन के आस-पास की भूमि पर रह गई। भीमदेव द्वि० निराश और निर्बल-सा महलों में पड़ा रहने लगा और उदासीन और संन्यासी की भाँति दिन व्यतीत करने लगा। समस्त गुजरात में अराजकता प्रसारित हो गई। चोर और लूटेरों के उत्पात बढ़ गये। व्यापार नष्ट हो गया। यात्रायें बंध हो गई। राजधानी अणहिलपुरपत्तन भी अब शोभाविहीन, समृद्धिहत-सा प्रतीत होता था। वह राजद्रोही एवं विश्वास-घातकों के षड़यन्त्रों की रंगभूमि बन गई।[१]

मालवा के परमारों और गुजरात के चौलुक्यों में पारस्परिक द्वंद्वता सदा से चली आ रही थी। इस समय मालवा की राजधानी धार में सुभटवर्मा राज्य कर रहा था। उसने गूर्जरसम्राट् भीमदेव द्वितीय को निर्बल समझ कर गुजरात पर आक्रमण शुरु कर दिये। वि० सं० १२६६ (ई० सन् १२०९) तक समस्त गुजरात सुभटवर्मा के आक्रमणों से समाक्रांत रहा और उसको पुनः समृद्ध और संगठित होने का अवसर ही नहीं मिला।[२] भरोच के चौहान राजा सिंह ने जो पत्तन का माण्डलिक राजा था सुभटवर्मा का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। भद्रेश्वर के राजा भीमसिंह ने, गोध्रा के राजा ने भी पत्तन के गूर्जर-सम्राटों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिये। ये इस प्रकार स्वतन्त्र हुये सामन्त, माण्डलिक, ठक्कुर गूर्जरसम्राटों के शत्रु राजाओं से मिलकर या गुजरात में उत्पात, अत्याचार, लूट-खशोट कर अपनी जड़ सुदृढ़ बनाने लगे। फलतः वि० सं० १२६६ (ई० सन् १२०९) में पत्तन पर हुये सुभटवर्मा के आक्रमण के समय निर्बल गूर्जरसम्राट् भीमदेव द्वि० के चरण उखड़ गये और वह सौराष्ट्र या कच्छ की ओर भाग गया। सुभटवर्मा ने दावानल की भांति समस्त गुजरात को अपनी क्रोधानल की ज्वालाओं से भस्म कर अपने पूर्वजों का गूर्जरसम्राट् से प्रतिशोध लिया। पत्तन को बुरी तरह नष्ट कर वह शीघ्र ही धार को लौट गया। वि० सं० १२६७ (ई० सन् १२१०) में सुभटवर्मा की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अर्जुनवर्मा धाराधीप बना।

मालवपति सुभटवर्मा का आक्रमण

सुभटवर्मा की मृत्यु से भीमदेव द्वि० को पत्तन पर पुनः अधिकार प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। वि० सं० १२६६ (ई० सन् १२०९) के अंत में उसने पत्तन पर अधिकार कर लिया और 'अभिनव सिद्धराज' के आगे 'जयंतसिंह' पद जोड़कर 'अभिनव सिद्धराज जयंतसिंह' की पदवी धारण की।[३] परन्तु अर्जुनवर्मा ने पुनः अभिनवसिद्धराज जयंतसिंह भीमदेव द्वि० को पर्व पर्वत के स्थान पर भीषण रण करके परास्त किया। भीमदेव द्वि० ने पुनः वि० सं० १२७५

पत्तन की पुनः प्राप्ति। अर्जुनवर्मा की मृत्यु। देवपाल की पराजय

१–की० कौ० सर्ग २, श्लोक १०, १६, ३१, ७४.
सु० सं० सर्ग २, श्लोक १३, १८, २३, ३४.

२–G. G. Part III P. 209, 210.
'सततविततदानक्षीणनिःशेषलक्ष्मीरितिक्षितरचिकीर्त्तिर्भीमभूमीभुजङ्गः।
बलकवलितभूमीमण्डलो मण्डलेशैर्भिरुपचितचिताचातचितातरोऽभूत्' ॥५१॥ सु० सं० सर्ग २ पृ० १६

३–(अ) G. G. Part III P. 210. पर कन्हैयालाल मुंशी ने शिलालेखों में, ताम्रपत्रों में उल्लिखित जयन्तसिंह को भीमदेव द्वि० से अलग सम्राटवत् व्यक्ति माना है, जिसने पत्तन के सिंहासन पर अनधिकार प्रयास किया था; परन्तु उसका कोई शिलालेख प्राप्त नहीं है।

(ई० सन् १२१६) में मालवपति देवपाल को, जो अर्जुनवर्मा की मृत्यु के पश्चात् धाराधीप बना था बुरी तरह परास्त कर अपनी खोयी हुई शक्ति प्राप्त की। इन रणों के कारण गूर्जरभूमि अति निर्बल और दीन हो चुकी थी। प्रजा सर्व प्रकार सदा संत्रस्त रहती थी। प्रजा के धन, जन की सुरक्षा करने वाला कोई शासक या अमात्य नहीं था। सर्वत्र लूट-खशोट एवं अत्याचार बढ़ रहे थे। गुजरात के पुनः समृद्ध और सम्पन्न होने की कोई आशा नहीं दिखाई दे रही थी। पत्तन को छोड़कर अनेक बड़े-बड़े श्रीमंत, शाहूकार अन्यत्र चले गये थे। पत्तन अब एक साधारण नगर-सा बन गया था।

धवलकपुर की बाघेलाशाखा और उसकी उन्नति

धवलकपुर का मांडलिक राजा चालुक्य वंश की बाघेलाशाखा में उत्पन्न महामण्डलेश्वर राणक लवणप्रसाद था। लवणप्रसाद अत्यन्त वीर एवं महान् पराक्रमी योद्धा था। उसने गूर्जरसम्राट् भीमदेव द्वि० के साथ रहकर अनेक युद्धों में गूर्जरशत्रुओं के दांत खट्टे किये थे। वि० सं० १२७६ (ई० सन् १२१६) के प्रारंभ में भीमदेव द्वितीय ने महामण्डलेश्वर राणक लवणप्रसाद को अपना वंशीय एवं सुयोग्य तथा महापराक्रमी समझकर 'महाविग्रहिक' का पद प्रदान करते हुये और उसके पुत्र वीरधवल को 'गूर्जर-युवराजपद' से अलंकृत करते हुए गूर्जरसाम्राज्य के[1] शासन-संचालन का भार अर्पित किया और आप उदासीन रहकर एक संन्यासी की भांति राजप्रासादों में जीवन व्यतीत करने लगे। इस प्रकार लवणप्रसाद के स्कंधों पर अब भारी उत्तरदायित्व आ पड़ा और उसने अनुभव किया कि बिना योग्य मंत्रियों के शासन का कार्य चलाना

(ब) H. I. G. Part II. वि० सं० १२८० पौष शु० ३ मंगलवार

प्रथम ताम्र-पत्र

१६-१८-'राणावतार श्रीभीमदेवतदनन्तरं स्थाने (स्थाने)..वीरेत्या-

१६-दि समस्तबिरदावलीसमुपेत श्रीमदणहिलपुरराजधानीअधिष्ठित अभिनवसिद्धराज श्रीमज्जयंतसिंहदेवो।'

Ins. No. 165

वि० सं० १२८३ कार्त्तिक शु० १५ गुरुवार

प्रथम ताम्र-पत्र

१४-१५—'धिराजपरमेश्वरपरमभट्टारक अभिनवसिद्धराज सप्तमचक्रवर्तीश्रीमद्भीमदेवः' Ins. No. 166.

उक्त लेखों से दो बात ये प्रकट होती हैं। प्रथम—भीमदेव द्वि० ने जब, जब महान् विजय की कुछ न कुछ अभिनव उपाधि धारण की, जैसे:—

वि० सं० १२५६ में 'अभिनवसिद्धराज' वि० सं० १२६६ में 'बालनारायणावतार'

" १२८० में 'अभिनव सिद्धराज श्रीमज्जयन्तसिंह' " १२८३ में 'अभिनव सिद्धराज सप्तम चक्रवर्त्ती'

द्वितीय बात यह है कि वि० सं० १२८० के ताम्रपत्र में 'जयंतसिंह' नाम देखकर कुछ एक इतिहासकारों को शंका हो गई है कि 'जयंतसिंह' भीमदेव द्वि० से अलग ही व्यक्ति है। परन्तु वि० सं० १२७५ तथा १२८३ के लेखों में 'भीमदेम द्वि०' स्पष्ट उल्लिखित है। अतः वि० सं० १२८३ के लेख में वर्णित 'जयंतसिंह' भीमदेव द्वि० ही है। जयंतसिंह से यहाँ अर्थ सिद्धराज जयसिंह के समान पराक्रम दिखाने वाले तथा उसके समान गूर्जरदेश के अभित्राता से हैं।

१-ह० म० म० परि० द्वि० पृ० ७६-८१ श्लोक ७४ से ६७ (सु० की० क)

की० कौ० सर्ग २. श्लोक ७४-८१ व० च० प्रस्ताव प्र० श्लोक ४६

'ग्रहाणविग्रहोदग्रसर्वेश्वरपदं मम। युवराजोऽस्तु मे वीरधवलो धवलो गुणैः' ॥३६॥ सु० सं० सर्ग० ३।

सु० सं० सर्ग० २ श्लोक १५-४४।

'अर्णोराजङ्गजातं कलकलहमहासाहसिक्यं चुलुक्यं। श्री लावण्यप्रसादं व्यतनुत स निज श्री समुद्धारधुर्यम्' ॥३३॥

ह० म० म० परि० प्र० (व० ते० प्र०)

और यह भी इस अवनति के काल में महान् कठिन है। रात और दिन लवणप्रसाद योग्य मंत्रियों की शोध के विचार में ही रहने लगा। परन्तु उसको कोई योग्य मंत्री नहीं मिल रहे थे।[१]

कुमारदेवी का स्वर्गारोहण और वस्तुपाल का धवलकपुर में बसना।

वि० सं० १२७१-७२ के आस-पास कुमारदेवी की मृत्यु हो गई। इस समय तक वस्तुपाल तेजपाल प्रौढ़वय को प्राप्त हो चुके थे। वस्तुपाल की गणना गूर्जरभूमि के महान् पराक्रमी वीर योद्धाओं में और उद्भट विद्वानों में होने लगी थी। तेजपाल अत्यन्त शूरवीर एवं निडर होने से बहुत ख्यातनामा हो गया था। इन दिनों में धवलकपुर की ख्याति महामण्डलेश्वर राणक लवणप्रसाद की वीरता एवं साहस के कारण अत्यधिक बढ़ गई थी। युवराज वीरधवल भी धवलकपुर में ही रहता था और वहीं रहकर अभिनव राजतंत्र की स्थापना करके गूर्जरभूमि के भाग्य का निर्माण करना चाहता था। फलतः उसके दरबार में वीर योद्धाओं का, रणविशारदों का स्वागत होता था। वह विद्वानों का भी समादर करता था। परिणाम यह हुआ कि थोड़े समय में ही धवलकपुर में अनेक वीर योद्धा और उद्भट विद्वान् जमा हो गये। और वह अति सुरक्षित नगर माना जाने लगा। वस्तुपाल तेजपाल ने भी मण्डलिकपुर छोड़कर धवलकपुर में निवास करने का विचार किया। स्वर्गस्थ पिता-माता के श्रेयार्थ वि० सं० १२७३ में इन्होंने शत्रुञ्जय एवं गिरनार तीर्थों की यात्रा की। यात्रा को जाते समय मार्ग में ये हडाला नामक ग्राम में ठहरे। रात्रि को दोनों भाई उक्त ग्राम में किसी स्थल पर एक लाख रुपयों को जो उनके पास में थे गाड़ने को निकले। स्थल खोदने पर उनको सुवर्ण एवं रत्नों से पूर्ण एक कलश प्राप्त हुआ। दोनों भ्राताओं ने तीर्थयात्रा के समय इस प्रकार की धनप्राप्ति को शुभ समझा और तेजपाल की पत्नी गुणवती एवं चतुरा अनोपमा ने उक्त धन को तीर्थों में ही व्यय करने की सुसंमति दी। दोनों भ्राता तीर्थयात्रा करके सकुशल लौटे और आकर धवलकपुर में बस गये।[२]

१–'सुतस्तस्यास्ति लावण्यप्रसादो भुवि यद्भुजः। असि जिह्वामिवाकृष्य रिपुग्रासाय सर्पति ॥२०॥
युद्धमार्गेषु यस्यासिः प्रतापप्रसरोज्ज्वलः अतीवारियशोवारि पायं पायं न निर्वृतो ॥२१॥
प्रतापतापिता यस्य निमज्ज्यासिजले द्विषः। भीताः शीताद्विवासेदुः सद्यश्चण्डांशुमण्डलम् ॥२२॥
सर्वेश्वरमनु कुर्वन्नुर्वीमण्डलमण्डनम्। भविष्यसि श्रियो भर्त्ता सुखाम्भोधिचतुर्भुजः ॥२३॥
अस्यास्ति च सुतो वीरधवलः प्रधनाय यः। भार्गवस्य पुनः क्षत्रक्षयसन्धां समीहते ॥२४॥' सु० सं० सर्ग० ३ पृ० २२

२–'सोऽवग् निर्मोय यात्रां त्वं, धवलक्कं यदैष्यसि राज्यव्यापारलाभांते, तदा भाव्युदयो महान् ॥२१॥
विधिना शासदृष्टेन व्रजन्तौ पथि सोदरौ हडालकपुरं प्राप्तौ, बन्धुभिस्तौ समन्वितौ ॥२४॥
विलोक्य गृहसर्वस्वं आनं लक्षत्रयीमितम्। एवं लक्षं ततो लात्वा निधातुं निशि तौ गतौ ॥२८॥
सुवर्णश्रेणिसम्पूर्णः पूर्णकुम्भः शुभप्रदः आविरासीत्तत्क्षणादेव, देवकुम्भनिभस्ततः ॥३०॥'
'धवलक्कपुरं धाम, धर्मकामार्थसम्पदाम्। श्रीवीरधवलाधीशराजधानीमुपागतौ ॥४६॥' व० च० प्रस्ताव प्र० पृ० ४
'इतो वस्तुपाल-तेजःपालौ हट्टं मण्डयतः। तेजःपालस्य राणकेन सह प्रीतिर्जाता। राजकुले वस्त्राणि पूरयति...................'
पु० प्र० को० ११८। पृ० ५४ (व० ते० प्रबध० ३५)

धवलक्कपुर की राजसभा में वस्तुपाल तेजपाल को निमंत्रण और वस्तुपाल द्वारा महामात्यपद तथा तेजपाल द्वारा दण्डनायकपद को ग्रहण करना

वीरधवल एवं तेजपाल में पूर्व परिचय था[१]। राजगुरु सोमेश्वर वस्तुपाल के सहपाठी थे और उसके दिव्य गुणों एवं उसकी विद्वत्ता पर मुग्ध थे। महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद भी दोनों भ्राताओं के दिव्य गुणों से, उनकी बुद्धिप्रतिभा से, वीरता, निडरता से पूर्ण परिचित हो चुके थे। वैसे दोनों भ्राता गूर्जरभूमि के प्रसिद्ध अमात्य चंडप के वंशज थे अतः उनकी कीर्ति को प्रसारित होने में अधिक समय नहीं लगा। अब वि० सं० १२७६ में गूर्जरसाम्राज्य के शासन-संचालन का भार पाकर राणक लवणप्रसाद और युवराज वीरधवल योग्य मंत्रियों की शोध में अधिक चिंतित तो थे ही। वस्तुपाल, तेजपाल इन पदों के लिये उनको सर्व प्रकार से योग्य प्रतीत हुये। राजगुरु सोमेश्वर की भी यही इच्छा थी कि उक्त दोनों भ्राताओं के हाथों में गूर्जरभूमि का शासनसूत्र समर्पित किया जाय। राजगुरु सोमेश्वर के प्रयत्नों से वि० सं० १२७६ में एक दिन दोनों भ्राता राजसभा में निमंत्रित किये गये[२]। राणक लवणप्रसाद ने दोनों भ्राताओं से अमात्यपद तथा दंडनायकपदों को स्वीकृत करने के लिये कहा[३]। इस पर चतुर नीतिज्ञ वस्तुपाल ने कहा—'राजन्! चापलूश एवं चाटुकारों की सदा राजा और महाराजाओं के यहाँ पटती आई है। अगर आप यह वचन देते हैं कि हमारे विरोध एवं हमारी निंदाओं में कही गई झूठी चर्चाओं की ओर कान और ध्यान नहीं देंगे तथा अगर कुपित होकर कभी हमको राज्यपदों से अलग भी करेंगे तो जो तीन लक्ष

१–'प्राग्वाटवंश..............................तत्रायात तेजःपालमंत्रिणा सह सौहार्दमुपेदे।' प्र० चिं० (१८३) पृ० ९८ (कु० प्रबंध ९)

२–'देव्यानिवेदितौ मंत्रिपुङ्गवौ यौ भवतपुरः। राजन्यापारधौरेयौ न्यायशास्त्रविचक्षणौ ॥२८॥
द्वासप्ततिकलादक्षौ, सर्वदर्शनवत्सलौ। जिनेन्द्रधर्मधौरेयौ, पुरुषोत्तमसन्निभौ ॥२९॥
शत्रुञ्जयोज्जयंतादौ, यात्रां कृत्वाऽत्र साम्प्रतम्। राजसेवार्थमायातौ पुरा तौ मिलितौ मम ॥३०॥'
'ततो नृपयुगादेशं, समासाद्य पुरोधसा। तयो समीपमानीतौ तौ विनीतौ सुसंवृतौ ॥३२॥' व० च० प्रस्ताव प्र० पृ० ७
'अथान्यदा श्रीवीरधवलदेवेन निजव्यापारभारायाभ्यर्थ्यमानः प्राक्-स्वसौधे तं सपत्नीकं भोजयित्वा श्रीअनुपमा राजपत्न्यै श्रीजयतलदेव्यै निजं कर्पूरमयताडङ्कयुग्मं कर्पूरमयो मुक्ताफलसुवर्णमयमणिश्रेणिभिरंतरिताभिर्निष्पन्नमेकावलीहारं प्राभृतीचकार। मंत्रिणः प्राभृतमुपढौकितं निषिध्य निजमेवं व्यापारं समर्पयन्, 'यत्तवेदानीं वर्त्तमानं वित्तं तत्ते कुपितोऽपि प्रतीतिपूर्वं पुनरेवाददामीति' अक्षरपत्रान्तरस्थबन्धपूर्वकं श्री तेजःपालाय व्यापारसम्बन्धिनं पञ्चाङ्गप्रसादं ददौ।'
प्र० चि० (१८५) पृ० ९८-९९ (व० ते० प्रबंध १०)

३–'भूमिभर्तुरथ कर्तुमिच्छतस्तस्य सत्पुरुषसंग्रहं श्रिये। एकदा हृदयमागताविमौ दीप्तशीतकिरणाविवाम्बरम् ॥५१॥'
'पुरस्कृत्य न्यायं खलजनमनादृत्य सहजानरीन्निर्जित्य श्रीपतिचरितमाश्रित्य च यदि।
समुद्धर्तुं धात्रीमभिलषसि तस्यैष शिरसा धृतो देवादेशः स्फुटमपरथा स्वस्ति भवते ॥७७॥
सचिववचनमेतच्चेतसा सोत्सवेन क्षितितलतिलकोऽयं कृत्स्नमाकर्ण्य सम्यक्।
अकृतकनकमुद्राकान्तिकिञ्जल्कसान्द्रं करसरसिजयुग्मं मंत्रियुग्मस्य तस्य ॥७८॥' की० कौ० सर्ग० ३ पृ० २८
'इमौ ग्रन्थाब्धिमन्थानौ पन्थानौ श्रीसमागमे। तुभ्यं समर्पयिष्यामि मंत्रिणौ तौ तु मित्रयोः ॥५७॥' सु० सं० सर्ग० ३ पृ० २६
'विधेते हृद्यविद्यौ तदनु तदनुजौ धीनिधिर्वस्तुपालस्तेजःपालश्च तेजस्तरणितरणिमस्फूर्तिरोचिष्णुमूर्त्ती।
श्रीमन्नेतौ निजश्रीकरणपदकृतव्यापृती प्रीतियोगात्तुभ्यं दास्यामि विश्वं जयतु नवनवं धाम तन्मन्त्रमित्रम् ॥५०॥'
ह० म० म० परि० प्र० पृ० ६३ (व० ते० प्र०)
'तदिमं मौलिषु मौलिं कुरुषे पुरुषेशः सकलसचिवानाम्। क्षितिधवः तत्तव दोष्णोर्विष्णोरिव भवति विश्रामः ॥११८॥'
ह० म० म० परि० प्र० पृ० ८३ (सु० की० क०)

द्रव्य हमारे पास इस समय है, उसके साथ हमको हमारे परिवार के सहित मुक्त करेंगे तो हम दोनों भाई इस असमय में मातृभूमि गूर्जरदेश की सेवा करने को तैयार हैं।" राणक लवणप्रसाद एवं युवराज वीरधवल ने वस्तुपाल को उसकी प्रार्थना के अनुसार वचन प्रदान किया और सोमेश्वर ने मध्यस्थ का स्थान ग्रहण करते हुये अन्त में अपने को इस कार्य में साक्षी रूप स्वीकार किया। फलतः वस्तुपाल ने महामात्यपद तथा तेजपाल ने दण्डनायकपद स्वीकृत किया। सम्राट् भीमदेव द्वि० की भी वस्तुपाल तेजपाल की नियुक्ति के उपर सम्मति एवं आज्ञा प्राप्त कर ली गई थी।[१] इस प्रकार वीरहृदय एवं नीतिनिपुण वस्तुपाल की महामात्यपद पर और रणकुशल महाबली तेजपाल की महाबलाधिकारी दंडनायक के पद पर वि० सं० १२७६ से नियुक्तियाँ हुईं।[२]

'१—इमौ मन्थाब्धिमन्थानौ पन्थानौ श्री समागमे। तुभ्यं समर्पयिष्यामि मन्त्रिणौ तौ तु मित्रयोः ॥५७॥'
'इत्युक्त्वा मुदिते वीरधवलेऽसौ धराधवः। आहूय तौ स्वयं प्राह नमन्मौली सहोदरौ ॥५८॥
'युवां नरेन्द्रव्यापारपारावारैकतारणौ। कुरुतां मन्त्रितां वीरधवलस्य मदाज्ञतेः' ॥५९॥ सु० सं० सर्ग० तृ० पृ० २६

स्वप्न स्त्री एवं पुरुषों को आते हैं, इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता। ऐसी भी अधिकतम मान्यता है और वह अधिकतम सच्ची भी है कि जैसा चिन्तन होता है, स्वप्न भी वैसा ही न्यूनाधिक मिलता हुआ होता है। और यह भी सत्य है कि प्राचीन लोगों का स्वप्न को सच्चा मानने का स्वभाव था। कोई इसको उपहास्य समझता है तो वह विचारहीन ही नहीं, शिथिल-जीवन है। उत्कृष्ट चिन्तनशील अवस्था में जो भी स्वप्न आयगा, उसमें उपस्थित समस्या का उपयुक्त हल होगा। ऐसी अनेक नहीं सहस्रों कथा, कहानियें, वार्तायें भारतीय प्राचीन वाङ्मय में संग्रहित हैं। उपरोक्त मान्यताओं को दृष्टि में रखकर हम यहां भी विचार कर सकते हैं कि लवणप्रसाद या वीरधवल, जिनके ऊपर समस्त गूर्जरभूमि के उद्धार का भार था और वह भी ऐसे असमय में आ पड़ा जबकि सामन्त, मांडलिक, ठक्कुर स्वच्छन्द और स्वतन्त्र हो चुके थे, गूर्जरभूमि लूट-खसोट, चौरी, डकैती, अन्याय, अत्याचारों का प्रमुख स्थल बन चुकी थी, वस्तुपाल, तेजपाल को गूर्जरमहाराज्य के प्रमुख सचिव बनाने का कैसे विचार नहीं करते, जबकि दोनों भ्राता उद्भट वीर योद्धा, नीतिनिपुण, न्यायशील, धर्मिष्ट, बुद्धिमान्, प्रतिभासम्पन्न और अनेक गुणों के भण्डार और रूपवान् थे। विशेषता इन सबके ऊपर जो थी, वह यह कि वे उस कुल में उत्पन्न हुये थे, जिस कुल ने गत चार पीढ़ियों में गूर्जरसम्राटों की भारी सेवायें करके कीर्ति प्राप्त की थी और अब भी जो गूर्जरभूमि के प्रसिद्धकुलों में गिना जाता था। भीमदेव द्वि०, राणक लवणप्रसाद तथा वीरधवल भी जिससे अधिकतम परिचित थे। भला ऐसे परिचित, प्रसिद्ध एवं पीढ़ियों के सेवक कुल में उत्पन्न नरवीरों की सेवाओं को कौन असमय में प्राप्त करना नहीं चाहता है? परिणाम यह हुआ कि स्वप्न हुआ और उसमें कुलदेवी ने दर्शन दिये। प्राचीन समयों में, जब रण, संग्रामों की ही युग में प्रधानता थी कुलदेवी की अधिकतम पूजा और मान्यता होती थी; अतः अगर स्वप्न में कुलदेवी ने दर्शन देकर वस्तुपाल तेजपाल को मंत्री-पदों पर आरूढ करने का आदेश दिया हो तो कोई मिथ्या कल्पना या झूठ नहीं।

की० कौ० सर्ग० २ श्लोक ८३-१०७। व० च० प्रस्ताव प्र० श्लोक ५३-२००। प्र० को० प्र० २४ पृ० १०१।

की० कौ० के कर्त्ता राणक लवणप्रसाद को स्वप्न हुआ कहते हैं और व० च के कर्त्ता वीरधवल को स्वप्न हुआ वर्णन करते हैं। जहां तक स्वप्न का प्रश्न है, दोनों स्वप्न के होने का वर्णन करते हैं।

की० कौ० सर्ग० ३ श्लोक ५३-७६। न० ना० नं० सर्ग० १६ श्लोक ३५। व० वि० सर्ग० ३ श्लोक ६६-८२।
सु० सं० सर्ग० ३ श्लोक ५७-६०। ह० म० म० परि० तृ० पृ० ८६ श्लोक ११६-११८ (सु० की० क०)

२—'श्रीशारदा प्रतिपन्नापत्येन महामात्य श्री वस्तुपालेन तथा अनुजेन (वि) सं० (१२) ७६ वर्ष पूर्वं गूर्जरमण्डले धवलकप्रमुखनगरेषु मुद्राव्यापारान् व्यापृण्वता..........।' प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३८-४३ (गिरनार-प्रशस्ति)

धवल्लकपुर में अभिनव राजतन्त्र की स्थापना

जब से सम्राट् भीमदेव द्वि० ने महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद और युवराज वीरधवल के कन्धों पर गूर्जर-साम्राज्य का भार रक्खा, तब से ही दोनों पिता-पुत्र गूर्जरभूमि में फैली हुई अराजकता का अन्त करने, निरंकुश हुये सामन्त एवं माण्डलिकों को वश करने की चिंताओं में ही डूबे रहने लगे। पत्तन में राजकर्मचारी आये दिन नित नवीन षड़यन्त्र, विश्वासघात के कार्य और मनमानी कर रहे थे। अन्त में दोनों पिता-पुत्रों ने सम्राट् भीमदेव की सम्मति से पत्तन से दूर धवल्लकपुर में नवीन राजतन्त्र की स्थापना करने का दृढ़ निश्चय किया और अभिनव राजतन्त्र की शीघ्रतर स्थापना करने का प्रयत्न करने लगे। राजगुरु सोमेश्वर ने तथा धवल्लकपुर के नगरसेठ यशोराज ने इस नव कार्य में पूरा २ सहयोग देने का वचन दिया। दोनों पिता-पुत्रों ने अपने विश्वास-पात्र सामन्त एवं सेवकों का संगठन किया और धवल्लकपुर में जाकर रहने लगे। जैसा लिखा जा चुका है, दोनों मंत्री भ्राताओं की जब महामात्यपद और दंडनायक पदों पर नियुक्ति हो गई, अभिनव राजतन्त्र के संचालन करने के लिये समिति का निर्माणकार्य पूर्ण-सा हो गया। दोनों मन्त्री भ्राताओं के सामने गूर्जरसाम्राज्य के शासनकार्य के अतिरिक्त गूर्जरभूमि में फैली अराजकता का अन्त करने का कार्य प्रथम आवश्यक था। महामात्य वस्तुपाल, दंडनायक तेजपाल, महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद, युवराज वीरधवल और राजगुरु सोमेश्वर, नगरसेठ यशोराज आदि ने एकत्रित होकर नवराजतंत्र का निम्न प्रकार का कार्य-क्रम निश्चित किया।

१—युवराज वीरधवल को 'राणा' पद से सुशोभित करना।

२—सर्व प्रथम स्वार्थी एवं स्वामीविरोधी ग्रामपतियों को वश करना तत्पश्चात् निरंकुश जीर्णाधिकारियों को दण्डित करके तथा नव राजकर्मचारियों की नियुक्तियाँ करके शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ करना और राजकोष को समृद्ध बनाकर शासन-व्यवस्था का सुचारुरूप से संचालन करना।

३—स्वतन्त्र बने हुए अभिमानी ठक्कुर, सामन्त, माण्डलिकों को क्रमशः अधीन करना और सर्वत्र गूर्जर-भूमि में पुनः सम्राट् भीमदेव द्वि० की प्रभुता प्रसारित करनी।

४—मालवा, देवगिरि एवं दिल्लीपति यवन-शासकों की बढ़ी हुई राज्य एवं साम्राज्य-लिप्सा का ग्रास बनती हुई गूर्जरभूमि की रक्षा के निमित्त सबल सैन्य का निर्माण करना।

५—पड़ौसी मरुदेश के छोटे बड़े राजाओं, सामन्तों एवं माण्डलिकों, ठक्कुरों को पुनः मित्र अथवा अधीन करना।

महामात्य वस्तुपाल ने अभिनव राजतन्त्र के कार्यक्रम के अनुसार कदम बढ़ाने के पूर्व सम्राट् भीमदेव को उक्त कार्यक्रम से परिचित करवा कर उनका अनुमोदन प्राप्त कर लिया, जिससे सम्राट् के समक्ष धूर्तों, चालाकों एवं राजद्रोही, चाडकारों की युक्तियाँ सफल नहीं हो सके। सम्राट् का अनुमोदन प्राप्त हो जाने पर महामात्य वस्तुपाल ने अधोलिखित व्यक्तियों की एक समरसमिति का निर्माण किया। उक्त समिति में वह ही व्यक्ति,

सामन्त, ठक्कुर, राजकर्मचारी सम्मिलित किया जा सकता था, जो अनेक अवसरों पर सच्चा वीर, सच्चा देशभक्त और नवराजतन्त्र का समर्थक सिद्ध होता था। अभिनव राजतन्त्र का अधिष्ठाता और प्रमुख यद्यपि महामण्डलेश्वर और राणक वीरधवल थे; परन्तु उसका संचालक वस्तुतः महामात्य वस्तुपाल ही था। महामात्य वस्तुपाल सब में बढ़कर धीर, उदात्त, चतुर, नीतिज्ञ था। देशभक्त एवं देश की रक्षा पर प्राणों की सच्ची बाजी लगाने वाले सुपुत्र कभी मानापमान का विचार तनिक भी नहीं करते, वरन् वे तो योग्यतम को अपना पथदर्शक एवं अगुवा अथवा नेता बनाकर अपना इष्ट साधने में जुट जाते हैं। विपाक्त वातावरण से पूर्ण गूर्जरभूमि की राजधानी पत्तन से दूर एक माण्डलिक राजा की धवल्लकपुर नामक राजधानी में गूर्जरभूमि की पुनः समृद्धि लौटाने के लिए अभिनव राजतन्त्र की स्थापना हुई और अभिनव राजतन्त्र के समर्थक एवं पोषक मन्त्री, दंडनायक, राजकर्मचारियों ने तथा विश्वासपात्र ठक्कुर, सामन्तों ने उस समय महामात्य वस्तुपाल का नेतृत्व स्वीकार करके गूर्जरभूमि में राजकता स्थापित करने में, साम्राज्य को समृद्ध बनाने में, विदेशी आक्रमणकारियों को परास्त करने में वस्तुतः जो अपना तन, मन, धन का प्राणप्रण से योग दिया, वे वस्तुतः धन्यवाद के ही नहीं प्रलयकाल तक के लिये स्मरणीय एवं प्रशंसनीय महान् विभूतियां हैं।[१]

मंत्री भ्राताओं का अमात्य-कार्य

सर्वप्रथम वस्तुपाल ने राज्य की शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। ऐसे जीर्णाधिकारी तथा ग्रामपति, जो कई वर्षों से राज्यकर भी राजकोप में नहीं भेज रहे थे तथा अपनी मनमानी कर प्रजा को अनेक प्रकार से तंग करके अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे वे या तो निकाल दिये गये या बड़ी २ सजायें देकर उनका दमन किया गया। इस प्रकार राज्यकोप में कई वर्षों का कर और दंड रूप में प्राप्त धन की अपार राशि एकत्रित हो गई और वह तुरन्त ही समृद्ध बन गया। दंडनायक तेजपाल ने इस धनराशि का उपयोग सैन्य की वृद्धि करने में, उसको समर्थ और सुसज्जित बनाने में किया। शीघ्र ही एक सबल और

महामात्य का प्राथमिक कार्य

१–'It was harrassed by enemies without and within. Gujrat had triumphed by the valour of Veer Dhawala, the loyalty of Lawan prasad, and the statesmanship of Vastupal and the wise Somesvara had succeeded beyond his dreams.'

Of them four, Vastupala was the greatest. Under his careful ministry Gujrat became rich.

G.G. Part III P. 217, 218

२–'ध्यात्वेति सचिवो ज्येष्ठो दुष्टं, जीर्णाधिकारिणम्। लब्धाधपञ्चितश्रीकं करोजपगणाधिपम् ॥१५॥
दण्डयित्वा बृहद्द्रम्मशतानामेकविंशतिम्। विनयं माहयामास कुशिष्यमिव सद्गुरुः ॥१६॥
तद्व्ययेनाकरोत्सारमटाध्वादिबलं कियत्।..॥१७॥
ततश्च सैन्यसामर्थ्यादिनमन्यापकारिणः। अमोचयदयं ग्राममामण्डलिचारसंचितम्' ॥१९॥

व० च० द्वि० प्र० पृ० १५

सुयोग्य गूर्जर-सैन्य तैयार हो गया। खम्भात की स्थिति इस समय बहुत ही खराब हो रही थी। वस्तुपाल खम्भात में शान्ति और व्यवस्था स्थापन करने के लिये तुरन्त ही रवाना हो गया[१]। तेजपाल और महाराणक वीर धवल सौराष्ट्र-विजय को निकले[२]। महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद धवल्लकपुर में ही रहकर यादवगिरि के राजा सिंगण और मालवपति देवपाल की गूर्जरभूमि पर आक्रमण करने की हलचल को देखने लगे।

सौराष्ट्र-विजय का उद्देश्य और अराजकता का अंत

सौराष्ट्र के सामन्त, ठक्कुर गूर्जरसम्राट् की इस विषम परिस्थिति का लाभ उठाकर स्वतन्त्र हो गये थे और लूट-पाट करते ग्रामीण जनों को दुःख देते तथा यात्रियों को अनेक यातनायें पहुंचाते थे। बड़े २ जैन तथा वैष्णव तीर्थ गुजरात में अधिकतर सौराष्ट्रप्रान्त में ही आये हुये हैं। शत्रुंजय, गिरनार, तारंग-गिरि आदि। इन तीर्थों के दर्शनार्थ यात्रियों का जाना-आना बंद-सा हो गया। धर्मिष्ठ एवं प्रजावत्सल मंत्रीभ्राताओं को यह एकदम असह्य हो उठा। सौराष्ट्र पर आक्रमण करने का एक विचार यह भी था कि सौराष्ट्र के सामन्त कितने ही धनी एवं बली क्यों नहीं हो गये हों, फिर भी गूर्जरसम्राट् की सेनाओं के आगे टिकने की न ही तो उनमें शक्ति ही थी और न ही इतना साहस। भीमदेव की निर्बलता और प्रमाद के कारण इनको मनमानी करने का अवसर मिल गया था। अतः वीरधवल और मन्त्रीभ्राताओं ने सौराष्ट्रविजय को प्रथम आवश्यक समझा और यह भी समझा कि इस विजय से धनी बने हुये सामन्त और ठक्कुरों के दमन से अनन्त धन हाथ लगेगा जो गूर्जरसैन्य के बढ़ाने और उसको सबल बनाने में बड़ा लाभदायक होगा।

दंडनायक तेजपाल ने प्रथम सौराष्ट्र के छोटे २ ठक्कुरों को कुचलना प्रारम्भ किया और उनसे लूट का धन तथा खिरणी (खंडणी) प्राप्त करता हुआ वह वर्धमानपुर पहुँचा। वर्धमानपुर के गोहिलवंशी ठक्कुर अत्यन्त बली एवं बढ़े हुये थे। तेजपाल की शिक्षित एवं समृद्ध सैन्य के समक्ष वे नहीं टिक सके और उन्होंने भी खिरणी में अनन्त धनराशि देकर वीरधवल को अपना स्वामी स्वीकार किया। यहाँ से तेजपाल ने वामनस्थली की ओर प्रयाण किया। मार्ग में आते हुये ग्रामों के ठक्कुरों को कुचलता हुआ तथा खिरणी प्राप्त करता हुआ वह वामनस्थली के समीप पहुँचा। वीरधवल एवं तेजपाल ने प्रथम एक दूत भेजकर वामनस्थली के सामन्त सांगण और चामुण्ड को, जो वीरधवल के साले थे समझाना चाहा; परन्तु प्रयत्न निष्फल गया। वीरधवल की राणी स्वयं जयतलदेवी जो सांगण एवं चामुण्ड की सहोदरा थीं, अपने भ्राताओं को समझाने के लिये गई; परन्तु उसको भी अपमानिता

१—*'न्यायं निवेशयन्नुर्व्यां निर्व्याजः स्वजनः सताम्। स्तम्भतीर्थं जगाम श्रीवस्तुपालो विलोकितुम् ॥३॥'*
कौ० कौ० सर्ग० ४ पृ० २८

'अथ श्री वस्तुपालः शुभेमुहूर्त्ते स्तम्भतीर्थं गतः।' प्र० वस्तुपालप्रबन्धः १२७। पृ० १०८

२—*'एवं कोशबलोपेतं, निर्माय नृपतिं निजम्। तीर्थानां सुवहं मार्गं, कर्तुकामोऽब्रवीदयम् ॥३४॥*
महाराज ! सुराष्ट्रासु, राष्ट्रेषु द्विष्टचेतसः। भूभृतः सन्ति पापिष्ठा, द्रव्यकोटिमदोद्धताः ॥३५॥'
व० च० द्वि० प्रस्ताव० पृ० १६

'इत्यादि ध्यात्वा वस्त्राणि परावृत्य श्रीवस्तुपालः सपरिजनो बुभुजे। गृहीतताम्बूलो राजकुलमगमत्। एवं दिनसप्तके गते, प्रथमं-तद्राज्यजीर्णाधिकारी एक एकविंशतिलक्षाणि बृहद्द्रम्माणां दण्डितः। पूर्वमभिनीतोऽभूत्। [तदनु] विनयं ग्राहितः। तैर्द्रव्यैः कियदपि हयपत्तिलक्षणं सारं सैन्यं कृतम्। तेजःपालेन पश्चात्सैन्यबलेन धवलकप्रतिबद्धग्रामपञ्चशतीग्रामण्यश्चिरसञ्चितं धनं हक्कयैव दंडिताः, जीर्णव्यापारिणो निश्चयीतिताः। एवं मिलितं प्रभूतं स्वम्। ततः स्वबलसैन्यसंग्रहपटुतेजसं श्रीवीरधवलं सहैवादाय सर्वत्र देशमध्यऽभ्रमन् मन्त्री। अदण्डयत् सर्वम्। ततोऽद्भुतर्द्धिवीरधवलस्तेजःपालेन जगदे-देव ! सुराष्ट्रराष्ट्रेऽत्यन्तधनिनःठक्कुरास्ते दण्ड्यन्ते। ततोऽचलदयम्।'
प्र० को० वस्तुपालप्रबन्ध पृ० १०३

होकर लौटना पड़ा। विवश होकर वीरधवल एवं तेजपाल को उनके साथ रण में उतरना पड़ा। सांगण एवं चामुण्ड दोनों भ्राता रण में मारे गये[१]। तेजपाल की सैन्य ने वामनस्थली में प्रवेश किया। दण्डनायक तेजपाल के हाथ सांगण और चामुण्ड के पूर्वजों द्वारा संचित अगणित तोला सुवर्ण, चाँदी, मौक्तिक, माणिक,रत्न लगे। चौदह सौ दिव्य एवं पाँच सहस्र अतिवेगवान घोड़े भी प्राप्त हुये[२]। उन्होंने सांगण के पुत्र को वामनस्थली का राजा बनाया और प्रति वर्ष खिरणी भेजने का उससे प्रतिबंध स्वीकृत कराया। वामनस्थली में हेमकुम्भांकित चैत्य विनिर्मित करवाया तथा मन्त्री तेजपाल ने भगवान् महावीर की मूर्त्ति उस चैत्य में प्रतिष्ठित की[३]। वीरधवल और तेजपाल ने गिरनारतीर्थ के दर्शन करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर धवल्लकपुर जाने के लिये गिरनार और द्वारिका होकर जाने का निश्चय किया[४]। मार्ग में वाजा, नगजेन्द्र, चूड़ासमा, वालाक आदि स्थानों के ठक्करों से खंडणी[५] प्राप्त की, गिरनारतीर्थ के दर्शन किये, भगवान् नेमिनाथ एवं भुवनेश्वर की प्रतिमाओं का पूजन किया और व्यय के निमित्त एक ग्राम भेंट किया। इस प्रकार विजय और तीर्थ-दर्शनानन्द का लाभ प्राप्त करते हुये दोनों राजा और मन्त्री धवल्लकपुर लौट आये। धवल्लकपुर में इनका प्रवेश भारी महोत्सव के साथ हुआ और प्रतिदिन उत्सव-महोत्सव होने लगे।

सौराष्ट्र की विजय-यात्रा में वीरधवल और तेजपाल को इतना धन-द्रव्य प्राप्त हुआ कि धवल्लकपुर का राज्यकोष आशातीत समृद्ध हो गया, सैन्य अगणित एवं सज्ज हो गया। सौराष्ट्र में सर्वत्र शान्ति प्रसारित होगई।

'अथ वर्धमानपुर-गोहिलवाट्यादिप्रभून् दण्डयन्तौ प्रभु-मन्त्रिणौ वामनस्थली आगताम्''''''जयतलदेवी मध्ये प्राहैषीत्'।'''''''
भगिनीवचः श्रुत्वा मदाध्मातौ प्रोचतुः,'''''''''''मा स्म चिन्तां कृथाः। अमुं त्वत्पतिं हत्वापि ते चारु गृहान्तरं करिष्यावः'।
प्र० को० व० प्र० १२२) पृ० १०३-१०४

रासमाला (गुजराती) भाग २ पृ० ४३१
'महाराज! सुराष्ट्रासु, राष्ट्रेषु द्विष्टचेतसः। गृहतः सन्ति पापिष्ठा, द्रव्यकोटिमदोद्धताः' ॥३५॥
'मानेन वर्धमानाङ्कं, वर्धमानपुराधिपम्। गोहिलावलिभूपांश्च, राजान्वयभुवस्तथा' ॥३८॥
'बलेन करदीकृत्य, मोचयित्वा महद्धनम्। जगाम वामनस्थल्यां, कर्षन् शल्यानि शोभितः' ॥३९॥
व० च० द्वि० प्र० पृ० १६
'मा स्म चिन्तां कृथा भद्रे, हत्वामुं त्वत्पतिं युधि। करिष्यावस्तव प्रौढं, नव्यं भव्यं गृहान्तरम्' ॥६९॥
व० च० द्वि० प्र० पृ० १७
रासमाला (गुजराती) भा० २ पृ० ४३३
१—'सबन्धुं साङ्गणं हत्वा''''''''''''॥१५॥
२—''''''''''''दशकोटिमितं हेम, प्रेमभिन्नृपतिर्ललौ' ॥२२॥
'पूर्वजैः सञ्चितानेका, मणिमाणिक्यमण्डलीः। दिव्यान्यस्त्राणि, स्थूलमुक्ताफलावलिः' ॥२३॥
'चतुर्दशशतान्युच्चैः श्रवःसोदरतेजसाम्। तथा पञ्चसहस्राणां, सामान्यानां च वाजिनाम्' ॥२४॥
३—'चैत्यं तस्मिन् विनिर्माय, हेमकुंभाङ्कितं नरम्। बिंबं वीरजिनेन्द्रस्यातिष्ठिपत्सचिवः पुनः' ॥२६॥
४—'तदासन्नतम श्रुत्वा, विश्वत्रितयविश्रुतम्। गिरनारमहातीर्थं, भवकोटिरजोऽपहम्' ॥२७॥
'''स ययौ मन्त्रिणा समम् ॥२८॥
५—'ततः श्री नेमिमभ्यर्च्य, भक्तितो भुवनेश्वरम्''॥४०॥
'ग्राममेकं ददौ दाये, देवपूजाकृते कृती। अगाच्च मंत्रिणा सार्धं, नृदेवो देवपत्तनम्' ॥४१॥
'कुर्वन् मानगजेन्द्रादीन्, भूमिपालान्निरंकुशान्। स्वरय देयकरान् प्रापत्, कौतुकी द्वीपपत्तने' ॥४२॥
व० च० द्वि० प्र० पृ० १८-१९

लूटपाट बंद हो गई और यात्रीजन सुखपूर्वक यात्रायें करने लगे। इस विजययात्रा से वीरधवल की ख्याति और यश तो बढ़ा ही, परन्तु सर्वत्र गुजरात के लुटेरे, ठक्कुर एवं निरंकुश हुये सामन्तों पर मन्त्रीभ्राताओं की भी धाक बैठ गई और शान्ति-स्थापना का कार्य अत्यन्त सरल हो गया था यह कह दिया जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं कि अतिरिक्त दो-चार सामन्तों के राज्यों के सर्वत्र गूर्जर-साम्राज्य में इस विजययात्रा के अन्त के साथ लूट-पाट और अत्याचार का एक प्रकार से अन्त हो गया। सर्वत्र उत्सव, महोत्सव होने लगे।

खम्भात के शासक के रूप में महामात्य वस्तुपाल और लाट के राजा शंख के साथ वस्तुपाल का युद्ध तथा खंभात में महामात्य के अनेक सार्वजनिक सर्वहितकारी कार्य

शान्ति एवं शासन-व्यवस्था स्थापित करके, वीरधवल एवं तेजपाल की सौराष्ट्र के लिये विजययात्रा का समृद्ध एवं सबल प्रबन्ध करके, मण्डलेश्वर लावण्यप्रसाद को धवल्लकपुर-राज्य में रहने की सम्मति देकर तथा मालवनरेश देवपाल और यादवगिरि के राजा सिंघण के निकट भविष्य में गूर्जरभूमि पर होने वाले आक्रमणों की तैयारी को विफल करने का अपने अतिकुशल एवं विश्वासपात्र गुप्तचरों को कार्य सम्भला कर, डाक का अत्यन्त सुन्दर प्रबन्ध कर महामात्य वस्तुपाल वि० सं० १२७७ (सन् १२२०) के प्रारम्भ में खम्भात का शासन सम्भालने के लिये रवाना हुआ। खम्भात पर राणक वीरधवल का अधिकार हुये अधिक समय नहीं हुआ था। जब लाट का राजा शंख जिसको संग्रामसिंह और सिंधुराजभू भी कहते हैं[१], यादवगिरि के राजा सिंघण से परास्त होकर यादवगिरि की कारा में बंद था, राणक वीरधवल ने इस अवसर का लाभ उठाकर खम्भात पर आक्रमण करके उसको विजय कर लिया था। वैसे भी खम्भात सदा से गूर्जरसम्राटों के अधिकार में ही रहा है, परन्तु भीमदेव द्वि० की निर्बलता के कारण लाट के शासकों ने खम्भात पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। महामात्य वस्तुपाल का खम्भात नगर में प्रवेश प्रजा ने बड़े धूमधाम से करवाया[२]। लाट के शासकों के कुछ हिमायती अब भी खम्भात में उपस्थित थे, नौवित्तक सदीक उनमें प्रमुख था। शंख भी यादवगिरि के सिंघण की कारागार से मुक्त होकर लाट में आ चुका था[३]। नौवित्तक सदीक अति धनी एवं ऐश्वर्य्यशाली था। वह शंख का परम मित्र था[४]। उसके यहाँ नौकर, चाकर अश्वारोही भारी संख्या में रहते थे। दूर २ देशों में जहाजों द्वारा वह व्यापार

१–'ख्यातः संग्रामसिंहो वा शङ्खो वा सिंधूराजभूः' ॥१३६॥ H .M .M. app. III P. 86. (सु० कु० क०)

२–'स्तंभतीर्थं जगाम श्रीवस्तुपालो विलोकितुम्' ॥३॥ की० कौ० स० ४ पृ० २८

की० कौ० सर्ग० ४ श्लोक १० से ४१ में पुर-प्रवेशोत्सव का वर्णन भी अच्छे रूप से दिया गया है।

३–But he acquired influence over the Yadava king; a treaty was signed between the two and Devpala, and Sankha was restored to his kingdom. G. G. Part III P. 214

४–'तेन (शंखेन) भाणितं मंत्रिणे मंत्रिन्! मदीयमेकं नौवित्तकं न सहसे। मदीयं मित्रमसौ ज्ञेयः।

प्र० को० व० प्र० १२७) पृ० १०८–१०६

करता था। सदीक महाधूर्त एवं कुटिलप्रकृति था। खम्भात की समस्त जनता के दुःख और कष्ट का एकमात्र कारण सदीक था। चतुर एवं नीतिज्ञ महामात्य वस्तुपाल ने सदीक को छेड़ने से प्रथम ठीक यही समझा कि खम्भात की जनता को प्रथम आकृष्ट किया जाय। अत्याचारी राजकर्मचारियों को दण्ड दिया, साधु एवं सज्जनों को दुःख देने वाले दुष्टों का दमन किया, व्यभिचारियों को कड़ी यातनाएँ दीं, वेश्याओं को अपमानित कर वेश्यापन का अन्त किया। महामात्य के इन कार्यों से सन्त एवं सज्जन सन्तुष्ट होकर उसका गुणगान करने लगे, दुष्ट, लम्पट एवं चोर सब छिप गये। व्यापारीजन अन्य देशों से जब लौट कर आते थे तथा भारतवर्ष से अन्य देशों में व्यापारार्थ जाते थे, अपने साथ दास क्रीत करके लाते और ले जाते थे, महामात्य ने इस अमानुषिक दासक्रय-विक्रयता का भी अन्त कर दिया। चारों वर्ण एवं सर्वधर्मानुयायी के यहाँ तक की मुसलमान तक महामात्य के गुणों की प्रशंसा करने लगे। कुछ दिनों में ही खम्भात कुछ का कुछ हो गया। महामात्य ने खुले हाथ दान दिया। नंगों, बुभुक्षितों को वस्त्र-अन्न दिया। सर्वत्र सुख और शान्ति प्रसारित हो गई। अत्याचार, लूट का अन्त हो गया। महामात्य ने अब सदीक से जलमण्डपिका एवं स्थलमण्डपिका कर माँगे। अभिमानी सदीक ने जब देने से अस्वीकार किया तो महामात्य ने उसके घर को घेर लिया[१]। इस विग्रह में सदीक के कुछ आदमी मारे गये। महामात्य के हाथ सदीक की अनन्त धनराशि लगी, जिसमें अगणित मौक्तिक, माणिक, हीरे, पन्ने एवं अपार सुवर्ण, चाँदी थी। सदीक भाग कर लाट पहुँचा और अपने मित्र लाटनरेश शंख को खम्भात पर आक्रमण करके उसके हुये अपमान का बदला लेने की प्रार्थना की। शंख जलमार्ग से चढ़कर आया। शंख के साथ में दो सहस्र अश्वारोही और पाँच सहस्र पददल सैनिक थे[२]।

उधर वस्तुपाल भी तैयार था। वस्तुपाल की सैन्य में केवल ५० पच्चास अश्वारोही और अढ़ाइ सौ पददल सैनिक थे[३]। वस्तुपाल के ये रणबाँकुरे सैनिक समस्त दिनभर समुद्रतट के उस भाग पर जो शंख के सैनिकों से भरे जहाजों के ठीक दृष्टि-पथ में था अनेक बार आवागमन करते रहे। सैनिकों के पुनः २ आवागमन से धूल आकाश और दिशाओं में इतनी घनी छा गई कि शत्रु को यह पता नहीं लग सका कि वस्तुपाल के पास कितना सैन्य है। शत्रु ने यही समझा कि वस्तुपाल के पास अपार सैन्य है। अतिरिक्त इसके वस्तुपाल ने इस अवसर पर एक चाल और चली थी। वह यह थी कि युद्ध किसी भी प्रकार दिन के पिछले प्रहर में प्रारम्भ हो और ऐसा ही हुआ। वस्तुपाल के सैनिकों ने शंख की सैन्य को समुद्रतट पर अवतरित होने नहीं दिया। दोनों में भीषण रण प्रारम्भ हुआ।

१–पु० प्र० सं० प० ते० प्र० १४६) पृ० ५६।

२–'स जलमार्गेणाश्वसहस्र २, मनुष्यसहस्र ५ समानीय समुद्रतटे समुत्तीर्णः।' प्र०चि० कु० प्र० १८६) पृ० १०२

[वस्तुपाल और शंख के युद्ध का वर्णन समकालीन एवं कुछ वर्षों के पश्चात् हुए कवि एवं ग्रंथकारों के ग्रंथों, प्रशस्तियों में पूरा-पूरा परस्पर मिलता नहीं है। शंख को वस्तुपाल ने दो युद्ध में पराजित किया था और लवणप्रसाद ने शंख के साथ संधि द्वितीय युद्ध की समाप्ति पर की थी। कुछ ग्रंथों में दोनों युद्धों का वर्णन मिलाकर एक ही युद्ध की घटना बना दी है। सोमेश्वर जैसे महाकवि ने भी एक ही युद्ध के वर्णन में दोनों का वर्णन मिला दिया है।]

३–'मंत्री अश्ववार ५० मनुष्यशतद्वयेन बहिर्निर्गतः।' पु० प्र० सं० प० ते० प्र० १४६) पृ० ५६

संध्या का समय आया हुआ जानकर वस्तुपाल के कुछ सैनिक एवं नागरिक लोग अपने दोनों हाथों में दो-दो जलती हुई मशालें लेकर कोलाहल मचाते हुए तथा जय-सोमनाथ की बोलते हुये भयंकर वेग से नगर में से दौड़ते हुये बाहर निकले। बस शंख की सैन्य का धैर्य छूट गया। वैसे शंख के सैनिकों में वस्तुपाल की सैन्य अपार है का डर तो छाया हुआ था ही, यह कौतुक देखकर वे भाग खड़े हुए। शंख भी अपने प्राण लेकर भागा। शंख की भागती हुई सैन्य का वस्तुपाल के सैनिकों ने पीछा किया। जहाजों पर गोले बर्षाये। वस्तुपाल की यह जीत एक अद्भुत ढंग की थी। शंख हारकर तो लौटा, परन्तु खम्भात विजय करने की उसकी अभिलाषा एवं अपमान का प्रतिशोध लेने की इच्छा तीव्रतर हो उठी। द्वितीय युद्ध की तैयारी करने लगा*। इधर वस्तुपाल ने अत्याचारी एवं अन्यायी राजकर्मचारियों को दण्डित करके तथा जीर्ण व्यापारियों से जलमण्डपिका एवं स्थलमण्डपिका-करों को उद्‌ग्रहीत कर अनन्त धन एकत्रित किया, जिससे राजकोष अति समृद्ध हो गया और वह सैन्य को समृद्ध और सशक्त बना सका। इस धन से उसने अनेक सुकृत्य के कार्य करने प्रारम्भ कर दिये। स्थान स्थान पर कुऐं, वापिकायें खुदवाईं, प्रपायें लगवाईं। चारों वर्णों के लिये ठहरने योग्य धर्मशालायें विनिर्मित करवाईं। अनेक जैन, शैव एवं वैष्णव मन्दिर तथा मस्जिदें बनवाईं। जैन यतियों के लिये उपाश्रय, पौषधशालायें तथा संन्यासियों के लिये मठ, लेखकों के लिये लेखनशालायें बनवाईं। खम्भात में ब्रह्मपुरी नाम की एक बसती बसाई तथा अनेक ब्राह्मणों को भूमि दान दी। श्री लक्ष्मीजी और वैद्यनाथ-महादेव के अति सुन्दर विशाल मन्दिर बनवाये। भट्टादित्य-मन्दिर में प्रतिमा की उत्तान-पीठिका और मुकुट (स्वर्ण) और भीमेश्वर-मन्दिर के शिखर पर स्वर्णकलश और ध्वजादण्ड करवाये। श्री सालिग-मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार में भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया। इस प्रकार महामात्य वस्तुपाल ने सर्व धर्मों एवं सर्व वर्ण तथा ज्ञातियों के धर्मों का मान किया। उनसे अपना निकट सम्पर्क स्थापित किया। दीनों, अनाथों, हीनों एवं निर्धनों के लिये भोजनशालायें स्थापित कीं, जहाँ उनको भोजन के अतिरिक्त वस्त्र और विश्राम भी मिलते थे। लेखकों एवं कवियों के लिये पोषण की अति सुन्दर व्यवस्थायें कीं। कुछ ही समय में खम्भात अति समृद्ध नगर गिना जाने लगा। पत्तन एवं धवल्लकपुर से उसकी समता की जाने लगी। खम्भात का व्यापार अति समुन्नत हो गया। खम्भात की शोभा भी कई गुणी हो गई, क्योंकि महामात्य ने अनेक सुन्दर बगीचे, बाग भी लगवाये थे। महामात्य वस्तुपाल ने सर्व वर्ण एवं ज्ञातियों को अपने दिव्य गुणों से मोहित कर लिया और वे पत्तन के सम्राटों के लिए प्राणप्रण से सेवायें करने को तैयार हो गये। इधर खम्भात में ये सुकृत के कार्य किये, उधर धवल्लकपुर में भी उसने खम्भात में प्राप्त हुए अनन्त धन का समुचित भाग भेजकर सैन्य की वृद्धि करने एवं समृद्ध बनाने का कार्य पूर्ण शक्ति से प्रारम्भ करवाया। शंख यद्यपि हारकर तो अवश्य लौटा था, परन्तु उसकी खम्भात जीत लेने की महत्त्वाकांक्षा का अन्त नहीं हो पाया था। अतः खम्भात में भी वस्तुपाल ने अपने सैन्य को अति बढ़ाया और समृद्ध किया।

---

*Sankha suffered defeat. But he returned to Lata only to bide his time. Within a few months a confederate force of the Yadava Singhana, Devapala of Malwa and Sankha was marching on Cambay.
G. G. part III; P. 217

:: की० कौ० सर्ग ४ श्लोक १० से ४१

दंडनायक तेजपाल और राणक वीरधवल ज्योंहि सौराष्ट्र-विजय करके लौटे कि उन्होंने गोध्रा के निरंकुश राजा घोघुल को अधीनता स्वीकार करने के लिए दूत भेजकर कहलाया। घोघुल ने प्रत्युत्तर में अपना एक दूत वीरधवल की राजसभा में भेजा। उस समय वस्तुपाल भी धवलकपुर में ही आया हुआ था। घोघुल के दूत ने राजसभा में एक कंचुकी, एक साड़ी और कज्जल की एक डिब्बिया लाकर वीरधवल के समक्ष रक्खी[1]। ठक्कुरों, सामन्तों, मन्त्रीगण घोघुल की इस गर्वपूर्ण धृष्टता पर दाँत काटने लगे। घोघुल शुद्रहृदय तो भले ही था, लेकिन था बड़ा बलवान्। उसके पराक्रमों की कहानी गुजरात में घर-घर कही जाती थी। ऐसे भयंकर शत्रु से लोहा लेने के लिये प्रथम कोई तैयार नहीं हुआ। इसका एक कारण यह भी था कि अभी तक सैन्य इतना समृद्ध और योग्य भी नहीं बन पाया था कि जिसके बल पर ऐसे भयंकर शत्रु से युद्ध किया जाय। निदान दंडनायक तेजपाल ने घोघुल को जीवित पकड़ लाने की उठकर प्रतिज्ञा ली और अपने चुने हुये वीरों को लेकर गोध्रा के प्रति चला। घोघुल यद्यपि अत्याचारी था; परन्तु था गौ और ब्राह्मणों का अनन्य भक्त। तेजपाल जैसा अजय योद्धा था, वैसा बड़ा बुद्धिमान् भी था। उसने एक चाल चली। दंडनायक तेजपाल ने गोध्रा की समीपवर्त्ती भूमि में पहुँच कर अपने कुछ सैनिकों को तो इधर-उधर छिपा दिया और कुछ साथ लेकर गोध्रा नगर के समीप पहुँचा। संध्या का समय था। गोपालकगण गौओं को जंगल में से नगर की ओर ले जा रहे थे। तेजपाल और उसके सैनिकों ने गोध्रा के गोपालकों को घेर लिया और उनकी गौओं को छीन कर हाँक ले चले। घोघुल ने जब यह सुना तो एक दम आगबबूला हो गया और चट घोड़े पर चढ़ कर लूटेरों के पीछे भागा। उधर तेजपाल और उसके सैनिक गौओं को लेकर उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ तेजपाल ने अपने सैनिक छिपा रक्खे थे। घोघुल भी पीछा करता हुआ वहाँ पहुँच गया। घोघुल को तेजपाल के छिपे हुये सैनिकों ने चारों ओर से निकल कर घेर लिया तथा घोघुल के साथ ही जो कुछ सैनिक चढ़कर आये थे, उनको तेजपाल के सैनिकों ने प्रथम मार गिराया। अन्त में घोघुल भी भयंकर रण करता हुआ पकड़ा गया। तेजपाल ने गौओं को तो छोड़ दिया और घोघुल को कैद कर और वे ही स्त्री के कपड़े पहनाकर जो उसने वीरधवल के लिये भेजे थे धवलकपुर की ओर ले चला। धवलकपुर पहुँच कर घोघुल ने आत्म-हत्या कर ली। इस प्रकार इस भयंकर शत्रु का भी दंडनायक तेजपाल के हाथों अन्त हुआ[2]।

दंडनायक तेजपाल के हाथों गोध्रापति घोघुल की पराजय

वि० सं० १२७७ में लाटनरेश शंख, देवगिरिनरेश सिंघण एवं मालवनरेश में शंख की यादवगिरि की कारागार से मुक्ति के समय सन्धि हो चुकी थी कि खम्भात पर जब लाटनरेश शंख आक्रमण करे, तब एक ओर से मालवनरेश और दूसरी ओर से यादवनरेश भी आक्रमण करें और इस प्रकार लाटनरेश को खम्भात को पुनः प्राप्त करने में दोनों मित्रनरेश सहायता करें। तदनुसार उत्तर और पूर्व से मालवनरेश की चतुरंगिनी सैन्य ने एवं दक्षिणपूर्व से यादवनरेश की अजय सैन्य ने सं० १२७७ के अन्तिम महिनों में लाटनरेश को खम्भात के आक्रमण में सहायता देने के लिए प्रस्थान किया। गूर्जरभूमि पर इस आई हुई महाविपत्ति को देखकर तथा इस असमय का लाभ उठाने की दृष्टि से मरुदेश के चार सामन्त राजा, जिनकी

मालवा, देवगिरि और लाट के नरेशों पर संघ और लाटनरेश शंख की पूर्ण पराजय

१-प्र० को० व० प्र० (१२६) पृ० १०७
२-व० च० प्र० ०३ पृ० २४ श्लोक ६८ से पृ० २६ श्लोक ३५ तक

लावण्यप्रसाद से शत्रुता थी और जो बाघेलाशाखा की उन्नति नहीं चाहते थे, जिनमें चन्द्रावती के परमार, नाडौल के चौहान, गौडवाड़ का चौहान राजा धांधल तथा जालोर के राजा थे। ये लावण्यप्रसाद पर एक ओर से आक्रमण करने को रवाना हुये। गोध्रानरेश घोघुल भी इसी प्रतीक्षा में था कि सिंघण और मालवपति के आक्रमणों के समय वह भी वीरधवल पर एक ओर से आक्रमण करेगा; लेकिन वह तो कुछ ही समय पूर्व दंडनायक तेजपाल के हाथों कैद होकर मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। गूर्जरनिवासी मातृभूमि पर चारों ओर से होते हुए आक्रमण देखकर घबड़ा उठे। सर्वत्र गुजरात में खलबली मच गई। यादवनरेश सिंघण के नाममात्र से गूर्जरनिवासी लतावत काँपते थे, क्योंकि सिंघण शत्रुजनता के साथ दुर्व्यवहार करने में सर्वत्र विश्रुत था। दूरदर्शी, महान् नीतिज्ञ वस्तुपाल से परन्तु यह सब कुछ अज्ञात नहीं था। मित्र राजाओं के सम्मिलित रूप से होने वाले आक्रमण को विफल करने के लिये उसने बहुत पहिले से ही सफल प्रयत्न करने आरम्भ कर दिये थे। आप स्वयं खम्भात में रहा। मरुधरदेश से आने वाले चार राजाओं की प्रगति रोकने के लिए राणक वीरधवल को प्रबल सैन्य के साथ जाने की अनुमति दी। महामण्डलेश्वर राणक लावण्यप्रसाद एवं तेजपाल को यादवगिरि के नरेश सिंघण को तापती के तट से आगे बढ़ने से रोकने के लिए अति बलशाली सैन्य को साथ लेकर जाने को कहा।

लाटनरेश शंख ने[१-२] भरोंच (भृगुकच्छ) से महामात्य वस्तुपाल के पास अपना एक दूत भेजा और यह सन्देश कहलाया कि अगर महामात्य खम्भात शंख को दे देगा तो शंख भी महामात्य को ही खम्भात का मुख्याधिकारी बनाये रक्खेगा। ऐसा करने में ही महामात्य का हित है, कारण कि राणक वीरधवल चारों ओर से दुश्मनों से घिर चुका है और उसकी जय होना असम्भव है। ऐसी स्थिति में महामात्य को अपने प्राण संकट में नहीं डालना चाहिए। वैसे महामात्य ज्ञाति से महाजन हैं और रण में उतरना वैश्यों का कर्म भी नहीं है कि जिससे लज्जा आवे। महामात्य वस्तुपाल ने यह वीरोचित उत्तर देकर दूत को विदा किया कि मैं रणक्षेत्र रूपी हाट पर बैठकर शत्रुओं के मस्तिष्क रूपी द्रव्य को तलवार रूपी तराजू में तोलकर स्वर्गगति रूपी मूल्य देकर मोल लेने वाला योद्धा रूपी वणिया हूँ।[३] महामात्य का यह उत्तर सुनकर शंख आगबबूला हो गया और दो सहस्र अश्वारोही एवं दश सहस्र पददल सैनिक लेकर खम्भात के समुद्र तट के सन्निकट आ पहुँचा[४]। उधर महामात्य वस्तुपाल भी सर्व प्रकार से तैयार था। धवल्लकपुर से भी पर्याप्त सैन्य आ चुका था और खम्भात के सैन्य को भी पर्याप्त बढ़ा लिया था।[५]

की० कौ० सर्ग ४ श्लोक ४२, ४७, ५०, ५५, ५७

१-'अथ वीरधवलः सबलोऽपि त्वत्प्रभु सुबहुभिर्मरुभूपैः। वेष्ठितः खरममरीचिवार्द्देहश्यतेऽपि न जयः क नु तस्य' ॥२४॥

२-'एकतस्त्रिदशमूर्त्तिभिरर्णोराजसूनुभिरुपेत्य विलग्नैः। मालवक्षितिधरं बत मध्ये कृत्य कृत्यविदुषाऽन्यत एव' ॥२६॥

'श्रीभटेन बलिनैकतमेनोल्लोडिताद्यदिह विग्रहवार्द्धेः। कालकूटमुदगाद्यदुसैन्यं तंन्यवर्त्तयदयं ननु भीमः' ॥२०॥

३-'दूत रे! वणिगहं रणहट्टे विश्रुतोऽसितुलया कलयामि। मौलिभाण्डपटलानि रिपूणां स्वर्गवेतनमथो वितरामि' ॥४४॥

व० वि० सर्ग ५ पृ० २२-२३

४-अश्वसहस्र २, मनुष्यसहस्र १० दत्तकेन समाययौ।

५-धवलक्काद्भूरि सैन्यमानाय्याभ्यर्पेणायत्। प्र० को १२७) पृ० १०८ पु० प्र० सं० १४६) पृ० ५६

की० कौ०, सु०सं०, न० ना० न०,ह० म० म० आदि ग्रन्थों के समकालीन ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथों में समान घटना का अथवा छोटी-बड़ी घटनाओं का अलग-अलग या विस्तृत वर्णन नहीं दिया हैं।

इस संकट के समय गुप्तचरों ने अत्यन्त सराहनीय कार्य किया। मालवनरेश और सिंघण की बढ़ती हुई गति को गुप्तचरों ने भेदनीति चलाकर शिथिल कर दिया। फलतः वे निश्चित समय तक खम्भात तक पहुँचने में असफल रहे। परिणाम यह रहा कि लाटनरेश शंख को अकेला युद्ध में उतरना पड़ा। यद्यपि इस युद्ध में महामात्य वस्तुपाल के भुवनपाल, चीरम, चाचिगदेव, सोमसिंह, विजय, भीमसिंह, भुवनसिंह, विक्रमसिंह, अभ्युदयसिंह (हृदयसिंह), कुन्तसिंह जैसे महापराक्रमी वीर योद्धा वीरगति को प्राप्त हुये, परन्तु शंख का सैन्य गूर्जरसैन्यों की वीरता के समक्ष अधिक नहीं ठहर सका और भाग खड़ा हुआ।[१] महामात्य वस्तुपाल और शंख में चार दिन तक भयंकर रण हुआ और अन्त में शंख परास्त हुआ।[२] शंख अपने प्राण लेकर भाग गया। शंख को परास्त हुआ सुनकर मालवनरेश और सिंघण की सेनायें पुनः अपने २ राज्यों को लौट गईं।

महामण्डलेश्वर लावण्यप्रसाद वीरधवल की सहायतार्थ पहुँचा। मरुदेश के राजागणों ने जब शंख की पराजय, सिंघण एवं मालवनरेशों को लौटे हुये सुना तथा महामण्डलेश्वर लावण्यप्रसाद को भी वीरधवल की सहायतार्थ आया हुआ सुना तो वे संधि करने को तैयार हो गये। मण्डलेश्वर लावण्यप्रसाद ने उनसे संधि कर ली और उन्होंने गूर्जरसम्राटों के सामन्त बनकर रहना स्वीकार कर लिया। आगे चलकर ये चारों मरुदेश के राजा गूर्जरसम्राटों के प्रति स्वामीभक्त एवं असमय में प्राणों पर खेलकर सहायता करने वाले सिद्ध हुये। लावण्यप्रसाद मरुराजाओं से संधि कर खम्भात पहुँचा और पराजित हुये लाटनरेश शंख से सन्धि कर धवल्लकपुर में लौट आया। राणक वीरधवल और दण्डनायक तेजपाल उससे पूर्व धवलल्लकपुर में पहुँच चुके थे।

महामात्य वस्तुपाल भी अब खम्भात से धवल्लकपुर आने की तैयारी कर रहा था। सर्वत्र गूर्जरभूमि में ही नहीं, दूर-दूर तक अन्य प्रान्तों एवं राज्यों में वस्तुपाल की कुशल नीति एवं तेजपाल की वीरता की प्रसिद्धि फैल गई थी। एक वर्ष के अति अल्प समय में ही इन दोनों कुशल भ्राताओं ने गूर्जरसाम्राज्य में शान्ति स्थापित कर दी। बाह्य शत्रुओं का भय भी कुछ काल के लिये नष्ट हो गया। गूर्जरसैन्य को अजय एवं असंख्य बना दिया। गूर्जरसम्राट् भीमदेव द्वितीय की शोभा एक बार पुनः पूर्ववत् स्थापित हो गई। गूर्जरभूमि एक बार पुनः सुख और शान्ति का अनुभव करने लगी।

---

[१] की० कौ० सर्ग ५ श्लोक ४८ से ६६

'Vastupala and Tajahpala's son Lavanyasimha stood the ground. In the meantime Singhana and Devapala fell out and withdrew. Vastupala making prudence the better part of valour, entered into a treaty with Sankha.' G. G. Part III P. 217.

[२]-'एवं दिन ३, चतुर्थदिने प्रहरैक समये मन्त्रिणा पाश्चात्यस्थेन जानुना लत्तादानात् शङ्खः पातितः। तत्कलं शिरश्छेदमकरोत्'। पु० प्र० सं० १४६) पृ० ५६

व० वि० के कर्त्ता शंख का भागना तथा की० कौ० में सोमेश्वर महाकवि शंख के साथ संधि करने का वर्णन करते हैं। पु० प्र० सं० के इस निबंध के कर्त्ता ने शंख का शिरोच्छेद किया गया का वर्णन कर अतिशयोक्ति की है ऐसा प्रतीत होता है। सोमेश्वर तथा बालचन्द्र-सूरि महामात्य के समकालीन थे; अतः उनका कथन अधिक मान्य है।

'श्रीवस्तुपालसचिवादचिरात्प्रणष्टः शंखस्तथा पथि विशृङ्खलवाहवेगः।
तत्तुष्ठयातमयभङ्गुरचित्तवृत्तिः श्वासं यथा भृगुपुरे गत एव भेजे ॥१०६॥ व० वि० सर्ग० ६ पृ० २८

महामात्य खम्भात से रवाना हुआ। उसके साथ में अनन्त धनराशि से भरे ऊँट, घोड़े और शकट थे, जिनमें अपार सोना और चाँदी, असंख्य मौक्तिक, माणिक, हीरे, पन्ने थे। तेजतुरी नाम की एक स्वर्ण-धूल से भरी अनेक बैल-गाड़ियाँ थीं। यह धूल और अधिकांश धन नौवित्तिक सदीक के यहाँ से प्राप्त किया हुआ था। धवल्लकपुर के आबालवृद्ध नर और नारी तथा स्वयं राणक वीरधवल, महामण्डलेश्वर राणक लावण्यप्रसाद तथा दंडनायक तेजपाल, महाकवि राजगुरु सोमेश्वर तथा अन्य सर्व प्रतिष्ठित पुरुषों ने महामात्य का नगर-प्रवेश बड़ी धूमधाम और सजधज से करवाया। राणक वीरधवल एवं मण्डलेश्वर लावण्यप्रसाद ने अति प्रसन्न होकर महामात्य को पंचांगप्रसाद तथा तीन उपाधियाँ प्रदान कीं—सदीकवंशसंहारी, शंखमानविमर्दन, वराहावतार तथा स्वर्ण-धूल तेजतुरी और अन्य बहुमूल्य मौक्तिक, माणिक पारितोषिक रूप में प्रदान किये। शेष द्रव्य राज्यभण्डार में रक्खा गया।

धवलकपुर में महामात्य का प्रवेशोत्सव

धवल्लकपुर में कुछ दिनों तक ठहर कर महामात्य पुनः अपने वीरों सहित खम्भात पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने पहले वेलाकूलप्रदेश के (चंदर) राजाओं के शत्रुओं का दमन किया और शान्ति स्थापित कर वेलाकूलप्रदेश में गूर्जरसम्राट् की सत्ता स्थापित की। खंभात में गुरु नरचन्द्रसूरि के सदुपदेश से दान-शालायें स्थापित कीं। भृगुकच्छ में कैलाशपर्वत की समता करने वाले एक अति विशाल प्राचीन जिनमन्दिर में सुव्रतस्वामी की धातुप्रतिमा विराजमान की और मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। मन्दिर के द्वार को तोरण से मंडित करवाया, दो सत्रागारों से उसको युक्त किया, परिकोष्ट बनवाया और उसमें वापी, कूप और प्रपा करवाईं, बीस जिनेश्वरों की प्रतिमायें स्थापित कीं। अतिरिक्त इनके चार जिनमन्दिर और बनवाये, जिनमें शकुनिविहार-चैत्य अधिक प्रसिद्ध है। उनमें तीर्थङ्करों की धातु प्रतिमायें स्थापित कीं, देवकुलिकायें बनवाईं। उनको स्वर्ण-कलश एवं ध्वजादण्डों से सुशोभित किया। अपने पूर्वजों के अभिकल्याणार्थ नर्मदा नदी के तट (रेवापगातट) पर पाँच लाख, शुक्लतीर्थ पर दो लाख का दान-पुण्य किया। ब्राह्मण वेदपाठकों के लिए तथा अन्य जनों के लिये सत्रागार बनवाये। भृगुकच्छ में महामात्य ने कुल दो करोड़ रुपये धर्मार्थ व्यय किये। राज्य-व्यवस्था सुदृढ़ की और धवल्लकपुर लौट आया।

*खंभात को पुनर्गमन। वेलाकूलप्रदेश के शत्रुओं का दमन तथा खम्भात में अनेक धर्मकृत्यों का करना**

सिद्धाचलादितीर्थों की प्रथम संघ-यात्रा और महामात्य की अमूल्य तीर्थ-सेवायें

वि० सं० १२७७

एक दिन महामात्य वस्तुपाल प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर दर्पण के आगे खड़ा होकर वस्त्र धारण कर रहा था कि शिर में एक श्वेत बाल देखकर उसने लम्बी श्वांस खींची और विचारने लगा कि अभी तक न ही तो मैंने तीर्थयात्रायें ही की हैं और न ही भव-बन्धन को काटने वाला कोई प्रखर पुण्य ही किया है और यमराज का सन्देश तो यह आ पहुंचा है।[1] ऐसा सोचकर वह उपाश्रय

संघयात्रा का विचार

---

*प्र०को०व०प्र० १२७) पृ० १०६। पु०प्र०सं०व०तेo प्र० १४६) पृ० ५६। [1] व० च० प्र० ४ श्लोक ४५ से ७० पृ० ५८, ५६

में पहुँचा। साथ में दंडनायक तेजपाल भी था। दोनों भ्राता सविनय, सविधि, सादर गुरुवन्दन करके मलधारी गुरुनरचन्द्रसूरि के आगे बैठे और महामात्य वस्तुपाल ने अपने विचार प्रदर्शित किये कि भगवन्! ऐसा मार्ग बताइये कि जिससे मैं पुण्योपार्जन कर सद्गति प्राप्त कर सकूँ। श्रीमद् नरचन्द्रसूरि ने अपने व्याख्यान में सम्यक्त्व तथा सिद्धाचलजी की यात्रा का माहात्म्य समझाया। महामात्य वस्तुपाल एवं दंडनायक तेजपाल दोनों भ्राताओं ने बहु व्यय करके अपूर्व संघभक्ति की तथा सधार्मिक वात्सल्य एवं उद्यापन करवाया और सिद्धगिरि की संघयात्रा करने का संकल्प कर श्रीमद् नरचन्द्रसूरि गुरु से संघ के अधिनायक आचार्य बनने की प्रार्थना की। परन्तु नरचन्द्रसूरि ने यह कह कर अस्वीकार किया कि तुम्हारे मलधारीगच्छ के आचार्य मातृपक्ष से गुरु हैं और पितृपक्ष से गुरु नागेन्द्रगच्छ के आचार्य हैं। नागेन्द्रगच्छीय विजयसेनसूरि मरुप्रदेश में विचरण कर रहे हैं। उनको ही बुलाना चाहिए, ऐसा करना ही मर्यादासंगत है।

महामात्य वस्तुपाल ने यह प्रथम चतुर्विध संघयात्रा सं० १२७७ में निकाली। इस संघयात्रा के अधिनायक आचार्य कुलगुरु नागेन्द्रगच्छीय श्रीमद् विजयसेनसूरि अपने अनेक शिष्यों के साथ थे। अन्य कई विश्रुत आचार्य, साधु एवं साध्वी भी इस संघयात्रा में सम्मिलित हुये थे, जिनमें अति प्रसिद्ध आचार्य मलधारीगच्छीय नरचन्द्रसूरि, वायटगच्छीय जिनदत्तसूरि, संडेरकगच्छीय शान्तिसूरि, गल्लक-कुलीय वर्द्धमानसूरि थे। संघपति स्वयं वस्तुपाल था। दंडनायक तेजपाल साम्राज्य का संचालन करने के लिये धवल्लकपुर में ही रहा। लाट, खम्भात, पत्तन, कच्छ, मरुदेश, मेदपाट आदि अनेक प्रान्त, नगरों एवं प्रदेशों से आकर स्त्री-पुरुष इस संघ-यात्रा में सम्मिलित हुए थे।

---

१. 'रत्नदर्पणसंक्रान्तं..............................एकं पलितमालोक्य,..........................' ॥२,३॥
'इत्यालोच्य स्वयं चित्ते, संवेगरसपूरितः। धर्मस्योद्यमं सम्यग्, कर्तुकामो विशेषतः' ॥१४॥
'आगम्य धर्मशालायां, ततोऽसौ बन्धुभिः समम्। ववन्दे भक्तिरंगेण, नरचन्द्रगुरोः पदौ' ॥१५॥ व० च० प्र० ५ पृ० ६२
'श्रुत्वेत्थं सद्गुरोर्वाचः। सम्यक्त्वसुधामुचः,।..........वात्सल्यमुच्चैर्विदधे विधिज्ञः' ॥६५, ६८॥
व० च० प्र० ५ पृ० ६६
२. 'श्रीनागेन्द्रगणाधीशा, विजयसेनसूरयः कुलक्रमागताः सन्ति, गुरवो वो गुणोज्ज्वलाः' ॥४॥
'गुरवस्तव मंत्रीश मातृपक्षगताः पुनः। मलधारिगणाचार्यधुरंधरपुरस्कृताः' ॥५॥
'आहूय बहुमानेन ततस्तान्मुनिपुंगवान् ॥८॥' व० च० प्र० ६ पृ० ८०
३. '.........नरचन्द्रसूरयः प्राहुः.........वयं ते मातृपक्षे गुरवः, न पितृपक्षे। पितृपक्षे तु.........विजयसेनसूरयः.........पिलूआइदेशे (जिस देश में पीलू अधिक होते हैं, वह देश अर्थात् मरुप्रदेश) वर्तन्ते। ते वासनिक्षेपं कुर्वन्तु न वयम्'।
प्र० को० २४ व० प्र० १३६) पृ० ११३
'एकस्मिन्दिने गुरनुत्तरन्तं दिवो ददर्शाऽनिशयैः स्फुरन्तम्। मण्डलाधिपतिभिश्चतुर्भिरागासितं नृपनिदेशितैरिह' ॥२४॥
४. 'लाटगौडमरुडाहलावन्तिवङ्गविषयाः समन्ततः। तत्र संघपतयः समाययुरतोदधाविव समग्रसिन्धवः' ॥२५॥
'संघराट् वलभिवर्त्मनाथनीमण्डलेऽतिसुरमण्डलेश्वरः। उत्प्रयाणकमचीकरत् कृती संघलोकसुखदप्रयाणकः' ॥४२॥
'शत्रुञ्जयस्य वज्रस्वामिकृता दर्शितो (विमलगिरि) विजयसेनसूरिभिः' ॥४३॥ व० वि० सर्ग० १०
५. 'महामात्य! १२७६ वर्षे संवत्सरोऽतिनीतः (Ps तीर्णः)। समयवशेन वर्षं २८ श्रीशत्रुञ्जय-गिरिनारयोर्वर्त्म केनापि न वाहितम्। [Ps मन्त्रीन्द्र विना महडलौ यात्रेकं गन्तुः नापरः।] तत्र यात्रार्थं यतनीयमिति'। पृ० ५८
६. 'अथ चलितः सुशकुनैः संघः। मार्गे सततोत्राणमुदारम् श्रीवर्धमानपुरासन्नमावासितः। तदा ....पट्टुमनःशेः श्रीमान् वसनामा श्रावको वसति। तद्गेहे दक्षिणावर्तः शंखः पूज्यते'। प्र० को० पृ० ११४
'प्र०को' में वर्णित संघयात्रा 'व०च' में वर्णित संघयात्रा से वर्णित वस्तु में अधिक अंशों में मिलती है।
'अथ सं०१२७७ वर्षे सरस्वतीकण्ठाभरण-लघुभोजराज-महाकवि महामात्यश्रीवस्तुपालेन महायात्रा प्रारंभे।

चार मण्डलेश्वर राजा भी संघ की रक्षार्थ महाराणक वीरधवल की आज्ञा से इस संघ में सम्मिलित हुये थे। इस संघ-यात्रा का वैभव दर्शनीय था।

नागेन्द्रगच्छीय विजयसेनसूरि संघाधिष्ठाता थे। संघपति महामात्य वस्तुपाल था। महामात्य ने स्वविनिर्मित शत्रुंजयावतार नामक मन्दिर में संगीत, नृत्य करवाया और महापूजा करवाई, संघवात्सल्य किया। तत्पश्चात्

संघ का वैभव तथा उसका प्रयाण

शुभमुहूर्त में धवल्लकपुर से सङ्घ का प्रस्थान हुआ। सङ्घ-रचना इस प्रकार थी—

		महासामन्त	४,	वीर अश्वारोही	४००० (१०००),
रणवीर	३६०,	प्रसिद्ध हाथी	८,	हाथीदाँत के बने हुये रथ	२४,
तेज चलने वाली बैलगाड़ियाँ	१८००,	छत्रधारी संघपति	४,	श्रीकरण	१६००,
लाल साँढ़नियाँ	७००,	सहजगाड़ियाँ	१८००,	पालखियाँ	५००,
तपस्वीजन	१२०० (२२००),	दिगम्बर साधु	११०० (३००),	श्वेताम्बर साधु	२१००,
आचार्य	३३० (३३३,७००),	मागध	३००,	शिविरमन्दिर (तम्बुओं में जिनालय),	१०००
शिविरगृह	७०००,	सतोरण मन्दिर	७००,	लघुमन्दिर अगणित, कुहाड़ियाँ	५००,
कुदालियाँ	५००,	बैलगाड़ियाँ	४००० (५५००),	भट्ट	३३००,
जैनगायक	४५० (४८४),	श्रावकजन	७०००० (१०००००)		

संघ में साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, चारण, मागध, वंदीजन, अंगरक्षक, अश्वारोही आदि सर्वजनों की संख्या एक लक्ष के लगभग थी।

संघपति महामात्य वस्तुपाल ज्योंहि देवालय के प्रस्थान का शुभमुहूर्त करने लगा कि दाहिनी दिशा से दुर्गादेवी का स्वर सुनाई पड़ा। मरुप्रदेश के निवासी एक वयोवृद्ध ने बतलाया कि यह दुर्गा १२॥ हाथ ऊँची दीवार पर बैठकर स्वर कर रही है, जिसका अर्थ यह होता है कि महामात्य वस्तुपाल १२॥ संघयात्रायें अपने जीवन में

'अथ स मरुवृद्धो 'देवी भवतः सार्द्धत्रयोदशसंख्या यात्रा अभिहितवती। 'संघरक्षाधिकारिणश्चत्वारो महासामन्ता'।
प्र० चिं० च० प्र० (१८७) पृ० १००

'संवत्सरोऽस्ति मन्त्रीन्द्र, सप्ताश्वरवि (१२७७) संमित' ॥२६॥ प्र० ५ पृ० ७४
'............विजयसेनसूरयः। कुलक्रमागताः संति गुरवो वो गुणोज्ज्वलाः' ॥४॥ पृ० ८०
'तथा विधियतां तीर्थयात्रां पात्रार्थसाधनम्। भवद्भिर्निजसाम्राज्य-सौराज्यस्थितिसूचिनीं' ॥६३॥ प्र० ६ ० ८२
'सोमसिंहादयः प्रौढा-श्चत्वारस्तत्र भूभुजः। नियुक्ताः संघरक्षायै, सचिवाभ्यां सहाचलन्'। श्लोक ६ प्र० ६ पृ० ८३
'............क्रमेणप्रापतुर्वर्द्धमाननाममहापुरे' ॥४८॥ प्र० ६ पृ० ८४ व० च०
'............अस्ति रत्नाभिधः श्रेष्ठी............'॥५१॥ 'तस्यागारे............'॥५३॥ 'शंखोऽस्ति दक्षिणावर्त्तः............' ॥५४॥
व० च० प्र० ६ पृ० ८४

'एवं चलति देवालये दक्षिणदिग्भागे दुर्गा जाता। तत्रैको मारव......देव...... भवतामित्थं' ॥१२॥
'यात्रा भविष्यन्ति [Ps एषा प्रथमा तासां मध्ये'।] पु० प्र० सं० व० ते० प्र० पृ० ५६

रचनाशैली, कथावस्तु आदि कतिपय विषयों में कीर्त्तिकौमुदी, सुकृतसंकीर्त्तन, वसंतविलास महाकाव्य परस्पर अत्यधिक मिलते हैं। सर्गों के नाम तो तीनों में प्रायः क्रम से मिलते हुए हैं। शंखयुद्धवर्णन के पश्चात् तीनों काव्यों में यात्रावर्णन आता है और वह वर्णन भी एक ही संघयात्रा का प्रत्येक ग्रन्थ में है। तीनों ग्रन्थों में तो संघयात्रा का वर्णन मिलता हुआ है ही अतिरिक्त इसके

करेंगे। (प्रबन्धचिंतामणि के कर्ता १३॥ संघयात्रायें करने की बात कहते हैं) यह पूछने पर कि अर्व यात्रा से क्या अर्थ है, उसने बतलाने से अस्वीकार किया। महामात्य ने संघ के साथ आगे प्रयाण किया। संघ की शोभा अवर्णनीय थी। मार्ग में थोड़े २ अन्तर पर विश्राम, जलपान की व्यवस्था होती थी। पथ में आते हुये नगर, ग्राम, पुरों के निवासियों का प्रेम और श्रद्धापूर्ण सत्कार-संमान, धर्मोल्लास, पतित और अधर्मी पुरुषों को भी सज्जन बनाने वाला था। आगे आगे सतोरण देवालयों की स्वर्ण कलशावली और ध्वजादण्डपंक्ति, शृंगारित सुखासन, बैलगाड़ियाँ, सहस्रों सुसज्जित संघरक्षक अश्वारोहियों का दल, छत्रधारी संघपतिगण, सुन्दर रथों में बैठी हुई देव-बालायें जैसी मंगल गीत गाती हुईं स्त्रियें, शान्त, दान्त, उद्भट विद्वान् आचार्यगण, परमतपस्वी साधुगण, गायक, नर्तक, मागध, चारण, वंदीजनों का कीर्त्तिकलरव, वाद्यंत्रियों का मधुररव-यह सर्व अद्भुत प्रदर्शन महामात्य वस्तुपाल की महान् धर्मभावनाओं का मूर्त्तरूप था। प्रातः और सायंकाल गुरुवंदन, देवदर्शन, धर्मोपदेश के कार्य तथा सर्वत्र संघ में स्थल-स्थल पर दान-पुण्य के कृत्य होते थे। रात्रिभोजन कभी भी नहीं होता था। इस प्रकार मार्ग में पड़ने वाले सात क्षेत्रों का उद्धार करता हुआ, नगर, ग्रामों के मन्दिरों में पूजा, नवप्रतिमायें प्रतिष्ठित करता हुआ, ध्वजा-दण्ड-कलशादि चढ़ाता हुआ तथा विविध प्रकार के अन्य सुकृत करता हुआ यह चतुर्विध संघ वल्लभीपुर पहुँचा। वल्लभीपुर में महाधनी एवं पुण्यात्मा श्रावक रत्नश्रेष्ठि ने संघ का अति स्वागत किया और प्रीतिभोज दिया तथा संघपति महामात्य वस्तुपाल को दक्षिणावर्त्त नामक सर्वसिद्धिकारक शंख अर्पित किया। महामात्य ने अति संकोच के साथ यह कल्पवृक्ष समान मनःकामना पूर्ण करने वाला शंख स्वीकृत किया। संघ यहाँ से आगे बढ़ा और शनैः शनैः पादलिप्तपुर में पहुंचा और उस क्षेत्र में जहाँ आज महामात्य वस्तुपाल

उपरोक्त ग्रन्थों में आये हुये वर्णनों में भी प्रमुख विषय जैसे पुरुषों के नाम, समय, विशिष्ठ उल्लेख, कार्य आदि परस्पर मिलते हुए होने से यह मानना अधिक समीचीन होगा कि इन ग्रन्थों में भी वस्तुपाल की प्रथम संघयात्रा का ही वर्णन है, जो उसने सं० १२७७ में की थी।

'अथानुचेलुर्नरचन्द्रसूरयो लसत्त्रसस्तोमविलोकनच्छलात्॥१०॥
अथाचलन् वायटगच्छवत्सलाः कलास्पदं श्रीजिनदत्तसूरयः॥११॥
अचालि सण्डेरकगच्छसूरिभिः प्रशान्तसूरैरथ शांतिसूरिभिः॥१२॥
स वर्द्धमानाभिधसूरिशेखरस्ततोऽचलद्गच्छकलोकभास्करः' ॥१३॥ सु० सं० स० ५ पृ० ३८, ३९

'श्रीवीरधवलतेजःपालाभिधसचिवमध्यगः सचिवः। त्रिपुरपरीतिस्थापितहर इव हरति स्म तत्र मनः' ॥११॥

सु० सं० स० १ पृ० ८५

उक्त श्लोक से सिद्ध होता है कि महामात्य वस्तुपाल का शुभागमन-उत्सव राणक वीरधवल तथा तेजपाल ने सोत्साह किया था अर्थात् तेजपाल इस संघयात्रा में नहीं जाकर धवलकपुर में ही रहा था।

'वस्तुपाल सचिवेन्द्रशासनं तेजःपालसचिवः समाददे' ॥१९॥
'तीर्थवन्दनकृते ततः कृती तेजःपालमयमात्मनोऽनुजम्। तं च वीरधवलं क्षितीन्द्रमापृच्छ्य संघपतिरुच्चचाल सः' ॥२१॥

व० वि० स० १० पृ० ५०-५१

इतना सिद्ध कर लेने पर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उक्त ग्रन्थ प्रथम संघयात्रा से कुछ या अधिक वर्षों पश्चात् लिखे गये थे और पश्चात्वर्त्ती संघयात्राओं का वर्णन कुछ अंशों में इस प्रथम संघयात्रा के वर्णन में यत्र-तत्र समाविष्ट हो गया है, जिसको अलग-अलग संघयात्राओं के अनुसार अलग करना महा कठिन कर्म है।

प्र० च० प्र० वि० १८७) पृ० १००

(अ) प्र० को० पृ० ११४। (ब) व० च० प्र० ६ श्लोक ५१-५४ पृ० ८४। (स) की० कौ० स० ९ पृ० ९१-९२

द्वारा विनिर्मित महावीर-चैत्यालय से सुशोभित ललित-सरोवर बना हुआ है पड़ाव डाला। कपर्दियक्ष को सर्वप्रथम नमस्कार कर संघपति पवित्र शत्रुंजयगिरि पर चढ़ा और परम श्रद्धा और भक्तिपूर्वक दोनों कर जोड़ कर आदिनाथमन्दिर में पहुँचा। वंदन, कीर्त्तन के पश्चात् महामात्य ने सविधि प्रभुप्रतिमा का प्रचालन, अर्चन, पूजन किया और उसी प्रकार समस्त संघ ने प्रभु-पूजा की।

महामात्य वस्तुपाल ने शत्रुञ्जयगिरि पर अनेक धर्मकृत्य करने की प्रतिज्ञा ली तथा अनेक धर्मस्थान समय २ पर बनवाये जो समय पाकर पूर्ण होते गये। उनमें प्रसिद्ध कृत्य इस प्रकार हैः—

१ मुख्य मन्दिर श्री आदिनाथ-चैत्यालय में स्वर्णकलश तथा तोरण चढ़ाये।
२ दो प्रौढ़ जिनमूर्त्तियाँ स्थापित कीं तथा
३ मन्दिर के आगे इन्द्रमण्डप की रचना करवाई और नंदीश्वरद्वीपावतार नामक प्रासाद बनवाया।
४ सरस्वती की प्रतिमा स्थापित की।
५ सात पूर्वजों की मूर्त्तियाँ स्थापित कीं।
६ महाराणक वीरधवल तथा महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद की गजारूढ़ दो मूर्त्तियाँ बनवाईं तथा चौकी में आराधक-
७ ज्येष्ठ भ्राता लूणिग, मल्लदेव की प्रतिमायें बनवाईं।
८ सात गुरुओं की सात मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित करवाईं।
९ सात बहिनों के श्रेयार्थ सात देवकुलिकायें विनिर्मित करवाईं।
१० शकुनिकाविहार और सत्यपुरावतार मन्दिरों का निर्माण करवाया और उनके आगे चाँदी के तोरण बनवाये।
११ संघ के योग्य कई उपाश्रय बनवाये।
१२ श्री मोढ़ेरावतार श्री महावीर चैत्य विनिर्मित करवाया और उसमें
१३ श्री महावीर भगवान् के यक्ष की प्रतिमा विराजित की तथा
१४ देवकुलिकायें बनवाईं और
१५ मण्डप के दोनों ओर दो-दो चौकी की पंक्ति बनवाई।
१६ प्रतोली (पोली),
१७ अनुपमा-सरोवर।
१८ कपर्दियक्ष-मण्डपतोरण आदि करवाये
१९ कुमारपालविहार में ध्वजादंड तथा स्वर्ण-कलश चढ़ाये।
२० पालीताणा में पौषधशाला, एवं प्रपा बनवाई और अनेक धर्मकृत्य किये।

की० कौ० सर्ग० ९ श्लोक १ से ३७ प्र०चि० व० ते० प्र० (१८७) पृ० १००

व० च० प्र० ६ पृ० ९९ श्लोक ३३ से ९७ तक पृ० १०१ सु० सं० सर्ग० ११ श्लोक १५ से २८ तक

[जैन समाज में किसी भी धर्मकृत्य के करने की प्रतिज्ञा (बोली) श्रीसंघ के समक्ष जयध्वनि के साथ पहिले हो जाती है और कार्य फिर यथावसर होते रहते हैं।]

'सु०सं०' में भी उक्त धर्मस्थानों का वर्णन यात्रावर्णन में सम्मिलित नहीं दिया है; वरन् सर्ग ११ में वस्तुपाल द्वारा विनिर्मित धर्मस्थानों की सूची देते समय (उक्त धर्मस्थानों का उल्लेख) यथास्थान दे दिया है, जिसको देख कर यह निश्चित नहीं किया जा सकता

एक दिन एक मूर्त्तिकार संघपति की माता कुमारदेवी की अति सुन्दर मूर्त्ति बनाकर लाया। महामात्य वस्तुपाल अपनी माता की मूर्त्ति देखकर रोने लगा और कहने लगा कि आज मेरी माता होती तो वह अपने हाथों से यह सर्व मंगलकार्य करती और संघ की सेवा कर सर्वसंघ की प्रसन्नता एवं मेरे कल्याण का कारण होती, लेकिन कर्मगति विचित्र है। इस पर मलधारी श्रीमद् नरचन्द्रसूरि ने महामात्य को समझाया और आशीर्वाद देते हुये कहा कि पुरुषों के सर्व मनोरथ पूर्ण नहीं होते हैं। संघ अष्टाह्निका-तप करके गिरनारतीर्थ की यात्रा को रवाना हुआ। मार्ग में अनेक नगर, ग्रामों में संघपति महामात्य ने जो सुकृत के कार्य किये, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं जो यथासमय पूर्ण हुए।

१ वालध्वजपुर में शिखर पर आदिनाथ-मन्दिर बनवाया।

२ मधुमति में जावड़शाह के महावीर-मन्दिर में ध्वज और स्वर्ण-कलश चढ़ाये।

३ अजाहपुर में मन्दिर का जीर्णोद्धार तथा नववाटिका करवाई।

४ कोटीनारीपुर में श्री नेमिनाथमन्दिर में ध्वज और स्वर्ण-कलश चढ़ाये।

५ देवपत्तन में श्री चन्द्रप्रभस्वामी की विशेष धूम-धाम से पूजा की और पौषधशाला बनवाकर उसमें चन्द्रप्रभ स्वामी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित की।

६ सोमनाथपुर में महाराणक वीरधवल के श्रेयार्थ श्री सोमेश्वर महादेव की पूजा की तथा माणिक्यखचित मुण्डमाला अर्पित की। सत्रालय, वेदपाठकों के लिये अन्नशाला बनवाई।

७ वामनस्थली में मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया।

इस प्रकार संघपति महामात्य वस्तुपाल अनेक धर्मकृत्य करता हुआ जीर्णदुर्ग (जूनागढ़) तीर्थ पहुँचा।

संघपति महामात्य ने उज्जयन्तगिरि की उपत्यका में पहुँच कर तेजपाल के नाम पर बसाये गये तेजलपुर में विश्राम किया। तेजलपुर में आशराजविहार और कुमारदेवी-सरोवर की अनुपम शोभा देखकर संघ अति प्रसन्न हुआ। संघपति महामात्य के ठहरने के लिये धवल-गृह नामक एक सुन्दर प्रासाद बनवाया गया था। महामात्य ने देखा कि साधुओं के ठहरने के लिये कोई पौषधशाला नहीं बनी हुई है, शीघ्र एक पौषधशाला बनवाना प्रारम्भ किया जो दो दिनों में बनकर तैयार हो गई। तब तक महामात्य भी साधु गुरुओं के साथ बाहर मैदान में ही ठहर कर तीर्थाराधना करता रहा। पहुँचने के दूसरे दिन प्रातःकाल संघ गिरनारपर्वत पर चढ़ा और नेमिनाथ भगवान् की प्रतिमा का भक्तिभाव से कीर्त्तन, अर्चन, पूजन किया।

है कि अमुक धर्मस्थान कब और कैसे बने। प्र०को० तथा पु०प्र०सं० में भी यात्रा-वर्णन करते समय उक्त धर्मस्थानों के निर्माण की ओर कोई संकेत किया हुआ नहीं मिलता है।

व०च० में प्र० ६ के अन्त में वस्तुपालतेजपाल द्वारा विनिर्मित तीर्थगत धर्मस्थानों का वर्णन एक साथ कर दिया गया है।

'तदा सूत्रधारेणैकेन दार्वी कुमारदेव्या मातुर्मूर्तिर्महता यत्नेनातिघटिता दृष्टी कृता। ....दृष्ट्वा रुदित.................। यदि तु मम माता इदानीं स्यात्, तदा स्वहस्तेन मङ्गलानि कुर्वत्यास्तस्या मम च मङ्गलानि भवन्तः...... ......सोत्सव निर्वापितं भवेत्। अष्टाह्निका मतामां मूलमदेवं गतुमतोवसता सम्वी माश्चन्द्र—' प्र०को० व० प्र० १३६ पृ० ११४-११५

'दृवमहदिनी पुर्यवलज्जुवानहोसतान्। 'नर्वानिपटिता मातुर्मूर्ति व्योतिरुवाहमना' ॥६८॥

'पीठा स्नानतुम्बमोरो, ध्वोद निशुभानि' ॥६९॥ व०च० प्र० ६ पृ० ६३

कौ०कौ० सर्ग० ६ श्लोक ७० से ७२ से प्रतीत होता है कि गिरनारतीर्थ से लौटते समय ये सुकृत किये गये थे।

व०च० प्र० ६ श्लोक २० पृ० ६५ से श्लोक ५८ पृ० ६६

अतिशय प्रभावना दी, अतिशय दान दिया और अतिशय संघभक्ति की। अंब, अवलोकन, शांब, प्रद्युम्न नामक पर्वतों पर अनेक धार्मिक कृत्य करवाये, धर्मस्थान बनवाये, जो समय पाकर निम्न प्रकार पूर्ण हुयेः—

१ श्री शत्रुञ्जयमहातीर्थावतार श्री आदितीर्थङ्कर श्री ऋषभदेवप्रासाद,
२ स्तम्भनकपुरावतार श्री पार्श्वनाथदेवचैत्य,
३ सत्यपुरावतार श्री महावीरदेवचैत्य,
४ प्रशस्तिलेख सहित श्री कश्मीरावतार श्री सरस्वती नामक चार देवकुलिका,
५ अजितनाथ तथा वासुपूज्यस्वामी के दो बिंब,
६ अम्ब, अवलोकन, शांब और प्रद्युम्न शिखरों पर श्री नेमिनाथ भगवान् द्वारा विभूषित चार देवकुलिका,
७ आदिनाथ-चैत्यालय मंडप में अपने पितामह चंडप्रसाद की विशाल प्रतिमा,
८ पितामह सोम और पिता आशराज की दो अश्वारूढ़ मूर्त्तियाँ,
९ तीन मनोहर तोरण,
१० अपने पूर्वज, अग्रज, अनुज, पुत्रादियों की मूर्त्तियाँ,
११ गर्भग्रह के द्वार की दक्षिणोत्तर दिशा में अपनी और तेजपाल की गजारूढ़ दो प्रतिमा,
१२ मुखोद्घाटनकस्तम्भ।

संघ जीर्णगढ़तीर्थ पर बहुत दिनों तक ठहर कर पुनः प्रभासपत्तन, सोमेश्वरपुर होता हुआ धवलकपुर पहुँचा। महाराणक वीरधवल तथा दण्डनायक तेजपाल ने बृहद् समारोह के साथ संघपति वस्तुपाल का स्वागतोत्सव किया। संघपति ने संघ में आये हुए जनों को विशाल भोज देकर विदा किया।

प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३८ से ४३ [गि० प्र०]

उक्त प्रशस्तियां यद्यपि वि० सं० १२८८ की हैं। परन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि जैन समाज में कोई धर्मकृत्य करवाना होता है तो उसकी प्रथम संघ के समक्ष प्रतिज्ञा की जाती है। यह रीति हो जाने के पश्चात् वह धर्मकृत्य किया जाता है।

सर्व उपलब्ध ग्रन्थों में महामात्य वस्तुपाल की सिद्धगिरि-संघयात्राओं का वर्णन कथा-रूप से किया गया है। किस संवत् की संघयात्रा का कौनसा, किस ग्रन्थ में वर्णन है प्रमुखतः वर्णन कई ग्रन्थों में मिलते हुवे होने पर भी निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। जैसे 'व०च०' के कर्त्ता ने संघयात्रा का वर्णन करते हुये वस्तुपाल द्वारा सिद्धगिरि पर विनिर्मित करवाये हुये सर्व ही धर्मस्थानों, मूर्त्तियों का वर्णन कर दिया है, यद्यपि वे भिन्न-भिन्न संवतों में बनी हैं। 'व०च०' में सब ही वर्णन इसी प्रकार के हैं। संघ में संमिलित हुये प्रत्येक जाति के वाहन, श्रावक, साधु, सामंत, सैन्य, रथ, हस्ति, ऊंट, घोड़े आदि की निश्चित संख्या दी है, जो अन्य ग्रन्थों में वर्णित संख्याओं से कहीं मिलती है और कहीं नहीं और किसी में है ही नहीं। प्रतीत ऐसा होता है कि व०च० के कर्त्ता ने उपलब्ध सर्व ग्रन्थों के आधार पर तथा वस्तुपाल के वंशजों एवं वृद्धजनों के अनुभव और स्मृतियों के आधार पर व०च० की रचना की है। 'संवत्सरोऽस्ति मन्त्रीन्द्र, सप्ताश्वरवि (१२७७) समिते' ॥२६॥ प्र० ५ पृ० ७४ से सिद्ध है कि यह संघयात्रा सं० १२७७ की है और अन्य बात यह भी है कि 'व०च०' में केवल एक संघयात्रा का ही वर्णन है। 'व०च०' की रचना 'विक्रमार्कोन्मिते वर्षे, विश्वनंदर्षिसंख्यया (१४९७) में चित्रकूटपुरे पुण्ये ॥११॥ प्र० ८ पृ० १२५ तेजपाल की मृत्यु के लगभग ६९ वर्ष पश्चात् ही हुई है, जब कि वस्तुपाल की संघयात्राओं की कथायें घर-घर कही जा रही होंगी। इतिहास-रचना तो पूर्वाचार्यों का कम ही दृष्टिकोण रहा है, अतः आश्चर्य नहीं 'व०च०' में वर्णित संघयात्रा को वस्तुपाल द्वारा की गई सर्व संघयात्राओं की महिमा, विशेषता, शोभा से अलंकृत कर दिया गया हो। 'की० कौ०, व०वि०, प्र०को०, प्र०चि, ध०म्यु०, सु०सं०, पु०प्र०सं०' इन सर्व ग्रन्थों में वर्णन तो प्रमुख संवत् १२७७ की संघयात्रा को ही लेकर किया गया है, परन्तु यशस्वी नायक के यश का वर्णन करते समय वे एक साथ जितना लिख सके उतना लिख गये प्रतीत होता है।

महामात्य वस्तुपाल का राज्यसर्वेश्वरपद से अलंकृत होना

महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद तथा युवराज वीरधवल दोनों पिता-पुत्र महामात्य वस्तुपालके गुणों से मुग्ध होकर राज्य के सर्वैश्वर्य को महामात्य के करों में वि० सं० १२७७ में अर्पित करके आप महामात्य की सम्मति के अनुसार राज्य का चालन करने लगे। वैसे तो वस्तुपाल महामात्य के पद पर वि० सं० १२७६ से ही आरूढ़ हो चुका था, परन्तु युवराज वीरधवल की प्रीति से प्राप्त करके समस्त राज्य के सर्वैश्वर्य्य को प्रदान करने वाला सच्चा महामात्यपद उसने वि० सं० १२७७ में स्वीकृत किया समझना चाहिए।

भद्रेश्वरनरेश भीमसिंह पर विजय

जब राणक वीरधवल और महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद तथा मन्त्री भ्राता गूर्जरप्रदेश की अराजकता का अन्त करने में लगे हुये थे और बाहर के दुश्मनों से गूर्जरभूमि की रक्षा करने में संलग्न थे। उनके इस संकटपूर्ण समय का लाभ उठाकर भद्रेश्वरनरेश भीमसिंह ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और राणक वीरधवल की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। राणक वीरधवल ने भद्रेश्वरनरेश को परास्त करने के लिये एक सेना भेजी, परन्तु वह परास्त होकर लौटी। जाबालिपुरनरेश चौहान उदयसिंह के तीन दायाद भ्राता सामंतपाल, अनंतपाल और त्रिलोकसिंह जो प्रथम वीरधवल की सेवा में उपस्थित हुये थे, महामात्य वस्तुपाल के बहुत कहने पर भी राणक वीरधवल ने वेतन अति अधिक माँगने के कारण नहीं रक्खे थे, जाकर भद्रेश्वरनरेश भीमसिंह के समक्ष उपस्थित हुये और भीमसिंह ने उनको मुंहमाँगा वेतन देकर रख लिया। ये तीनों भ्राता अत्यन्त बली एवं रणनिपुण थे। भद्रेश्वरनरेश इनका बल पाकर अधिक गर्वोन्नत हो उठा। राणक वीरधवल को चौहान वीरों को निराश एवं तिरस्कृत कर लौटाने का अब फल प्रतीत हुआ। क्रोध में आकर वीरधवल अकेला सैन्य लेकर वि० सं० १२७८ में भद्रेश्वरनरेश पर चढ़ चला, महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद भी संग में गये। धवल्लकपुर में शासन की सुव्यवस्था करके पीछे से महामात्य वस्तुपाल और दण्डनायक तेजपाल भी अति चतुर रणबाँकुरे योद्धाओं के साथ जा पहुँचे।

भद्रेश्वरनरेश और वीरधवल में अति घोर संग्राम हुआ और वीरधवल आहत होकर रणभूमि में गिर पड़ा। ठीक उसी समय मंत्री भ्राता भी अपने वीर योद्धाओं के साथ रणक्षेत्र में जा पहुँचे। सायंकाल का समय हो चुका था, दोनों ओर की सेनायें समस्त दिनभर भयंकर युद्ध करती हुई थक भी गई थीं और विश्राम चाहती थीं। भद्रेश्वरनरेश के योद्धाओं ने मन्त्री भ्राताओं का ससैन्य आगमन सुनकर साहस छोड़ दिया तथा भद्रेश्वरनरेश से कहने लगे कि राणक वीरधवल के साथ संधि करना ही श्रेयस्कर है। भद्रेश्वरनरेश भीमसिंह ने भी कोई उपाय नहीं देखकर तुरन्त राणक वीरधवल की अधीनता स्वीकार कर ली और सामन्तपद स्वीकार किया। शनैः शनैः भीमसिंह की शक्ति कम की गई और उसकी मृत्यु के पश्चात् भद्रेश्वर का राज्य पत्तन-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया और भीमसिंह के चौदह सौ राजपुत्र वीर योद्धाओं से तेजपाल ने अपनी अति विश्वासपात्र सहचारिणी

'सं० ७७ वर्षे श्रीशत्रुञ्जयोज्जयन्तप्रभृतिमहातीर्थयात्रोत्सवप्रभावाविर्भूतश्रीमद्देवाधिदेवप्रसादासादितसंघाधिपत्येन चौलुक्यकुल- [illegible] श्रीशारदाप्रतिपन्नापत्येन [illegible] ...ाणुसवता' प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३८-४२

सैन्य बनाई, जो अनेक युद्धों में तेजपाल के साथ दुश्मनों से लड़ी और जिसने गूर्जरभूमि की भविष्य में संकटापन्न स्थितियों में प्रबल सेवायें की।

भद्रेश्वरनरेश भीमसिंह को परास्त करके तथा उसको अपना सामन्त बना करके राणक वीरधवल अपनी विजयी सैन्य एवं मन्त्री भ्राताओं और मण्डलेश्वर के साथ में काकरनगर को पहुँचा और वहाँ कतिपय दिवसपर्यन्त ठहर कर उस प्रान्त में लूट-खसोट करने वाले डाकुओं को बंदी बनाया और उद्दंड बने हुए ठक्कुरों की निरंकुशता को कुचल कर प्रजा में सुख और शान्ति का प्रसार किया। महामात्य वस्तुपाल ने अपना विचार मरुधरदेश की ओर बढ़ने का राणा के समक्ष रक्खा। फलतः राणक वीरधवल और दंडनायक तेजपाल आदि धवल्लकपुर लौट आये और महामात्य वस्तुपाल कुछ दिवस पर्यन्त काकरनगर में ही ठहर कर मरुधरप्रदेश की ओर बढ़ा।

महामात्य वस्तुपाल का मरुधरदेश में आगमन और पुण्यकार्य

महामात्य वस्तुपाल का यह नियम-सा हो गया था कि वह जिस ग्राम में होकर निकलता था, वहाँ अवश्य कोई मन्दिर बनवाता था और जिस मार्ग में, जंगल में होकर निकलता वहाँ कुआ, वाव अथवा प्याऊ का निर्माण करवाता था। उसने इस विजय-यात्रा में निम्नवत् पुण्य-कार्य करवाये थेः—

१ काकरनगर में श्री आदिनाथ-जिनालय बनवाया।
२ भीमपल्ली में श्री पार्श्वनाथ-जिनालय बनवाया। महादेव और पार्वती का श्री राणकेश्वर नामक शिवालय बनवाया।
३ जेरंडकपुर में विविध जिनालय बनवाये।
४ वायड़ग्राम में श्री महावीर-जिनालय का जीर्णोद्धार करवाया।
५ सूर्यपुर में श्री सूर्यमन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। वेदपाठ के निमित्त ब्रह्मशालायें, दानशालायें बहुत द्रव्य व्यय करके बनवाईं।

अब महामात्य काकरनगरी से अपनी विजयी सैन्य के सहित मरुधरप्रदेश की ओर बढ़ा। मार्ग में ग्रामों में, नगरों में मन्दिर बनवाता हुआ, जंगलों में एवं थरपारकर प्रदेश (रेगिस्थान) में कुएं, वाव बनवाता हुआ, प्रपायें लगवाता हुआ साचोरतीर्थ में पहुँचा। थरादमें महामात्य ने अनेक धर्मकृत्य किये थे, अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था और बहुत द्रव्य दान एवं अन्य धर्मकृत्यों में व्यय किया था। मार्ग के ग्राम एवं नगरों के ठक्कुर और सामंतों को वश करके पुष्कल द्रव्य एकत्रित किया था। जब वह साचोर पहुँचा, तब तक महामात्य के पास में पुष्कल द्रव्य एकत्रित हो गया था। साचोर में पहुँच कर महामात्य ने भगवान् महावीरप्रतिमा के भक्तिपूर्वक दर्शन किये और सेवा-पूजा का लाभ लिया। साचोरतीर्थ के जीर्णोद्धार में बहुत द्रव्य का सदुपयोग किया, दान और अन्य पुण्यकार्य किये। वह साचोर में कुछ दिवस पर्यंत ठहरा और समीपवर्त्ती भिन्नमालप्रगणा एवं जांगलभूमि के ठक्कुरों, सामंतों को वश करके उनसे पुष्कल द्रव्य भेंट में प्राप्त किया। साचोर से महामात्य पुनः लौट पड़ा और काकरनगर में पुनः होता हुआ राज्य और प्रजा का निरीक्षण करता हुआ अगणित धनराशि लेकर धवल्लकपुर में प्रविष्ट हुआ। महामात्य ने राजसभा में पहुँच कर राणक वीरधवल एवं मण्डलेश्वर को अभिवादन किया और मरुधरप्रदेश की विजययात्रा में प्राप्त पुष्कल धन को अर्पित किया।

समस्तगूर्जरभूमि में अब सुराज्यव्यवस्था जम गई थी। निरंकुश ठक्कुर, सामंत, मांडलिक पुनः पत्तन की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। धवल्लकपुर अब पूर्णरूपेण गूर्जरभूमि का राजनगर बन चुका था। महामात्य वस्तुपाल ने भी अपना निवास अब धवल्लकपुर में ही स्थायीरूप से बना लिया था। अराजकता का नाश करने में, निरंकुश ठक्कुर, सामंत, माण्डलिकों को वश करने में, अभिनवराजतंत्र के संस्थापकों को लगभग तीन वर्ष से ऊपर समय लगा अर्थात् वि० सं० १२७६ तक यह कार्य पूर्ण हुआ। अब महामात्य के आगे प्रमुखतः समीपवर्त्ती दुश्मन राजाओं से गूर्जरभूमि की सतत् रक्षा करने का कार्य तथा गूर्जरभूमि को समृद्ध बनाने का कार्य था। ये कार्य पहिले के कार्यों से भी अधिकतम कठिन एवं कष्टसाध्य थे। अतः मंत्री भ्राताओं ने धवल्लकपुर में ही राणक और मण्डलेश्वर के साथ में रातदिन रह कर राज्य की सेवा करना अधिक अच्छा समझा। अतः महामात्य वस्तुपाल ने वि० सं० १२७६ में अपने स्थान पर अपने योग्य पुत्र जैत्रसिंह को खंभात का प्रान्तपति बना कर खंभात का राज्यकार्य करने के लिये भेज दिया और आप वहाँ रहकर अभिनव राजतंत्र का सुचारुरूप से संचालन करने लगा।

राज्य-व्यवस्था और गुप्तचर-विभाग का विशेष वर्णन

जैसी ख्याति महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल की बढ़ रही थी, उसी प्रकार महामंडलेश्वर लवणप्रसाद भी गूर्जरभूमि के अजेय योद्धा और सुपुत्र समझे जाते थे। राणक वीरधवल भी प्रजा-वत्सलता, वीरता और अनेक दिव्य गुणों के लिये प्रसिद्ध था। राजगुरु महाकवि सोमेश्वर धवल्लकपुर की पुरुषोत्तम व्यक्तियों की माला में सचमुच सुमेरुमणि थे। राजसभा में आये दिन दूर-दूर से प्रसिद्ध विद्वान् आते थे और राणक वीरधवल भी उनका यथोचित आदर-सत्कार करता था। राणक वीरधवल शैव था, फिर भी जैन-धर्म और जैनाचार्यों का बड़ा सत्कार करता था। महामात्य वस्तुपाल के प्रत्येक धर्मकृत्य में दोनों पिता-पुत्र का सहयोग और सम्मति रहती थी। यहाँ तक कि महामात्य वस्तुपाल को बिना पूछे राज्य के कोष में से धर्मकार्यों के लिये द्रव्य-व्यय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

महामात्य वस्तुपाल ने राज्य की व्यवस्था अनेक विभाग और उनकी अलग २ समितियाँ बनाकर की थीं। सेना-विभाग और गुप्तचर-विभाग हर प्रकार से विशेषतः समृद्ध और पूर्ण रक्खा जाता था। मालगुजारी का विभाग भी अति समुन्नत था। भूमि-कर लेने की व्यवस्था इतनी अच्छी की गई थी कि कोई भी राजकर्मचारी कृषकों से उत्कोंच और राज्य का पैसा नहीं खा सकता था। न्याय यद्यपि अधिकतर जबानी किये जाते थे, लेकिन महामात्य जैसे पुरुषोत्तम के लिये राव-रंक का रंगभेद अकृतकार्य था। सर्व धर्म, वर्ण और ज्ञातियों को सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता ही नहीं थी, बल्कि राज्य की ओर से यथोचित मान और सहयोग भी प्राप्त था। संरक्षक-विभाग का कार्य भी कम स्तुत्य नहीं था। चोर, डाकू, ठगों और गुण्डों का एक प्रकार से अन्त ही कर दिया गया था। गूर्जरराजधानी पत्तनपुर का सारा राज्यकार्य धवल्लकपुर में होता था। महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद और राणक वीरधवल के हाथों में गूर्जरसाम्राज्य की सारी शक्तियाँ और अधिकार केन्द्रित थे, फिर भी इन्होंने कभी भी अपने को स्वतन्त्र महाराजा या सम्राट् घोषित करना तो दूर रहा, करने का स्वप्न में भी विचार नहीं किया।

'महामात्यश्रीवस्तुपालात्मजे महं० श्रीललितादेवीकुक्षिसरोवरराजहंसायमाने महं० श्रीजयन्तसिंहे सं० ७६ वर्षपूर्वं स्तम्भतीर्थे मुद्राव्यापारं व्यापृण्वति सति' प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३८ से ४२

ऐसे निर्लोभी, संयमी, देशसेवक राजा और धीर-वीर, नीतिज्ञ अमात्य पाकर एक वार गूर्जरदेश धनी हो उठा। लेकिन बाहर से आये हुए यवनशासक भारतभूमि में कहीं भी पनपता हुआ ऐसा समृद्ध साम्राज्य कैसे सहन कर सकते थे। अतिरिक्त इसके मालवा और दक्षिण के शक्तिशाली सम्राट् भी गूर्जरभूमि की बढ़ती हुई उन्नति को तिर्छी दृष्टि से देख रहे थे।

गुप्तचरविभाग का वर्णन देना कतिपय दृष्टियों से अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। महामात्यपद पर आरूढ होते ही वस्तुपाल ने इस विभाग की अति शीघ्र स्थापना की थी और विश्वासपात्र स्वामीभक्त, चतुर, बहु-भाषाभाषी, बहुभेषपटु, वाक्पटु और प्राणों पर खेलने वाले गुप्तचरों को रक्खा था। वस्तुपाल की सम्पूर्ण सफलता की कुंजी यही विभाग था। वस्तुपाल अपने गुप्तचरों का बड़ा मान करता था। गुप्तचरों की अनुपस्थिति में गुप्तचरों के परिवार का सम्पूर्ण पोषण राज्यकोष से किया जाता था। तेजपाल का पुत्र लावण्यसिंह गुप्तचर-विभाग का अध्यक्ष था। इस विभाग के प्रत्येक कार्यवाही से तथा साम्राज्य में चलती शत्रु-मित्र की प्रत्येक हलचल से वस्तुपाल को अवगत रखना इस विभाग के अध्यक्ष का प्रमुख कर्त्तव्य था। वस्तुपाल जहाँ कहीं भी हो इस विभाग की दैनिक कार्यवाही का विवरण उसको नियमित मिलता रहता था और वस्तुपाल के संकेत, आदेश, सम्मतियाँ एवं आज्ञायें गुप्तचर सर्वत्र सम्बन्धित व्यक्तियों को पहुँचाते थे। वस्तुपाल यद्यपि खंभात चला गया था, फिर भी सौराष्ट्र के रणों का, धवलकपुर का, तथा शत्रुराजा एवं सामंतों की हलचलों और योजनाओं का पता उसको नियमित और यथावत् मिलता रहता था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गूर्जरभूमि पर होने वाले रणों में, पत्तन में, धवलकपुर में, शत्रुओं की गोष्ठियों में सर्वत्र वस्तुपाल के गुप्तचर विद्यमान रहते थे। वस्तुपाल भी राणक वीरधवल, मंडलेश्वर लवणप्रसाद, दंडनायक तेजपाल तथा महाकवि राजगुरु सोमेश्वर को समय समय पर मुख्य २ सूचनायें पहुँचाता रहता था और उन्हें अपनी योजनाओं से प्रत्येक समय अवगत रखता था तथा तदनुसार अपने आदेशों एवं संकेतों को पहुँचाया करता था। इस विभाग का कार्य यंत्रवत् नियमित एवं प्रबंधपूर्ण था। गुप्तचर नाम एवं वेष परिवर्तित कर राजस्थान, मालवा, सौराष्ट्र, दक्षिण, संयुक्तप्रान्त में भ्रमण करते थे। कहीं जाकर बस जाते थे, कहीं शत्रुराजा के विश्वासपात्र सेवक बनकर रहते थे, कहीं शत्रुराजाओं एवं सामंतों के श्रद्धेय साधु, संन्यासी बन कर रहते थे। यादवगिरि के राजा सिंघण के आक्रमण को विफल करने वाले, यवनसेनाओं का मंडोर, रणथंभोर पर हुये आक्रमणों के समाचार देने वाले, बादशाह की वृद्धा माता की हज्यात्रा के लिये गूर्जरभूमि में होकर जाने की सूचना देने वाले, सिंघण, लाट के राजा शंख एवं मालवपति देवपाल के आयोजित मित्रसंघों को फूट डालकर तोड़ने वाले, म्लेच्छ आक्रमणकारी के प्रयास को नष्ट करने वाले, गूर्जरभूमि के शत्रु बने हुए सामंतों, माण्डलिकों एवं ठक्कुरों की दुष्प्रवृत्तियों एवं दुर्भावनाओं से साम्राज्य की रक्षा करने वाले तत्त्वों को सजग रखने वाले ये ही गुप्तचर थे।

ह० म० म० सर्ग० २ पृ० १० से २४

ह० म० म० में कुवलयक, शीघ्रक, निपुणक, सुवेग, सुचरित्र, कुशालक और कमलक आदि जो गुप्तचरों के नाम मिलते हैं, अगर हम इनको कल्पित पात्र भी मान लेते हैं, फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बिना गुप्तचरविभाग के हुये, कल्पित नाम देना भी लेखक को स्मरण कैसे आता! उक्त नाटक की भूमिका एवं रचना से स्पष्ट है कि गुप्तचरविभाग अत्यन्त ही समुन्नत एवं सुदृढ़ स्थिति में था।

महामात्य वस्तुपाल के धवल्लकपुर में ही रहने से धवल्लकपुर थोड़े ही दिनों में भारत के उन प्रमुख नगरों में गिना जाने लगा जो विशालता में, रमणीकता में, सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक-व्यापार-वाणिज्य की दृष्टियों से धन-सम्पन्नता के कारण जगविख्यात थे। अतिरिक्त इसके धवल्लकपुर अपने दृढ़ साहसी वीर योद्धा, अजेय रणचतुर सेनापतियों के लिये अधिक प्रसिद्ध था। धवल्लकपुर में बहुल संख्यक विशाल मन्दिर, ऊँचे २ राजप्रासाद, गगनचुम्बी महालय एवं अनेक राजभवन बन चुके थे। इन सब के ऊपर वह एक बात थी जो अनेकों युगों में इतिहास नहीं पा सका था। महामात्य वस्तुपाल एक महान् उदार धार्मिक महामात्य था, जो सर्व धर्मों का समान समादर करने वाला और सर्व ज्ञातियों का समान मान करने वाला था। राग-द्वेष, लोभ-मोह, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े धनी-निर्धन के भेदों से वह छू तक नहीं गया था। हिन्दू, जैन, मुसलमान और अन्य सर्व धर्मावलम्बी उसको अपना ही नेता समझते थे। धवल्लकपुर में सर्व धर्मों के साधु-संन्यासियों का, सर्व भाषाओं के भारतप्रसिद्ध विद्वानों का, सर्वकलाविशेषज्ञों का सदा जमघट लगा रहता था। बड़े २ विषयों पर आये दिन वाद-विवाद, धर्मों के शास्त्रार्थ, विशेषज्ञों एवं कलावानों में प्रतियोगितायें होती रहती थीं। नगर में स्थल-स्थल पर यात्रियों, विद्वानों, अतिथियों के लिये ठहरने आदि का समस्त प्रबन्ध महामात्य की ओर से होता था। दीन, दुखियों, अपंगों के लिये शरणस्थल, भोजनशालायें, दानगृह खुले हुये थे। नगर के सर्व मन्दिरों में, धर्मस्थानों में अधिकांश द्रव्य महामात्य का व्यय होता था। यह राम-व्यवस्था धवल्लकपुर में ही नहीं, पत्तन-साम्राज्य के अनेक नगर, ग्रामों में प्रसारित होती जा रही थी। सैकड़ों नवीन जैन, शैव, इस्लाम, हिन्दू मन्दिरों का निर्माण, सैकड़ों जीर्णमन्दिरों का उद्धार किया जा रहा था। नवीन प्रतिमाओं की स्थापना, पौषधशाला, धर्मशाला, दानगृह, भोजनशाला, लेखकनिवास, सत्रागार, प्रपायें, वापी, कूप, सरोवर, और ज्ञान-भण्डार प्रसिद्ध एवं उपयुक्त स्थलों पर लक्षों व्यय करके बनवाये जा रहे थे। इसीलिये महामात्य धर्मपुत्र, निर्विकार, उदार, सर्वजनश्लाघनीय, उत्तमजनमाननीय, ऋषिपुत्र, गम्भीर, दातार—चक्रवर्त्ती, लघुभोजराज, सचिवचूड़ामणि, ज्ञातिगोपाल, ज्ञातिवराह, शान्त, धीर, विचारचतुर्मुख, प्राग्वाटज्ञाति-अलंकार, चातुर्य-चाणक्य, परनारी-सहोदर, रुचिकन्दर्प, आदि गौरव-गरिमाशाली चौबीस उपनामों से गूर्जरप्रदेश में ही नहीं, मालवा, राजस्थान, काश्मीर, सिंध, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, मध्यभारत, दक्षिणभारत सर्वत्र संबोधित किया जाने लगा था। प्राणग्राहक रिपु भी महामात्य को अपने शिविरों में देखकर उसका मान करते थे और अपने को पवित्र हुआ मानते थे और महामात्य के शिविर में पहुँचकर अपने को सुरक्षित समझते थे। वधूयें, पुत्रियें उसको अपना पिता और भ्राता मानती थीं। इस प्रकार प्राग्वाटज्ञाति में उत्पन्न भारतमाता का यह सुपुत्र समस्त भारतवासियों का बिना ज्ञाति, धर्म, मत, प्रदेश, प्रान्त, राज्य के भेदों के एकसा प्रेम, स्नेह, सौहार्द प्राप्त कर रहा था।

धवल्लकपुर का वैभव और महामात्य का व्यक्तित्व

संक्षेप में कहा जा सकता है कि महामात्य वस्तुपाल जैसा सच्चा ऐश्वर्यशाली था, वैसा ही सच्चा जैन था, सरस्वती का अनन्य भक्त था, एकनिष्ठ कलाप्रेमी था, अजेय योद्धा था, सफल राजनीतिज्ञ था, सच्चा देश-भक्त था, सच्चा राष्ट्रसेवक था। वह श्रीमन्त योगीश्वर था; क्योंकि उसका तन, मन और सर्व वैभव ज्ञाति, समाज, देश और धर्म की सेवा में व्ययशील था जो ईश्वर की सच्ची आराधना, उपासना है।

प्र० कौ० व० प्र० १२४) १२५) पृ० १०४, १०५ पु० प्र०सं० ।   हि० ती० क० व० प्र० ।   व० च० प्र० २ पृ० २० श्लोक ६६ से पृ० २४ श्लो० २५ की० कौ० (प्रस्तावना) पृ० २९

दोनों सहोदर रात्रि के एक प्रहर रहते नित्य उठते और उठकर सामायिक-प्रतिक्रमण करते । पश्चात् देवदर्शन करते और गुरुदर्शन करने को भी प्रायः साथ २ जाते । गुरुदर्शन करके सीधे राणक वीरधवल और महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद की सेवा में उपस्थित होते । वहाँ से लौट कर घर आते और श्रद्धा, भक्ति-भाव से प्रभुपूजन करके उपाश्रय में गुरु का सदुपदेश श्रवण करने के लिये नित्य नियमित रूप से जाते । गुरु, साधु-साध्वियों, संन्यासियों, अतिथियों की वे पहिले अभ्यर्थना, भोजन-सत्कार करते और फिर सर्व परिजनों के साथ आप भोजन करते । भोजनसंबंधी व्यवस्थायें समितियें बनाकर की गई थीं । दोनों भ्राताओं के भोजन करने के समय तक या पूर्व दोनों ही समय संध्या और प्रातः भूखों को, वस्त्रहीनों को, अपङ्गों को, दीन और शरणार्थियों को भोजन, वस्त्र दे दिया जाता था। इसमें प्रतिदिन एक लाख रुपया तक व्यय होता था । दोनों भ्राता कभी भी रात्रि को भोजन और जलपान नहीं करते थे और प्रातःकाल भी एक घटिका दिन निकल आने पर दंतधावन आदि नियमित क्रियायें करते थे । भोजन कर लेने के पश्चात् दोनों भ्राता अपने २ आस्थानकक्षों में (बैठकों में) बैठते और क्रमवार सर्व राजकीय तथा निजीय विभागों के आये हुये प्रधानों, कर्मचारियों से भेंट करते और आये हुये पत्रों का उत्तर देते । विवादास्पद प्रश्नों, झंझटों को निपटाते, भेंट करने के लिये आने वाले सज्जनों, सामंतों, मांडलिकों, श्रीमन्तों, विद्वानों, कलाविदों से भेंट करते और उनका यथायोग्य सत्कार करते । विद्वानों को साहित्यिक रचनाओं पर, कलाविदों को कलाकृतियों पर प्रतिदिन सहस्रों मुद्रायें पारितोषिक रूप में प्रदान करते । प्रांतप्रमुखों, सेनानायकों, प्रमुख गुप्तचरों, सर्व धार्मिक, सामाजिक, तीर्थ-मंदिर, मस्जिद, धर्मशाला, लेखकशाला, पौषधशाला, वापी, कूप, सरोवर, प्रतिमाओं की निर्माणसंबंधी, व्यवस्थासंबंधी समितियों के प्रमुख कार्यकर्त्ता एवं शिल्पियों से भेंट करते, उनके कार्यों का निरीक्षण करते, विवरण सुनते और नवीन आज्ञायें, आदेश प्रचारित करते । वैसे तो सर्व राजकीय एवं निजीय विभाग भिन्न २ योग्य व्यक्तियों के नीचे विभाजित किये हुये थे, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति को महामात्य से भेंट करने की पूरी २ स्वतंत्रता थी । इन कार्यों से निवृत्त होकर दोनों भ्राता राजसभा में जाते और प्रान्तों, प्रमुख नगरों से आयी हुई सूचनाओं से राणक वीरधवल एवं मण्डलेश्वर लवणप्रसाद को सूचित करते, शत्रुसंबंधी गति-विधियों पर चर्चा करते । राजकीय सेनाविभाग, गुप्तचरविभाग जिसके गुप्तचर सर्वत्र साम्राज्य एवं रिपुराज्यों में फैले हुये थे, सुरक्षाविभाग जिसके अधिकार में राज्य के दुर्ग और नवीनदुर्गों का निर्माण, सीमा-संबंधी देख-रेख, नवीन सैनिकों एवं योद्धाओं की भर्त्ती, पर्याप्त सामरिक सामग्री की व्यवस्था रखने संबंधी कार्य थे, तत्संबंधी प्रश्नों और नवीन योजनाओं पर विचार करते । देश-विदेश में राज्य के विरुद्ध चलने वाली हलचलों पर सोच-विचार करते । ये सर्व मन्त्रणायें गुप्त रखी जाती थीं । महाकवि सोमेश्वर इस प्रकार की प्रत्येक मन्त्रणा में सम्मिलित रहते थे । पत्तन के सामन्तों, राज्य के श्रीमंतों, मांडलिकों, परराज्यों के दूतों से राणक वीरधवल एवं मण्डलेश्वर लवणप्रसाद भी स्वयं भेंट करते और वार्तालाप करते । महामात्य न्याय, सेना, सुरक्षा, राजकोष, धर्मसंबंधी अत्यन्त महत्त्व के विषय राजसभा में राणक वीरधवल के समक्ष निर्णीत करते । राजसभा में वीरों का मान, विद्वानों का सम्मान और सज्जन, साधु-ऋषियों का सत्कार होता था । राजसभा से निवृत्त होकर महामात्य और दंडनायक दोनों अश्वस्थलों, सैनिक-शिविरों, अस्त्र-शस्त्र के भण्डारों का निरीक्षण करते । राजकीय कार्यों से निवृत्त होकर ही प्रायः घर लौटते थे । घर लौट कर स्नानादि क्रिया करके भोजन करते । भोजन के पश्चात् नगर में चलती हुई धार्मिक संस्थाओं जैसे सत्रागारों, लेखकशालाओं, पौषधगृहों, धर्मशालाओं, दानशालाओं, भोजनशालाओं

मंत्री-भ्राताओं की दिनचर्या

का निरीक्षण करने जाते, मन्दिरों के दर्शन करते और उपाश्रयों में साधु-मुनिराजों से अनेक धार्मिक विषयों पर चर्चा करते। वहाँ से आकर शयनागार में जाने के पूर्व कुछ क्षण अपने आस्थान में बैठकर परिजनों से, सम्बन्धियों से देश-विदेश में तीर्थों, पर्वतों, जंगलों, दुर, नगर, ग्रामों में होते निजीय धार्मिक कार्यों पर चर्चायें करते। कभी-कभी राजकीय विषयों पर महाकवि सोमेश्वर, सुनीतिज्ञ स्त्रीरत्न अनुपमा, जैत्रसिंह, लावण्यसिंह से अधिक समय तक चर्चायें करते। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दोनों ही महामात्य भ्राता एक साथ धार्मिक एवं राज्यपुरुष थे और फलतः धार्मिक और राज्यक्रियायें दोनों ही उनकी दिव्य थीं।

दिल्ली के तख्त पर इस समय गुलामवंश का द्वितीय बादशाह अल्तमश था। अल्तमश ने गुलामवंश की नींव दृढ़ की तथा समस्त उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य सुदृढ़ किया। जालोर के चौहान राजा उदयसिंह को वि० सं० १२६८ और १२७४ के बीच सम्राट् अल्तमश ने परास्त किया, और ज्योंहि वह दिल्ली पहुँचा, उदयसिंह ने दिल्ली से संबंध-विच्छेद कर दिया और वीरधवल की अधीनता स्वीकार कर ली। उदयसिंह ने अपने राज्य को खूब बढ़ाया, यहाँ तक कि नाडोल, भिन्नमाल, मंडोर और सत्यपुर (साचोर) पर भी उसका अधिकार हो गया। उधर मेदपाट (मेवाड़) का महाराजा जैतसिंह भी स्वतन्त्र था। जैतसिंह का राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। नागदा (नागद्रह) उसकी राजधानी थी। गूर्जरदेश भी स्वतंत्र था और गूर्जरसाम्राज्य उत्तरोत्तर समृद्ध और बली होता जा रहा था। यह सब अल्तमश कैसे सहन कर सकता था। उसने एक समृद्ध सेना वि० सं० १२८३ (सन् १२२६ ई०) में राजस्थान की ओर भेजी। इस सेना ने रणथंभोर और मंडोर पर अधिकार कर लिया और गूर्जरभूमि की ओर बढ़ना चाहा। उधर महामात्य वस्तुपाल ने गूर्जरसैन्य को सजाया। महामात्य वस्तुपाल और दंडनायक तेजपाल, दोनों भ्राता एक लाख सैन्य लेकर अर्बुदाचल की उपत्यका में पहुँचे। राणक वीरधवल भी साथ था। चंद्रावती का राजा धारावर्ष भी अपने वीर पुत्र सोमसिंह के साथ विशाल सैन्य लेकर गूर्जरभूमि की यवनों से रक्षा करने के लिये गूर्जरसैन्य में आ सम्मिलित हुआ। उधर जालोर का चौहान राजा उदयसिंह भी अपने वीरसैन्य को लेकर इनमें आ मिला। अर्बुदाचल की तंग उपत्यका में आकर शाही सैन्य दो ओर से पर्वतमालाओं से और दो ओर से गूर्जर-सैन्य से घिर गया। उधर मेदपाट का राजा जैतसिंह भी उत्तर पूर्व से यवनसैन्य को दबा रहा था। पश्चिम में ग्वालियर का स्वतन्त्र शासक था। कुछ दिनों तक यवनसैन्य उपत्यका में ही घिरा रहा। यवनसैन्य को गूर्जरभूमि को जीत कर सिंध की ओर जाने की आज्ञा थी, क्योंकि सम्राट् अल्तमश सिन्ध के शासक नासीरुद्दीन कुबेचा पर वि० सं० १२८४ (१२२७ ई०) में आक्रमण करने की तैयारियाँ कर चुका था। यवनसैन्य अब पीछे भी नहीं लौट सकता था क्योंकि पीछे से धारावर्ष यवनसैन्य को दबा रहा था। अन्त में शाही सैन्य को आगे बढ़ना ही पड़ा। आगे गूर्जरसैन्य तैयार खड़ा था। दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ। यवनसैन्य परास्त हुआ और बहुत ही कम यवनसैनिक अपने प्राण बचा कर भाग सके। विजयी गूर्जरसैन्य महामात्य वस्तुपाल और दंडनायक तेजपाल तथा राणक वीरधवल का जयनाद

यवन-सैन्य के साथ युद्ध और उसकी पराजय

'Ranthambhor fell in 1226 A. D. and Mandor in the Siwalik hills followed quite a year later'
M. I. P. 175

(a) 'Under him (Udaisingh) Jhalor became powerful and his kingdom not only included Naddula, but Mandor, north Jodhpur, Bhillamal and Satyapura.'

(b) 'Then he (Jaitrasingh) began harassing the invador on one side.' G. G. Part III P. 216

करता हुआ धवलकपुर लौट गया। इस विजय का पूर्ण श्रेय महामात्य वस्तुपाल को है। महामात्य अपनी वीरता से, रणनीतिज्ञता से तथा अपनी चातुर्य्यता से गूर्जरभूमि को यवनआततायियों से पदाक्रांत होने से बचा सका। राणक वीरधवल का कौशल भी यहाँ कम सराहनीय नहीं है।

दिल्ली के बादशाह के साथ संधि और दिल्ली के दरबार में महामात्य का सम्मान

बादशाह अल्तमश ने जब यह सुना कि अर्बुदघाटी के युद्ध में समस्त यवनसैन्य नष्ट हो चुका है, अत्यन्त क्रोधित हुआ। परन्तु सिन्ध में नासिरुद्दीन कुबेचा की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी और बादशाह को सर्व प्रथम यह उचित लगा कि पहिले कुबेचा को परास्त किया जाय और यह ठीक भी था, क्योंकि बादशाह को यह भय था कि कहीं कुबेचा दिल्ली पर आक्रमण नहीं कर बैठे। वि० सं० १२८४ (सन् १२२७) के अंत में कुबेचा को परास्त करके बादशाह दिल्ली लौटा तो बंगाल की राजधानी लखनौती में खिल्जी मलिकों के विद्रोह के समाचार मिले। तुरन्त सेना लेकर वह लखनौती पहुँचा और वहाँ विद्रोह शांत किया। इस समय के अंतर में महामात्य वस्तुपाल ने बादशाह के संबंधियों के साथ सम्मान और उदारतापूर्वक ऐसा सद्व्यवहार किया कि बादशाह ने गूर्जरदेश पर आक्रमण करने का विचार ही त्याग दिया।

बादशाह अल्तमश को गुजरात पर आक्रमण करने के लिये समय का नहीं मिलना

नागपुरनिवासी श्रेष्ठि देल्हा का पुत्र पूनड़ बादशाह अल्तमश की बीबी का प्रतिपन्न भाई था। उसने वि० सं० १२८६ के आरम्भ में द्वितीय बार शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा करने के लिये विशाल संघ निकाला। इस संघ में १८०० अट्ठारह सौ बैल गाड़ियाँ थीं। यह विशाल संघ माण्डलिकपुर में जो वस्तुपाल तेजपाल की जन्मभूमि थी, पहुँचा। दंडनायक तेजपाल संघ का स्वागत करने के लिये वहाँ पहुँचा और संघ को सादर धवलकपुर में लाया। महामात्य ने और राणक वीरधवल ने पूनड़ का बड़ा सत्कार किया। स्वयं महामात्य संघ में सम्मिलित हुआ और उसको शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा करवाई। बादशाह की बीबी ने जब यह सुना तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और बादशाह से महामात्य वस्तुपाल की उदारता के विषय में बहुत कुछ कहा।

श्रेष्ठि पूनड़ का स्वागत

दूसरी घटना यह घटी कि स्वयं बादशाह की वृद्धा माता बादशाह के गुरु मालिम (नामक या मौलवी) के साथ मख (मक्का) की यात्रा करने वि० सं० १२८७ में निकली और वह चलकर पत्तन (गुजरात) नगर के समीप ज्योंही आई महामात्य वस्तुपाल समाचार मिलते ही पत्तन पहुँचा और बादशाह की माता का और बादशाह के गुरु का बड़ा सत्कार किया। बादशाह की माता पत्तन से चलकर खम्भात पहुँची और एक नौवित्तिक के यहाँ ठहरी। राणक वीरधवल एवं मण्डलेश्वर लवणप्रसाद की संमति लेकर महामात्य वस्तुपाल ने यहाँ एक

बादशाह की वृद्धा माता की हजयात्रा और महामात्य का उसको प्रसन्न करना और दिल्ली तक पहुँचाने जाना

चाल चली। वह खम्भात पहुँचा और युक्ति से बादशाह की वृद्ध माता का द्रव्य चोरों द्वारा लुटवा लिया। बादशाह की वृद्धा माता ने महामात्य वस्तुपाल को खम्भात आया हुआ जानकर वस्तुपाल के पास अपने द्रव्य का चोरों द्वारा लूटा जाने का समाचार भेजा। यह तो महामात्य की स्वयं की चाल थी। उसने तुरन्त द्रव्य सुधवा मंगवाया और बादशाह की माता के पास स्वयं लेकर पहुँचा। वृद्धा माता अपने खोये हुये द्रव्य को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और वस्तुपाल को आशीर्वाद देने लगी। महामात्य ने अपनी ओर से मक्कातीर्थ के लिये एक तोरण भेंट किया और अपने चुने हुए संरक्षक देकर बड़े सम्मान के साथ बादशाह की माता को मक्का को रवाना किया। वृद्धा माता हज करके पुनः खम्भात लौटी। महामात्य वस्तुपाल भी तब तक वहीं उपस्थित था। उसने उसका बड़ा सत्कार किया और आप स्वयं दिल्ली तक पहुँचाने गया।

महामात्य का बादशाह के दरबार में स्वागत और स्थायी सन्धि का होना

बादशाह की वृद्धा माता जब राजधानी दिल्ली में पहुँची और अपने पुत्र बादशाह अल्तमश से मिली तो उसने वस्तुपाल की महानता, भक्ति एवं उदारता का वर्णन किया। महामात्य वस्तुपाल को अपनी माता के साथ आया हुआ तथा नागपुरवासी पूनड़ श्रेष्ठि के यहाँ ठहरा हुआ जान कर बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसको राजसभा में बुला कर उसका भारी सम्मान किया। बादशाह वस्तुपाल की बातों एवं मुखाकृति से अत्यन्त प्रभावित हुआ और वस्तुपाल को कुछ माँगने का आग्रह किया। बादशाह के पुनः पुनः आग्रह करने पर महामात्य ने बादशाह से दो बातें माँगी। प्रथम—गूर्जरभूमि के सम्राट् के साथ बादशाह की स्थायी मैत्री हो और द्वितीय—शत्रुंजयतीर्थ के ऊपर मंदिर बनवाने के लिये बादशाह अपने साम्राज्य में से वस्तुपाल को मम्माणीखान के पत्थर ले जाने की आज्ञा प्रदान करें। बादशाह ने दोनों बातें स्वीकार कीं। महामात्य लौटकर धवल्लकपुर आया और महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद और राणक वीरधवल को दिल्लीपति के साथ हुई सन्धि के समाचार सुनाये। उन्होंने महामात्य का भारी सम्मान किया और दशलाख स्वर्णमुद्रायें पारितोषिक रूप में प्रदान कीं। इस प्रकार गूर्जरभूमि को यवनों के आक्रमणों का अब भय नहीं रहा और सुख और समृद्धि की अधिकाधिक वृद्धि होने लगी।

अल्तमश का नाम जैन ग्रन्थों में मउजुद्दीन लिखा मिलता है।

G. G. Pt. III Page 216

प्र० को० २४ व० पृ० १४२) पृ० ११७

M. I. Ps. 176 to 178. *प्र० को० २४ व०प्र० १४३) पृ० ११८। व०च०स०प्र०श्लोक २१ से ६१ पृ० १०८ से ११०*

प्र० को० ४० प्र० १४४) पृ० ११६। पु० प्र० सं० व०ते० प्र० श्लोक १४२) पृ० ६७ १५४) पृ० ७०

व०च० स० प्र० श्लोक २० से ६६ पृ० ११० से ११२। प्र० चि० व०ते० प्र० १६१) पृ० १०३

यह घटना उक्त और अन्य ग्रन्थों में थोड़े २ अन्तर से मिलती हुई उल्लिखित है। अधिक ग्रन्थों में बादशाह की वृद्धामाता द्वारा की गई हजयात्रा का उल्लेख है। प्रबंधचिन्तामणि में लिखा है कि बादशाह के गुरु मालिम ने मक्का की यात्रा की। किसी ग्रन्थ में पत्तनपुर और किसी में खंभात में नौवित्तिक के घर में बादशाह की माता का या मालिम गुरु का ठहरना, चोरी होना, महामात्य वस्तुपाल द्वारा उनका सत्कार किया जाना लिखा है। बात वस्तुतः यह है कि हजयात्रा बादशाह की वृद्धा माता ने ही की थी और साथ में मालिम मौलवी भी थे। दिल्ली से खंभात के मार्ग में पत्तनपुर पड़ता है। चतुर महामात्य ने वृद्धामाता को पत्तन में पधारने के लिये अवश्य प्रार्थना की ही होगी। अल्तमश क्रीत गुलाम था। अतः इस कारण को लेकर यह मान लेना कि दिल्ली में उसकी माता कहाँ से आ सकती थी पूर्ण सत्य तो नहीं है।

बाहरी आक्रमणों का अंत और अभिनव राजतंत्र के उद्देश्यों की पूर्त्ति

गूर्जरभूमि पर फिर भी यादवगिरि के राजा सिंघण के पुनः आक्रमण का भय बना हुआ था। वि० सं० १२८८ में सिंघण एक विशाल चतुरंगिणी सैन्य लेकर गूर्जरभूमि पर चढ़ आया। महामात्य के गुप्तचरों से यह सब छिपा नहीं था। महामात्य वस्तुपाल, दंडनायक तेजपाल, स्वयं महामण्डलेश्वर लावण्यप्रसाद गूर्जरभूमि के चुने हुये वीरों का सैन्य लेकर माही नदी के किनारे पर शिविर डाल कर सिंघण के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। उधर सिंघण मार्ग में पड़ते ग्रामों, नगरों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ आगे बढ़ता चला आ रहा था। भरौंच का समस्त प्रदेश नष्ट करके ज्योंहि उसने आगे बढ़ना चाहा, उसके गुप्तचरों तथा महामात्य वस्तुपाल के भेष बदले हुये गुप्तचरों ने उसको यह सब पता लग गया कि कई गुणे सैन्य के साथ मण्डलेश्वर माही नदी के तट पर पड़ा हुआ है। बहुत दिवस निकल गये, लेकिन किधर से भी पहिले आक्रमण करने का साहस नहीं हो सका। अन्त में महामात्य वस्तुपाल के चातुर्य्य एवं उसके गुप्तचरों के कुशल प्रयास से दोनों में वि० सं० १२८८ वैशाख शु० १५ को संधि हो गई। सिंघण संधि करके पुनः अपने देश को लौट गया। सिंघण और राणक वीरधवल में फिर सदा मैत्री रही।

वि० सं० १२८८ में सिंघण का द्वितीय आक्रमण और स्थायी संधि।

अब गूर्जरदेश बाहर तथा भीतर सर्व प्रकार के उपद्रवों, विप्लवों, आक्रमणों से मुक्त हो गया। दिल्ली और यादवगिरि के शासकों के साथ हुई संधियों के विषय में श्रवण कर मालवपति भी शाँत बैठ गया और उसने भी गूर्जरदेश पर आक्रमण करने का विचार मस्तिष्क में से ही निकाल दिया और फिर बादशाह अल्तमश ने जब वि० सं० १२९०-९१ में ग्वालियर को विजय करके दूसरे वर्ष मालवा पर आक्रमण किया और भीलसा का प्रसिद्ध दुर्ग जीता तथा प्रसिद्ध नगर उज्जैन को नष्ट-भ्रष्ट करके महाकालकेश्वर के मन्दिर को लूटा तब तो इससे और भी मालवपति देवपाल की शक्ति क्षीण हो गई।

दिल्लीपति और सिंघण के साथ हुई संधियों का मालवपति पर प्रभाव

इस अवसर से लाभ उठाकर दंडनायक तेजपाल ने राणक वीरधवल को साथ में लेकर वि० सं० १२९५ में लाट पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि लाटनरेश शंख राणक वीरधवल से वि० सं० १२९३ में पुनः दृढ़ मैत्री कर चुका था। परन्तु फिर भी वह मालवपति और सिंघण से मिलकर छिपे २ षड़यन्त्र रचता रहता था, अतः महामात्य ने ऐसे शत्रु का अन्त करने के लिये यह बहुत ही उपयुक्त समय समझा। इस युद्ध में शंख मारा गया और स्वयं राणक वीरधवल घायल होकर अश्व पर से पृथ्वी पर गिर पड़ा। वि० सं० १२९६ (सन् १२३९) में दंडनायक तेजपाल को वहाँ का शासक नियुक्त करके भरौंच सदा के लिये गूर्जरसाम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

लाटनरेश शंख का अन्त और लाट का गूर्जरभूमि में मिलाना

यद्यपि वैसे तो गूर्जरभूमि का यह पतनकाल था। जिस गूर्जरभूमि के सम्राटों का लोहा महमूदगौरी, मुहमद गजनवी, कुतुबुद्दीन मान चुके थे, धाराधीप भोज गूर्जरसम्राट् की तलवार का भक्ष्य बन चुका था, भारत के किसी भी प्रान्त, प्रदेश का कोई भी राजा और सम्राट् गूर्जरभूमि पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता था, भीम द्वितीय के इस शासनकाल में स्वयं गूर्जरभूमि के

मन्त्री भ्राताओं के शौर्य का संक्षिप्त सिंहावलोकन

G. G. Pt. III P. 218

सामंत, ठक्कुर, माण्डलिक पत्तन से अपना संबंध विच्छेद कर चुके थे और अपने को स्वतन्त्र राजा समझने लगे थे और जिनको भीमदेव द्वि० पुनः वश में नहीं कर सका था तथा बाहर से होने वाले आक्रमणकारियों को भी वह रोकने में सदा विफल रहा; वहाँ राणक वीरधवल और महामण्डलेश्वर इन दो मंत्री भ्राता वस्तुपाल, तेजपाल के बल, शौर्य्य, बुद्धि और चातुर्य्य की सहायता पाकर गूर्जरसामंतों, ठक्कुरों, माण्डलिकों को पुनः गूर्जरसम्राट् के आज्ञावर्त्ती बना सके और दिल्लीपति, यादवगिरिनरेशों के आक्रमणों को विफल करने में सफल हो सके—मंत्री भ्राताओं का अमात्य-कार्य कैसे सराहनीय नहीं कहा जा सकता है।

महामात्य की नीतिज्ञता से गृहकलह का उन्मूलन

राणक वीरधवल का स्वर्गारोहण और वीशलदेव का राज्यारोहण तथा वीरमदेव का अंत

वि० सं० १२६५ (ई० सन् १२३८) में भरौंच के युद्ध में वीरधवल अति घायल हुआ और धवलकपुर में पहुंचते ही वीरगति को प्राप्त हो गया। समस्त गूर्जरप्रदेश में हाहाकार मच गया; क्योंकि वीरधवल ही एक ऐसा शासक था जो गूर्जरभूमि को निर्बल गूर्जरसम्राट् द्वितीय भीमदेव के अकुशल एवं शिथिल शासनकाल में बाहरी आक्रमणों से तथा भीतरी उपद्रवों से बचा सका था। वीरधवल के साथ उसकी मानिता राणियाँ तथा उसके १२० कृपापात्र अंगरक्षक भी जल कर स्वर्गगति को प्राप्त हुये। दिग्मूढ़-सा महामात्य वस्तुपाल भी वीरधवल की चिता में जलने के लिये बहुत उत्साहित हुआ, लेकिन राजगुरु सोमेश्वर के सदुपदेश से वह रुक गया। अनेक सामंत और ठक्कुर भी चिता में जलने को तैयार हुये, लेकिन दंडनायक तेजपाल ने अपने अंगरक्षक सैनिकों की सहायता से उनको भी जलने से रोका। महामात्य वस्तुपाल ने वीरधवल के छोटे पुत्र वीशलदेव को जो बड़े पुत्र ऐयाशी वीरमदेव से अधिक उदार एवं बुद्धिमान था सिंहासनारूढ़ करना चाहा। वीरमदेव को वीरधवल भी नहीं चाहता था। वीरधवल की मृत्यु सुन कर वीरमदेव अपने साथी सामंत और ठक्कुरों को लेकर महामात्य वस्तुपाल से युद्ध करने को तैयार हुआ। वीरमदेव हारा और अपने श्वसुर जालोर के राजा उदयसिंह चौहान के पास सहायतार्थ पहुँचा।

G. G. Pt. III P. 219

व० च० प्र० प्र० श्लो० ४ से ४३ पृ० १२७, १२८। प्र० चि० (हिन्दी) कु० प्र० १६४) १६५) पृ० १२८, १२६

प्र० को० व० प्र० १५०) पृ० १२४, १२५

G. G. Pt. III P. 219

अनेक ग्रंथों में ऐसा लिखा मिलता है कि वीरधवल अपने संबंधी पंचग्राम के राजा अर्थात् राणी जयतलदेवी के भ्राता सांगण और चामुण्ड के साथ युद्ध करता हुआ रणभूमि में घोड़े पर से घायल होकर गिर पड़ा और मृत्यु को प्राप्त हुआ। यह युद्ध तो वि० सं० १२७७ में हुआ था और वीरधवल का स्वर्गारोहण वि० सं० १२६५ में हुआ अतः पंचग्राम के नृपतियों के साथ युद्ध करता हुआ वीरधवल घायल होकर गिर पड़ा और अंत में मृत्यु को प्राप्त हुआ, अमान्य है। वीरधवल का घायल होना और घोड़े पर से गिर पड़नेवाली एक घटना भद्रेश्वर के राजा भीमदेव के साथ हुये युद्ध की भी है। लेकिन इस युद्ध में वीरधवल घायल अवश्य हुआ था, लेकिन मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ था। वि० सं० १२६५ में सुअवसर देखकर उसने लाटनरेश शंख के ऊपर आक्रमण किया। इस युद्ध में शंख भी मारा गया और वीरधवल भी अत्यन्त घायल हुआ और अन्त में धवलकपुर में वीरगति को प्राप्त हुआ।

महामात्य का इस आशय का पत्र चौहान राजा उदयसिंह के पास पहुँचा कि वीरमदेव भाग कर आया है, अगर उसकी तुमने सहायता की तो अपने प्राण भी खोओगे और राज्य भी गुमाओगे। वीरमदेव कुछ दिनों के बाद मार दिया गया और उसका सिर धवलक्कपुर भेज दिया गया। वीरमदेव को मरवाये जाने का एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि वह अपने श्वसुर उदयसिंह को मारकर स्वयं जालोर का शासक बनने का प्रयत्न करने लगा था तथा आने जाने वाले यात्रियों को लूट कर उनको बड़ा तंग करने लगा था। अंत में उदयसिंह ने अपने वीर सैनिकों को भेज कर उसको मरवा डाला। गूर्जरभूमि एक बार फिर गृहकलह की अग्नि में पड़ कर भस्म होने से बच गयी। मण्डलेश्वर लवणप्रसाद भी इस समय जीवित थे। वीरमदेव उनको वीशलदेव से अधिक प्रियतर था। लेकिन वीरमदेव एक बार स्वयं मण्डलेश्वर को मारने पर उतारु हो गया था। अतः उन्होंने भी वीरमदेव की सहायता करने का तथा उसको सिंहासनारूढ़ करवाने का विचार ही नहीं किया। गूर्जरसम्राट् भीमदेव द्वि० भी वीरमदेव को नहीं चाहते थे। महामात्य वस्तुपाल के बल और बुद्धि से वीशलदेव का राज्य अब निष्कंटक हो गया।

वीशलदेव की सार्वभौमता और डाहलेश्वर का दमन

गूर्जरप्रदेश के सर्व सामन्तों ने, ठक्कुरों ने एवं माण्डलिकों ने राणक वीशलदेव को अपना शिरोमणि स्वीकार कर लिया, लेकिन एक डाहलेश्वर नरसिंहदेव जो कर्ण का वंशज था और बाघेलावंश की हुई उन्नति और बढ़ते हुये गौरव को देखकर जलता था, वीरधवल का स्वर्गारोहण सुनकर स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करने लगा। वि० सं० १२९५ में लाटप्रदेश को वीरधवल ने जीत लिया था और अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। शंख का पुत्र भी डाहल के राजा से जा मिला और उसने भी अपने पिता का खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करना चाहा। वीशलदेव अभी अभिनव और अनुभवहीन शासक था, वह यह देखकर भयभीत हो उठा; लेकिन महामात्य वस्तुपाल तेजपाल ने इससे घबराने का कोई कारण नहीं समझा। दंडनायक तेजपाल विशाल सैन्य लेकर डाहलेश्वर का सामना करने को चला। डाहलेश्वर परास्त हुआ और उसने वीशलदेव की अधीनता स्वीकार की। तेजपाल को डाहलेश्वर ने एक लक्ष स्वर्णमुद्रायें और अनेक बहुमूल्य वस्तुयें भेंट कीं। तेजपाल बहुमूल्य वस्तुयें और एक लक्ष स्वर्णमुद्रायें लेकर वीशलदेव की राजसभा में पहुँचा। वीशलदेव ने उठकर तेजपाल का पितातुल्य स्वागत किया और पारितोषिक रूप में एक लक्ष स्वर्णमुद्रायें जो डाहलेश्वर ने भेंट रूप में भेजी थीं, तेजपाल को ही भेंट में प्रदान कर दीं।

रा० मा० (वीरम अने वीशल, वीरमसंबंधी बीजी हकीकत) पृ० ४७८-४८२

रा० मा० (वीसलदेव अने डाहलेश्वर वच्चे संग्राम) पृ० ४८३) से ४८५

व० च० अष्टम प्र० श्लोक ५५ से ७६ पृ० १२८, १२९

महामात्य का पदत्याग और उसका स्वर्गारोहण

महाराणक वीशलदेव का अब राज्य निष्कंटक हो चुका था। उत्तराधिकारी वीरमदेव भी स्वर्गस्थ हो चुका था। समस्त गूर्जरसाम्राज्य में एकदम शांति और सुव्यवस्था थी। यद्यपि महाराणक वीरधवल के अकस्मात् देहावसान से गूर्जरराज्य को एक बहुत बड़ा धक्का लगा था। परन्तु फिर भी मन्त्री भ्राताओं के तेज, बल, पराक्रम, प्रभाव और व्यक्तित्व से स्थिति बिगड़ नहीं पाई। राज्यकोष भी परिपूर्ण था। बाह्य शत्रुओं का भी अन्त-सा हो गया था। गूर्जरसैन्य अत्यन्त समृद्ध और विस्तृत था। वीशलदेव के नाम पर मंत्री भ्राताओं ने अगणित धन व्यय कर वीशलदेव नामक एक अति रमणीक नगर बसाया। उसको समृद्ध राजप्रासादों, उद्यानों, सरोवर, वापी, कूप और मन्दिरों-हाट-बाटों से सुसज्जित बनाया। सर्वत्र शान्ति एवं सुव्यवस्था थी, लेकिन फिर भी महामात्य को अपना अभिन्न मित्र महाराणक वीरधवल के स्वर्गस्थ हो जाने से चैन नहीं पड़ती थी। निदान अपना भी अन्त समय निकट आया हुआ जानकर एक दिन महामात्य ने राजसभा में महाराणक वीशलदेव के समक्ष राज्यमुद्रा अर्पित करते हुये अब राज्यकार्य करने से अपनी अनिच्छा प्रकट की। महाराणक वीशलदेव के बार-बार प्रार्थना करने पर भी वस्तुपाल अपने निश्चय से नहीं टले। अन्त में वस्तुपाल की प्रार्थना मान्य करनी पड़ी। महाराणक वीशलदेव ने वह राज्य-मुद्रा दंडनायक

'एतत्किं पुनरात्मनैव सुजनैराच्छिद्यमानोप्यसौ मन्त्रीशस्य मृशायते स्म निभृतं देहेऽस्य दाहज्वरः' ।।२६।।'
'वर्षे हर्षनिपण्णपण्णवतिके श्रीविक्रमोर्वीभृतः कालाद् द्वादशसंख्यहायनशतात् मासेऽत्र माघाह्वये ।
पंचम्यां च तिथौ दिनादिसमये वारे च भानोऽस्तवोढोढुं सद्गतिमस्ति लग्नमसमं तत्त्वर्यतां त्वर्यताम्' ।।३७।।
'विज्ञाप्येति निगूढमन्यु ललितादेव्या विसृष्टोऽनुगानापृच्छ्याश्रुपरान्पुरीपरिसरे पौरान्समस्तावनु ।
राज्योद्धारनयप्रचारविषये मंत्रीश्वरः शिक्षयंस्तेजःपालमसावदः समलसधानस्थितः प्रस्थितः' ।।४७।।

व० वि० सं० १४ पृ० ७७-७८

प्र० को० पृ० १२७। रा० मा० भा० २ पृ० ४६३, ४६४ }
पु० प्र० सं० पृ० ६८। व० च० प्रस्ताव ८, पृ० १३० श्लो० ४२ } महामात्य वस्तुपाल का स्वर्गारोहण वि० सं० १२६८ में लिखा है।

उक्त सर्व ग्रंथ रचनाकाल की दृष्टि से महामात्य वस्तुपाल के पीछे के हैं और 'वसंतविलास' नामक नाटक की रचना महामात्य वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह के विनोदार्थ वस्तुपाल के समाश्रित तथा समकालीन कवि बालचन्द्रसूरिकृत है, अतः यह ग्रंथ अधिक प्रमाणित है।

(A) Mr. T. M. Tripathi B. A. informs that he has found the following dates of the deaths of the two brothers in an old leaf of a paper ms. *'सं० १२९६ महं० वस्तुपालो दिवंगतः । सं० १३०४ महं० तेजःपालो दिवंगतः ।'*

(B) व० वि० Introduction P. VIII

'स्वस्ति सं० १२९६ वर्षे वैशाख शुदि ३ श्रीशत्रुंजयतीर्थे महामात्यतेजःपालेन कारित' प्रा० जै० ल० सं० ले० ६६

व० वि० Introduction P. XI

वि० सं० १२९५ में महाराणक वीरधवल की मृत्यु हुई और वि० सं० १२९६ में महामात्य की। इस एक वर्ष के काल में वीरमदेव का युद्ध, डाहलेश्वर का युद्ध और वीशलदेव का राज्यारोहण और फिर ऐसी स्थिति में महाबली, पराक्रमी, यशस्वी, धर्मात्मा, न्यायशील महाप्रभावक महामात्य वस्तुपाल को पदच्युत करने की कथा और उसके कतिपय बार अपमानों की वार्ता और वे भी वीशलदेव के द्वारा जो अभी नवशासक है और जिस स्वयं के ऊपर महामात्य के अनंत उपकार हैं, महामात्य के प्रभाव से ही जिसको राज्यगद्दी प्राप्त हुई है– कल्पित और पीछे से जोड़ी हुई हैं। फिर भी प्रसिद्ध २ अपमानजनक घटनाओं का उल्लेख चरणलेखों में कर देता हूँ।

तेजपाल को अर्पित की और भरी राजसभा में महामात्य वस्तुपाल का पितातुल्य सम्मान और अर्चन किया और अपने सामन्तों, उच्च राज्यकर्मचारियों और प्रसिद्ध सुभट तथा योद्धाओं तथा राज्य के पंडितों और श्रीमन्तों के सहित वह महामात्य को उसके घर तक पहुँचाने गया।

राणक वीरधवल के साम्राज्य का विस्तार, भीतरी एवं बाहरी शत्रुओं के भय का नाश एक मात्र महामात्य वस्तुपाल और दंडनायक तेजपाल के बुद्धि, बल एवं कुशलता से हो सका था। स्वयं वीशलदेव जो राज्यसिंहासन का अधिकारी न होते हुए भी सिंहासनारूढ़ हो सका था यह भी प्रताप मन्त्री भ्राताओं का था। परन्तु वीशलदेव अनुभवहीन होने के कारण मन्त्री भ्राताओं के वैभव और तेज-प्रताप को देखकर मन ही मन कुढ़ने लगा। मन्त्री भ्राताओं के दुश्मनों एवं निंदकों को अब अच्छा समय मिला और वे इन मंत्री-भ्राताओं के विषय में अनेक झूठी-सच्ची बातें बनाकर वीशलदेव को इन पर अधिक कुपित करने लगे। वि० सं० १२९६ के आरंभ में एक दिन वीशलदेव ने दंडनायक तेजपाल को राज्यमुद्रा अपने मित्र नागड़ को अर्पण कर देने की आज्ञा दी। महामात्य वस्तुपाल ने सहर्ष राज्यमुद्रा अर्पण करवा दी। राणक वीशलदेव ने महामात्य वस्तुपाल को श्रीकरण के पद से हटाकर लघुश्रीकरण का पद दिया। समयज्ञ एवं अनुभवशील चतुर मन्त्री भ्राताओं ने यह अपमान सहन कर लिया। महाकवि सोमेश्वर, मण्डलेश्वर लवणप्रसाद ऐसे परम उपकारी देशभक्त, धर्मवीर, रणवीर मन्त्री भ्राताओं का यह अपमान देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। वे भी अब वृद्ध हो चुके थे और स्वयं मन्त्री भ्राता भी अब वृद्ध हो चुके थे और थोड़े समय में तो अवकाश ग्रहण करने वाले ही थे, इसके अतिरिक्त सिंहासन का सच्चा अधिकारी वीरमदेव भी स्वर्ग को पहुँच चुका था, ऐसी स्थिति में उन्होंने हठाग्रही और कुविचारी वीशलदेव को हितोपदेश देने में लाभ के स्थान में हानि ही होती सोची और अतः चुप रह गये। रा० मा० भा० २ पृ० ४८६

राज्ञा पूर्वप्रीत्या [वृद्धनगरीय] नागड़नामा विप्रः प्रधानीकृतः। मन्त्रिणः पुनर्लघुश्रीकरणमात्रं दत्तम्।

प्र० को० व० प्र० (५१) पृ० १२५

वीशलदेव का समराक नामक प्रतिहार था। यह महामात्य वस्तुपाल द्वारा किसी अपराध के कारण पहिले दण्डित हो चुका था। वीशलदेव का यह कृपापात्र हो चला था। अब इसने प्रतिशोध लेने का यह अच्छा अवसर समझा। इसने निर्बुद्धि वीशलदेव के मन में यह बात गहरी जमा दी कि मन्त्री भ्राताओं के पास जो अतुल वैभव और धन-सम्पत्ति है वह सब राज्य की है और इन्होंने धर्मस्थानों में, तीर्थों में, नगर, पुर, ग्रामों में जो धन व्यय किया है, वह सब भी राज्य का ही धन था। राज्यकोष भी अब वैसा समृद्ध नहीं रह गया था, जैसा राणक वीरधवल के समय में था। मन्त्री भ्राताओं के पदों में अवनति करने के पश्चात् राज्यकोष में बाहर से आने वाली आय भी कम पड़ गई थी। राणक वीरधवल की पुण्यस्मृति में मन्त्री भ्राताओं ने वीशलदेव के आदेश से वीशलपुर नामक नगर अति धन व्यय करके बसाया था। अनेक मन्दिर बनवाये गये थे। इनमें ब्रह्माजी का मन्दिर अत्यन्त धन व्यय करके बनवाया गया था और वह कला की दृष्टि से अधिक प्रसिद्ध था। यह नगर हर प्रकार से समृद्ध एवं वैभवशाली बनाया गया था। इस नगर के बसाने में राज्यकोष का बहुत द्रव्य लगा था। इस नगर के बस जाने के थोड़े दिनों पश्चात् ही वीशलदेव ने मन्त्री भ्राताओं का अपमान करना प्रारंभ कर दिया और राज्यमुद्रा भी छीन ली। अतः वह रिक्त हुआ राज्यकोष पुनः समृद्ध नहीं हो सका। दुर्बुद्धि वीशलदेव ने मन्त्री भ्राताओं पर राज्यद्रव्य खाने का अपराध लगा कर उनके अगणित द्रव्य को छीन कर रिक्त होते जाते राज्यकोष को भरने का समराक की बातों में आकर अनुचित विचार किया। रा० मा० भा० २ पृ० ४८७

'निजनाम्ना निवेश्योर्व्यां, नगरं मन्त्रिणा नवं। श्री वीसलनृपोऽनेकधर्मस्थानमनोहरम्' ॥४७॥ व०च०अ० ७ पृ० १२८

'एकसमराकनामा प्रतिहारो..................देव। अनयोः पार्श्वेऽनन्तधनमस्ति तदाच्यताम्'। प्र०को० (५१) पृ० १२५

राणक वीशलदेव ने एक दिन दोनों मंत्री भ्राताओं को आज्ञा दी कि वे अपना समस्त धन लेकर राजसभा में उपस्थित होवें। मंत्री भ्राताओं ने कहा कि उनके पास जितना द्रव्य संचित हुआ था वह अधिकांश में शत्रुञ्जयादि तीर्थों में व्यय किया जा चुका है। राजा ने हठ पकड़ ली और अंत में जब मंत्री भ्राता राजा की उक्त आज्ञा पालने में तत्पर होते नहीं दिखाई दिये तो राजा ने दुष्ट राजसभासदों की बातों में आकर एक घट में काला सर्प रखवाया और उस सर्प को घट में से निकाल कर सत्यता का परिचय देने के लिये मंत्री भ्राताओं से कहा। मण्डलेश्वर लवणप्रसाद ने वीशलदेव को बहुत समझाया, परन्तु वह निर्बुद्धि राजा नहीं माना। अंत में ज्योंहि महामात्य वस्तुपाल राजसभा के मध्य में रक्खे हुए घट में से सर्प निकालने को उठा महाकवि सोमेश्वर जो अब तक वीशलदेव की मूर्खता को देखकर मन में कुढ़ रहे थे और सोच रहे थे कि ऐसे राजाधम शासक को क्यों न सिंहासन से च्युत कर दिया जाय जो गूर्जरभूमि के एकमात्र सुपुत्र, परम भक्त, महाधार्मिक, सर्वगुणसम्पन्न, अजेय योद्धा पर राज्यमद में आकर अत्याचार करने पर उतारु हो रहा है, उठे

एक दिन महामात्य वस्तुपाल को ज्वर चढ़ आया। महामात्य वस्तुपाल ने अपना अन्तिम दिवस निकट आया समझ कर शत्रुंजयतीर्थ की अन्तिम यात्रा करने की तैयारी की। महाराणक वीशलदेव और समस्त सामंत, चतुरंगिणी सैन्य, नगर के श्रीमंत, पंडित, आबालवृद्ध जन और महामात्य के संबंधी और परिजन महामात्य को धवलकपुर के बाहर बहुत दूर तक विदा करने आये। महामात्य ने सर्वजनों से खमत-खमापना किये और महाराणक वीशलदेव को आशीर्वचन देकर तीर्थ की ओर प्रस्थान किया। यह महामात्य की तेरहवीं तीर्थयात्रा थी। महामात्य के साथ में उसकी दोनों स्त्रियाँ और सारा परिवार था। मार्ग में अंकेवालिया नामक ग्राम में महामात्य का स्वर्गवास वि० सं० १२६६ माघ शुक्ला ५ (पंचमी) रविवार के दिन हो गया। महामात्य का अन्तिम संस्कार

और महामात्य वस्तुपाल को सर्प निकालने से रोकते हुये राणक वीशलदेव को भर्त्सना देने लगे और उन मंत्री भ्राताओं के सारे परोपकार, महत्त्व के कार्य जो उन्होंने राज्य, राजपरिवार, राणक वीरधवल और स्वयं वीशलदेव को सिंहासनारूढ़ कराने के लिये किये थे कह सुनाये और कहा कि राजन् ! अगर ऐसे राज्य के महोपकारी पुरुषोत्तम के ऊपर भी तुम्हारी कुदृष्टि हो सकती है तो हम भी आपके विषय में क्या विचार कर सकते हैं सोच लेना चाहिए। ये मंत्री भ्राता सरस्वती के और धर्म के पुत्र हैं। इन्हें कौन जीत सकता है और इन पर कौन अत्याचार करने में समर्थ हैं। ये तुम्हें मात्र अपना बालक समझकर क्षमा कर रहे हैं। ये विपरीत हो जाँय तो तुम्हारे चाटुकार राज्य-समासद् जिन्होंने तुम्हारे मस्तिष्क को बिगाड़ दिया है, एक पलभर के लिए इनके समक्ष नहीं टहर सकेंगे। जब राणक वीरधवल ने इनको महामात्यपदों का भार संभालने के लिये आमंत्रित किया था, उस समय राणक वीरधवल मंत्री भ्राताओं के द्वारा निमंत्रित होकर पहिले इनके घर भोजन करने गया था। उस समय इन दूरदर्शी मंत्री भ्राताओं ने राणक वीरधवल से यह वचन ले लिया था कि अगर राजा कभी कुपित भी हो जाय तो इनके पास जितना अभी द्रव्य है, उतना इनके पास रहने देकर मुक्त कर दिया जाय। महाकवि की भर्त्सना से राणक वीशलदेव का क्रोध शांत पड़ गया और मंत्री भ्राताओं के उपकारों को स्मरण कर वह रोने लगा और सिंहासन से उठकर मन्त्री भ्राताओं से क्षमा मांगता हुआ अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगा और कहने लगा कि वे अपना राज्यसंचालन का भार पुनः संभालें। मंत्री भ्राताओं ने वृद्धावस्था आ जाने के कारण वह अस्वीकार किया। परन्तु वीशलदेव हठी था, उसने एक नहीं मानी। अन्त में तेजपाल महामात्यपद पर आरूढ किया गया और महामात्य वस्तुपाल ने विरक्त जीवन व्यतीत करने की अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट करते हुए राणक वीशलदेव से उसको राज्यकार्य से मुक्त करने की प्रार्थना की। राणक वीशलदेव को भारी हृदय के साथ महामात्य की अन्तिम इच्छा को स्वीकार करना पड़ा और वह महामात्य को उसके घर तक पहुँचाने बड़े समारोह के साथ गया।

एक दिन मामा सिंह अपने प्रासाद से राजप्रासाद को जा रहे थे। मार्ग में जब वे पालखी में बैठे हुए निकल रहे थे, एक जैन उपाश्रय की ऊपरी मंजिल से किसी जैन साधु ने कूड़ा-कर्कट डाल दिया और वह रथ में बैठे हुये मामा सिंह पर उड़कर गिर पड़ा। यह देखकर मामा सिंह अत्यन्त क्रोधित हुये और रथ से उतर कर उपाश्रय की ऊपर की मंजिल पर गये और साधु को प्रताड़ना दी। उक्त साधु रोता हुआ महामात्य वस्तुपाल के पास पहुँचा। महामात्य उस समय भोजन करने बैठा ही था, यह कथनी श्रवण कर वह उठ बैठा और अपने सेवकों को बुलाकर कहा कि क्या कोई ऐसा वीर-योद्धा है, जो धर्म और गुरु का अपमान करने वाले अपराध के दंड में मामा सिंह का बाँया हाथ काट कर ला सके। भुवनपाल नामक एक वीर आगे बढ़ा और महामात्य ने उसको सज्जित होकर जाने की आज्ञा दी और शेष सब सेवकों को विशेष परिस्थिति के लिये तैयार रहने की तथा जो मरने से डरते हो उनको घर जाने की आज्ञा दी। भुवनपाल घोड़े पर चढ़ कर दौड़ा और मामा सिंह के पास जा पहुँचा। नमस्कार करके संकेत किया कि महामात्य का कोई संदेश लेकर आया हूँ। मामा सिंह ज्योंहि संदेश सुनने को झुका कि भुवनपाल ने उसका बाँया हाथ काट लिया और तुरत घोड़ा दौड़ाकर महामात्य के पास आ पहुँचा और कटा हुआ हाथ आगे रक्खा। महामात्य ने उसको धन्यवाद दिया और युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दी। मामा का हाथ मन्त्रीप्रासाद के सिंहद्वार के बाहर दिवार पर दिखाई देता हुआ लटका दिया गया कि जिससे लोग समझ सके की किसी धर्म का अपमान करने का कैसा फल होता है।

उधर मामा सिंह का हाथ काटा गया है जेठवाजाति के लोगों ने सुनकर महामात्य को नीचा दिखाने के लिये युद्ध की तैयारी प्रारंभ की। बात की बात में सारे नगर में खलबली मच गई। मामा सिंह राजसभा में पहुंचा और महाराणक वीशलदेव को जो उसका भानजा था, महामात्य वस्तुपाल के सेवक द्वारा अपने हाथ के काटे जाने की बात कही। वीशलदेव ने प्रत्युत्तर में कहा कि

श्रीशत्रुंजयपर्वत पर विविध सुगन्धित पदार्थों, कर्पूर, चन्दन, श्रीफलों से किया गया। महामात्य के स्वर्गारोहण से समस्त गूर्जरसाम्राज्य में महाशोक छा गया। महामात्य तेजपाल तथा जैत्रसिंह ने दाहसंस्थान पर जहाँ महामात्य वस्तुपाल का अग्निसंस्कार किया गया था, स्वर्गारोहण नामक प्रासाद विनिर्मित करवाया और उसमें नमि और विनमि के साथ में श्री आदिनाथ-प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया।

मंत्री भ्राताओं का अद्भुत वैभव और उनकी साहित्य एवं धर्मसंबंधी महान् सेवायें

वस्तुपाल ने अपनी सफल नीति एवं चातुर्य्य से, तेजपाल ने रणकौशल एवं जयमाला से अर्थात् दोनों भ्राताओं ने अपने २ बुद्धि, बल, साहस, पराक्रम से धवलकपुर के मण्डलेश्वर राणक वीरधवल को सार्वभौम सत्ताधीश, महावैभवशाली, अजेय राजा बना दिया। धवलकपुर के राजकोष में धन की प्रचंड बाढ़ आ गई थी, सैन्य में अनंत वृद्धि एवं समृद्धि हो गई थी। इसके बदले में महामण्डलेश्वर लवणप्रसाद एवं राणक वीरधवल ने भी समय-समय पर दोनों भ्राताओं का अपार धनराशि, मौक्तिक, माणिक, गज, अश्व पारितोषिक रूप से प्रदान कर अद्भुत मान-सम्मान सहित बार २ स्वागत किया, जिसके फलस्वरूप वस्तुपाल-तेजपाल का ऐश्वर्य्य वर्णनातीत हो गया और ये दोनों मंत्री भ्राता

महामात्य वस्तुपाल जैसा धर्मात्मा और न्यायशील पुरुष कभी भी ऐसा कोई कार्य अकारण नहीं कर सकता। राजगुरु सोमेश्वर को महाराणक वीशलदेव ने महामात्य वस्तुपाल के पास भेजा कि वे पता लगावें कि इस घटना का कारण क्या है और महामात्य वस्तुपाल को राजसभा में लावें। सोमेश्वर महामात्य के प्रासाद को पहुंचे और मन्त्री के पास उपस्थित हुए। मन्त्री को सुसज्जित देखकर और मन्त्री के मुख से आदि से अन्त तक की कहानी श्रवण कर सोमेश्वर ने कहा, 'मन्त्रीप्रवर! छोटी-सी बात को इतना बढ़ा दिया, सिंह महाराणक का मामा है, जेठवाजाति प्रतिशोध लेने के लिये तैयार हो चुकी है, सारा नगर भयत्रस्त हो चुका है; अब आप राजसभा में चलें और किसी प्रकार समझौता कर लें।' महामात्य ने सोमेश्वर से कहा, 'मित्रवर! धर्म का अपमान मैं नहीं देख सकता। सारे सुख और वैभव भोगे। अन्तिम अवस्था है। मेरी हार्दिक इच्छा भी अब यही है कि जैसे धर्म के लिये जिया उसी प्रकार धर्म के लिए मरूं।' सोमेश्वर महामात्य का दृढ़ निश्चय देखकर वहाँ से विदा हुये और राजसभा में पहुँच कर महाराणक वीशलदेव को सारी स्थिति, महामात्य का दृढ़ निश्चय समझा दिया। महाराणक वीशलदेव ने सोमेश्वर से पूछा। 'गुरुदेव! ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए, कुछ समझ में नहीं आता।' सोमेश्वर ने कहा—'वीशलदेव! महामात्य वस्तुपाल महाधर्मात्मा, न्यायशील, सरस्वतीभक्त, उच्चकोटि का विद्वान् है और गूर्जरसाम्राज्य के ऊपर तथा आप स्वयं के ऊपर उसने अपार उपकार किये हैं, जिनका बदला कभी भी नहीं चुकाया जा सकता और फिर यहाँ तो मामा जेठवा का अपराध पहिले हुआ है। महामात्य को सन्मानपूर्वक राजसभा में बुलवाना चाहिए और मामा जेठवा महामात्य से अपने द्वारा किये गये धर्म का अपमान करने वाले अपराध की क्षमा मांगे और तत्पश्चात् महामात्य को सम्मानपूर्वक विदा करके घर पहुंचाना चाहिए। महामात्य एक ऐसे अमूल्य व्यक्ति हैं, जो समय पर काम देने वाले हैं।' महाराणक ने महामात्य को सम्मानपूर्वक राजसभा में लाने के लिये अपने प्रसिद्ध २ सामन्तों को भेजा। महामात्य उसी वीर-वेष में राजसभा में आये। महाराणक वीशलदेव ने उनका पिता तुल्य सम्मान किया। मामा जेठवा ने अपने किये गये अपराध की चरणों में पड़कर क्षमा मांगी। महामात्य वस्तुपाल ने महाराणक वीशलदेव को शासन किस प्रकार करना चाहिए पर अनेक रीति संबंधी हितोपदेश दिया और आशीर्वचन देकर विदा ली। महाराणक वीशलदेव ने प्रतिज्ञा ली कि आगे वह कभी भी अपने शासनकाल में जैन-साधुओं का अपमान नहीं होने देगा और जो अपमान करेगा उसको वह कठोर दण्ड देगा। तदुपरांत महामात्य को उसके घर पर अत्यन्त सम्मान और समारोह के साथ पहुँचाया।

जैसी समाज, देश और धर्म की तथा कला, विज्ञान और विद्या की सेवा कर सके, वैसा अमात्य संसार में आज तक तो कोई नहीं हुआ जिसने इनसे बढ़कर अपने धन का, तन का और शुद्धात्मा का उपयोग इस प्रकार निर्विकार, वीतराग, स्नेह-प्रेम-वत्सलता से जनहित के लिये बिना ज्ञाति, धर्म, सम्प्रदाय, प्रान्त, देश के भेद के मुक्तभाव से किया हो। महामात्य की समृद्धता का पता निम्न अंकनों से स्वतः सिद्ध हो जाता है।

नित्य वस्तुपाल की सेवा में चत्रियवंशी उत्तम सुभट	१८००
,, तेजपाल की सेवा में महातेजस्वी रणांकुरे राजपुत्र	१४००
,, उत्तमज्ञातीय घोड़े	५०००
,, पवनवेगी घोड़े	२०००
,, साधारण घोड़े	१००००
,, उत्तम गायें	३००००
,, ,, बैल	२०००
,, ,, ऊंट	१०००
,, ,, भैंसें	१०००
,, ,, सांडनियाँ	१०००
,, दास-दासी	१००००
,, अनेक राजा महाराजाओं से भेंट में प्राप्त उत्तम हाथी	३००
स्वर्ण	८ (४)०००००००) का
चांदी	८०००००००) की
रत्न, माणिक, मौक्तिक	अगणित
नकद रुपये	५०००००००००)
अनेक भांति के वस्त्र-आभूषण	५०००००००००) के
द्रव्य के भंडार	५६

जैसे राजकार्य विभागों में विभक्त था, ठीक उसी प्रकार महामात्य ने अपने घर के कार्यों को भी विभागों में विभक्त

की० कौ० (गुजराति भाषांतर) पृ० ३८, ३६

'यः स्वीयमातृपितृपुत्रकलत्रबन्धुपुण्यादिपुण्यजनये जनयाञ्चकार, सद्दर्शनव्रजविकाशकृते च धर्मस्थानावलीयनीमवनीनशेषाम्'

न० ना० न० स० १६ श्लो० ॥३७॥ पृ० ६१

'तेन भ्रातृयुगेन या प्रतिपुरग्रामाध्वशैलस्थलं वापीकूपनिपानकाननसरः प्रासादसत्रादिका।
धर्मस्थानपरंपरा नवतरा चक्रेऽथ जीर्णोद्धृता तत्संख्यापि न बुध्यते यदि परं तद्वेदिनी मेदिनी' ॥६६॥

प्रा० जै० ले० सं० [अर्बुदाचल-प्रशस्ति]

'दक्षिणस्यां श्रीपर्वतं यावत् पश्चिमायां प्रभासं यावत् उत्तरस्यां केदारं यावत् तयोः कीर्तनानि सर्वाग्रेण त्रीणि कोटिशतानि चतुर्दशलक्षा अष्टादश सहस्राणि अष्टशतानि लोष्ठिकत्रितयोनानि द्रव्यव्ययः'। *वि० ती० क० ४२ पृ० ८०*

इन श्लोकों से यह स्पष्ट मानने योग्य है कि ऐसे अगणित धर्मकृत्य कराने वालों के पास इतने वैभव, धन और वाहनों का होना कोई आश्चर्यकारक बात नहीं।

कर रक्खा था। मुख्य विभाग ये थे— भोजन-विभाग, सैनिक-विभाग, धार्मिक-विभाग, साहित्य-विभाग, गुप्तचर-विभाग, निर्माण-विभाग, सेवक-विभाग। इन सर्व विभागों के अलग २ अध्यक्ष, कार्यकर्त्ता थे।

भोजन-विभाग

यह विभाग दंडनायक तेजपाल की स्त्री अनुपमादेवी की अध्यक्षता में था। महा० वस्तुपाल की स्त्री ललितादेवी संयोजिका थी। भोजन प्रति समय लगभग एक सहस्र स्त्री-पुरुषों के लिए बनता था। जिसमें साधु-सन्त, अभ्यागत, अतिथि, नवकर, चारकर, चारकरणी, प्रमुख कार्यकर्त्ता, अंगरक्षक, परिजन भोजन करते थे। स्वयं अनुपमादेवी, ललितादेवी, सौख्यकादेवी, सुहड़ादेवी और महामात्यों की भगिनियें नित्यप्रति भक्ति एवं मानपूर्वक अपने हाथों से सर्व को भोजन कराती थीं। भोजन सर्वजनों के लिये एक-सा और अति स्वादिष्ट बनता था। महाराणक वीरधवल भी एक दिन अतिथि के वेष में भोजन कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अनुपमादेवी, ललितादेवी के मुखों से पुनः २ यह श्रवण कर कि यह सर्व महाराणक वीरधवल की कृपा का प्रताप है कि वे सेवा करने के योग्य हो सके हैं, वस्तुतः इस सर्व का यश और श्रेय महाराणक वीरधवल को है, महाराणक वीरधवल इस उच्चता और श्रद्धा-भक्ति को देखकर गद्‌गद् हो उठा और अन्त में प्रकट होकर धन्यवाद देकर राजप्रासाद को गया। जैन, जैनेतर कोई भी रात्रि-भोजन नहीं कर सकता था। कंदमूल, अभक्ष्य पदार्थ भोजन में नहीं दिये जाते थे।

निजी सैनिक-विभाग

यह विभाग वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह की अधिनायकता में था। इसके सैनिक दो दलों में विभक्त थे— महामात्य वस्तुपाल के अंगरक्षक और दंडनायक तेजपाल के रणनिपुण सुभट। महा पराक्रमी एवं कुलीन अंगरक्षक अट्ठारह सौ १८०० और सुभट १४०० चौदह सौ थे। इस विभाग में वे ही सैनिक प्रविष्ट किये जाते थे जो उत्तम कुलीन, प्राणों पर खेलने वाले, गूर्जरसम्राट् और साम्राज्य के परम भक्त हों तथा जिन्होंने अनेक रणों में शौर्य्य प्रकट किया हो, आदर्श स्वामिभक्ति का परिचय दिया हो। इस प्रकार यह साम्राज्य के चुने हुये वीर, दृढ़ साहसी, विश्वासपात्र सैनिकों का एक दल था, जिस पर दोनों मन्त्री भ्राताओं, राणक और मंडलेश्वर का पूर्ण विश्वास था। भद्रेश्वरनरेश भीमसिंह के चौदह सौ सुभट राजपुत्र ही तेजपाल के सुभट थे। राज्य का सैनिक-विभाग इससे अलग था। ये सैनिक तो केवल महामात्य वस्तुपाल और दंडनायक तेजपाल के अत्यन्त विश्वासपात्र सुभट थे। ये सदा मन्त्री भ्राताओं की सेवा में तत्पर रहते थे।

साहित्य-विभाग और महामात्य के नवरत्न

यह विभाग महामात्य ने विद्वत्सभा बनाकर संस्थापित किया था, जिसके अध्यक्ष महाकवि सोमेश्वर थे। पं० हरिहर, महाकवि नानाक, मदन, सुभट, पाल्हण, जाल्हण, प्रसिद्ध शिल्पशास्त्री शोभन और महाकवि अरिसिंह नाम के सुप्रसिद्ध नव विद्वान् थे। ये सर्व विद्वान् एवं कवि लघुभोजराज वस्तुपाल के नवरत्न कहलाते थे। जैन कवि और प्रखर विद्वान् आचार्य-साधु जैसे विजयसेनसूरि, अमरचन्द्रसूरि, उदयप्रभसूरि, नरचन्द्रसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि जयसिंहसूरि, बालचन्द्रसूरि, माणिक्यचन्द्रसूरि आदि अनेक विद्वान् साधु इस सभा से सम्बन्धित थे। इनमें से प्रत्येक ने अनेक उच्च कोटि के ग्रंथ लिखकर साहित्य की वह सेवा की है, जो धारानरेश भोज के समय में की गई साहित्य की सेवा से प्रतियोगिता करती है। महामात्य वस्तुपाल स्वयं महाकवि था और उसने भी संस्कृत के कई प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। महामात्य विद्वानों, पंडितों का बड़ा समादर करता था। उसने अपने जीवन में लचों रुपये विद्वानों को पारितोषिक रूप में दिये। वह अनेक विद्वानों को भोजन, वस्त्र और अनेक बहुमूल्य वस्तुयें दान करता था। महामात्य को इसीलिये 'लघुभोजराज' कहते हैं। इस विभाग की देख-रेख में ५०० पाँच सौ लेखकशालायें प्रमुख २ नगरों में चल रही थीं। ये लेखक नवीन ग्रन्थ लिखते और अनेक विषयों के प्राचीन जैन, जैनेतर ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करते, संस्कृत में, प्राकृत में भाषा-टीका करते और अनुवाद करते थे। हर एक ग्रन्थ की तीन प्रतियाँ तैयार की जाती थीं, जो खम्भात, पत्तन, भृगुपुर के बृहद् ज्ञानभण्डारों में एक २ भेजी जाती थीं और वहाँ पर अत्यन्त सुरक्षित रक्खी जाती थीं। इस विभाग की तत्त्वावधानता में १८०००००००) अट्ठारह कोटि रुपया महामात्य ने व्यय किया था।

सोमेश्वर

प्रथम रत्न महाकवि सोमेश्वर थे। राजगुरु भी ये ही थे। पत्तन और धवलकपुर की राज्यसभाओं में इनका पूरा पूरा मान था। मण्डलेश्वर लवणप्रसाद, राणक वीरधवल, महामात्य वस्तुपाल इनको बिना पूछे और इनकी बिना सम्मति लिये कोई महत्त्व का कदम नहीं उठाते थे। महामात्य के ये सहपाठी होने के नाते अधिक प्रिय मित्र थे। राजा और अमात्यों के बीच की ये कड़ी थे। वस्तुपाल तेजपाल को महामात्यपदों पर आरूढ़ कराने में इनका अधिक हाथ था। सारे जीवन भर ये महामात्य के सुख-दुःख के साथी रहे। ये महाराणक वीरधवल और मण्डलेश्वर लवणप्रसाद से भी अधिक दोनों मन्त्री भ्राताओं का मान करते थे। महामात्य भी इनका वैसा ही सम्मान करता था। सोमेश्वर अपनी विद्वत्ता के लिये भारत में दूर २ तक प्रसिद्ध थे। एक दिन महाराणक वीरधवल की राजसभा में गौड़देश से पं० हरिहर आया। पं० हरिहर सोमेश्वर का गौरव सहन नहीं कर सका और उसने इनकी बनाई हुई वीरनारायण नामक प्रासाद विषयक १०८ श्लोकों की प्रशस्ति को चुराई हुई वस्तु कह कर भरी सभा में इनका बड़ा अपमान किया। पं० हरिहर ने जब उक्त प्रशस्ति को कंठपाठ कर सुना दिया, तब तो सच्चा महाकवि सोमेश्वर बहुत ही लज्जित हुआ। परन्तु महामात्य वस्तुपाल को सोमेश्वर जैसे महाकवि के चोर होने की बात नहीं जँची। हरिहरकृत एक अभिनव कृति की महामात्य ने दूसरे दिन ताबड़तोड़ एक प्राचीन-सी प्रतिलिपि करवाई और उसको खंभात के ज्ञानमंडार

पु० प्र० सं० व० तो० प्र० (३६) पृ० ६५

में रातोंरात पहुँचा दिया। महामात्य ने पं० हरिहर से खंभात का ज्ञानभंडार देखने की प्रार्थना की। पं० हरिहर के साथ महामात्य और सोमेश्वर भी खंभात गये। ज्ञानभंडार देखते २ पं० हरिहर ने उक्त ग्रंथ ज्योंहि देखा, उसका लज्जा से मुंह ढँक गया। अंत में पं० हरिहर ने स्वीकार किया कि वह महाकवि सोमेश्वर का गौरव सहन नहीं कर सका; इसलिये उसने सारस्वतयंत्र की शक्ति से सोमेश्वरकृत प्रशस्ति की १०८ गाथायें सुना कर सच्चे महाकवि का अपमान किया। वीरनारायणप्रासाद की प्रशस्ति सोमेश्वरकृत ही है। इस प्रकार महामात्य ने बड़ी चतुराई से सोमेश्वर का कलंक दूर किया। सोमेश्वर राजनीति का भी धुरंधर पण्डित था। सोमेश्वर ने अपनी रचनायें संस्कृत में की हैं, जो संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। सोमेश्वरकृत प्रसिद्ध ग्रंथ १ कीर्त्तिकौमुदी २ सुरथोत्सव ३ रामशतक ४ उल्लाघराघवनाटक प्रसिद्ध हैं। ५ अर्बुदगिरि पर विनिर्मित लूणसिंहवसहिका की ७४ श्लोकों की प्रशस्ति और गिरनार मंदिरों की ६ प्रशस्तियाँ भी सोमेश्वरकृत हैं। ७वीं उपरोक्त वीरनारायणप्रासाद-प्रशस्ति है।

हरिहर —नैषध-महाकाव्य के कर्त्ता श्री हर्ष का यह वंशज था। संस्कृत का दिग्गज विद्वान् था। दक्षिण के अनेक राजाओं की राजसभा में इसने अनेक विद्वानों को जीता था। यह गौड़देश का रहने वाला था। महामात्य वस्तुपाल की कृपा प्राप्त करने के लिये यह धवलकपुर आया था। नवरत्नमणि सोमेश्वर का स्थान प्राप्त करने के लिये इसने राणक वीरधवल की भरी हुई राजसभा में सोमेश्वर की 'वीरनारायणप्रासाद-प्रशस्ति' नामक कृति को अन्य की कृति सिद्ध कर सोमेश्वर का भारी अपमान किया था, जिसका बदला महामात्य ने बड़ी चतुराई से लेकर सोमेश्वर का कलंक दूर किया था। महामात्य की विद्वत्सभा में यह भी भर्ती हो गया था। नवरत्नों में यह भी एक अमूल्य रत्न था। हरिहरकृत कोई ग्रंथ अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ, फिर भी सोमनाथ-स्तुति जो इसने सोमनाथ के दर्शन करते समय बोली थी इसके महाकवि होने का प्रमाण देती है। महामात्य वस्तुपाल इसका बड़ा संमान करता था।

मदन —यह भी संस्कृत का उद्भट विद्वान् था। इसका लिखा हुआ अभी तक कोई ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया है।

सुभट्ट —यह प्रसिद्ध नाटककार था। 'दूतांगद' इसका प्रसिद्ध संस्कृत नाटक है। यह नाटक पत्तन में सम्राट् त्रिभुवनपाल की आज्ञा से खेला गया था।

नानाक —यह भी नवरत्नों में से एक विद्वान् था। इसकी ख्याति महाराणक वीशलदेव के समय में बहुत बढ़ी हुई थी। यह नागरज्ञातीय था और इसका गोत्र कापिल्ल था। यह गुंजाग्राम का माफीदार था।

अरिसिंह—ठक्कुर लवणसिंह का पुत्र था। ठक्कुर लवणसिंह महामात्य के विश्वासपात्र व्यक्तियों में से एक था। अरिसिंह अद्वितीय कलाविज्ञ था। अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता प्रसिद्ध विद्वान् अमरचन्द्रसूरि का यह कलागुरु था। अनेक फुटकल रचनाओं के अतिरिक्त 'सुकृतसंकीर्त्तन' नामक काव्य इसकी प्रमुख रचना है, जिसमें महामात्य वस्तुपाल, तेजपाल के द्वारा कृत पुण्यकर्मों का लेखा है।

पाल्हण —इसने 'आबूरास' नामक ग्रन्थ लिखा है।

'सुभटन पदन्यास सः कोऽपि समितौकृतः। येनाऽधुनाऽपि धीराणां रामाज्ञो नापचीयते'। कीं० कौ०

वस्तुपाल तेजपाल पर इन सर्व कवि एवं आचार्यों ने अनेक ग्रन्थ, प्रशस्ति आदि लिखे हैं, जिनका परिचय यथास्थान करवा दिया गया है। उन ग्रन्थों से ही यह ज्ञात किया गया है कि मंत्री भ्राताओं का और इनका क्या सम्बन्ध था।

'मदनः, हरिहरपरिहर गर्व कविराजगजांकुशो मदनः। हरिहरः मदन विमुद्रय वदनं हरिहरचरितं स्मरातीतम्' ।।कीं० कौ।।

आल्हण—इसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सुक्तिमुक्तावली है।
शोभन—अर्बुदगिरिस्थ लूणसिंहवसति का बनाने वाला प्रसिद्ध शिल्पविज्ञ।

समाश्रित आचार्य, साधु और उनका साहित्य

विजयसेनसूरि—ये महामात्य के धर्मगुरु होने से अधिक सम्मानित थे। ये नागेन्द्रगच्छीय हरिभद्रसूरि के शिष्य थे। धार्मिक विभाग के भी ये ही अधिष्ठाता थे। विद्वान् भी उच्चकोटि के थे। इनका लिखा हुआ 'रेवंत-गिरिरासु' इतिहास की दृष्टि से एक महत्त्व का ग्रन्थ है।

उदयप्रभसूरि—कुलगुरु विजयसेनसूरि के ये शिष्य थे। संस्कृत, प्राकृत के ये प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके लिखे प्रसिद्ध ग्रन्थ ये हैं:—

(१) 'धर्माभ्युदय' (संघपतिचरित्र)–इसमें शत्रुंजयादि तीर्थों के लिये संघ निकालने वाले संघपतियों का जीवन-चरित्र संक्षिप्त रूप से लिखा है।
(२) 'उपदेशमालाकर्णिका'–यह एक टीका ग्रंथ है जो धर्मदासगणिकृत 'उपदेशमाला ग्रंथ' पर वि० सं० १२९९ में धवलकपुर में लिखी गई है।
(३) 'नेमिनाथ-चरित्र'–वि० सं० १२९९।
(४) 'आरम्भ-सिद्धि'–यह ज्योतिष ग्रंथ है।
(५) सं० १२८८ में लिखी गई वस्तुपाल तेजपाल की गिरनारतीर्थ की प्रशस्तियों में एक लेख इनका भी है। छोटे-मोटे अनेक लेख और प्रशस्तियाँ उपलब्ध हैं, जो इनको उच्च कोटि के विद्वान् होना सिद्ध करती हैं। 'सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी' नामक अति प्रसिद्ध प्रशस्ति काव्य भी इनका ही लिखा हुआ है।

अमरचन्द्रसूरि—ये 'विवेकविलास' के कर्त्ता वायड़गच्छीय सुप्रसिद्ध जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। संस्कृत, प्राकृत के महान् विद्वान् थे। इन्होंने छंद, अलंकार, व्याकरण, काव्य आदि अनेक विषयक ग्रन्थ लिखे हैं। महाकवि अरिसिंह से इन्होंने काव्य-रचना सीखी थी। इनके रचे हुये प्रसिद्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं:— १–बालभारत, २–काव्यकल्पलता (वृत्तिपरिमल सहित), ३–अलंकारबोध, ४–छंदोरत्नावली, ५–स्यादिशब्दसमुच्चय, ६–पद्मानन्दकाव्य, ७–मुक्तावली, ८–कलाकलाप, ९–कविशिक्षावृत्ति (टीका)

नरचन्द्रसूरि—ये हर्षपुरीय अथवा मलधारीगच्छ के देवप्रभसूरि के शिष्य थे। वस्तुपाल इनका अत्यधिक सम्मान करता था। संस्कृत, प्राकृत के प्रकांड विद्वान् होने के अतिरिक्त ये ज्योतिष के विशिष्ट विद्वान् थे। इनके लिखे हुये ग्रंथ इस प्रकार हैं:—

१–कथारत्नाकर, २–ज्योतिषसार (नारचन्द्रज्योतिषसार), ३–अनर्घराघवटिप्पन, ४–प्रश्नशत, ५–ज्योतिषप्रश्नचतुर्विंशिका, ६–प्राकृतप्रबोध-व्याकरण, ७–(जिनस्तोत्र) ८–अनर्घराघवनाटक-टीका, ९–सं० १२८८ की वस्तुपाल तेजपाल सम्बन्धी गिरनारतीर्थ की प्रशस्तियों में दो लेख इनके

लिखे हुये हैं, १०—न्यायकंदली (टीका), ११—वस्तुपाल-प्रशस्ति आदि अनेक प्रबन्धग्रंथों में इनके लिखे हुये सुभाषित एवं स्तुति-काव्य मिलते हैं।

नरेन्द्रप्रभसूरि—ये नरचन्द्रसूरि के शिष्य थे। ये महान् परिश्रमी एवं स्वाध्यायशील थे। प्रथम श्रेणी के पंडित होते हुये भी ये अत्यन्त विनयशील और निरभिमानी थे। इनके रचे हुये ग्रन्थ इस प्रकार हैं:—

१ अलंकारमहोदधि—इस ग्रंथ की रचना महामात्य वस्तुपाल की प्रार्थना से नरचन्द्रसूरि की आज्ञा से वि० सं० १२८२ में की गई थी। २ विवेकपादप, ३ विवेककलिका (सुक्तिसंग्रह), ४ वस्तुपाल-प्रशस्ति (दो काव्य अ० म० परि० पृ० ४०४–४१६), ५ काकुत्स्थकेलि (नाटक), ६ सं० १२८८ की वस्तुपाल तेजपाल सम्बन्धी गिरनारतीर्थ की प्रशस्तियों में एक लेख इनका है।

बालचन्द्रसूरि—चन्द्रगच्छीय हरिभद्रसूरि के ये शिष्य थे। छन्द, अलंकार, भापा के ये प्रकाण्ड पंडित थे। इनका आचार्यपदोत्सव महामात्य ने करवाया था। इनके ये ग्रंथ अत्यधिक प्रसिद्ध हैं:—

१—करुणावज्रायुध नामक नाटक—यह नाटक शत्रुंजयतीर्थ के उपर महामात्य द्वारा निकाले गये एक संघ के अवसर पर खेला गया था। २—वसन्तविलासकाव्य (वस्तुपालचरित्र)—यह जैत्रसिंह की प्रेरणा से लिखा गया था। ३—विवेकमंजरी टीका वि० सं० १२९८। ४—उपदेशकंदलीटीका।

जयसिंहसूरि—ये संस्कृत, प्राकृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। 'हम्मीरमदमर्दन' नामक नाटक इतिहास और साहित्य की दृष्टि से इनकी एक अमूल्य रचना है। अर्बुदाचल पर विनिर्मित लूणसिंहवसहिका की वस्तुपाल तेजपाल सम्बन्धी ७४ श्लोकों की प्रशस्ति भी इनको प्रसिद्ध विद्वान् होना सिद्ध करती है।

माणिक्यचन्द्रसूरि—ये राजगच्छीय सागरचन्द्रसूरि के शिष्य थे। ये संस्कृत और विशेष रूप से अलंकार विपय के सुप्रसिद्ध पंडित थे। इन्होंने महापंडित मम्मट की लिखी हुई 'काव्यप्रकाश' नामक कृति पर अति प्रसिद्ध १—'संकेत' नामक टीका लिखी है। २—शान्तिनाथ-चरित्र। ३—वि० सं० १२७६ में पार्श्वनाथचरित्र, जो उच्चकोटि का महाकाव्य है, इन्होंने लिखा है।

जिनभद्रसूरि—महामात्य वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह के श्रेयार्थ इन्होंने सं० १२९० में 'प्रबन्धावली' नामक ग्रन्थ लिखा है। ये नागेन्द्रग० उदयप्रभसूरि के शिष्य थे।

अतिरिक्त इनके दामोदर, जयदेव, वीकल, कृष्णसिंह, शंकरस्वामि आदि अनेक कवि एवं चारण समाश्रित थे। महामात्य वस्तुपाल स्वयं महाकवि एवं प्रखर विद्वान् था। १—नरनारायणानन्द नामक महाकाव्य, २—श्री आदीश्वरमनोरथमयंस्तोत्र उसकी अमूल्य रचनायें हैं, जो उसको उस समय के अग्रणी विद्वानों में गिनाने के लिये पर्याप्त हैं। वह कवियों में 'कविचक्रवर्त्ती' कहलाता था और आश्रयदाताओं में 'लघुभोजराज' कहा जाता था।

अ० म० परि० ४ पृ० ४०१–४०३, ४०४–४१६
वस्तुपालनु विद्यामण्डल अने बीजा लेखो पृ० १ से ३४
'अलंकारमहोदधि' By *नरेन्द्रप्रभसूरिजी (गायकवाड् ओरियन्टल सीरीज* XCV *व्यो० निकला है) की पं० लालचन्द भगवानदास द्वारा लिखित प्रस्तावना।*
श्रीजिनरत्नकोष ग्रन्थविभाग प्रथमः Vol. I B. O. R. I. Poona

धार्मिक विभाग और मंत्री भ्राताओं के द्वारा विनिर्मित धर्मस्थान और उनकी आगम-सेवायें

यह विभाग दंडनायक तेजपाल की स्त्री अनोपमादेवी की अध्यक्षता में चलता था। अनोपमादेवी अपने कुलगुरु विजयसेनसूरि के आदेश और उपदेश के अनुसार तथा अपने ज्येष्ठ महामात्य वस्तुपाल की आज्ञानुसार इस विभाग का संचालन करती थी। इस विभाग में सैंकड़ों उच्च कर्मचारी और सहस्रों मजदूर कार्य करते थे। अर्बुद, गिरनार, शत्रुंजय, प्रभासपत्तन आदि प्रमुख तीर्थों में इस विभाग की शाखायें संस्थापित थीं। इस विभाग का कार्य था दक्षिण में श्री पर्वत, उत्तर में केदारगिरि, पूर्व में काशी और पश्चिम में प्रभापतीर्थ तक के सर्व तीर्थों, धर्मस्थानों, प्रसिद्ध नगरों, मार्ग में पड़ने वाले वन, ग्रामों में धर्मशालायें स्थापित करना, वापी, कूप, सरोवर बनवाना, निर्माण-समितियें स्थापित करना, नये मंदिर बनवाना, जीर्ण मंदिरों का उद्धार करवाना, नवीन विंब स्थापित करना। महामात्य वस्तुपाल वर्ष में तीन बार संघ को निमंत्रित करता था। संघ की अभ्यर्थना करना भी इसी विभाग के कर्मचारियों का कर्तव्य था। यात्रा के समय साधु, मुनिराजों की यह ही विभाग सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करता था। महामात्य ने जो १२॥(१३॥) संघ गिरनार और शत्रुंजयतीर्थ के लिये निकाले थे, उन सर्व संघों की योग्य व्यवस्था करना भी इसी विभाग का कार्य था। यह विभाग सब ही धर्मों का मान करता था। इस विभाग ने सब ही धर्मानुयायियों के लिये मंदिर, मस्जिद, भोजनशालायें, धर्मशालायें, बनवा कर अभूतपूर्व सेवायें की हैं। निर्माण-कार्य सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित था। गिरनार और शत्रुंजयतीर्थ पर होने वाले निर्माण-कार्य विशेषतया महामात्य वस्तुपाल और उसकी स्त्री ललितादेवी की देख-रेख में होते थे। अर्बुदगिरि पर लूणसिंहवसहिका का निर्माण दंडनायक तेजपाल और अनोपमा की देख-रेख में होता था।

धार्मिक विभाग

इस विभाग ने जो धर्मकृत्य किये उनका संक्षिप्त व्ययलेखा इस प्रकार है। धर्म संबंधी विवध कार्यों में मंत्री भ्राताओं ने लगभग रु० ३००१४१८८००) व्यय किये थे।

रु० १८९६००००) नवीन विंबों के बनवाने में।

रु० १८९६००००) शत्रुंजयतीर्थ पर।

रु० १२५३००००) अर्बुदगिरि पर।

रु० १८५३००००) अथवा १८८०००००) अथवा १२८३००००) गिरनारतीर्थ पर।

रु० १३०००००) अथवा ९४०००००) व्यय करके तोरण बनवाये।

रु० १८००००००) व्यय करके जैन और शैव पुस्तकें लिखवाईं।

रु० ३०१४१८८००) का अन्य साधारण व्यय।

कुछ धर्मकृत्यों का विवरण इस प्रकार है:—

१—नवमन्दिरों का निर्माण—१३०४ (१३१३) जैन मन्दिर, ३०२ (३००२) ३२००) शिवमंदिर, ६४ (८४) मस्जिद

'श्रीवस्तुपालस्य दक्षिणस्यां दिशि श्री पर्वतं यावत्, पश्चिमायां प्रभासं यावत्, उत्तरस्यां केदारपर्वतं यावत्, पूर्वस्यां वाणारसी यावत्, ... तयोः कीर्तनानि। सर्वाग्रेण त्रीणि कोटिशतानि चतुर्दशलक्षा अष्टादशसहस्राणि अष्टशतानि द्रव्यव्ययः।' प्र०को०प्र०प्र० १५६) पृ० १३०

बनवाई'। प्रस्तर विनिर्मित ४००० चार सहस्र मठ बनवाये। प्रसिद्ध मंदिरों के नाम नीचे अनुसार हैं:—

शत्रुञ्जयपर्वत पर नेमनाथ और पार्श्वनाथ नामक चैत्यालय।

गिरनारपर्वत पर आदिनाथ, सम्मेतशिखर, अष्टापद और कपर्दियक्ष नामक चैत्यालय।

धवलक्कपुर में ऋषभदेव-चैत्यालय।

प्रभास में अष्टापद-मन्दिर।

अर्बुदपर्वत पर नेमिनाथ, मल्लदेव, आदिनाथ नामक चैत्यालय।

खम्भात में वकुलादित्य और वैद्यनाथ के शिव मन्दिरों के अनेक अंश नवनिर्मित करवाये।

वनस्थली और द्वारका में कई मन्दिर बनवाये।

२—६००००० नवीन जैन बिंब तथा १००००० शैव लिंग स्थापित करवाये।

३—जीर्णोद्धार—२००३ (२३००) ३३००) जीर्ण मंदिरों का उद्धार करवाया। जिनमें अणहिलपुरपत्तन में पंचासरपार्श्वनाथदेवालय का तथा धवलक्कपुर में राणक-भट्टारक मंदिर का उद्धार अधिक प्रसिद्ध है। खंभात में वकुलादित्य और वैद्यनाथ के शिवमंदिरों का जीर्णोद्धार भी कम प्रसिद्ध नहीं है। तीर्थस्थान एवं नगर, ग्रामों के अनुक्रम से यथाप्राप्त निर्माण-उल्लेख निम्नवत हैं:—

पत्तन में— वनराज के द्वारा विनिर्मित पंचाशरपार्श्वनाथमंदिर का जीर्णोद्धार करवाया।

धवलक्कपुर में—आदिनाथमंदिर बनवाया। दो उपाश्रय बनवाये। भट्टारकजी का राणक नामक मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। बावड़ी खुदवाई। प्रपा बनवाई।

शत्रुँजयपर्वत पर—आदिनाथमंदिर के आगे इन्द्रमंडप बनवाया तथा उसको तोरणों से सुसज्ज किया। पर्वत पर मार्ग बनवाया। स्वरस्ती की मूर्त्ति बनवायी। पूर्वजों की मूर्त्तियां बनवायीं। अपने पुत्र जैत्रसिंह, तेजपाल और महाराणक वीरधवल इन तीनों की तीन मूर्त्तियां बनवा कर गजारूढ़ कीं। गिरनारपर्वत के चार शिखर अवलोकन, अंब, शांब और प्रद्युम्न का प्रतिरूप करवाया। भरौंच के सुव्रतस्वामी, साचौर के महावीरस्वामी (सत्यपुरतीर्थावतार) के मंदिर बनवाये। आदिनाथबिंब के नीचे बहुमूल्य प्रस्तर और स्वर्ण का सुन्दर पट्ट लगवाया। गूढ़मण्डप में स्वर्ण तोरण बनवाया।

पालीताणा-क्षेत्र में—ललितसरोवर बनवाया। एक उपाश्रय बनवाया। प्रपा बनवाई।

अंकेवालिया ग्राम में—सरोवर बनवाया।

स्तंभननगर में—भट्टादित्यमंदिर के आगे उत्तानपट्ट बनवाया और उसका शिखरस्वर्णमयी बनवाया। मंदिर में कुआ खुदवाया। आशातनाओं से बचाने के लिये Sour Milk के लिये ऊँची दिवारोंवाला एक हौज बनवाया। दो उपाश्रय बनवाये। आनंदभवन बनवाया, जिसमें दोनों ओर दिवारों में गोलाकार-खिड़कियां थीं। पार्श्वनाथमंदिर का पुनरोद्धार करवाया और उसमें आपकी और पुत्र जयंतसिंह की दो सुन्दर प्रतिमायें स्थापित कीं। पाषाण के अस्सी सुन्दर एवं विविध तोरण बनवाकर विभिन्न जैनमंदिरों में लगवाये। श्री शांतिनाथजिनालय के गर्भमण्डप का जीर्णोद्धार करवाया। सुभट लूणपाल की स्मृति में लूणपालेश्वरप्रासाद बनवाया। चालुक्यराजा द्वारा विनिर्मित श्री आदिनाथचैत्य में एक कंचनस्तंभ बनवाया और बहोत्तर दण्ड सहित स्वर्णकुँभ स्थापित किये। अन्य जिनालयों

सु० सं०। प्रा० जै० ले० सं० ले० ५४३

में कहीं स्वर्णकलश, कहीं तोरण, कहीं नवबिंब स्थापित किये। पार्श्वनाथमंदिर के सामीप्य में दो प्रपा बनवाईं।

डभोई में— वैद्यनाथमंदिर के शिखर पर स्वर्णकलश और सूर्यमूर्त्ति स्थापित कीं।

तारंगगिरितीर्थ पर—दंडनायक तेजपाल ने श्री आदिनाथजिनबिंब सहित खत्तक बनवायी।

नगरग्राम में (मारवाड़-राजस्थान) महा० वस्तुपाल द्वारा वि० सं० १२९२ अषाढ़ शु० ७ रविवार को एक राजुलदेवी की प्रतिमा और दूसरी रत्नादेवी की प्रतिमा संस्थापित करवाई गई।

गाणेसरग्राम (गुजरात) में महा० वस्तुपाल ने ग्राम में प्रपा बनवाई, गाणेश्वरदेव के मंडप के आगे तोरण बनवाया और प्रतोलीसहित परिकोट विनिर्मित करवाया।

४—६४ (८४) सरोवर। ४८४ (२८४) लघुसरोवर (तलैया), इनमें अधिक प्रसिद्ध शत्रुंजयतीर्थ पर बने हुए ललितसर और अनूपसर तथा गिरनारतीर्थ पर बना हुआ कुमारदेवीसर है। विभिन्न मार्गों में १०० प्रपायें लगवाईं। ७०० कुएँ खुदवाये। ४६५ वापिकायें बनवाईं। शत्रुंजयगिरि की तलहटी में ३२ वाटिकायें और गिरनारगिरि की तलहटी में १६ वाटिकायें लगवाईं।

५—१००२ धर्मशालायें विभिन्न तीर्थों, स्थानों में विनिर्मित करवाईं।

६—७०० ब्राह्मणशालायें स्थापित करवाईं, जहाँ ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र दान में दिये जाते थे और ७०० ब्राह्मणपुरियाँ निवसित करवाईं।

७—७०० तापस-मठ बनवाये, जहाँ तपस्वी रहते थे और धर्माराधना करते थे।

८—९८४ पौषधशालायें बनवाईं। इनमें व्रत, उपवास, आंबिल करने वालों के लिये तथा साधु-मुनिराजों के ठहरने, आहारादि की विधिपूर्वक व्यवस्थायें रहती थीं।

९—५०० पांजरापोल बनवाईं। इनमें रोगी, अपंग पशु रक्खे जाते थे और उनकी चिकित्सा की जाती थी।

१०—७०० सदाव्रतशालायें खुलवाई गई थीं। इनमें से अधिक तीर्थों और तीर्थों के मार्गों में स्थापित थीं।

११—२५ (२१) समवशरण तीर्थों में विनिर्मित करवाये।

१२—तोरण—तीन तोरण तीन लक्ष मुद्रायें व्यय करके शत्रुंजयतीर्थ पर,

,, ,, ,, ,, ,, ,, गिरनारतीर्थ पर,

दो ,, दो ,, ,, ,, खम्भात में बनवाये।

१३—५०० सिंहासन (दांत एवं काष्ठमय)

१४—५०५ रेशम के समवशरण, ५०५ जवाहिरविनिर्मित समवशरण, ५०५ हस्तिदंतविनिर्मित समवशरण तीर्थयात्राओं में साथ ले जाने के लिये तैयार करवाये गये थे।

१५—२१ आचार्यपदमहोत्सव करवाये।

१६—विभिन्न स्थानों में ५०० ब्राह्मण वेदपाठ करते थे, जिनको भोजन नित्य मंत्री भ्राताओं की ओर से मिलता था।

महामात्य प्रतिवर्ष ३ वार संघपूजा करता था और २५ वार संघवात्सल्य करता था। सोमेश्वर-मन्दिर पर उसने १०००००००) दश कोटि द्रव्य व्यय किया था, जैन और शैव देवालयों में ३०००

जै० ले० सं० (नाहरजीकृत) ले० १७१३-१४-८८

पु० प्र० सं० व० ते० प्र० पृ० ६५

अश्ववैद्य	१०	नरवैद्य	१००
कुल्हाड़ियाँ	५००	कुदालियाँ	५००

अतिरिक्त इस सुविधा-सामग्री के सहस्रों श्वेताम्बर और दिगंबर साधु, साध्वी, आचार्य भी धवलकपुर और धवलकपुर के निकटवर्ती ग्रामों एवं नगरों में भ्रमण-विहार करते रहते थे, जो निमन्त्रण पाकर तुरन्त संघ में सम्मिलित हो जाते थे।

महामात्य वस्तुपाल की तीर्थयात्रायें

माता-पिता के साथः—

१—वि० सं० १२४९ में शत्रुञ्जयतीर्थ की। २—वि० सं० १२५० में शत्रुञ्जयतीर्थ की।

स्वर्गस्थ माता-पिता के श्रेयार्थ सपरिवारः—

१—वि० सं० १२७३ में शत्रुञ्जयतीर्थ की।

महाविस्तार के साथ संघपति रूप से और सपरिवारः—

१—वि० सं० १२७७ में शत्रुञ्जयगिरनारतीर्थों की। २—वि० सं० १२९० शत्रुञ्जयगिरनारतीर्थों की।

३— ,, १२९१ ,, ४— ,, १२९२ ,,

५— ,, १२९३ ,,

सपरिवारः—

६—वि० सं० १२८३ में शत्रुञ्जयतीर्थ की। ७—वि० सं० १२८४ में शत्रुञ्जयतीर्थ की।

८— ,, १२८५ ,, ९— ,, १२८६ ,,

१०— ,, १२८७ ,,

११— ,, १२८८ में शत्रुञ्जयतीर्थ की यात्रा करते हुये गिरनारतीर्थ पर स्वविनिर्मित मंदिरों की प्रतिष्ठार्थ यात्रा की।

१२—वि० सं० १२८९ में शत्रुञ्जयतीर्थ की। १२॥—वि० सं० १२९६ शत्रुञ्जयतीर्थ की।

अपरगायिन सह० १००० । सरस्वतीकण्ठाभरण [आदि] बिरुद २४ । नर्तकी १०० । वेसरशत १ संप्रदायसमं (?) अश्ववैद्य १०, नरवैद्य १०० ।'

'श्रीवस्तुपालस्य दक्षिणस्यां दिशि श्रीपर्वतं यावत् कीर्तनानि' ।

'संग्रामे श्रीवीरधवलकार्ये वार ६३ जेत्र(तृ)पदम् । सर्वाग्रे त्रीणि कोटिशतानि, १४ लक्ष, १८ सहस्र, ८ शतानि द्रव्यव्ययः ।'

प्र० को० परि० १ पृ० १३२

वि० सं० १२८७ में अर्बुदगिरि पर वसे हुये ग्राम देउलवाड़ा में तेजपाल और अनुपमा की देख-रेख में बनी लूणसिंहवसहिका के नेमनाथचैत्यालय में भगवान् नेमनाथ की प्रतिमा फा० कृ० ३ रविवार को कुलगुरु श्रीमद् विजयसेनसूरि के हाथों प्रतिष्ठित करवाने के लिये महामात्य वस्तुपाल ने धवलकपुर से एक विशाल चतुर्विध संघ निकाला था । अगर यह संघयात्रा भी गिनी जाय तो महामात्य की १३॥ तीर्थ यात्रायें हुई कही जा सकती है ।

मन्त्री भ्राता और उनका परिवार

वि० सं० १२३८ से वि० सं० १३०४ पर्यन्त

महामात्य के ज्येष्ठ भ्राता लूणिग और मल्लदेव

अश्वराज-कुमारदेवी का ज्येष्ठ पुत्र लूणिग था। इसका जन्म सम्भवतः वि० सं० १२३८ और वि० सं० १२४० के अन्तर में हुआ था। लुणिग धार्मिक प्रवृत्ति का एक होनहार बालक था। अश्वराज ने इसको पढ़ने के लिये पत्तनपुर में भेजा था। छोटी आयु में ही इसका विवाह कर दिया गया था। वि० सं० १२५६-५८ के लगभग इसकी मृत्यु हो गई। * लूणिग की पत्नी का नाम लूणादेवी था। विवाह के थोड़े समय पश्चात् ही लूणिग की मृत्यु हो जाने से इसके कोई सन्तान नहीं हो सकी। लूणादेवी भी वि० सं० १२८८ के पूर्व स्वर्ग को सिधार गई।

लूणिग और उसकी स्त्री लूणादेवी

अश्वराज-कुमारदेवी का द्वितीय पुत्र मालदेव था, जिसको मल्लदेव भी कहते हैं। इसका जन्म वि० सं० १२४०-४२ के लगभग हुआ। मल्लदेव के दो स्त्रियाँ थीं। लीलादेवी और प्रतापदेवी। लीलादेवी की कुक्षी से पूर्णसिंह नामक पुत्र और सहजलदेवी और सद्मलदेवी नामक दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं। इसकी मृत्यु भी युवावस्था में ही हो गई। पुण्यसिंह, जिसे पूर्णसिंह भी कहा गया है का विवाह अल्हणदेवी से हुआ था। अल्हणदेवी से पुण्यसिंह को एक पुत्र पेथड़ नामक और एक पुत्री वलालदेवी प्राप्त हुई थी। अर्बुदगिरि पर विनिर्मित लूणिग-वसहिका के नेमनाथ-चैत्यालय में दंडनायक तेजपाल ने अपने परिजनों के श्रेयार्थ वि० सं० १२८८ में अनेक देवकुलिकायें बनवाई थीं। क्रम से दूसरी देवकुलिका अल्हणदेवी के, पाँचवीं पेथड़ के, छट्ठी पुण्यसिंह के और आठवीं वलालदेवी के श्रेयार्थ बनवाई थीं।

मालदेव या मल्लदेव और उसकी दोनों स्त्रियां लीलादेवी, प्रतापदेवी व पुत्र पुण्यसिंह या पूर्णसिंह

महामात्य वस्तुपाल और उसका परिवार

अश्वराज-कुमारदेवी का यह तृतीय पुत्र था। इसका जन्म वि० सं० १२४२-४४ के अन्तर में हुआ होना चाहिए। पिता ने वस्तुपाल की शिक्षा भी पत्तन में ही करवाई थी। यह महा प्रतिभावान एवं कुशाग्रबुद्धि बालक था। इसका विवाह लगभग १५-१६ वर्ष की आयु में ही प्राग्वाटवंशी ठक्कुर कान्हड़-देव की सुपुत्री ललितादेवी के साथ हो गया था। फिर भी इसने अपना अध्ययन अक्षुण्ण रक्खा। लगभग पचीस वर्ष की आयु के पश्चात् यह विद्याध्ययन समाप्त कर गुरु

वस्तुपाल और उसकी दोनों स्त्रियाँ ललितादेवी और वेजलदेवी

वि० सं० १२८८ के पूर्व लूणादेवी का स्वर्गवास होना इस बात से सिद्ध होता है कि अर्बुदगिरि पर विनिर्मित वसहिका में तत्संवत् में तथा तत्संवत् पश्चात् कोई देवकुलिका लूणादेवी के श्रेयार्थ नहीं बनवाई गई। और न ही लूणिग की संतान के श्रेयार्थ ही कहीं कोई धर्मकृत्य किये गये का उल्लेख है।

की आज्ञा से घर आया। ललितादेवी की छोटी वहिन सुहवदेवी थी। सुहवदेवी का विवाह भी महामात्य वस्तुपाल के साथ ही हुआ था। ऐसा लगता है कि इस विवाह में ललितादेवी का भी आग्रह रहा हो। ललितादेवी की कुची से महाप्रतापी बालक जैत्रसिंह जिसको जयंतसिंह भी कहते हैं, उत्पन्न हुआ। सुहवदेवी के प्रतापसिंह नामक पुत्र हुआ।[१] प्रतापसिंह के पुत्र के श्रेयार्थ जैत्रसिंह ने एक पुस्तक लिखवाई। वेजलदेवी के भी एक से अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं हुई थी। वस्तुपाल अपनी दोनों स्त्रियों का समान आदर करता था। ललितादेवी वड़ी होने से घर में भी प्रधान थी। वस्तुपाल ने अपनी दोनों स्त्रियों के नाम चिरस्मरणीय रखने के लिये कई मठ, मन्दिर, वापी, कूप, सरोवर विनिर्मित करवाये थे। गिरनारपर्वत पर, शत्रुंजयतीर्थ पर जितने धर्मस्थान वस्तुपाल ने करवाये, उनमें से अधिक इन दोनों सहोदराओं के श्रेयार्थ ही बनवाये गये थे। ललितादेवी और वेजलदेवी दोनों अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की उच्च कोटि की स्त्रियाँ थीं। वस्तुपाल के प्रत्येक कार्य में इनकी सहमति और इनका सहयोग था। दोनों का स्वभाव वड़ा उदार और हृदय अति कोमल था। नित्य ये सहस्रों रुपयों का अपने करों से दान करती थीं। अभ्यागतों की, दीनों की सेवा करना अपना धर्म समझती थीं। अगर इनमें इन गुणों की कमी होती तो वस्तुपाल अनन्त धनराशि धर्मकार्यों में व्यय नहीं कर सकता था।

ललितादेवी वस्तुपाल के अपार वैभवपूर्ण घर की सम्पूर्ण आंतरिक व्यवस्था को, जो एक वड़े राज्य के कार्य-भारतुल्य थी बड़ी कुशलता एवं तत्परता के साथ अपने परिवार की अनुपमादि अन्य स्त्रियों के सहयोग से स्वयं करती थी। तीर्थों में, नगर, पुर, ग्रामों में होते धार्मिक एवं साहित्यिक कार्यों में भी यह रुचि लेती थी। वस्तुपाल युद्ध एवं राज्यसम्बन्धी कार्यों में भी इसकी सम्मति लेता था। वस्तुपाल के धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक छोटे-बड़े सर्व कार्य ऐसी आज्ञाकारिणी, धर्मप्रवृत्ति वाली पत्नी की सहचरता एवं इसके द्वारा प्राप्त सुख-साधन के कारण अत्यन्त सरल और सुन्दर हो सके थे। ललितादेवी और सोखुका दोनों वहिनें उच्च कोटि की वीराङ्गनाएँ थीं। अगर ऐसा नहीं होता तो वस्तुपाल छोटे-बड़े ६३ तरेसठ संग्रामों में कैसे भाग ले सकता था और कैसे सफलता प्राप्त कर सकता था। समर में जाते समय अपने पति एवं पुत्र की वेष-भूषा ये स्वयं सजाती थीं और उनको सहर्ष युद्ध के लिये मंगलगीत गाकर भेजती थीं। अनेक वार ऐसे भी अवसर आते थे कि वस्तुपाल, तेजपाल, जैत्रसिंह, लावण्यसिंह और स्वयं राणक वीरधवल, मण्डलेश्वर लवणप्रसाद और राज्य के समस्त प्रसिद्ध वीर, सामन्त सर्व या इनमें से अधिक धवलकपुर छोड़ कर संग्रामों में चले जाते थे, तव उस समय ये ही वहिनें महाराणी आदि के साथ मिलकर नगर और प्रान्त की रक्षा का भार सम्भालती थीं। संघयात्राओं में सम्मिलित हुये पुरुषों की अभ्यर्थना में स्वयं अधिक भाग लेती थीं। ये उदारचेत्ता रमणीयें, वीरांगनाएं, देश और धर्म की सर्वस्वत्यक्ता सेविकायें कला और साहित्य की भी प्रेमिकायें थीं। वि० सं० १२९६ में शत्रुंजयतीर्थ की १३वीं यात्रा को जाते समय अंकेवालियाग्राम में माघ शुक्ला ५ मी सोमवार को महामात्य की मृत्यु हुई, तव तक ये जीवित थीं।[२]

१–जै० पु० प्र० सं० प्र० ७ पृ० ६

२–व० वि० प्र० XI चरणलेख १, ३

शत्रुञ्जयतीर्थ के लिये १२॥ और अर्बुदगिरि के लिये एक तीर्थयात्रा—इस प्रकार वस्तुपाल की संघपति रूप से निकाली हुई तीर्थयात्रायें १३॥ होती हैं।

जैत्रसिंह या जयंतसिंह

यह योग्य पिता का योग्य पुत्र था। इसका जन्म लगभग वि० सं० १२६० में हुआ होगा। इसके तीन स्त्रियाँ थीं। १ जयतलदेवी, २ जंभणदेवी और ३ रूपादेवी। जैत्रसिंह वस्तुपाल तेजपाल के निजी सैनिक विभाग का अध्यक्ष था। राज्यकार्य में भी यह अपने पिता के समान ही निपुण था। महामात्य वस्तुपाल जब वि० सं० १२७९ में खंभात से धवलकपुर में आया था, तब जैत्रसिंह को ही वहां का कार्यभार संभलाकर तथा खंभात का प्रमुख राज्यशासक बना कर आया था। जैत्रसिंह ने खंभात का राज्यकार्य बड़ी तत्परता एवं कुशलता से किया। महामात्य वस्तुपाल ने जैत्रसिंह की देख-रेख में खंभात में एक बृहद् पौषधशाला का निर्माण वि० सं० १२८१ में करवाया था और उसकी देख-रेख करने के लिये १ श्रे० रविदेव के पुत्र पयधर, २ श्रे० वेला, ३ विकल, ४ श्रे० पूना के पुत्र बीजा वेड़ी उदयपाल ५ आसपाल ६ गुणपाल को गोष्ठिक नियुक्त किये थे। खंभात पर लाटनरेश शंख का सदा दांत रहा और मालवनरेश और यादवगिरि के राजा भी शंख को सदा खंभात जीत लेने के कार्य में सहायता देने को तैयार रहते थे। ऐसी स्थिति में जैत्रसिंह का महान् चतुर और कुशल शासक होना सिद्ध होता है कि खंभात का शासन और सुरक्षा सदा सुदृढ़ रही और शंख के प्रयत्न सदा विफल रहे। जैत्रसिंह जैसा राजनीति में चतुर था, वैसा ही धर्म में दृढ़ और साहित्यसेवी था। भरौंच के मुनिसुव्रतचैत्यालय के आचार्य वीरसूरि के विद्वान् शिष्य जयसिंहसूरिकृत 'हम्मीरमदमर्दन' नामक प्रसिद्ध नाटक जैत्रसिंह की प्रेरणा से लिखा गया था और खंभात में भीमेश्वरदेव के उत्सव के अवसर पर प्रथम बार उसकी ही तत्त्वावधानता में खेला गया था। महान् पिता के प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं स्थापत्यकलासंबंधी कार्यों में उसकी सम्मति और सहयोग रहा। स्थापत्यकला तथा संगीत का यह अधिक प्रेमी था। राज्यसभा में भी इसका पिता के समय में तथा पिता की मृत्यूपरांत अच्छा संमान रहा। इतना अवश्य हुआ कि वस्तुपाल के स्वर्गगमन के पश्चात् वीशलदेव राणक की राजसभा में धर्म के नाम पर दलबंधियों का जोर बढ़ गया और वस्तुपाल तेजपाल के सर्वधर्मप्रेमी वंशजों को राज्यैश्वर्य से वंचित होना पड़ा।

किसी भी ग्रंथ, शिलालेख एवं पुस्तक-प्रशस्ति में जैत्रसिंह की कोई संतान का उल्लेख नहीं मिलता है। अगर संतान हुई होती तो यह निर्विवाद रूप से निश्चित है कि वस्तुपाल अपने पौत्र या पौत्री के श्रेयार्थ जैसे अपने अन्य परिजनों के श्रेयार्थ धर्मस्थान और धर्मकृत्य करवाये हैं, करवाता और उसका कहीं न कहीं अवश्य उल्लेख मिलता।

'महं ठ० श्री ललितादेवीकुक्षिसरोवरराजहंसायमाने महं० जयंतसिंहे सं० ७९ वर्ष पूर्व मुद्राव्यापारान् व्यापृण्वति सति' प्रा०जै० ले० सं० भाग २ ले० ३८-४३—गिरनार प्रशस्तियाँ

महामात्य का लघुभ्राता गूर्जरमहाबलाधिकारी दं० तेजपाल और उसका परिवार

अश्वराज-कुमारदेवी का यह चतुर्थ पुत्र था। इसका जन्म वि० सं० १२४४–४६ में हुआ था। लूणिग और वस्तुपाल के साथ ही अश्वराज ने तेजपाल को भी पढ़ने के लिये पत्तन भेज दिया था। लेकिन तेजपाल का मन पढ़ने में कम लगता था। खेल-कूद, कुश्ती में इसकी अधिक रुचि थी। लूणिग की मृत्यु के पश्चात् यह विद्याध्यन छोड़ कर अपने माता-पिता के साथ ही रहने लगा था। धनुर्विद्या में, घोड़े की सवारी में, तैरने में और तलवार और भाले-बर्छी के प्रयोगों में ही उसको आनंद आता था। १८–२० वर्ष की आयु में इसकी वीरता और निडरता की बातें मण्डलेश्वर लवणप्रसाद और राणक वीरधवल के कानों तक पहुँच गई थीं। तेजपाल जैसा बहादुर था वैसा ही व्यापारकुशल था। लूणिग और मल्लदेवी की मृत्यु के पश्चात् घर का सारा भार तेजपाल के कंधों पर आ पड़ा था। अश्वराज वृद्ध हो चुके थे और उनकी आय इतनी अधिक नहीं थी कि दो पुत्र, दो पुत्र वधुओं और सात पुत्रियों का तथा पौत्र और पौत्रियों का निर्वाह कर सकते थे और वस्तुपाल भी बड़ी आयु तक पत्तन में विद्याभ्यास ही करता रहा था। तेजपाल ने बड़ी योग्यता से व्यापार खूब बढ़ाया। यही कारण था कि वस्तुपाल बड़ी आयु तक पत्तन में रह कर निश्चिन्तता के साथ विद्याध्यन करता रहा था। तेजपाल का विवाह चन्द्रावती के निवासी प्रसिद्ध प्राग्वाटवंशीय शाह धरणिग की स्त्री त्रिभुवनदेवी की कुक्षी से उत्पन्न अनुपमादेवी के साथ हुआ था। अनुपमा गुणों में चन्द्रिका थी। वस्तुपाल, तेजपाल के घर की समृद्धि ही अनुपमा थी। अनुपमा की सम्मति लिये बिना दोनों मंत्री भ्राता कोई भी महत्व का कार्य, चाहे राजनीतिक हो, धार्मिक एवं साहित्यिक हो, सामाजिक हो, कला तथा निर्माणसम्बन्धी हो कभी भी नहीं करते थे। मण्डलेश्वर लवणप्रसाद तथा राणक वीरधवल और महाराणी जयतलदा भी अनुपमा का बड़ा मान करते थे और उचित अवसरों पर उसकी सम्मति लेते थे। अनुपमा जैसी महा बुद्धिशाली स्त्री अगर वस्तुपाल तेजपाल के घर में नहीं होती तो वस्तुपाल तेजपाल की जो आज राज्यनीति और धर्मनीति के क्षेत्र में कीर्ति और स्तुति है वह बहुत न्यून होती और धार्मिकक्षेत्र में तो संभवतः नाममात्र की ही होती। अर्बुदगिरि पर विनिर्मित 'लूणिगवस्ति' जो की आज भारत के ही नही, यूरोप, अमेरीकादि समुन्नत देशों के कलामर्मज्ञों को आश्चर्यान्वित करती है अनुपमा की ही एकमात्र बुद्धि, सम्मति और श्रम का परिणाम है। अधिकांश महत्वशाली धार्मिक कार्य जैसे साधर्मिकवात्सल्य, संघपूजा, तीर्थयात्रा, सूरिपदोत्सव, उद्यापन-तप, प्रतिष्ठायें, नवीन चैत्यादि के निर्माणसंबंधी प्रस्ताव प्रथम अनुपमा की ओर से ही प्रायः आते थे और वे सभी को सर्वमान्य होते थे। वस्तुपाल की बड़ी पत्नी ललितादेवी यद्यपि कुलमर्यादा के अनुसार घर में बड़ी गिनी जाती थी, लेकिन वह भी अनुपमा का उसके सुन्दर गुणों के और सुन्दर स्वभाव के कारण अपने से कुल बड़ी स्त्री के समान मान करती थी। नित्य अनुपमा अपनी देखरेख में भोजन बनवाती और अपने हाथ से अभ्यागतों, अतिथियों, साधु-मुनिराजों को भोजन-दान कर लेने के पश्चात् दीनों, हीनों की याचनायें पूर्ण कर लेने के पश्चात् तथा मन्त्री भ्राताओं के भोजन कर लेने के पश्चात् कुल की सर्व स्त्रियों के साथ भोजन करती थी। सैनिक, अंगरक्षक, दास-दासी की भोजन-वस्त्र संबंधी पूरी संभाल करती थी। सच तो यह है कि वस्तुपाल तेजपाल जो ऐसे असमय में

तेजपाल और उसकी स्त्रियां अनुपमादेवी और सुहड़ादेवी

गूर्जरसाम्राज्य की सेवायें करने में समर्थ हो सके एवं धार्मिक और साहित्यिक महान् सेवायें कर सके वह सामर्थ्य और सुविधा चतुरा गुणवती एकमात्र अनुपमा से ही प्राप्त हुआ था।

तेजपाल और अनुपमा में अत्यन्त प्रेम था। अनुपमा रात और दिन धार्मिक, सामाजिक और सेवासंबंधी कार्यों में इतनी व्यस्त रहती थी कि आगे जाकर उसको अपने योग्य पति तेजपाल की सेवा करने का भी समय नाममात्र को मिलने लगा और इसका उसको पश्चात्ताप बढ़ने लगा। निदान अनुपमा के प्रस्ताव पर तेजपाल ने दूसरा विवाह वि० सं० १२९० या १२९३ के पश्चात् पत्तननिवासी मोढ़ज्ञातीय ठक्कुर झाल्हण के पुत्र ठक्कुर आशाराज की पुत्री ठक्कुराणी सन्तोषकुमारी की पुत्री सुहड़ादेवी के साथ किया। अनुपमा की कुक्षी से वीर और तेजस्वी पुत्र लावण्यसिंह जिसके श्रेयार्थ लूणिगवसतिका निर्माण करवाया गया था, उत्पन्न हुआ और बउलदेवी नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। सुहड़ादेवी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सुहड़सिंह ही रक्खा गया था।

अनुपमादेवी का देहावसान महामात्य वस्तुपाल की मृत्यु के १ या १॥ वर्ष पूर्व हो गया था। अनुपमा की मृत्यु से दोनों मन्त्री भ्राता ही नहीं समस्त गुजरात दुःखी हुआ। तेजपाल बहुत दुःखी रहने लगा। तेजपाल की यह अवस्था श्रवण कर वस्तुपाल के कुलगुरु विजयसेनसूरि धवलकपुर में आये और तेजपाल को संसार की असारता समझा कर सान्त्वना दी। परन्तु महामात्य और अनोपमा की मृत्यु के पश्चात् तेजपाल उदासीन-सा ही रहने लगा था। निदान वह राज्य और धर्म की सेवा करता हुआ वि० सं० १३०४ में स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

लूणसिंह और उसका सौतेला भ्राता सुहड़सिंह

स्त्रीरत्न अनोपमा का यह इकलौता पुत्र था। लूणसिंह को लावण्यसिंह भी कहते थे। लूणसिंह वीर और प्रतिभासम्पन्न था। मंत्री भ्राताओं को लूणसिंह का पद-पद पर सहयोग प्राप्त होता रहा था। विशेष कर लूणसिंह सामरिक व्यवस्थाओं में देश-विदेश में चलती हलचलों की जानकारी प्राप्त करने में अत्यन्त कुशल था। गुप्तचर विभाग का यह अध्यक्ष था। लाटनरेश शंख की प्रथम पराजय इसके और महामात्य वस्तुपाल के हाथों हुई थी। लूणसिंह जैसा वीर था, वैसा ही साहित्यप्रेमी भी था। विद्वानों का, कवियों का वह सदा समादर करता था। हेमचन्द्रसूरिकृत 'देशीनाममाला' नामक ग्रंथ की एक प्रति आचार्य जिनदेवसूरि के लिये उसने अपनी पंचकुल की प्रमुखता में भृगुकच्छ में वि० सं० १२९८ में लिखवाई थी। जिसको कायस्थज्ञातीय जयतसिंह ने लिखा था। लूणसिंह के दो स्त्रियाँ थीं। रयणदेवी और लक्ष्मीदेवी रयणदेवी के गउरदेवी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। लूणसिंह के कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था।

तेजपाल की दूसरी स्त्री सुहड़ादेवी की कुक्षि से सुहड़सिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसके सुहड़ादेवी और सुलखणादेवी नामकी दो स्त्रियां थीं। दंडनायक तेजपाल ने अर्बुदगिरि पर विनिर्मित हस्तिशाला में दशवाँ गवाक्ष सुहड़सिंह और उसकी दोनों स्त्रियों के श्रेयार्थ करवाया था।

प्र० वि० व० ते० प्र० १६६) पृ० १०४) १६७) पृ० १०५।
जै० प्र० पु० सं० १६?) पृ० १२३
D. C. M. P. (G O. S. Vo.- LXX VI) P. 60 (पत्तनभंडार की सूची)
अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० २५०

महामात्य की सप्त भगिनियाँ

सप्त भगिनियाँ तथा वयजू

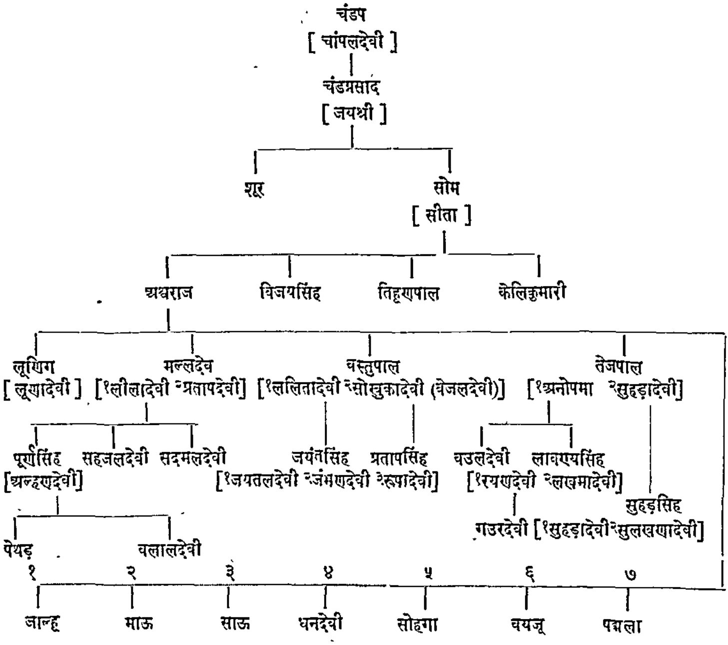
महामात्य वस्तुपाल तेजपाल के जाल्हू, माऊ, साऊ, धनदेवी, सोहगा, वयजू और पद्मा नाम की गुणवती, सुशीला और दृढ़ जैनधर्मिनी सात भगिनियें थीं। योग्य आयु प्राप्त करने पर इनमें से छह का विवाह योग्य वरों के साथ में कर दिया गया था। परन्तु वयजू जो छट्ठी बहिन थी आयु भर कुमारी विरहिन रही। भुवणपाल नामक व्यक्ति से जो महामात्य वस्तुपाल का अत्यन्त विश्वासपात्र वीर सेवक था वयजू की सहगति (सगाई) हो गई थी। भुवणपाल लाटनरेश शंख के साथ हुये द्वितीय युद्ध में भयंकर संग्राम करता हुआ मारा गया। महामात्य वस्तुपाल ने अपने वीर सेवक की पुण्यस्मृति में भुवणपालेश्वर नामक एक विशाल प्रासाद खंभात में विनिर्मित करवाया जो आज तक उस वीर के नाम को चरितार्थ करता आ रहा है। भुवणपाल की वीरगति सुन कर कुमारी वयजू ने विधवा के वस्त्र धारण कर लिये और आयु भर भुवणपाल के वृद्ध माता-पिता की सेवा करती रही। वयजू के इस त्याग और निर्मल प्रेम में मानव-मानव में भेद मानने वालों के लिये कितना उपदेश भरा है, सोचने और समझने की बात है। पद्मल सर्व से छोटी बहिन थी। लूणिगवसति में दंडनायक तेजपाल ने अपनी सातों बहिनों के श्रेयार्थ २६, २७, २८, २६, ३०, ३१, ३५वीं देवकुलिकायें उनके नामों के क्रमानुसार वि० सं० १२६३ में विनिर्मित करवाकर प्रतिष्ठित करवाई थीं।

पद्मा का कुछ जीवन परिचय

जैसा पूर्व लिखा जा चुका है कि मंत्री भ्राताओं के सात बहिनें थीं, जिनमें पद्मा सर्व से छोटी होने के कारण अधिक प्रिय थी। पद्मा बचपन से ही नारी-अधिकार को लेकर अग्रसर होती रही थी। वैसे तो मंत्री-भ्राताओं की सात ही बहिनें अत्यधिक गुणवती एवं पतिव्रतायें थीं। परन्तु पद्मा में स्त्री का अभिमान था। वह स्वाभिमानिनी थी। पद्मा का विवाह धवल्लकपुर के नगर सेठ प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि यशोवीर के पुत्र जयदेव के साथ में हुआ था। महामात्य ने जैत्रसिंहके पश्चात् खंभात का राजचालक जयदेव को ही बना कर भेजा था। जयदेव बुद्धिमान् तो अवश्य था ही उसने खंभात का शासन बड़ी योग्यता से किया था।

लूणिगवसति की देवकुलिकाओं के लेख:—
प्रा० जै० ले० सं० ले० ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६६, १०२
H. I. G. Pt. III ले० २०६ श्लो० १७

प्राग्वाटवंशावतंश मंत्री भ्राताओं का प्राचीन गूर्जर-मंत्री-वंश-वृक्ष



अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० २५० पृ० ६२ । जै० पु० प्र० सं० प्र० ७ पृ० ६ (जैत्रसिंहतोसितपुस्तिका प्र०)
लूणिगवसतिका की देवकुलिका १ से ८, १७ से २१, २६ से ३१, ३५, ४२ से ४८ के शिलालेखाः ।
अ० प्रा० जै० ले० सं० लूणवसतिलेखाः ।

प्राग्वाटवंशावतंस मन्त्री-भ्राताओं के श्री नागेन्द्रगच्छीय कुलगुरुओं की परम्परा

श्री महेन्द्रसूरि*

|

श्री महेन्द्रसूरिसंतानीय श्री शांतिसूरि

|

१. आणंदसूरि २. अमरचन्द्रसूरि

|

श्री हरिभद्रसूरि

|

श्री विजयसेनसूरि

|

श्री उदयप्रभसूरि

स्त्रीरत्न अनोपमा के पिता चन्द्रावतीनिवासी ठ० धरणिग का प्रतिष्ठित वंश

वि० सं० १२८७

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में चन्द्रावती में प्राग्वाटज्ञातीय ठक्कुर सावदेव हो गया है। ठ० सावदेव का पुत्र ठ० शालिग हुआ और ठ० शालिग का पुत्र ठ० सागर हुआ। ठ० सागर के पुत्र का नाम ठ० गागा था। ठ० गागा ठ० धरणिग का पिता और स्त्रीरत्न अनोपमा का पितामह था। ठ० गागा के ठ० धरणिग से छोटे चार पुत्र और थे—महं० राणिग, महं० लीला, ठ० जगसिंह और ठ० रत्नसिंह।

ठ० धरणिग की स्त्री का नाम त्रिभुवनदेवी था। उसको तिहुणदेवी भी कहते हैं। त्रिभुवनदेवी के एक पुत्री अनुपमा और तीन पुत्र खीम्वसिंह, आंबसिंह और ऊदल नामक थे।

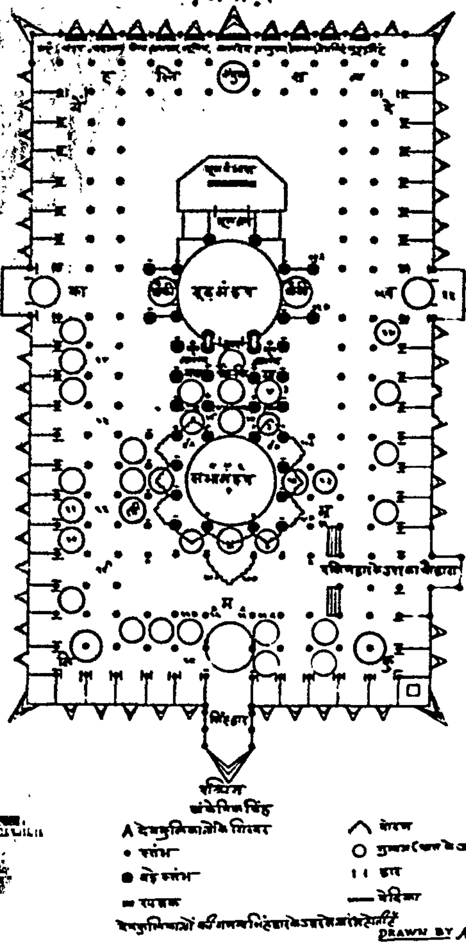
---

*अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० २५८ श्लो० ६६ से ७१ पृ० ६२

मुनिश्री जयंतविजयजी ने जगसिंह और रत्नसिंह को लीला के पुत्र होना माना है। अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० २५१ में उक्त व्यक्तियों के नाम निर्देशित हैं तथा पुत्र, भ्रातृ जैसे संबंधबोधक शब्दों से प्रत्येक नाम संयुक्त है। ठ० धरणिग का भ्राता महं० लीला था। लेख में उक्त पुरुषों का नाम लिखते समय लिखा है. 'तथा महं० लीलासुत महं० श्री लूणसिंह तथा भ्रातृ ठ० जगसिंह ठ० रत्नसिंहानां समस्तकुटुम्बेन'। जगसिंह रत्नसिंह महं० लीला के भ्राता हैं, न की पुत्र।

सर्वांग सुन्दर शिल्पकलावतार अर्बुदाचलस्थ श्रीलूणसिंहवसहि

देलवाड़ा



महं० लीला के पुत्र का नाम लूणसिंह था। अनुपमा का पितृ-परिवार चन्द्रावती के प्रतिष्ठित कुलों में से एक कुल था। दण्डनायक तेजपाल ने वि० सं० १२८७ में श्री अर्बुदगिरिस्थ लूणसिंहवसति की प्रतिष्ठा के अवसर पर तीर्थ की व्यवस्था एवं देख-रेख करने के लिये अति प्रतिष्ठित पुरुषों की एक व्यवस्थापिका-समिति बनाई थी, उसमें अनुपमा के तीनों भ्राता तथा महं० राणिग और महं० लीला, जगसिंह, रत्नसिंह तथा इनकी परंपरित सन्तान को स्थायी सदस्य होना घोषित किया था। ऐतत्सम्बन्धी प्रमाणों से सम्भव लगता है कि वि० सं० १२८७ के लगभग अथवा पूर्व ठ० धरणिग की मृत्यु हो गई थी।

अनन्य शिल्पकलावतार अर्बुदाचलस्थ श्री लूणसिंहवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-जिनालय

●

लूणसिंहवसहिका का निर्माण दण्डनायक तेजपाल ने अपनी पत्नी अनुपमा की देखरेख में वि० सं० १२८६ में प्रारम्भ किया था। तेजपाल अपनी प्यारी पत्नी अनुपमा का बड़ा आदर करता था। अनुपमा की कुक्षी से उत्पन्न पुत्र लावण्यसिंह-जिसे लूणसिंह भी कहते हैं, बड़ा तेजस्वी और वीर था। तेजपाल ने लूणसिंह और अपनी पत्नी अनुपमा के कल्याणार्थ इस वसहिका का निर्माण करवाया था। अनुपमा चन्द्रावती के निवासी प्राग्वाटवंशीय श्रेष्ठि धरणिग की पुत्री थी। अनुपमा अतुल वैभव एवं मान प्राप्त करके भी अपनी जन्मभूमि चन्द्रावतीनगरी को नहीं भूली थी। चन्द्रावती ही नहीं, अनुपमा के हृदय में चन्द्रावती की सम्पूर्ण राज्यभूमि के प्रति श्रद्धा और महा मान था। बचपन में अपने पिता के साथ अर्बुदगिरि पर बसे हुये देउलवाड़ा में विनिर्मित विमलवसहिका के उसने अनेक बार दर्शन किये थे और विमलवसहिका के कलापूर्ण निर्माण का प्रभाव उसके हृदय पर अंकित हो गया था। वस्तुपाल जैसे महाप्रभावक एवं धन-बल-वैभव के स्वामी ज्येष्ठ को तथा तेजपाल जैसे महापराक्रमी शील और सौजन्य के अवतार पति को प्राप्त कर उसको अपनी अन्तरेच्छा पूर्ण

वसहिका का निर्माण और प्रतिष्ठोत्सव

लूणसिंहवसहिका का निर्माण वस्तुपाल तेजपाल के ज्येष्ठ भ्राता लूणिग जो अल्पायु में स्वर्गस्थ हो गया था के स्मरणार्थ करवाया गया है, ऐसी कुछ भ्रांति कतिपय इतिहासकारों को हो गई है। क्यों कि उसका नाम भी लूणिग था और वसहिका का नाम भी लूणिगवसहिका है। निम्न श्लोकों से सिद्ध है कि इस वसहिका का निर्माण तेजपाल ने अपने पुत्र लूणसिंह और अपनी पत्नी अनुपमा के श्रेयार्थ करवाया था।

'अभूदनुपमा पत्नी तेजःपालस्य मंत्रिणः। लावण्यसिंहनामायमायुष्मानेतयोः सुतः॥ ५६॥
तेजःपालेन पुण्यार्थं तयोः पुत्रकलत्रयोः। हर्म्यं श्री नेमीनाथस्य तेने तेनेदमर्बुदे' ॥ ६०॥

प्रा० जै० ले० सं० ले० ६४ पृ० ८३

'श्री तेजःपालेन स्वकीयभार्या महं० श्री अनुपमदेव्यास्तत्कुक्षि (सं०)........'पवित्रपुत्रमहं० श्री लूणसिंहस्य च पुण्ययशोभिवृद्धये श्रीमदर्बुदाचलोपरि देउलवाड़ा ग्रामे समस्तदेवकुलिकालंकृतं विशालहस्तिशालोपशोभितं श्रीलूणसिंहवसहिकाभिधानश्रीनेमिनाथदेव-चैत्यमिदं कारितं' ॥

प्रा० जै० ले० सं० ले० ६५ पृ० ८५-८६

करने की अभिलाषा हुई। दोनों मंत्रीभ्राताओं ने अनुपमा के प्रस्ताव का मान किया और वि० सं० १२८६ में लूणसिंहवसहिका का निर्माण शोभन नामक एक प्रसिद्ध शिल्पशास्त्री की अध्यक्षता में प्रारम्भ कर दिया। अर्बुदगिरि चन्द्रावतीपति के राज्य में था। उस समय चन्द्रावतीपति प्रख्यात धारावर्ष था। वह यद्यपि पत्तनसम्राट् का माण्डलिक राजा था; परन्तु महामात्य वस्तुपाल की आज्ञा लेकर दण्डनायक तेजपाल चन्द्रवतीनरेश से मिलने के लिए चन्द्रावती गया और अर्बुदगिरि पर श्री नेमनाथजिनालय बनवाने की अपनी भावना व्यक्त की। धारावर्ष ने सहर्ष अनुमोदन किया और हर कार्य में सहायता करने का वचन दिया। अनुपमा भी अर्बुदगिरि पर बसे हुये देउलवाड़ा ग्राम में ही जाकर रहने लगी। मजदूरों और शिल्पियों की संख्या सहस्रों थी, परन्तु उनको खाने-पीने का प्रबन्ध सर्व अपने हाथों करना पड़ता था। इस स्थिति से अनुपमा को निर्माण में बहुत अधिक समय लग जाने की आशंका हुई। तुरन्त उसने अनेक भोजनशालायें खोल दीं और ओढ़ने-बिछाने का उत्तम प्रबन्ध करवा दिया। रात्रि और दिवस कार्यचल कर वि० सं० १२८७ में हस्तिशालासहित वसहिका बनकर तैयार हो गई। वैसे तो वसहिका में देवकुलिकायें और छोटे-मोटे अन्य निर्माणकार्य वि० सं० १२९७ तक होते रहे थे, लेकिन प्रमुख अंग जैसे मूलगर्भगृह, गूढ़मण्डप, नवचतुष्क (नवचौकिया) रंगमण्डप, बलानक, खत्तक और भ्रमती तथा विशाल हस्तिशाला, जिनमें से एक-एक का निर्माण संसार के बड़े २ शिल्पशास्त्रियों को आश्चर्यान्वित कर देता है, दो वर्ष के समय में बनकर तैयार हो गये। अनुपमा की कार्यकुशलता, व्यवस्थाशक्ति, शिल्पप्रेम, धर्मश्रद्धा और तेजपाल की महत्वभावना, स्त्री और पुत्रप्रेम, अर्थ की सद्व्ययाभिलाषा, धर्म में दृढ़ भक्ति और साथ में शोभन की शिल्पनिपुणता, परिश्रमशीलता, कार्यकुशलता लूणसिंहवसहिका में आज भी सर्व यात्रियों को ये मूर्त्तरूप से प्रतिष्ठित हुई दिखाई पड़ती हैं। इस वसहिका के निर्माण में राणक वीरधवल की भी पूर्ण सहानुभूति और पूर्ण सहयोग था। चन्द्रावती के महामण्डलेश्वर धारावर्ष की मृत्यु के पश्चात् उसका योग्य पुत्र सोमसिंह चन्द्रावती का महामण्डलेश्वर बना था। सोमसिंह ने भी अपनी पूरी शक्तिभर अनुपमा को वसहिका के निर्माण में जन और श्रम से तथा राज्य से प्राप्त होने वाली अन्य अनेक सुविधाओं से सहयोग दिया था। लूणसिंहवसहिका जब बनकर तैयार गई तो धवलकपुर से महामात्यवस्तुपाल सपरिवार विशाल चतुर्विधसंघ के साथ में अर्बुदगिरि पर पहुँचा। वि० सं० १२८७ फा० कृ० ३ रविवार (गुज० चै० कृ० ३) के दिन मंत्री भ्राताओं के कुलगुरु नागेन्द्र-गच्छीय श्रीमद् विजयसेनसूरि के हाथों इस वसहिका की प्रतिष्ठा हुई और वसहिका में स्थित नेमनाथबावन— चैत्यालय में भगवान् नेमनाथ की प्रतिमा विराजमान की गई। प्रतिष्ठोत्सव के समय चन्द्रावती का मण्डलेश्वर-

---

वसहिका के गूढ़मण्डप के सिंहद्वार का लेख—

'नृपविक्रमसंवत् १२८७ वर्षे फाल्गुण सु (व) दि ३ सोमे (रवौ) अद्येह श्रीअर्बुदाचले श्रीमदणहिलपुरवास्त० प्राग्वाटज्ञातीय श्रीचण्डप श्रीचण्डप्रसाद महं श्री सोमान्वये महं० श्रीआसराजसुत महं० मालदेव महं० श्रीवस्तुपालयोरनुजभ्रातृ महं० श्री तेज [:] पालेन स्वकीय भार्या महं० श्री अनुपमादेवि (वी) कुक्षिसंभूत सुत महं० श्री लूणसींहपुण्यार्थं अस्यां श्री लूणवसहिकायां श्री नेमिनाथ-महातीर्थं कारितं ॥छ॥छ॥

अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० २६०

गुजराती वर्ष एक महा पश्चात् शुरु होता है। राजस्थान में जब चैत्र माह होता है, गुजरात में फाल्गुण माह होता है। हमारी मान्यतानुसार लूणसिंहवसहिका की प्रतिष्ठा वि० सं० १२८७ चैत्र कृ० ३ रविवार और गुजराती मान्यतानुसार फा० कृ० ३ रविवार को हुई।

सोमसिंह अपने राज-परिवार के साथ उपस्थित था। महाकवि राजगुरु सोमेश्वर तथा पत्तन-राज्य के बड़े बड़े अनेक पदाधिकारि, सामंत और ठक्कुर महामात्यवस्तुपाल के साथ में संघ में आये थे। जाबालिपुर के चौहान राजा उदयसिंह का प्रधान महामात्य यशोवीर भी जो शिल्पशास्त्र का धुरंधर ज्ञाता था आया था। मंत्रीभ्राताओं ने यशोवीर से वसहिका के निर्माण के विषय में शिल्पशास्त्र की दृष्टि से अपनी सम्मति देने को कही। यशोवीर ने महाकुशल शिल्पशास्त्री शोभन को वसहिका में शिल्प की दृष्टि से रही हुई अनेक त्रुटियाँ बतलाई, जैसे देव-मंदिरों में पुतलियों के क्रीड़ाविलास के आकार, गर्भगृह के सिंहद्वार पर सिंहतोरण और चैत्यालय के समक्ष पुरुषों की मूर्त्तियों से युक्त हाथियों की रचना निषिद्ध है आदि। चन्द्रावती-राज्य से तथा जाबालिपुर, नार्डोल, गोड़वाड़-प्रांत और मेदपाटप्रदेश के राज्यों से इस प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर अनेक संघ और स्त्री-पुरुष आये थे।

प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर ही महामात्यवस्तुपाल, तेजपाल ने श्रीमद् विजयसेनसूरि की अध्यक्षता में एक विराट सभा की थी, जिसमें उपस्थित सर्व सामंत, ठक्कुर और आये हुए संघ संमिलित थे। भिन्न २ ग्रामों के श्रीसंघों को प्रतिवर्ष अष्टाह्निका-महोत्सव की व्यवस्था करने का जिस प्रकार भार सौंपा गया तथा चन्द्रावती के राजकुल ने, मंत्री भ्राताओं के संबंधीकुलों ने जिस प्रकार वसहिका की सेवा-पूजा और रक्षा के कार्यों को अपने में विभाजित किया, उनका उल्लेख निम्न प्रकार है।

व्यवस्थापिका समितिः—

श्री लूणसिंहवसति नामक श्री नेमिनाथमन्दिर की व्यवस्था करने वाली समिति के प्रमुख सदस्यों की शुभ नामावलीः—

१. मन्त्री श्री मल्लदेव, २. मन्त्री श्री वस्तुपाल, ३. मन्त्री श्री तेजपाल	और इन तीनों भ्राताओं की परंपरित सन्तान
४. मन्त्री श्री राणिग ५. महं० श्री लीला	श्री लूणसिंह के मातृकुलपक्षी चन्द्रावती के निवासी प्राग्वाटज्ञातीय ठक्कुर श्री सावदेव के पुत्र ठ० श्री शालिग के पुत्र ठ० श्री सागर के पुत्र ठ० श्री गागा के पुत्र ठ० श्री धरणिग के भ्राता तथा इनकी परंपरित संतान।
६. ठ० श्री खीम्बसिंह ७. ठ० श्री आम्बसिंह ८. ठ० श्री उदल	ठ० श्री धरणिग की पत्नी ठ० श्री तिहूणदेवी के पुत्र तथा महं श्री अनुपमा-देवी के भ्रातागण तथा इनकी परंपरित सन्तान।
९. मन्त्री श्री लूणसिंह	महं श्री लीला का पुत्र तथा इसकी परंपरित सन्तान।
१०. मन्त्री श्री जगसिंह	महं श्री लीला का भ्राता तथा इसकी परंपरित सन्तान।
११. मन्त्री श्री रत्नसिंह	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,

प्रोक्त सर्व सज्जनों के कुटम्बीजन तथा वंशज इस धर्मस्थान में स्नात्रपूजा आदि सर्व प्रकार के कार्य नित्य करने और करवाने के लिये उत्तरदायी हैं।

तथा श्री नेमिनाथदेव की प्रतिष्ठा-जयन्ती प्रति वर्ष स्नात्र-पूजा आदि मंगलकार्य करके निम्न ग्रामों के अधिवासी श्रावकगण अष्ट दिवस पर्यन्त प्रति दिन क्रमशः मनावेंगेः—

१ प्रतिष्ठामहोत्सव की प्रारंभ-तिथि देवकीय चैत्र कृष्णा ३ तृतीया (गुजराती फाल्गुण कृ० ३ तृतीया) के दिन प्रति वर्ष श्री चन्द्रावती का निवासी समस्त महाजन-सङ्घ और जिनमन्दिरों के व्यवस्थापक तथा गोष्ठिक एवं कार्य-कर्त्तागण आदि सर्व श्रावक समुदाय तथा ऊंवरली और कीवरली ग्रामों के अधिवासीः—

प्राग्वाटज्ञातीय शेठ रासल आसधर,
,, ,, माणिभद्र आल्हण
,, ,, देल्हण खीमसिंह
,, ,, सावड़ श्रीपाल
,, ,, जींदा पाल्हण
,, ,, पूना साल्हा

धर्कटज्ञातीय शेठ नेहा साल्हा
,, ,, धउलिग आसचन्द्र
,, ,, बहुदेव सोम
,, ,, पासु सादा
श्रीमालज्ञातीय पूना साल्हा आदि

२. प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा ४ चतुर्थी (गुज० फा० कृ० ४) के दिन कासहदग्राम के अधिवासीः—

ओसवालज्ञातीय शेठ सोही पाल्हण
,, ,, शलखण वलण
श्रीमालज्ञातीय ,, कडुयरा कुलधर

प्राग्वाटज्ञातीय शेठ सांतुय देल्हण
,, ,, गोसल आल्हा
,, ,, कोला अम्बा
,, ,, पासचन्द्र पूनचन्द्र
,, ,, जसवीर जगा
,, ,, ब्रह्मदेव राल्हा आदि

३. प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा ५ पंचमी (गुज० फा० कृ० पंचमी) के दिन वरमाणग्राम के अधिवासीः—

प्राग्वाटज्ञातीय महाजन आमिग पूनड़
,, ,, पाल्हण उदयपाल
,, ,, वीरदेव अमरसिंह
,, ,, शेठ धनचन्द्र रामचन्द्र

ओसवालज्ञातीय महाजन धांधा सागर
,, ,, साटा वरदेव
,, ,, आम्बोधन जगसिंह
श्रीमालज्ञातीय ,, वीसल पासदेव आदि

४. प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा ६ षष्ठी (गुज० फा० कृ० ६) के दिन धवलीग्राम के अधिवासीः—

प्राग्वाटज्ञातीय शेठ साजन पासवीर
,, ,, वोहड़ी पूना
,, ,, जसडुय जेगण
,, ,, साजण भोला
,, ,, पासिल पूनुय

प्राग्वाटज्ञातीय शेठ राजुय सावदेव
,, ,, दुगसरण साहणीय
ओसवालज्ञातीय सलखण मन्त्री जोगा
,, शेठ देवकुमार आसदेव आदि

५. प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा ७ सप्तमी (गुज० फा० कृ० ७) के दिन मुण्डस्थलमहातीर्थ (मूङ्गथला) के अधिवासीः—

प्राग्वाटज्ञातीय शेठ संधीरण गुणचन्द्र पाल्हा
,, ,, सोहिय आंबेसर
,, ,, जोजा खांखण
श्रीमालज्ञातीय शेठ वापल गाजण आदि [फीलिणीग्राम के निवासी ।]

६. प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा ८ अष्टमी (गुज० फा० कृ० ८) के दिन हंडाउद्रा (हणाद्रा) और डवाणी ग्रामों के अधिवासी:—

श्रीमालज्ञातीय शेठ आंबुय जसरा	श्रीमालज्ञातीय शेठ थिरदेव विरुय
,, ,, लखमण आम्र	,, ,, गुणचन्द्र देवधर
,, ,, आसल जगदेव	,, ,, हरिया हेमा
,, ,, सुमिग धनदेव	,, ,, आसधर आसल
,, ,, जिनदेव जाला	प्राग्वाटज्ञातीय ,, आसल सादा
,, ,, देला वीसल	,, ,, लखमण कडुया आदि

७. प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा ९ नवमी (गुज० फा० कृ० ९ के) दिन मडाहड़ (मड़ार) ग्राम के अधिवासी:—

प्राग्वाटज्ञातीय शेठ देसल ब्रह्मशरण	प्राग्वाटज्ञातीय शेठ आंबुय चोहड़ी
,, ,, जसकर धणिया	,, ,, वोसरी पूनदेव
,, ,, देल्हण आल्हा	,, ,, वीरुय साजण
,, ,, वाल्हा पदमसिंह	,, ,, पाहुय जिनदेव

८. प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा १० दशमी (गुज० फा० कृ० १०) के दिन साहिलवाड़ा ग्राम के अधिवासी:—

ओसवालज्ञातीय शेठ देल्हा आल्हण	ओसवालज्ञातीय शेठ जसदेव वाहड़
,, ,, नागदेव आंगदेव	,, ,, सीलण देल्हण
,, ,, काल्हण आसल	,, ,, वहुदा
,, ,, वोहिथ लाखण	,, ,, महधरा धनपाल
,, ,, गोसल वहड़ा	,, ,, पूनिग वाघा आदि

तथा श्री अर्बुदाचल के ऊपर स्थित श्री देउलवाड़ा के निवासी सर्व श्रावकसमुदाय श्री नेमिनाथदेव के पंच-कल्याणक-दिवसों में प्रतिवर्ष स्नात्र-पूजा आदि महोत्सव करें।

इस प्रकार यह व्यवस्था, श्री चंद्रावतीनरेश राजकुल श्री सोमसिंहदेव, उनके पुत्र युवराजकुमार श्री कान्हड़देव और अन्य प्रमुख राजकुमारगण, राज्यकर्मचारीगण, चन्द्रावती के स्थानपति भट्टारक (आचार्य अर्थात् धर्माचार्यगण), गूगुलि ब्राह्मण (पंडा-पूजारीगण), सर्व महाजन संघ, जैनमंदिरों के व्यवस्थापकगण और इसी प्रकार अर्बुदगिरि पर स्थित श्री अचलेश्वर और श्रीवशिष्ठ स्थानों के तथा समीपवर्त्ती ग्राम १ देवलवाड़ा २ श्री माता का महयुं ग्राम ३ आबुय ४ ओरसा ५ उत्तरछ ६ सिहर ७ सालग्राम ८ हेडऊंजी ९ आखी १० धांधलेश्वरदेव की कोटड़ी आदि बारह ग्रामों में रहने वाले स्थानपति (आचार्य, महंत), तपोधनसाधु, गूगुलि ब्राह्मण और राठिय आदि सर्व जनों ने तथा मालि, भाड़ा आदि ग्रामों में निवास करने वाले श्री प्रतिहारवंश के प्रमुख राजपुत्रों ने अपनी अपनी इच्छा से श्री 'लूणसिंहवसति के मूल नायक श्री नेमिनाथदेव' के मंडप में एकत्रित होकर मंत्री श्री तेजपाल के कर से अपनी स्वेच्छापूर्वक श्री 'लूणसिंहवसति' नामक इस धर्मस्थान की रक्षा करने का भार स्वीकृत किया।

ऐतदर्थ अपने वचनों के पालन करने में सदा तत्पर रहनेवाले ये सर्व सज्जन और इन सर्व सज्जनों की आनेवाली परंपरित संतान जहाँ तक सूर्य और चन्द्र जगतीतल पर प्रकाशमान् रहे, तहाँ तक सब प्रकार से इस धर्मस्थान की रक्षा करें। शास्त्रों में भी कहा है—

पात्र, कमण्डल, वल्कलवस्त्र, श्वेत, लालवस्त्र, जटा आदि के धारण करने से क्या ? उन्नत आत्माओं का स्वीकृत कार्य अथवा अपने वचनों का परिपालन करना ही निर्मल अर्थात् सुन्दर व्रत है।

तथा महारावल श्री सोमसिंहदेव के द्वारा इस 'श्री लूणसिंहवसति' के श्री नेमिनाथदेव की पूजा-भोग के लिये डवाणीग्राम प्रदान किया गया है। श्री सोमसिंहदेव की प्रार्थना से जब तक सूर्य और चन्द्र प्रकाशमान रहे, तब तक परमारवंश इस प्रतिज्ञा का पालन करता रहेगा।

महामात्य वस्तुपाल तेजपाल ने उक्त सर्व कार्य-वाही को एक श्वेत संगमरमरप्रस्तर की शिला पर बहुत सुन्दराक्षरों में उत्कीर्णित करवाकर लूणसिंहवसहिका के दक्षिण दिशा में आये हुये प्रवेशद्वार के ऊपर विनिर्मित मण्डप की बाहे हाथ की ओर की दिवार में बने हुये एक गवाक्ष में लगवा दिया है। सम्पूर्ण लेख मात्र तीन श्लोकों के अतिरिक्त गद्य में है। इस शिलालेख के ठीक पास में ही महामात्य भ्राताओं ने एक और दूसरा शिला-लेख लगवाया था, जिसमें सोमेश्वरकृत प्रशस्ति सूत्रधार केल्हण के पौत्र चन्द्रेश्वर ने उत्कीर्णित की है और जिसमें प्रथम सरस्वती की स्तुति और तत्पश्चात् भगवान् नेमिनाथ की वंदना है। तत्पश्चात् अणहिलपुर के मंत्री भ्राताओं के वंश का और उनके यश का, चौलुक्यवंश तथा चंद्रावती के परमार राजाओं का, अनुपमा के पितृवंश का, नेमनाथचैत्य का, मंत्री भ्राताओं के पुण्यकर्मों का, गुरुवंश का वर्णन दिया गया है। यह शिला-लेख एक काले प्रस्तर पर अत्यन्त सुन्दराक्षरों में उत्कीर्णित किया गया है।*

इस प्रतिष्ठोत्सव के पश्चात् भी निर्माण-कार्य यथावत् चालू रहा और निम्न प्रकार देवकुलिकायें बन कर तैयार हुईं।

मं० मालदेव और उसके परिवार के श्रेयार्थः—

देवकुलिकाओं की क्रम-संख्या	किसके श्रेयार्थ	किस बिंब की स्थापना	किस संवत् में
पहली	मं० मालदेव की पुत्री सद्मलदेवी	...	१२८८
दूसरी	मं० मालदेव के पुत्र पुण्यसिंह की स्त्री आल्हणदेवी	...	१२८८
तीसरी	मं० मालदेव की द्वि० भार्या प्रतापदेवी	...	१२८८
चौथी	मं० मालदेव की प्र० भार्या लीलादेवी	...	१२८८
पांचवीं	मं० मालदेव के पुत्र पुण्यसिंह का पुत्र पेथड़	...	१२८८
छट्ठी	मं० मालदेव का पुत्र पुण्यसिंह	...	१२८८
सातवीं	मं० मालदेव ...	...	१२८८
आठवीं	मं० पुण्यसिंह की पुत्री वलालदेवी	...	१२८८

मं० वस्तुपाल और उसके परिवार के श्रेयार्थः—

बैयालीसवीं	मं० वस्तुपाल की द्वि० स्त्री सोखुकादेवी	...	१२८८

*अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० २५०, २५१ पृ० ९२ से १०६.

तैंयालीसवीं	मं० वस्तुपाल की प्र० स्त्री ललितादेवी	...	१२८८
चौमालीसवीं	,, का पु० जयंतसिंह	...	१२८८
पैंतालीसवीं	,, के पु० जयंतसिंह की प्र० स्त्री जयतलदेवी	...	१२८८
छियालीसवीं	,, ,, द्वि० स्त्री सुहवदेवी	...	१२८८
सैंतालीसवीं	,, ,, तृ० स्त्री रूपादेवी	...	१२८८
अड़तालीसवीं	मं० मालदेव की पु० सहजलदेवी	...	१२८८

मं० तेजपाल और उसके परिवार के श्रेयार्थः—

सतरहवीं	मं० तेजपाल के पुत्र लूणसिंह की प्र० स्त्री रयणादेवी	...	१२६०
अट्ठारवीं	,, ,, की द्वि० स्त्री लक्ष्मीदेवी	...	१२६०
उन्नीसवीं	मं० तेजपाल की स्त्री अनुपमादेवी	मुनिसुव्रत	१२६०
बीसवीं	,, पु० बउलदेवी	...	१२६०
इक्कीसवीं	लूणसिंह की पु० गउरदेवी ...	...	१२६०

मन्त्री भ्राताओं की भगिनियों के श्रेयार्थः—

छब्बीसवीं	मन्त्री भ्राताओं की भगिनि जाल्हूदेवी	सीमंधरस्वामि	चै. कृ. ८ शु.	१२६३
सत्ताईसवीं	,, माऊदेवी	युगंधरस्वामि	,,	१२६३
अट्ठाईसवीं	,, साऊदेवी	श्रीबाहुस्वामि	,,	१२६३
उनत्तीसवीं	,, धणदेवी	सुबाहुस्वामि	,,	१२६३
तीसवीं	,, सोहगादेवी	ऋषभदेवस्वामि	,,	१२६३
इकत्तीसवीं	,, वयजूदेवी	वर्धमानस्वामि	,,	१२६३
पैंतीसवीं	,, पद्मलदेवी	वारिषेणस्वामि	चै. कृ. ७	१२६३
[चौंतीसवीं	,, के मामा पुण्यपाल तथा उसकी स्त्री पुण्यदेवी	चन्द्राननस्वामि	,,	१२६३
[गर्भगृह के द्वार के दोनों ओर नवचौकिया में दो गवाक्ष—देराणी-जेठाणी के आलय	तेजपाल की स्त्री सुहड़ादेवी	१. शांतिनाथ २.		१२६७

दंडनायक तेजपाल का सुहड़ादेवी के साथ विवाह वि० सं० १२६० के पश्चात् हुआ है ऐसा प्रतीत होता है; क्योंकि वि० सं० १२६० में विनिर्मित देवकुलिकाओं में, जिनका निर्माण तेजपाल ने अपने ही परिवार के श्रेयार्थ करवाया था, कोई देवकुलिका तेजपाल की द्वि० स्त्री सुहड़ादेवी के श्रेयार्थ नहीं है।

मन्त्री भ्राताओं द्वारा विनिर्मित लूणसिंहवसति-हस्तिशाला

नेमनाथचैत्यालय के मूलगर्भगृह के पीछे के भाग में तेजपाल ने विशाल हस्तिशाला का निर्माण करवाया था। इस हस्तिशाला में संगमर्मरप्रस्तर के १० दश हस्ति निम्नवत् वनवाये और प्रत्येक हस्ति की पीठ पर पालखी वनवाई और उसमें निम्नवत् अपने एक परिजन की मूर्त्ति, एक हस्तिचालक की मूर्त्ति और परिजन की मूर्त्ति के पीछे छत्र को हाथ में उठाये हुये एक छत्रधर-मूर्त्ति प्रतिष्ठित करवाई। हाथी के चरण के नीचे आधार-प्रस्तर पर परिजन का नाम खुदवाया। इस समय एक भी परिजन की मूर्त्ति किसी भी हस्ति पर विद्यमान नहीं है। मूर्त्तियाँ थीं, ऐसे चिह्न प्रत्येक हस्ति पर अवशिष्ट हैं। महावतों की मूर्त्तियाँ भी प्रायः सर्व खण्डित हो चुकी हैं, परन्तु प्रत्येक हस्ति पर इस समय महावत-मूर्त्ति के दोनों पैर लटकते हुये अभी भी विद्यमान हैं।

पहला हाथी	महं० श्री चण्डप	दूसरा हाथी	महं० श्री चण्डप्रसाद
तीसरा ,,	,, ,, सोम	चौथा ,,	,, ,, आसराज
पाँचवां ,,	,, ,, लूणिग	छट्ठा ,,	,, ,, मल्लदेव
सातवां ,,	,, ,, वस्तुपाल	आठवां ,,	,, ,, तेजपाल
नौवां ,,	,, ,, जैत्रसिंह	दशवां ,,	,, ,, लावण्यसिंह

हस्तिशाला में इन हाथियों के पीछे दिवार में तेजपाल ने दश आलयों में जिनको खत्तक कहते हैं, निम्नवत् मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित करवाईः—

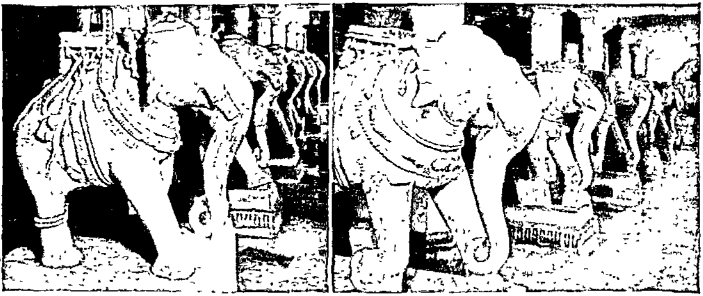
खत्तकों में प्रतिष्ठित मूर्त्तियाँः—

खत्तक	प्रतिष्ठित मूर्त्तियाँ			
पहला	१. आचार्य उदयप्रभसूरि	२. आचार्य विजयसेनसूरि	३. महं० श्री चण्डप	४. महं० श्री चांपलदेवी
दूसरा	१. श्री चण्डप्रसाद	२. महं० श्री जयश्री		
तीसरा	१. महं० श्री सोम	२. महं० श्री सीतादेवी	३. महं० श्री आसण	
चौथा	१. महं० श्री आसराज	२. महं० श्री कुमारदेवी		
पांचवां	१. महं० श्री लूणिग	२. महं० श्री लूणादेवी		
छट्ठा	१. महं० श्री मालदेव	२. महं० श्री लीलादेवी	३. महं० श्री प्रतापदेवी	
सातवां	१. महं० श्री वस्तुपाल	२. महं० श्री ललितादेवी	३. महं श्री वेजलदेवी	
आठवां	१. महं० श्री तेजपाल	२. महं० श्री अनुपमादेवी		

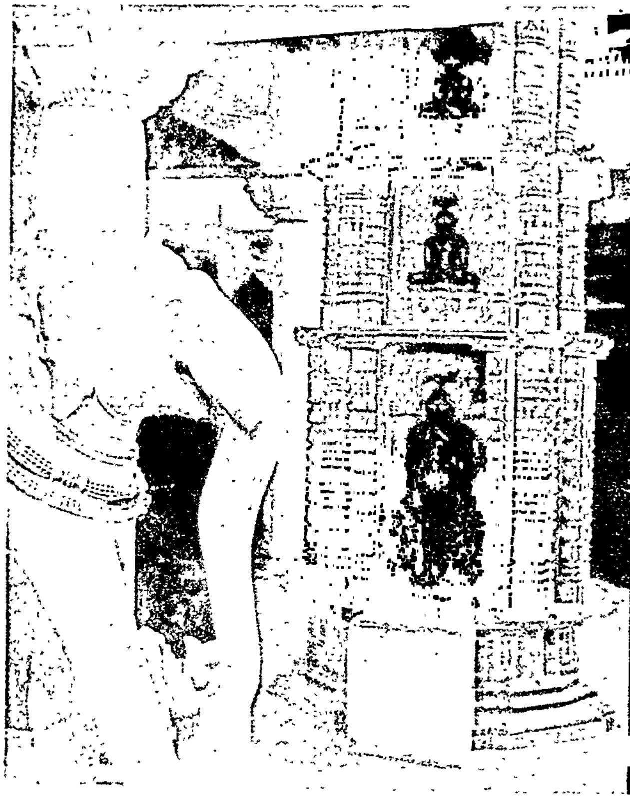
अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० ३१६—३२०

—— तेजपाल का सुहडादेवी के साथ विवाह अवश्य हस्तिशाला के वन जाने के पश्चात् ही हुआ है; क्योंकि आठवें खत्तक में उसकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित नहीं है। नेमनाथ-चैत्यालय के रंगमंडप के दो गवाक्षों में वि० सं० १२६७ के शिलालेख सुहडादेवी के नाम से हैं। अतः यह सिद्ध है कि तेजपाल का इसके साथ विवाह वि० सं० १२६० या १२६३ के पश्चात् ही हुआ है।

चण्डप्रसाद की स्त्री का नाम जयश्री था— न० ना० नं० स० १६ श्लो० ७ पृ० ५६



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की हस्तिशाला का दृश्य। हस्तिः-उत्तर से दक्षिण को।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की हस्ति-शाला में हस्तियों के मध्य में विनिर्मित त्रिमंजिला सुन्दर समवशरण। पृ० १७८।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की हस्तिशाला में पुरुषों के खत्तकों के मध्य तथा श्री समवशरण के ठीक पीछे एक खत्तक में विराजित सुन्दर परिकरसहित भव्य जिनप्रतिमा। पृ० १७८।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की हस्तिशाला में (उत्तर पक्ष से) प्रथम पांच (एक से पांच) खत्तकों में प्रतिष्ठित मंत्रीभ्राताओं की पूर्वजप्रतिमायें। देखिये पृ० १७८ पर।

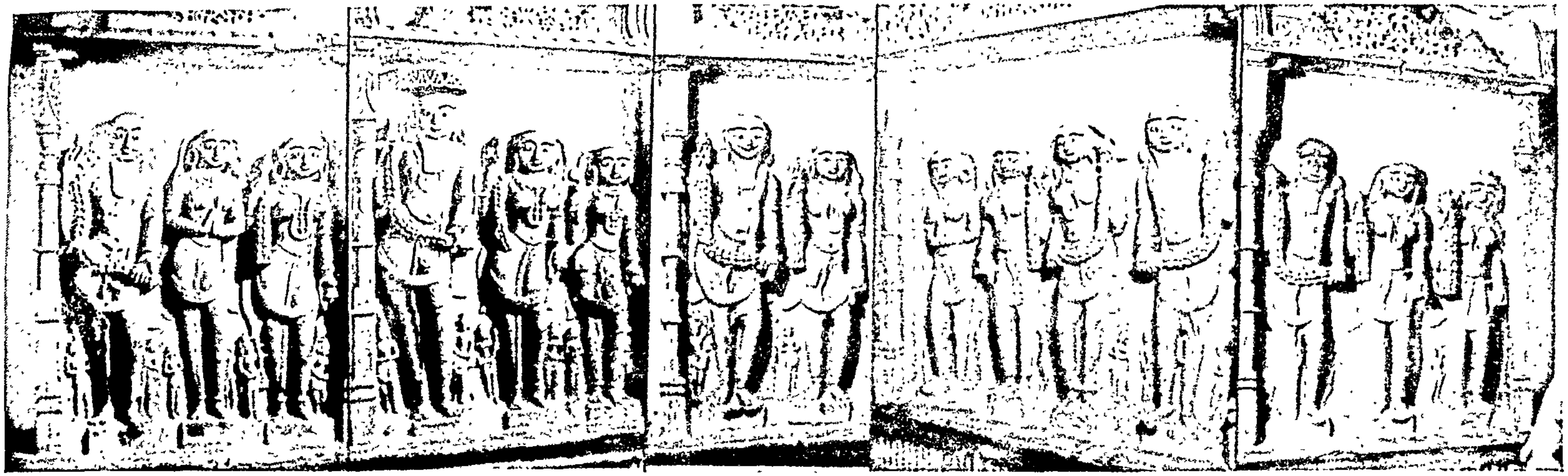
(१) उदयप्रभसूरि, विजयसेनसूरि, महं० चण्डप, महं० चापलदेवी।

(२) महं० चण्डप्रसाद, महं० जयश्री।

(३) महं० सोम, महं० सीतादेवी, महं० आमण।

(४) महं० आशराज, महं० कुमारदेवी।

(५) महं० लूणिग, महं० लूणादेवी।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की हस्तिशाला में अन्य पांच (छः से दस) खत्तकों में प्रतिष्ठित मंत्रीभ्राता तथा उनके पुत्रादि की प्रतिमायें। देखिये पृ० १७८ पर।

(६) महं० मालदेव, महं० लीलादेवी, महं० प्रतापदेवी।

(७) महं० वस्तुपाळ, महं० ललितादेवी, महं० वेजलदेवी।

(८) महं० तेजपाळ, महं० अनुपमादेवी।

(९) महं० जैत्रसिंह, महं० जयतलदेवी, महं० जंभणदेवी, महं० रूपादेवी।

(१०) महं० सुहड़सिंह, महं० सुहड़ादेवी, महं० सलखणादेवी।

नौवां १. महं० श्री जैत्रसिंह . २. महं० श्री जयतलदेवी ३. महं० श्री जंमणदेवी ४. महं० श्री रूपादेवी
दशवां १. महं० श्री सुहड़सिंह २. महं० श्री सुहड़ादेवी ३. महं० श्री सलखणादेवी

श्री अर्बुदगिरितीर्थ श्री मन्त्री भ्राताओं की संघ-यात्रायें

और तदवसरों पर मन्त्री भ्राताओं के द्वारा तथा चन्द्रावतीनिवासी अन्य प्राग्वाटज्ञातीय बंधुओं के द्वारा किये गये पुण्यकर्मों का संक्षिप्त वर्णन

मंत्री भ्राताओं की यात्रायें:—

यात्रा	किसने	कब
१.	महा० वस्तुपाल	वि० संवत् १२७८ फाल्गुण कृ० ११ गुरु०
२.	महा० वस्तुपाल तेजपाल	,, १२८७ ,, कृ० ३ रविवार
३.	दंडनायक तेजपाल	,, १२८८
४.	,,	,, १२९०
५.	,,	,, १२९३ चैत्र कृ० ७-८
६.	,,	,, १२९३ वै० शु० १४–१५
७.	,,	,, १२९७ वै० कृ० १४ गुरुवार

प्रथम यात्रा—महामात्यवस्तुपाल ने महामात्य बनने के लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात् वि० सं० १२७८ फाल्गुण कृ० ११ गुरुवार को की थी। उस समय केवल विमलशाह द्वारा विनिर्मित विमलवसतिका ही अर्बुदस्थ जैनधर्म-स्थानों में प्रसिद्ध तीर्थ था। महामात्य ने उपरोक्त तीर्थ के दर्शन किये और अपने स्वर्गस्थ ज्येष्ठ भ्राता श्री मालदेव के श्रेयार्थ खत्तक बनवाया।

द्वितीय यात्रा—दोनों भ्राताओं ने सपरिवार एवं विशाल संघ के साथ में वि० सं० १२८७ फा० कृ० ३ रविवार को की थी और जैसा लिखा जा चुका है मन्त्री भ्राताओं ने श्री लूणसिंहवसतिकाख्य श्री नेमिनाथचैत्यालय का प्रतिष्ठा-महामहोत्सव राजसी सज-शोभा के साथ श्रीमद् विजयसेनसूरि के करकमलों से करवाया था।

तृतीय यात्रा—वि० सं० १२८८ में दंडनायक तेजपाल ने अपने सम्पूर्ण कुटुम्ब के साथ में की थी। महामात्य वस्तुपाल विशिष्ट राज-कार्य के कारण इस यात्रा में सम्मिलित नहीं हुए थे। इस अवसर पर करवाये गये धर्मकृत्य तथा विनिर्मित स्थानों के प्रतिष्ठादि कार्य भी मुख्यतया तेजपाल के ही श्रम के परिणाम थे और अतः वे तेजपाल के नाम से ही किये गये थे। इस यात्रावसर पर तेजपाल ने लूणसिंहवसतिका की पन्द्रह देवकुलिकाओं में, जिनका निर्माण हो चुका था अपने ज्येष्ठ भ्राता मालदेव और ज्येष्ठ भ्राता वस्तुपाल के समस्त परिवार के एक-एक व्यक्ति के श्रेयार्थ जिन-प्रतिमायें स्थापित की थीं।

चतुर्थ यात्रा—भी दंडनायक तेजपाल ने वि० सं० १२६० में अपने परिवार सहित की और अपने ही पांच परिजनों के श्रेयार्थ अलग २ देवकुलिकाओं में जिनप्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाई।

पांचवीं और छट्ठी यात्रायें—दंडनायक तेजपाल की वि० सं० १२६३ में चै० कृ० ७-८ और वै० शु० १४-१५ पर हुईं। इन दोनों अवसरों पर उसने अपनी सातों बहिनों के श्रेयार्थ देवकुलिकायें विनिर्मित करवा कर उनमें जिनप्रतिमायें प्रतिष्ठित कीं तथा एक अलग देवकुलिका में अपने मामा और मामी के श्रेयार्थ जिन-प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई।

इन्हीं यात्राओं के अवसरों पर चन्द्रावती के निवासी प्राग्वाटवंशीय श्रेष्ठियों ने भी अपने और अपने पूर्वज तथा परिजनों के श्रेयार्थ जिन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठायें करवाई। उनका भी उल्लेख यहीं देना समुचित है। मेरा अनुमान है कि ये श्रेष्ठिजन तेजपाल के श्वसुरालय-पक्ष से कुछ संबंध रखते हों, क्योंकि तेजपाल की बुद्धिमती एवं गुणवती स्त्री अनोपमा चन्द्रावती की थी।

श्रे० साजण

वि० सं० १२६३

चन्द्रावती के निवासी प्राग्वाटज्ञातीय महं० कउड़ि के पुत्र श्रे० साजण ने अपने काका के लड़के भ्राता वरदेव, कडुया, धर्मा, देवा, सीहड़ तथा भ्रातृज आसपाल आदि कुटुम्बीजनों के सहित तथा देवी, रत्नावती और झणकूदेवी नामक बहिनों और वड़ग्रामवासी प्राग्वाटज्ञातीय व्यव० मूलचन्द्रभार्या लीविणी, मोंटग्रामवासी व्य० जयंत, आंववीर, विजइपाल और प्रचारिका वीरा, सरस्वती तथा अपनी स्त्री झालू आदि की साक्षी से श्री अर्बुदाचल-तीर्थस्थ श्री लूणवसतिकाख्य नेमिनाथचैत्यालय में पन्द्रवीं देवकुलिका करवा कर उसमें आदिनाथप्रतिमा को श्री नागेन्द्रगच्छीय श्रीमद् विजयसेनसूरि के करकमलों से वि० सं० १२६३ चैत्र कृ० ८ शुक्रवार को प्रतिष्ठित करवाई तथा श्री आदिनाथपंच-कल्याणकपट्ट भी करवाकर प्रतिष्ठित करवाया।*

वंश वृक्ष

१ महं० कउड़ि — साजण, देवी, रत्नावती, झणकू

२ — वरदेव, कडुया, धर्मा, देवा, सीहड़ — आशपाल

---

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २८६, २६०

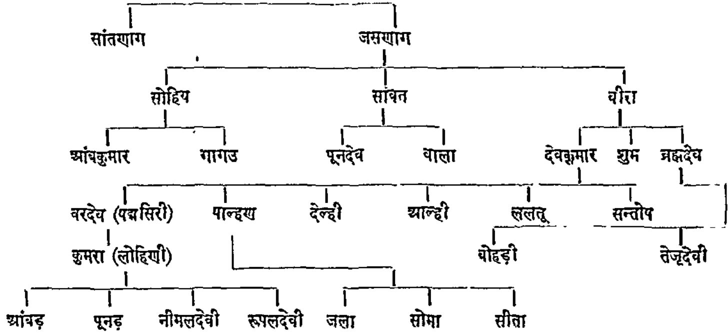
श्रे० कुमरा
वि० सं० १२९३

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० सांतणाग और जसणाग नामक दो भ्राता चन्द्रावती में हो गये हैं। श्रे०जसणाग के साहिय, सांवत और वीरा नाम के तीन पुत्र थे। साहिय के दो पुत्र थे, आंबकुमार और गागउ। सांवत के भी पूनदेव और वाला नामक दो पुत्र थे और वीरा के भी देवकुमार और ब्रह्मदेव नामक दो ही पुत्र थे।

श्रे० देवकुमार के दो पुत्र वरदेव और पाल्हण तथा चार पुत्रियाँ देल्ही, आल्ही, ललतू और संतोषकुमारी हुईं। ब्रह्मदेव के एक पुत्र बोहड़ि नामक और एक पुत्री तेजू नामा हुई।

श्रे० वरदेव के कुमरा नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ और श्रे० पाल्हण के जला और सोमा नामक दो पुत्र और सीता नामा पुत्री हुई।

श्रे० कुमरा के दो पुत्र, आंबड़ और पूनड़ तथा दो पुत्रियाँ नीमलदेवी और रूपलदेवी नामा हुईं। श्रे० कुमरा ने अपने पिता श्रे० वरदेव के श्रेय के लिये श्री नागेन्द्रगच्छीय पूज्य श्री हरिभद्रसूरिशिष्य श्रीमद् विजयसेनसूरि-के करकमलों से श्री नेमिनाथदेवप्रतिमा से सुशोभित बावीसवीं देवकुलिका वि० सं० १२९३ वैशाख शु० १४ शुक्रवार को श्री अर्बुदाचलस्थित श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथचैत्यालय में प्रतिष्ठित करवाई और उसी अवसर पर श्री नेमिनाथदेव का पंचकल्याणकपट्ट भी लगवाया। वि० सं० १३०२ चैत्र शु० १२ सोमवार को श्रे० कुमरा के पुत्र आंबड़, पूनड़ ने अपनी पितामही पद्मसिरी के श्रेयार्थ बावीसवीं देवकुलिका करवाई और कुमरा की स्त्री लोहिणी ने जिनप्रतिमा भरवाई, जो इसी बावीसवीं देवकुलिका में अभी विराजमान है।



अ० प्रा० जै० ले० सं० भा २ ले० ३०५-३०८ पृ० १२६-७। ले० ३०५ में वर्णित देदा ही देवकुमार है।

श्रा० रतनदेवी
वि० सं० १२६३

चन्द्रावतीनिवासी गौरवशाली प्राग्वाटज्ञातीय अजित नामक वंश में उत्पन्न महं० श्री आभट के पुत्र महं० श्री शान्ति के पुत्र महं० श्री शोभनदेव की धर्मपत्नी महं० श्री माऊ की पुत्री ठ० रत्नदेवी ने अपने माता, पिता के श्रेयार्थ श्री अर्बुदाचलस्थतीर्थ श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथचैत्यालय में तेतीसवीं देवकुलिका बनवा कर उसमें श्री पार्श्वनाथप्रतिमा को वि० सं० १२६३ चै० कृ० ८ शुक्रवार को प्रतिष्ठित करवाया ।*

वंशवृत्त

अजितसंतानीय महं० आभट
|
महं० शान्ति
|
महं० शोभनदेव [महं० माऊ]
|
ठ० रत्नदेवी

श्रे० श्रीधरपुत्र अभयसिंह तथा श्रे० गोलण समुद्धर
वि० सं० १२९३

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में चंद्रावती में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वीरचन्द्र हुआ है। उसकी स्त्री श्रीयादेवी के साढ़देव और छाहड़ नामक दो पुत्र हुये।

श्रे० साढ़देव के साऊ नामा स्त्री थी। श्रा० साऊ की कुक्षी से आसल, जेलण, जयतल और जसधर नामक चार पुत्र हुये। श्री जेलण के समुद्धर नामक पुत्र हुआ और श्री जयतल के देवधर, मयधर, श्रीधर और आंबड़ नामक चार पुत्र हुये। श्रे० श्रीधर के अभयसिंह नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ।

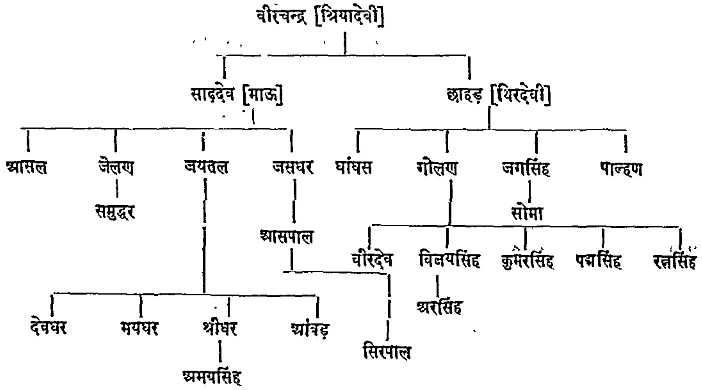
श्रे० जसधर के आसपाल और श्रे० आसपाल के सिरपाल नामक पुत्र थे।

श्रे० साढ़देव के कनिष्ठ भ्राता श्रे० छाहड़ की स्त्री थिरदेवी की कुक्षी से पांचस, गोलण, जगसिंह और पाल्हण नामक चार पुत्र हुये।

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २३४ पृ० ११६

श्रे० गोलण के वीरदेव, विजयसिंह, कुमरसिंह, पद्मसिंह और रत्नसिंह नामक पांच पुत्र हुए। श्रे० विजयसिंह के अरसिंह नामक पुत्र था।

श्रे० गोलण के लघुभ्राता जगसिंह के सोमा नामक पुत्र था। श्रे० जसधर के पुत्र आसपाल, श्रे० गोलण के सर्व पुत्र, श्रे० जगसिंह के पुत्र सोमा, आसपाल के पुत्र सिरपाल, श्रे० विजयसिंह के पुत्र अरिसिंह, श्रे० श्रीधर के पुत्र अभयसिंह और श्रे० गोलण तथा समुद्धर ने मिलकर नवांगवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरिसंतानीय श्रीमद् धर्मघोषसूरि के करकमलों से वि० सं० १२९३ वैशाख शु० १५ शनिवार को श्री अर्बुदाचलतीर्थस्थ श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथचैत्यालय में श्री शांतिनाथबिंब तथा पंचकल्याण-पट्ट प्रतिष्ठित करवाये।*



श्रे० पाल्हण
वि० सं० १२९३

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में चन्द्रावती में प्राग्वाटज्ञातीय वीशल श्रेष्ठि हुआ है। उसके शांतू (शांतिदेवी) नामा स्त्री थी। श्री० शांतू के गुणिचन्द्र, श्रीकुमार, सांतकुमार और पाल्हण नामक चार पुत्र हुये।

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २८७-८८ पृ० ११०।

श्रे० श्रीकुमार के तीन पुत्र और एक पुत्री हुई और क्रमश वील्हा, आंब, साउदेवी और आसधर उनके नाम थे। ज्येष्ठ पुत्र वील्हा के आम्रदेव नामक पुत्र हुआ। आम्रदेव के आसदेव और आसचन्द्र नामक दो पुत्र हुये।

श्रे० पाल्हण की धर्मपत्नी सील्हू नामा के आसपाल और मांटी नामा दो पुत्र हुये। श्रे० पाल्हण ने अपने आत्मकल्याण के लिये श्रीनागेन्द्रगच्छीय श्रीमद् विजयसेनसूरि के करकमलों से वि० सं० १२६३ वैशाख शु० १५ शनिश्चर को श्री अर्बुदाचलतीर्थस्थ श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथचैत्यालय में प्रतिष्ठित श्रीनेमिनाथ-प्रतिमा से अलंकृत तेवीसवीं देवकुलिका करवाई।*

पासिलसंतानीय वीशल [शांतू]

- मुणिचन्द्र
- श्रीकुमार
  - वील्हा
    - आम्रदेव
      - आसदेव
      - आसचन्द्र
  - आंब
  - साउ
  - आसधर
- सातकुमार
- पाल्हण [सील्हू]
  - आसपाल
  - मांटी

ठ० सोमसिंह और श्रे० आंबड़
वि० सं० १२६३

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में चन्द्रावती में प्राग्वाटज्ञातीय ठ० सहदेव हुआ है। ठ० सहदेव के ठ० शिवदेव नामक पुत्र हुआ। ठ० शिवदेव का पुत्र ठ० सोमसिंह अधिक प्रख्यात हुआ।

ठ० सोमसिंह के दो छोटे भ्राता भी थे, जिनका नाम ठ० खांखण और सोमचन्द्र थे। ठ० सोमसिंह की पत्नी का नाम नायकदेवी था। नायकदेवी की कुक्षी से सांवतसिंह, सुहड़सिंह और संग्रामसिंह नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुये। ज्येष्ठ पुत्र सांवतसिंह के सिरपति नामक एक पुत्र हुआ।

चन्द्रावती में अन्य प्राग्वाटज्ञातीय कुल में श्रे० बहुदेव के पुत्र श्रे० देल्हण की स्त्री जयश्री की कुक्षी से पांच पुज-रत्न आंबड़, सोमा, पूना, खोषा और आशपाल उत्पन्न हुये थे, जिनमें आंबड़ अधिक प्रसिद्ध हुआ। श्रे०

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३१३ पृ० १२८.

आंवड़ के रत्नपाल और सोमा के खेता तथा पूना के तेजपाल, वस्तुपाल और चाहड़ नामक पुत्र हुए। चाहड़ की स्त्री धारमति थी और जगसिंह नामक पुत्र था।

इन दोनों कुलों में अधिक प्रेम और स्नेहसंबंध था। ठ० शिवदेव के तीनों पुत्र खांखण, सोमचन्द्र और ठ० सोमसिंह ने तथा श्रे० देल्हण के पुत्र आंवड़ादि ने मिलकर अपने माता, पिताओं के श्रेयार्थ श्रीनागेन्द्रगच्छीय श्रीमद् विजयसेनसूरि के करकमलों से वि० सं० १२६३ वैशाख शु० १५ शनिश्चर को श्रीअर्बुदाचलतीर्थस्थ श्रीलूण-वसतिकाख्य श्रीनेमिनाथचैत्यालय में श्री पार्श्वनाथबिंब और श्री पार्श्वनाथपंचकल्याणकपट्ट प्रतिष्ठित करवाये।*

वंशवृत्तः—

- १ सहदेव
  - शिवदेव
    - सोमसिंह [नायकदेवी]
      - सांवतसिंह
        - सिरपति
      - सुहड़सिंह
      - संग्रामसिंह
    - खांखण
    - सोमचन्द्र

वंशवृत्तः—

- २ बहुदेव
  - देल्हण [जयश्री]
    - आंवड़
      - रतनलाल
    - सोमा
      - खेता
    - पूना
      - तेजपाल
      - वस्तुपाल
      - चाहड़ [धारमति]
        - जगसिंह
    - खोपा
    - आसपाल

श्रे० उदयपाल
वि० सं० १२६३

चन्द्रावतीनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय ठ० चाचिग की धर्मपत्नी चाचिणी के पुत्र राघवदेवकी धर्मपत्नी साभीय की कुक्षी से उत्पन्न उदयपाल नामक पुत्र था, जिसकी स्त्री का नाम अहिवदेवी था। इसके पुत्र आसदेव की स्त्री सुहागदेवी तथा उसके भ्राता ठ० भोजदेव धर्मपत्नी सूमल तथा भ्राता महं० आणंद स्त्री महं० श्री लुका ने अपने और माता-पिता, पूर्वजों के श्रेयार्थ श्री अर्बुदाचलस्थ श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथचैत्यालय में बत्तीसवीं देवकुलिका विनिर्मित

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २७६, २८० पृ० १८७

करवा कर वि० सं० १२९३ चै० कृ० ८ शुक्रवार को उसमें आदिनाथजिनेश्वरबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।*

वंश-वृक्षः—

ठ० चाचिग [चाचिगणी]
|
राघवदेव [साभीय]
|
- उदयपाल [अहिवदेवी]
  - मह० आसदेव [सुहागदेवी]
- ठ० भोजदेव [सूमल]
- मह० आणंद [लुका]

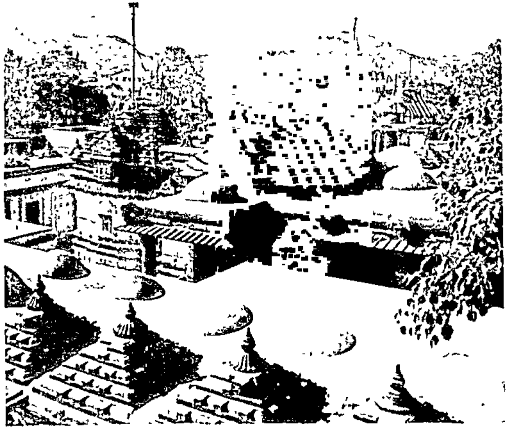
दंडनायक तेजपाल की अन्तिम यात्रा
वि० सं० १२९७

सातवीं यात्रा—दंडनायक तेजपाल ने वि० सं० १२९७ वैशाख कृ० १४ गुरुवार को की और नवचौकिया में दो गवाक्षों में अपनी द्वितीय स्त्री सुहड़ादेवी के श्रेयार्थ जिनप्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाईं।

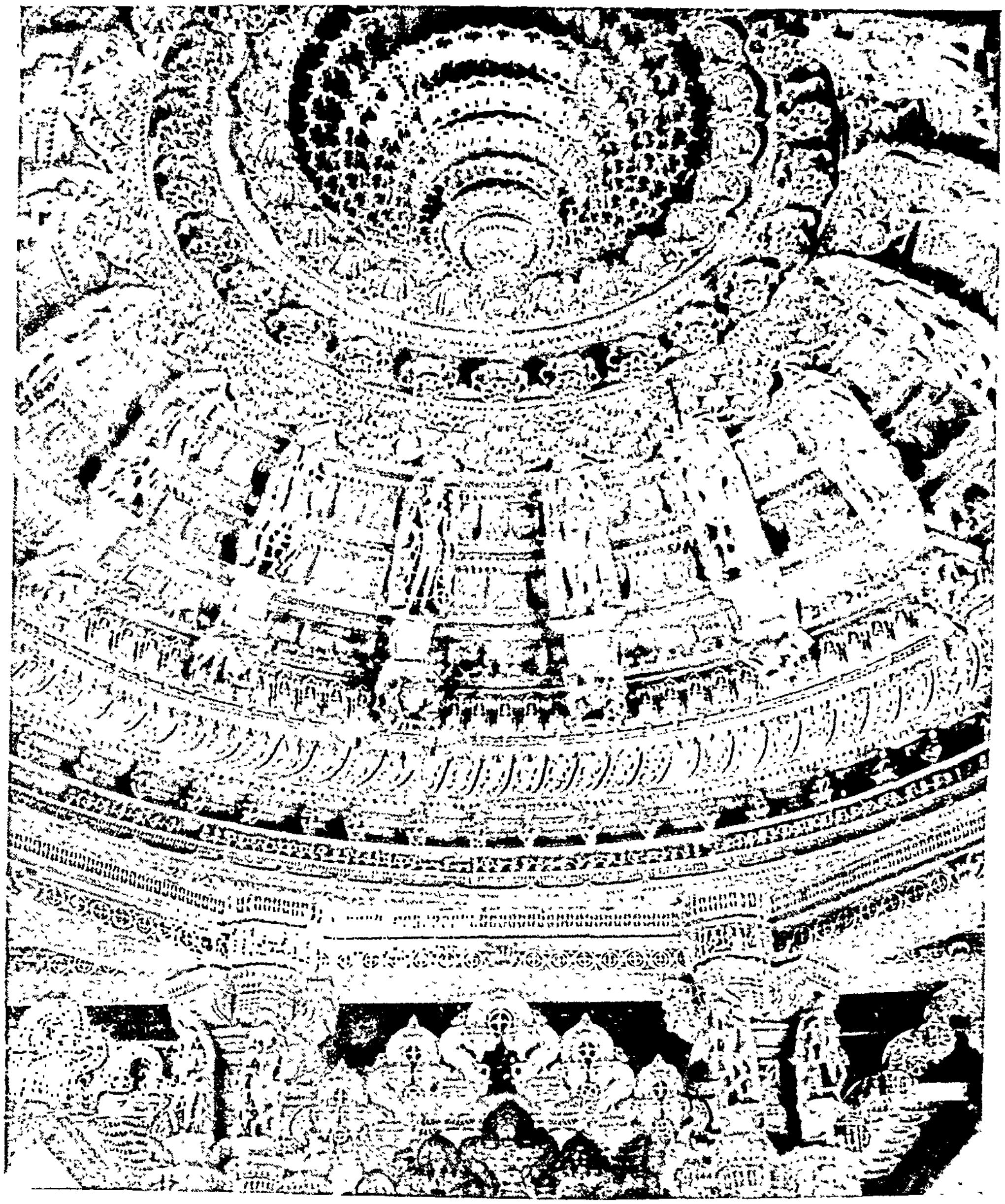
दंडनायक तेजपाल ने इस प्रकार मुख्यतः आठ यात्रायें की हैं। एक यात्रा हस्तिशाला में अपने पूर्वज और भ्राताओं के स्मरणार्थ हस्ति-स्थापना के निमित्त की थी। यह यात्रा कब की इसका संवत् प्राप्त नहीं है। परन्तु इतना अवश्य लिखा जा सकता है कि हस्तिशाला का निर्माण संभवतः वि० सं० १२९३-४ तक पूर्ण हो चुका था।

---

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३३२ पृ० १३५



देउलवाडा: पार्वतीयसुषमा एवं वृक्षराजि के मध्य श्री पित्तलहरवसहि एवं श्री खरतरहरवसहि के साथ में अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि का बाहिर देखाव। देखिये पृ० १८७ पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि के रङ्गमण्डप के सोलह देवपुत्तलियोंवाले अद्भुत घूमट का भीतरी दृश्य।

देखिये पृ० १८९(१) पर।

अनन्य शिल्पकलावतार अर्बुदाचलस्थ श्री लूणसिंहवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-जिनालय

मूलगंभारा, गूढ़मण्डप, नवचौकिया, भ्रमती और सिंहद्वार आदि का शिल्पकाम

अर्बुदाचलस्थ देलवाड़ाग्राम में जहाँ ऊपर पांच जैन मंदिरों के होने के विषय में कहा गया है, विमलवसति अगर उनमें एक है तो लूणसिंहवसति भी एक है। दोनों के ऊपर एक ही लेखक लिखने बैठे तो निसन्देह है कि वह उलझन में पड़ जायगा कि सौन्दर्य और शिल्प की उत्तम रचना की दृष्टियों से वह किसको प्रधानता दे। यह ही समस्या मेरे भी सामने है। दोनों में मूल अन्तर—विमलवसति दो सौ वर्ष प्राचीन है और दूसरा प्रमुख अन्तर विमलवसति अगर जीवन का लेखा है तो लूणसिंहवसति कला का सौन्दर्य है। एक में प्रमुखता जीवन-चित्रों की है और दूसरे में कला की। कला जीवन में माधुर्य और सरसता लाती है। जिस जीवन में कला नहीं, वह जीवन ही शुष्क है। और जो कला जीवन के लिये नहीं वह कला भी निरर्थक है। यह बात उपरोक्त दोनों वसतियों से दृष्टिगत होती है। विमलवसति में अनेक जीवन-संबंधी चित्र हैं और वे कलापूर्ण विनिर्मित हैं और लूणवसति में अनेक कलासंबंधी रचनायें हैं और वे सीधी जीवन से संबंधित हैं।

विमलवसति और लूणसिंहवसति

संक्षेप में विमलवसति जीवन-चित्र और लूणसिंहवसति कलामूर्त्ति है। अपने २ स्थान में दोनों अद्वितीय हैं। लूणसिंहवसति सर्वाङ्गसुन्दर मन्दिर है। मूलगंभारा, चौकी, गूढ़मण्डप और गूढ़मण्डप के दोनों पक्षों पर चौकियाँ, आगे नवचौकिया और उसमें दोनों ओर गूढ़मण्डप की भित्ति में आलय, फिर सभामण्डप, भ्रमती, देवकुलिकायें और उनके आगे स्तंभवतीशाला, सिंहद्वार और उसके आगे चौकी–इस प्रकार मंदिरों में जितने अंग होने चाहिये, वे सर्व अंग यहां विद्यमान हैं। मन्दिर के पीछे सुन्दर हस्तिशाला भी बनी हुई है।

विमलवसति से ऊपर उत्तर की ओर लगती हुई एक टेकरी आ गई है। उस टेकरी के पूर्वी ढाल के नीचे श्रीलूणसिंहवसति बनी हुई है। यह भी विशाल पावनजिनालय है। वस्तुपाल तेजपाल का इतिहास लिखते समय इसके निर्माण, प्रतिष्ठा आदि के विषय में पूर्णतया लिखा जा चुका है, परन्तु यह एक कलामन्दिर है, जिसकी समता रखने वाला अन्य कलामन्दिर जगत में नहीं है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि शिल्पकार शोभनदेव की टांकी और उसके मस्तिष्क का यह जादू जो आज भी अपने पूर्ण सौन्दर्य और मनोहार्य से विद्यमान है और जो अनन्य भव्यता, मनोमुग्धकारिता, अलौकिकता लिये हुये शिल्पकला की साक्षात् प्रतिमा है अनिवार्यतः कलादृष्टि से वर्णनीय है।

परिशेष्ट और सिंहद्वार

लूणसिंहवसति क्षेत्र की दृष्टि से विशाल है, परन्तु ऊंचाई मध्यम लिये हुए है। बाहर से इसका देखाव बिलकुल सादा है, यह मंत्री-भ्राताओं की सादगी और सरल जीवन का उदाहरण है। इसका सिंहद्वार पश्चिमाभिमुख है और उसके आगे चौकी है। सिंहद्वार की रचना भी सादी ही है।

लूणसिंहवसति के परिकोष्ट में दक्षिण दिशा में भी एक द्वार है। आवागमन इसी द्वार से प्रमुखतः होता है। यह द्वार द्विमंजला है। इसके ऊपर चतुष्द्वारा है। विमलवसति से निकलकर उत्तर की ओर मुड़ते हैं और कुछ चरण चल कर इसमें प्रविष्ट होते हैं। द्वार के दाही ओर एक चतुष्क पर एक लम्बा स्तंभ खड़ा हैं, जिसका शिर-भाग अपूर्ण है। शिर का भाग या तो खण्डित हो गया या खण्डित कर दिया गया है। इस स्तंभ को कीर्त्तिस्तंभ कहते हैं।

दक्षिण द्वार और कीर्त्तिस्तंभ

ये दोनों आकार में विशाल हैं; परन्तु बनावट में एक दम सादे हैं। जैसा पूर्व लिखा जा चुका है कि वि० सं० १२८७ फाल्गुण कृ० ३ रविवार को नागेन्द्रगच्छीय श्रीमद् विजयसेनसूरि के करकमलों से कसौटी के प्रस्तर की बनी हुई श्यामवर्ण की श्री नेमिनाथ भगवान् की विशाल प्रतिमा को इसमें प्रतिष्ठित किया था। मूलगंभारे के द्वार के बाहर चौकी है और उसमें दोनों तरफ दो आलय हैं। मूलगंभारे के ऊपर बना हुआ शिखर छोटा और बैठा हुआ है। गूढ़मण्डप के ऊपर का गुम्बज भी छोटा और बैठा हुआ ही है। गूढ़मण्डप आठ बड़े स्तम्भों से बना है। स्तंभ सादे हैं, परन्तु दीर्घकाय हैं। गूढ़मण्डप के उत्तर और दक्षिण में दो द्वार हैं और दोनों द्वारों के आगे एक-एक सुन्दर चौकी बनी है। प्रत्येक चौकी के चारों स्तम्भ और मण्डप की रचना अति सुन्दर और कलापूर्ण है। गूढ़मण्डप का मुखद्वार पश्चिमाभिमुख है। इसके आगे नवचौकिया की रचना है।

मूलगंभारा और गूढ़मण्डप

लूणसिंहवसति के अत्यन्त कलापूर्ण अंगों में नवचौकिया का स्थान भी प्रमुख है। गूढ़मण्डप का द्वार, द्वारशाखायें, द्वार के बाहर दोनों ओर बने दोनों आलय, आलयों के ऊपर के भाग, छत और स्तंभ तथा नवचौकिया के मण्डप इत्यादि एक से एक बढ़ कर कला को धारण किये हुये हैं। जिनका वर्णन करना कलम की कमजोरी को प्रकट करना है। देख कर ही उनका आनंद लिया जा सकता है। फिर भी यथाशक्ति वर्णन देने का प्रयत्न किया है। गूढ़मण्डप के द्वार के द्वार-शाखों और स्तंभों में ऊपर से नीचे तक आड़ी और सीधी गहरी धारायें खोदी गई हैं। प्रत्येक स्तंभ को खण्डों में एक २ गहरी आड़ी धार खोद कर फिर विभाजित किया गया है। स्तंभ के ऊपर के भाग में शिखर और नीचे समूर्त्ति

नवचौकिया

इस समय निम्नवत् प्रतिमायें विराजमान हैं।

२–मूलगंभारे में:—

१–सपरिकर मू० ना० श्री नेमनाथ भगवान् की श्यामवर्णप्रतिमा।

२–सपरिकर पंचतीर्थी। ३, ४ परिकररहित दो मूर्त्तियां।

गूढ़मण्डप में:—

१–भगवान् पार्श्वनाथ की कायोत्सर्गिक प्रतिमायें २। २–सपरिकर प्रतिमायें ३।

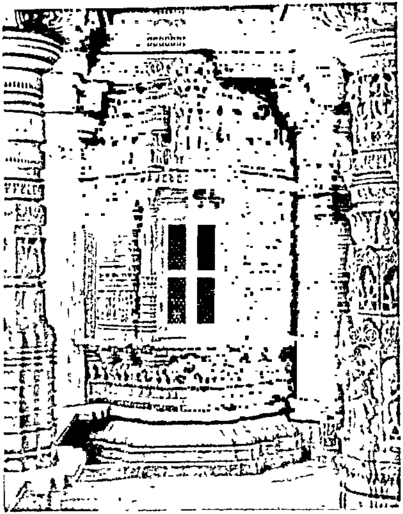
३–अन्य प्रतिमायें १६। ४–चौबीशीपट्ट से अलग हुये जिनबिंब २।

५–धातु-पंचतीर्थी २।

६–सुन्दर मूर्त्तिपट्ट १। इस पट्टके मध्य में राजीमति की सुन्दर खड़ी प्रतिमा है। नीचे दोनों तरफ दो सखियों की मूर्त्तियाँ बनी हैं। ऊपर भगवान् की मूर्त्ति है। यह वि० सं० १५१५ का प्रतिष्ठित है।

७–यक्षप्रतिमा।

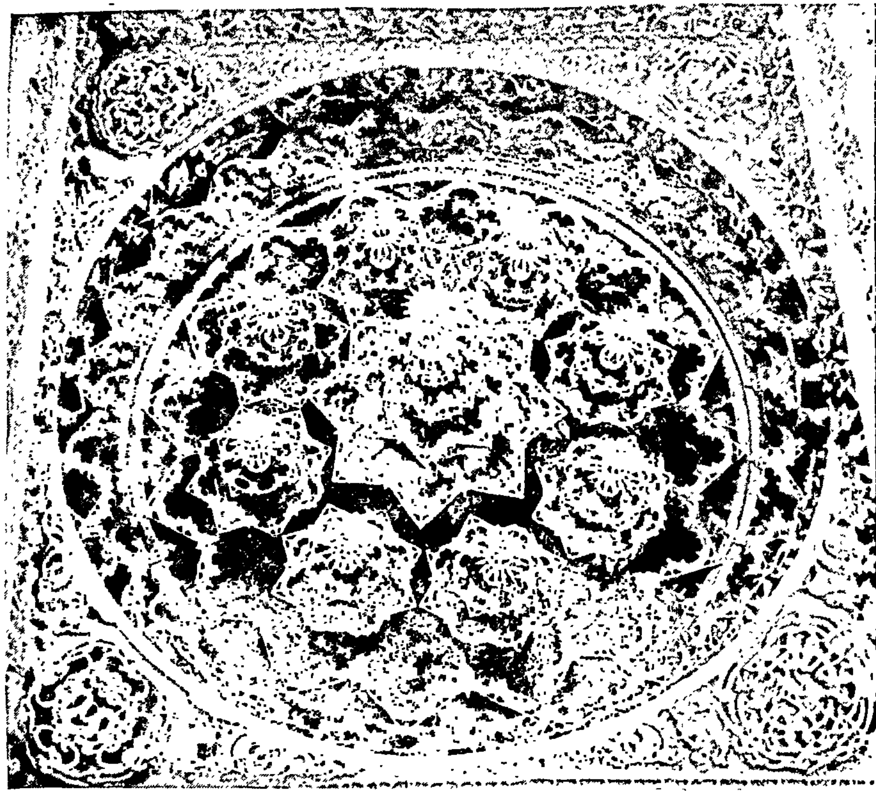
उपरोक्त प्रतिमायें और पट्ट भिन्न २ श्रावकों के द्वारा विनिर्मित हैं और भिन्न २ संवतों में प्रतिष्ठित किये हुये हैं।



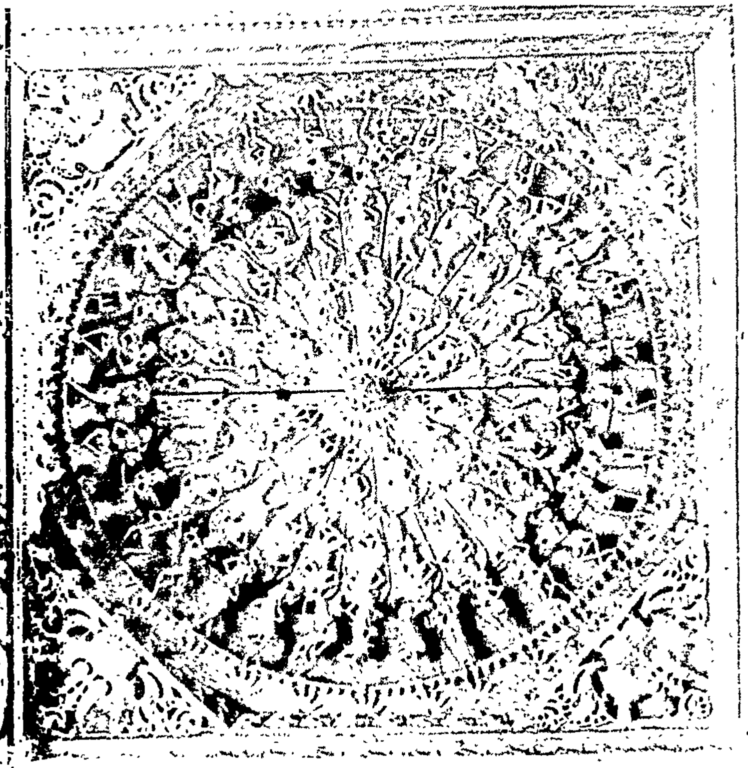
अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि का अद्भुत कलामयी आलय। देखिये पृ० १८९ पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि के गूढ़मण्डप में संस्थापित श्रीमती राजिमती की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि के नवचौकिया के एक मण्डप के घूमट का अद्भुत शिल्पकौशलमयी दृश्य और उसके बृहद् वलय में काचलाकृतियों की नोकों पर बनी हुई जिनचौवीशी का अद्भुत संयोजन। देखिये पृ० १८९(२) पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि के रंगमण्डप के बाहर भ्रमती में नैऋत्य कोण के मण्डप के घूमट में ६८ अड़सठ प्रकार का नृत्य-दृश्य। देखिये पृ० १९०(४) पर।

आधार हैं। ये स्तंभ ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे एक ही चतुष्क अथवा समान आधार पर बहुमंजिली राजप्रासाद-मालायें अपना गगनचुम्बी उन्नत साधारण-मस्तक लिये सुदृढ़ खड़ी हों। दोनों ओर के गवाक्षों की भी सम्पूर्ण बनावट इसी शैली से की गई हैं। द्वारस्तंभों और गवाक्षों के मध्य में दोनों ओर जो अन्तर-भाग हैं, उनमें शिल्पकार की टांकी ने प्रस्तर के भीतर ही भीतर घुस २ कर जो अपनी नौक की कुशलता दिखाई है, वह उस स्थान और उन अंगों को देख कर ही समझी जा सकती है। गवाक्षों के शिखर भी सशिखरप्रासाद-शैली के बने हैं। प्रत्येक मंजिल को सुस्पष्ट करने में टांकी ने अपनी अद्भुत नौक की तीक्ष्णता को प्रयोग में लाने के लिये सिद्धहस्त शिल्पकार के हाथों में सौंपा है—ऐसा देखते ही तुरन्त कहा जा सकता है। दोनों गवाक्ष अपनी २ ओर की भित्ति को पूरे भर कर बने हैं। उनके शिखर छत पर्यन्त और उनके आधार नीचे तक पहुंचे हैं। देखने में प्रत्येक गवाक्ष एक छोटे मंदिर-सा लगता है। तेजपाल का कलाप्रेम इन्हीं गवाक्षों में अपना अंतिम रूप प्रकटा सका है ऐसा कहा जा सकता है। सूक्ष्मतम और अद्भुत शिल्पकाम के ये दोनों गवाक्ष उत्कृष्ट नमूने हैं। नवचौकिया के अन्य स्तंभों की रचना भी अधिकतर प्रासाद-शैली से ही प्रभावित है। नवचौकिया में कुल १२ बारह स्तंभ हैं, जिनमें उत्तर, दक्षिण दोनों ओर के किनारों के सुन्दर और बीच के अति सुन्दर हैं अर्थात् ६ सुन्दर और ६ अति सुन्दर हैं। प्रत्येक अति-सुन्दर-स्तंभ कला की साक्षात् प्रतिमा ही हैं।

नवचौकिया में कलादृश्य

१. इसके दक्षिण पक्ष (३) पर दूसरे और तीसरे स्तम्भ के बीच में एक जिनत्रृचौवीशीपट्ट है। उसके ऊपर के छज्जे पर लक्ष्मीदेवी की एक सुन्दर मूर्त्ति बनी है। जिनत्रृचौवीशीपट्ट अर्थात् बहत्तर जिनमूर्त्तियाँ वाला पट्ट। इस पट्ट में विगत, आगत और अनागत तीनों कालों के चौवीश जिनेश्वरों के तीन वर्ग दिखाये गये हैं। पट्ट का सौन्दर्य आकर्षक एवं इतना प्रभावक है कि भक्तगणों का मस्तक तो उसके दर्शन पर स्वभावतः झुकता ही है, नास्तिक भी अपने को भूल कर हाथ जोड़ ही लेता है।

२. दक्षिण-पक्ष (४) के दूसरे मण्डप में जो उपरोक्त जिनत्रृचौवीशीपट्ट के समक्ष है पुष्पपंक्ति का देखाव है और उसके ऊपर की वलयरेखा पर जिनचौवीशी खुदी है।

३. दक्षिण पक्ष के तृतीयमण्डप (५) के चारों कोणों में हस्तिसहित लक्ष्मीदेवी की मूर्त्तियाँ खुदी हैं और उनके मध्य २ में ६ जिनप्रतिमायें करके एक पूर्ण जिनचौवीशी खुदी है।

नवचौकिया के मण्डपों में काचलाकृतियाँ इतनी कौशलपूर्ण बनी हैं कि वे कागज की बनी हो ऐसा भास होता है। काचलाकृतियों के नौकों और कहीं बीच-बीच में, कहीं २ वलय रेखाओं पर जिनमूर्त्तियाँ खुदी हैं—इनमें गर्भित अद्भुत शिल्पकौशल सचमुच शिल्पकार की सिद्ध टांकी का कृत्य है।

रङ्गमण्डप

१. रंगमण्डप बारह स्तम्भों पर बना है। इन बारह स्तंभों में उत्तर दिशा के तीन और दक्षिण दिशा का एक स्तंभ ये चारों स्तंभ सुन्दर और शेष आठ स्तंभ अति सुन्दर हैं। स्तंभों की रचना अधिकतर नवचौकिया और गूढ़मण्डप के द्वार के स्तम्भों-सी है। इन पर अति सुन्दर तोरणों की रचना है। पूर्वपक्ष पर मध्य में तोरण नहीं है। रंगमण्डप बारह वलयों से बना है। केन्द्र में झूमर है। इसमें काचलाकृतियों

दोनों गवाक्षों की रचना के कारण के विषय में मिथ्या श्रुति चल पड़ी है कि ये दोनों देराणी और ज्येठाणी के बनाये हुए हैं अथवा उनके श्रेयार्थ बनवाये गये हैं। परन्तु बात यह नहीं है। दंडनायक तेजपाल ने अपनी द्वितीया स्त्री सुहड़ादेवी की स्मृति में और उसके श्रेयार्थ ये दोनों आलय बनवाये हैं।

की सुन्दर रचना है। मण्डप इतना सुन्दर है कि देखने वाला देखते २ ही थक जाता है और ग्रीवा दुखने लग जाती है। यह बात तो केवल दर्शक की है; शिल्पकलासमंज्ञ और अन्वेषक-दर्शक अपने को भूल ही जाता है और अति तृप्त होकर जब जाग्रत होता है तो अनुभव करता है कि उसकी गर्दन में दर्द होने लग गया है। (६) मण्डप में सोलह देवियाँ भिन्न २ वाहनों और शस्त्रों से युक्त स्तम्भों के ऊपर बनी हुई हैं। इनकी रचना और बनावट अत्यन्त ही रमणीय है।

उपरोक्त सोलह (विद्या) देवियों के नीचे की पंक्ति में तृजिनचौवीशी (७) बनी है। तथा नीचे की ओर एक वलयरेखा (८) पर साठ आचार्य महाराजों की मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

२. रंगमण्डप के पूर्व पक्ष के उत्तर (९A) और दक्षिण (९B) दोनों कोणों में इन्द्रों की सुन्दर मूर्त्तियाँ बनी हैं तथा नीचे नवचौकिया में जाने के लिये बनी सीढ़ियों के दोनों पक्षों के रंगमण्डप की (२८-२९) तरफ के भागों के आलयों में एक २ इन्द्र की मूर्त्ति बनी है।

३. रंगमण्डप के दक्षिण-पक्ष के दो स्तम्भों में अलग २ (१०) जिनचौवीशी बनी हैं।

४. रंगमण्डप के बाहर भ्रमती में नैऋत्य कोण में बने मण्डप में ६८ अड़सठ प्रकार का नृत्य-दृश्य है, जो एक अध्ययन की वस्तु है।

१. रंगमण्डप के पश्चिम भाग की भ्रमती में तीन लम्बे २ मण्डप हैं। जिनमें उत्तम शिल्पकाम किया हुआ है। आजू-बाजू के मण्डपों की पश्चिम दिशा की पंक्तियों के मध्य में (११) एक-एक अम्बाजी की सुन्दर मूर्त्ति बनी है और नृत्य का देखाव भी है, जो अति सुन्दर है।

भ्रमती और उसके दृश्य

२. रंगमण्डप के दक्षिण पक्ष में पश्चिम से पूर्व को जाने वाली भ्रमती के प्रथम मण्डप में अति सुन्दर शिल्पकाम है और (१२) श्रीकृष्ण के जन्म का दृश्य है। देवकी पलंग पर काराग्रह—महालय में सो रही है। इस महालय के तीन गढ़ और प्रत्येक गढ़ में एक-एक दिशा में एक-एक द्वार है, इस प्रकार इस महालय के बारह द्वार हैं और ये बारह ही द्वार बंध हैं। श्रीकृष्ण का जन्म हो चुका है। माता देवकी के पार्श्व में कृष्ण सो रहे हैं। एक स्त्री पंखा झल रही है। एक स्त्री पास में बैठी है। समस्त द्वारों के इधर-उधर तीनों गढ़ों में हाथियों, देवियों, सैनिकों और गायकों की आकृतियाँ सुन्दर ढंग से खुदी हुई हैं।

३. इसके पास के मध्य के मण्डप में (१३) श्रीकृष्ण और उनकी गोकुल में की गई कुछ बाल-लीलायें, जैसे गौ-चारण आदि तथा उनके फिर राजा होने के दृश्य हैं।

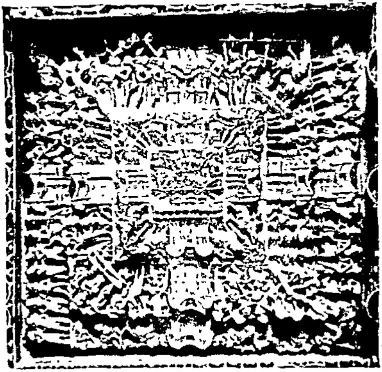
मण्डप के नीचे की पंक्तियों में दो ओर आमने-सामने श्रीकृष्ण और गोकुल का भाव है। उसमें पूर्व की ओर की पंक्ति के एक कोण में एक वृक्ष है। इस वृक्ष की एक डाली में झूला बंधा है और कृष्ण उसमें सो रहे हैं। वृक्ष के नीचे दो पुरुष बैठे हैं। इनके पार्श्व में एक गोपाल अपने दोनों कन्धों पर आड़ी लकड़ी अपने दोनों हाथों से पकड़ कर खड़ा है। पास में एक कक्ष की टांड पर घी, दूध अथवा दही भरने की पांच मटकियाँ रक्खी हैं। इस दृश्य के पार्श्व में एक अन्य गोपाल सुन्दर लकड़ी के सहारे खड़ा है। उसके पार्श्व में पशु चर रहे हैं। तत्पश्चात् दो स्त्रियों के छाछ बनाने का दृश्य है। उसके पास में यशोदा कृष्ण को अपने गोद में लिये बैठी है। तत्पश्चात् दो झाड़ों में एक झूला बंधा है और श्रीकृष्ण उसमें झूल रहे हैं तथा बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं। उस झूले के पार्श्व में एक हस्ति पर श्रीकृष्ण द्वारा मुष्टि-प्रहार करने का दृश्य है। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अपनी दोनों भुजाओं



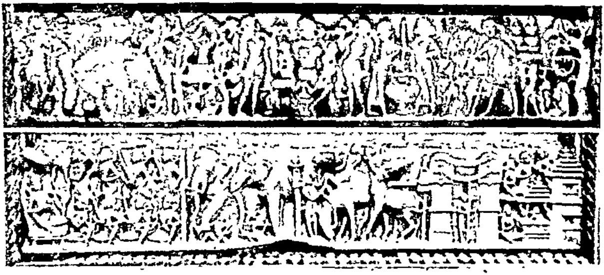
अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि के रङ्गमण्डप के सुन्दर स्तंभ, नवचौकिया, उत्कृष्ट शिल्प के उदाहरणस्वरूप जगविश्रुत आलय और गूढ़मण्डप के द्वार का मनोहर दृश्य। देखिये पृ० १८९ पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि के सभामण्डप के घूमट की देवीपुत्तलियों के नीचे नृत्य करती हुई गंधर्वों की अत्यन्त भावपूर्ण प्रतिमायें।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की भ्रमती के दक्षिण पक्ष के प्रथम मण्डप की छत में श्री कृष्ण के जन्म का यथाकथा दृश्य। देखिये पृ० १९०(२) पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की भ्रमती के दक्षिण पक्ष के मध्यवर्त्ती मण्डप की छत में श्री कृष्ण द्वारा की गई उनकी कुछ लीलाओं का दृश्य। देखिये पृ० १९०(३) पर।

में अलग २ वृत्तों को दबा कर खड़े हैं। इन सर्व दृश्यों के पश्चात् उनके राजारूप का दृश्य हैं। वे सिंहासन पर बैठे हैं, उनके ऊपर छत्र लटक रहा है, पार्श्व में अङ्गरक्षक और अन्य राजकर्मचारी खड़े हैं। तत्पश्चात् हस्तिशाला और अश्वशालायें बनी हैं। अन्त में राजप्रासाद है, जिसके भीतर और द्वारों में लोग खड़े हैं।

४. श्रीकृष्ण-गोकुल के दृश्य वाले मण्डप के और रंगमण्डप के बीच के खण्ड के मध्यवर्त्ती मण्डप के नीचे पूर्व और पश्चिम की (१४) पंक्तियों के मध्य में एक २ जिनमूर्त्ति खुदी है।

५. गूढ़मण्डप की दोनों ओर की चौकियों के आगे (१५) के स्तंभों में आठ-आठ भगवान् की मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

६. पश्चिमाभिमुख सिंहद्वार के भीतर तृतीय मण्डप के भ्रमती की ओर के (१६) आगे के दोनों स्तंभों में आठ २ भगवान् की छोटी-छोटी और सुन्दर मूर्त्तियाँ खुदी हैं। ये दोनों स्तंभ दीर्घकाय तथा सीधी धारी वाले और सुन्दर शिल्पकाम से मंडित हैं। इसी (१७) मण्डप के ठेट नीचे की पंक्ति में उत्तर और दक्षिण में अम्बिकादेवी की अति सुन्दर और मनोहर मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

सिंहद्वार के भीतर तृतीय मण्डप का दृश्य

देवकुलिकायें और उनके मण्डपों में, द्वारचतुष्कों में, स्तम्भों में खुदे हुये कलात्मक चित्रों का परिचय

(सिंहद्वार के उत्तरपक्ष से दक्षिणपक्ष को)

लूणसिंहवसति का सिंहद्वार पश्चिमाभिमुख है, अतः देवकुलिकाओं तथा उनके द्वारस्तम्भों, मण्डपों, भित्तियों का शिल्पकला की दृष्टि से वर्णन लिखना पश्चिमाभिमुख सिंहद्वार के उत्तरपक्ष पर बनी देवकुलिकाओं से प्रारंभ किया जाना ही अधिक संगत है।

१. प्रथम देवकुलिका के प्रथम मण्डप में (१८) अंबिकादेवी की सुन्दर और बड़ी मूर्त्ति खुदी है। देवी-मूर्त्ति दो झाड़ों के बीच में है और झाड़ों के इधर उधर एक श्रावक और श्राविका हाथ जोड़ कर खड़े हैं

२. देवकुलिका सं० ६ के द्वितीय मण्डप में (१६) द्वारिकानगरी, गिरनारतीर्थ और भगवान् नेमनाथप्रतिमा के सहित समवशरण की रचना है।

मण्डप के एक ओर कोण में समुद्र दिखाया गया है। इस समुद्र में से खाड़ी निकाल कर उसमें जलचर क्रीड़ा करते दिखाये हैं। खाड़ी में जहाज हैं। खाड़ी के तट पर आये हुये जंगल का दृश्य भी अंकित है। इस जंगल में एक मंदिर दिखाया गया है। मंदिर में प्रतिमा विराजमान है। यह दृश्य द्वारिकानगरी का है।

मण्डप के दूसरे कोण में गिरनारतीर्थ का दृश्य अंकित है। कुछ मंदिर बनाये गये हैं। मंदिर के बाहर भगवान् की कायोत्सर्गिक प्रतिमा है। मंदिर के चारों ओर वृक्ष आ गये हैं। श्रावकगण कलश, फूलमाला, चामरादि पूजा और अर्चन की सामग्री लेकर मंदिर की ओर जा रहे हैं। आगे २ छः साधु चल रहे हैं। उनके

हाथों में ओघा और मुहपत्तिकायें हैं। एक साधु के हाथ में तरपणी है और एक अन्य साधु के हाथ में दण्ड है। अन्य पंक्तियों में हाथी, घोड़े, पालकी, नाटक के पात्र, वाद्यन्त्र, पैदल-सैन्य तथा पुरुषाकृतियाँ खुदी हैं। इस प्रकार राजवैभव के साथ श्री कृष्ण आदि समवशरण की ओर जा रहे हैं।

मण्डप के मध्य में त्रगढ़ीय समवशरण की रचना है। समवशरण के मध्य में सशिखर मंदिर है, जिसमें प्रतिमा विराजमान है। समवशरण के पूर्व में ऊपर की ओर साधुओं की बारह बड़ी और दो छोटी खड़ी मूर्त्तियाँ खुदी हैं। प्रत्येक साधु के एक हाथ में दण्ड, दूसरे में मुहपत्ति और बगल में ओघा दबा है। प्रत्येक आपिण्डली चद्दर पहिने हैं। दाहिना हाथ खुला है। तीन साधुओं के हाथों में छोटी २ तरपणियाँ हैं। दूसरी ओर इसके पश्चिम में ऊपर को श्रावकगण और उनके नीचे श्राविकायें हाथ जोड़ कर बैठी हैं।

३. देवकुलिका सं० ११ के मण्डपों में एक एक (२०, २१) हंसवाहिनी सरस्वतीदेवी की सुन्दर और मनोहर मूर्त्ति खुदी है।

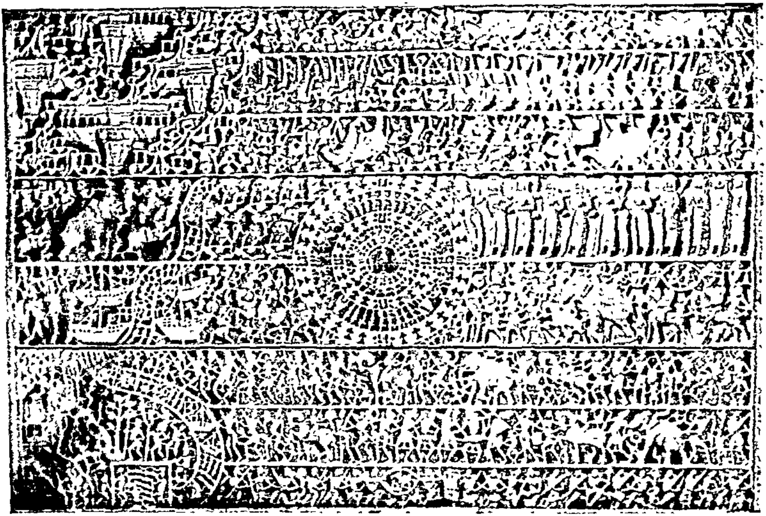
४. देवकुलिका सं० ११ के द्वितीय मण्डप (२२) में श्री नेमिनाथ के वरातिथिसमारोह का दृश्य है। मण्डप सात खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में हाथी, घोड़े और नाटक हो रहे हैं का दृश्य है। द्वितीय खण्ड में श्री कृष्ण और जरासंध में युद्ध हो रहा है। तृतीय खण्ड में नेमनाथ की वरातिथि का दृश्य है। चतुर्थ खण्ड में मथुरा और मथुरा में राजा उग्रसेन के राजप्रासाद का देखाव है। राजप्रासाद के ऊपर दो सखियों के सहित राजीमती खड़ी २ नेमनाथ के वरातिथिसमारोह को देख रही है। प्रासाद में अन्य पुरुषों का और द्वार में द्वारपाल के खड़े होने का दृश्य है। राजप्रासाद के द्वार के पास ही अश्वशाला है, जिसमें अश्वसेवक दो घोड़ों को मुंह में हाथ डाल कर कुछ खिला रहे हैं। दो घोड़े चारा चर रहे हैं। अश्वशाला के पश्चात् हस्तिशाला का दृश्य है। तत्पश्चात् विवाह-लग्नार्थ बनी चौस्तंभी (चौरी) बनी है। इसके आस-पास में स्त्री, पुरुष खड़े हैं। चौस्तंभी के पीछे पशुशाला बनी हुई है। पशुशाला के पास में पहुंचे हुए भगवान् नेमनाथ के रथ का देखाव है। पाँचवें खण्ड का दृश्य घटनाक्रम की दृष्टि से सातवें खण्ड में आना चाहिए था। मण्डप के बनाने वाले ने इस पट्टी को भूल से इस स्थान पर लगा दिया प्रतीत होता है। इस पट्टी के दृश्य का वर्णन आगे यथास्थान पर देना उचित है।

छट्ठे खण्ड में द्वारिकानगरी का पुनः दृश्य है। अश्वशाला और हस्तिशाला का देखाव है। तत्पश्चात् भगवान् वर्षीदान दे रहे हैं, उनके पार्श्व में द्रव्य-राशि का ढ़ेर पड़ा है। पश्चात् उनके महाभिप्रयाण करने का दृश्य है।

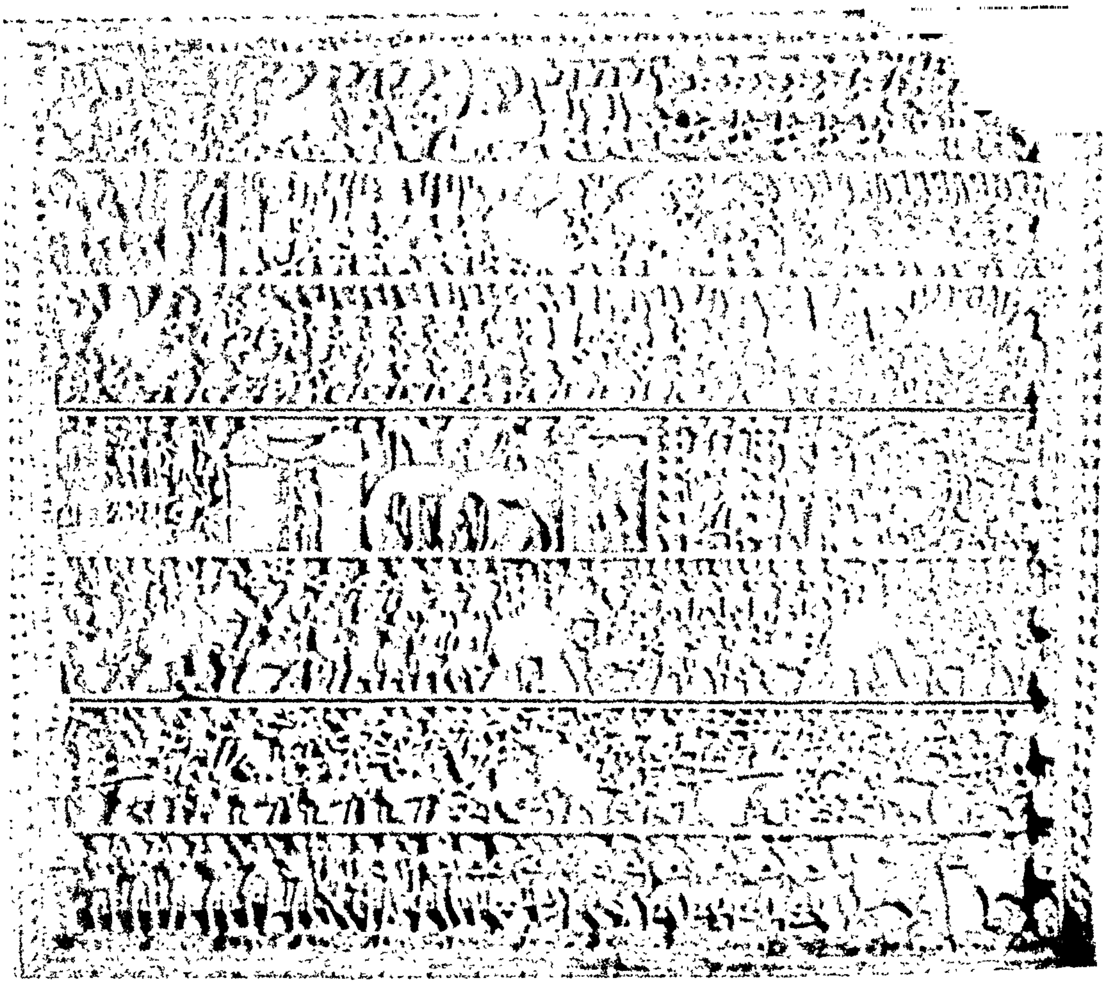
सातवें खण्ड में भगवान् के दीक्षाकल्याणक का दृश्य है। जिसमें भगवान् अपने केशों का पंचमुष्ठिलोच कर रहे हैं और हाथी, घोड़े और पैदलसैन्य खड़े हैं।

पांचवें खण्ड में भगवान् कायोत्सर्ग-अवस्था में ध्यान कर रहे हैं और उनको वंदन करने के लिये चतुरंगी समारोह जा रहा है।

५. देवकुलिका सं० १४ (२३) का द्वितीय मण्डप आठ दृश्यों में विभाजित है। सब से नीचे की प्रथम पट्टी में हस्तिशाला, अश्वशाला का ही दृश्य है और तदनन्तर राजप्रासाद बना हैं। राजप्रासाद के बाहर सिंहासन पर राजा विराजमान है। एक पुरुष राजा के ऊपर छत्र किये हुए है। एक मनुष्य राजा पर पंखा झल रहा है। इस दृश्य के पश्चात् दूसरी पट्टीपर्यंत सैनिक, हाथी और घोड़ों आदि के दृश्य हैं। तीसरी पट्टी के मध्य में



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की देवकुलिका सं० ९ के द्वितीय मण्डप (१९) में द्वारिकानगरी, गिरनारतीर्थ और समवसरण की रचनाओं का अद्भुत देखाव। देखिये पृ० १९१-९२(२) पर।



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की देवकुलिका सं० ११ के द्वितीय मण्डप में श्री नेमनाथ की बरातिथि का मनोहारी दृश्य। देखिये पृ० १९८(४) पर।

अभिषेकयुक्त लक्ष्मीदेवी की मूर्त्ति है। मूर्त्ति के दाहीं तरफ तिपाई पर कुछ रक्खा है। इसके पास में सप्तमुखी (सप्ताश्व) घोड़ा है और उस पर सूर्य की प्रतिमा है। घोड़े के पार्श्व में फूलमाला है। तदनन्तर एक वृक्ष है। वृक्ष के दोनों ओर दो आसन बिछे हैं। तत्पश्चात् नाटक हो रहा है। पात्र ढोलकियाँ बजा रहे हैं। लक्ष्मी की मूर्त्ति के बाहीं ओर हाथी है। हाथी के ऊपर चन्द्र का देखाव है तथा हाथी के पार्श्व में महालय अथवा कोई विमान का दृश्य है। तत्पश्चात् नाटक का दृश्य है। पात्र ढोलकियां बजा रहे हैं। चौथी, पांचवीं, छट्ठी, सातवीं और आठवीं पट्टियों में चतुरंगिणी सैन्य का दृश्य है।

६. देवकुलिका सं० १६ (२४) के द्वितीय मण्डप में सचित्र सात पट्टियाँ हैं। नीचे की प्रथम पट्टी के बाहे कोण में हाथी, घोड़े हैं। तदनन्तर तृतीय पंक्तिपर्यंत स्त्री-पुरुष के जोड़े नृत्य कर रहे हैं। चौथी पट्टी के मध्य में भगवान् पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग अवस्था में खड़े हैं। उनके ऊपर सर्प छत्र किये हुये हैं। दोनों ओर श्रावकगण कलश, धूपदान, फूलमाला आदि पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं। शेष पट्टियों में किसी राजा अथवा बड़े राजकर्मचारी का अपनी चतुरंगिणी सैन्य के साथ में भगवान् के दर्शन करने के लिये आने का दृश्य है।

७. देवकुलिका सं० ३३ (२६) के दूसरे मण्डप में अलग २ चार देवियों की सुन्दर मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

८. देवकुलिका सं० ३५ (२७) के मण्डप में एक देव की सुन्दर मूर्त्ति बनी है।

संक्षेप में इस वसति का वर्णन इस प्रकार है :—

१. एक सशिखर मूलगंभारा और उसके द्वार के बाहर चौकी।
२. गुम्बजदार सुदृढ़ गूढ़मण्डप, जिसके उत्तर और दक्षिण दिशाओं में एक २ चौकी।
३. नवचौकिया और उसमें अति सुन्दर दो गवाक्ष।
४. नवचौकिया से चार सीढ़ी उतर कर सभामण्डप, जिसमें बारह अति सुन्दर स्तंभ, ग्यारह तोरण और सोलह देवियों की मूर्त्तियों से अलंकृत बारह वलययुक्त विशाल मण्डप।
५. इस वसति में अड़तालीस देवकुलिकायें हैं। जिनमें भ्रमती में बने दोनों तरफ के दो गर्भगृह और अंबाजी की कुलिका भी सम्मिलित है। एक खाली कोटड़ी है। देवकुलिकाओं के द्वार शिल्प की दृष्टि से साधारण कलाकामयुक्त हैं।
६. ११४ मण्डप हैं:—
   ३ गूढ़मण्डप १ और उसके उत्तर तथा दक्षिण द्वारों की दो चौकियों के।
   ९ नवचौकिया के
   १६ सभामण्डप १ और उससे जुड़े हुये उत्तर में ६, दक्षिण में ६, पश्चिम में ३ भ्रमती में।
   ८६ देवकुलिकाओं के, तथा दक्षिण द्वार के ऊपर के चौद्वारा के
७. ४६ गुम्बज (छत पर बने) हैं।
   ३ गूढ़मण्डप १ और उसकी उत्तर तथा दक्षिण द्वारों की दोनों चौकियों के २।

देवकुलिका सं० १६ (२५) के भीतर पूर्व की ओर दिवार में अश्वावबोध और समलीविहार-तीर्थ के सुन्दर दृश्य का एक पट्ट लगा हुआ है। यह पट्ट वि० सं० १३३८ में आरासणाकरवासी प्राग्वाटज्ञातीय आशापाल ने बनवाया था। इसका विस्तृत वर्णन श्री मुनिजयन्तविजयजीलिखित 'आबू' में देखें।

७ नवचौकिया के

११ सभामण्डप १ और उसकी भ्रमती के ऊपर १० ।

१० पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख देवकुलिकाओं के मण्डपों के ऊपर कोणों में २ और शेष ८ ।

६ दक्षिणाभिमुख उत्तर दिशा में बनी कुलिकाओं के मण्डपों के ऊपर ।

६ उत्तराभिमुख दक्षिण दिशा में ,, ,,

८. २३२ स्तम्भ हैं ।

२४ गूढ़मण्डप में और उसकी दोनों ओर की दो चौकियों में १२ और नवचौकिया में १२ ।

२६ सभामण्डप में १२ और सभामण्डप के तीनों ओर भ्रमती में १४ ।

८६ देवकुलिकाओं के मण्डपों के ७८ और दक्षिण द्वारके चौद्वारा के ८ ।

५८ देवकुलिकाओं की मुखभित्ति में ५२ और सिंहद्वार में ६ ।

१० वसति की पूर्व दिशा की भित्ति में, जिसमें हस्तिशाला का प्रवेशद्वार है १० ।

२८ हस्तिशाला के भीतर और उसकी पृष्ठभित्ति में ।

९. ६४ वसति और हस्तिशाला दोनों के कुलिकाओं और खत्तकों के ऊपर की छत पर शिखर हैं ।

इस प्रकार इस विशाल वसति में ११४ मण्डप, ४६ गोल गुम्बज, २३२ स्तम्भ और ६४ छोटे-मोटे शिखर हैं ।

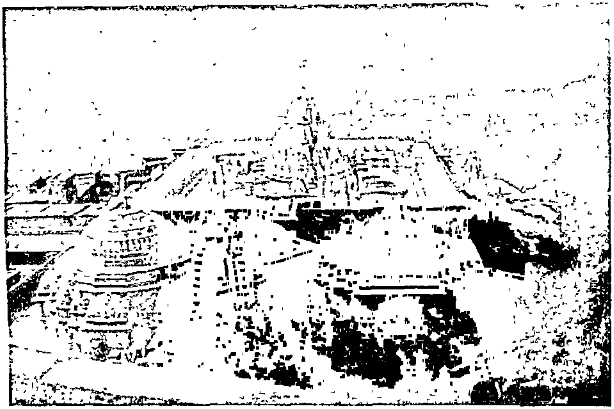
उज्जयंतगिरितीर्थस्थ श्री वस्तुपाल-तेजपाल की टूँक

महामात्य वस्तुपाल ने वि० सं० १२७७ में जब शत्रुंजयतीर्थ की संघपति रूप से प्रथम वार यात्रा की थी, गिरनारतीर्थ की भी की थी और उस समय उसने जो कार्य किये अथवा करवाने के संकल्प किये, उनका वर्णन पूर्व दिया जा चुका है । आशय यह है कि गिरनारतीर्थ पर मंत्रि भ्राताओं ने निर्माणकार्य वि० सं० १२७७ से ही प्रारम्भ कर दिया था । छोटे-मोटे अनेक निर्माण-कार्यों के अतिरिक्त उनके बनाये हुए तीन जिनालय अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । ये तीनों जिनालय एक ही साथ एक पंक्ति में आये हुए हैं । मध्य के मन्दिर की पूर्व और पश्चिम की दिवारों में एक २ द्वार है, जो पक्ष के मंदिरों में खुलते हैं । इन तीनों मन्दिरों को वस्तुपाल-तेजपाल की टूँक कही जाती है । गिरनारतीर्थपति भगवान् नेमिनाथ की टूँक के सिंहद्वार, जो अभी बन्ध है के अग्रभाग में अर्थात् नरसी-केशवजी के आरामगृह को एक ओर छोड़कर संप्रति राजा की टूँक की ओर जानेवाले मार्ग के दाहिनी ओर यह वस्तुपाल-तेजपाल की टूँक आयी हुई है । इस टूँक में:—

(१) मन्दिर—श्री शत्रुञ्जयमहातीर्थावतार आदितीर्थंकर श्री ऋषभदेव ।

(२) मन्दिर—श्री स्तंभनकपुरावतार श्री पार्श्वनाथदेव ।

(३) मन्दिर—श्री सत्यपुरावतार श्री महावीरदेव ।



श्री गिरनारपर्वतस्थ श्री वस्तुपालटूंक । देखिये पृ० १९४ पर ।

श्री साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद के सौजन्य से ।

१. श्री ऋषभदेव-मन्दिर—यह चौमुखा मन्दिर मध्य में बना हुआ है। इसको वस्तुपाल-विहार भी कहते हैं। महामात्य ने इसको स्वर्णकलश से सुशोभित कर इसमें भ० आदिनाथ की प्रतिमा विराजमान की थी तथा आदिनाथप्रतिमा के दोनों ओर भ० अजितनाथ तथा भ० वासुपूज्य के बिंब स्थापित करवाये थे। अतिरिक्त इसके शेष कार्य निम्न प्रकार करवाये थे:—

(१) मण्डप में:—

१. अपने मूलपूर्वज चंडप की एक विशाल मूर्त्ति।

२. कुलदेवी अम्बिकादेवी की एक प्रतिमा।

३. महावीर भगवान् की एक प्रतिमा।

४. मण्डप के गवाक्षों में दाहिनी ओर के गवाक्ष में अपनी और द्वि० स्त्री ललितादेवी की दो मूर्त्तियाँ।

५. बायीं ओर के गवाक्ष में अपनी और प्र० स्त्री सोखुकादेवी की दो मूर्त्तियाँ।

(२) गर्भगृह के द्वार के:—

१. दक्षिण में अपनी एक अश्वारूढ़मूर्त्ति।

२. उत्तर में अपने लघुभ्राता तेजपाल की अश्वारूढ़ मूर्त्ति।

यह मन्दिर उज्जयन्तमहातीर्थावतारप्रासाद के नाम से भी प्रसिद्ध है।

२. श्री पार्श्वनाथदेव-मंदिर—यह चौमुखा मंदिर 'वस्तुपालविहार' के बायें हाथ की पक्ष पर उससे मिला हुआ ही बनाया गया है। इसको स्तंभनकपुरावतारप्रासाद कहा गया है। इस मंदिर के पश्चिम, पूर्व और दक्षिण में अलग-अलग करके तीन द्वार हैं। इसमें भ० पार्श्वनाथ आदि बीस तीर्थङ्करों की मूर्त्तियाँ स्थापित की थीं।

३. श्री महावीरदेव-मन्दिर—इस चौमुखा मन्दिर को सत्यपुरावतारप्रासाद कहा गया है। यह मंदिर वस्तुपाल-विहार के दाहिनी ओर बनवाया गया है। इस मन्दिर में भी चौबीस ही जिनेश्वरों के बिंबों की स्थापना करवाई गई थी। इसी मंदिर में माता कुमारदेवी की तथा अपनी सात भगिनियों की मूर्त्तियाँ स्थापित की थीं।

तीनों मन्दिरों का निर्माण वस्तुपाल ने अपने लिये और अपनी दोनों स्त्रियाँ प्र० ललितादेवी और द्वि० सोखुकादेवी के श्रेयार्थ करवा कर बाजू के दोनों मन्दिरों के प्रत्येक द्वार पर निम्नश्रेयाशय के वि० सं० १२८८ फा० शु० १० बुधवार को शिलालेख आरोपित करवाये थे।

(१) पार्श्वनाथमन्दिर के पश्चिम-द्वार पर—अपने और प्र० स्त्री ललितादेवी के श्रेयार्थ

„ पूर्व द्वार पर—अपने और प्र० स्त्री ललितादेवी के श्रेयार्थ

„ दक्षिण द्वार पर—अपने और प्र० स्त्री ललितादेवी के श्रेयार्थ

(२) महावीरमन्दिर के पश्चिम द्वार पर—अपने और द्वि० स्त्री सोखुकादेवी के श्रेयार्थ

पूर्व द्वार पर—अपने और द्वि० स्त्री सोखुकादेवी के श्रेयार्थ

उत्तर द्वार पर—अपने और द्वि० स्त्री सोखुकादेवी के श्रेयार्थ

इन तीनों मन्दिरों पर तीन स्वर्णतोरण चढ़ाये थे और मध्य के मन्दिर वस्तुपालविहार के पृष्ठ भाग में कपर्दियक्ष का चौथा मन्दिर बनवाकर उसमें कपर्दियक्ष और आदिनाथप्रतिमायें वि० सं० १२८९ आश्विन शु० १५ सोमवार को प्रतिष्ठित की थीं तथा एक मरुदेवीमाता की गजारूढ़ मूर्त्ति भी विराजमान करवाई थीं।

इस प्रकार वस्तुपाल ने स्थापत्यकला के उत्तम प्रकार के ये चार मन्दिर बनवाये थे। अतिरिक्त इन चारों मन्दिरों के निम्न कार्य और करवाये थे।

१. तीर्थपति नेमिनाथ भगवान् के विशाल मन्दिर के पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के द्वारों पर तीन मनोहर तोरण करवाये थे तथा इसी मन्दिर के मण्डप में निम्न रचनायें करवाई थीं:—
   (१) मण्डप के दक्षिण भाग में पिता अश्वराज की अश्वारूढ़ मूर्त्ति।
   (२) मण्डप के उत्तर भाग में पितामह सोम की अश्वारूढ़ मूर्त्ति।
   (३) माता-पिता के श्रेयार्थ भ० अजितनाथ और शान्तिनाथ की कायोत्सर्गस्थ प्रतिमायें।
   (४) मण्डप के आगे विशाल इन्द्रमण्डप।
   (५) मन्दिर के अग्रभाग में पूर्वज, अग्रज, अनुज और पुत्रादि की मूर्त्तियों से युक्त भ० नेमिनाथ की प्रतिमा वाला सुखोद्घाटनक नामक एक अति सुन्दर और उन्नत स्तम्भ।
   (६) प्रपामठ के समीप में शत्रुंजयावतार, स्तम्भनकावतार और सत्यपुरावतार तथा प्रशस्तिसहित काश्मीरावतार सरस्वतीदेवी की देवकुलिकायें करवाईं थीं।
   (७) मन्दिर के मुख्य द्वार पर स्वर्णकलश चढ़ाये थे।

२. (१) अम्बिकादेवी के मन्दिर के आगे विशाल मण्डप बनवाया था।
   (२) अम्बिकादेवी की मूर्त्ति के चारों ओर श्वेत संगमरमर का सुन्दर परिकर बनवाया था।

३. अम्बशिखर पर चण्डप के श्रेयार्थ एक देवकुलिका बनवा कर, उसमें भ० नेमिनाथ की एक प्रतिमा, एक चण्डप की प्रतिमा और एक अपने ज्येष्ठ भ्राता मल्लदेव की इस प्रकार तीन प्रतिमायें स्थापित की थीं।

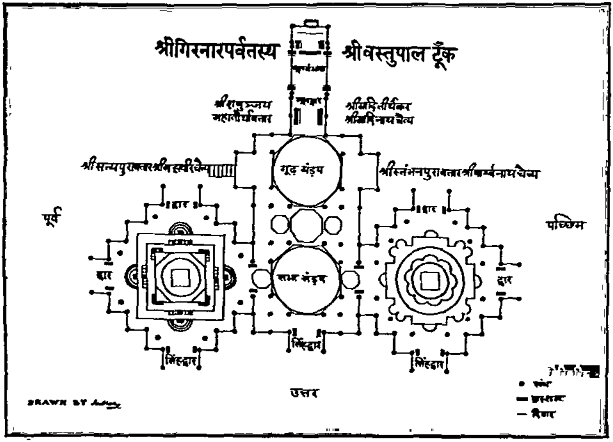
४. अवलोकनशिखर पर चण्डप्रसाद के श्रेयार्थ एक देवकुलिका बनवाकर, उसमें चण्डप्रसाद की, भ० नेमिनाथ की, और अपनी एक-एक मूर्त्ति इस प्रकार तीन प्रतिमायें स्थापित करवाईं थीं।

५. प्रद्युम्नशिखर पर सोम के श्रेयार्थ एक देवकुलिका बनवाकर उसमें सोम की, भ० नेमिनाथ की और लघुभ्राता तेजपाल की एक-एक मूर्त्ति इस प्रकार तीन मूर्त्तियाँ स्थापित की थीं।

६. शांबशिखर पर पिता आशराज के श्रेयार्थ एक देवकुलिका बनवाकर, उसमें आशराज, माता कुमारदेवी तथा भ० नेमिनाथ की एक-एक मूर्त्ति इस प्रकार तीन मूर्त्तियाँ विराजमान की थीं।

इन तीनों मन्दिरों तथा काश्मीरावतार श्री सरस्वती-देवकुलिका और चारों शिखरों पर बनी हुई देवकुलिकाओं की प्रतिष्ठा वि० सं० १२८८ फा० शु० १० बुद्धवार को मन्त्रि भ्राताओं के कुलगुरु श्रीमद् विजयसेनसूरि के हाथों हुई थी। मन्त्री भ्राता इस प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर विशाल संघ के साथ धवलकपुर से चल कर शत्रुंजय-महातीर्थ की यात्रा करते हुये गिरनारतीर्थ पर पहुँचे थे। संघ में मलधारीगच्छीय नरचन्द्रसूरि और अन्य गच्छों के आचार्यगण भी अपने-अपने शिष्यमण्डली के साथ सम्मिलित थे। महाकवि राजगुरु सोमेश्वर भी सम्मिलित थे।

प्रा० जै० ले० सं० ले० ३८ से ४३ पृ० ४८ से ६८ (गिरनार-प्रशस्ति)



श्रीगिरनारपर्वतस्थ श्रीवस्तुपाल टूंक
गूढ मंडप
सभा मंडप
पूर्व
पश्चिम
उत्तर
द्वार
द्वार
सिंहद्वार
सिंहद्वार
सिंहद्वार
DRAWN BY

तीनों मंदिरों के भीतर उतना कलाकाम नहीं है, जितना उनके बाहरी भाग पर है। शिखर, गुम्बज और मंदिरों के समस्त बाहरी भागों पर अनेक देवियों, इन्द्रों, पशुओं जैसे सिंहों, हस्तियों आदि के आकार तथा भित्तियों पर चारों ओर नृत्य-दृश्य के अनेक प्रकार बनाये गये हैं। ये सर्व लगभग आठ सौ वर्ष पर्यन्त से भी अधिक वर्षा, आतप, भूकम्प और ऐसे ही प्रकृति के अन्य छोटे-बड़े प्रकोप सहन कर भी अपने उसी रूप में आज भी नवीन से प्रतीत होते हैं।

तीनों मन्दिरों की निर्माण-शैली और उन में कलाकाम

चौमुखा आदिनाथमुख्यमंदिर के बाहें पक्ष पर जूड़ा हुआ चौमुखा श्री स्तंभनकपुरावतार नामक श्री पार्श्वनाथदेव का मंदिर बना है। उसमें अवश्य उत्तम प्रकार का शिल्पकाम देखने को मिलता है।

इन तीनों मंदिरों के निर्माण में जो शिल्पकौशल देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दिखाई नहीं देता। किसी ऊंची टेकरी पर से देखने पर इन तीनों मंदिरों का देखाव एक उड़ते हुए कपोत के आकार का है। चौमुखा श्री महावीरचैत्यालय और चौमुखा पार्श्वनाथचैत्यालय मानों आदिनाथचैत्यालय रूपी कपोत के खुले हुये पंख हैं। आदिनाथचैत्यालय अपने पक्ष पर बने दोनों मंदिरों से आगे की ओर चोंच-सा कुछ और पीछे की ओर पूछ-सा अधिक लंबा निकला हुआ है। कपोत की चौड़ी पीठ की भांति आदिनाथचैत्यालय का गुम्बज और शिखर भी चौड़े और चपटे हैं।

तीनों मंदिरों की स्तंभमाला भी समानान्तर और एक-से स्तंभों की है। स्तंभों की और मण्डपों की संख्या न्यूनाधिक है।

आदिनाथचैत्यालय में ६४, पार्श्वनाथचैत्यालय में ४२ और महावीरचैत्यालय में ३८ स्तंभ हैं।

आदिनाथचैत्यालय में दो बड़े विशाल मण्डप और इन दोनों विशाल मण्डपों के मध्य में एक मध्यम आकार का मण्डप तथा इसके पूर्व और पश्चिम में कुलिकाओं के आगे बने हुये दो छोटे २ मण्डप और आगे के बड़े मण्डप के पूर्व, पश्चिम में अन्तरद्वारों के आगे एक २ छोटा मण्डप—इस प्रकार दो बड़े मण्डप, एक मध्यम और चार छोटे मण्डप हैं। शेष दोनों मंदिरों में द्विमंजिले स्तंभों पर एक एक अति विशाल मण्डप बना है।

श्री महावीरचैत्यालय के बाहर के तीनों द्वारों, श्री आदिनाथचैत्यालय के दोनों द्वारों और श्री पार्श्वनाथचैत्यालय के तीनों द्वारों के आगे एक एक चौकी इस प्रकार इन तीनों मंदिरों के आठ द्वारों के आगे आठ चौकियाँ बनी हैं।

महं० जिसधर द्वारा ३०० ग्रामों का दान

वि० सं० १३३६ ज्येष्ठ शु० ८ बुधवार को श्रमवाण (सर्वाण) वासी प्रा० ज्ञा० महं० जिसधर के पुत्र महं० पुनसिंह ने भार्या गुण श्री के श्रेयार्थ श्री उज्जयंतमहातीर्थ की पूजार्थ नित्य ३०५० पुष्प चढ़ाने के निमित्त ३००) ग्राम अर्पित किये थे।

श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ श्री विमलवसतिकाख्य चैत्यालय तथा हस्तिशाला में अन्य प्राग्वाट-बन्धुओं के पुण्य-कार्य

साहिलसंतानीय परिवार और पल्लीवास्तव्य श्रे० अम्बदेव

वि० सं० ११८७

श्री अर्बुदाचलस्थ विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथजिनालय की बत्तीसवीं देवकुलिका में रुद्रसिणवाड़ा-स्थानीय प्राग्वाटज्ञातीय साहिलसंतानीय श्रे० पासल, संतणाग, देवचन्द्र, आसधर, आंबा, अम्बकुमार, श्रीकुमार, लोयण आदि श्रावक तथा शांति, रामति, गुणश्री और पहूही नामा उनकी बहिन-बेटियाँ और पल्लड़ीवास्तव्य श्रे० अम्बदेव आदि समस्त श्रावक और श्राविकाओं ने अपने मोक्षार्थ बृहद्गच्छीय श्री संविज्ञविहारि श्री वर्द्धमानसूरि के चरणकमलों के सेवक श्री चक्रेश्वरसूरि के द्वारा वि० सं० ११८७ फाल्गुण कृ० ४ सोमवार को श्री ऋषभदेव-प्रतिमा को शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठित करवाया।१

पत्तननिवासी श्रे० आशुक

अणहिलपुरपत्तन के जैन-समाज में अग्रणी कुलों में प्रतिष्ठित प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठिवर्ग में मोतीमणिसमान ऐसा श्रे० लक्ष्मण विक्रम की बारहवीं शताब्दी में हो गया है। श्रे० लक्ष्मण के श्रीपाल और शोभित नामक दो अति प्रसिद्ध एवं गौरवशाली पुत्र हुये। श्रीपाल गूर्जरसम्राट् प्रसिद्ध सिद्धराज जयसिंह का राजकवि था और राज-विद्वत्-परिषद् का वह अध्यक्ष था। इसका वर्णन पूर्व दिया जा चुका है। महाकवि श्रीपाल से छोटा श्रे० शोभित था। शोभित की स्त्री का नाम शांतिदेवी और पुत्र का नाम आशुक था। श्रे० शोभित के पुत्र आशुक ने विमलवसतिका की हस्ति-शाला के समीप के सभामण्डप के एक स्तंभ के पीछे एक छोटे प्रस्तर-स्तंभ में पिता शोभित की प्रतिमा, माता शांता-देवी की प्रतिमा और अपनी प्रतिमा साथ साथ में उत्खनित करवाईं और उसी प्रस्तर-स्तंभ के पृष्ठ-भाग में अपनी एक अश्वारूढ़ मनोहर प्रतिमा कोतराई। शिल्प-कला की दृष्टि से शोभित और उसके परिवार की इस छोटे-से स्तंभ में कोतरी हुई प्रतिमायें अति ही मनोहर एवं आनन्ददायिनी हैं।२

१-अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ११४
२-अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २३७

महं० वालण और धवल

वि० सं० १२०२

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय आसदेव हो गया है। आसदेव की स्त्री का नाम देवकी था। देवकी की कुक्षी से महं० बहुदेव, धनदेव, सूमदेव, जसहू और रामा नामा पाँच पुत्र उत्पन्न हुए।

धनदेव के श्रा० बोल्हा और मीलाई (शिलाई) नामा पत्नियाँ थीं। इन से धनदेव को वालण और धवल नामक दो पुत्ररत्न और शांतिमती नामा पुत्री की प्राप्ति हुई।

श्रे० वालण और धवल ने श्रीमद् ककुदाचार्य के करकमलों से अपने पिता धनदेव के श्रेयार्थ मू० ना० प्रथम देवकुलिका में श्री धर्मनाथबिंब और बहिन शांतिमती के श्रेयार्थ तीसरी देवकुलिका में मू० ना० श्री शांतिनाथ-बिंब की बड़े समारोह के साथ वि० सं० १२०२ आषाढ़ शु० ६ सोमवार को प्रतिष्ठा करवाई।१-२

इस प्रतिष्ठोत्सव के शुभावसर पर अन्य ज्ञातीय अनेक श्रावककुल भी उपस्थित हुए थे। उनमें से सूत्र० सोढ़ा की धर्मपत्नी साईदेवी के पुत्र सूत्र० केला, वोल्हा, सहव, लोयपा, वागदेव आदि ने कुंथुनाथप्रतिमा और ठ० अमरसेन के पुत्र महं० जाजू ने अपने पिता के श्रेयार्थ श्री अरनाथप्रतिमा और ठ० जसराज ने अपने पिता ठ० धवल के कल्याणार्थ श्री ऋषभनाथबिंब की श्री ककुदाचार्य के कर कमलों से ही प्रतिष्ठा करवा कर श्री विमलवसतिका-तीर्थ में उनको स्थापित करवाया।३

वंश-वृक्षः—

आसदेव [देवकी]

महं० बहुदेव | धनदेव [१ बोल्हा, २ मीलाई] | सूमदेव | जसहू | रामा

धनदेव: वालण | धवल | शान्तिमती

१-अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २४, २८

२-प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १३९ में मिलाई के स्थान पर शिलाई लिखा है।

३-अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३४, ४०, ४५

श्रे० यशोधन
वि० सं० १२१२

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० देव हो गया है। देव के संधीरण नामक एक योग्य पुत्र था। श्रे० संधीरण का पुत्र यशोधन था। यशोधन बड़ा यशस्वी हुआ। इसके यशोमती नामा स्त्री और अस्त्रकुमार, गोत, श्रीधर, आशाधर और वीर नामक पाँच पुत्र थे।

वि० सं० १२१२ ज्येष्ठ कृ० ८ मंगलवार को श्रीकोरंटगच्छीय श्री नन्नाचार्यपट्टधरश्रीककसूरि के कर-कमलों से श्रे० यशोधन ने अपने पिता के कल्याणार्थ श्री आदिनाथबिंब की महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा करवाई और उसको श्री विमलवसतिका नाम से प्रसिद्ध श्री आदिनाथ-जिनालय के गूढ़मण्डप के गवाक्ष में स्थापित करवाया।※

इसी अवसर पर अन्य जैनज्ञातीय श्रावककुल भी उपस्थित हुये थे। जिनमें कोरंटगच्छीय नन्नाचार्यसन्तानीय ओशवंशीय वेलापल्लीवास्तव्य मंत्रि धाधुक प्रसिद्ध है। धाधुक ने आदिनाथ-समवसरण करवा कर श्री विमलवसतिका की हस्तिशाला में उसको प्रतिष्ठित करवाया।

श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ श्री विमलवसति की संघयात्रा और कुछ प्राग्वाटज्ञातीय बन्धुओं के पुण्यकार्य।
वि० सं० १२४५

श्रीअर्बुदाचलतीर्थ की जो अनेक तीर्थयात्रा एवं संघयात्राओं का वर्णन जैन-इतिहास में उपलब्ध है, उनमें महामात्य पृथ्वीपालात्मज महामात्य धनपाल द्वारा की गई वि० सं० १२४५ की यात्रा का भी अधिक महत्व है। यह यात्रा कासहृदगच्छीय श्री उद्योतनाचार्यीय श्रीमद्सिंहसूरि के अधिनायकत्व में की गई थी। श्रीमद् यशोदेवसूरि के शिष्य श्रीमद् देवचन्द्रसूरि भी इस यात्रा में सम्मिलित हुये थे। अनेक नगरों से भी प्रतिष्ठित जैनकुल इस यात्रा में सम्मिलित हुये थे। जावालीपुरनरेश का महामात्य ओसवालज्ञातीय यशोवीर भी आया था। इस यात्रा का वर्णन महामात्य पृथ्वीपाल के परिवार द्वारा किये गये निर्माणकार्य का परिचय 'प्राचीन गूर्जर-मंत्री-वंश और महामात्य पृथ्वीपाल' के प्रकरण में पूर्ण दिया जा चुका है।

इस शुभावसर पर अन्य अनेक ग्रामों के अन्य प्रतिष्ठित श्रावककुल भी उपस्थित हुये थे। उन्होंने जो धर्मकृत्य किये कुछ का वर्णन इस प्रकार है:—

※अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ८, २२६

श्रे० आम्रदेव

प्राग्वाटज्ञातीय अशोकुमार के पुत्र आम्रदेव ने धर्मपत्नी सातीदेवी, पुत्र आसदेव और अनेसर सहित श्री पार्श्वनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया । *

श्रे० जसधवल और उसका पुत्र शालिग

प्राग्वाटज्ञातीय शिवदेव का पुत्र जसधवल अपने परिवार सहित इस महोत्सव में सम्मिलित हुआ था । जसधवल की स्त्री का नाम लक्ष्मीदेवी और पुत्र का नाम शालिग था । पिता और पुत्र दोनों उदारमना और धर्मभक्त थे । जसधवल ने शान्तिनाथदेव का पंचकल्याणकपट्ट, उसकी स्त्री लक्ष्मीदेवी ने श्री अनन्तनाथप्रतिमा और श्री अनन्तनाथपंचकल्याणकपट्ट तथा उसके पुत्र शालिग ने अपने कल्याणार्थ श्री अरनाथप्रतिमा और अरनाथपंचकल्याणकपट्ट तथा एतदर्थ देवकुलिका करवा कर उनकी प्रतिष्ठा करवाई । *

श्रे० देसल और लापण

प्राग्वाटज्ञातीय ठ० देसल और उसके लघु भ्राता लापण ने अपने पिता और आसिणी नामा भगिनी के श्रेयार्थ श्री सुविधिनाथबिंब को श्री यशोदेवसूरिशिष्य श्री देवचन्द्रसूरि के द्वारा प्रतिष्ठित करवाया । *

कवीन्द्र-बन्धु मन्त्री यशोवीर जावालीपुरनरेश का मन्त्री था । इसके पिता का नाम उदयसिंह था । यशोवीर बड़ा विद्वान् और विशेषकर शिल्प-कला का उद्भट ज्ञाता था । यह भी अपने परिवारसहित इस अवसर पर अर्बुदतीर्थ के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ था । इसने अपनी माता उदयश्री के श्रेयार्थ श्रीनमिनाथप्रतिमा और सतोरण देवकुलिका तथा अपने कल्याणार्थ श्री नमिनाथबिंब सहित सुन्दर देवकुलिका विनिर्मित करवा कर उनको श्री देवचन्द्रसूरि के कर-कमलों से प्रतिष्ठित करवाई ।

श्री देवचन्द्रसूरि के कर-कमलों से अन्य बिंब जैसे धर्मनाथप्रतिमा, शीतलनाथप्रतिमा, कुंथुनाथप्रतिमा, मल्लिनाथप्रतिमा, वासुपूज्यप्रतिमा, अजितनाथप्रतिमा और विमलनाथप्रतिमा तथा ठ० नागपाल द्वारा उसके पिता आसवीर के श्रेयार्थ करवाई हुई श्री नेमिनाथप्रतिमा आदि प्रतिष्ठित हुई । †

‡महामात्य पृथ्वीपाल के प्रतिहार पूनचन्द्र ठ० धामदेव, उसके भ्राता सिरपाल तथा भ्रातृव्यक देसल ठ० जसवीर, धवल, ठ० देवकुमार, ब्रह्मचन्द्र, ठ० वीशल रामदेव और ठ० आसचन्द्र ने भी महाभक्तिपूर्वक श्री श्रेयांसनाथप्रतिमा श्री देवचन्द्रसूरि के हाथों प्रतिष्ठित करवाई ।

श्री कासहृदीयगच्छीय श्री उद्योतनाचार्यसंतानीय श्री जसयाग, चांदयाग जिदा का पुत्र जसहड़ का प्रसिद्ध पुत्र पार्श्वचंद्र भी अपने विशाल कुटुम्बसहित आया था । उसने अपने आत्म-श्रेयार्थ श्री पार्श्वनाथबिंब की श्री उद्योतनाचार्यीय श्री सिंहसूरि से प्रतिष्ठा करवाई ।

इस प्रकार महामात्य धनपाल द्वारा प्रमुखतः आयोजित और कारित इस प्रतिष्ठोत्सव में अनेक प्राग्वाटज्ञातीय

*प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २६ । ११५, ११८, ११६, १२१, १२२ । १२२

†प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १५०, १५१.

‡प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १२५, १२६, १३०, १३४, १३७, १४१, १४२, १४४, १६३.

उपकेशज्ञातीय तथा श्रीमालज्ञातीय कुटुम्बों ने अपने और अपने कुटुम्बीजनों के श्रेयार्थ धर्मकृत्य करवा कर अपना जीवन और द्रव्य सफल किया ।

महा० वस्तुपाल द्वारा श्री मल्लिनाथ-खत्तक का बनवाना

वि० सं० १२७८

श्री विमलवसतिका नामक श्री आदिनाथ-जिनालय के गूढ़मण्डप के दाहिने पक्ष में महामात्य वस्तुपाल ने वि० सं० १२७८ फाल्गुण कृ० ११ गुरुवार को अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री मालदेव के श्रेय के लिये खत्तक बनवा कर उसमें श्री मल्लिनाथ-प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया ।[१]

श्री सांडेरकगच्छीय श्रीमद् यशोभद्रसूरि

विक्रम शताब्दी दशवीं—ग्यारहवीं

प्राग्वाट-प्रदेश के रोही-प्रगणा के पलासी नामक ग्राम में प्राग्वाटज्ञातीय यशोवीर नामक श्रेष्ठि रहता था । उसकी सुभद्रा (गुणसुन्दरी) [२]नाम की स्त्री अत्यन्त ही धर्मनिष्ठावती थी । उसकी कुक्षी से वि० सं० ९४७-९५७ में एक महाप्रतापी बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सौधर्म रक्खा गया । सौधर्म बचपन में ही अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि था । वह अपनी वय के बालकों में सदा अग्रणी रहता था । उसकी वाणी और उसकी बालचेष्टायें महापुरुषों के बचपन की स्मरण कराती थीं । सौधर्म जब तीन वर्ष का ही था कि वह पाठशाला में बिठा दिया गया था । पांच वर्ष की वय में ही उसने पाठशाला का अध्ययन समाप्त कर लिया । पाठशाला में उसके अनेक साथियों में एक ब्राह्मणबालक भी था । वह बड़ा तेजस्वी और हठी था । सौधर्म के हाथ से एक दिन उस ब्राह्मणलड़के की दवात फूट गई । इस पर उस ब्राह्मणलड़के ने हठ पकड़ी कि मैं वैसी ही दवात लूंगा । गुरु और लड़कों के समझाने पर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी । जब वैसी दवात नहीं मिली और सौधर्म नहीं दे सका तो उस ब्राह्मणबालक ने क्रोध में आकर प्रतिज्ञा की कि मैं मन्त्र-बल से तेरे कपाल की दवात नहीं करूँ तो ब्राह्मणपुत्र नहीं । इस पर सौधर्म को भी क्रोध आ गया और उसने भी प्रतिज्ञा की कि मैं तेरे मन्त्र-बल को विफल नहीं कर डालूँ तो मैं भी चतुर वणिकपुत्र नहीं । इस प्रकार सौधर्म में प्रारंभ से ही निडरता, निर्भीकता थी ।

वंश-परिचय और आपका बचपन

१—अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ६

२—श्री ज्ञाननन्दिगणि द्वारा वि० सं० १६८३ में रचित संस्कृत-चरित्र में पिता का नाम पुण्यसार और माता का नाम गुणसुन्दरी लिखा है । नाडूलाई के श्री आदिनाथ-मन्दिर के वि० सं० १५९७ के लेख में पिता का नाम यशोवीर और माता का नाम सुभद्रा लिखा है, जो अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है और अधिक विश्वसनीय है ।

प्र० प्रा० सं० भा० २ पृ० २१, ३६

सांडेरकगच्छाधिपति आचार्य ईश्वरसूरि बड़े प्रतापी हो गये हैं। वे वि० सं० ६५१-५२ में विहार करते २ मानवप्राणियों को धर्मोपदेश देते हुए मुंडारा नामक ग्राम में पधारे। मुंडारा से पलासी अधिक अंतर पर नहीं है। मुंडारा में उन्होंने सौधर्म की आश्चर्यपूर्ण बाललीलाओं की कहानियाँ सुनीं। ईश्वरसूरि के पास में ५०० मुनि शिष्य थे। परन्तु गच्छ का भार वहन करने की शक्तिवाला उनमें एक भी उनको प्रतीत नहीं होता था। वे रात-दिन इसी चिंता में रहते थे कि अगर योग्य शिष्य नहीं मिला तो उनकी मृत्यु के पश्चात् सांडेरकगच्छ छिन्न-भिन्न हो जावेगा। सौधर्म के विषय में अद्भुत कथायें श्रवण करके उनकी इच्छा सौधर्म को देखने की हुई। विहार करते २ अनेक श्रावक और श्राविकाओं तथा अपने ५०० शिष्य मुनियों के सहित पलासी पधारे। पलासी के श्री संघ ने आपश्री का तथा मुनियों का भारी स्वागत किया। एक दिन आचार्य ईश्वरसूरि भी श्रे० पुण्यसागर के घर को गये और स्त्री गुणसुन्दरी से सौधर्म की याचना की। इस पर गुणसुन्दरी बहुत क्रोधित हुई; परन्तु ज्ञानवंत आचार्य ने उसको सौधर्म का भविष्य और उसके द्वारा होनेवाली शासन की उन्नति तथा साधु-जीवन का महत्त्व समझा कर उसको प्रसन्न कर लिया और गुणसुन्दरी ने यह जान कर कि उसका पुत्र शासन की अतिशय उन्नति करने वाला होगा, सहर्ष सौधर्म को आचार्य को समर्पित कर दिया। लगभग ६ वर्ष की वय में ईश्वरसूरि ने पलासीग्राम में ही सौधर्म को दीक्षा प्रदान की और उसका यशोभद्र नाम रक्खा।

ईश्वरसूरि का मुंडाराग्राम से पलासी आना और सौधर्म की मांगणी और उसकी दीक्षा।

दीक्षा लेकर यशोभद्रमुनि शास्त्राभ्यास में लगे और थोड़े ही काल में उन्होंने जैनशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके पंडितपदवी को धारण की। ईश्वरसूरि ने उनको सर्वशास्त्रों के ज्ञाता एवं प्रतापी जानकर मुंडाराग्राम में उनको सूरिपद से अलंकृत किया। यशोभद्रसूरि ६ विगयों का त्याग करके आंबिल करते हुये विहार करने लगे और फैले हुए पाखण्ड का नाश करके जैन-धर्म का प्रभाव बढ़ाने लगे।

सूरिपद और गच्छ का भार वहन करना।

दुःख है ऐसे प्रभावक आचार्य के विषय में उनके द्वारा की गई शासनसेवा का विस्तृत लेखन प्राचीन ग्रन्थों में ग्रंथित नहीं मिलता है। नाडूलाई के श्री आदिनाथ-जिनालय के संस्थापक ये ही आचार्य बतलाये जाते हैं। उक्त मन्दिर के वि० सं० ११८७ के एक अन्य लेख से भी सिद्ध है कि मन्दिर प्राचीन है। एक लेख में मन्दिर की स्थापना का संवत् वैसे वि० सं० ९६४ लिखा है। आपकी निश्रा में सैकड़ों मुनिराज रहते थे। सूरिपद ग्रहण

साडेरगच्छ में हुआ जसोभद्रसूरिराय, नवसें हे सतावन समे जन्मवरस गच्छराय ॥१॥
संवत नवसें हैं अड़सठे सूरिपदवी जोय, बदरी सूरी हाजर रहे पुण्य प्रबल जस जोय ॥२॥
सवत नव अगणोतरे नगर मुंडाडा महिं, साडेरा नगरे वली किधी प्रतिष्ठा त्यांहे ॥३॥
चुहा किच रसी वली सीम रीषिमुनिराज, जसोभद्र चोथा सहु गुरुभाई सुखसाज ॥४॥
चुहाथी गछ निकल्यो मलधारा तसनाम, किच रिसीथी निकल्यो किच्चरिसी गुणखान ॥५॥
सीम रिसीथीय निपनो कोसंट वालग गछ जेह, जसोभद्र साडेरगछ च्यारे गछ सनेह ॥६॥
आबू रोहाई विचे गाम पलासी माहे, विप्रपुत्र साथे बहु भणता लड़िया त्याहें ॥७॥
राडियो मागो विप्रनो करें प्रतिज्ञा ऐम, माथानो खड़ियो करूं तो ब्राह्मण सहि नेम ॥८॥
ते ब्राह्मण जोगी थई विद्या सिखी काय, चोमासु नडलाई में हुता सूरि गच्छराय ॥९॥
तिया आयो तिहिज जटिल प्रब द्वेष विचार, वाघ सरप बिल्ली प्रमुख किधा कई प्रकार ॥११॥
संवत् दश दाहोतरें किया चौराशीवाद, वल्लभीपुर थी आणियो ऋषभदेवप्रासाद ॥११॥

करके आप पाली पधारे और वहाँ आपने अनेक विद्याओं की साधना कीं। उस समय आचार्य, यति, साधु विद्या-साधना करके धर्म का प्रचार करते थे। आप छोटी आयु में ही भारत के विद्या-कलाविदों में अग्रगण्य हो गये। सूक्ष्मदर्शिनी, आकाशगामिनी, अंतर्हितकारिणी, संहारिणी जैसी अद्भुत विद्याओं के ज्ञाता और नवनिधि और अष्टसिद्धि के प्राप्त करने वाले हो गये।

नाडूलाई (मरुधर-प्रदेश) में जो ग्राम के बाहर श्री आदिनाथ-जिनालय है उसकी स्थापना की भी एक मनोरंजक और आश्चर्य्यभरी कहानी है। एक वर्ष सूरिजी का नाडूलाई में चातुर्मास था। वही अवधूत शिव योगी श्रीमद् यशोभद्रसूरि का नाडूलाई में चातुर्मास श्रवण करके फिर आया और अनेक विघ्न उत्पन्न करने लगा। अन्त में दोनों में वाद होना ठहरा। वाद में यह ठहरा कि वल्लभीपुर से दोनों एक २ मन्दिर उड़ाकर ले आवे और जो मुर्गे की आवाज के पूर्व नाडूलाई में पहुँच जायगा, वही जयी हुआ समझा जायगा। योगी ने शिव-मन्दिर को और यशोभद्रसूरि ने श्री आदिनाथमन्दिर को उठाया और दोनों आकाशमार्ग से मन्दिरों को ले चले। सूरिजी आगे चले जा रहे थे। योगी ने देखा भोर फटने वाली है और नाडूलाई अब अधिक दूर भी नहीं है, सूरिजी मेरे से आगे पहुँच जावेंगे ऐसा विचार करके उसने तुरन्त मुर्गे की आवाज की। सूरिजी ने समझा कि भोर हो गया है मन्दिर को प्रतिज्ञा के अनुसार वहीं तुरन्त स्थापित कर दिया। कपटी योगी ठहरा नहीं और उसने सूरिजी से आगे बढ़कर शिवमन्दिर को स्थापित किया। कपटी योगी के छल का पता जब सूरिजी को लगा तो उन्होंने उसके छल को प्रकाशित कर दिया। इससे योगी की अत्यन्त निंदा हुई। नाडूलाई में आज भी दोनों मन्दिर विद्यमान हैं। यह घटना वि० सं० ९६४ (?) की कही जाती है। वि० सं० ९६९ में आपश्री ने मुंडारा और सांडेराव में प्रतिष्ठायें कीं। अनेक चमत्कारों और आश्चर्यों से सूरिजी का जीवन भरा है।

सूरिजी ने अपनी विद्याशक्ति से अनेकों के दुःख दूर किये, अनेक पाखण्डियों के पाखण्ड को खोला और भोले और अन्धश्रद्धालु भक्तों का उद्धार किया। आपके तेज, पाण्डित्य, चमत्कारों से जैन-धर्म खूब फैला। आपने अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठायें करवाईं और आपने अनेक अजैन कुलों को जैन बनाया।

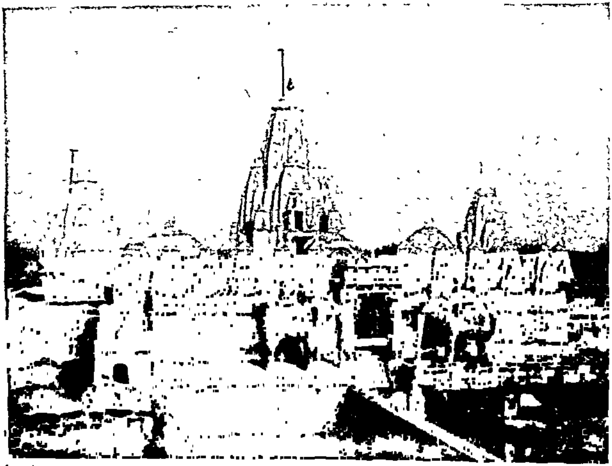
अजैनों को जैनी बनाना

गुगलिया, धारोला, कांकरिया, दुधेड़िया, बोहरा, चतुर, भंडारी, शिशोदिया आदि १२ कुलों के पुरुषों को आपने प्रतिबोध देकर जैन बनाये। गुजरात, राजस्थान, मालवा के समस्त राजा, मांडलिक, सामन्त सब आपका मान करते थे। आगटनरेश तो आपका परम भक्त था। नाडूलाई के राव लाखण के पुत्र राव दूधा को आपश्री ने प्रतिबोध देकर जैन बनाया था और उसके परिवार वाले भण्डारी कहलाये।

ते जोगी पण लावियो सिवदेवरो मन भाय, जैनमति सिवमति बेहु दोय देहरां ल्याय ॥१२॥
ते हमणा प्रासाद छै नडुलाई सेहेर मझार, एहनी वरवण छै बहु कथा कोस विरतार' ॥१३॥ —सोहमकुल पट्टावली

'श्री ऊपकेशवंशे रायभण्डारीगोत्रे राउल श्री लाष(ख)णपुत्र श्री मं० दूदवशे मं० मयूरसुत मं० साहुलः। तत्पुत्राभ्यां मं० सीदा समदाभ्यां सद्बांधव मं० कर्मसी धारा लाखादि सुकुटुम्बयुताभ्यां श्री नन्दकुलवत्यां पुर्यां सं० ९६४ श्रीयशोभद्रसूरिमंत्रशक्तिसमानीतायां मं० सायरकारितदेवकुलिकाद्युद्धारतः' (नाडूलाई के जैन मन्दिर के सं० १५९७ के लेख का अंश.)
प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३३६, ३४३.

भावनगर, 'प्राचीन शोध-संग्रह, भाग पहला' वि०सं० १९४२ पृ० ६४-६६ (Published by state press at Bhawanagar.)
वि० सं० ९६८ में सूरिपद प्राप्त हुआ; अतः वि० सं० ९६४ की उक्त घटना सूरिपद की प्राप्ति के पूर्व हुई इससे सिद्ध होती है; परन्तु सूरिपद की प्राप्ति के पश्चात् अधिक संगत प्रतीत होती है।



नडूलाई: श्रीमद् यशोभद्रसूरि द्वारा मंत्रशक्तिबलसमानीत श्री आदिनाथ-बावन जिनप्रासाद। वर्णन पृ० २०४ पर देखिये।

सूरिजी ने अपना आयुष्य निकट जान कर अपने शिष्यों से कहा कि जब मैं मरूँ, मेरे शिर को फोड़-तोड़ कर चूर-चूर कर डालना। अवधूत के हाथ अगर शिर पड़ जायगा तो वह बड़ा भारी पाखण्डवाद और अत्याचार फैलावेगा। निदान जब सूरिजी मरे, उनका शिर चूर २ कर दिया गया। सूरिजी का स्वर्गारोहण (वि० सं० १०१० में) श्रवण करके जब अवधूत आया तो

स्वर्गवास

आपका समस्त जीवन-चरित्र ही अनेक चमत्कारों का लेखा है। परन्तु मंत्र और मंत्र-विद्या में विश्वास करने वालों के लिये तो उनके जीवन की कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाओं का लिखना अत्यन्त आवश्यक है।

१. संवत् ९६९ में आप सांडेराव में प्रतिष्ठा करवा रहे थे। दैवयोग से प्रीतिभोज में घी की कमी पड़ गई। सूरिजी को समाचार होते ही उन्होंने मंत्र पढ़ कर घी के बर्तनों को घी से भर दिया। प्रीतिभोज पूर्ण हो गया। तत्पश्चात् सूरिजी ने सांडेराव के श्री संघ को पाली में एक अजैन श्रेष्ठि को घी के दाम चुकाने का आदेश दिया। श्रीसंघ-सांडेराव के मनुष्य जब उस अजैन श्रेष्ठि के पास रकम लेकर पहुँचे तो उसने यह कह कर कि मैंने तो घी नहीं बेचा है, रकम लेने से अस्वीकार किया। रकम चुकाने वालों ने जब उसे अपने घी के बर्तन देखने को कहा तो उसने बर्तन देखे और उन्हें खाली पाया। सूरिजी का यह चमत्कार देख कर वह सांडेराव आया और रकम लेने से उसने अस्वीकार किया और उसने जैनधर्म स्वीकार किया। इसी वर्ष आपने मुंडारा में भी प्रतिष्ठा करवाई थी।

२. एक समय सूरिजी आगटनरेश के साथ चले जा रहे थे। रास्ते में एक अवधूत ने अपने मुँह से सूरिजी का स्पर्श किया। सूरिजी ने अपने दोनों हाथों को तुरन्त ही मसल कर कुछ झाड़ने का अभिनय किया। राजा ने इस संकेत का रहस्य पूछा। सूरिजी ने कहा कि उज्जैन में महाकालेश्वरमन्दिर का चन्द्रवा जलने लगा था। अवधूत ने मुझको अपने मुँह से स्पर्श करके संकेत किया। मैंने चन्द्रवा को मसल कर बुझा डाला। उन्होंने राजा को अपने दोनों हाथ दिखाये तो तलियाँ काली थीं। राजा ने उज्जैन में अपने विश्वास-पात्र सेवकों को उपरोक्त घटना की सत्यता की प्रतीति करने के लिये भेजा। उन्होंने लौट कर कहा कि ठीक उसी दिन, उसी समय चन्द्रवा जल उठा था और वह तुरन्त किसी अदृष्ट देव द्वारा बुझा दिया गया था। सूरिजी का यह महान् चमत्कार देख कर राजा आगटनरेश अल्लट ने जैनधर्म स्वीकार किया और वह सूरिजी का परम भक्त बना।

३. सूरिजीने आगटनगर, खेट, कविलाण, संभरी और भैसर इन पांचों नगरों में एक ही मुहूर्त में अपने पांच शरीर बना कर प्रतिष्ठायें करवाई थीं। इसी विद्या के बल से सूरिजी नित्य-नियम से पंचतीर्थी करके फिर नवकारसीव्रत का पालन करते थे।

४. आगटनगर के एक श्रेष्ठि ने सूरिजी की अधिनायकता में शत्रुञ्जयमहातीर्थ के लिये संघ निकाला था। संघ अणहिलपुरपत्तन होकर गया था। उस समय पत्तन में गूर्जरसम्राट् मूलराज राज्य करता था। सूरिजी का आगमन श्रवण करके वह उनका स्वागत करने अपने सामंत और मण्डलेश्वरों के साथ नगर के बाहर आया और राजसी ठाट-बाट से उनका नगर-प्रवेश करवा कर राजप्रासाद में सूरिजी को ले गया। मूलराज ने सूरिजी के अद्भुत कर्मों के विषय में खूब सुन रक्खा था। सम्राट् ने सूरिजी से पत्तन में ही सदा के लिये विराजने की प्रार्थना की। परन्तु सूरिजी ने उत्तर दिया कि जैनसाधुओं को एक स्थान पर रहना नहीं कल्पता है। सम्राट् ने निराश हो कर एक चाल चली। उसने अवसर देख कर जिस कक्ष में सूरिजी ठहरे हुये थे, उसके चारों ओर के द्वार एक दम बंद करवा दिये। सूरिजी को कक्ष में बंद कर दिया है और अब सम्राट् सूरिजी को नहीं आने देगा यह समाचार श्रवण कर के संघ बहुत ही अधीर हुआ; परन्तु सम्राट् के आगे संघ का क्या चलता। निदान संघ पत्तन से रवाना हो कर शत्रुंजयतीर्थ की ओर आगे चला। उधर सूरिजी ने देखा कि सम्राट् ने छल किया है, वे अपना सूक्ष्म शरीर बना कर किवाड़ों के छिद्र में से निकल कर संघ में जा सम्मिलित हुए। संघ सूरिजी के दर्शन करके कृतकृत्य हो गया। पत्तन की ओर आने वालों में से किसी चतुर के साथ सूरिजी ने सम्राट् को धर्मलाभ कहला भेजा। सूरि का धर्मलाभ पाकर सम्राट् को आश्चर्य हुआ और जब उसने उस कक्ष के किवाड़ खोल कर देखा तो वहाँ सूरिजी नहीं थे।

संघ बढ़ कर एक तालाब के किनारे पहुँचा। भोजन का समय हो चुका था। तालाब में पानी नहीं देखकर संघपति को चिंता हुई। सूरिजी को यह मालूम हुआ कि सरोवर में पानी नहीं है, चट उन्होंने अपना ओघा उठाया और सरोवर की दिशा में उसे घुमाया। सरोवर पानी से छलाछुल कर उठा। संघ में इस चमत्कार से अतिशय हर्ष छा गया। इस प्रकार सूरिजी के पद-पद पर अनेक चमत्कारों का अनुभव करता हुआ संघ शत्रुञ्जयतीर्थ की यात्रा करके गिरनार पहुंचा। गिरनारतीर्थ पर प्रभु को संघपति ने अमूल्य रत्नजटित आभूषण धारण करवाये। रात्रि को वे आभूषण चोरी चले गये। संघपति को यह श्रवण करके अत्यन्त ही दुःख हुआ।

सूरिजी का शिर जो अनेक विद्या एवं सिद्धमन्त्रों का भण्डार था उसको चूर २ हुआ मिला। वह निराश होकर लौट गया।

अंचलगच्छसंस्थापक श्रीमद् आर्यरक्षितसूरि

दीक्षा वि० सं० ११४६. स्वर्गवास वि० सं० १२३६

विक्रम की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अर्बुदाचल-प्रदेश के संनिकट दंताणा (दंत्राणा) ग्राम में प्राग्वाट-ज्ञातीयतिलक शुद्धश्रावकव्रतधारी क्रियानिष्ठ एक सद्गृहस्थ रहता था, जिसका नाम द्रोण था। द्रोण जैसा सज्जन, धर्मात्मा और न्यायनिष्ठ था, वैसी ही उसकी शीलवती देदीनामा गृहिणी थी। दोनों स्त्री-पुरुषों में अगाध प्रेम था। आर्थिक दृष्टि से ये साधारण श्रेष्ठि थे; परन्तु दोनों संतोषी और धर्ममार्गानुसारी होने से परम सुखी थे। श्रेष्ठि द्रोण दंताणा में दुकान करता था। उसकी दुकान सचाई के लिये प्रसिद्ध थी।

वंश-परिचय

वि० सं ११३५ में एक दिवस बृहद्गच्छोत्पन्न नाणकगच्छाधिपति श्रीमद् जयसिंहसूरि दंत्राणा में पधारे। समस्त संघ आचार्य को वंदन करने के लिये गया। श्रावक द्रोण और उसकी स्त्री दोनों भी उपाश्रय में गये और सूरिजी को वंदना करके घर लौट आये। वि० सं० ११३६ में देदी की कुक्षी से सर्वलक्षणयुक्त पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम गोदुह रक्खा गया, क्योंकि उसके गर्भ धारण करते समय देदी ने स्वप्न में गौदुग्ध का पान किया था। वि० सं० ११४१ में पुनः श्रीमद् जयसिंहसूरि दंत्राणा में पधारे। श्रेष्ठि द्रोण और श्राविका

जयसिंहसूरि का पदार्पण और द्रोण का भाग्योदय गोदुह का जन्म और वि० सं० ११४६ में उसकी दीक्षा

सूरिजी ने कहा कि चोर आज के बीसवें दिन आगट (आघात) में पकड़ा जायगा और वैसा ही हुआ। चोर पकड़ा गया। आभूषण ज्यों के त्यों मिल गये और पुनः गिरनारतीर्थ पर भेज कर प्रभुबिंब को वे धारण करवाये गये।

५. एक वर्ष सूरिजी का चातुर्मास वल्लभीपुर में हुआ। वल्लभीपुर में सूरिजी का वह ब्राह्मण-साथी, जो अब अवधूत योगी बन कर फिरता था, सूरिजी का चातुर्मास श्रवण करके आया और विघ्न डालने का यत्न करने लगा। एक दिन व्याख्यान-सभा में उस अवधूत ने अपनी मूछ के दो बाल तोड़ कर श्रोतागणों के बीच में फैंके। वे दोनों बाल सर्प बन कर दौड़ने लगे। सूरिजी ने यह देखकर अपने शिर के बाल तोड़ कर फैंके। वे नेवला बनकर उन सर्पों के पीछे पड़े। अब व्याख्यान बन्द हो गया और सर्प और नेवलों का द्वंद्व चला। अवधूत अपने को पराजित हुआ देखकर बहुत ही शर्माया और सर्पों को पुनः बाल बना दिये।

एक दिन एक साध्वी सूरिजी को वन्दन करने के लिये आ रही थी। मार्ग में उसको योगी मिला। योगी ने उसको पागल बना दिया। सूरिजी को जब साध्वी के पागल होने का कारण मालूम हुआ तो उन्होंने कुछ व्यक्तियों को घास का पुतला बना कर दिया कि इसको लेकर वे अवधूत के पास जावें और उससे साध्वी को अच्छा करने के लिए समझावें। इस पर अगर अवधूत नहीं माने तो पुतले की एक अंगुली काट देवें और फिर भी नहीं माने तो पुतला की गर्दन काट डालें। उन व्यक्तियों ने जा कर प्रथम अवधूत को बहुत ही समझाया। जब वह नहीं माना, तब उन्होंने पुतले की एक अंगुली काट डाली। पुतले की अंगुली ज्योंहि कटी अवधूत की भी वह ही अंगुली कट कर गिर पड़ी। अवधूत डरा और उसने कहा कि साध्वीको १०८ बार स्नान कराओ वह अच्छी हो जावेगी। इस प्रकार अवधूत योगी ने अनेक विघ्न, छल-छन्द किये, परन्तु तेजस्वी सूरिजी के आगे उसका एक भी कुप्रयत्न सफल नहीं हो सका। अन्त में दोनों में राजसभा में चौरासी वाद हुए और उसमें सूरिजी की जय हुई। अवधूत शर्मा कर वहाँ से पलायन कर गया।

देदी भी पुत्रसहित भक्तिभावपूर्वक वंदना करने के लिये गये। गौदुहकुमार तुरन्त दौड़कर आचार्य महाराज के आसन पर जा बैठा। आचार्यजी ने गौदुहकुमार की श्रेष्ठि द्रोण और उसकी स्त्री से मांगणी की। गुरु-वचनपालन करने में दृढ़ ऐसे दोनों स्त्री-पुरुषों ने गौदुहकुमार को आचार्यजी को (वि० सं० ११४२ में) समर्पित किया। गौदुहकुमार अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि और विनीत बालक था। उसने दश वर्ष की वय तक संस्कृत, प्राकृत का अच्छा अभ्यास कर लिया था। श्रीमद् जयसिंहसूरि ने गौदुहकुमार का अभ्यास, उसकी प्रखर बुद्धि और धर्मपरायणता को देख कर उसको वि० सं० ११४६ पौष शु० ३ को राधनपुर में महामहोत्सवपूर्वक दीक्षा प्रदान की और उसका मुनि आर्यरक्षित नाम रक्खा।

दीक्षामहोत्सव के पश्चात् मुनि आर्यरक्षित ने आचार्यजी से अनेक शास्त्रों का अल्प समय में ही अभ्यास कर लिया। मंत्र-तंत्र की विद्या में पारंगत मुनि राज्यचन्द्र ने मुनि आर्यरक्षित को मन्त्र-तन्त्र की विद्यायें सिखाईं और उनको विनीत और सर्वगुणसम्पन्न जानकर 'परकायप्रवेशिनी' नामक विद्या दी। इस प्रकार वि० सं० ११५६ तक आर्यरक्षित मुनि षट् शास्त्रों के ज्ञाता और अनेक विद्याओं में पारंगत हो गये। आचार्य महाराज ने उनको सब प्रकार योग्य समझ कर पत्तन में वि० सं० ११५६ मार्गशीर्ष शु० ३ को आचार्यपद प्रदान किया।

शास्त्राभ्यास और आचार्य-पदवी

आर्यरक्षितसूरि कठोर तपस्वी और आचार-विचार की दृष्टि से अति कठोर व्रती थे। शिथिलाचार उनको नाम मात्र भी नहीं रुचता था। वे स्वयं शुद्ध साध्वाचार का पालन करते थे और अपने साधुवर्ग में भी वैसा ही शुद्ध साध्वाचार का परिपालन होना देखना चाहते थे। एक दिन आचार्य आर्यरक्षित ने दशवैकालिकसूत्र की निम्न गाथा का वाचन कियाः—

आचार्यपद का त्याग और क्रियोद्धार

सीओदगं न सेविज्जा। सिलावुट्ठिं हिमाणि य।
उसिणोदगं तह फासुअं। पडिगाहिज्ज संजओ ॥१॥

उपरोक्त गाथा का वाचन करके उन्होंने विचार किया कि गाथा में उबाले हुये पानी को व्यवहार में लाने का आदेश है, जहाँ हम साधु ठण्डे पानी का उपयोग करके शास्त्रीय साधु-मर्यादा का भंग कर रहे हैं। ये उठकर आचार्य जयसिंहसूरि के पास जाकर सविनय कहने लगे कि आज के साधुओं में शिथिलाचार बहुत ही बढ़ गया है। अगर आप आज्ञा दें तो मैं शुद्ध धर्म की प्ररूपणा करूँ। आचार्य महाराज यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और कहा कि जैसा तुमको ठीक लगे वैसा करो। बस दो माह पश्चात् ही वि० सं० ११५६ माघ शु० पंचमी को आचार्यपद का त्याग करके ये अपना नाम उपाध्याय विजयचन्द्र रखकर क्रियोद्धार करने को निकल पड़े। उपाध्याय विजयचन्द्र घोर तपस्या करने लगे और पैदल उग्र विहार करते हुये अपने साधु-परिवार सहित पावागढ़ आये। पावागढ़ में उनको शुद्ध आहार की प्राप्ति नहीं हुई। अतः उन्होंने सागारी अनशनतप प्रारम्भ कर दिया। एक माह व्यतीत होने पर उनको शुद्धाहार का योग प्राप्त हुआ।

एक रात्रि को उनको स्वप्न हुआ, उसमें चक्रेश्वरीदेवी ने उनको कहा कि पास के भालेज नामक ग्राम में शुद्धाहार की प्राप्ति होगी। उपाध्याय अपने परिवार सहित भालेज नगर में पधारे और शुद्धाहार प्राप्त करके पारणा किया। एक माह पर्यन्त सागारी अनशन तप करने के कारण वे अत्यंत दुर्बल हो गये थे; अतः कुछ दिनों तक भालेज में ही विराजे।

भालेजनगर में यशोधन नामक एक श्रीमंत व्यापारी रहता था। उसके पूर्वजों ने श्रीमद् उदयप्रभसूरि के करकमलों से जैनधर्म स्वीकार किया था; परन्तु पीछे से कुसंगति में पड़ कर इस वंश के पुरुषों ने उसका परित्याग कर दिया था। यशोधन ने अपने परिवार सहित पुनः जैनधर्म को स्वीकार किया और उपाध्यायजी ने उसका भणशालीगोत्र स्थापित करके, उसके परिवार को उपकेशज्ञाति में सम्मिलित कर दिया। इस प्रकार धर्म का प्रचार करते हुये उपाध्याय विजयचन्द्रजी भालेज से विहार करके अन्यत्र पधारे। कठिन तप करते हुये आपने अनेक नगरों में भ्रमण किया और साधुओं में फैले हुये शिथिलाचार को बहुत सीमा तक दूर किया। वि० सं० ११६९ वैशाख शु० ३ को भण्डशाली यशोधन के भक्तिपूर्ण निमंत्रण पर आप पुनः भालेज में पधारे। अत्यन्त धूम-धाम से आपका नगर-प्रवेश-महोत्सव किया गया। आचार्य जयसिंहसूरि को उपाध्यायजी के नगर-प्रवेश के पूर्व ही वहाँ बुला रक्खा था। श्रेष्ठि यशोधन और संघ के अत्याग्रह को स्वीकार करके आचार्य जयसिंहसूरि ने उपाध्याय विजयचन्द्र को पुनः शुद्धसमाचारी आचार्यपद प्रदान किया और आर्यरक्षितसूरि पुनः नाम रक्खा। श्रेष्ठि यशोधन ने आचार्यमहोत्सव में एक लक्ष द्रव्य का व्यय किया था। उसी संवत् में आचार्य जयसिंहसूरि भालेज में ही स्वर्ग को सिधार गये। आचार्य आर्यरक्षितसूरि के ऊपर गच्छनायक का भार आ पड़ा।

भणशाली (भंडशाली) गोत्र की स्थापना

आचार्य आर्यरक्षितसूरि के उपदेश से श्रेष्ठि यशोधन ने एक विशाल जिनालय बनवाया। प्रतिष्ठा के पूर्व कई विघ्न आये, उनका निवारण करके शुभ मुहूर्त में मन्दिर की प्रतिष्ठा की गई। प्रतिष्ठोत्सव के पश्चात् श्रेष्ठि यशोधन ने शत्रुंजयमहातीर्थ के लिए संघ निकाला। इस संघ के अधिष्ठायक आचार्य आर्यरक्षितसूरि ही थे। भालेज से शुभ मुहूर्त में संघ ने प्रयाण किया। मार्ग में संघ के निमित्त बनने वाले भोजन में से आर्यरक्षितसूरि आहार ग्रहण नहीं करते थे और नहीं मिलता तो निराहार ही रह जाते थे। इस प्रकार कठिन तप करते हुये ये संघ के साथ-साथ खेड़ानगर में पधारे। खेड़ानगर में शुद्धाहार की प्राप्ति में अनेक विघ्न आये। अन्त में विधिपूर्वक आहार आपको मिला ही। उस समय से विधिगच्छ का प्रारम्भ होना माना गया है।

आर्यरक्षितसूरि के उपदेश से यशोधन का भालेज में जिनमंदिर बनवाना और शत्रुञ्जयतीर्थ को संघ निकालना तथा विधिगच्छ की स्थापना

सुरपाटण से आचार्य आर्यरक्षितसूरि अपने साधु-परिवारसहित खिणपनगर में पधारे। वहाँ कोड़ी नामक एक श्रीमंत और अति प्रसिद्ध व्यापारी रहता था। उसके समयश्री नाम की एक कन्या थी। वह आभूषणों आदि बहुमूल्य वस्तुओं की बड़ी शौकीन थी। नित्य एक क्रोड़ रुपयों की क़ीमत के तो वह आभूषण ही पहने रहती थी। कोड़ी श्रेष्ठि अपनी समयश्री पुत्री के सहित आचार्य महाराज के दर्शन को आया और नमस्कार करके व्याख्यान श्रवण करने को बैठ गया। आचार्य महाराज का वैराग्यपूर्ण व्याख्यान श्रवण करके समयश्री को वैराग्य उत्पन्न हो गया। पिता आदि ने बहुत समझाया, लेकिन उसने एक नहीं मानी और अंत में पिता ने उसको दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी। निदान आचार्य महाराज ने समयश्री को बड़ी धूम-धाम से दीक्षा देदी। तत्पश्चात् आचार्य जी वहाँ से विहार करके अन्यत्र पधारे। आगे जाकर वह कोड़ी श्रेष्ठि गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह का कोषाध्यक्ष बना। सम्राट् ने प्रसन्न होकर कोड़ी श्रेष्ठि को अठारह ग्रामों का स्वामी बनाया।

समयश्री की दीक्षा

श्रे० कोड़ी कोषाध्यक्ष के मुँह से आर्यरक्षितसूरि की प्रशंसा श्रवण करके सम्राट् सिद्धराज ने आचार्यजी को पत्तन में पधारने का वाहड़ मंत्री को भेजकर विनयपूर्वक निमंत्रण भेजा। निमन्त्रण पाकर आचार्य अपने साधु-परिवार सहित पत्तन में पधारे। सम्राट् ने राजसी ठाट-बाट से महाप्रभावक आचार्य का नगर-प्रवेश-महोत्सव करवाया और सम्राट् ने उनका सभा में मानपूर्वक पदार्पण करवा कर भारी सम्मान किया।

पत्तन में आचार्यजी

आचार्य आर्यरक्षितसूरि महाप्रभावक आचार्य हो गये हैं, जैसा ऊपर के वर्णन से ज्ञात होता है। आपने कई अजैन कुलों को जैन बनाया और अपने करकमलों से लगभग एक सौ साधुओं और ग्यारह सौ साध्वियों को दीक्षित किया। बीश साधुओं को उपाध्यायपद, सत्तर साधुओं को पंडितपद, एक सौ तीन साध्वियों को महत्तरापद, ब्यासी साध्वियों को प्रवर्तिनीपद प्रदान किये। इस प्रकार धर्म की प्रभावना बढ़ाते हुए वि० सं० १२३६ (१२२६) में पावागढ़तीर्थ में सात दिवस का अनशन करके सौ वर्ष की दीर्घायु भोग कर आप स्वर्ग को पधारे।[१]

स्वर्गारोहण

बृहत्तपगच्छीय सौवीरपायी[२] श्रीमद् वादी देवसूरि

दीक्षा वि० सं० ११५२, स्वर्गवास वि० सं० १२२६

गूर्जरभूमि के अन्तर्गत अष्टादशशती नामक मण्डल (प्रान्त) में मद्दाहृत[३] नामक नगर में परोपकारी सुश्रावक वीरनाग रहता था। यह प्राग्वाटज्ञाति में अपनी सद्वृत्ति के कारण अधिक संमान्य था। इसकी स्त्री का नाम जिनदेवी था। जिनदेवी अपने नाम के अनुरूप ही जिनेश्वर भगवान् में अनुरक्ता एवं पतिपरायणा साध्वी स्त्री थी। तपगच्छीय श्रीमद् मुनिचन्द्रसूरि के ये परम भक्त थे। पूर्णचन्द्र नामक इनके पुत्र था, जिसका जन्म वि० सं ११४३ में हुआ था। यह प्रखर बुद्धि, तेजस्वी एवं मोहक मुखाकृति वाला था। वीरनाग अपनी गुणवती स्त्री एवं तेजस्वी बालक के साथ सानन्द गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे। एक समय मद्दाहृत नगर में भारी उपद्रव उत्पन्न हुआ और समस्त नगरनिवासी नगर छोड़कर अन्यत्र चले गये। सुश्रावक वीरनाग को भी वहाँ से जाना पड़ा। वह अपनी स्त्री और पुत्र पूर्णचन्द्र को लेकर भृगुकच्छ नगर में पहुँचा। भृगुकच्छ के श्रीसंघ ने उसका समादर किया और वह वहीं रहने लगा। इतने में उसके गुरु श्रीमद् मुनिचन्द्रसूरि भी भृगुकच्छनगर में पधारे। उस समय तक पूर्णचन्द्र आठ वर्ष का हो गया था। आचार्य पूर्णचन्द्र को देखकर अति मुग्ध हुये और उसकी बाल-चेष्टायें, क्रियायें देखकर उनको विश्वास हो गया कि यह बालक आगे जाकर अत्यन्त प्रभावक पुरुष होगा। योग्य अवसर देखकर आचार्य ने वीरनाग से पूर्णचन्द्र की

वंश-परिचय

१–म० प० (गुजराती) ॥४७॥ पृ० १२०–१४४

२–'सौवीरपायीति तद्देकतारिपानाद् विधितो विरुदं चभार' ।६६॥ गुर्वावली पृ० ७ (संस्कृत)

३–मद्दाहृत नगर का वर्तमान नाम महुआ है। यह नगर अर्बुदगिरि के सामीप्य में विद्यमान है।

माँगणी की। वीरनाग और जिनदेवी मुनिचन्द्रसूरि के भक्त तो थे ही, फिर भृगुकच्छ के श्रीसंघ के आग्रह एवं उद्बोधन पर उन्होंने प्राणों से प्यारे तेजस्वी पुत्र पूर्णचन्द्र को आचार्य श्री के चरणों में समर्पित कर दिया। भृगुकच्छ के श्री संघ ने वीरनाग एवं जिनदेवी के भरण-पोषण, रहने आदि का समुचित प्रबन्ध संघ की ओर से कर दिया।

पूर्णचन्द्र को दीक्षा, उनका विद्याध्ययन और सूरिपद

श्रीमद् मुनिचन्द्रसूरि ने भृगुकच्छनगर में ही वि० सं० ११५३ में पूर्णचन्द्र को उसके माता-पिता की आज्ञा लेकर शुभ मुहूर्त में दीक्षा दे दी और उसका नाम रामचन्द्र रक्खा। योग्य गुरु की सेवा में रहकर मुनि रामचन्द्र ने खूब विद्याभ्यास किया। कुशाग्रबुद्धि होने से वे थोड़े वर्षों में ही अनेक विषयों में पारंगत एवं संस्कृत, प्राकृत के उद्भट विद्वान् हो गये। श्रीमद् मुनिचन्द्रसूरि के समस्त शिष्यों में वे अग्रणी गिने जाने लगे। मुनि रामचन्द्र जैसे विद्वान् थे, वैसे उच्च कोटि के आचारवान् साधु भी थे। इनकी तर्कशक्ति बड़ी प्रबल एवं अद्वितीय थी। इनके समय में धर्मवादों का बड़ा जोर था। प्रसिद्ध नगरों में आये दिन धर्मवाद होते ही रहते थे। मुनि रामचन्द्र भी धर्मवादों में भाग लेने लगे और अन्य मत एवं धर्मों के वादी आ-आकर इनसे वाद करने लगे। फलस्वरूप इनको दूर-दूर तक विहार करना पड़ता था। राजस्थान, मालवा, गूर्जर, काठियावाड़, भृगुकच्छ, पंजाब, काश्मीर, दक्षिणभारत इनकी विहार-भूमि रही और इन्होंने अलग-अलग प्रसिद्ध नगरों में अलग-अलग वादियों को परास्त किया और अपनी कीर्त्ति फैलाई। इनकी कीर्त्ति, विद्वत्ता, प्रखर वादनिपुणता से मुग्ध होकर श्रीमद् मुनिचन्द्रसूरि ने इनको वि० सं० ११७४ में आचार्यपदवी से विभूषित किया और देवसूरि नाम रक्खा। * कुछ प्रतिवादियों एवं वादस्थलों के नाम निम्नवत् हैं:—

वादी	नगर	वादी	नगर
१. ब्राह्मणपंडित	धवलकपुर	२. सागरपंडित	काश्मीर
३.	सत्यपुर	४. गुणचंद्र (दिगम्बर)	नागपुर
५. भागवत शिवभूति	चित्तौड़	६. गंगाधर	गोपगिरि
७. धरणीधर	धारानगरी	८. पद्माकरपंडित	पुष्करणी
९. कृष्णपंडित	भृगुकच्छ		

इन वादों के विषय अधिकतर शैव, अद्वैत, मोक्षादि होते थे। देवसूरि का एक मित्रमण्डल था, जो इनकी हर प्रकार की सहायता करता था। यह मित्रमण्डल वादकला में प्रवीण एवं विद्या में पारंगत विद्वानों का बना हुआ था।

मित्रमण्डली के नाम

१. विद्वान् विमलचन्द्र २. प्रभानिधान हरिश्चन्द्र ३. पंडित सोमचन्द्र
४. कुलभूषण पार्श्वचन्द्र ५. प्राज्ञ शान्तिचन्द्र ६. महायशस्वी अशोकचन्द्र

*'वेदमुनीशमिते ऽब्दे ११७४ देवगुरुर्जगदनुत्तरो ऽभ्युदितः' ॥७६॥ गुर्वावली पृ० ८.

सूरिपद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् इन्होंने धवलकपुर की ओर विहार किया और वहाँ उदय नामक सुश्रावक द्वारा बनवाई हुई सीमंधर-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। तत्पश्चात् अर्बुदगिरितीर्थ की यात्रा को निकले। इस समय श्रीमद् मुनिचन्द्रसूरि अधिक अस्वस्थ हो गये थे, अतः उनका अन्तिम समय निकट जानकर ये तुरन्त अणहिलपुर आये। वि० सं० ११७८ में श्रीमद् मुनिचन्द्रसूरि का स्वर्गवास हो गया और गच्छनायकत्व का भार आप पर और आपके गुरुभ्राता अजितदेवसूरि पर आ पड़ा।[१]

गच्छनायकपन की प्राप्ति

आप श्री जिस समय अणहिलपुरपत्तन में विराजमान थे, ठीक उन्हीं दिनों में देवबोधि नामक महान् पंडित एवं अजेय वादी वहाँ आया। उसने राजद्वार पर निम्न श्लोक लटकाया और उसका अर्थ मांगा। गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह बड़ा ही साहित्यप्रेमी सम्राट् था। उसकी विद्वत्सभा में गूर्जरभूमि के बड़े २ विद्वान् पंडित रहते थे। राजसभा में वाद और प्रतियोगितायें सदा चलती ही रहती थीं। ऐसी उन्नत एवं विश्रुत विद्वत् सभा में बड़े बड़े पंडित एवं वादी विद्यमान थे; परन्तु गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह की ऐसी विश्रुत विद्वत् सभा का कोई भी विद्वान् निम्न श्लोक का अर्थ नहीं लगा सका।

महान् विद्वान् देवबोधि का परास्त होना

'एकद्वित्रिचतुःपञ्च-षण्मेनकमनेनकाः । देवबोधे मयि क्रुद्धे, षण्मेनकमनेनकाः ॥

महाकवि श्रीपाल के द्वारा सम्राट् को मालूम हुआ कि प्रसिद्ध जैनाचार्य देवसूरि पत्तन में आये हुये हैं। सम्राट् ने देवसूरि को राज्य-सभा में निमंत्रित किया और उपरोक्त श्लोक का अर्थ बतलाने की प्रार्थना की[२]। देवसूरि ने अविलंब श्लोक का अर्थ कह बतलाया। राज्यसभा में देवसूरि की भूरी २ प्रशंसा हुई और देवबोधि नतमस्तक हुआ।

देवसूरि ने उपरोक्त श्लोकों का अर्थ इस प्रकार बतलायाः—

एक—प्रत्यक्ष प्रमाण के माननेवाले चार्वाक।

दो—प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणों के मानने वाले बौद्ध और वैशेषिक।

तीन—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन-प्रमाणों के माननेवाले सांख्य।

चार—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमान इन चार प्रमाणों के मानने वाले नैयायिक।

पांच—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान और अर्थापत्ति इन पांच प्रमाणों को मानने वाले प्रभाकर।

छः—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन छः प्रमाणों को मानने वाले मीमांसक।

श्रीमालज्ञातीय प्रसिद्ध नरवर महामात्य उदयन का तृतीय पुत्र बाहड़ था। इसने पत्तन में महावीरस्वामी का अति विशाल जिनालय बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा वादी देवसूरि ने की। प्रतिष्ठाकार्य करके आप नागपुर पधारे। नागपुर के राजा ने आपका महोत्सवपूर्वक नगर-प्रवेश करवाया। उसी समय सम्राट् सिद्धराज जयसिंह ने नागपुर के राजा पर आक्रमण किया और नागपुर को चारों ओर से घेर लिया। परन्तु सम्राट् को जब यह ज्ञात हुआ कि नगर में देवसूरि विराजमान हैं, घेरा उठाकर अणहिलपुर चला आया। तत्पश्चात् सम्राट् ने देवसूरि को पत्तन में

मंत्री बाहड़ द्वारा विनिर्मित जिनमंदिर की प्रतिष्ठा सम्राट् के हृदय में देवसूरि के प्रति अपार श्रद्धा का परिचय

१—'अष्टहयेशमिते ११७८ ऽब्दे विक्रमकालाद् दिवं गतो भगवान्' ।७२॥
'तस्मादभूदजितदेवगुरु ४२ र्गरीयान्, षाच्यस्ततः श्रुतनिधिर्जलधिर्गुणानाम् ।
श्री देवसूरिरपरश्च जगत्प्रसिद्धो, वादीश्वरो ऽस्त गुणचन्द्रमदो ऽपि बाल्ये' ॥७३॥ गुर्वावली पृ० ७-८.

२—प्र० च० में सम्राट् जयसिंह को अम्बिकादेवी ने स्वप्न में देवसूरि को राजसभा में निमंत्रित करने का आदेश दिया—लिखा है।

निमंत्रित किया और चातुर्मास वहीं करवाया और फिर नागपुर पर आक्रमण करके वहाँ के राजा को परास्त किया। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि सम्राट् सिद्धराज देवसूरि का कितना मान करता था।

कर्णाटकीय वादी चक्रवर्त्ती कुमुदचन्द्र को देवसूरि की प्रतिष्ठा से ईर्ष्या और गूर्जरसम्राट् की राज्यसभा में वाद होने का निश्चय, देवसूरि का जय और उनकी विशालता

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि वह वादों का युग था। आये दिन समस्त भारत के प्रसिद्ध नगरों में, राजधानियों में, राज्यसभाओं में भिन्न २ मतों, सम्प्रदायों, धर्मों के विद्वानों में भिन्न २ विषयों पर वाद होते रहते थे। उस समय जैनधर्म की दोनों प्रसिद्ध शाखा दिगम्बर और श्वेताम्बर में भी मतभेद चरमता को लाँघ गया था। कर्णावती के श्वेताम्बर-संघ के अत्याग्रह पर वि० सं० ११८० में देवसूरि का चातुर्मास भी कर्णावती में हुआ। उसी वर्ष दिगम्बराचार्य वादीचक्रवर्त्ती कुमुदचन्द्र का चातुर्मास भी कर्णावती में ही था। दोनों उच्च-कोटि के विद्वान्, तार्किक एवं अजेय वादी थे। कुमुदचन्द्र को देवसूरि की प्रतिष्ठा से ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उन्होंने कलहपूर्ण वातावरण उत्पन्न किया। अन्त में दोनों आचार्यों में वाद होने का निश्चय हुआ। इसके समाचार देवसूरि ने पत्तन के श्रीसंघ को भेजे। पत्तन के श्रीसंघ के आग्रह पर वाद अणहिलपुरपत्तन में गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह की विद्वत्-परिषद के समक्ष होने का निश्चय हुआ और कुमुदचन्द्र ने भी पत्तन में जाना स्वीकार कर लिया।

वि० सं० ११८१ वैशाख शु० १५ के दिन गूर्जरसम्राट् की विद्वत्मण्डली के समक्ष भारी जनमेदनी के बीच गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह की तत्त्वावधानता में वाद प्रारम्भ हुआ। वाद का विषय स्त्री-निर्वाण था। वाद का निर्णय देने में सहायता करने वाले सभासद् विद्वत्वर्य्य महर्षि, कलानिधान उत्साह, सागर और प्रज्ञाशाली राम थे। ये सभासद् अति चतुर, भाषाविशेषज्ञ एवं अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। वाद प्रारम्भ करने के पूर्व कुमुदचन्द्र ने सम्राट् की स्तुति की और स्तुति के अन्त में कहा कि सम्राट् का यश वर्णन करते हुये 'वाणी मुद्रित हो जाती है।' उपरोक्त चारों सभासदों को 'वाणी मुद्रित हो जाती है।' पद के प्रयोग पर कुमुदचन्द्र की ज्ञानन्यूनता प्रतीत हुई और उन्होंने सम्राट् से कहा, 'जहाँ वाणी मुद्रित हुई ऐसा दिगम्बराचार्य का कथन है, वहाँ पराजय है और जहाँ श्वेताम्बराचार्य का स्त्रीनिर्वाण ज्ञानीनिर्वाण है ऐसा कथन है, वहाँ अवश्य जय है।'

देवसूरि के पक्ष में प्राग्वाटवंशीय प्रसिद्ध महाकवि श्रीपाल प्रमुख सहायक था तथा महापंडित भानु एवं उदीयमान् प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य थे। उधर कुमुदचन्द्र के सहायक तीन केसव थे। ज्ञान के क्षेत्र में देवसूरि ने अनेक ज्ञानिनी, विदुषी, आत्माढ्या, सती स्त्रियों के उदाहरण देकर ऐतिहासिक ढंग से उनका प्रकर्ष दिखाते हुये सिद्ध किया कि स्त्रियाँ ज्ञान में पुरुषों से कम नहीं हैं। जब वे ज्ञान में कम नहीं पाई जाती हैं तो उसी ज्ञान के आधार पर फलने वाले प्रत्येक कर्म की फलप्राप्ति में वे पीछे या वंचिता कैसे रह सकती हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक प्रमाणों की उपस्थिति पर कुमुदचन्द्र विरोध में निस्तेज पड़ गये और सभा के मध्य उनको स्वीकार करना पड़ा कि देवसूरि महान् विद्वान् है। देवसूरि का जय-जयकार हुआ और सम्राट् ने उनको 'वादी' की पदवी से विभूषित करके एक लक्ष मुद्रायें भेंट की। परन्तु निःस्पृह एवं निर्ग्रन्थ आचार्य ने साध्वाचार का महत्त्व समझाते हुये उक्त मुद्रायें लेने से अस्वीकार किया तथा राजा से कहा कि मेरे बन्धु कुमुदचन्द्र का उनके निग्रह एवं पराजय पर कोई तिरस्कार नहीं करें।

इस प्रकार यह प्रचंड वाद समाप्त हुआ। विशाल समारोह के साथ वादी देवसूरि अपनी वसति में पधारे। वादी देवसूरि ने अपने प्रतिवादी के साथ जो सद्व्यवहार एवं भद्रव्यवहार किया, उससे उनकी निरभिमानता, सरलता एवं क्षमाशीलता का परिचय तो मिलता ही है, लेकिन ऐसे अवसरों पर ऐसी निर्ग्रंथता एवं निस्पृहता बहुत कम देखने में आई है।

वादी देवसूरि जैसे शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे, वैसे ही मंत्र एवं तंत्रों के भी अभिज्ञाता थे। परास्त होकर कुमुदचन्द्र ने अपनी कुटिलता नहीं छोड़ी। मंत्रादि के प्रयोग करके वे श्वेताम्बर साधुओं को कष्ट पहुँचाने लगे अन्त में उनको शांत नहीं होता हुआ देखकर वादी देवसूरि ने अपनी अद्भुत मंत्र-शक्ति का उनके ऊपर प्रयोग किया। वे तुरन्त ही ठिकाने आगये और पत्तन छोड़ कर अन्यत्र चले गये। इस प्रचण्डवाद में जय प्राप्त करने से वादी देवसूरि का यश एवं गौरव अतिशय बढ़ा। सिद्धान्त-महोदधि श्रीमद् चन्द्रसूरि ने अत्यन्त प्रसन्न होकर वादी देवसूरि को जिनशासन की धुरा अर्पित की। सम्राट् ने उक्त लक्ष मुद्रा से आदिनाथजिनालय विनिर्मित करवाया। वादी देवसूरि और अन्य तीन जैनाचार्यों ने बड़ी धूम-धाम से उसमें आदिनाथबिंब को वि० सं० ११८३ वैशाख शु० १२ को प्रतिष्ठित किया।

देवसूरि को युग-प्रधानपद की प्राप्ति

वि० की दशवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दियों में श्वेताम्बरचैत्यवासी यतिवर्ग में शिथिलाचार अत्यन्त बढ़ गया था। यह यतिवर्ग मन्दिरों में रहता था और मन्दिरों की आय, जमीन, जागीर का उपभोग अपनी इच्छानुसार बौद्धमत के मठों के समान करने लग गया था। जैन-आचार के विरुद्ध मन्दिरों में वर्त्तन चलता था। भक्तों को दर्शनों में भी बाधायें उत्पन्न होती थीं। इस प्रकार धीरे २ जैनधर्म के सच्चे उपासकों को भय एवं शंका उत्पन्न होने लगी कि एक दिन जैनधर्म की अपदशा बौद्धधर्म के समान होगी और यह भारतभूमि से उखड़ जायगा। शिथिलाचारी चैत्यालयवासी यतिवर्ग के विरोध में बारहवीं शताब्दी के अन्त में एक शुद्धाचारी साधुदल उठ खड़ा हुआ। इस साधुदल में अग्रगण्य साधुओं में श्रीमद् देवसूरि भी थे। ये ठेट से सुसंस्कृत, शुद्धाचारप्रिय साधु थे। इनका साधुसमुदाय भी वैसा ही शुद्धाचारी था। शिथिलाचारी यतिवर्ग का प्रभाव कम करने में, उनका विरोध करने में, उनका शिथिलाचार नष्ट करने में इन्होंने बड़ी तत्परता से प्रयत्न किया। परन्तु जैनसमाज पर दोनों का प्रभाव बराबर बराबर था। फल यह हुआ कि दोनों वर्गों में विरोध जोर पकड़ गया। आज भी हम देखते हैं कि ऐसे अनेक जैन मन्दिर हैं, जो शिथिलाचारी यतिवर्ग के अधिकार में हैं और उनकी आय को वे अपनी इच्छानुसार खर्चते हैं।

सद्विधि एवं शुद्धाचार का प्रवर्तन

मरुधर-प्रान्त के अन्तर्गत जालोर, जिसको ग्रन्थों में जाबालीपुर कहा गया है एक ऐतिहासिक नगर है। यह नगर कंचनगिरि की तलहटी में बसा हुआ है। कंचनगिरि पर एक सुदृढ़ किला बना हुआ है। इस क़िले में कुमारपालविहार नामक एक जैन चैत्यालय है। इसको गूर्जरसम्राट् कुमारपाल ने वि० सं० १२२१ में विनिर्मित करवा कर वादी देवसूरि के पक्ष को सद्विधि की प्रवृत्ति करने के लिये समर्पित किया था। इस प्रकार से बनाये हुये चैत्यालय विधिचैत्य कहे जाते थे, जहाँ प्रत्येक को दर्शन-पूजन का लाभ स्वतंत्रतापूर्वक प्राप्त होता था।

सम्राट् कुमारपाल का जालोर की कंचनगिरि पर कुमारपाल-विहार का बनवाना और उसको देवसूरि के पक्ष को अर्पित करना

इस प्रकार वादी देवसूरि अपनी समस्त आयुपर्यन्त धर्म की सेवा करते रहे। पाखंडियों का दमन किया, जिनशासन की शोभा बढ़ायी। 'स्याद्वादरत्नाकर' नामक प्रसिद्ध एवं अद्भुत ग्रंथ लिख कर जैन साहित्य का गौरव बढ़ाया। इनका स्वर्गारोहण वि० सं० १२२६ श्रावण शु० ७ गुरुवार को हुआ। जैन समाज अपनी प्रतिष्ठा एवं गौरव ऐसे महाप्रभावक, युग-प्रधान आचार्यों को प्राप्त करके ही आज तक रख सका है इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। इनका जैसा प्रभाव सम्राट् सिद्धराज की राज्य-सभा में था, वैसा ही सम्राट् कुमारपाल की सभा में रहा। श्री 'सिद्ध-हेम-शब्दानुशासन' के कर्त्ता हेमचन्द्राचार्य ने कहा है कि जो देवसूरि रूपी सूर्य ने कुमुदचन्द्र के प्रकाश को नहीं हरा होता तो संसार में कोई भी श्वेताम्बरसाधु कटि पर वस्त्रधारण नहीं कर सकता। इससे सहज सिद्ध है कि श्रीमद् वादी देवसूरि एक महान् विद्वान्, तार्किक, शुद्धाचारी, युगप्रभावक आचार्य थे।*

वादी देवसूरि की साहित्यिक सेवा और स्वर्गारोहण

बृहद्गच्छीय श्रीमद् आर्यरक्षितसूरिपट्टधर श्रीमद् जयसिंहसूरिपट्टनायक श्रीमद् धर्मघोषसूरि

दीक्षा वि० सं० १२२६. स्वर्गवास वि० सं० १२६८

राजस्थानान्तर्गत मरुधरप्रान्त के महावपुर नामक ग्राम में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि श्री चन्द्र नामक एक प्रसिद्ध जैन व्यापारी रहता था। उसकी स्त्री का नाम राजलदेवी था। राजलदेवी वस्तुतः राजुल या राजिमती के सदृश ही धर्मपरायणा स्त्री थी। राजलदेवी की कुक्षी से वि० सं० १२०८ में उत्तम लक्षणयुक्त धनकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वि० सं० १२२६ में श्रीमद् जयसिंहसूरि का महावपुर में पदार्पण हुआ। वैराग्यपूर्ण धर्मदेशना सुन पर धनकुमार ने दीक्षा लेने का संकल्प कर लिया और अपने संकल्प से अपने माता-पिता को परिचय करवाया। धनकुमार को बहुत समझाया, लेकिन उसने एक की नहीं सुनी। अंत में महामहोत्सवपूर्वक श्रीमद् जयसिंहसूरि ने सौलह वर्ष की वय में वि० सं० १२२६ में धनकुमार को दीक्षा दी और धर्मघोषमुनि उसका नाम रक्खा।

वंश-परिचय और दीक्षा-महोत्सव

दीक्षित हो जाने पर धर्मघोषमुनि विद्याभ्यास में लग गये। चार वर्ष के अल्प समय में ही आपने प्रसिद्ध ग्रंथों का अभ्यास कर लिया और मंत्र-विद्या में अत्यन्त निपुण बन गये। आपके विद्याप्रेम, मंत्रज्ञान और शास्त्रज्ञान को देख कर श्रीमद् जयसिंहसूरि अत्यन्त प्रसन्न हुये और वि० सं० १२३० में आपको उपाध्यायपद प्रदान किया। अनुक्रम से विहार करते २ वि० सं० १२३४ में श्रीमद् जयसिंहसूरि शाकंभरी में पधारे। नगर में महामहोत्सवपूर्वक आपका प्रवेश हुआ। श्रीमद् उपाध्याय धर्मघोषमुनि भी आपके साथ में थे। युगप्रधान गुरुराज का नगर में आगमन श्रवण कर शाकंभरीसामंत प्रथमराज की राणी भी गुरु के दर्शनार्थ उपस्थित हुई। धर्मघोषमुनि भी वहीं उपस्थित थे।

आपका शाकंभरी के सामंत को जैन बनाना और आचार्यपद की प्राप्ति

*प्र० च० में देवसूरि-प्रबन्ध। जै० सा० सं० इति० पृ० २४७-८(३४३-५)। प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लें० ३५१।

सामंत ने उप-आचार्य श्री की कीर्त्ति जब सुनी, वह राणी सहित गुरु और उपाध्याय महाराज के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। दोनों ने गुरुमहाराज और उपाध्याय श्री को भक्ति-भाव से वंदन किया। गुरु का उपदेश श्रवण करके सामंत ने शिकार नहीं खेलने की, मांस और मदिरा सेवन नहीं करने की प्रतिज्ञा ली और जैन-धर्म अंगीकृत किया। गुरु श्रीमद् जयसिंहसूरि ने उपाध्याय धर्मघोषमुनि को सर्व प्रकार से योग्य जान कर शाकंभरी में ही आचार्य-पद देने का विचार किया। वि० सं० १२३४ में उपाध्याय श्री को आचार्य-पद महामहोत्सवपूर्वक प्रदान किया गया। इस महोत्सव में सामंत प्रथमराज ने भी एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रायें व्यय की थीं।

आचार्य धर्मघोषसूरि का विहार और धर्म की उन्नति

श्रीमद् जयसिंहसूरि ने आचार्य धर्मघोषसूरि को सब प्रकार से योग्य और समर्थ समझ कर अलग विहार करने की आज्ञा देदी। आचार्य धर्मघोषसूरि ग्राम-ग्राम और नगरों में भ्रमण और चातुर्मास करके जैनधर्म की प्रतिष्ठा और गौरव को बढ़ाने लगे। आपकी अद्भुत मंत्र एवं विद्याशक्ति से लोग आपके प्रति अधिक आकर्षित होकर आपकी धर्मदेशना का लाभ लेने लगे। आपने अनेक स्थलों में जैन बनाये और अहिंसामय जैन-धर्म का प्रचार किया।

डोणग्राम में चातुर्मास और स्वर्गवास

वि० सं० १२६८ में श्रीमद् जयसिंहसूरि द्वारा पारकर-प्रदेशान्तर्गत पीलुड़ा ग्राम में प्रतिबोधित लालणजी ठाकुर द्वारा निमंत्रित होकर श्रीमद् आचार्य धर्मघोषसूरिजी ने चातुर्मास डोणग्राम में किया। आचार्य अपना उनसठ वर्ष का आयु पूर्ण करके डोणग्राम में स्वर्ग को पधारे। आपके पट्ट पर श्रीमद् महेन्द्रसूरि विराजमान हुये। धर्मघोषसूरि महाप्रभावक आचार्य हुये हैं। वि० सं० १२६३ में इनका बनाया हुआ 'शतपदी' नामक ग्रंथ अति प्रसिद्ध ग्रंथ है। ये प्रसिद्ध वादी भी थे। दिगम्बराचार्य वीरचन्द्रसूरि ने इनसे परास्त होकर श्वेताम्बरमत स्वीकार किया था।

'धर्मघोष' नाम के अनेक आचार्य भिन्न २ गच्छों में हो गये हैं। एक ही नाम के आचार्यों के वृत्तों के पठन-पाठन में पाठकों को भ्रम हो जाना अति सम्भव है। सुविधा की दृष्टि से उनके नाम संवत्-क्रम से और गच्छवार नीचे लिख देना ठीक समझता हूँ।

जै० सा० सं० इति० के आधार पर:—

१. पिप्पलगच्छसंस्थापक शांतिसूरिपट्टधर विजयसिंह—देवभद्र—धर्मघोष। इस गच्छ की स्थापना विक्रमी शताब्दी बारह के उत्तरार्ध में हुई। टि० २६६.
२. वि० सं० १२५४ में जालिहटगच्छ के [बालचन्द्र-गुणभद्र-सर्वानंद-धर्मघोषशिष्य] देवसूरि ने प्राकृत में 'पद्मप्रभसूरि' की रचना की ४६२
३. वि० सं० १२६० में वडगच्छीय (सर्वदेवसूरि-जयसिंह-चन्द्रप्रभ-धर्मघोष-शीलगुणसूरि-मानतुंगसूरि शि०) मलयप्रभ ने 'सिद्ध-जयंती' पर वृत्ति रची। ४६४
४. वि० सं० १२६१ में चन्द्रगच्छीय चंद्रप्रभसूरि-धर्मघोष-चन्द्रेश्वर-शिवप्रभसूरिशिष्य तिलकाचार्य ने 'प्रत्येकबुध-चरित्र' लिखा ४६५
५. सं० १३२० के आसपास तपागच्छीय धर्मघोषसूरि के सदुपदेश से अवन्तीवासी उपकेशज्ञातीय शाह देद पुत्र पेथड़ ने ८० स्थानों में जिनमंदिर बनवाये। ५८०, ५८१

श्रीमद् तपगच्छनायक विजयसिंहसूरि-पट्टालंकार श्रीमद् सोमप्रभसूरि

विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी

सुधर्मा स्वामी से बयालीसवें पट्टधर आचार्य श्रीमद्विजयसिंहसूरि हुये हैं। इनके पट्टधर श्रीमद् सोमप्रभसूरि और मणिरत्नसूरि हुये। सोमप्रभसूरि अधिक प्रभावक एवं प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनका जन्म प्राग्वाटवंश में हुआ था। इनके पिता का नाम सर्वदेव और प्रपिता का नाम जिनदेव था। जिनदेव किसी राजा का मंत्री था। सोमप्रभसूरि ने अल्पायु में ही दीक्षा ग्रहण की थी। ये कुशाग्र-बुद्धि एवं कठिन परिश्रमी थे। थोड़े वर्षों में ही ये काव्य, छंद, अलंकार, व्याकरण के उद्भट विद्वान् बन गये तथा संस्कृत-प्राकृत एवं मागधी भाषाओं पर इनका पूरा २ अधिकार हो गया। गुरु विजयसिंहसूरि ने इनको सर्व प्रकार से योग्य समझकर अपना प्रमुख शिष्य बनाया और तदनुसार ये विजयसिंहसूरि के स्वर्गगमन के पश्चात् तेतालीसवें आचार्य हुये।

कुल-परिचय और गुरुवंश

श्रीमद् वादी देवसूरि और प्रसिद्ध महान् विद्वान् कलिकाल-सर्वज्ञ, गूर्जरसम्राट् कुमारपाल-प्रतिबोधक श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य इनके अभिभावुक थे। गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंहदेव, कुमारपाल, अजयदेव, मूलराज की राज्यसभाओं में इनका सतत् मान रहा। कवि सिद्धपाल तथा आचार्य अजितदेव और विजयसिंहसूरि जैसे प्रभावक एवं तेजस्वी गुरु विद्वानों का इनको निरन्तर संग प्राप्त रहा। इनके बनाये हुये प्रसिद्ध ग्रन्थ चार हैं।

समकालीन पुरुष और इनकी प्रतिष्ठा

(१) श्रीसुमतिनाथ-चरित्र—यह ग्रन्थ प्राकृत-भाषा में ९८२१ श्लोकों में रचा गया है। ग्रन्थ में उत्तमोत्तम रोचक एवं उपदेशक कथाओं की रचना है।

(२) सिंदुर-प्रकर—इसको 'सोमशतक' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें सौ श्लोकों की रचना है। इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने अहिंसा, सत्य, शील, सौजन्य, क्षमा, दया आदि दिव्य विषयों पर सरल एवं सुन्दर संस्कृत भाषा में बड़े रोचक ढंग से लिखा है।

१-पं० कल्याणविजयजीरचित श्री तपागच्छपट्टावली। पृ० १५१

२-श्री कुमारपाल-प्रतिबोध की प्रस्तावना (गुजराती) पृ० ५

'तेस्वादिमाद् विजयसिंहगुरु ४३ र्वभासे, विद्यातपोभिरभितः प्रथमो ऽथ तस्मात्।
सोमप्रभो ४४ मुनिपतिर्विदितः शतार्थीत्यासीद् गुणी च मणिरत्नगुरुर्द्वितीयः' ॥७७॥ गुर्वावली पृ० ८

'यस्य प्रथमः शिष्यः शतार्थितया विख्यातः ॥ श्री सोमप्रभसूरिः, द्वितीयस्तु मणिरत्नसूरिः' ॥१॥

४३—'तेआलत्ति, श्री विजयसिंहसूरिपट्टे त्रयश्चत्वारिंशत्तमौ श्री सोमप्रभसूरि, श्री मणिरत्नसूरि' ॥
पट्टावलीसमुच्चय. पृ० ५६ [तपागच्छ-पट्टावली]

सोमप्रभसूरि भगवान् महावीर से चौवालीसवें और सुधर्मास्वामि से तेतालीसवें पट्टधर हुये हैं।

सोमप्रभसूरि संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के प्रखर विद्वान् थे—इसकी सिद्धि 'कुमारपाल-प्रतिबोध' नामक ग्रंथ के अवलोकन से होती है। यह ग्रंथ प्राकृत में है, परन्तु अन्त की कुछ कथा-कहानियाँ संस्कृत एवं अपभ्रंश में हैं।
जै० स० प्रकाश वर्ष ७ दीपोत्सवी अंक पृ० १४०

(३) शतार्थकाव्य—यह अद्भुत संस्कृतग्रन्थ एक श्लोक का है। श्लोक वसंततिलकावृत्त है। इस श्लोक के सौ अर्थ किये गये हैं। अतः ग्रन्थ शतार्थ-काव्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ से सोमप्रभसूरि के अगाध संस्कृतज्ञान का तथा प्रखर कवित्व-शक्ति का विशुद्ध परिचय मिलता है। जैन एवं भारतीय संस्कृत-साहित्य का यह ग्रन्थ अजोड़ एवं अमूल्य है तथा बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में भारत की साहित्यिक उन्नति एवं संस्कृतभाषा के गौरव का ज्वलंत उदाहरण है। आपने स्वयं ने उक्त ग्रन्थ की टीका लिखी है और चौबीश तीर्थङ्करों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा नारदादि वैदिक पुरुषों, अपने समकालीन पुरुषवर सम्राट् सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, अजयपाल, मूलराज तथा आचार्य वादी देवसूरि, हेमचन्द्रसूरि और महाकवि सिद्धपाल और अपने स्वयं के ऊपर भिन्न २ प्रकार से अर्थों को घटित किया है।

(४) कुमारपाल-प्रतिबोध—इस ग्रंथ की रचना आपने सम्राट् कुमारपाल के स्वर्गारोहण के नव या बारह वर्ष पश्चात् वि० सं० १२४१ में पत्तन में महाकवि सिद्धपाल की वसति में रहकर ८८०० श्लोकों में की थी। प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य के शिष्य महेन्द्रसूरि तथा वर्धमानगणि और गुणचन्द्रगणि ने कुमारपाल-प्रतिबोध का श्रवण किया था। इस ग्रंथ में उन उपदेशात्मक धार्मिक कथाओं का संग्रह है, जिनके श्रवण करने से पुरुष सद्मार्ग में प्रवृत्त होता है। प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य ने सम्राट् कुमारपाल को कैसे २ उपदेश देकर जैन बनाया—की रूप रेखा बड़ी उत्तम, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक और पौराणिक शैली से दी गई है।

श्रीमद् सोमप्रभसूरि व्याख्यान देने में भी बड़े प्रवीण थे। साहित्य की तथा श्रीसंघ की इस प्रकार सेवा करते हुये आपका स्वर्गवास मरुधरप्रान्त में आई हुई अति प्राचीन एवं ऐतिहासिक नगरी भिन्नमाल में हुआ।*

कविकुलशिरोमणि श्रीमन्त षड्भाषाकविचक्रवर्त्ती श्रीपाल, महाकवि सिद्धपाल, विजयपाल तथा श्रीपाल के गुणाढ्य भ्राता शोभित

विक्रम शताब्दी दशवीं—ग्यारहवीं—बारहवीं

विक्रम की दशवीं शताब्दी से लगाकर चौदहवीं शताब्दी तक संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्य की प्रखर उन्नति हुई और यह काल साहित्योन्नति का मध्ययुगीय स्वर्णकाल कहलाता है। धाराधीप और पत्तनपति सदा सरस्वती के परम भक्त, कवि एवं विद्वानों के पोषक और स्वयं विद्याभ्यासी थे। जैसे वे महाप्रतापी, रणकुशल योद्धा थे, वैसे ही वे तत्त्वजिज्ञासु एवं मुमुक्षु भी थे। अतः उनकी राज्य-सभाओं में सदा कवि एवं विद्वानों का सम्मान और गौरव रहा। महाप्रतापी गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह भी जैसा समर्थ शासक था, वैसा ही परम सरस्वती भक्त एवं विद्वानों का आश्रयदाता भी था। उसकी राज्य-सभा में भी अनेक प्रसिद्ध विद्वान् रहते थे तथा दूर-दूर से विद्वान् आते रहते थे। सम्राट् सिद्धराज

गूर्जरसम्राटों का साहित्य-प्रेम और महाकवि श्रीपाल की प्रतिष्ठा

*१—जै० सा० सं० इ० पृ० २८३, २८४. २—कु० प्रति० की प्रस्तावना।

की राज्य-सभा के प्रसिद्ध विद्वानों में प्राग्वाटवंशावतंस श्रीलक्ष्मणपुत्र श्रीमंत श्रीपाल महाकवि भी था, जो सम्राट् के विद्वद्-मण्डल का प्रधान सभ्य एवं सभापति था। स्वयं सम्राट् का यह बाल-मित्र था और सम्राट् इसको 'भ्राता' कह कर सम्बोधित करते थे। इसकी प्रखर कवित्व-शक्ति से मुग्ध होकर ही सम्राट् ने महाकवि श्रीपाल को कविराज अर्थात् कविचक्रवर्त्ती जैसी उच्च पदवी से विभूषित किया था। श्रीपाल पर सरस्वती एवं लक्ष्मी दोनों परस्पर विरोधी देवियों की एक-सी अपार प्रीति थी, जो अन्यत्र किसी युग में बहुत कम सरस्वती के भक्तों पर देखने में आई है। श्रीपाल का जैसा विद्वानों एवं सम्राट् की राज्य-सभा में मान था, समाज में भी वैसा ही सम्मान था। पत्तन का श्रीसंघ उस समय महान् यशस्वी एवं प्रतापवंत था। यह महाकवि ऐसे पत्तन के श्रीसंघ का प्रमुख नेता था। वादी देवसूरि और कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य का यह परमभक्त था और उनकी भी इसके प्रति अपार प्रीति ही नहीं, आदर-दृष्टि थी। सम्राट् साहित्यसम्बन्धी कोई कार्य महाकवि श्रीपाल की सम्मति बिना नहीं करता था। बाहर से आने वाले विद्वानों का सम्राट् की ओर से आदर-सत्कार करने का उत्तरदायित्व श्रीपाल

१—यशश्चन्द्रकृत 'मुद्रित कुमुदचन्द्रनाटक' में गुर्जरेश्वर की राजपरिषद का वर्णन देखिये।

२—'प्रभाचन्द्रसूरिकृत 'श्री प्रभावकचरित्र' में देखो 'श्री देवसूरिचरित्र' और 'हेमसूरिचरित्र'।

३—'अये कथं सिद्धभूपालबालमित्रं, सूत्रंसुकविताया: कविराजविरुदकमलनाल, श्रीपालमालोकयाम:' ?।

मुद्रितकुमुदचन्द्रप्रकरणम् पृ० ३६

४—अर्बुदाचलस्थ विमलवसति के रंग-मण्डप के एक स्तंभ पर एक मूर्ति का आकार बना हुआ है। इस मूर्ति के नीचे ८या१० पंक्तियों में एक लेख उत्कीर्णित है। जिसमें श्रीपाल कवि का वर्णन है। लेख की केवल चार पंक्तियों ही पढ़ने में आ सकी हैं।

'प्राग्वाटान्वयवंशमौक्तिकमणेः श्रीलक्ष्म (*)णस्मात्मजः, श्रीश्रीपालकवीन्द्रबन्धुरमलक्ष्मा (*) शालतामण्डपः।

श्रीनाभेयजिनांह्रिपद्मम (*) धुपस्त्यागाद्भुतैः शोभितः श्रीमान् शोभित (*) एष सद्यविभवः (!) स्वर्णोकमासे दिवान्' ॥१॥

प्रा० जै० ले० सं० ले० २७१.

उक्त श्लोक के आधार पर और इसके विमलवसति में होने के कारण मु०श्री० जिनविजयजी 'द्रौपदी-स्वयंवरम्' नामक नाटक की प्रस्तावना के पृ० २२ पर श्रीपाल को विमलशाह के वंशज होने की संभावना भी करते हैं, परन्तु मेरे निकट यह इतने पर से तो अमान्य है।

५—'प्राग्वाटान्वयसागरेन्दुरसमप्रज्ञः कृतज्ञः क्षमी, वाग्मी सूक्तिसुधानिधानमजनि श्रीपालनामापुमान्।
यं लोकोत्तरकाव्यरंजितमतिः साहित्यविद्यारतिः, श्री सिद्धाधिपतिः 'कवीन्द्र इति च भ्राते' ति च व्याहरत्' ॥

सोमप्रभसूरिकृत 'श्री सुमतिनाथचरित्र' एवं 'कुमारपाल-प्रतिबोध' ग्रंथों के अन्त में दी गई प्रशस्तियों में।

६—वादी देवसूरि के गुरुभ्राता आचार्य विजयसिंह के शिष्य हेमचन्द्र ने 'नाभेय-नेमि-द्विसन्धान' एक प्रबन्धकाव्य लिखा है। उसके अन्तिम पद्य से ऐसा प्रतीत होता है कि उस ग्रन्थ का संशोधन श्रीपाल ने किया था। उस पद्य में श्रीपाल को 'कविचक्रवर्त्ती' एवं 'प्रतिपन्नबन्धु' के विशेषणों से स्पष्ट अलंकृत किया गया है।

'एकाहनिष्पन्नमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः। श्रीपालनामा कविचक्रवर्त्ती सुधीरिमं शोधितवान् प्रबन्धम्' ॥

जैनहितैषी, भाग १२, सं० ६-१०

['सूक्तिमुक्तावली और सोमप्रभाचार्य' नामक जिनविजयजी का लेख]

७—'एकाहनि [ष्प]न्नमहाप्र-धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः। श्रीपालनामा कविचक्रवर्त्ती प्रशस्तिमेतामकरोत्प्रशस्ताम्' ॥३०॥

H. I. G. pt. I [वड़नगर-प्रशस्ति] No. 147

१. 'द्रौपदीस्वयंवरम्' की प्रस्तावना में मुनि जिनविजयजी ने श्रीपाल के मान एवं गौरव के उपर अच्छा लिखा है, पढ़ने योग्य है।

२. 'प्रभावक-चरित्र' में हेमचन्द्र-प्रबन्ध में श्लोक १८२-२०६ देखिये।

पर ही अधिक था। राज्य-सभा में होने वाली साहित्यिक चर्चाओं में, विवादों में श्रीपाल अधिकतर मध्यस्थ का कार्य करता था। वह छः भाषाओं का उद्भट विद्वान् था।

अभिमानी देवबोधि और महाकवि श्रीपाल

देवबोधि नामक भागवत-सम्प्रदाय का उस समय एक महाविद्वान् था। वह जैसा महान् विद्वान् था, वैसा ही महान् अभिमानी था। एक समय वह अणहिलपुरपत्तन में आया। गूर्जरसम्राट् सिद्धराज के निमन्त्रण पर भी उसने राजसभा में जाने से अस्वीकार कर दिया। सम्राट् सिद्धराज और महाकवि श्रीपाल दोनों महाविद्वान् देवबोधि से मिलने गये। देवबोधि ने सम्राट् का यथोचित सत्कार किया और महाकवि श्रीपाल की ओर देखकर पूछा कि यह सभा के अयोग्य अन्धा पुरुष कौन है ? इस पर सम्राट् सिद्धराज ने महिमायुक्त शब्दों में महाकवि श्रीपाल का परिचय दिया कि एक ही दिन में जिस प्रतिभाशाली ने उत्तम प्रबन्ध तैयार किया है और जो कविराज के नाम से विख्यात है वह यह श्रीपाल नामक श्रीमान् गृहस्थ है। इसने दुर्लभसरोवर या सहस्रलिङ्गसरोवर और रुद्रमहालय जैसे प्रसिद्ध स्थानों की अवर्णनीय रसयुक्त काव्य-प्रशस्तियाँ की हैं। 'वैरोचन-पराजय' नामक महाप्रबन्ध का यह कर्त्ता है। सम्राट् के मुख से यह सुनकर देवबोधि शर्माया। तत्पश्चात् देवबोधि और श्रीपाल में साहित्यिक चर्चायें और समस्या पूर्त्तियें हुई। देवबोधि ने महाकवि श्रीपाल की दी हुई कठिन समस्या की पूर्त्ति कर सम्राट् पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। परन्तु महाकवि श्रीपाल को देवबोधि की निस्पृहता में शंका उत्पन्न हुई। दोनों में वैमनस्य बढ़ता ही गया। देवबोधि मदिरापान करता था। इसका जब पता सम्राट् और विद्वानों को मिल गया तो देवबोधि का राजसभा में प्रभाव बहुत ही कम पड़ गया। 'सिद्धसारस्वत' नामक उसमें एक अद्भुत गुण था, जो अन्य विद्वानों में मिलना कठिन ही नहीं, असम्भव भी था। प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य इसी गुण के कारण देवबोधि का बड़ा सम्मान करते थे। एक दिन हेमचन्द्राचार्य ने सुअवसर देखकर श्रीपाल महाकवि और देवबोधि में मेल करवाया। देवबोधि के हृदय पर श्रीपाल महाकवि की सरलता एवं सात्विकता का गहरा प्रभाव पड़ा और वह अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगा।

सम्राट् की राज्य-सभा में श्वेताम्बर और दिगम्बर शाखाओं में प्रचंड वाद और श्रीपाल का उसमें यशस्वी भाग

विक्रम की दसवीं, ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दियों में जैनधर्म की दोनों प्रसिद्ध शाखा श्वेताम्बर एवं दिगम्बर में भारी कलहपूर्ण वातावरण रहा है। बढ़ते २ वातावरण इतना कलुषित हो गया कि एक शाखा दूसरी शाखा को सर्वथा उखाड़ने का प्रयत्न करने लगी। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अन्त में श्री वादी देवसूरि एक श्वेताम्बराचार्य हो गये हैं। ये अनेक भाषाओं के प्रखर पंडित एवं वाद में अजेय विद्वान् थे। इसी समय में दिगम्बर सम्प्रदाय में श्रीमद् कुमुदचन्द्र नाम के एक महाविद्वान् आचार्य थे। ये अधिकतर दक्षिण में विहार करते थे। कर्णाटक का राजा इनका भक्त था। इन्होंने अनेक वादों में जय प्राप्त की थीं। ये वादी चक्रवर्त्ती कहलाते थे। वि० सं० ११८० में उपरोक्त दोनों आचार्यों का चातुर्मास कर्णाटक देश की

देवबोध—"गुरुः स्वलितमापन्नः, एकादिविकलोऽपि सन्। चक्षुर्द्वयविहीनस्य युक्ता ते कविराजता" ॥१॥

श्रीपाल—"कुरंगः किं भृंगो मरकतमणिः किं किमशनिः"

देवबोधि—"चिरं चित्तोद्याने चरसि च मुखाब्जं पिबसि च क्षणादेणाक्षीणां विषयविषमुद्रां हरसि च।
नृपत्वं मानाद्रिं दलयसि च किं कौतुककरः। कुरंग किं भृंगो मरकतमणिः किं किमशनि" ॥१॥

राजधानी कर्णावती में था। दोनों आचार्यों में वाद होना निश्चित हुआ। गूर्जरसम्राट् सिद्धराज एवं अणहिलपुर-पत्तन के श्रीसंघ के आग्रह पर गूर्जरसम्राट् की राजसभा जहाँ भारत के प्रखर एवं सब धर्मों के विद्वान् सदा रहते थे, वाद करने का स्थान चुनी गई। महाकवि श्रीपाल का प्रयत्न इसमें अधिक था। दोनों सम्प्रदायों में यह प्रतिज्ञा रही कि अगर दिगम्बराचार्य हार जायेंगे तो एक चोर के समान उनका तिरस्कार करके पत्तनपुर के बाहर निकाल दिया जायगा और श्वेताम्बराचार्य हारेंगे तो श्वेताम्बरमत का उच्छेद कर दिगम्बरमत की स्थापना की जायगी। वि० सं० ११८१ वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन गूर्जरसम्राट् की राजसभा में भारी जनमेदनी एवं गूर्जरदेश और अन्य देशों के प्रखर पण्डितों की उपस्थिति में यह चिरस्मरणीय प्रचण्ड वाद प्रारंभ हुआ। महा-कवि एवं कविचक्रवर्त्ती श्रीपाल वादी देवसूरि के मत का प्रमुख समर्थक था और इसने वाद में प्रमुख भाग लिया था। अन्त में श्वेताम्बरमत की जय हुई और इससे कविचक्रवर्त्ती श्रीपाल का यश, गौरव और प्रतिष्ठा अधिक बढ़ी। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि श्रीपाल किस कोटि का विद्वान् था और समाज में उसकी कितनी प्रतिष्ठा थी तथा सम्राट् उसका कितना मान, विश्वास करते थे।

इन उपरोक्त प्रसंगों से महाकवि श्रीपाल का अगाध चातुर्य एवं उसकी विद्वता, सहिष्णुता, शिष्टता, विचारशीलता एवं उच्चता का परिचय मिलता है। अतिरिक्त इन विशेष गुणों के सम्राट् और श्रीपाल में सचमुच अति प्रेमपूर्ण सम्बन्ध था और श्रीपाल सम्राट् का अभिन्न मित्र था भी सिद्ध होता है। सम्राट् सिद्धराज ने जो देवबोधि को महाकवि श्रीपाल का परिचय दिया था, उसके आधार पर यह सिद्ध होता है कि श्रीपाल की कृतियें निम्नवत् हैं।

(१) उत्तम प्रबन्ध (?) (२) दुलर्भसरोवर या सहस्रलिङ्गसरोवर-प्रशस्ति

(३) रुद्रमहालय-प्रशस्ति (४) 'वैरोचन-पराजय' नामक महाप्रबन्ध

(५) अत्यन्त प्रसिद्ध बड़नगर-प्रशस्ति। यह प्रशस्ति २९ पद्यों की है। बड़नगर का प्राचीन नाम आनन्दपुर था। सम्राट् कुमारपाल ने वि० सं० १२०८ में अति प्राचीन बड़नगर महास्थान के चारों ओर एक सुदृढ़ परिकोष्ट (प्राकार) बनवाया था। महाकवि श्रीपाल ने उक्त परिकोष्ट के वर्णन और स्मरण के अर्थ यह प्रशस्ति रची थी। उनके महाकवि होने का परिचय इस एक कृति से ही भलिविध मिल जाता है।

'Sripala who wrote the prasasti of Sahasralinga Lake was a close associate of the King, who called him 'a brother' G. G. pt III P. 177

श्री पत्तन के श्री-संघ एवं श्वेताम्बर-संघ तथा राज्य-सभा में श्रीपाल की प्रधानता थी का परिचय श्री वादी देवसूरि और कुमुदचन्द्र के मध्य हुये वाद और देवबोधि का किया गया सत्कार से विशद रूप से मिल जाता है।

'प्रभावकचरित्र' में हेमचन्द्रसूरि-प्रबंध

'वाद' का वर्णन अधिक विशद एवं सविस्तार श्रीमद् वादी देवसूरि का चरित्र लिखते समय दिया गया है; क्यों कि ये आचार्य प्राग्वाटवंश में उत्पन्न हुये हैं; अतः प्राग्वाट-इतिहास में इनका चरित्र एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

'द्रौपदीस्वयंवरम्' नाटक की जिनविजयजी द्वारा लिखित प्रस्तावना पृ० ८-९

यशश्चन्द्रकृत 'मुद्रित कुमुदचन्द्र नाटक'। यह नाटक इसी वाद को लेकर लिखा गया है।

प्रभावक-चरित्र में देवसूरि प्रबन्ध

'एकाहविहितस्फीतप्रबन्धोऽयं कृतीश्वरः। कविराज इति ख्यातः श्रीपालो नाम भूमिभूः'॥

१(६) 'शतार्थी'—महाकवि ने एक श्लोक के १०० अर्थ करके अपनी विद्वता एवं कल्पनाशक्ति का इस कृति द्वारा सफल परिचय करवाया है। सचमुच यह कृति श्रीपाल को महाकवियों में अग्रगण्य स्थान दिलाने वाली है।[१]

(७) श्रीपालकृत '२४ चौबीस तीर्थंकरों की २९ पद्यों की स्तुति', यह स्तुति उपलब्ध है। शेष वडनगरप्रशस्ति के अतिरिक्त कोई कृति उपलब्ध नहीं है।[२]

वादी देवसूरि के गुरुभ्राता आचार्य विजयसिंह के शिष्य हेमचन्द्र ने 'नाभेय-नेमि-संधान' नामक एक काव्य रचा है, जिसका संशोधन महाकवि श्रीपाल ने किया था।

महाकवि पर जैसी कृपा महाप्रतापी गूर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह की रही, वैसी ही कृपा उसके उत्तराधिकारी अठारह प्रदेशों के स्वामी परमार्हत सम्राट् कुमारपाल की रही। यह स्वयं साधु एवं संतों का परम भक्त एवं जिनेश्वर भगवान् का परमोपासक था। कवि एवं विद्वानों का सहायक एवं आश्रयदाता था। इसके सिद्धपाल नामक पुत्र था। जो इसके ही समान सद्गुणी, महाकवि और गौरवशाली पुरुष था।

महाकवि सिद्धपाल

यह योग्य पिता का योग्य पुत्र था। साधु एवं संतों का सेवक तथा साथी था। कवि और विद्वानों का सहायक, समर्थक, पोषक था। यह जैसा उच्च कोटि का विद्वान् था, वैसा ही उच्चकोटि का दयालु सद्गृहस्थ

सिद्धपाल का गौरव और प्रभाव

भी था। सम्राट् कुमारपाल की इस पर विशेष प्रीति थी और यह उसकी विद्वद्-मण्डली में अग्रगण्य था। सम्राट् कभी कभी शांति एवं अवकाश के समय इससे निवृत्तिजनक

१— अर्थानुक्रम में—सिद्धराज १, शार्ङ्ग २, शिव ३, ब्रह्मा ४, विष्णु ५, भवानी ६, कार्तिकेय ७, गणपति ८, इन्द्र ९, वैश्वानर १०, धर्मराज ११, नैऋत १२, वरुण १३, उपवन १४, धनद १५, वशिष्ठ १६, नारद १७, कल्पद्रुम १८, गंधर्व १९, दिग्गज २०, ऐरावत २१, गरुड़ २२, हारमन २३, जिनेन्द्र २४, बुद्ध २५, परमात्मा २६, मार्कण्डेय २७, देव २८, श्रीनन्दपुत्र २९, गगनमणि ३०, आदित्य ३१, सोम ३२, अंगारक ३३, बुध ३४, बृहस्पति ३५, शनिश्चर ३७, वरुण ३८, केतु ३९, मेघ ४०, धर्म ४१, कर्ण ४२, कामदेव ४३, मेरु ४४, कैलास ४५, हिमालय ४६, मंदराद्रि ४७, कुमार ४८, समुद्र ४९, वासुदेव ५०, दाशरथी ५१, बलभद्र ५२, हनुमान ५३, पार्थरथि ५४, युधिष्ठिर ५५, भीम ५६, अर्जुन ५७, कर्ण ५८, नल ५९, गन्धि ६०, शालिवाहन ६१, करुण ६२, वाग्भटमुनि ६३, भरत ६४, कवि ६५, अमात्य ६६, नौदंडाध्यक्ष सिद्धिय ६७, दुर्गपाल ६८, पर्वत ६९, कीर्त्तिका ७०, नृराज ७१, राजपुत्र ७२, सुभट ७३, कवच ७४, बलाहक ७५, दुर्ग ७६, आगम ७७, सिद्ध ७८, पुरुष ७९, मार्तण्ड ८०, नरसिंह ८१, मनुष्य ८२, वैश्यपति ८३, शासनमत ८४, सिद्धसिंधुर ८५, वनिता ८६, सारंगपुर ८७, मेघ ८८, मत्त ८९, दुर्जन ९०, दास ९१, गोपालक ९२, वसुमति ९३, महाराष्ट्र ९४, रोग ९५, वासुकि ९६, बलकृष्ण ९७ वनिदेव ९८, दिग्गज ९९, गालय ?? १००. श्री अगरचन्द नाहटा का लेख.

जै० सा० प्र० वर्ष ११ अंक १०-११ पृ० २८६-७

२—'श्री दुर्लभसरोवरे तथा रुद्रमहालये। कविरीश्वराभिः कृतिः प्रशस्तिरमोदकी॥

महाकाव्यं कवे च वैरोचनपराजयम्। शिवस्य मन्दिरस्यो प्रशस्तिर्मराज गुर्जरेश्वरो॥'

प्र० चि० प्र० मू० पृ० (१०१) पृ० ६४,

भानुचन्द्रगणि कृत जैन प्रशस्ति संग्रह ० ४१ बड़नगर प्रशस्ति सं० १४७.

H. I. G. pt. II

आख्यान सुना करता था। इसका जैसा मान एवं प्रभाव राज्यसभा में था, वैसा ही प्रभाव बाहिर भी था। गिरनार-तीर्थ की यात्रा करके जब सम्राट् कुमारपाल लौटा और एक दिन राज्य-सभा में गिरनारपर्वत के ऊपर सीढ़ियां बनवाने का उसने प्रस्ताव रक्खा, उस समय इसने एक पद्य रचकर महामात्य उदयन मन्त्री के पुत्र सेनापति आम्र की प्रशंसा में कहा। आम्र ने तुरन्त गिरनारतीर्थ पर सीढ़ियाँ बनवाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। यह घटना इसके प्रभाव और धर्म-प्रेम को प्रकट करती है तथा इसके गौरव को बढ़ाती है।

सिद्धपाल और सोमप्रभाचार्य

सोमप्रभाचार्य का वर्णन पूर्व दिया जा चुका है। इन्होंने 'सुमतिनाथचरित्र' और प्रसिद्धग्रन्थ 'कुमारपाल-प्रतिबोध' सिद्धपाल की पौषधशाला में रहकर लिखे थे। इस द्वितीय ग्रंथ की रचना वि० सं० १२४१ में पूर्ण हुई थी।* इससे सिद्ध होता है कि वह श्रीमंत था, विद्वानों का आदर करने वाला था और आप स्वयं महाविद्वान् था।

सिद्धपाल में एक अद्भुत गुण और उसकी कवित्वशक्ति

इसमें एक अद्भुत गुण यह था कि वह दूसरों की उन्नति देखकर सदा प्रसन्न होता था तथा उनको सहाय देता और उनका उत्साह बढ़ाता था। जब प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य के सदुपदेश से गूर्जरसम्राट् कुमारपाल ने एक बहुत बड़ा सत्रागार (दानशाला) खोला और उसका कार्यभार श्रीमालकुलावतंस नेमिनाग के पुत्र अभयकुमार श्रेष्ठि को समर्पित किया गया, तब अभयकुमार का न्याय, चातुर्य्य एवं दयालुतापूर्ण सुप्रबन्ध देखकर सिद्धपाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उच्चकोटि के दो पद्य बनाकर उसकी पूरी २ प्रशंसा की। इन पद्यों से सिद्धपाल की कवित्वशक्ति का भी परिचय मिल जाता है।

सिद्धपाल की जैसी प्रतिष्ठा गूर्जरसम्राट् कुमारपाल के समय में रही, वैसी ही उसके उत्तराधिकारी सम्राट् अजयपाल, मूलराज और द्वितीय भीमदेव के शासन समयों में अक्षुण्ण रही।

दुःख यह है कि ऐसे सद्गुणी, सद्गृहस्थ, क्षमाशील, दयालु, परोपकारी, विद्याप्रेमी, गूर्जरसम्राट् की विद्वद्मण्डली का भूषण, गूर्जरसम्राटों के प्रीतिपात्र महाकवि सिद्धपाल की प्रकीर्ण कृतियों के अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र कृति प्राप्त नहीं है। सिद्धपाल के विजयपाल नाम का पुत्र था। वह भी महाकवि हुआ।

'सुनुस्तस्य कुमारपालनृपतिप्रीतेः पदं धीमतामुत्तंसः कविचक्रमस्तकमणिः श्रीसिद्धपालोऽभवत्।
यं० व्यालोक्य परोपकार करुणासौजन्यसत्यक्षमा दाक्षिण्यैः कलितं कलौ कृतयुगारंभो जनैर्मन्यते' ॥
शांतिनाथचरित्र की प्रशस्ति

'कइयावि निव-नियुक्तो कहइ कहं सिद्धपाल-कई। ...., कुमारपाल-चरित्र
'जंपइ सहा-निसन्नो सुगमं पज्जं गिरिम्मि उज्जिते। को कारविंउ सक्को ? तो भणिओ सिद्धवालेण ॥
प्रष्ठा वाचि प्रतिष्ठा जिनगुरुचरणांभोजभक्तिर्गरिष्ठा, श्रेष्ठाऽनुष्ठाननिष्ठा विषयसुखरसास्वादसक्तिस्तवनिष्ठा।
बंहिष्ठा त्यागलीला स्वमतपरमतालोचने यस्य काष्ठा, धीमरनाम्नः स पद्यां रचयितुमचिरादुज्जयन्ते नदीष्णः ॥ कु० प्र०
देव-गुरु-पूयण-परो परोवयारुज्जओ दया-पवरो। दक्खो दक्खिन्न-निही सच्चो सरलासओ एसो ॥
क्षिप्त्वा तोयनिधिस्तले मणिगणं रत्नोत्करं रोहणो। रेणावृत्य सुवर्णमात्मनि दृढं बद्ध्वा सुवर्णाचलः ॥
क्ष्मामध्ये च धनं निधाय धनदो विभ्यत्परेभ्यः स्थितः। किं स्यात्तैः कृपणैः समोऽयमखिलार्थिभ्यः स्वमर्थं ददत्' ॥

*सोमप्रभसूरि ने वि० सं० १२४१ में 'कुमारपाल-प्रतिबोध' की रचना महाकवि सिद्धपाल की वसति में रह कर पूर्ण की थी से सिद्ध है कि महाकवि उक्त संवत् तक जीवित था।



महाकवि श्रीपाल के भ्राता शोभित और उसका परिवार। देखिये पृ० २२२।

विजयपाल

विजयपाल गूर्जरसम्राट् द्वितीय भीमदेव के समय के प्रसिद्ध विद्वानों में था। इसने द्वि अंकी 'द्रौपदी स्वयंवरम्' नामक नाटक संस्कृत में लिखा है, जो सम्राट् की आज्ञा से त्रिपुरुषदेव के सामने वसन्तोत्सव के शुभावसर पर अणहिलपुरपत्तन में खेला गया था। जिसे देखकर प्रजाजन अति प्रमुदित हुये थे। इस महाकवि की भी उपरोक्त कृति के अतिरिक्त अन्य कोई कृति उपलब्ध नहीं है। यह भी अपने पिता, प्रपिता के सदृश ही श्रीमान् एवं राजमान्य था।

महाकवि श्रीपाल का भ्राता श्रे० शोभित

महाकवि श्रीपाल का भ्राता श्रे० शोभित था। श्रे० शोभित अति दानवीर एवं जिनेश्वर का परम भक्त था। उसने अपने जीवन में अनेक पुण्य के कृत्य किये और मर कर अमर कीर्त्ति को प्राप्त हुआ। उसकी स्त्री का नाम शांतादेवी और पुत्र का नाम आशुक था। श्रे० आशुक ने अर्बुदाचलस्थ श्री विमल-वसतिका नामक श्री आदिनाथचैत्यालय की हस्तिशाला के समीप के सभामण्डप के एक स्तंभ के पीछे एक छोटा प्रस्तर-स्तंभ स्थापित करवाया, जिसमें श्रे० शोभित, उसकी स्त्री शान्ता और अपनी (आशुक) मूर्त्तियाँ उत्कीर्णित करवाई और जिसके पीछे के भाग में श्रे० शोभित की अश्वारूढ़ प्रतिमा अंकित करवाई। यह छोटा प्रस्तर-स्तंभ आज भी विद्यमान है।

श्रे० शोभित और उसका परिवार

न्यायोपार्जित द्रव्य का सद्व्यय करके जैनवाङ्मय की सेवा करने वाले प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थ श्रेष्ठि देशल

वि० सं० ११८४

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में अणहिलपुरपत्तन में प्राग्वाटज्ञातीय सर्व्वदेव नामक एक अति प्रसिद्ध श्रावक रहता था। उसका कुल बड़ा गौरवशाली और सम्पन्न था। दोनों स्त्री-पुरुष श्रावकाचार के अनुसार जीवन यापन

'प्राग्वाटान्वयवंशमौक्तिकमणेः श्रीलक्ष्मणस्यात्मजः श्रीश्रीपालकवीन्द्रबन्धुरमलप्रज्ञालतामण्डपः।
श्रीनाभेयजिनांह्रिपद्ममधुपस्त्यागाद्भुतैः शोभितः श्रीमान् शोभित एष पुण्यविभवैः स्वर्लोकमासेदिवान्' ॥१॥
निष्पोत्कीर्णगुणः समस्तजगतः श्रीशोभितः स्तंभकोत्कीर्णः शांतिकया समं यदि तया लक्ष्म्येव दामोदरः।
पुत्रेणाशुकसंज्ञकेन च धृतप्रद्युम्नरूपेण श्री(श्रि)या सार्धं नंदतु, यावदस्ति वसुधा पाथोधिमुद्रांकिता ॥२॥
अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २१७

करते थे और धर्म-ध्यान में तल्लीन रहते थे। झंझुल नामक उनके एक पुत्र था। झंझुल भी अपने पिता सर्वदेव और माता महिमावती के सदृश ही गुणवान् और शुद्धव्रती श्रावक था। झंझुल की स्त्री पूर्णदेवी थी। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई। प्रथम पुत्र देहड़ और द्वितीय देशल था। मोहिनी और पुन्निणी नाम की दोनों पुत्रियाँ थीं। वैसे चारों भाई-बहिन स्वभाव से सुन्दर और गुणों की खान थे। परन्तु इन सब में देशल अधिक सहृदय और धार्मिक वृत्ति का था। वह महान् गंभीर, धैर्यवान्, शान्त, सौम्य और अति उदारात्मा था। उसने न्याय से उपार्जित द्रव्य का अनेक पुण्यकार्य कर के सदुपयोग किया था। स्थिरदेवी नामकी शीलगुणसम्पन्ना उसकी स्त्री थी। यशहड़ (वाहड़), सूलण, रामदेव और आल्हण नामक इसके चार पुत्र हुये। इस समय अणहिलपुरपत्तन अपनी उन्नति के शिखर पर था। महाप्रतापी सिद्धराज जयसिंह गूर्जर-सम्राट् का राज्यकाल था। वि० सं० ११८४ माघ शु० ११ रविवार को श्रेष्ठि देशल ने अपने पुत्र यशहड़, सूलण और रामदेव के कल्याणार्थ श्रीमद् अभयदेवसूरि द्वारा टीकाकृत 'श्रीज्ञाताधर्मसूत्रवृत्ति' नामक अंग को ताड़पत्र पर लिखवाया। इसी प्रकार देशल ने अन्य भी अनेक ग्रंथों की प्रतियाँ लिखवायीं और साधु, मुनिराजों को अर्पित कीं तथा भंडारों में भेंट कीं।*

वंशवृक्ष

सर्व्वदेव [महिमावती]

झंझुल [पूर्णदेवी]

देहड़ — देशल [स्थिरदेवी] — मोहिणी — पुन्निणी

देशल [स्थिरदेवी] :

यशहड़ (वाहड़) — सूलण — रामदेव — आल्हण

श्रेष्ठि धीणाक

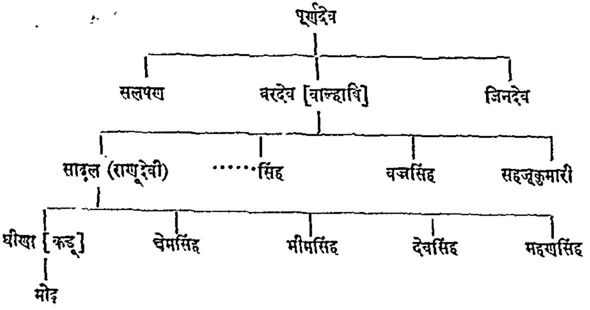
वि० सं० ११६०

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय पूर्णदेव हो गया है। उसके सलषण, वरदेव और जिनदेव नाम के तीन पुत्र थे। सलषण बचपन से ही धर्मवृत्ति का था। उसने बड़े होकर जगच्चन्द्रसूरि के करकमलों से जिनेन्द्रदीक्षा ग्रहण की और मुनि ज्ञानचन्द्र (धानचन्द्र) उसका नाम पड़ा। पूर्णदेव का दूसरा पुत्र वरदेव था।

*प्र० सं० प्र० भा० ता० प्र० २७ पृ० २२-२४ (श्री ज्ञाताधर्मसूत्रवृत्ति

वरदेव की स्त्री वाल्हावि नामा थी । वाल्हावि लक्ष्मीस्वरूपा स्त्री थी । उसके सादल और वज्रसिंह नाम के पुत्र और सहजू नाम की सुशीला पुत्री उत्पन्न हुई । बड़े पुत्र सादल का विवाह राणदेवी नामा एक सती-साध्वी कन्या से हुआ । सादल को महासती राणू से पाँच पुत्रों की प्राप्ति हुई । ज्येष्ठ पुत्र धीणा था । धीणा शुद्धात्मा और धर्मबुद्धि था । अन्य पुत्र क्षेमसिंह, भीमसिंह, देवसिंह, महणसिंह क्रमशः उत्पन्न हुये । पाँचों पुत्र बड़े धर्मात्मा और उदार हृदया थे । इनमें से दूसरे और चौथे पुत्र क्षेमसिंह और देवसिंह ने श्रीमद् जगच्चन्द्रसूरि के कर-कमलों से दीक्षा ग्रहण की । ज्येष्ठ पुत्र धीणा का विवाह कडू नामा कन्या से हुआ था । कडू के मोढ नामक पुत्र हुआ । धीणा के दो भ्राता तो दीक्षा ले चुके थे । जैसे वे धर्मवृत्ति थे, वैसा ही धीणा भी दृढ़ धर्मी और साहित्यसेवी था । एक दिन गुरु जगच्चन्द्रसूरि का सदुपदेश श्रवण कर इसको स्मरण आया कि भोग और यौवन चंचल एवं अस्थिर हैं । ज्ञानी इनकी चंचलता से सदा सावधान रहते हैं और अपने धन और अपनी देह का सदुपयोग करने में सदा तत्पर रहते हैं । बृहद्गच्छीय श्रीमद् नेमिचन्द्रसूरिकृत 'श्री आख्यानमणिकोश' की वि० सं० ११९० में श्रीमद् नेमिचन्द्रसूरि के प्रशिष्य विद्वद्प्रवर श्रीमद् आम्रदेवसूरि ने वृत्ति लिखी और श्रेष्ठि धीणा ने 'श्री आख्यानमणिकोशसवृत्ति' को विद्वानों के पढ़नार्थ ताड़-पत्र पर लिखवाकर अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया । यह प्रति इस समय खम्भात के श्री शान्तिनाथ-प्राचीन ताड़पत्रीय जैन ज्ञान-भण्डार में विद्यमान है ।

वंश-वृक्ष



श्री खं० शा० प्रा० ता० जै० ज्ञा० भं० (सूची-पत्र) पृ० १९
प्र० सं० प्र० भा० ता० प्र० ३५ पृ० २६, २७ । जै० पु० प्र० सं० प्र० ६० पृ० ८३ . (श्री आख्यानमणिकोशसवृत्ति)

श्रेष्ठि मंडलिक
वि० सं० ११६१

प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० पूनड़ की स्त्री तेजूदेवी की कुक्षी से श्रे० मंडलिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। श्रे० मंडलिक ने अणहिलपुरपत्तनाधीश्वर गूर्जरसम्राट् सिद्धचक्रवर्त्ती श्री जयसिंह के राज्यकाल में वि० सं० ११६१ फाल्गुण शु० १ शनैश्चरवार को भद्रबाहुस्वामीकृत 'आवश्यकनिर्युक्ति' की प्रति लिखवाकर ज्ञान-भंडार में स्थापित करवाई।[1]

श्रेष्ठि वैल्लक और श्रेष्ठि वाजक
वि० सं० ११६६

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वकुल अत्यन्त ही प्रसिद्ध धर्मात्मा पुरुष हुआ है। वह बड़ा ही संतोषी और उदार था। उसकी निर्मल बुद्धि की प्रशंसा दूर २ तक फैली हुई थी। वैसी ही गुणवती एवं सीता के सदृश पतिपरायणा लक्ष्मीदेवी नामा उसकी धर्मप्रिया थी। दोनों धर्मिष्ठ पति-पत्नी के वैल्लक, वाजक (या वीजल) और वीरनाग नामक तीन अत्यन्त गौरवशाली पुत्र हुये थे। श्रे० वैल्लक कमल के समान हृदय का निर्मल, कुलकीर्त्ति का आधार, मधुरभाषी, साधुमना, दानवीर और परमदयालु श्रावक था। श्रे० वैल्लक का छोटा भ्राता वाजक भी सद्धर्मसेवी, बुद्धिमान्, संतोषी, ज्ञानाभ्यासी, प्रसन्नाकृति, परहितरत और जिनेश्वरदेव का परमोपासक था। तृतीय वीरनाग भी महागुणी, धर्मात्मा एवं सज्जनहृदयी था। इनके वैल्लिका नामा भगिनी थी और इनके पिता वकुल की बहिन जाउदेवी नामा इनकी भुवा थी। श्रे० वैल्लक की स्त्री का नाम शितदेवी था, जो अति ही सुशीला, हृदयसुन्दरा और विवेकमती थी। श्रे० वाजक के दो स्त्रियाँ चाहिणी और शृंगारदेवी नामा थीं।

दोनों भ्राता श्रे० वैल्लक और वाजक ने वि० सं० ११६६ आश्विन कृष्ण पक्ष में रविवार को श्री देवभद्र-सूरिविरचित 'श्री पार्श्वनाथ-चरित्र' को गौड़गोत्रीय आशापल्लीवासी कायस्थ कवि सेल्हण के पुत्र कवि वल्लिग द्वारा ताड़पत्र पर लिखवाया।[2]

1-D. C. M. P. (G. O. S Vo. No. LXXVI) P. 55.
2-D.C.M.P. (G.O.S.Vo.LXXVI) P. 219, 220. (365)

श्रेष्ठि यशोदेव
वि० सं० १२१२

विक्रम की बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अति गौरवशाली, विश्रुत, यशस्वी एवं राजमान्य प्राग्वाटवंश में वनीहिल नामक एक ख्यातनामा श्रावक हो गया है। उसके धनदेव नामक अति गुणवान् और पितृमातृभक्त पुत्र था। धनदेव की स्त्री इन्दुमती थी, जो सचमुच ही नरलोक में चन्द्रिका की प्रतिमा थी। इन्दुमती के गुणरत्न नामक यशस्वी पुत्र हुआ। गुणरत्न का पुत्र यशोदेव था। यशोदेव अपने पूर्वजों की ख्याति और कुल के गौरव को बढ़ाने वाला हुआ। वि० सं० १२१२ आषाढ़ कृष्णा १२ गुरुवार को श्रीमद् धर्मघोषसूरि की निश्रामें रहकर विद्या प्राप्त करने वाले उनके शिष्यशिरोमणि तथा श्रीमद् विमलसूरि के शिष्य श्रीमद् चन्द्रकीर्त्तिगणि ने 'श्रीसिद्धान्तसारसमुच्चय' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसकी प्रति यशोदेव ने देवप्रसाद नामक लेखक से ताड़पत्र पर लिखवाई।

यशोदेव के आंत्रि नाम की स्त्री थी। वह अति उदारहृदया थी। सती के समस्त गुण उसमें विद्यमान थे। उसकी कुक्षी से उधरण, आंबिग और वीरदेव नामक तीन पुत्र और सोली, लोली और सोखी नामा तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

वंश-वृक्ष

वनीहिल
|
धनदेव [इन्दुमती]
|
गुणरत्न
|
यशोदेव [आंत्रि]
|
उधरण | आम्बिग | वीरदेव | सोली | लोली | सोखी

प्र० सं० प्र० भा० ता० प० ४१ पृ० ३५ (श्री सिद्धान्तसारसमुच्चय)

श्रेष्ठि जिह्वा
वि० सं० १२१२

विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अन्त में प्राग्वाटज्ञातीय विमलतरमति विश्वविख्यात कीर्त्तिशाली श्रे० वाहल नामक जिनेश्वरभक्त एवं न्यायशील सुश्रावक हो गया है। उसकी गुणगर्भा साधुशीला जिनमती नामा गृहिणी थी। श्राविका जिनमती के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। ज्येष्ठ पुत्र अल्लदेव था। श्रे० अल्लदेव की स्त्री भोयणीदेवी थी। दोनों पति-पत्नी परम जिनेश्वरभक्त, अति दयालु और धर्मात्मा थे। वे सदा दीन-अनाथ जनों की सहायता करते थे। उनके यशोदेव, गुणदेव और जिह्वा नामक तीन अति गुणशाली पुत्र और जासीदेवी नामा पुत्री थी। श्रे० जिह्वा तीनों भ्राताओं में अधिक धर्मी और उदारचेता पुरुष था। वह शास्त्राभ्यास का बड़ा प्रेमी था। उसने उसता नामक व्यास के द्वारा श्री 'आवश्यकनिर्युक्ति' वि० सं० १२१२ मार्ग० शु० १० रविवार को लिखवाई।*

श्रेष्ठि राहड़
वि० सं० १२२७

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में प्रतिष्ठित एवं गौरवशाली प्राग्वाटज्ञातीय एक कुल में सत्यपुर नामक नगर में सिद्धनाग नामक एक विशिष्टगुणी श्रावक हो गया है। उसके अंपति नामा पतिपरायणा स्त्री थी। इस स्त्री के प्रतिष्ठित चार पुत्र हुये। ज्येष्ठ पुत्र पोढ़क और उससे छोटे क्रमशः वीरड़, वर्धन और द्रोणक थे। चारों भ्राताओं ने दधिपद नामक नगर में श्री शांतिनाथजिनालय में पीतल की स्वर्ण जैसी सुन्दर प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई थी।

ज्येष्ठ पोढ़क बृहद् परिवारवाला हुआ। उसके आम्बुदत्त, आम्बुवर्धन, सज्जन नाम के तीन पुत्र और यशःश्री और शिवा नाम की दो पुत्रियाँ हुईं। तृतीय पुत्र सज्जन की स्त्री महलच्छिदेवी की कुक्षी से पाँच पुत्र धवल, वीशल, देशल, राहड़ और बाहड़ तथा शान्तिका और धांधिका नामक दो पुत्रियाँ हुईं।

श्रेष्ठि सज्जन ने श्री पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ की निर्मल प्रस्तर की दो प्रतिमायें अपने भ्राता के श्रेयार्थ विनिर्मित करवा कर मड्डाहृत नाम के नगर के महावीरजिनालय में प्रतिष्ठित कीं। इस समय श्रे० सज्जन मड्डाहृत नगर में ही रहने लग गया था।

श्रेष्ठि धवल सज्जन का ज्येष्ठ पुत्र था। श्रे० धवल की स्त्री का नाम भल्लिणी था। उसके दो प्रसिद्ध पुत्र वीरचन्द्र और देवचन्द्र तथा एक पुत्री सिरी हुई। वीरचन्द्र के विजय, अजय, राजा, आवं और सरण नाम के

---

*D.C.M.P. (G,O.S.Vo.LXXVI) P. 150 (231)
जै० पु० प्र० सं० ता० प्र० ७३ पृ० ७०-७१ (आवश्यकनिर्युक्ति)

पाँच पुत्र हुये। देवचन्द्र के देवराज नाम का एक ही पुत्र हुआ। श्रे० वीशल और देशल दोनों धवल से छोटे भाई थे। इन दोनों भ्राताओं के कोई सन्तान नहीं हुई।

श्रे० बाहड़ राहड़ से छोटा और धवल का पाँचवा भ्राता था। वह अत्यधिक जनप्रिय हुआ। उसके जिनमती नाम की स्त्री थी। जिनमती की कुक्षी ने जसडुक नाम का पुत्र हुआ।

श्रे० सज्जन के पाँचों पुत्रों में श्रे० राहड़ अधिक गुणी, बुद्धिमान्, सुशील, उदार, सुजनप्रिय, ख्यातनामा और बृहद् परिवारवाला हुआ। वह नित्य प्रभुपूजन करता, सविधि कीर्त्तन करता, साधुभक्ति करता और व्याख्यान श्रवण करता था तथा नित्य नियमित रूप से दान देता और शक्ति अनुसार तपस्या करता था। वह शीलव्रत में अडिग और परिजनों को सदा प्यार करने वाला था। राहड़ की स्त्री देमति थी, जो सचमुच ही देवमति थी। वह राहड़ को धर्मकार्य में अति बल और सहयोग देनेवाली हुई। देमति के चार पुत्र चाहड़, बोहड़ि, आसड़ और आसाधर हुये। इन चारों पुत्रों की क्रमशः अश्वदेवी, माढ़ूदेवी, तेजूदेवी और राजूदेवी नाम की स्त्रियाँ थीं, जिनसे यशोधर, यशोवीर और यशकर्ण नाम के पौत्रों की और धेउयदेवी, जासुकादेवी और जयंतुदेवी नाम की पौत्रियों की श्रे० राहड़ को प्राप्ति हुई।

श्रे० राहड़ विशेषतः बुद्धिमान्, सुजन-प्रिय, सुशील धर्मात्मा एवं उदारात्मा था। वह बड़ा दानी था। धर्म-पर्वों पर दान करता था। वह नित्य नियमित रूप से सविधि प्रभुपूजन-कीर्त्तन करता और गुरु का उपदेश श्रवण करता था। दान देना और तप करना तो उसका स्वभाव हो गया था। शीलव्रत के पालन करने में वह विशेषतः विख्यात था। जैसा वह धर्मात्मा एवं गुणी था उसकी स्त्री देमति भी वैसी ही धर्मार्थिनी, पवित्रशीलशालिनी, पतिपरायणा और निराभिमानिनी थी। दोनों पति-पत्नी अतिशय धर्माराधना करते और दुःखी एवं दीनों की सहायता करते और सुखपूर्वक दिवस व्यतीत करते थे। इनके पुत्र, पुत्रवधूयें तथा पौत्र भी वैसे ही गुणी और सदाशय थे। राहड़ के द्वितीय पुत्र बोहड़ि की मृत्यु आकस्मातिक एवं असामयिक हुई। राहड़ को इस मृत्यु से बड़ा भारी धक्का लगा और वह संसार से ही विरक्त एवं उदासीन-सा रहने लगा तथा अपने द्वारा न्यायोपार्जित द्रव्य का धर्मकार्यों में अधिकाधिक सदुपयोग करने लगा। उसको जीवन, यौवन, सुन्दर शरीर और सम्पत्ति आदि सर्व महामेघ के मध्य में स्थित एक क्षुद्र एवं चंचल जलबिंदु से प्रतीत होने लगे। दान, शील, तप और भावनायुक्त श्री जिनेश्वर-धर्म का पालन ही एकमात्र सद्गति देने वाला है, ऐसा दृढ़ निश्चय करके उसने देवचन्द्रसूरिरचित 'श्रीशांतिनाथचरित्र' की प्रति ताड़-पत्र पर विक्रम संवत् १२२७ में लिखवाई, जिसकी प्रशस्ति श्रीमद् चक्रेश्वरसूरिशिष्य श्रीमद् परमानन्द-सूरि ने लिखी। इस समय अणहिलपुरपत्तन में गूर्जरसम्राट् कुमारपाल का राज्य था। राहड़ ने श्रीशांतिनाथ भ० की सलीतल की सुन्दर प्रतिमा विनिर्मित करवाई और उसको अपने गृहमन्दिर में प्रतिष्ठित करवाई।

D.C.M.P. (G.O.S.Vo.No.LXXVI) P. 224-7। पृ० २२४ पर सिद्धनाग के स्थान पर सिहनाग, अंबति के स्थान पर अर्दसिनी, पोढ़क के स्थान पर राढ़ लिखा है। इसी प्रकार कुछ अन्य व्यक्तियों के नामों में भी अन्तर है।

जै० पु० प्र० सं० पृ० ५ (शांतिनाथ-चरित्र)

प्र० सं० प्र० भा० ता० प्र० ११२ पृ० ७१ से ७४ (श्री शांतिनाथचरित्र)

वंशवृक्ष

- सिद्धनाग (सिंहनाग) [आंबिनी]
  - पोढ़क
    - आंबुदत्त
    - आंबुवर्धन
    - सज्जन [महलच्छिदेवी]
      - धवल [भल्लणी]
        - वीरचन्द्र
        - देवचन्द्र
          - देवराज
            - विजय
            - अजय
            - राज
            - आंब
            - सरण
        - सीरी
      - वीशल
      - देशल
      - राहड़ [देमती]
        - चाहड़ [अश्वदेवी]
        - बोहड़ि [माढ़ूदेवी]
        - आसड़ [तेजूदेवी]
        - आशाधर [राजूदेवी]
          - यशोधर
          - यशोवीर
          - यशकर्ण
          - घेऊयदेवी
          - जासुकादेवी
          - जयंतुदेवी
      - वाहड़ [जिनमति]
        - जसडुक
      - शान्तिकादेवी
      - धांधिकादेवी
    - यशःश्री
    - शीवादेवी
  - वीरड़
  - वर्धन
  - द्रोणक

प्र० सं० । जै० पु० प्र० सं० और D. C. M. P. इन तीनों पुस्तकों में यह प्रशस्ति मुद्रित है । प्रायः अधिक पुरुषों के नाम में थोड़ा २ अन्तर है । जै० पु० प्र० सं० में प्रदत्त प्रशस्ति में उल्लिखित नाम अधिक उचित प्रतीत होते हैं, अतः उस प्रशस्ति के अनुसार ही व्यक्तियों के नाम दिये हैं ।

श्रेष्ठि जगतसिंह
वि० सं० १२२८

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में गूर्जरसम्राट् कुमारपाल के राज्यकाल में प्राग्वाटज्ञातीय ठ० कडकराज प्रसिद्ध पुरुष हो गया है। उसके ठ० सोलाक नामक पुत्र और राजूदेवी नामा पुत्री थी। श्राविका राजूदेवी के पुत्र श्रे० जगतसिंह ने वि० सं० १२२८ श्रावण शु० १ सोमवार को देवेन्द्रसूरिकृत १. कर्मविपाकवृत्ति २. योगशास्त्र ३. वीतरागस्तवन को अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का व्यय करके लिखवाये।[1]

श्रेष्ठि रामदेव
वि० सं० १२३६

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय प्रसिद्ध पुरुष सहवू हो गया है। श्रे० सहवू बड़ा गुणी और धर्मात्मा पुरुष था। उसकी स्त्री का नाम गार्जीदेवी था। वह बड़ी ही चतुरा, सुशीला और धर्मकर्मरता स्त्री-शिरोमणी नारी थी। श्रा० गार्जीदेवी के मणिभद्र, शालिभद्र और सलह नामक तीन पुत्र थे।

श्रे० मणिभद्र की स्त्री का नाम बाबीबाई था, जो अति गुणवंती स्त्री थी। श्रा० बाबीबाई के वेल्लक नामक पुत्र और सहरि नामकी शीलगुणधारिणी कन्या थी।

श्रे० शालिभद्र की स्त्री का नाम थिरमति था, जिसकी कुक्षी से धवल; वेलिग, यशोधवल, रामदेव, ब्रजदेव और यशोदेव नामक छः पुत्र और वीरीदेवी नाम की पुत्री उत्पन्न हुई थी।

श्रे० धवल का पुत्र रासदेव बड़ा ही विवेकशील था।

श्रे० वेलिग का पुत्र रामचन्द्र भी बड़ा ही कलावान् था।

श्रे० रामदेव ने चन्द्रगच्छीय श्रीमद् अभयदेवसूरि के पट्टधर हरिभद्रसूरि के शिष्यवर अजितसिंहसूरि के शिष्यवर हेमसूरि के चरणसेवक श्रीमद् महेन्द्रप्रभु के शास्त्रोपदेश को श्रवण करके श्री नेमिचन्द्रसूरिकृत 'श्रीमहावीर-चरित्र' को वि० सं० १२३६ ज्येष्ठ शुक्ला १४ शनिश्चर को ताड़पत्र पर लिखवाया और उस मनोहर प्रति को श्रद्धापूर्वक श्रीमद् भुवनचन्द्रगणि को समर्पित की।[2]

1-D. C. H. P. (G. O. S. Vo. No. LXXVI.) P. 104, 105, (158, 159)
2-D.C.M.P. (G.O. S Vo. No. LXXVI) P. 286-7 (37)

वंश-वृक्ष

- सहजू [गाजीदेवी]
  - मणिभद्र [वाची]
    - वेल्लक
    - सहरि
  - शालिभद्र [थिरमति]
    - धवल
      - रासदेव
    - वेलिग
      - रासचन्द्र
    - यशोधवल
    - रामदेव
    - मल्लदेव
    - यशोदेव
    - वीरीदेवी
  - सलह

ठ० नाऊदेवी

वि० सं० १२६१

अणहिलपुरपत्तन के महाराज गूर्जरसम्राट् भीमदेव द्वि० के विजयराज्यकाल में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि धवलमह की पुत्री श्राविका ठ० नाऊ ने अपने श्रेयार्थ पं० मुजाल से सुंकुशिका नामक स्थान में श्रीमानतुंगसूरि कृत 'श्रीसिद्धजयन्तीचरित्र' नामक ग्रन्थ की वृत्ति, जिसको श्रीवड़गच्छीय भट्टारक मलयप्रभसूरि ने लिखा था वि० सं० १२६१ आश्विन कृ० ७ रविवार को लिखवाकर श्रीमद् अजितदेवसूरि को भक्ति पूर्वक समर्पित की।

नाऊदेवी का अपर नाम रत्नदेवी भी था। यह गुण रूपी रत्नों की खान थी; अतः रत्नदेवी कहलाती थी। इसका पाणिग्रहण पत्तनवास्तव्य प्राग्वाटकुलावतंस जैन समाजाग्रगण्य श्रे० श्रीपाल की सती स्वरूपा पत्नी श्री देदी के कुक्षी से उत्पन्न द्वि० पुत्र यशोदेव के साथ हुआ था। यशोदेव के बड़े भ्राता का नाम शोभनदेव था। शोभन के सूहवदेवी और सहणूदेवी नाम की दो पत्नियां थीं। श्रे० शोभन के सोढू नामा पुत्री थी।*

श्रेष्ठि धीना

वि० सं० १२६६

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० धीना एक प्रसिद्ध धनवान् पुरुष हो गया है। उसके पद्मश्री और रामश्री नामा दो स्त्रियाँ थीं। पासचन्द्र नाम का एक पुत्र हुआ। पासचन्द्र के गुणपाल नामक पुत्र

*जै० सा० सं० इति० पृ० ३४०, ३४३। प्र० सं० प्र० भा० ता० प्र० ८५ पृ० ५४ (सिद्धजयन्तीचरित्र)
जै० प्र० सं० प्र० २३६ पृ० २४ (जयन्तीवृत्ति)

था। एक दिन श्रे० धीना ने श्रीमद् देवेन्द्रमुनि का सदुपदेश श्रवण किया। इस उपदेश को श्रवण करके उसने ज्ञानदान का माहात्म्य समझा और अपने स्वोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करके उसने पंडितजनों के वाचनार्थ श्री 'उत्तराध्ययनलघुवृत्ति' नामक ग्रन्थ की एक प्रति ताड़पत्र पर वि० सं० १२९६ चैत्र कृ० १० सोमवार को लिखवाई और वि० सं० १३०१ श्रा० शु० १२ शुक्रवार को 'श्रीअनुयोगद्वारवृत्ति' और शु० १५ को 'अनुयोगद्वारसूत्र' की प्रतियाँ लिखवाई। श्रे० धीना धवलकपुरवासी श्रे० पासदेव (वासदेव) का पुत्र था।[1]

श्रेष्ठि मुहुणा और पूना

हुड़ायाद्रपुर (हड़ाद्रा) में श्री पार्श्वनाथजिनालय का गोष्ठिक प्राग्वाटज्ञातीय विख्यात श्रेष्ठि चासपा हो गया है। वह थेपपुरीयगच्छाधिपति श्रीमद् भावदेवसूरि के पट्टधर जयप्रभसूरि का परम श्रावक था। श्रे० चासपा की धर्मपरायणा स्त्री जासलदेवी की कुक्षी से गुणसंपन्न लक्षणसम्पूर्ण धर्मसंयुक्त सहदेव, खेता और लखमा नामक तीन अति प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुये। ज्येष्ठ पुत्र श्रे० सहदेव की पत्नी नागलदेवी की कुक्षी से श्रे० आमा और आह्वा नामक विख्यात धर्मधुर तथा दक्ष दो पुत्र पैदा हुये।

श्रे० आमा की पत्नी का नाम रंभादेवी था। श्राविका रंभादेवी सचमुच रंभा ही थी। वह अत्यधिक सुशीला, सुगुणा और प्रसिद्ध पिता की पुत्री थी। उसके मुहुणा, पूना और हरदेव नामक तीन पुण्यशाली पुत्र हुये थे। श्रे० मुहुणा और पूना ने भ्राता हरदेव के सहित माता-पिता के श्रेयार्थ कल्पसूत्र की प्रति गुरुमहाराज को श्रद्धापूर्वक अर्पित की।[2]

श्रा० सूहड़ादेवी

अनुमानतः विक्रम की तेरहवीं शताब्दी

भरत और उसका यशस्वी पौत्र पद्मसिंह और उसका परिवार

अति गौरवशाली महाप्रतापी प्राग्वाटवंश में भरत नामक अति पुण्यशाली, सदाचारी, धर्मधारी पुरुष हो गया है। भरत का पुत्र यशोनाग हुआ। यशोनाग गुणों का आकर और दिव्य भाग्यशाली था। यशोनाग के पद्मसिंह नामक महापराक्रमी पुत्र हुआ। वह महाराजा का श्रीकरणपद का धारण करनेवाला हुआ। पद्मसिंह की स्त्री तिहुणदेवी थी। तिहुणदेवी ने अपने दिव्य गुणों से पति, श्वसुर एवं परिजनों के हृदयों को जीत लिया था।

१-प्र० सं० प्र० भा० ता० प्र० ३१ पृ० २५ (अनुयोगद्वारवृत्ति), ता० प्र० ५८ पृ० ४८ (अनुयोगद्वारसूत्र), ता० प्र० ७५ पृ० ५१ (उत्तराध्ययनलघुवृत्ति)। जै० पु० प्र० सं० प्र० १६७ पृ० १२४ (अनुयोगद्वारवृत्ति)

२-D.C.M.P. (G.O.S. Vo. No.LXXVI) P. 152 'हुडायाद्रपुर' संभव है सिरोही-राज्यान्तर्गत हणाद्रा ग्राम ही है।

पद्मसिंह के यशोराज, आशराज, सोमराज और राणक नामक चार पुत्र उत्पन्न हुये तथा सोहुका और सोहिणी नामा दो पुत्रियाँ हुईं ।

पद्मसिंह का ज्येष्ठ पुत्र यशोराज और उसका परिवार

श्रे० यशोराज व्यापारनिष्ठ था । सुहवदेवी नामा उसकी पतिपरायणा स्त्री थी । उसके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं । ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह था, उससे छोटी पेथुका नामा पुत्री और प्रह्लादन और कनिष्ठा पुत्री सज्जना थी ।

ज्येष्ठ पुत्री पेथुका का विवाह प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० आसल से हुआ और उसके चपलादेवी, नरसिंह और हरिपाल नामक तीन संतानें हुईं । चपलादेवी के राजलदेवी नामा पुत्री हुई । नरसिंह का विवाह नायकीदेवी नामा गुणवती स्त्री से हुआ । नायकीदेवी की कुक्षी से गौरदेवी नामा पुत्री का जन्म हुआ । हरपाल का विवाह माल्हणी-देवी से हुआ, जिसके तिहुणसिंह, पूर्णसिंह और नरदेव नाम के तीन सुन्दर पुत्र और तेजला पुत्री उत्पन्न हुई ।

व्य० तिहुणसिंह का विवाह रुक्मिणी नामा परम रूपवती कन्या से हुआ । इसके लवणसिंह नामक पुत्र और लक्ष्मा नामा पुत्री हुई ।

प्रह्लादन

प्रह्लादन का विवाह माधला नामा विवेकिनी कन्या से हुआ । श्रा० माधला की कुक्षी से देवसिंह, सोमसिंह नामक दो पुत्र और पद्मला, सहाला और राणी नामा तीन पुत्रियाँ हुईं ।

सज्जना

यशोराज की कनिष्ठा पुत्री सज्जनादेवी का पाणिग्रहण प्राग्वाटज्ञातीय जगतसिंह नामक एक परम चतुर व्यक्ति से हुआ । सज्जना के मोहिणी नामा एक शीलशृंगारविभूषिता परम गुणवती कन्या हुई ।

मोहिणी के पुत्र सोहिय और सहजा का परिवार

मोहिणी का विवाह रंगानिवासी कडकराज के साथ हुआ । इसके दो पुत्रियां पूर्णदेवी और उससे छोटी वयजा तथा क्रमशः चार पुत्र सोहिय, सहजा, रत्नपाल और अमृतपाल हुये ।

श्रे० सोहिय का विवाह परम सुशीला ललितादेवी और शिलुकादेवी नामा दो कन्याओं से हुआ ।

ललितादेवी के श्रीमलादेवी नामा कन्या हुई, जिसका विवाह योग्यवय में प्राग्वाटज्ञातीय जैत्रसिंह नामक युवक के साथ हुआ । श्रीमला के धारावर्ष और सल्लदेव नामक दो पुत्र हुये । सल्लदेव की स्त्री का नाम गौरदेवी था ।

शिलुकादेवी की कुक्षी से भीमसिंह, नालदेवी, प्रतापसिंह और विल्हणदेवी इस प्रकार दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं । प्रतापसिंह का विवाह चाहिणीदेवी नामा गुणवती कन्या से हुआ । सहजा की स्त्री का नाम सुहागदेवी था । सुहागदेवी वस्तुतः सौभाग्यशालिनी स्त्री थी । उसके शीलशालिनी माल्हणदेवी नामा पुत्री हुई । उसने अमृतपाल आदि मातुलजनों को निमंत्रित करके श्री मलधारीगच्छ में साग्रह दीक्षाव्रत ग्रहण किया ।

राणक और उसका परिवार और सुहड़ादेवी का 'पर्युषणा-कल्प' का लिखाना

श्रे० राणक का विवाह प्राग्वाटज्ञातीय व्यवहारीय कुलचन्द्र की धर्मपत्नी जासलदेवी की गुणगर्भा पुत्री राजलदेवी के साथ हुआ। राजलदेवी की कुक्षी से यशस्वी संग्रामसिंह नामक पुत्र हुआ।

संग्रामसिंह व्यापारकुशल एवं विश्रुत व्यक्ति था। प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० अभयकुमार की धर्मपत्नी सलक्षणा की कुक्षी से उत्पन्न सुहड़ादेवी नामा दानदयाप्रिया कन्या से संग्रामसिंह का विवाह हुआ। इसके हर्षराज, कडुकराज और गौरदेवी तीन संतानें हुई। हर्षराज का विवाह लक्ष्मीदेवी से हुआ। हर्षराज सुपुत्र और माता-पिता का परम भक्त था। उसकी स्त्री भी पतिव्रता एवं विनीतात्मा थी।

संग्रामसिंह का दूसरा पुत्र कडुकराज भी बड़ा ही सज्जन एवं कृपालु था। सुहड़ादेवी ने श्रीमलधारीसूरिजी के शुभोपदेश को श्रवण करके अपने पुत्र और पति की सहायता से 'श्रीपर्युषणाकल्पपुस्तिका' पुण्यप्राप्ति के अर्थ लिखवाई। अनुमानतः यह कार्य विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी में हुआ है।

सोढुका

यह पद्मसिंह की ज्येष्ठा पुत्री थी और श्रे० राणक से छोटी थी। इसने दीक्षा ग्रहण की और चारित्र पाल कर अपने जीवन को सार्थक किया।

वंश-वृक्ष

(१)

भरत
|
यशोनाग
|
श्रीकरण पद्मसिंह [तिहुणदेवी]
|
यशोराज [सूहवदेवी] — आशराज — सोमराज — राणक [१राजलदेवी] — सोढुकादेवी — सोहिणी

यशोराज [सूहवदेवी]
|
पृथ्वीसिंह — २ पेथुका — प्रहलादन [मायला] — ७सज्जनादेवी

प्रहलादन [मायला]
|
देवसिंह — सोमसिंह — पद्मला — समला — राणी

राणक [१राजलदेवी]
|
संग्रामसिंह [६सुहड़ादेवी]
|
हर्षराज [लक्ष्मीदेवी] — कडुकराज — गौरदेवी

जै० पु० प्र० सं० प्र० १० पृ० ११ (पर्युषणाकल्पपुस्तिका)
1-D. C. M. P. (G. O. S. Vo. No. LXXVI.) P. 360-2 (46)

(२)

- आसल [पिथुका]
  - चपलादेवी
    - राजलदेवी
  - नरसिंह [नायकीदेवी]
    - गौरदेवी
  - हरपाल [माल्हणी]
    - तिहुणसिंह [रुक्मिणी]
      - लवणसिंह
      - लक्ष्मी
    - पूर्णसिंह
    - नरदेव
    - तेजलादेवी

(३)

- रंगानिवासी कडुकराज [७ मोहिणी]
  - पूर्णदेवी
  - धयजादेवी
  - सोहिय [१ ललिता २ शीलुका]
    - ४ श्रीमलादेवी
    - भीमसिंह
    - नालदेवी
    - प्रतापसिंह [चाहिणी]
    - खिल्हणदेवी
  - सहजा
  - रत्नमाल [सुहागदेवी]
    - माल्हणदेवी (साध्वी)
  - अमृतपाल

(४)

- जैत्रसिंह [श्रीमलादेवी]
  - धारावर्ष
  - मल्लदेव [गौरदेवी]

(५)

- कुलचन्द्र [जासलदेवी]
  - १ राजलदेवी

(६)

- अभयकुमार [सलखणा]
  - १ सुहड़ादेवी

(७)

- जगतसिंह [सज्जना]
  - ३ मोहिणी

श्रेष्ठि वोसिरि आदि

●

प्राग्वाटज्ञातीय परम जिनेश्वरभक्त पुरुषवर श्रे० शालि के वंश में उत्पन्न श्रे० शक्तिकुमार के पुत्र सोही* की धर्मपत्नी शिवदेवी की कुक्षी से उत्पन्न श्रे० वोसिरि, साढ़ल, सांगण और पुण्यसिंह ने अपने माता-पिता के पुण्यार्थ श्री देवसूरिसंतानीय श्रीमुनिदेवसूरि द्वारा श्री अष्टापदजिनालय की प्रतिष्ठा करवाई तथा उनकी सहायता से उनके ही द्वारा वि० सं० १३२२ में रचे गये 'श्री शांतिनाथचरित्र' की प्रति ताड़पत्र पर लिखवाई ।*

---

*D.C.M.P. (G.O. S. Vo. No. LXXVI) P. 125 पर *'आसादी' के स्थान पर 'सोही' लिखा है ।*
प्र० सं० प्र० भा० ता० प्र० १३४ पृ० ८३ *(शान्तिनाथचरित्र)*

श्रेष्ठि नारायण

अनुमानतः विक्रम की तेरहवीं शताब्दी

संभव है विक्रम की बारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय मोहण (सोहन) एक प्रसिद्ध श्रावक हो गया है। सुहागदेवी उसकी स्त्री थी। नागड़ उसका पुत्र था। नागड़ को उसकी स्त्री सलखू से तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई। नारायण ज्येष्ठ पुत्र था। कडुया और धरणिग दोनों छोटे पुत्र थे। नारायण की स्त्री हंसलादेवी थी। हंसलादेवी के रत्नपाल नामक पुत्र हुआ। कडुया (कडुक) और धरणिग की लाखू और जासलदेवी नामा दो पत्नियाँ थीं। नारायण बड़ा धर्मात्मा एवं दृढ़ जैनधर्मी श्रावक था। श्रीमद् देवेन्द्रसूरि का सदुपदेश श्रवण करके उसने प्रसिद्ध पुस्तक 'उत्तराध्ययनलघुवृत्ति' की प्रति ताड़पत्र पर लिखवाई। यह प्रति खंभात के श्री शान्तिनाथ-प्राचीन ताड़पत्रीय जैन ज्ञान-भण्डार में विद्यमान् है।[१]

वंश-वृक्ष

मोहण [सुहागदेवी]
|
नागड़ [सलखू]
|
नारायण [हंसलादेवी] — कडुया (कडुक) [लाखूदेवी] — धरणिग [जासलदेवी]

नारायण [हंसलादेवी]
|
रत्नपाल

श्रेष्ठि वरसिंह

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् प्राग्वाटज्ञातीय सुश्रावक मोक्षार्थी पूनड़ नामक हो गया है। उसने सद्गुरु के मुखारविंद से शास्त्रों का श्रवण किया था। संसार की असारता को समझ कर अपना न्यायोपार्जित द्रव्य उसने अतिशय भक्ति-भावनापूर्वक सातों क्षेत्रों में व्यय किया था। उसकी स्त्री का नाम तेजीदेवी था। तेजीदेवी पति की आज्ञापालिनी एवं दृढ़ जैन-धर्मानुरक्ता स्त्री थी। उसकी कुक्षी से लिखा और वरसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुये। श्रे० वरसिंह ने गुरु-वचनों को श्रवण करके 'हैमव्याकरणावचूरि' नामक ग्रंथ को लिखवाया।[२]

१-प्र० सं० प्र० भा० ता० प्र० ४३ पृ० ३७। जै० पु० प्र० सं० ता० प्र० ५५ पृ० ५६ (उत्तराध्ययनलघुवृत्ति)
२-जै० पु० प्र० सं० ता० प्र० ७४ पृ० ७१ (हैमव्याकरणावचूरि)
D.C.M.P. (G.O.S Vo. No. LXXVI) P. 170 (289)

सिंहावलोकन

विक्रम की नववीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक जैनवर्ग की विभिन्न स्थितियाँ और उनका सिंहावलोकन

बौद्धमत भारत छोड़ ही चुका था। विक्रम की प्रथम आठ शताब्दियाँ जैन और वेदमत के द्वन्द्व के लिये भारत के इतिहास में प्रसिद्ध रही हैं। आरम्भ में जैनधर्म को राजाश्रय अधिक मात्रा में प्राप्त था; परन्तु पीछे से वह घटने लगा और दोनों में द्वन्द्व बढ़ता ही चला गया। भारत के एक देश का अथवा प्रान्त का एक राजा जैनमत का आश्रयदाता बनता तो उसी का कोई वंशज वेदमत का दृढ़ानुयायी होता और इतना ही नहीं; एक मत दूसरे मत को उखाड़ने के सारे प्रयत्नों को कार्य में लेता। जैनमत जैसे कठिन मत के पालन में सर्व साधारण जनता असफल रही और धीरे २ जैनियों की संख्या घटने लगी। कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य्य के प्रबल विरोध ने जैनाचार्यों को चुनौती दी। वे दोनों विद्वान् वेदमत के प्रसारण में बहुत अधिक सफल हुये। जैन मुनियों पर एवं यतियों पर भारी अत्याचार किये गये। जहाँ तपस्वी तक अत्याचारों से त्रस्त हो उठे, वहाँ साधारण गृहस्थों के धैर्य की तो बात ही क्या। वे भय के मारे जैन से शैव, शाक्त, वैष्णव बन गये और प्रत्येक वैश्यज्ञाति उसी का परिणाम है कि आज दोनों मतों में विभाजित है। जैन-धर्मावलंबियों की संख्या को दिनोदिन घटती हुई देख कर जैनाचार्यों ने विक्रम की आठवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में पुनः नवीन अजैन कुलों को जैन बनाने का संकल्प-सा ग्रहण किया। इनका यह शुद्धि-कार्य अधिकांशतः मालवा, राजस्थान और कुछ मध्यभारत के प्रान्त तक ही प्रायः सीमित रहा था। ये कठिन विहार करने लगे और प्रभावशाली क्षत्रियराजा, भूमिपति, ठक्कुर, सद्गृहस्थ तथा ब्राह्मण और ब्राह्मणश्रेष्ठियों को अपने आदर्शों से प्रभावित करके उनके मनोरथों को पूर्ण करने लगे और जैन-धर्म के प्रति उनको आकृष्ट करने लगे। इस विधि में वे बहुत ही सफल हुये और उन्होंने अनेक उच्चवर्णीय कुलों को प्रतिबोध देकर नवीन जैन कुलों की स्थापना की। इन्हीं वर्षों में कुलगुरुसंस्था की स्थापना भी हुई। जो अजैन कुल जिन जैनाचार्य्य के उपदेश से जैनधर्म स्वीकार करता था, वह प्रायः उन्हीं आचार्य को अपना कुलगुरु स्वीकार करता था और उस कुल के परिवार एवं वंशज भी उन्हीं आचार्य की परम्परा को अपने कुल का कुलगुरु मानने लगे थे। इस प्रकार कुलगुरु-संस्था का जन्म हुआ। कुलगुरु-आचार्य भी कालान्तर में नगरों में अपनी पौषधशालायें स्थापित करके रहने लगे और अपनी पौषधशाला के आधीन जैनकुलों का विशिष्ट इतिहास लिखने का कार्य करने लगे।

भारत में द्वितीय धर्मक्रांति

आज जो राजस्थान, गुजरात, मालवा में जैनकुलगुरुओं की पौषधशालायें विद्यमान हैं, इनकी बड़ी शोभा, प्रतिष्ठा रही है और बड़े२ सम्राट् इनके अधिष्ठाताओं को नमस्कार करते आये हैं। इनमें अधिकांशतः उन्हीं वर्षों में संस्थापित हुई हैं अथवा उस समय में स्थापित हुई शालाओं की शाखायें हैं। आज का जैन समाज अधिकांशतः विक्रम की आठवीं, नववीं, दसवीं, ग्यारहवीं शताब्दियों में नवीनतः जैन बने कुलों की ही संतान है। यह शुद्धिकार्य

प्रथम तीन शताब्दियों में बड़ा ही सफल रहा और फिर पुनः यवनों के प्रबल आक्रमणों के कारण जैनाचार्यों का इस ओर स्वभावतः ध्यान और श्रम कम लगने लगा। यवनों को सम्पूर्ण उत्तरी भारत भय की दृष्टि से देखने लगा, अतः जैन और वेदमतों में परस्पर छिड़ा हुआ द्वन्द्व तृतीय शत्रु को द्वार पर आया हुआ देखकर स्वभावतः समाप्तप्रायः हो गया। फिर भी जैन से अजैन और अजैन से जैन चौदहवीं शताब्दी पर्यन्त कुछ २ संख्याओं में बनते रहे।

धार्मिक जीवन

आज गिरती स्थिति में भी जैनसमाज अपनी धार्मिकता के लिये अधिक विश्रुत है यह प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य जानता है। जैन साधु अपने धार्मिक जीवन के लिये सदा दुनिया के सर्व पंथों, मतों, धर्मों के साधुओं में प्रथम ही नहीं, त्याग, संयम, आचार, विचार, वेष, भूषा, भाषण, विहार, आहार, तपस्यादि में अग्रगण्य और अति सम्मानित समझे जाते रहे हैं। ये अन्यमती साधुओं की भांति छल नहीं करते थे, किसी को धोखा नहीं देते थे और कंचन और कामिनी के आज भी वैसे ही त्यागी हैं। जैन श्रावक भी इस ही प्रकार सच्चाई, विश्वास, नेकनियत, धर्मश्रद्धा, दया, परोपकारादि के लिये सदा प्रसिद्ध रहा है। जैन श्रमण-संस्था में साधु, उपाध्याय और आचार्य इस प्रकार गुणभेद से तीन प्रकार के मुनि रक्खे गये हैं। ये संसार के त्यागी हैं फिर भी नगरों, ग्रामों में विहार करके धर्मप्रचारादि कार्य करने का इनका कर्त्तव्य निश्चित किया गया है। ये धर्म के पोषक और प्रचारक समझे जाते हैं और उस ही प्रकार युग की प्रकृति पहिचान करके ये धर्म की रक्षा करते हैं तथा उसकी उन्नति करने का अहिर्निश ध्यान करते रहते हैं।

प्राग्वाटज्ञाति में अनेक ऐसे महातेजस्वी साधु हो गये हैं, जिन्होंने अल्पायु में ही संसार का त्याग करके जैनधर्म की महान् सेवायें की हैं। ऐसे साधुओं में विक्रम की दसवीं शताब्दी में हुये सांडेरकगच्छीय श्रीमद् यशोभद्रसूरि, बारहवीं शताब्दी में हुये महाप्रभावक श्रीमद् आर्यरक्षितसूरि एवं बृहद् तपगच्छाधिपति राजराजेश्वर संमान्य श्रीमद् वादि देवसूरि, अंचलगच्छीय श्रीमद् धर्मघोषसूरि आदि प्रमुखतः हो गये हैं। प्राचीन जैनाचार्यों में ये आचार्य महान् गिने जाते हैं। उक्त आचार्यों के तेज से जैनशासन की महान् कीर्त्ति बढ़ी है। इनका सत्य, शील, साध्वाचार आदर्शता की चरमता को पहुँच चुका था। वैष्णव राजा, वेदमतानुयायी ब्राह्मण-पंडित भी उक्त आचार्यों का भारी सम्मान करते थे। गूर्जरसम्राट् सिद्धराज जयसिंह की राज्यसभा में हुये वाद में जय प्राप्त करके श्रीमद् वादि देवसूरि ने प्राग्वाटज्ञाति की कुक्षी का महान् गौरव बढ़ाया है।

श्रावकों में नव सौ जीर्ण जैनमन्दिरों का समुद्धारकर्ता प्राग्वाटज्ञातिकुलकमलदिवाकर महामंत्री सामंत, महात्मा वीर, गूर्जरमहाबलाधिकारी दंडनायक विमलशाह, गूर्जरमहामात्य वस्तुपाल, महाबलाधिकारी दंडनायक तेजपाल, जिनेश्वरभक्त पृथ्वीपाल, नाडोलनिवासी महामात्य सुकर्मा एवं नाडोलनिवासी महान् यशस्वी श्रे० पूनिग और शालिग आदि अनेक धर्मात्मा महापुरुष हो गये हैं। सच कहा जाय तो विक्रम की इन शताब्दियों में गूर्जर एवं राजस्थान में जैनधर्म की जो प्रगति रही है और उसका जो स्वर्णोपम गौरव रहा है वह सब इन धर्म के महान् सेवकों के कारण ही समझना चाहिए। इन महापुरुषों ने धर्म के नाम पर अपना सर्वस्व अर्पण किया था। अर्बुद और गिरनारतीर्थों के शिल्प के महान् उदाहरण स्वरूप जैनमंदिर मं० विमल, वस्तुपाल; तेजपाल की कीर्त्ति को आज भी अक्षुण्ण बनाये हुये हैं। ये ऐसे धर्मात्मा थे कि अकारण कृमि तक को भी कष्ट नहीं पहुँचाते थे। ये पुरुष महान् शीलवंत, देश और धर्म के पुजारी, साहित्यसेवी, तीर्थोद्धारक और बड़े २ संघों के निकालने वाले हो

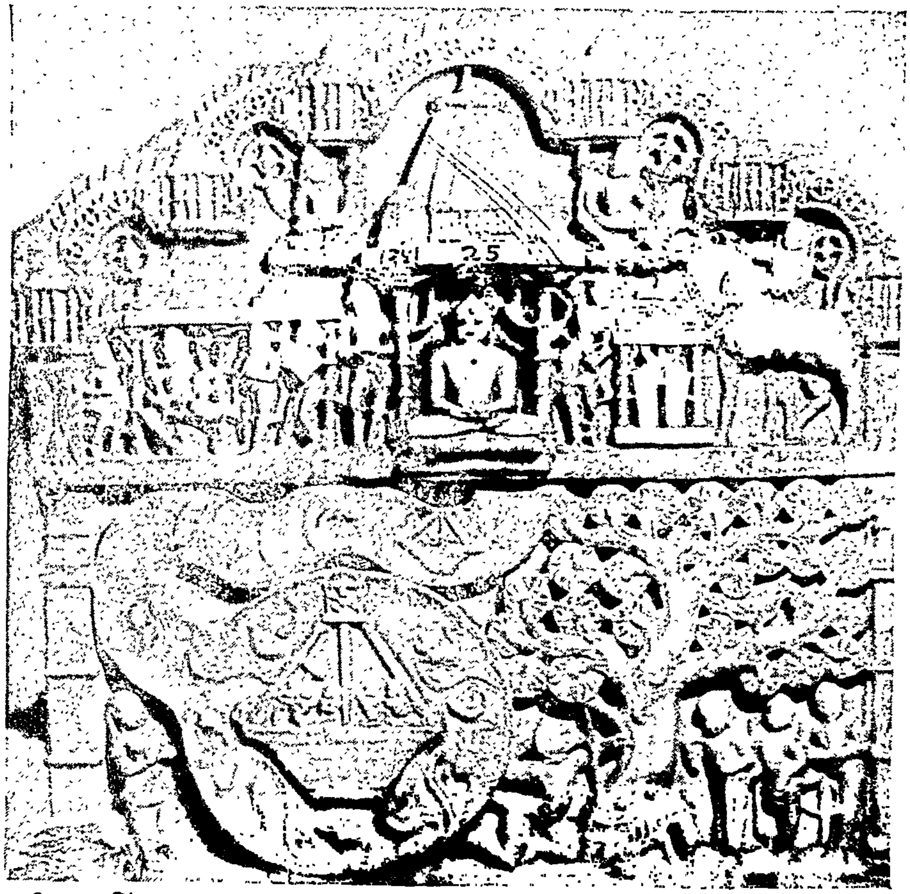
गये हैं। इनके समय में जैनधर्म की जो जाहोजलाली रही है, वह फिर देखी और सुनी नहीं गई।

उस समय के श्रावकों का द्रव्य अभयदानपत्रों के निकलवाने में, मंदिरों के बनाने में, उनका जीर्णोद्धार करवाने में, बड़े २ तीर्थसंघ निकालने में, दुष्कालों में दीन और अन्नहीनों की सेवायें करने में, ज्ञानभंडारों की स्थापनायें करवाने में, मार्गों में प्रपायें लगवाने में, दीक्षामहोत्सवों में, धर्मपर्वों पर, सदाव्रत खुलवाने में, प्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाने में, विविध तपोत्सवों में, रथयात्राओं में आदि ऐसे ही अनेक धर्म एवं पुण्य के कार्यों में व्यय होता था। जैनाचार्यों के चातुर्मासों में भी पर्युषणपर्व और रथयात्रायें आदि पर अतिशय द्रव्य व्यय किया जाता था।

प्रत्येक स्त्री और जन संध्या और प्रातःसमय रात्रि और दिवससम्बन्धी अपने कृतपापों की आलोचना करता था और उनका प्रत्याख्यान करके प्रायश्चित लेता था। जैनश्रावकों की आदर्शता की उस समय में अन्यमती समाज पर गहरी छाप थी। अन्यमती राजा, मांडलिक, ठक्कुर और स्वयं सम्राट् जैन श्रावकों का भारी मान और विश्वास करते थे। यहाँ तक कि राज्य के बड़े २ उत्तरदायीपूर्ण विभागों एवं प्रान्तों के शासक भी वे जैनियों को ही प्रथम बनाते थे। अपने विश्वासपात्र लोगों में एवं सेवकों में इनको ही प्रथम नियुक्त करते थे। गूर्जरसम्राटों का इतिहास, राजस्थान के राजाओं के चरित्र उक्त कथन की पुष्टि में देखे जा सकते हैं। ये जैनधर्मी थे, परन्तु इनके जैनधर्मी का अर्थ संकुचित दृष्टि से प्रतिबन्धित नहीं था। ये अन्य सर्व ही मतों का मान करते थे और अन्यमती मन्दिरों, धर्मस्थानों और साधुओं का कभी भी अपमान नहीं करते थे। जिस प्रकार अपने सधर्मी बन्धुओं की सेवा करना ये अपना परमधर्म समझते थे, उस ही प्रकार काल, अकाल, दुष्काल, संकट में अन्यमती दीन, अन्नहीन, अपाहिजों की सदा सेवा करने के लिये तत्पर रहते थे। प्राग्वाटज्ञाति में उत्पन्न ऐसे महान् धर्मसेवी पुरुषों से जैनसमाज की महान् प्रतिष्ठा बढ़ी है और उसकी उज्ज्वलकीर्त्ति स्थापित हुई है।

सामाजिक जीवन और आर्थिक स्थिति

जैसे-जैसे श्रीमालीवर्ग, ओसवालवर्ग, अग्रवालवर्ग में अन्यमती उच्चवर्णीय कुल जैनधर्म स्वीकार करके प्रविष्ट होते रहे थे, उस ही प्रकार प्राग्वाटश्रावकवर्ग में भी ब्राह्मण, क्षत्रियकुल जैनधर्म की दीक्षा लेकर प्रविष्ट होते रहे थे। जैनाचार्य जैन बना रहे थे और जैनसमाज उनको पूर्णतया अपना रहा था। कन्या-व्यवहार और भोजन-व्यवहार में उनसे भेद नहीं वर्तता था। धर्मकार्य में और सामाजिक कार्यों में उनके साथ में समानता का व्यवहार किया जाता था। इन शताब्दियों में नवीन बात यह देखने को मिलती है कि जैनसमाज के विभिन्न २ वर्ग अपने २ अलग २ नामों से अपने २ को प्रसिद्ध करने की चेष्टा में लग गये थे, जिसका परिणाम आगे जाकर बहुत ही बुरा निकलने वाला था। दसा, वीसा और फिर पाँचा और ढइया जैसे भेदों की उत्पत्ति भी प्रत्येक वर्ग में अपने २ वर्ग की ममताभावनाओं में ही हुई है। यह किस कारण और किस सम्वत् में अथवा क्यों होने लगा का सत्य कारण आज तक कोई नहीं जान सका। इन शताब्दियों से पूर्व के किसी भी ग्रन्थ में, लेखों में प्राग्वाट, ओसवाल, श्रीमाल, अग्रवाल जैसे वर्ग-परिचायक नामों का प्रयोग देखने में नहीं आता है। यह सब हो रहा था भविष्य के लिये बुरा, परन्तु फिर भी उस समय जैनसमाज के सर्व वर्गों में परस्पर ऐक्य और बेटी-व्यवहार था ऐसा माना जा सकता है। अगर उनमें परस्पर ऐक्य और बेटी-व्यवहार नहीं होता, तो भिन्न संस्कृति, संस्कार और मांसाहारी क्षत्रियकुलों को वे कैसे अपने में मिलाने



अनन्य शिल्पकलावतार श्री लूणसिंहवसहि की देवकुलिका सं० १९ में अश्वावबोध और समलीविहार तीर्थों का दृश्य।
उन दिनों में जहाज कैसे बनते थे, इस चित्र से समझा जा सकता है। देखिये पृ० २४१ पर।

की योग्यता रख सकते थे। भिन्न संस्कृति, संस्कारवाले कुलों को मिलाने की जिस वर्ग में योग्यता है, वह वर्ग अपनी समाज के अन्य वर्गों से कैसे सामाजिक सम्बन्ध तोड़ सकता है सहज समझ में आने की वस्तु है।

जैनसमाज उस समय भी बड़ा ही प्रभावक और सम्पत्तिशाली था। भारत का व्यापार जैनसमाज के ही शाहूकारी हाथों में था। जगह २ जैनियों की दुकानें थीं। अधिकांशतर जैन घी, तेल, तिल, दाल, अन्न किराणा, सुवर्ण और चांदी, रत्न, मुक्ता, माणिक का व्यापार करते थे। कृषकों को, ठक्कुरों को, राजा, महाराजाओं को रुपया उधार देते थे। बाहर के प्रदेशों में भी इनकी दुकानें थीं। भरोंच, सूरत, बीलीमोरा, खंभातादि बन्दरों से भारत से माल के जहाज भरकर बाहर प्रदेशों को भेजे जाते थे और बाहर के देशों से सुवर्ण और चांदी तथा भांति २ के रत्न, माणिक भरकर भारत में लाते थे। बड़े २ धनी समुद्री बंदरों पर रहते थे और वहीं से बाहर के देशों से व्यापार करते थे। खंभात, प्रभासपत्तन और भरोंच नगरों के वर्णन जैन ग्रन्थों में कई स्थलों पर मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि भारत के व्यापारिक केन्द्रनगरों में जैनियों की बड़ी २ बस्तियाँ थीं और उनका सर्वोपरि प्रभाव रहता था। वे सम्पत्तिशाली होने पर भी सादे रहते थे और साधारण मूल्य के वस्त्र पहिनते थे। अर्थ यह है कि वे बड़े मितव्ययी होते थे। स्त्री और पुरुष गृह के सर्वकार्य अपने हाथों से करते थे। संपत्ति और मान का उनको तनिक भी अभिमान नहीं था। उनकी वेष-भूषा देखकर कोई बुद्धिमान् भी यह नहीं कह सकता था कि उनके पास में लखों एवं कोटियों की सम्पत्ति है। जैन ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि जब कोई संघ निर्दिष्ट तीर्थ पर पहुँचकर संघपति को संघमाला पहिनाने का उत्सव मनाता था, उस समय अकिंचन-सा प्रतीत होता हुआ कोई श्रावक माला की ऊंची से ऊंची बोली बोलता हुआ सुना एवं पढ़ा गया है। एकत्रित संघ को उसकी मुखाकृति एवं वेष-भूषा से विश्वास ही नहीं होता था कि वह इतनी बड़ी बोली की रकम कैसे दे देगा। जब उसके घर पर जा कर देखा जाता था तो आश्चर्य से अधिक धन वहाँ एकत्रित पाया जाता था। गूर्जरसम्राट् कुमारपाल जब संघ निकाल कर शत्रुंजयतीर्थ पर पहुँचे थे, माला की बोली के समय प्राग्वाटज्ञातीय जगड़ूशाह ने सवा कोटि की बोली बोल कर माला धारण की थी। काल, दुष्काल के समय भी एक ही व्यक्ति कई वर्षों का अन्न अपने प्रान्त की प्रजा के पोषण के लिये देने की शक्ति रखता था। ऐसे वे धनी थे, ऐसा उनका साधारण रहन-सहन था और ऐसे थे उनके धर्म, देश, समाज के प्रति श्रद्धापूर्ण भाव और भक्ति। अपने असंख्य द्रव्य और अखूट अन्न को व्यय करके जैनसमाज में जो अनेक शाह हो गये हैं, उनमें से अधिक इन्हीं वर्षों में हुये हैं, जिन्होंने दुष्कालों में, संकट में देश और ज्ञाति की महान् से महान् सेवायें की हैं और शाहपद की शोभा को अक्षुण्ण बनाये रक्खा है।

वे अपने धर्म के पर्वों पर और त्यौंहारों पर अपनी शक्ति के योग्य दान, पुण्य, तप, धर्माराधना करने में पीछे नहीं रहते थे। बड़े २ उत्सव-महोत्सव मनाते थे, जिनमें सर्व प्रजा सम्मिलित होती थी। जितने बड़े २ तीर्थ आज विद्यमान् हैं, जिनकी शोभा, विशालता, शिल्पकला दुनिया के श्रीमंतों को, शिल्पविज्ञों को आश्चर्य में डाल देती हैं; इनमें से अधिकांश तीर्थों में बने बड़े २ विशाल जिनालयों का निर्माण, जिनमें एक २ व्यक्ति ने कई कोटि द्रव्य व्यय किया है, उन्हीं शताब्दियों में हुआ है। ये बड़े २ संघ निकालते थे और स्वामीवत्सल (प्रीतिभोज) करते थे, जिनमें सैंकड़ों कोसों दूर के नगर, ग्रामों से बड़े २ संघ निमंत्रित होकर आते थे। ये संघ कई दिनों तक ठहराये जाते थे। पहिरामणियों में कई सेर मोदक और कभी २ मोदक के लड्डुओं में एक या दो स्वर्णमुद्रायें रखकर

मूल्यवान् वस्त्र के साथ में प्रत्येक सधर्मी बन्धु को स्वामी-वत्सल करने वाले की ओर से दिया जाता था। अंजन-शलाका-प्रतिष्ठोत्सवों में, दीक्षोत्सवों में, पाटोत्सवों में, उपधानादि तपोत्सवों में अगणित द्रव्य व्यय किया जाता था। सारांश यह है कि उस समय के लोग अपने सर्वस्व एवं अपने धन, द्रव्य को समाज की सेवा में और धर्म की प्रभावना करने में पूरा २ लगाते थे। धनपति होकर भी भोग और विलास से वे दूर थे। विलास की अकिंचन सामग्री भी उनके धन से भरे गृहों में देखने तक को नहीं मिलती थी। घर पर आये अतिथि का बिना धर्म, ज्ञाति-भेद के वे स्तुत्य आतिथ्य-सत्कार करते थे। घर से किसी को कभी भी क्षुधित नहीं जाने देते थे।

जैनसमाज अपने साधुओं का बड़ा मान करती थी। उनके ठहरने के लिये, चातुर्मास में स्थिर रहनेके लिये और देवदर्शन के लिये प्रत्येक जैन वसति वाले छोटे-बड़े ग्राम, नगर में छोटे बड़े उपाश्रय, पौषधशालायें, मन्दिर होते थे। बड़े २ नगर जैसे अणहिलपुरपत्तन, प्रभासपाटण, खम्भात, भरौंचादि में कई एक उपाश्रय और पौषध-शालायें लक्षों रुपयों के मूल्य की बनाई हुई होती थीं।

लड़के और लड़कियों का विवाह बड़ी आयु में होता था। वर और कन्या की परीक्षा संरक्षक अथवा माता-पिता करते थे और सम्बन्ध भी उनकी ही सम्मति एवं निर्णय पर निश्चित होते थे। पर्दा की आज जैसी प्रथा बिल्कुल नहीं थी। विवाह होने के पूर्व वर और कन्या अपने भावी श्वसुरालय में निमन्त्रित होते थे और कई दिवसपर्यन्त वहाँ ठहरते थे। वे संघादि में भी साथ २ रह सकते थे। उनको बात-चीत करने की भी पूरी स्वतन्त्रता थी। वे संयमशील माता-पिताओं की संयमशील, ब्रह्मचर्य्यव्रत के पालक, कुलमर्यादा एवं मान को अक्षुण्ण बनाये रखने वाली सन्तानें थीं। कन्या-विक्रय, वरविक्रय जैसी समाजघातक कुप्रथायें उन दिनों में ज्ञात भी नहीं थीं। बड़े २ दहेज दिये जाते थे, परन्तु पहिले से उनका परस्पर निश्चय नहीं करवाया जाता था।

घर में वृद्धजन पूजनीय और श्रद्धा के पात्र होते थे। समस्त परिवार प्रमुख की आज्ञा में चलता था। बड़े से बड़ा परिवार भी एक चूल्हे रोटी खाता था और सम्मिलित व्यापार करता था। कन्दमूल का भोजन में जहाँ तक होता कम प्रयोग होता था। लहसुन, प्याज जैसी गन्ध देने वाली एवं असंख्य जीवों का पिण्डवाली चीजों का प्रयोग सर्वथा वर्जित था। भोजन में घी, तेल, दूध, दाल, सुखाये हुये शाक, रोटी का ही अधिक प्रयोग था। हरी शाक भी गिनती की होती थी। रात्रिभोजन सर्वथा वर्जित था। अभक्ष्य चीजों का प्रयोग बिलकुल नहीं होता था। अतः वे दीर्घायु होते थे और पूर्ण स्वस्थ रहते थे। ग्रामों और छोटे नगरों में रहने वाले गौ और भैंसें रखते थे और अपने पोषण के योग्य अन्नप्राप्ति के लिये कृषि भी करते थे। खेत में वे स्वयं कार्य करते थे और सेवकों से भी सहायता लेते थे। वे किसी के आश्रित नहीं थे। वे किसी के आगे हीन बनकर नहीं रहते थे और नहीं किसी वस्तु के लिये किसी के आगे हाथ ही पसारते थे। जैनसमाज में भिक्षा माँगने की प्रथा नहीं तो कभी थी और आज भी नहीं है। जैन कर्मठ कार्यशील होता है। वह अपने हाथों कमाता है। वह व्यापार में अधिक विश्वास रखता है। वह अपना कार्य अपने हाथों करने में किसी भी प्रकार की लज्जा एवं अपमान का अनुभव नहीं करता है। उसका मूल उद्देश्य सदा ही आय से कम व्यय करने का होता है और इसी का सुफल है कि वह दिनोंदिन धन की वृद्धि ही करता रहता है। समय पर अपने संचित द्रव्य का सदुपयोग करने में वह कभी पीछे नहीं रहा है। इतिहास इस बात को प्रमाणित कर रहा है। उन शताब्दियों में जैनसमाज स्वस्थ, सुखी, समृद्ध, सुसंगठित और धर्मभक्त

था, तब ही वह हमारे लिये महामाहात्म्यवाले तीर्थ, जिनालय, ज्ञानभण्डार छोड़ गया है, जिनके ही एक मात्र कारण आज का जैनसमाज भी कुलीन, विश्वस्त, उन्नतमुख और गौरवशाली समझा जाता है।

जैनवाङ्मय संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कभी जैनमत राजा और प्रजा दोनों का एक-सा धर्म था और कभी नहीं। विक्रम की इन दुःखद शताब्दियों में जैनधर्म को वेदमत के सदृश राजाश्रय कभी भी सत्यार्थ में थोड़े से वर्षों को छोड़ कर प्राप्त नहीं रहा है। यह इन शताब्दियों में जैन साधु और जैनश्रावकों द्वारा ही सुरक्षित रक्खा गया है। अतः जैन-साहित्य बाहरी आक्रमणों के समय में भारत के अन्य राज्याश्रित साहित्यों की अपेक्षा अधिकतम खतरे में और सशंकित रहा है। राजाश्रय प्राप्त करके ही कोई वस्तु अधिक चिरस्थायी रह सकती है, यह बात जैन-साहित्य की रक्षाविधि से मिथ्या ठहरती है। भारत में विक्रम की आठवीं शताब्दी से यवनों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। महमूदगजनवी और गौरी के आक्रमणों से भारत का धर्म और साहित्य जड़ से हिल उठा था। एक प्रकार से बौद्धसाहित्य तो जला कर भस्म ही कर दिया गया था। वेद और जैन-साहित्य भण्डारों को भी अग्नि की लपटों का ताप सहन करना पड़ा था। धन्य है जैन साधु और श्रीमंत साहित्यप्रेमी जैन श्रावकों को कि जिनके सतत् प्रयत्नों से ज्ञानभण्डारों की स्थापना करने की बात सोची गई थी और वह कार्यरूप में तुरन्त परिणित भी कर दी गई थी। जिस प्रकार जैन मन्दिरों के बनाने में जैन अपना अमूल्य धन मुक्तहृदय से व्यय करते थे, उस ही प्रकार वे जैन ग्रन्थों, आगमों, निगमों, शास्त्रों, कथाग्रन्थों की प्रतियाँ लिखवाने में व्यय करने लगे। प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठियों ने भी इस क्षेत्र में भारी और सराहनीय भाग लिया है। श्रेष्ठि देशल, धीणाक, मण्डलिक, वाजक, जिह्वा, यशोदेव, राहड़, जगतसिंह, रामदेव, ठक्कुराज्ञि नाऊदेवी, श्रे० धीना, श्रा० सुहड़ादेवी, श्रे० नारायण, श्रे० धरसिंह आदि आगमसेवी उदारमना श्रीमंतों ने कई ग्रंथों की प्रतियाँ ताड़पत्र और कागज पर करवाई और उनको ज्ञानभण्डारों में तथा साधुमुनिराजों को भेंट स्वरूप प्रदान कीं।

साहित्य और शिल्पकला

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय गूर्जरमहामात्य वस्तुपाल की विद्वत्-परिषद् में राजा भोज के समान नवरत्न (विद्वान्) रहते थे। कई जैनाचार्य उनकी प्रेरणाओं पर जैनसाहित्यसृजन में लगे ही रहते थे। वस्तुपाल की विद्वत्परिषद का वर्णन उसके इतिहास में पूरा २ दिया गया है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन मंत्री भ्राताओं ने अट्ठारह कोटि द्रव्य व्यय करके जैनग्रन्थों की प्रतियाँ करवाई और उनको खंभात, अणहिलपुर-पत्तन और भड़ौंच में बड़े २ ज्ञानभण्डारों की स्थापना करके सुरक्षित रखवाई गई। जैनसमाज के लिये यह गौरव की बात है कि उसकी स्त्रियों ने भी जैन-साहित्य की उन्नति के लिये अपने द्रव्य का भी पुरुषों के समान ही व्यय करके साहित्यप्रेम का परिचय दिया है।

शिल्पकला के लिये कहते हुये यह कहना प्रथम आवश्यक प्रतीत होता है कि जैनियों द्वारा प्रदर्शित शिल्प-कला मानव की सौन्दर्यप्यासी रूचि पर नहीं घूमती थी। प्राग्वाटज्ञातीय बन्धुवर महाबलाधिकारी दण्डकनायक विमल द्वारा विनिर्मित एवं वि० सं० १०८८ में प्रतिष्ठित अर्बुदगिरिस्थ श्रीविमलवसति की शिल्पकला को देखिये। वहाँ जो भी शिल्पकार्य मिलेगा, वह होगा धर्मसंगत, पौराणिक एवं महान् चरित्रों का परिचायक। इस ही प्रकार वि० सं० १२८७ में प्रतिष्ठित हुई अर्बुदगिरिस्थ श्री नेमिनाथ नामक लूणसिंहवसति को भी देखिये, उसमें भगवान्

नेमिनाथ और राजमति के विवाहविषयक वार्तों को दिखाने वाला शिल्पकाम होगा। द्वारिका का दृश्य जिसमें समुद्र तटों का देखाव, तटपर के वन, उपवन, गिरि, वसति, गौ आदि पशुओं के झुण्डों के देखाव और चारागाह के हरितम जंगल दिखाये गये हैं, मनोहर हैं। विमलवसहि के निर्माण में अट्ठारह कोटि द्रव्य और लूणसिंहवसहि के निर्माण में बारह कोटि छप्पन लक्ष द्रव्य व्यय हुआ है। ये दोनों जिनालय संसार में शिल्प की दृष्टि से बने भवनों में अपनी विशिष्टता के लिये सर्व प्रथम ठहरते हैं। लूणसिंहवसहिका का निर्माण तो दण्डनायक तेजपाल की प्रतिभा-सम्पन्ना स्त्री अनोपमा की सम्पूर्ण देखरेख में ही हुआ है। स्त्री अनोपमा में शिल्पकार्य के लिये प्रेमपूर्ण हृदय था। वह शिल्पशास्त्र की ज्ञाता भले नहीं भी थीं, परन्तु वह उत्तम शिल्प की परीक्षा करना जानती थी। उसका यह गुण उक्त वसहिका के प्रकार को देखकर सहज समझा जा सकता है। साधन-सामग्री की पर्याप्त कमी के कारण मैं अन्य प्राग्वाटज्ञातीय शिल्पप्रेमी श्रेष्ठियों के शिल्पकार्यों का इतिहास देने में अवश्य अपने को असफल हुआ मान रहा हूँ। फिर भी जिन शताब्दियों में विमलवसहि और लूणसिंहवसहि जैसी शिल्पकलावतार साकारप्रतिमाओं का अवतरण हुआ है, उन वर्षों में प्रत्येक जैन शिल्प का अतिशय प्रेमी था और उसका वह शिल्पप्रेम ईश्वरोपासक था और धर्मोन्नतिकारक था भलिविधि सिद्ध हो जाता है। वस्तुपाल द्वारा विनिर्मित गिरिनारपर्वतस्थ श्रीवस्तुपालनामक टूँक भी बारह कोटि द्रव्य से भी अधिक में बनी थी। शिल्प पर इतिहास के पृष्ठों में यथाप्रसंग सविस्तार खूब ही लिखा गया है, अतः यहाँ पक्तियाँ बढ़ाना ठीक नहीं समझता हूँ।

राजनैतिक स्थिति

जैनवर्ग अथवा जैनसमाज जैसा धर्म में प्रमुख रहा है, वैसा व्यापार और राजनीति के क्षेत्र में भी अग्रिम रहा है। मेरी मति से इसका कारण यही होता है कि धर्म में जो दृढ़ होता है वह सर्वत्र उन्नति करता है और फलता है तथा वह अधिक जनप्रिय, निष्कपट, विश्वस्त, दृढ़, कष्टसहिष्णु, चतुर, न्यायी, दूर-दर्शी, परोपकारी, निस्वार्थी, व्यवहारकुशल, सदाचारी विशिष्टगुणों वाला होता ही है। ये गुण राज्यचालन एवं शासनकार्य करने वाले व्यक्ति में होने चाहिए। एतदर्थ राजनीतिक्षेत्र में भी जैन सफल होते देखे गये हैं। इसके पक्ष में सौराष्ट्र, गूर्जरभूमि, राजस्थान, मालव-राज्यों के तथा छोटे-बड़े मण्डलों के इतिहासों से सहस्रों उदाहरण लिये जा सकते हैं। जैन सदा अपने धर्म का अनुव्रती रहा है और एतदर्थ वह देश एवं अपने प्रान्तीय राज्यों की सेवा में पूरा २ सफल हुआ है। भारत का इतिहास स्पष्ट कहता है कि अपने स्वामी राजा एवं सम्राट् को, माण्डलिक, ठक्कुर तक को ब्राह्मण और क्षत्रिय मंत्रियों ने समय एवं अवसर पर धोखा दिया है एवं उनके साथ में विश्वासघात किया है और राज्यों में वे बड़े २ घातक परिवर्तनों के कारणभूत हुये हैं। परन्तु इतिहास एक भी ऐसा उदाहरण नहीं दे सकता, जो यह सिद्ध करे कि अमुक जैन महामात्य, मन्त्री, महाबलाधिकारी, दंडनायक, कोषाध्यक्ष अथवा विश्वस्त राजकर्मचारी ने अपने स्वामी को अपने स्वार्थ एवं अपना अपमान हुये के कारण नीचा दिखाने का कभी भी प्रयत्न किया हो तथा उसको राज्यच्युत करके आप राजा बना हो। भारत में निवास करने वाली छोटी, बड़ी, ऊँची और नीची प्रत्येक ज्ञाति का कहीं न कहीं और कभी न कभी किसी न किसी प्रान्त में राज्य अवश्य छोटा या बड़ा रहा है, परन्तु किसी भी जैन ने कभी भी, कहीं भी छोटा या बड़ा राज्य स्थापित किया ही नहीं। वह तो धर्म और देश का भक्त रहा है। इतिहास में यह भी कहीं नहीं मिलेगा कि किसी वीरवर एवं महाप्रभावक जैनश्रावक ने कभी राज्यस्थापना करने का प्रयत्न तो दूर, मन एवं स्वप्न में भी उसका

विचार किया हो। वह तो अपरिग्रह में विश्वास रखने वाला होता है। राज्यचालन में अवश्य उसने पूरा २ योग दिया है, यह उसकी देशभक्ति, प्रजासेवा-भावनाओं का स्पष्ट प्रमाण है। तभी तो यह जनश्रुति चलती आई है कि जिस राज्य का महाजन संचालक नहीं, वह राज्य नष्ट हुये बिना रहता नहीं। महाजनवर्ग को जो समय २ पर नगरश्रेष्ठिपद, शाहपद मिलते रहे हैं, इन पदों के पाने वाले अधिक संख्या में जैन श्रीमन्त ही हुये हैं। श्रेष्ठि,श्रीमन्त, शाहूकार जैसे गौरवशालीपद जो उदारता,वैभवत्व, सत्य और सरलतादि गुणों के परिचायक उपाधिपद हैं जैनश्रावकों ने ही अपना अमूल्य धन, तन जनता-जनार्दन के अर्थ लगा कर ही प्राप्त किये हैं। तभी तो कहा जाता है:—

'वाणिया बिना रावणनों राज गयो'।

'ओसवाल भूपाल है, पौरवाल वर मित्र।
श्रीमाली निर्मलमती, जिनके चरित विचित्र'॥

ये दोहे कब से चले आते हैं समय निश्चित नहीं कहा जा सकता है। प्राग्वाटज्ञातीय बन्धुओं के विषय में कुछ पद विमलचरित्र में हैं, जिनसे उनके विशिष्ट गुणों का परिचय मिलता है:—

'सप्तदुर्ग प्रदानेन, गुण सप्तक रोपणात्। पुट सप्तकवंशोऽपि प्राग्वाट इति विश्रुता ॥६५॥
आद्यं १प्रतिज्ञानिर्वाहि, द्वितीयं २प्रकृतिस्थिरा। तृतीयं ३प्रौढवचन, चतुः ४प्रज्ञाप्रकर्षवान् ॥६६॥
पंचमं ५प्रपंचज्ञः, शष्ठं ६प्रबलमानसम्। सप्तमं ७प्रभुताकांची, प्राग्वाटे पुटसप्तकम्' ॥६७॥

अर्थात् पौरवालवर्ग का व्यक्ति प्रतिज्ञापालक, शांतप्रकृति, वचनों का पक्का, बुद्धिमान्, दूरदृष्टा, दृढ़हृदयी और प्रगतिशील होता है।

इतिहास इस बात को सिद्ध करता है कि प्राग्वाटवर्ग जैसा धर्म एवं कर्तव्य-क्षेत्र में प्रमुख रहा है, रणवीरता में भी उसका वैसा ही अपना स्थान विशिष्ट रहा है।

'रणि राउली शूरा सदा, देवी अंबावी प्रमाण।
पौरवाड़ प्रगटमल्ल, मरणिन मूके माण'॥

प्राग्वाटकुलों की कुलदेवी अंबिका हैं, जो रणदेवीमाता भी मानी जाती हैं। प्राग्वाटवर्ग का व्यक्ति वीर होता है, उसकी अपनी कुलदेवी में पूरी आस्ता, निष्ठा होती है। वह समरक्षेत्र में वीरता प्रगट करता है और मर कर भी अपने मान को नहीं खोता।

विक्रम संवत की आठवीं शताब्दी से लगाकर तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक तथा कुछ चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक के अन्तर में प्राग्वाटश्रावकवर्ग में ऐसे अनेक वरवीर, महामात्य, दंडनायक हो गये हैं, जिनकी तलवार क्षत्रियों से ऊपर रही है। गूर्जरमहाबलाधिकारी मंत्री विमल, गूर्जरमहामात्य वस्तुपाल, दंडनायक तेजपाल, जिनके इतिहास इस प्रस्तुत इतिहास में सविस्तार दिये गये हैं प्रमाण के लिये पर्याप्त हैं। अकेले विमलशाह के वंश में निरन्तर हुये परंपरित आठ व्यक्तियों ने गूर्जरसाम्राज्य के महामात्य, अमात्य एवं

दण्डनायक जैसे महान् उत्तरदायी एवं जोखमभरे पदों पर रहकर आदि से अंत तक गूर्जरसाम्राज्य की महान् से महान् सेवायें की हैं, जिनका परिचय इस ही इतिहास में दिया जा चुका है। महामात्यवस्तुपाल के वंश ने भी गूर्जरभूमि की बड़ी २ सेवायें की हैं—इसी इतिहास में देखिये। यहाँ इतना ही कहना अलं है कि प्राग्वाट-वर्ग का राजनीति के क्षेत्र में इन शताब्दियों में पूरा २ वर्चस्व रहा है और गूर्जरसाम्राज्य के जन्म में, उत्थान में और उसको सुदृढ़ और शताब्दियों पर्यन्त स्थायी रखने में प्राग्वाटव्यक्तियों का श्रम, शौर्य और बुद्धि प्रधानतः लगी हैं—गूर्जरभूमि और उसके शासकों का इतिहास इस बात को अक्षरशः सिद्ध कर रहा है। अन्य प्रान्तों में भी प्राग्वाटव्यक्ति इन शताब्दियों में राजनीति में पूरा २ भाग लेने वाले हुये हैं। परन्तु साधन-सामग्री के अभाव में उनके विषय में लिखा जाना शक्य नहीं है।

॥ ॐ ॥

प्राग्वाट-इतिहास

तृतीय खण्ड

[विक्रम संवत् की चौदहवीं शताब्दी से विक्रम संवत् की उन्नीसवीं शताब्दी पर्यन्त ।]

* ॐ *

प्राग्वाट-इतिहास

तृतीय खंड

न्यायोपार्जित स्वद्रव्य को मंदिर और तीर्थों के निर्माण और जीर्णोद्धार के विषयों में व्यय करके धर्म की सेवा करनेवाले प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थ

धर्मवीर नरश्रेष्ठ श्री ज्ञान-भण्डार-संस्थापक श्रेष्ठि पेथड़ और उसके यशस्वी वंशज, डूंगर पर्वतादि

विक्रम संवत् १३५३ से विक्रम संवत् १५७१ पर्यन्त

पेथड़ के पूर्वज और अनुज

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गूर्जरप्रदेश की राजधानी अणहिलपुरपत्तन के समीप के मंडेरक नामक ग्राम में प्राग्वाटज्ञातीय प्रसिद्ध श्रेष्ठि सुमति नामक व्यवहारी रहता था। उसके आभू नामक एक प्रसिद्ध पुत्र था। आभू दृढ़ जैन-धर्मी, दयालु एवं महोपकारी पुरुष था। आभू का पुत्र आसड़ था। आसड़ भी अपने पिता के सदृश बहुत गुणवान् एवं धर्मात्मा था। वह महान् आसड़ के नाम से ग्रंथों में प्रसिद्ध है। आसड़ के मोख् और वर्द्धमान नामक दो पुत्र थे।

'स्वस्तिश्री वर्द्धमान नगर प्रणादज् विभ्राजिने,। श्री संडेरपुरे सुरालय समे प्राग्वाट वंशोत्तमः ।।
आभूर्भुवि विश्रुत अभूत् सुमतिर्भूमि प्रभु प्रार्थित । स्तज्जातोऽन्वय पद्मगासुररविः श्रेष्ठी महानासडः ।।१।।
सन्नुत्वो मोषनामा नयविनयनिधिः सुगुरामीवदीय स्तद्भ्राता वर्द्धमानः समभनि जनतासु स्वसौजन्यमान्यः ।

मोखू अपने पूर्वजों के सदृश ही धनी, मानी एवं उदारहृदय श्रावक था। उसकी स्त्री का नाम मोहनीदेवी था। मोहनीदेवी पतिपरायणा एवं जैनधर्मदृढ़ा श्राविका थी। उसने चार पुत्रों को जन्म दिया। जिनके नाम क्रमशः यशोनाग, वाग्धन, प्रह्लादन और जाल्हण थे। चारों भ्राताओं में अधिक भाग्यशाली वाग्धन हुआ। वाग्धन की धर्मपरायणा स्त्री सीता थी। सीता की कुक्षी से न्याय एवं सत्य का पुजारी चांडसिंह नामक अति प्रसिद्ध एवं गुणी पुत्र हुआ। चांडसिंह के चार बहिनें थीं—खेतू, मूंजल, रत्नादेवी और मयणलदेवी। चाण्डसिंह का विवाह प्राग्वाटज्ञातीय मंत्री बीजा की स्त्री खेतू से उत्पन्न शील एवं सुन्दरता में प्रसिद्ध गौरी नामा कन्या से हुआ। गौरी की कुक्षी से महान् यशस्वी, धर्मवीर नरश्रेष्ठ पृथ्वीभट्ट जिसको जैन ग्रंथकारों ने पेथड़ करके लिखा है का और अन्य छः प्रतापी पुत्र रत्नसिंह, नरसिंह, मल्लराज, विक्रमसिंह, चाहड़ (धर्मण) और मुंजाल नामक प्रसिद्ध, दानवीर, श्रीमंत पुत्रों का जन्म हुआ। सातों भ्राताओं में परस्पर अगाध स्नेह-प्रेम था। इनके एक खोखी नामा बहिन भी थी। वह अति धर्मपरायणा एवं सुशीला थी। पेथड़ की स्त्री का नाम सुहवदेवी था। रत्नसिंह का विवाह सुहागदेवी नामा गुणवती कन्या से हुआ था। नरसिंह की स्त्री नयणादेवी थी, जो गृहकार्य में अति दक्ष और निपुणा थी। मल्लराज की स्त्री प्रतापदेवी थी। विक्रमसिंह और चाहड़ की सीटला और चपलादेवी क्रमशः

'अन्यूनान्यायमार्गोपनयनरसिकस्तत्सुत श्चंडसिंहः सप्तासजतू (संस्तात्तनूजाः) प्रथितगुणगणाः पेथडस्तेषु पूर्वः ॥२॥
नरसिंहरत्नसिंहौ चतुर्थमल्लस्ततस्तु मुंजालः विक्रमसिंहो धर्मण इत्येतस्यानुजाः क्रमतः ॥३॥
संडेरकेऽणहिलपाटकपत्तनस्यासन्ने य एवनिरमापय दुच्चैत्यं।
स्वस्वैः स्वकीय कुलदैवत वीरसेशंत्क्षेत्राधिराज सतताश्रित सन्निधानं' ॥४॥

उपरोक्त दोनों प्रशस्तियाँ जो 'अनुयोगद्वारसूत्रवृत्ति' और 'ओघनिर्युक्ति' में हैं वि० सं० १५७१ की हैं जो पर्वत और कान्हा के समय में लिखी गई हैं। जै० पु० प्र० संग्रह में पृ० १८ पर प्रशस्ति सं० १६ जो 'भगवतीसूत्र सटीक' में है मोखू के समय वि० सं० १३५३ की लिखी हुई है। दोनों प्रशस्तियों में पुरुषों के नामों के क्रम में अन्तर है। द्वि० प्रशस्ति में मोखू के पुत्र 'वाग्धन' का पुत्र चांडसिंह है और प्र० प्रशस्ति में मोखू का भ्राता 'वर्धमान' और उसका पुत्र चांडसिंह है। द्वि० प्रशस्ति २१८ वर्ष प्राचीन है; अतः अधिक मान्य यही है।

'योऽचीकरन्मंडपमात्मपुण्यवल्लीमिवारोहयितुं सुकर्म्मा। ग्रामे च संडेरकनाम्नि वीरचैत्येऽजनि श्रेष्ठीवरः स मोखूः ॥३॥
मोहिनीनाम तत्पत्नी चत्वारस्तनयास्तयोः। यशोनागो धर्मधुर्यः वाग्धनः शुद्धदर्शनः ॥४॥
प्रल्हादनो जाल्हणश्च गुणिनोऽमी तनूभवाः। वाग्धनस्य गृहिण्यासीत् सीतू सम्यक् शीलभाक् ॥५॥
तत्कुक्षिभूस्तत्पुत्रश्चांडसिंहो विशुद्धधीः। सद्धर्मकर्मनिष्णातो विनयी पूज्यपूज्यकः ॥६॥
पंचपुत्र्योऽभवन् खेतू मूंजल-रत्नदेव्यथ। मयणल..........सर्वा निर्मला धर्मकर्मभिः ॥७॥
इतश्च—बीजाभिधोऽभवन्मंत्री खेतू नाम्नि च तत्प्रिया। तत्पुत्री गोरिदेवीति पुण्यकर्मसु सोद्यमा। ८॥
तां तूढवांश्चांडसिंहस्तत्तनूजा गुणोज्ज्वलाः। अद्यः पृथ्वीभटो धीमान् रत्नसिंहो द्वितीयकः ॥९॥
वदान्यो नरसिंहश्च तुर्यो मल्लस्तु विक्रमी। विवेकी विक्रमसिंह-श्चाहडः शुभाशयः ॥१०॥
मूंजालश्चेत्यमीषां तु कल्याणाय कृतोद्यमा। स्वसा खोखी रता धर्मे पत्न्यश्चैषां क्रमादिमाः ॥११॥
प्रथमा सूहवदेवी सुहागदेव्यथापरा। निपुणा नयणादेवी प्रतापदेव्यथा मता ॥१२॥
सीटला चापलादेवी पुण्याचारपरायणा। आसां च पुत्राः पुत्र्यश्चाभूवन् भाग्यभराचिताः' ॥१३॥

जै० पु० प्र० सं० प्र० १६ पृ० १८ [भगवतीसूत्र]

ओघनिर्युक्ति' और 'अनुयोगद्वारवृत्ति' की प्रशस्तियों में 'चाहड़' के स्थान पर 'धर्मण' छपा है, परन्तु ये प्रशस्तियें उक्त प्रशस्ति से बहुत पीछे की हैं, अतः 'चाहड़' नाम ही अधिक सही समझा गया है।

धर्मपत्नियाँ थीं। इस प्रकार धाम्धन का परिवार अति विशाल एवं सुखी था। इन सातों भ्राताओं में पेथड़ अधिक प्रसिद्ध हुआ। पेथड़ ने संडेरक में एक भव्य जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था।

पेथड़ और उसके भ्राताओं के विविध पुण्यकार्य

पेथड़ का संडेरकपुर को छोड़ कर बीजापुर का बसाना और वहाँ निवास करना

पेथड़ और संडेरक ग्राम के अधीश्वर के बीच किसी कारण से झगड़ा हो गया। निदान सातों भ्राताओं ने संडेरक ग्राम को छोड़ने का विचार कर लिया। पेथड़ ने बीजा नामक एक वीर क्षत्रिय के सहयोग से बीजापुर नामक नगर को बसाया और अपने समस्त परिवार को लेकर वहाँ जाकर उसने वास किया। बीजापुर में आकर बसने वालों के लिये पेथड़ ने कर आधा कर दिया। इससे थोड़े ही समय में बीजापुर में घनी आबादी हो गई। पेथड़ ने वहाँ एक विशाल महावीर जैनमन्दिर बनवाया और उसको अनेक तोरण, प्रतिमाओं से और शिल्प की उत्तम कारीगरी से सुशोभित करके उसमें भगवान् महावीर की विशाल पीतलमयी मूर्त्ति प्रतिष्ठित की। एक सुन्दर घर-मन्दिर भी बनवाया और उसमें भगवान् महावीर की सुन्दर धातुमयी प्रतिमा विराजमान की। वि० सं० १३६० में उक्त प्रतिमा को पुनः अपने बड़े मन्दिर में बड़ी धूम-धाम से विराजमान करवाई। इन धर्म-कृत्यों में पेथड़ ने अपार धन-राशी व्यय की थीं। इन अवसरों पर उसने याचकों को विपुल दान दिया था और अनेक पुण्य के कार्य किये थे। फलतः उसका और उसके परिवार का यश बहुत दूर-दूर तक प्रसारित हो गया। पेथड़ उस समय की जैनसमाज के अग्रणी पुरुषों में गिना जाने लगा।

पेथड़ और उसके भ्राताओं के द्वारा अर्बुदस्थ लूण-वसहिका का जीर्णोद्धार

सातों भ्राताओं में अपार प्रेम था। छः ही भ्राता ज्येष्ठ पेथड़ के परम आज्ञानुवर्त्ती थे। इसी का परिणाम था कि पेथड़ अनेक धर्मकृत्य करके अपने और अपने वंश को इतना यशस्वी बना सका। यवन आक्रमणकारियों ने जैसे भारत के अन्य धर्मस्थानों, मन्दिरों को तोड़ा और नष्ट-भ्रष्ट किया, उसी प्रकार अर्बुदगिरि पर बने प्रसिद्ध जैनमन्दिर भी उनके अत्याचारी हाथों के शिकार हुये बिना नहीं रह सके। अर्बुदगिरि के बहुत ऊंचा और मार्ग से एक ओर होने से अवश्य वे जितनी चाहते थे, उतनी हानि तो नहीं पहुँचा सके, परन्तु फिर भी उनकी सुन्दरता को नष्ट करने में उन्होंने कोई कमी नहीं रक्खी। यह समय गूर्जरसम्राट् कर्ण का था। कर्ण अल्लाउद्दीन खिलजी

'संडेरकेऽणहिलपाटकपत्तनरयामन्ते य एचनिरमाश्य दुच्चचैत्यं।
स्वस्वैः स्वकीय कुलदैवत श्रीसेशं देशाधिराज सतताश्रित मविचालं ॥४॥
यामाधर्मेनेन सर्म च जाते, कर्ता कुतोऽप्यापदेर हेतोः। बीजापुरं क्षत्रिय मुख्य बीजा सौहार्दतो लोककराद्धभागी ॥५॥
अत्र वीरीमय शातानंदनप्रतिमान्विते। यशौ र्यं कारयामास, लसत्तोरणराजितं' ॥६॥

प्र० सं० द्वि० भा० पृ० ७३, ७४-७६ (प्र० २६८, २७०)

D. C. M. P. (G. O. S. Vo. No. LXXVI) P. 247

से परास्त हो चुका था और अपनी परमसुन्दरा प्रिया महाराणी को भी खो चुका था। ऐसे निर्बल सम्राट् के शासनकाल में दुश्मनों के अत्याचारों से प्रजा का पीड़ित होना सम्भव ही है। यशस्वी एवं दृढ़ जैनधर्मी पेथड़ ने अर्बुदगिरि के लिये एक विशाल संघ निकाला और बड़ी भावभक्ति से तीर्थ की पूजा-भक्ति की तथा महामात्य वस्तुपाल तेजपाल द्वारा विनिर्मित प्रसिद्ध लूणवसहिका का जीर्णोद्धार प्रारम्भ करवाया। इस जीर्णोद्धार में पेथड़ ने अत्यन्त द्रव्य का व्यय किया। पेथड़ ने यह कार्य अपने यश और मान की वृद्धि के हेतु नहीं किया था। जीर्णोद्धार के कराने वाले जैसे अपनी और अपने वंश की कीर्त्ति को चिर बनाने की इच्छा से बड़ी २ प्रशस्तियें शिलाओं पर खुदवा कर लगवाते हैं, उस प्रकार उसने अपनी कोई प्रशस्ति नहीं खुदवाई। वसहिका के एक स्तम्भ पर केवल एक श्लोक अंकित करवाया कि संघपति पेथड़ ने सूर्य और चन्द्र रहे, तब तक रहने वाले सुदृढ़ इस लूणवसहिका नामक जिनमन्दिर का अपने कल्याणार्थ जीर्णोद्धार करवाया। इस जीर्णोद्धार से पेथड़ के अतुल धनशाली होने का परिचय तो मिलता ही है, परन्तु वह नामवर्धन एवं आत्मकीर्त्ति के लिये कोई पुण्य-कार्य नहीं करता था का भी विशद परिचय मिलता है। यह महान् गुण अन्य व्यक्तियों में कम ही देखने में आया है।

तीर्थ-यात्रायें और विविध क्षेत्रों में धर्मकृत्य तथा चार ज्ञान-भण्डारों की संस्थापना

गूर्जरसम्राट् कर्णदेव के राज्यकाल में वि० संवत् १३६० में पेथड़ ने भारी संघ के साथ में शत्रुंजय, गिरनार आदि प्रमुख तीर्थों की यात्रा की। पेथड़ के अन्य छः भ्राता और उनका समस्त परिवार भी इस संघ-यात्रा में उपस्थित था। इसी प्रकार उसने भारी समारोह से अपने पूरे कुटुम्ब और भारी संघ के साथ में इन्हीं तीर्थों की छः बार पुनः पुनः तीर्थयात्रायें की थीं। श्रीमद् सत्यसूरि के सदुपदेश से पेथड़ ने चार ज्ञानभण्डारों की भी स्थापनायें की थीं। अर्बुदाचल के ऊपर बने हुये भीमाशाह के प्रसिद्ध विशाल जिनालय में भीमाशाह द्वारा विनिर्मित आदिनाथ भगवान् की विशाल धातु-प्रतिमा, जो अपूर्ण रह गयी थी, उसको पेथड़ ने सुवर्ण की सेंधें लगाकर पूर्ण करवाई। ९ नव क्षेत्रों में पेथड़ ने अतुल द्रव्य व्यय किया। इस प्रकार पेथड़ ने अनेक धर्मकृत्य किये और भारी यश, कीर्त्ति प्राप्त की। पेथड़ महान् धर्मात्मा, मातृ-पितृ भक्त, दानी, परोपकारी, सद्गुणी और ज्ञान का पुजारी था।

वि० सं० १३७७ में गूर्जरभूमि में त्रिवर्षीय महा भयंकर दुष्काल पड़ा था। उस समय भी पेथड़ ने खुले मन और धन से गरीब मनुष्यों को अन्नदान देकर अपनी मातृभूमि की महान् यशदायी सेवा की थी।

'आचन्द्रार्कं नन्दतादेष संघाधीशः श्रीमान् पेथड़ः संघयुक्तः। जीर्णोद्धारं वस्तुपालस्य चैत्ये तेने येनेहाऽर्बुदाद्रौ स्वसारैः' ॥
अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० ३८२

'योऽकारयत् सचिवपुंगव वस्तुपाल निर्मापितेऽर्बुदगिरिस्थित नेमिचैत्ये।
उद्धारमात्मन इव ब्रूडतोह्यपारसंसार दुस्तरणवारिधिमध्य इध्धः' ॥७॥
प्र० सं० द्वि० भा० प्र० सं० २६९, २७०

'समहगतिलधोः श्री कर्णदेवस्य राज्ये' ॥९॥
'खरस समयसोमे (१३६०) बंधुभिः षड्भिरेव, सहसम सुविधिना साधने सावधानः।
'विमलगिरिशिरः स्थादीश्वरे चोज्जयन्ते। यदुकुलतिलकाभं नेमिमानस्य मोदात्' ॥१०॥

पेथड़ का परिवार और सं० मंडलिक

पेथड़ की स्त्री का नाम सुहवदेवी था। सुहवदेवी के पद्म नाम का पुत्र था। पद्म का पुत्र लाडण हुआ। लाडण का पुत्र अल्हणसिंह था। पेथड़ जैसा धर्मात्मा एवं महान् सद्गुणी और परोपकारी श्रावक था, वैसी ही गुणवती उसकी पतिपरायण स्त्री और पुत्र पद्म था। पद्म सचमुच ही पद्म के समान निर्मलात्मा था। दोनों पति-पत्नी अत्यन्त उदारमना और धर्मप्रेमी थे, तब ही तो उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र भी एक से एक बढ़कर धर्मानुरागी, परोपकारी और पुण्यशाली थे। आल्हणसिंह की स्त्री ऊमादेवी की कुक्षी से मण्डलिक का जन्म हुआ था। यह भी अपने पितामह के सदृश यशस्वी और कीर्त्तिशाली हुआ। वि० सं० १४६८ में गूर्जरभूमि में दुष्काल पड़ा, उस समय इसने गरीबों को अन्न और क्षुधितों को अन्न-भोजन दे कर मरने से बचाया। इसने श्रीमद् विजयानन्दसूरि के सदुपदेश से अनेक मन्दिर और धर्मशालायें बनवाई तथा अनेक स्वनिर्मित जिनालयों में और अन्य धर्मस्थानों और मन्दिरों में जिनबिम्बों की स्थापनायें कीं। रेवत और अर्बुदतीर्थादि प्रमुख तीर्थों में जीर्णोद्धारकार्य करवाया, शास्त्र लिखवाये तथा अनेक सुकृत के कार्य किये। वि० सं० १४७७ में शत्रुंजय-महातीर्थ के लिये भारी संघ निकाल कर तीर्थ-दर्शन किये और स्वामीवात्सल्य करके संघ पूजा की।

इसका पुत्र ढाइया और ढाइया का पुत्र विजित हुआ। विजित की स्त्री मणकाई थी। मणकाई के तीन प्रसिद्ध पुत्र हुये, पर्वत, डूंगर और नरवद।

'निजमनुजमव यः, सार्थकं श्रावककार विहितगुरुसपर्यः पालयन् साधपत्यं'।
कलसकनकजासरकौशली निःकलंकः। पुनरपि पड्सापीद् यो हि यात्रास्तथैव' ॥११॥
'गोत्रेऽत्रैवाघात्पवित्रं, भीमसाधु विधिपितं। यं पित्तलमयं हेमहद्दसंधिमकारयत्' ॥८॥
'तत्तनयः पद्माह्व स्तदुद्वहो लाडणस्तदंगभवः। अस्ति स्मालणसिंहस्तदंगजो मंडलिक नाम' ॥१६॥

प्र० सं० द्वि० भा० पृ० ७४-७७ (प्र० सं० २६६, २७०)

'सं० १४८२ वर्षे फाल्गुनशुदि १३ सौ...... ...व्य० आल्हणसिंह भार्या व्य० ऊमादेसुत संघ० व्य० मंडलेन..........'।

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ६१३ पृ० ११३

[illegible] । न्यायार्जितैर्धनभरैर्वरधर्मशाला यः सत्कृतो निखिलमंडल मंडलीकैः
ε [illegible] । दुष्काले समकालं बहुधाजाना वितरणाद्यः ॥१८॥
वर्षेषु सप्तसप्तत्यधिक चतुर्दशशतेषु (१४७७) यो यात्रां। देवालयकलितां किल चक्रे शत्रुञ्जयाद्येषु ॥१६॥
श्रुत लेखन संघार्चा प्रभृतिनिबहूनि पुण्यकार्याणि। योऽकार्षीद् विविधानि च पूज्यजयानंदसूरिगिरा ॥२०॥
व्यवहार ढाइकाख्योऽभूद्दस्तत्तनुज एव विजितादः। धरमणकाई नाम्नी सत्वती जन्यजानि तस्य ॥२१॥
तत्कुक्ष्यनुपममानसभमारसितस्फादास्त्रयः पुत्राः। अभवन् श्रेष्ठाः पर्वत डूंगर नरवद सुनामानः ॥२२॥
तेष्वस्ति पर्वताख्यो लक्ष्मीकान्तः सहस्रनीरेण पोइआप्रमुख कुटुम्बैः परीवृतो यशशोभाढ्यन् ॥२३॥
डूंगरनामा द्वितीयः स्वचारुचातुर्यवर्य मेधावान्। पत्नीतज्जा मंगादेवी रमणः कान्हाल्यसुतपत्तः' ॥२४॥

प्र० सं० प्र० भा०पृ० ७४, ७८ (प्र० २६६, २७०)

महायशस्वी डूङ्गर और पर्वत तथा कान्हा और उनके पुण्यकार्य

दोनों भ्राता महान् गुणवान्, धर्मात्मा और उदारहृदय थे। जैनधर्म के पक्के पालक थे। पूर्वज पेथड़ और मंडलिक जिस वंश की शोभा और कीर्त्ति बढ़ा गये, उसी कुल में जन्म लेकर इन्होंने उसके गौरव और यश को अधिक ही फैलाया। दोनों भ्राताओं में बड़ा प्रेम और स्नेह था। पर्वत की स्त्री का नाम लक्ष्मीदेवी था। सहस्रवीर और पोइआ (फोका) नाम के उसके दो पुत्र थे। डूङ्गर की स्त्री का नाम लीलादेवी था। डूङ्गर के मंगादेवी नाम की एक कन्या और हर्षराज, कान्हा नाम के दो पुत्र थे। तीसरे भ्राता नरवद की स्त्री हर्षादेवी थी और उसके भास्वर नाम का पुत्र था। कान्हा के दो स्त्रियां थीं। एक का नाम खोखीदेवी और द्वितीया मेलादेवी थी। मेलादेवी के वस्तुपाल नाम का एक पुत्र था, जिसका विवाह वल्हादेवी नाम की कन्या से हुआ था। फोका की स्त्री देमति थी और उदयकर्ण नामक पुत्र था।

पर्वत, डूंगर और उनका परिवार

वि० सं० १५५६ चै० कृ० ५ सोमवार को इन्होंने बहुत द्रव्य व्यय करके महोत्सव किया और उस अवसर पर स्वविनिर्मित प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई तथा वाचकपदोत्सव करके एक मुनिराज को वाचकपदवी से अलंकृत करवाया। पर्वत और कान्हा ने उपा० श्री विद्यारत्नगणि के सानिध्य में श्री विवेकरत्नसूरि के उपदेश से व्य० डूङ्गर के श्रेयार्थ 'चैत्यवंदनसूत्र-विवरण' लिखवाया।

पर्वत और डूंगर के धर्मकृत्य

'सं० १५५३..................प्राग्वाट सं० वीजा (विजिता) भा० मधू (माणकाई) पु० सं० डूङ्गरसी भार्या लीलू पुत्र हर्षा कान्हादियुतेन..................,' जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ११५

'संवत् १५४६ वर्षे .... व्य० पेथड़संताने व्य० परवतभा० लखीसुत व्य० फोका भा० श्रा० देमाई सुतविजयकर्णेन' जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ११३६

'संवत् १५५६........ व्य० मंडलीकसुत..........व्य० ढाइआ भा० मणकाई सुत नरवदकेन भा० हरपाई सु० भाखर.......' जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ८

'संवत् १५७८........ गंधारवास्तव्य..........डूंगरसुत व्य० कान्हाकेन भा० पोपी मेलादे सुत वस्तुपालादियुतेन............' जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० २६४

'संवत् १५६१ वर्षे..................गंधारवास्तव्य श्री प्राग्वाटज्ञातीय व्य० कान्हा भा० पोपी मेलादेसु० व्य० वस्तुपालेन भा व्ाल्हादे..................,' जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ६७३

'फोका' को प्रशस्ति-संग्रह की डूंगर और पर्वत की प्र० २६६, २७० और २७२ में 'पोइया' लिखा है। हो सकता है वस्तुतः नाम पोइआ हो और धातु-प्रतिमा के लेखों को पढ़ते समय अक्षर के आकृतिभ्रष्ट हो जाने से 'पोइआ' के स्थान में 'फोका' पढ़ा गया हो और ऐसा होना संभव भी है। इसी प्रकार 'विजयकर्ण' के स्थान में प्रशस्ति सं० २७२ में 'उदयकरण' लिखा है।

प्रशस्ति सं० २७२में श्रा०ककू, श्रा०रढ़ी, श्रा० पोपी(खोखी) लिखा है। पोपी का परिचय अन्य लेखों में भी आता है। श्रा० ककू और श्रा० रढ़ी श्रावक पोपी से ज्येष्ठा होनी चाहिए। इस दृष्टि से श्रा० ककू हर्षराज की पत्नि और श्रा० रढ़ी नरवद के पुत्र भास्वर की पत्नी मानना अधिक संगत है।

लेखांक २६४ में डूंगरसुत 'कान्हाकेन' से यह ध्वनित होता है कि डूंगर का वि० सं० १५७८ के पूर्व ही स्वर्गवास हो चुका था। 'श्री संदेहविषौषधि' की प्रशस्ति में जो प्र० सं० के पृ० ८० पर २७२वीं है में भी डूंगर का नाम नहीं है। यह प्रशस्ति वि० सं० १५७१ की है। इससे यह सिद्ध हुआ कि डूंगर १५७१ में जीवित नहीं था। इन कारणों पर यह कहा जासकता है कि डूंगर की मृत्यु वि० सं० १५६० के पश्चात् हुई।

वि० सं० १५६० में दोनों भ्राताओं ने सपरिवार एवं अनेक सधर्मी बन्धुओं के साथ में जीरापल्लीतीर्थ और अर्बुदतीर्थों की भक्तिभावपूर्वक दानादि पुण्यकार्य करते हुये यात्रा की।

आगमगच्छीय श्रीमद् विवेकरत्नसूरि का महामहोत्सवपूर्वक बहुत द्रव्य व्यय करके सूरिपदोत्सव किया तथा इनके सदुपदेश से वि० सं० १५७१ पौष कृ० १ सोमवार को गंधारबन्दर में आचार्य श्रीमद् संयमरत्नसूरि और उपा० विद्यारत्नगणि की निश्रा में अनेक सुकृत के कार्य किये—जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई और तीर्थ-यात्रा की। निमन्त्रित संघों और नागरिक व्यापारीवर्ग का स्वामीवत्सलादि से बहुत द्रव्य व्यय करके सत्कार किया। सधर्मी बन्धुओं को दो-दो रुपये की भेंट दी। गंधारबन्दर के समस्त धर्मस्थानों में कल्पसूत्र की प्रतियाँ भेंट कीं। शीलव्रतादरण-नंदिमहोत्सव, आचार्यपदोत्सव और उपाध्यायपदोत्सव किये। इन उत्सवों में अनेक ग्राम, नगरों से आये हुये साधु, मुनियों को वस्त्रदान दिया। श्रीमद् विवेकरत्नसूरि के वचनों से 'ओघनिर्युक्तिवृत्ति,' 'श्री संदेह विषौषधि,' 'अनुयोगद्वारवृत्ति' लिखवाई। इस प्रकार इन धर्मिष्ठ काका भ्रातृजा ने अनेक धर्मग्रन्थों का लेखन करवाया, ज्ञानभण्डारों की स्थापना की, जीर्णोद्धार में द्रव्य व्यय किया तथा धर्मशालाओं में, यात्राओं में अन्न-वस्त्रदान में, संघभक्ति एवं स्वामीवात्सल्यों में और इसी प्रकार के अन्य धर्मकृत्यों में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करके उज्ज्वल कीर्त्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त की।

पर्वत और कान्हा के सुकृतकार्य

वि० सं० १३५३ से वि० सं० १५७१ तक अर्थात् २१८ वर्षों तक इस कुल का गौरव और प्रतिष्ठा एक-सी बनी रही। ऐसे ही प्रतापी एवं यशस्वी कुलों से जैनसमाज का गौरव रहा है और जैनधर्म की प्रसिद्धि और प्रचार बढ़ सका है।

'स्थापितार्हत्प्रतिमा प्रतिष्ठा, निशाय तौ पर्वत डुङ्गराभिधौ। वर्षे हि नंदेषु तिथौ १५५९ च चक्रतुः श्रीवाचकस्थापनसन्महोत्सवं।
सत्तुं तिथिमित (१५६०) समाया यात्रां तौ चक्रतुः सुतीर्थेषु। जीरापल्लीपार्श्वार्बुदाचलाद्येषु सोल्लास ॥२६॥
गंधारमंदिरे तौ मलमलयुगलादिसमुदयोपेताः। श्रीकल्पपुस्तिका अपि दत्वा विधं च सर्वशालासु ॥२७॥
व्रतसंघसत्कृती चाचाचयता तौ च रूप्यनाणकयुग्। ददतु (तौ च) सितापुंजं समस्तनागरिकवणिजा ॥२८॥
इतवंतानित्यादिविहित चतुर्थव्रतादरौ सुहृत्तं। आगमगच्छेशश्रीविवेकरत्नाख्यगुरुवचनात् ॥२९॥
अर्थोपमौ पर्वतकान्हनामकौ, साधोंधर्मौ सूरिपदप्रदापने। आकारितानां च समानधर्मिणां, नानाभिधस्थान समागतानां ॥३०॥
पुंसां दुकूलादिकदानपूर्वकं, समस्तसद्दर्शनसाधुजनात्। महामहं तेनतुरुत्तरं तौ, पवित्र चित्तौ जिनधर्मवासितौ ॥३१॥
आगम गच्छ विभूना मुनि जयानंदसूरिगुरोः क्रमतः। श्रीमद् विवेकरत्नप्रभुसूरीणां सदुपदेशात् ॥३२॥
शशिमुनितिथि (१५७१) मित्त वर्षे समग्र सिद्धान्तलेखनसाभ्यां। व्यवहार पर्वत कान्हकाभ्यां मु-(?) रसिकाभ्यां ॥३३॥

प्र० सं० पृ० ७५. ७६ (प्र० सं० २६६, २७०)

प्र० सं० द्वि० भा० प्र० सं० २७१ पृ० ७६ (श्री संदेह विषौषधि)
प्र० सं० द्वि० भा० प्र० १३३ पृ० १६१ (श्री चैत्यवंदनसूत्र विवरण)
जै० गु० क० भा० २ खं० २ पृ० ३२३१
पुरातत्त्व वर्ष १ सं० १ में 'प्राचीन ऐतिहासिक जैन प्रशस्ति' नामक लेख देखो

वंश-वृक्ष

- सुमति
  - आभू
    - आसड़
      - मोखू [मोहिनीदेवी]
        - यशोनाग
        - वाग्धन [सीता]
          - चांडसिंह [गोरी]
            - पेथड़ (पृथ्वीभट्ट) [सुहवदेवी]
              - पद्म
                - लाडण
                  - आल्हणसिंह [ऊमादेवी] १२३
                    - सं० मंडलिक
                      - ढाईआ
                        - विजिता [मणकाई] ८
                          - |
            - रत्नसिंह [सुहागदेवी]
            - नरसिंह [नयणादेवी]
            - मल्ल [प्रतापदेवी]
            - चाहड़ (धर्मण) [सीतलादेवी]
            - विक्रमसिंह [चांपलदेवी]
            - मुंजाल
            - खोखी
          - खेतू
          - सूँजल
          - रत्नदेवी
          - मयणलदेवी
          - ....
        - प्रह्लादन
        - जाल्हण
      - वर्धमान

- पर्वत [लक्ष्मी]
  - सहसवीर
  - पोइआ(फोका) [देमति]
    - उदयकर्ण
- डूङ्गर [लीलादेवी]
  - मंगादेवी
  - हर्पराज [कक्कू]
  - कान्हा [खोखीदेवी, मेलादेवी]
    - वस्तुपाल [वल्हादेवी]
- नरवद [हर्पादेवी] १
  - भास्वर [रढ़ी]

श्री मुण्डस्थलमहातीर्थ में श्री महावीर-जिनालय का जीर्णोद्धार कराने वाला कीर्त्तिशाली श्रेष्ठि श्रीपाल

वि० सं० १४२६

श्रीमुण्डस्थलमहातीर्थ अर्बुदाचल के नीचे खराड़ी ग्राम से लगभग चार मील के अन्तर पर पश्चिम दिशा में आज मूंगथला नाम से छोटे-से ग्राम के रूप में एक जैन-मन्दिर के सहारे जैनतीर्थ है। विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में जब चन्द्रावती का राज्य पूर्ण समृद्ध और उन्नतशील था, तब आज का मूंगथला ग्राम अनेक जैन मन्दिरों से सुशोभित श्री मुंडस्थलमहातीर्थ के रूप में सुशोभित था।

अभी जो श्रीमहावीरस्वामी का देवालय विद्यमान् है, उसका जीर्णोद्धार ठ० महीपाल की स्त्री रूपेणी के पुत्र श्रे० श्रीपाल ने करवा कर वि० सं० १४२६ वैशाख शु० २ रविवार को श्री कोरंटगच्छीय श्रीनन्नाचार्यसंतानीय श्रीककसूरिपट्टालंकार श्रीमद् सावदेवसूरि के करकमलों से कलश-दण्ड प्रतिष्ठित करवाये तथा चौवीस देवकुलिकाओं में बिंबप्रतिष्ठा करवाई और अन्य अनेक जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई।२

१-प्र० सं० प्र० भा० पृ० ५७ (भगवतीसूत्रवृत्ति की प्रशस्ति)। प्र०सं० द्वि० भा० पृ० ७२ (अनुयोगद्वारसूत्रवृत्ति की प्रशस्ति) प्र० सं० द्वि० भा० पृ० ७६ (श्रीओघनिर्युक्ति की प्रशस्ति)। प्र० सं० द्वि० भा० पृ० १६१ (श्रीचैत्यवंदनसूत्रविवरणम्) जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ११५। जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० २६४, ६१२, ६७३, ११३६ जै० पु० प्र० सं० प्र० भा० पृ० १८[१६] (भगवतीसूत्र-पुस्तकप्रशस्ति)। प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ८

२-प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २७४, २७५

सिरोही राज्यान्तर्गत कोटराग्राम के जिनालय के निर्माता श्रेष्ठि सहदेव वि० सं० १४६५

कोटरा ग्राम में जो श्रीमहावीरजिनालय है, वह प्राग्वाटज्ञातीय सहदेव ने बनवाया था तथा उसने पूर्व में वि० सं० १२०८ वर्ष में पिप्पलगच्छीय श्री विजयसिंहसूरि द्वारा प्रतिष्ठित डींडिला नामक ग्राम के जिनालय के मू० नायक महावीरबिंब को वहाँ से लाकर पश्चात् वि० सं० १४६५ में पिप्पलाचार्य श्री वीरप्रभसूरि द्वारा स्वविनिर्मित जिनालय में मू० नायक के स्थान पर स्थापित करवाया था।[१]

वीरवाड़ाग्राम के श्री आदिनाथजिनालय के निर्माता श्रेष्ठि पाल्हा वि० सं० १४७६

डींडिलाग्राम के महावीरजिनालय के गोष्ठिक श्रेष्ठि द्रोणीसंतानीय प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० कुरा के रामीदेवी नामा स्त्री की कुक्षी से श्रे० माला का जन्म हुआ था। श्रे० माला की स्त्री जीवलदेवी के पाल्हा नामक यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रे० पाल्हा ने वीरवाड़ा में जिनालय बनवाकर वि० सं० १४७५ माघ शु० ११ शनिश्चर को बृहद्गच्छीय पिप्पलाचार्य श्री शांतिसूरिसंतानीय भ० वीरदेवसूरि के पट्टनायक श्रीवीरप्रभसूरि के करकमलों से श्री आदिनाथप्रतिमा को उसमें महामहोत्सव करके प्रतिष्ठित करवाया।

उक्त मन्दिर का मण्डप वि० सं० १४७६ में बनकर पूर्ण हुआ था। मण्डप के पूर्ण होने के शुभोपलक्ष में श्रीमद् वीरप्रभसूरि की तत्त्वावधानता में श्रे० पाल्हा ने हर्षोत्सव मनाया था।[२]

उदयपुर मेदपाटदेशान्तर श्री जावरग्राम में श्रीशांतिनाथजिनालय के निर्माता श्रेष्ठि धनपाल वि० सं० १४७८

मेदपाटनरेश्वर महाराणा मोकलदेव के विजयी राज्यकाल में प्राग्वाटज्ञातीय अति प्रसिद्ध श्रावक श्रे० वाना जावरग्राम में रहता था। श्रे० वाना का पुत्र श्रे० रत्नचन्द्र था। रत्नचन्द्र की स्त्री लाखूदेवी महागुणवती एवं

१-जै० ले० सं० भा० १ ले० ६६६। २-अ० प्र० जै० ले० सं० ले० २७८

धर्मात्मा स्त्री थी। लाखूदेवी का पुत्र श्रे० धणपाल (धनपाल) था। धणपाल महायशस्वी एवं कीर्त्तिशाली श्रावक हुआ है। उसने श्रीशत्रुंजयमहातीर्थ, गिरनारतीर्थ, अर्बुदतीर्थ, जीरापल्लीतीर्थ, चित्रकूटतीर्थ आदि की संघसहित तीर्थयात्रा की और संघपति के पद को धारण किया तथा आनन्दपूर्वक संघयात्रा करके वि० सं० १४७८ पौष शु० ५ को स्वमा० हाखूदेवी पुत्र श्रे० हाजा, भोजराज, धनराज, पुत्रवधू देऊदेवी, माऊदेवी, धाईदेवी, पौत्र देवराज, नृसिंह, पुत्रिका पूनी, पूरी, मृगद, चमकू आदि कुटुम्ब से परिवृत्त होकर स्वविनिर्मित श्री शांतिनाथप्रासाद की प्रतिष्ठा महामहोत्सवपूर्वक तपागच्छनायकनिरुपममहिमानिधानयुगप्रधानसमान श्री श्री सोमसुन्दरसूरि द्वारा करवाई। श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि की निश्रा में भट्टारकपुरंदर श्रीमुनिसुन्दरसूरि, श्रीजयचन्द्रसूरि, श्रीभुवनसुन्दरसूरि, श्रीजिनसुन्दरसूरि, श्रीजिनकीर्त्तिसूरि, श्रीविशालराजसूरि, श्रीरत्नशेखरसूरि, श्रीउदयनंदिसूरि, श्रीलक्ष्मीसागरसूरि, महामहोपाध्याय श्री सत्यशेखरगणि, श्रीसूरसुन्दरगणि, श्रीसोमदेवगणि, पं० सोमोदयगणि आदि प्रखर तेजस्वी पंडितशिष्यवर्ग था। महोत्सव का महत्त्व श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के बहुलशिष्यवर्ग की उपस्थिति से ही सहज समझ में आ सकता है कि जिस महोत्सव में इतने प्रखर पंडित एवं तेजस्वी आचार्य, उपाध्याय, साधु और पंडित संमिलित हों, उस महोत्सव में कितना द्रव्य व्यय किया गया होगा और कितने दूर २ एवं समीप के नगर, ग्रामों से संघ, कुटुम्ब एवं श्रावकगण महोत्सव में भाग लेने के लिये तथा युगप्रधानसमान श्रीसोमसुन्दरसूरि और उनके महाप्रभावक शिष्यवर्ग के दर्शनों का लाभ लेने के लिये आये होंगे।[१]

वालदाग्राम के जिनालय के निर्माता प्राग्वाटज्ञातीय धंभदेव के वंशज
वि० सं० १४८५

वालदाग्राम में जो जिनालय है, वह प्राग्वाटज्ञातीय धर्ममूर्त्ति धंभदेव का बनाया हुआ है। श्रे० धंभदेव के वंश में श्रे० थिरपाल नामक अति ही भाग्यशाली श्रावक हुआ। थिरपाल की धर्मपरायणा स्त्री देदीबाई के नरपाल, हापा, तिहुणा, काल्ह, केल्हा और पेथड़ ६ पुत्ररत्न उत्पन्न हुये।

श्रे० तिहुण के चीकम और सादा नामक दो पुत्र थे। श्रे० सादा के काजा, चांपा, सूरा और सहसा नामक चार पुत्र थे। श्रे० पेथड़ की स्त्री का नाम जाणीदेवी था। जाणीदेवी की कुक्षी से थड़सिंह और मं० ऊदा का जन्म हुआ।

मं० हापा के राम नाम का पुत्र था। श्रे० राम के राउल, मोल्हा, कना और मं० वीन्हा नामक चार पुत्र हुये थे। मं० वीन्हा के हरमा और हरपाल नामक दो पुत्र हुये थे।

कच्छोलीवालगच्छीय पूर्णिमापक्षीय वाचनाचार्य गुणभद्र से समस्तगोष्ठिकों के सहित छः ही भ्राता नरपाल,[२] हापा, तिहुणा, काल्ह, केल्हा और पेथड़ ने वि० सं० १४८५ में जीर्णोद्धार करवाकर (उसी संवत् में) ज्येष्ठ शु० ७

१-प्रा० ले० सं० भा० १ ले० ११८। २-अ० प्र० जै० ले० सं० ले० २६८, २६६

मंगलवार को महामहोत्सव किया और श्रे० तिहुणा, मं० पेथड़, मं० हापा के परिजनों ने श्री महावीरबिंब करवा कर श्रीरत्नप्रभसूरि के पट्टालंकार भट्टारक श्रीसर्वाणंदसूरि के उपदेश से उसी दिवस को प्रतिष्ठित करवाया।

वंश-वृक्ष

- थिरपाल [देदीबाई]
  - नरपाल
  - हापा
    - राम
      - राउल
      - सोल्हा
      - कचा
      - मं० वील्हा
        - हरभा
        - हरपाल
  - तिहुणा
    - विक्रम
    - साढ़ा
      - काजा
      - चांपा
      - सूरा
      - सहसा
  - काल्हू
  - केल्हा
  - पेथड़ [जाणीदेवी]
    - थड़सिंह
    - मं० ऊदा

पंडित प्रवर लक्ष्मणसिंह

वि० सं० १४६३

उदयपुर राज्यान्तर्गत श्री देवकुलपट्टक (देलवाड़ा) नामक अति प्राचीन नगर के श्री पार्श्वनाथस्वामी के बड़े जिनालय में प्राग्वाटज्ञातीय गौष्ठिक श्रे० झाझा की धर्मपत्नी लक्ष्मीबाई के देवपाल नामक पुत्र हुआ था। देवपाल की स्त्री देवलदेवी के श्रे० कुरपाल, श्रीपति, नरदेव, धीणा और पंडित लक्ष्मणसिंह नामक पुत्र हुये थे। लक्ष्मणसिंह कछोलीवालगच्छीय पूर्णिमापक्ष की द्वितीय शाखा के आचार्य श्री भद्रेश्वरसूरिसंतानीयान्वय में भ० श्री रत्नप्रभसूरि के पट्टालंकार श्री सर्वानंदसूरि का श्रावक था। लक्ष्मणसिंह ने वि० सं० १४६३ वैशाख कृ० ५ को अपने गुरु सर्वाणंदसूरि के सदुपदेश से स्वश्रेयार्थ श्री पार्श्वनाथस्वामी की दो कोयोत्सर्गस्थ प्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाईं।*

---

*जै० ले० सं० भा० २ ले० १६६६

श्रेष्ठि हीसा और धर्मा

वि० सं० १५०३

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय प्रसिद्ध श्रीमंत देवपाल नामक सुश्रावक देवकुलपट्टक में रहता था। उसके सुहड़सिंह नामक पुत्र था, जिसकी स्त्री का नाम सुहड़ादेवी थी। सुहड़ादेवी के पीछड़लिया(?) नामक ज्येष्ठ पुत्र था और छोटा पुत्र कर्ण था। कर्ण की स्त्री का नाम चनूदेवी था। चनूदेवी बड़ी सौभाग्यवती एवं गुणगर्भा स्त्री थी। वह जैसी गुणवती थी, वैसी ही पुत्ररत्नवती भी थी। उसके सौभाग्य से सात पुत्र शाह घांघा, हेमा, धर्मा, कर्मा, हीरा, काला और हीसा नामक थे।

उक्त पुत्रों में से श्रे० हीसा का विवाह लाखू नामक गुणवती कन्या से हुआ था। लाखूदेवी के आमदत्त आदि पुत्र थे। श्रे० हीसा ने वि० सं० १४९४ फाल्गुन कृ० ५ को तपागच्छाधिपति श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के कर-कमलों से अतिसुन्दर श्री सत्तावीसकायोत्सर्गिकजिनप्रतिमापट्टिका को बड़ी धूमधाम एवं महोत्सवपूर्वक समस्त परिवार सहित प्रतिष्ठित करवाई।[1]

उक्त पुत्रों में से तृतीय पुत्र धर्मा का विवाह धर्मिणी नामा कन्या से हुआ था। धर्मिणी की कुक्षी से सहसा, सालिग, सहजा, सोना और साजण नामक पाँच पुत्र हुये थे। श्रे० धर्मा ने वि० सं० १५०३ आषाढ़ शु० ७ को तपा० श्री जयचन्द्रसूरि के कर-कमलों से महोत्सवपूर्वक ९६ (छिन्नवे) जिनप्रतिमापट्टिका समस्त परिवारसहित प्रतिष्ठित करवाई थी।

इसी वि० सं० १५०३ आषाढ़ शु० ७ के शुभावसर पर श्री जयचन्द्रसूरि के कर-कमलों से प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० आका की स्त्रियाँ जसलदेवी और चांपादेवी नामा के पुत्र शा० देल्हा, जेठा, सोना और खीमा ने भी श्री चौवीशी-जिनप्रतिमापट्ट करवा कर प्रतिष्ठित करवाया।[2]

वंश-वृक्ष

- देवपाल
  - सुहड़सिंह [सुहड़ादेवी]
    - पीछड़लिया
    - कर्ण [चनूदेवी]
      - घांघा
      - हेमा
      - धर्मा [धर्मिणीदेवी]
        - सहसा
        - सालिग
        - सहजा
        - सोना
        - साजण
      - कर्मा
      - हीरा
      - काला
      - हीसा [लाखूदेवी]
        - आमदत्त

१–जै० ले० सं० भा० २ ले० १९६८, १९६९। २–जै० ले० सं० भा० २ ले० १९७३

वीरप्रसविनी मेदपाटभूमीय गौरवशाली श्रेष्ठि-वंश

वि० सं० १४६५ से वि० सं० १५६६ पर्यन्त

श्री धरणविहार-राणकपुरतीर्थ के निर्माता श्रे० सं० धरणा और उसके ज्येष्ठ भ्राता श्रे० सं० रत्ना

वि० शताब्दी पन्द्रहवीं के प्रारंभ में नांदियां (नंदिपुर) नामक ग्राम में, जो सिरोही-स्टेट (राजस्थान) के अंतर्गत है सं० सांगण रहता था। सं० सांगण के कुरपाल नामक प्रसिद्ध पुत्र था। कुरपाल की स्त्री कामलदेवी थी। कामलदेवी का अपर नाम कर्पूरदेवी था। कामलदेवी की कुची से सं० रत्ना और सं० धरणा (धन्ना) का जन्म हुआ। दोनों पुत्र दृढ़ जैनधर्मी, नीतिकुशल, उदार एवं बुद्धिमान् नरश्रेष्ठ थे।

सं० सांगण और उसका पुत्र कुरपाल

सं० रत्ना बड़ा और सं० धरणाशाह छोटा था। दोनों में अत्यधिक प्रेम था। सं० रत्ना की स्त्री का नाम रत्नादेवी था। रत्नादेवी की कुची से लापा, सलपा, मना, सोना और सालिग नामक पाँच पुत्र हुये थे। सं० धरणा की स्त्री का नाम धारलदेवी था और धारलदेवी की कुची से जाखा और जावड़ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। सं० रत्ना और सं० धरणा दोनों भ्राता राजमान्य और गर्भश्रीमन्त थे। सिरोही-राज्य के अति प्रतिष्ठित कुलों में से इन का कुल था। दोनों भ्राता बड़े ही धर्मिष्ठ एवं परोपकारी थे। सं० धरणा अपने बड़े भ्राता सं० रत्ना से भी अधिक उदार, सहृदय, धर्म और जिनेश्वर का परमोपासक था। वह बड़ा ही सदाचारी, सत्यभाषी और मितव्ययी था। धर्म के कार्यों में, दीन-हीनों की सहायता में वह अपने द्रव्य का सदुपयोग करना कभी नहीं भूलता था। सिरोही के प्रतापी राजा सेसमल की राजसभा में इन्हीं गुणों के कारण सं० धरणा का बड़ा मान था।

सं० रत्ना और सं० धरणाशाह

दोनों भ्राता सं० रत्ना और धरणा ने तथा शाह लींबा ने अपने परिवार के सहित वि० सं० १४६५में फाल्गुण शुक्ला प्रतिपदा को पिंडरवाटक में (पींडवाड़ा) श्री तपागच्छीय श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के द्वारा श्री मूलनायक महावीरस्वामी की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करवाकर राजमान्य विश्वानन्ददायक श्री महावीरजिनालय में स्थापित करवाई।

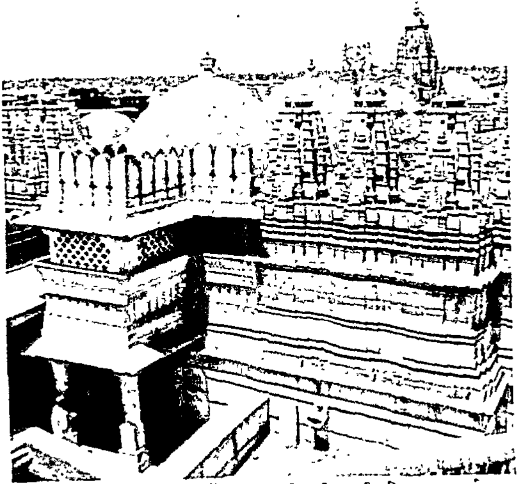
प्राग्वाटज्ञाति में आभूषण समान महूणा नामक एक अति प्रसिद्ध व्यवहारी हो चुका था। वह अति श्रीमंत और उदारमना था। उसके जोला(?) नामक पुत्र था। श्रे० जोला का पुत्र भावठ(?) अति ही सज्जन और

नांदिया ग्राम का नाम किसी उक्त वंशसम्बन्धी शिलालेख में नहीं मिलता है। पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् के अनेक प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध कवि, सूरि एवं मुनियों द्वारा रचे गये राणकपुरतीर्थसंबंधी स्तवनों में नांदिया ग्राम का नाम स्पष्टतया वर्णित है। जनश्रुति भी इस मत की प्रबल पुष्टि करती है।

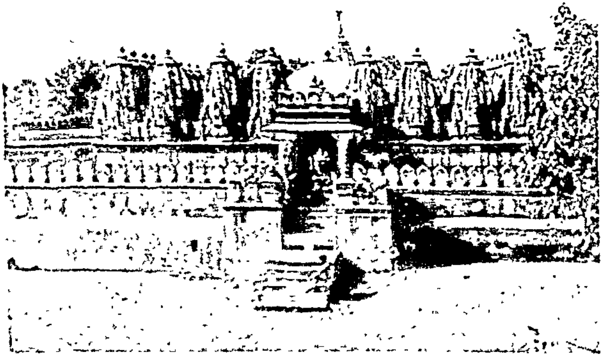
पिंडरवाटक में श्री महावीरजिनालय के वि० सं० १४६५ के सं० धरणा के लेख में सांगा (सांगण) का पुत्र पूर्णसिंह की स्त्री जाल्हणदेवी और उनका पुत्र कुरपाल लिखा है।

—अ० प्र० जै० ले० सं० आबू भा० ५ ले० ३७४

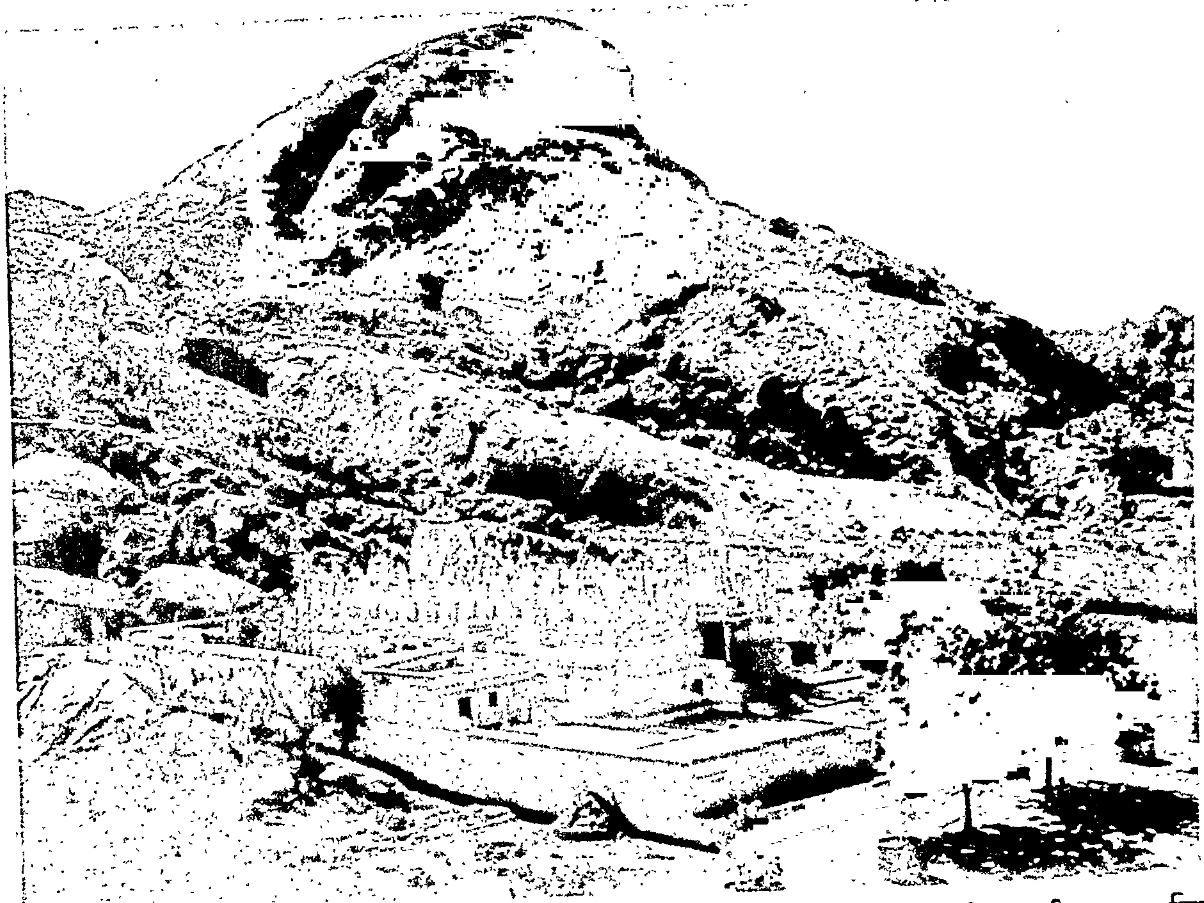
प्रा० जै० ले० सं० भा० २ के ले० ३०७ में सांगण छपा है। पं० लालचन्द्र भगवानदास गांधी, बड़ौदा और मैं दोनों बड़ौदा जाते समय ता० २१ दिसम्बर सन् १६५२ को श्री राणकपुरतीर्थ की यात्रा करते हुए गये थे। हमने मूल लेख जो प्रमुख देवकुलिका के बाहर एक बड़े प्रस्तर पर उत्कीर्णित है पढ़ा था। उसमें स्पष्ट शब्द में 'सांगण' उत्कीर्णित है।



पिण्डरवाटक(पींडवाड़ा) में सं० धरणाशाह द्वारा जीर्णोद्धारकृत प्राचीन श्री महावीर-जिनप्रासाद। वर्णन पृ० २६३ पर देखिये।



अजाहरी ग्राम में सं० धरणाशाह द्वारा जीर्णोद्धारकृत प्राचीन श्री महावीर-बावन जिनप्रासाद। वर्णन पृ० २६३ पर देखिये।



पर्वतों के मध्य में बसे हुये नांदिया ग्राम में सं० धरणाशाह द्वारा जीर्णोद्धारकृत प्राचीन श्री महावीर-बावन जिनप्रासाद।
वर्णन पृ० २६३ पर देखिये।

यशस्वी था। श्रे० मावठ के गुणवान्, पवित्रात्मा, पुण्यकर्त्ता, सत्कर्मरता लींबा नामक पुत्र था। श्रे० लींबा की स्त्री का नाम नयणादेवी था। जैसा श्रे० लींबा गुणवान्, सज्जन एवं धर्मात्मा श्रावक था, श्राविका नयणादेवी भी वैसी ही गुणवती, दयामती एवं धर्मपरायणा सती थी। गुणवती नयणादेवी के लक्ष्मण और हाजा नामक पुत्र हुये थे। श्रे० लक्ष्मण गुरुजनों का परम भक्त और जिनेश्वरदेव का परमोपासक था। श्रे० हाजा भी अति उदार और दीनदयालु पुरुष था।

दोनो भ्राताओं के पुण्यकार्य और श्री शत्रुंजयमहातीर्थ की संघयात्रा

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है दोनों भ्राता बड़े ही पुण्यात्मा थे। इन्होंने अजाहरी, सालेर आदि ग्रामों में नवीन जिनालय बनवाये थे। ये ग्राम नांदियाग्राम के आस-पास में ही थोड़े २ अंतर पर हैं। वि० सं० १४६५ में पिंडरवाटक में और अनेक अन्य ग्रामों में भिन्न २ वर्षों में जिनालयों का जीर्णोद्धार करवाया, पदस्थापनायें, बिंबस्थापनायें करवाईं, सत्रागार (दानशाला) खुलवाये। अनेक अवसरों पर दीन, हीन, निर्धन परिवारों की अर्थ एवं वस्त्र, अन्न से सहायतायें कीं। अनेक शुभाअवसरों एवं धर्मपर्वों के ऊपर संघ-भक्तियाँ करके भारी कीर्त्ति एवं पुण्यों का उपार्जन किया। इन्हीं दिव्य गुणों के कारण सिरोही के राजा, मेदपाट के प्रतापी महाराणा इनका अत्यधिक मान करते थे।

एक वर्ष धरणा ने शत्रुञ्जयमहातीर्थ की संघयात्रा करने का विचार किया। उन दिनों यात्रा करना बड़ा कष्टसाध्य था। मार्ग में चोर, डाकुओं का भय रहता था। इसके अतिरिक्त भारत के राजा एवं बादशाहों में द्वंद्वता बराबर चलती रहती थी। और इस कारण एक राजा के राज्य में रहने वालों को दूसरे राजा अथवा बादशाह के राज्य में अथवा में से होकर जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। शत्रुञ्जयतीर्थ गूर्जरभूमि में है और उन दिनों गूर्जरबादशाह अहम्मदशाह था, जिसने अहमदाबाद की नींव डाल कर अहमदाबाद को ही अपनी राजधानी बनाया था। अहम्मदशाह के दरबार में सं० गुणराज नामक प्रतिष्ठित व्यक्ति का बड़ा मान था। सं० धरणा ने सं० गुणराज के साथ में, जिसने बादशाह अहम्मदशाह से फरमाण (आज्ञा) प्राप्त किया है पुष्कल द्रव्य व्यय करके श्री शत्रुञ्जयमहातीर्थादि की महाडंबर और दिव्य जिनालयों से विभूषित सकुशल संघयात्रा की। इस यात्रा के शुभावसर पर संघवी धरणाशाह ने, जिसकी आयु ३०-३२ वर्ष के लगभग में होगी श्री शत्रुञ्जयतीर्थ पर भगवान् आदिनाथ के प्रमुख जिनालय में श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि से संघ-समारोह के समक्ष अपनी पतिव्रता स्त्री धारलदेवी के साथ में शीलव्रत पालन करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की। युवावय में समृद्ध एवं वैभवपति इस प्रकार की प्रतिज्ञा लेने वाले इतिहास के पृष्ठों में बहुत ही कम पाये गये हैं। धन्य है ऐसे महापुरुषों को, जिनके उज्ज्वल चरित्रों पर ही जैनधर्म का प्रासाद आधारित है।

मांडवगढ़ के शाहजादा गजनीखाँ को तीन लक्ष रुपयों का उधार देना

मांडवगढ़ के बादशाह हुसंगशाह का शाहजादा गजनीखाँ अपने पिता से रुष्ट होकर मांडवगढ़ छोड़कर निकल पड़ा था और वह अपने साथियों सहित चलता हुआ आकर नांदिया ग्राम में ठहरा। यहाँ आने तक उसके पास में द्रव्य भी कम हो गया था और व्यय के लिये पैसा नहीं रहने पर वह बड़ा दुःखी हो गया था। जब उसने नांदिया में सं० धरणा की श्रीमंतपन एवं उदारता की प्रशंसा सुनी, वह सं० धरणा से मिला और उससे तीन लक्ष रुपये उधार देने की याचना की। सं० धरणा तो बड़ा उदार था ही, उसने तुरन्त शाहजादा गजनीखाँ को तीन लक्ष रुपया उधार दे दिया।

शाहजादा गजनीखाँ ने रुपया इस प्रतिज्ञा पर उधार लिया था कि वह जब माँडवगढ़ का बादशाह बनेगा, सं० धरणा का रुपया पुनः लौटा देगा। सं० धरणा के आग्रह पर शाहजादा गजनीखाँ कुछ दिनों के लिए नांदिया में ही ठहरा रहा। इन्हीं दिनों में मांडवगढ़ से कुछ यवनसामंत शाहजादे को ढूंढते २ नांदिया में आ पहुँचे और उन्होंने शाहजादा से मांडवगढ़ चलने के लिये आग्रह किया। सं० धरणा ने शाहजादा गजनीखाँ को समझा बुझाकर माँडवगढ़ जाने के लिये प्रसन्न कर लिया और शाहजादा अपने साथियों सहित माँडवगढ़ अपने पिता के पास में लौट गया। बादशाह हुसंगशाह ने जब यह सुना कि सं० धरणा ने उसके पुत्र गजनीखाँ का बड़ा सत्कार किया और उसको समझा कर पुनः मांडवगढ़ जाने के लिये प्रसन्न किया वह अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ और सं० धरणा को माँडवगढ़ बुलाने का विचार करने लगा। इतने में वह अकस्मात् बीमार पड़ गया और सं० धरणा को नहीं बुला सका।

गजनीखाँ का बादशाह बनना और मांडवगढ़ में धरणाशाह को निमंत्रण और फिर कारागार का दंड तथा चौरासी ज्ञातिके एक लक्ष सिक्के देकर धरणा का छूटना और नांदिया ग्राम को लौटना

माँडवगढ़ का बादशाह हुसंगशाह कुछ ही समय पश्चात् वि० सं० १४९१ ई० सन् १४३४ में मर गया और शाहजादा गजनीखाँ बादशाह बना*। सं० धरणा को नांदिया ग्राम से उसने मानपूर्वक निमन्त्रित करके बुलवाया और तीन लक्ष के स्थान पर ६ लक्ष मुद्रायें देकर अपना ऋण चुकाया तथा सं० धरणा को राजसभा में ऊच्च पद प्रदान किया। सं० धरणा पर बादशाह गजनीखाँ की दिनोंदिन प्रीति अधिकाधिक बढ़ने लगी। यह देखकर मांडवगढ़ के अमीर और उमराव सं० धरणा से ईर्ष्या करने लगे। सं० धरणा इन सब की परवाह करने वाला व्यक्ति नहीं था। परन्तु कलह बढ़ता देखकर उसने मांडवगढ़ का त्याग करके नांदिया आना उचित समझा; परन्तु बादशाह ने सं० धरणा को नांदिया लौटने की आज्ञा प्रदान नहीं की। सं० धरणा बड़ा ही धर्मात्मा एवं जिनेश्वर-भक्त था। उसने शत्रुंजयतीर्थ की संघयात्रा करने का विचार किया और बादशाह की आज्ञा लेकर संघयात्रा की तैयारी करने लगा। इस पर सं० धरणा के दुश्मनों को बादशाह को बहकाने का अवसर हाथ लग गया। उन्होंने बादशाह से कहा कि सं० धरणा संघ-यात्रा का बहाना करके नांदिया लौटना चाहता है तथा मांडवगढ़ में अर्जित विपुल सम्पत्ति को भी साथ ले जाना चाहता है। बादशाह गजनीखाँ बड़ा ही दुर्व्यसनी और व्यभिचारी था और वैसा ही कानों का भी अत्यधिक कच्चा था। अतः उसके दरबार में नित नये षड़यन्त्र बनते रहते थे और राजतन्त्र बिगड़ने लग गया था। सं० धरणा के दुश्मनों की यह चाल सफल हो गई और बादशाह ने तुरन्त ही सं० धरणा को कैद में डाल दिया। सं० धरणा के कारागार के दण्ड को श्रवण करके मांडवगढ़ के अति समृद्ध एवं प्रभावशाली श्रीसंघ में अग्नि लग गई।

बाली ग्राम की पौषधशाला के कुलगुरु भट्टारक मियाचन्द्रजी के पास में वि०सं० १९२५ में पुनर्लिखित सं० धरणाशाह के वंशजों की एक लंबी ख्यातप्रति है। उसमें सं० कुरपाल के तीन पुत्रों का होना लिखा है। सब से बड़ा पुत्र समर्थमल था। समर्थमल की स्त्री का नाम सुहादेवी था और सुहादेवी का सुजा नामक पुत्र हुआ था। आगे समर्थमल का वंश नहीं चला। हो सकता है सुजा बालवय में अथवा निस्सन्तान मर गया हो और राणकपुर-धरणविहार-त्रैलोक्यदीपक-मन्दिर की प्रतिष्ठा के शुभावसर तक इनमें से कोई जीवित नहीं रहा हो। इसी ख्यात में सं० धरणा का अपर नाम धर्मा भी लिखा है तथा सं० धरणा की द्वितीया स्त्री चन्द्रादेवी नामा और थी, यह भी लिखा है। वह भी प्रतिष्ठोत्सव तक सम्भव है निस्संतान मर गई हो।

*History of Mediaeval India by Iswari Prasad P. 388

श्रीसंघ ने सं० धरणा को कारागार से मुक्त कराने के लिये भरसक यत्न किये, परन्तु दुर्व्यसनी बादशाह गजनीखाँ ने कोई ध्यान नहीं दिया। बादशाह गजनीखाँ ने कुछ ही समय में अपने प्रतापी पिता हुसंगशाह की सारी सम्पत्ति को विषयभोग में खर्च कर डाला और पैसे २ के लिये तरसने लगा। राजकोष एक दम खाली हो गया। बादशाह गजनीखाँ को जब द्रव्य-प्राप्ति का कोई साधन नहीं दिखाई दिया तो उसने सं० धरणा को चौरासी ज्ञाति के एक लक्ष सिक्के लेकर छोड़ना स्वीकृत किया। अन्त में सं० धरणा चौरासी ज्ञाति के एक लक्ष रुपये देकर कारागार से मुक्त हुआ और अपने ग्राम नांदिया की ओर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगा। उन्हीं दिनों मांडवगढ़ की राजसभा में एक बहुत बड़ा षड्यन्त्र रचा गया। मुहम्मद खिलजी नामक एक प्रसिद्ध एवं बुद्धिमान् व्यक्ति बादशाह का प्रधान मन्त्री था। वह बड़ा ही बहादुर और तेजस्वी था। बादशाह गजनीखाँ की प्रधान के आगे कुछ भी नहीं चलती थी। गजनीखाँ को सिंहासनारूढ़ हुये पूरे दो वर्ष भी नहीं हो पाये थे कि राजकर्मचारी, सामन्त, अमीर और प्रजा उसके दुर्गुणों से तंग आ गई और सर्व उसके राज्य का अन्त चाहने लगे। अन्त में वि० सं० १४९३ ई० सन् १४३६ में मुहम्मद खिलजी ने बादशाह गजनीखाँ को कैद करके अपने को मांडवगढ़ का बादशाह घोषित कर दिया। राजसभा में जब यह घटना चल रही थी सं० धरणा मांडवगढ़ से चुपचाप निकल पड़ा और अपने ग्राम नांदिया में आ गया।

सिरोही के महाराव का प्रकोप और सं० धरणा का मालगढ़ में बसना

नांदिया सिरोही-राज्य का ग्राम था और उन दिनों सिरोही के राजा महाराव सेसमल थे।[1] महाराव सेसमल प्रतापी थे और उन्होंने आस-पास के प्रदेश को जीतकर अपना राज्य अत्यधिक बढ़ा लिया था। सेसमल बड़े स्वाभिमानी राजा थे। सं० धरणा सिरोही-राज्य का अति प्रतिष्ठित पुरुष था। सं० धरणा का मांडवगढ़ में जाकर कैद होना उन्हें बहुत अखरा और उसमें उनको अपनी मान-हानि का अनुभव हुआ। महाराव सेसमल ऐसा मानते थे कि अगर सं० धरणा शाहजादा को रुपया उधार नहीं देता तो सं० धरणा कभी भी मांडवगढ़ में जाकर कैद नहीं होता। इस प्रकार सं० धरणा को उसके खुद के कैदी बनने का कारण महाराव सेसमल सं० धरणा को ही समझते थे और उसको भारी दण्ड देने पर तुले हुए बैठे थे। सं० धरणा को यह ज्ञात हो गया कि महाराव सेसमल उस पर अत्यधिक कुपित हुये बैठे हैं, वह नांदिया ग्राम को त्याग कर सपरिवार मालगढ़ नामक ग्राम में, जो मेदपाट-प्रदेश के अन्तर्गत था आ बसा। महाराणा कुम्भा उन दिनों प्रसिद्ध दुर्ग कुम्भलमेर में ही अधिक रहते थे। मालगढ़ और कुम्भलगढ़ एक ही पर्वतश्रेणी में कुछ ही कोसों के अन्तर पर आ गये हैं। जब महाराणा कुम्भा ने यह सुना कि सं० धरणा मालगढ़ में सपरिवार आ बसे हैं, उन्होंने अपने विश्वासपात्र सामन्तों को भेजकर मानपूर्वक सं० धरणा को राजसभा में बुलवाया और सं० धरणा का अच्छा मान किया तथा सं० धरणा को अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों में स्थान दिया।[2]

---

१. सि० इति० पृ० १९४-९५

२. पाली (मरुधर) के कुलगुरु भट्टारक विद्याचन्द्रजी की पौषधशाला की वि० सं० १९२५ में पुनर्लिखित सं० धरणा के वंशजों की ख्यातप्रति के आधार पर।

महाराणा कुम्भकर्ण बड़े ही प्रतापी, यशस्वी, गुणी राजा थे। उनके दरवार में सदा गुणवानों और पुण्यात्माओं का स्वागत होता रहता था। ऐसे गुणी राजा की राज्यसभा में अगर संघवी धरणाशाह का मान दिन-दुगुना रात-चौगुना वढ़ा हो तो कोई आश्चर्य की वात नहीं। महाराणा कुम्भकर्ण का राज्य अजमेर, मंडोर, नागपुर, गागरण, वूँदी तथा खाटू, चाटू तक विस्तृत था। फलतः उनके दरवार में अनेक वीर, योद्धा, श्रीमन्त, सज्जन व्यक्ति रहते थे। सं० धरणा महाराणा कुम्भकर्ण के अति विश्वासपात्र एवं राज्य के अति प्रतिष्ठित श्रीमन्त व्यक्तियों में गिने जाने लगे थे।*

महाराणा कुम्भकर्ण की राज्यसभा में सं० धरणा

परमार्हत सं० धरणाशाह का राणकपुर में नलिनीगुल्मविमान-त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार नामक चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनप्रासाद का वनवाना

●

जैसा लिखा जा चुका है सं० धरणा वुद्धिमान्, चतुर और वड़ा नीतिज्ञ था, वैसा ही वह दृढ़ जैनधर्मी, गुरुभक्त और जिनेश्वरदेव का उपासक भी था। वह वड़ा तपस्वी भी था। उसने वत्तीस वर्ष की युवावस्था में ही शीलव्रत ग्रहण कर लिया था और नवीन २ जिनप्रासाद वनवाने की नित्य कल्पना किया करता था। एक रात्रि को उसने स्वप्न में नलिनीगुल्मविमान को देखा और नलिनीगुल्मविमान के आकार का एक जिनप्रासाद वनवाने का उसने स्वप्न में निश्चय भी कर लिया और अपने निश्चय की अपने परिजनों के समक्ष चर्चा की। विमान तो उसको स्मरण रह गया, परन्तु उसका नाम उसको स्मरण नहीं रहा; अतः वह यह नहीं समझा सका कि वह कैसा जिनालय वनवाना चाहता है। फलतः उसने दूर २ से अनेक चतुर शिल्पविज्ञ कार्यकरों (कारीगरों) को वुलवाया। आये हुये कार्यकरों ने अनेक मन्दिरों के भांति-भांति के रेखाचित्र वना-वना कर धरणाशाह को दिखाये। उनमें से मुंडाराग्राम के रहने वाले शिल्पविज्ञ देपाक नामक सोमपुरा ने नलिनीगुल्मविमान का रेखाचित्र वनाकर प्रस्तुत किया। सं० धरणा ने देपाक को अपना प्रमुख कार्यकर नियुक्त किया।

सं० धरणा को स्वप्न का होना

---

*सं० धरणा महाराणा कुम्भकर्ण का मन्त्री रहा हो, ऐसा कोई प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है। सं० धरणा महाराणा के दरवार में अति सम्मानित व्यक्ति अवश्य थे, जो राणकपुर की प्रशस्ति से ही स्पष्ट सिद्ध होता है।

(१७) महीपति ४० कुलकाननपंचाननस्य। विपमतमाभंगसारंग- (१८) पुर नागपुर गागरण नराणकाऽजयमेरु मंडोर मंडलकर वूंदि

(१९) खाटू चाटू सूजानादि नानामहादुर्गलीलामात्रग्रहणप्रमाणि- (३०)..........राणाश्रीकुम्भकर्णसर्वोर्वीपतिसार्वभौमस्य ४१ विजय-

(३१) मान राज्ये .... (३२).. श्रीमदहम्मद-

(३३) सुरत्राणदत्तफुरमाणसाधुश्रीगुणराजसंघपतिसाहाचर्यकृताश्च- (३४) र्यकारिदेवालयाडम्बरपुरःसरश्रीशत्रुञ्जयादितीर्थयात्रेण। अजा-

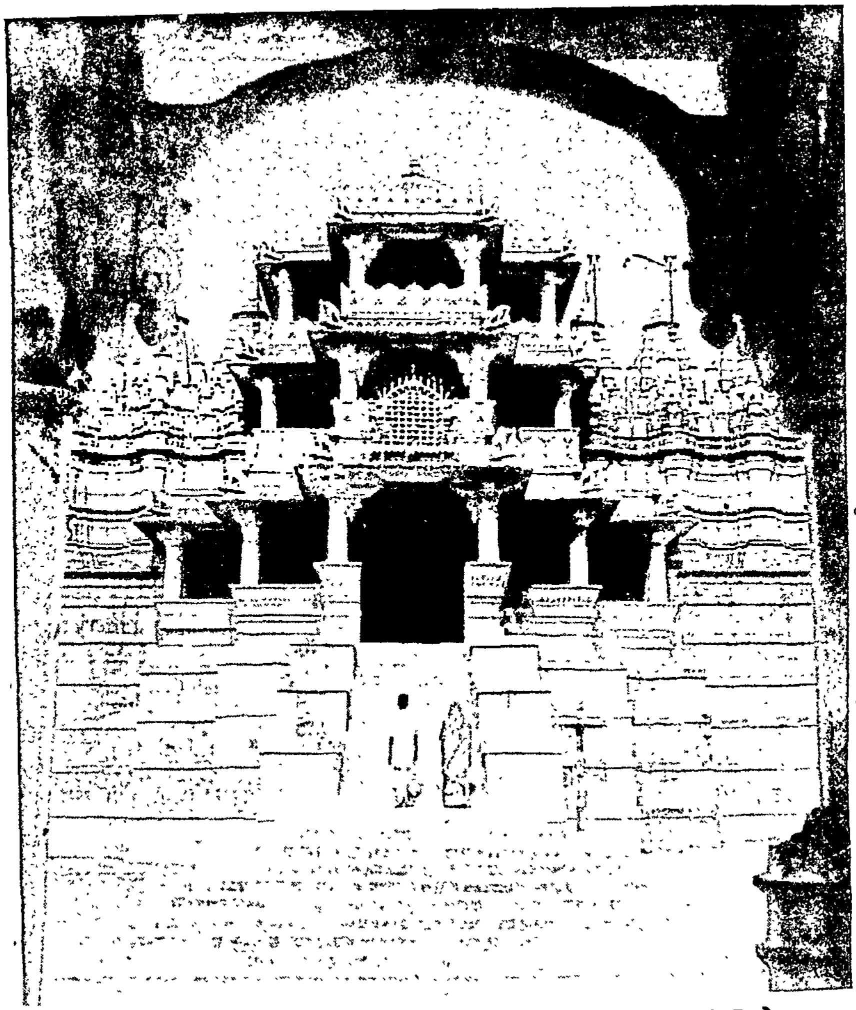
(३५) हरी पिंडरवाटकसालेरादि वहुस्थाननवीनजैनविहारजीर्णोद्धार- (३६) पदस्थापनाविषमसमयसत्रागारनानाप्रकारपरोपकारश्रीसंघस-

(३७) त्काराद्यगण्यपुण्यमहार्थक्रयाणकपूर्यमाणभवार्णवतारणक्षम-

प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३०७ (राणकपुरतीर्थप्रशस्ति,)



गोड़वाड़ (गिरिवाट) प्रदेश की मादीपर्वत की रम्य उपत्यका में सं० धरणाशाह द्वारा विनिर्मित श्री नलिनीगुल्मविमान-त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार श्री राणकपुरतीर्थ नामक शिल्पकलावतार श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनप्रासाद। देखिये पृ० २६७ पर।



श्री राणकपुरतीर्थ धरणविहार का पश्चिमाभिमुख त्रिमंजिला सिंहद्वार। देखिये पृ० २७१ पर।

अर्वली अथवा आड़ावला पर्वत की विशाल एवं रम्य श्रेणियाँ मरुधरप्रान्त तथा मेदपाट-प्रदेश की सीमा निर्धारित करती हैं और वे मरुधर से आग्नेय और मेदपाट के पश्चिम में आई हुई हैं। इन पर्वत-श्रेणियों में होकर अनेक पथ दोनों प्रदेशों में जाते हैं। जिनमें देसूरी की नाल अधिक प्रसिद्ध है। कुम्भलगढ़ का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग, जिसको प्रतापी महाराणा कुम्भकर्ण ने बनवाया था, इसी आड़ावालापर्वत की महानतम् शिखा पर आज भी सुदृढ़ता के साथ अनेक विपद्-बाधा झेलकर खड़ा है। महाराणा कुम्भकर्ण इसी दुर्ग में रहकर अधिकतर प्रबल शत्रुओं को छकाया करते थे। कुम्भलगढ़ के दुर्ग से १०-१२ मील के अन्तर पर मालगढ़ ग्राम आज भी विद्यमान है, जिसमें परमार्हत धरणा और रत्ना रहते थे। कुम्भलगढ़ से जो मार्ग मालगढ़ को जाता है, उसमें माद्रीपर्वत पड़ता है। इसी माद्रीपर्वत की रम्य उपत्यका में मादड़ी ग्राम जिसका शुद्ध नाम माद्रीपर्वत की उपत्यका में होने से माद्री था बसा हुआ था। मादड़ी ग्राम अगम्य एवं दुर्भेद स्थल में भले नहीं भी बसा था, फिर भी वहाँ दुश्मनों के आक्रमणों का भय नितान्त कम रहता था। सं० धरणाशाह को त्रैलोक्यदीपक नामक जिनालय बनवाने के लिये मादड़ी ग्राम ही सर्व प्रकार से उचित प्रतीत हुआ। रम्य पर्वतश्रेणियाँ, हरी-भरी उपत्यका, प्रतापी महाराणाओं के दुर्ग कुम्भलगढ़ का सानिध्य, ठीक पार्श्व में मघा सरिता का प्रवाह, दुश्मनों के सहज भय से दूर आदि अनेक बातों को देखकर सं० धरणाशाह ने मादड़ी ग्राम में महाराणा कुम्भकर्ण से भूमि प्राप्त की और मादड़ी का नाम बदलकर राणकपुर रक्खा। ऐसा माना जाता है कि राणकपुर* महाराणा शब्द का 'राणक' और सं० धरणा की ज्ञाति 'पोरवाल' का 'पोर,' 'पुर' का योग है जो दोनों की कीर्त्ति को सूर्य-चन्द्र जब तक प्रकाशमान् रहेंगे प्रकाशित करता रहेगा।

मादड़ी ग्राम और उसका नाम राणकपुर रखना

विशाल संघ समारोह एवं धूम-धाम के मध्य सं० धरणा ने धरणविहार नामक चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय की नींव वि० सं० १४९५ में डाली। इस समय दुष्काल का भी भयंकर प्रकोप था। निर्धन जनता को यह वरदान सिद्ध हुआ। मुंडारा ग्राम के निवासी प्रसिद्ध शिल्पविज्ञ कार्यकर सोमपुराज्ञातीय देपाक की तत्त्वावधानता में अन्य पच्चास कुशल कार्यकरों एवं अगणित श्रमकरों को रख कर कार्य प्रारम्भ करवाया गया। जिनालय की नींवें अत्यन्त गहरी खुदवाईं और उनमें सर्वधातु का उपयोग करके विशाल एवं सुदृढ़ दिवारें उठवाईं। चौरासी भूगृह बनवाये, जिनमें से पाँच अभी दिखाई देते हैं। दो पश्चिमद्वार की प्रतोली में एक उत्तर मेघनाथ-मंडप

श्री त्रैलोक्यदीपक-धरण-विहार नामक चतुर्मुख-आदिनाथजिनालय का शिलान्यास और जिनालय के भूगृहों व चतुष्क का वर्णन

*(४१) ....राणपुरनगरे राणाश्रीकुम्भकर्ण- (४२) नरेन्द्रेण स्वनाम्ना निवेशिते तदीयसुप्रसादादेशतस्त्रैलोक्य- (४३) दीपकाभिधानः श्री चतुर्मुखयुगादीश्वरविहारः कारितः प्रतिष्ठितः — राणकपुर-प्रशस्ति

अनेक पुस्तकों में मादड़ी ग्राम के विषय में बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है कि यहाँ २७०० सत्ताईसौ घर तो केवल जैनियों के ही थे। और ज्ञातियों के तो फिर कितने ही सहस्रों होंगे। ये सब बातें अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, जो मंदिर के आकार की विशालता को देखकर अनुमानित की गई हैं। लेखक श्री त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार के शिला-लेखों का संग्रह करने की दृष्टि से वहाँ २०-५-५० से ३-६-५० तक रहा और पार्श्ववर्त्ती समस्त भाग का बड़ी सूक्ष्मता एवं गवेषणात्मक दृष्टि से अवलोकन किया। उपत्यका में मैदान अवश्य बड़ा है; परन्तु वह ऐसा विषम और टेढ़ा-मेढ़ा है कि यहाँ इतना विशाल नगर कभी था अमान्य प्रतीत होता है। दूसरी बात-जीर्ण एवं खण्डित मकानों के चिन्ह आज भी मौजूद हैं, जिनको देखकर भी यह अनुमान लगता है कि यहाँ साधारण छोटा-सा ग्राम था। विशेष सुदृढ़ शंका जो होती है, वह यह है कि अगर मादड़ी त्रैलोक्यदीपक-जिनालय के बनवाने के पूर्व ही विशाल नगर था तो जैसी भारत में बहुत पहिले से ग्राम और नगरों को संकोच कर बसाने की पद्धति ही रही है, इतने विशाल नगर में इतना खुला भाग

से लगती हुई भ्रमती में, एक अन्य देवकुलिका में और एक नैऋत्य कोण की शिखरबद्ध कुलिका के पीछे भ्रमती में है। शेष चतुष्क में छिपे हैं। जिनालय का चतुष्क सेवाड़ीज्ञाति के प्रस्तरों से बना है, जो ४८००० वर्गफीट समानान्तर है। प्रतिमाओं को छोड़कर शेष सर्वत्र सोनाणाप्रस्तर का उपयोग हुआ है। मूलनायक देवकुलिका के पश्चिमद्वार के बाहर उत्तरपक्ष की भित्ति में एक शिलापट्ट पर वि० सं० १४९६ का लम्बा प्रशस्ति-लेख उत्कीर्णित है। इससे यह समझा जा सकता है कि यह मूलनायक देवकुलिका वि० सं० १४९६ में बनकर तैयार हो गई थी और वि० सं० १४९८ तक अन्य प्रथमावश्यक अंगों की भी रचना हो चुकी थी और जिनालय प्रतिष्ठित किये जाने के योग्य बन चुका था।

सं० धरणाशाह के अन्य तीन कार्य और त्रैलोक्य-दीपक-धरणविहार नामक जिनालय का प्रतिष्ठोत्सव

राणकपुर नगर में सं० धरणा ने चार कार्य एक ही मुहूर्त में आरम्भ किये थे* । सं० धरणाशाह का प्रथम महान् सत्कार्य तो उपरोक्त जिनालय का बनवाना ही है। अतिरिक्त इसके उसने राणकपुर नगर में निम्न तीन कार्य और किये थे। एक विशाल धर्मशाला बनवाई, जिसमें अनेक चौक और कक्ष (ओरड़ियाँ) थे तथा जिसमें काष्ठ के चौरासी उत्तम प्रकार के स्तम्भ थे। धर्मशाला में अनेक आचार्यों के एक साथ अपने मान-मर्यादापूर्वक ठहरने की व्यवस्था थी। अलग अलग अनेक व्याख्यान-शालायें बनवाई गई थीं। यह धर्मशाला दक्षिणद्वार के सामीप्य में थोड़े ही अन्तर पर बनाई गई थी।

कैसे निकल आया ? त्रैलोक्यदीपक-जिनालय का वह प्रकोष्ठ जो व्यवस्थापिका पेढ़ी ने पर्वतों की ढाल से जिनालय की ओर आने वाले पानी को रोकने के लिये जिनालय से दक्षिण तथा पूर्व में लगभग एक या डेढ़ फर्लांग के अन्तर पर बनवाया है पर्याप्त लम्बा और चौड़ा है और समस्त उपत्यका-स्थल में समतल भाग ही यही है। यहाँ नगर का मध्य या प्रमुख भाग बसा होना चाहिए था। मेरी दृष्टि में तो यही उचित मालूम पड़ता है कि यहाँ साधारण ज्ञाति के लोगों का निवास था, जिनसे धरणाशाह ने भूमि खरीद कर ली या फिर वे राजाज्ञा से यह भाग छोड़ कर कुछ दूरी पर जा बसे। यह अवश्य सम्भव है कि त्रैलोक्यदीपक-जिनालय बनने के समय अथवा पीछे जैन आबादी अवश्य बढ़ गई हो, महाराणा और श्रीमन्तों की अट्टारियाँ बन गई हों, ग्राम की रमणीकता बढ़ गई हो; परन्तु मादड़ी एक अति विशाल नगर था सत्य प्रतीत नहीं होता है।

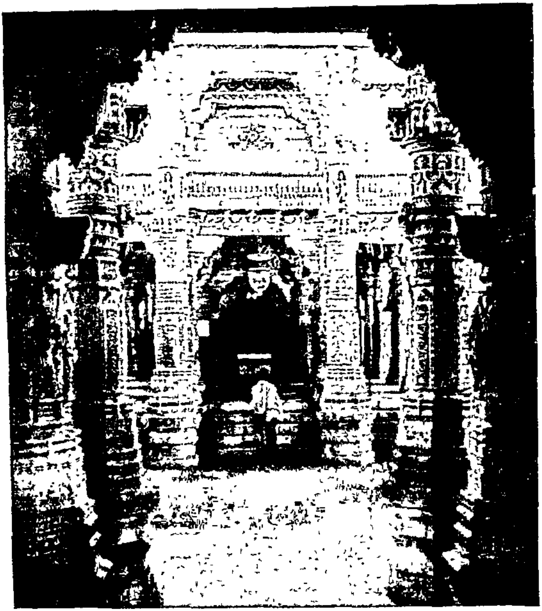
एक कथा ऐसी सुनी जाती है कि एक दिन सं० धरणाशाह ने घृत में पड़ी मक्षिका (माखी) को निकालकर जूते पर रख ली। यह किसी शिल्पी कार्यकर ने देख लिया। शिल्पियों ने विचार किया कि ऐसा कृपण कैसे इतने बड़े विशाल जिनालय के निर्माण में सफल होगा। सं० धरणाशाह की उन्होंने परीक्षा लेनी चाही। जिनालय की जब नींवें खोदी जा रही थीं, शिल्पियों ने सं० धरणाशाह से कहा की नीवों को पाटने में सर्वधातुओं का उपयोग होगा, नहीं तो इतना बड़ा विशाल जिनालय का भार केवल प्रस्तरविनिर्मित दिवारें नहीं सम्भाल पायेंगी। सं० धरणाशाह ने अतुल मात्रा में सर्वधातुओं को तुरन्त ही क्रय करके एकत्रित करवाईं। तब शिल्पियों को बड़ी लज्जा आई कि वह कृपणता नहीं थी, परन्तु सार्थक बुद्धिमत्ता थी।

*'चतुरधिकाशीतिमितैः स्तंभैरमितैः प्रकृष्टतरकाष्टैः। निचिता च पट्टशालाचतुष्किकापवरकप्रवरा ॥

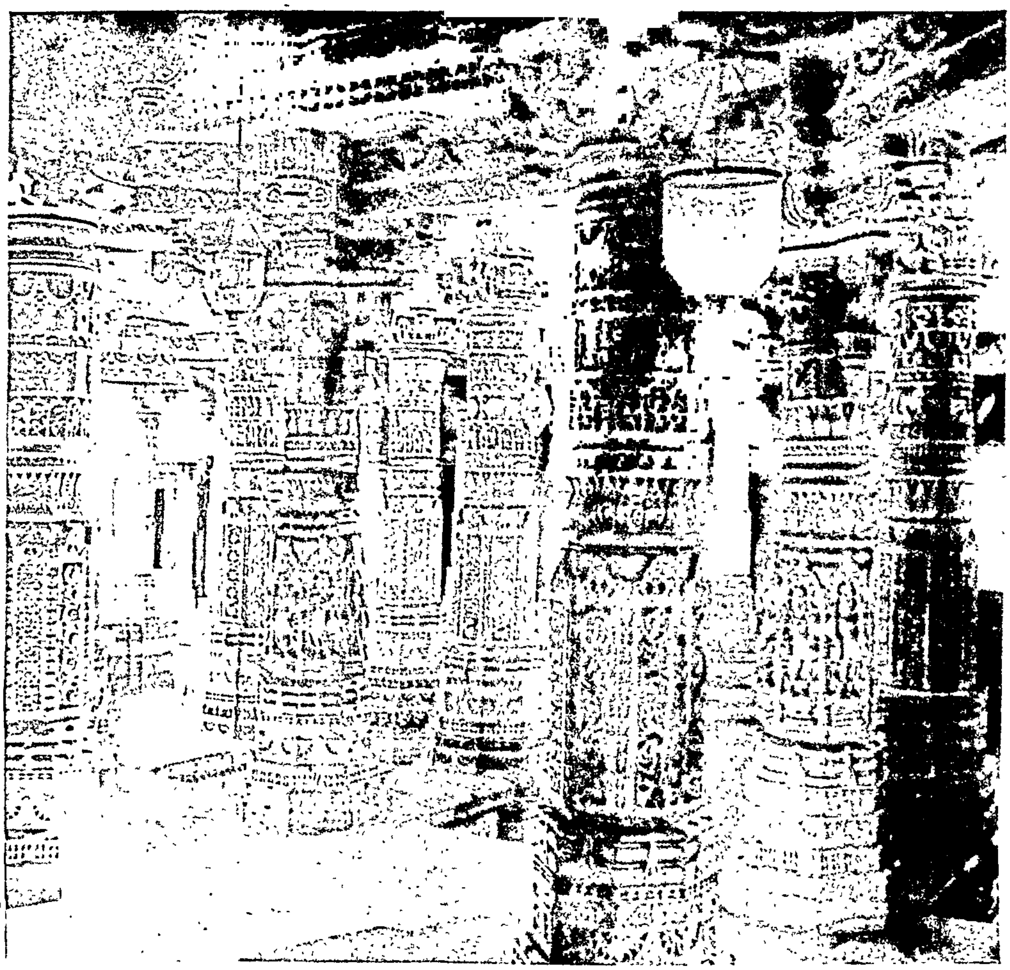
श्री धरणनिर्मिता या पौषधशाला समस्त्यतिविशाला। तस्यां समवासापुः प्रहर्षतो गच्छनेतारः' ॥ —सोमसौभाग्यकाव्य

सं० धरणा का एक विशाल धर्मशाला के बनाने का निश्चय करना स्वाभाविक ही था, क्योंकि ऐसे महान् तीर्थस्वरूप जिनालय की प्रतिष्ठा के समय अनेक प्रसिद्ध आचार्यों की अपने शिष्यगणों के सहित आने की सम्भावना भी थी और ऐसे तीर्थों में अनेक साधु, मुनिराज सदा ठहरते भी हैं, अतः ठहराने की समुचित व्यवस्था तो होनी ही चाहिए। यह धर्मशाला जीर्ण-शीर्ण अवस्था में अभी तक विद्यमान् थी। वि० सं० २००४-५ में समूलतः नष्ट हो गई और फलतः उठवा दी गई।

यह प्रायः प्रथा-सी हो गई है कि तीर्थों में दानशालायें होती ही हैं। तीर्थों के दर्शनार्थ गरीब अभ्यागत अनेक आते रहते हैं तथा और फिर उन दिनों में तो दानशालायें बनवाने का प्रचार भी अत्यधिक था। अतः धर्मात्मा सं० धरणा का राणकपुरतीर्थ में दानशाला खोलने का विचार भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है।



श्री राणकपुरतीर्थ धरणविहार के पश्चिम मेघनादमण्डप, रंगमण्डप और मूलनायक-देवकुलिका के स्तंभों की, तोरणों की मनोहर शिल्पकलाकृति।



श्री राणकपुरतीर्थ धरणविहार के कलामयी स्तंभों का एक मनोहारी दृश्य ।

तृतीय कार्य-दानशाला बनवाई गई और चतुर्थ कार्य-अपने लिये एक अति विशाल महालय बनवाया। वि० सं० १४६८ तक जिनालय, दानशाला, महालय और धर्मशाला चारों कार्य प्रायः बन चुके थे।

श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के कर-कमलों से प्रतिष्ठा

इस त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार नामक राणकपुरतीर्थ की अंजनशलाका वि० सं० १४६८ फा० कृ० ५ को और बिंबस्थापना फा० कृ० १० को (राजस्थानी चैत्र कृ० १०) शुभमुहूर्त में सुविहितपुरन्दर, परमगुरु श्री देवसुन्दरसूरिपट्टप्रभाकर, श्रीबृहत्तपागच्छेश श्री सोमसुन्दरसूरि के कर-कमलों से, जो श्री जगच्चंद्रसूरि और श्री देवेन्द्रसूरि के वंश में थे, परमार्हत सं० धरणाशाह ने अपने ज्येष्ठ भ्राता सं० रत्नाशाह, भ्रातृजाया रत्नदेवी, भ्रातृज सं० लाखा, सलखा, मना, सोना, सालिग तथा स्वपत्नी धारलदेवी एवं अपने पुत्र जाखा और जावड़ के सहित बड़ी धूम-धाम से करवाई। आज भी उसकी पुण्यस्मृति में चै० कृ० १० (गुजराती फा० कृ० १०) को प्रतिवर्ष मेला होता है और उसी दिन नवध्वजा चढ़ाई जाती है। यह ध्वजा और पूजा सं० धरणाशाह के वंशजों द्वारा जो घाणेराव में रहते हैं चढ़ाई जाती है और उनकी ही ओर से पूजा भी बनाई जाती है। इस प्रतिष्ठोत्सव में दूर २ के अनेक नगर, ग्रामों से ५२ बावन बड़े२ संघ और सद्गृहस्थ आये थे तथा अनेक बड़े २ आचार्य अपने शिष्यगणों के सहित उपस्थित हुये थे। इस प्रकार ५०० साधु-मुनिराज एकत्रित हुये थे। उक्त शुभ दिवस में मूलनायक-युगादिदेव-देवकुलिका में सं० धरणाशाह ने एक सुन्दर प्रस्तर-पीठिका के ऊपर चारों दिशाओं में* अभिमुख युगादिदेव भगवान् आदिनाथ की भव्य एवं श्वेतप्रस्तरविनिर्मित चारसपरिकर विशाल प्रतिमायें स्थापित कीं। प्रतिष्ठोत्सव के प्रथम दिन से ही पश्चिम सिंहद्वार के बाहर अभिनय होने लगे थे। दक्षिणसिंहद्वार के बाहर श्री सोमसुन्दरसूरि तथा अन्य आचार्यों, मुनि-महाराजों के दर्शनार्थ श्रावकों का समारोह धर्मशाला के द्वार पर लगा रहता था, पूर्वसिंह-द्वार के बाहर वैताढ्यगिरि का मनोहारी दृश्य था, जिसको देखने के लिये भीड़ लगी रहती थी और उत्तरसिंह-द्वार के बाहर श्रावक-संघ दर्शनार्थ एकत्रित रहते थे। प्रतिष्ठावसर पर सं० धरणाशाह ने अनेक आश्चर्यकारक कार्य किये तथा दीनों को बहुत दान दिया और उनका दारिद्र्य दूर किया।

सं० धरणाशाह का चतुर्थ कार्य अपने लिये महालय बनवाने का है। यह भी उचित ही था। तीर्थ का बनाने वाला तीर्थ की देखरेख की दृष्टि से, भक्ति और उच्च भावों के कारण अपने बनाये हुये तीर्थ में ही रहना चाहेगा।

*'च्यारइ महूरत साथता ऐ लीधा एक ही वार तु, पहिलइ देवल मांडीउ ए बीजइ सत्तू कारतु।
पौषधशाला अति भक्ति ए मांडीअ देउल पासि तु, चतुर्थउं महूरत धरणउं मंडाव्या आवास तु' ॥*

*यह उपरोक्त पद्य मेह कवि के वि० सं० १४९९ में बनाये हुए एक स्तवन का अंश है।
मेह कवि ने अपने इसी लम्बे स्तवन में एक स्थल पर इस प्रकार वर्णित किया है—*

*'रलियाइति ललगति इणि परि, काका हिव कीजइं जगडू परि।
जगडू कहीयई राया सधार, आगण पे देस्या लोक आधार' ॥*

अर्थात् वि० सं० १४९५ में भारी दुष्काल पड़ा। सं० धरणाशाह को उसके भ्रातृज ने जगत्-प्रख्यात महादानी जगडूशाह श्रेष्ठि के समान दुष्काल से पीड़ित, क्षुधित, दीन, धनहीन जनता की सहायता करने की प्रार्थना की। भ्रातृज की प्रार्थना को मान देकर सं० धरणा ने त्रैलोक्यदीपकतीर्थ, धर्मशाला, स्वनिवास बनवाना प्रारम्भ किया तथा सत्रालय खुलवाया।

उत्तराभिमुख मूलनायक प्रतिमा वि० सं० १५७९ की प्रतिष्ठित है। इससे यह सिद्ध होता है कि सं० धरणाशाह की स्थापित प्रतिमा खण्डित हो गई थी और पीछे प्राग्वाटज्ञातीय विरधा और उसके पुत्र हेमराज नगजी ने उक्त प्रतिमा स्थापित की थी।

प्रतिष्ठोत्सव के समाप्त हो जाने पर श्री सोमदेव वाचक को आचार्यपद प्रदान किया गया। सं० धरणाशाह ने आचार्यपदोत्सव को बहुत द्रव्य व्यय करके मनाया। प्रतिष्ठोत्सव के समय तथा पश्चात् संघवी धरणाशाह द्वारा अपने तथा अपने परिजनों के श्रेयार्थ विनिर्मित एवं प्रतिष्ठित करवाई गई प्रतिमाओं और परिकरों की सूची[१-२] निम्नवत् है:—

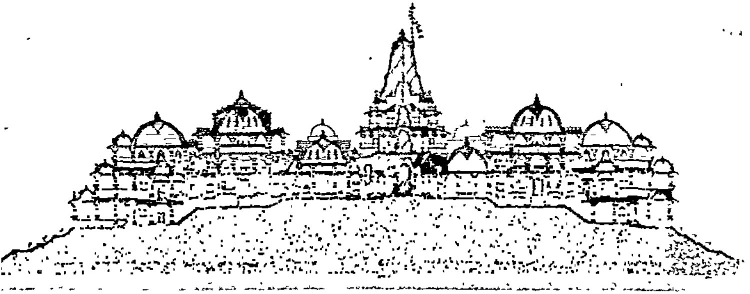
वि० सं०	आचार्य	प्रतिमा	दिशा
	प्रथम खण्ड की मूलनायक-देवकुलिका में		
१४९८ फा० कृ० ५	सोमसुन्दरसूरि	आदिनाथसपरिकर	पश्चिमाभिमुख
,,	,,	,,	दक्षिणाभिमुख
,,	,,	,,	पूर्वाभिमुख
,,	,,	,,	उत्तराभिमुख
	द्वितीय खण्ड की देवकुलिका में		
१५०७ चै० कृ० ५	रत्नशेखरसूरि	आदिनाथसपरिकर	पश्चिमाभिमुख
१५०८ चै० शु० १३	,,	,,	उत्तराभिमुख
१५०९ वै० शु० २	,,	परिकर	पूर्वाभिमुख
	तृतीय खण्ड की देवकुलिका में		
१५०९ वै० शु० २	रत्नशेखरसूरि	परिकर	पश्चिमाभिमुख
,,	,,	,,	दक्षिणाभिमुख
,,	,,	,,	पूर्वाभिमुख
,,	,,	,,	उत्तराभिमुख

इस धरणविहारतीर्थ में सं० धरणाशाह का अन्तिम कार्य मूलनायक देवकुलिका के ऊपर द्वितीय खण्ड में प्रतिष्ठित पूर्वाभिमुख प्रतिमा का परिकर तथा तृतीय खण्ड के परिकर हैं, जिनको वि० सं० १५०९ वै० शु० २ को रत्नशेखरसूरि के करकमलों से स्थापित करवाये थे। इससे यह सम्भव लगता है कि वि० सं० १५१०-११ में सं० धरणाशाह स्वर्गवासी हुआ।

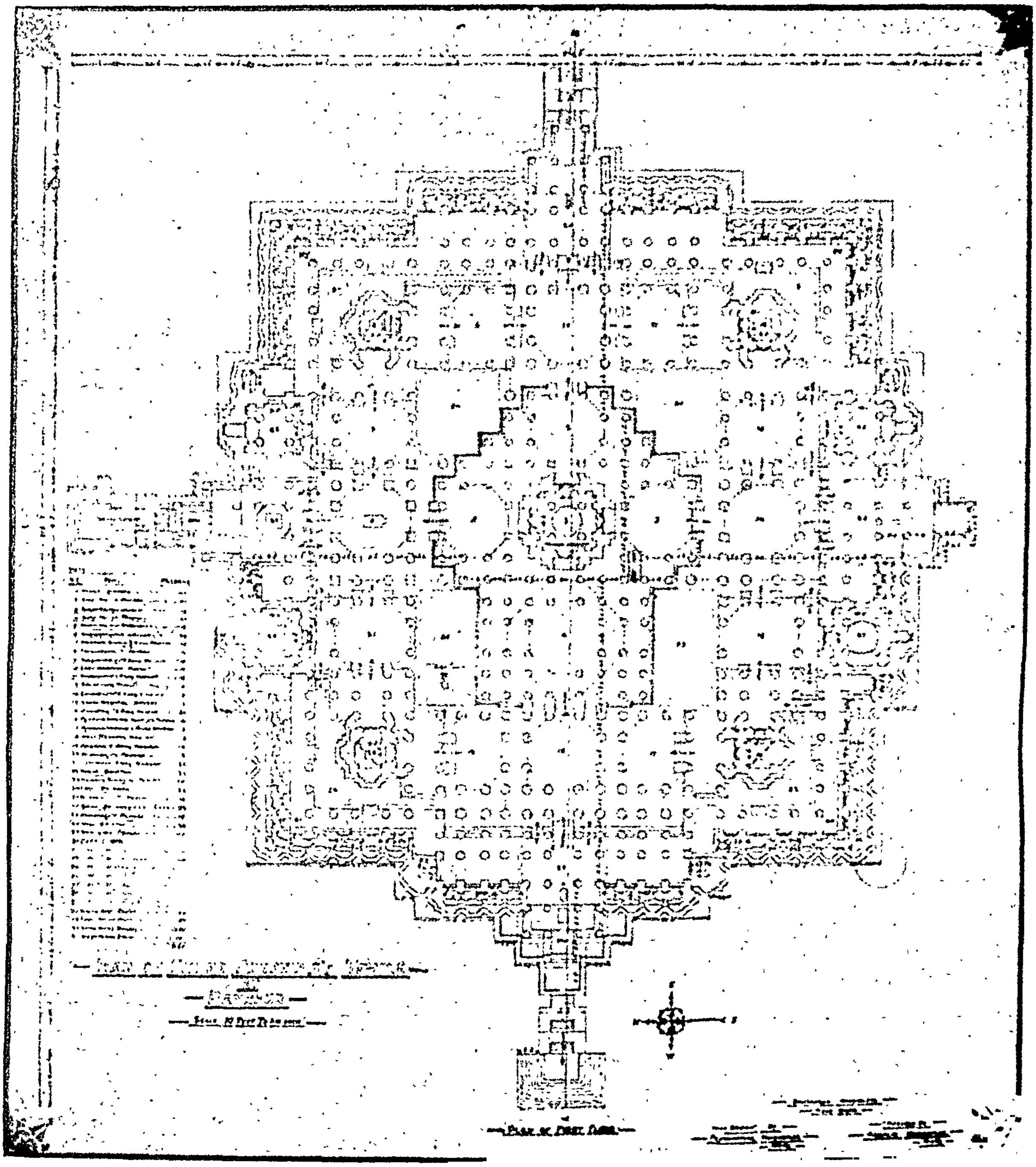
१-उपरोक्त संवतों से यह तो सिद्ध है कि सं० धरणा वि० सं० १५०९ में जीवित था। तथा उक्त तालिका से यह भी सिद्ध होता है कि धरणविहार का निर्माणकार्य धरणाशाह की मृत्यु तक बहुत कुछ पूर्ण भी हो चुका था—जैसे मूलनायक त्रिमंजली युगादिदेव-कुलिका का निर्माण और चारों सभामण्डपों की तथा चारों सिंह-द्वारों की प्रतोलियों की (पोल) रचना, परिकोष्ठ में अधिकांश देवकुलिकाओं और उनके आगे की स्तंभवतीशाला (वरशाला) तथा अन्य अनिवार्यतः आवश्यक अङ्गों का बनना आदि।

२-मेरे द्वारा संग्रहित लेखों के आधार पर।

एक कथा ऐसी भी प्रचलित है कि मुण्डारानिवासी सोमपुरा देपाक एक साधारण ज्ञानवाला शिल्पकार था। सं० धरणाशाह द्वारा निमन्त्रित कार्यकरों में वह भी था। देपाक को रात्रि में देवी का स्वप्न हुआ, क्यों कि वह देवी का परम भक्त था। देवी ने देपाक को कहा



नलिनीगुल्मविमान श्री त्रैलोक्यदीपक धरणविहार नामक श्री राणकपुरतीर्थ श्री आदिनाथ-चतुर्मुख-जिनप्रासाद का रेखाचित्र।
(श्री आनंदजी कल्याणजी की पीढ़ी, अहमदाबाद के सौजन्य से।)



नलिनीगुल्मविमान श्री त्रैलोक्यदीपक धरणविहार नामक श्री राणकपुरतीर्थ श्री आदिनाथ-चतुर्मुख-जिनप्रासाद १४४४ सुन्दर स्तंभों से बना है और अपनी इसी विशेषता के लिये वह शिल्पक्षेत्र में अद्वितीय है। उसके प्रथम खण्ड की समानान्तर स्तंभमालाओं का देखाव। देखिये पृ० २७१ पर। (श्री आनंदजी कल्याणजी की पीढ़ी, अहमदाबाद के सौजन्य से।)

श्री राणकपुरतीर्थ की स्थापत्यकला

धरणविहार नामक इस युगादिदेव-जिनप्रासाद की बनावट चारों दिशाओं में एक-सी प्रारम्भ हुई और सीढ़ियाँ, द्वार, प्रतोली और तदोपरी मंडप, देवकुलिकायें और उनका प्रांगण, भ्रमती, विशाल मेघमण्डप, रंग-मंडपों की रचना, एक माप तथा एक आकार और एक संख्या और ढंग की करती हुई चतुष्क के मध्य में प्रमुख त्रिमंजली चतुष्द्वारवती शिखरबद्ध देवकुलिका का निर्माण करके समाप्त हुई। यह प्रासाद इतना भारी, विशाल और ऊंचा है कि देखकर महान् आश्चर्य होता है। प्रासाद के स्तम्भों की संख्या १४४४ हैं। मेघमण्डप एवं त्रिमंजली प्रमुख देवकुलिका के स्तम्भों की ऊंचाई चालीस फीट से ऊपर है। इन स्तम्भों की रचना संख्या एवं परस्पर मिलती हुई समानान्तर पंक्तियों की दृष्टि से इतनी कौशलयुक्त की गई है कि प्रासाद में कहीं भी खड़े होने पर सामने की दिशा में विनिर्मित देवकुलिका में प्रतिष्ठित प्रतिमा के दर्शन किये जा सकते हैं। प्रमुख देवकुलिका ने चतुष्क का उतना ही समानान्तर भाग घेरा है, जितना भाग प्रतोली एवं सिंह-द्वारों ने चारों दिशाओं में अधिकृत किया है। प्रासाद में चार कोणकुलिकाओं के तथा मूलनायक-कुलिका का शिखर मिलाकर ५ शिखर हैं, १८४ भूगृह हैं, जिनमें पाँच खुले हैं, आठ सब से बड़े और आठ उनसे छोटे और आठ उनसे छोटे कुल २४ मण्डप हैं, ८४ देवकुलिकायें हैं, चारों दिशाओं के चार सिंह-द्वार हैं। समस्त प्रासाद सोनाणा और सेवाड़ी प्रस्तरों से बना है और इतना सुदृढ़ है कि आततायियों के आक्रमण को और ५०० पाँच सौ वर्ष के काल को झेलकर भी आज वैसा का वैसा बना खड़ा है। परमार्हत सं० धरणाशाह की उज्ज्वल कीर्त्ति का यह प्रतीक सैंकड़ों वर्षों पर्यन्त और तद्विषयक इतिहास अनन्त वर्षों तक उसके नाम और गौरव को संसार में प्रकाशित करता रहेगा।

चतुष्क की चारों बाहों पर मध्य में चार द्वार बने हुये हैं। द्वारों की प्रतोलियाँ अन्दर की ओर हैं। द्वारों के नाम दिशाओं के नाम पर ही हैं। पश्चिमोत्तर द्वार प्रमुख द्वार है। चारों द्वारों की बनावट एक-सी है। प्रत्येक द्वार के आगे क्रमशः बड़ी और छोटी दो २ चतुष्किका हैं, जिन पर क्रमशः त्रि० और द्वि० मंजली गुम्बजदार महालय हैं। फिर सीढ़ियाँ हैं, जो जमीन के तल तक बनी हुई हैं।

जिनालय के चार सिंह-द्वारों की रचना

चारों द्वारों की प्रतोलियों की बनावट एक-सी है। प्रतोलियों का आंगनभाग छतदार है और जिनालय के भीतर प्रवेश करने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। चारों प्रतोलियों का यह भाग खुला हुआ है और भ्रमती से जाकर मिलता है। इस खुले हुये भाग के ऊपर विशाल गुम्बज है। चारों प्रतोलियों के ऊपर के गुम्बजों में वलयाकार अद्भुत कला-कृति है, जिसको देखते ही बनता है।

चार प्रतोलियों का वर्णन

कि यह ऐसा चित्र बनाकर ले जावे, जैसा चित्र एक कृषक सीधा और आड़ा हल चलाकर अपने क्षेत्र में उभार देता है, जिसमें केवल समानान्तर सीधी और आड़ी रेखाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है। जहाँ ये सीधी और आड़ी रेखायें परस्पर एक दूसरे से मिलती अथवा एक दूसरे को काटती हैं, वहाँ स्तम्भों का आरोपण समझना चाहिए। सोमपुरा देपाक देवी के आदेश एवं संकेत के अनुसार रेखा-चित्र बना कर ले गया। नलिनीगुल्मविमान इसी चित्र के आकार का होता है। बस सं० धरणाशाह ने देपाक का चित्र पसन्द किया और देपाक को प्रमुख कार्यकर बनाकर उसकी देख-रेख में मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ करवाया।

इन वलयों की कला को देखकर मुझको मैन्चैस्टर की जगत्-विख्यात जालियों का स्मरण हो आया, जो मैंने कई बड़े २ अद्भुत संग्रहालयों में देखी हैं। परन्तु इस कला-कृति की सजीवता और चिर-नवीनता और शिल्पकार की टांकी का जादू उस यन्त्र-कला-कृति में कहाँ ?

दक्षिण प्रतोली के ऊपर के महालय में एक प्रोत्थित वेदिका पर श्रेष्ठि-प्रतिमा है, जो खड़ी हुई है। उस पर सं० १७२३ का लेख है। पूर्व और पश्चिम प्रतोलियों के ऊपर के महालयों में गजारूढ़ माता मरुदेवी की प्रतिमा हैं, जिसकी दृष्टि सीधी मूल-मन्दिर में प्रतिष्ठित आदिनाथबिंब पर पड़ती है। उत्तरद्वार की प्रतोली के ऊपर के महालय में सहस्रकुटि विनिर्मित है, जिसको राणक-स्तम्भ भी कहते हैं। यह अपूर्ण है। यह क्यों नहीं पूर्ण किया जा सका, उसके विषय में अनेक दन्त-कथायें प्रचलित हैं। इस सहस्र-कुटि-स्तम्भ पर छोटे-बड़े अनेक शिलालेख पतली पट्टियों पर उत्कीर्णित हैं। जिनसे प्रकट होता है कि इस स्तम्भ के भिन्न २ भाग तथा प्रभागों को भिन्न व्यक्तियों ने बनवाया था। जैसी दन्तकथा प्रचलित है कि इसका बनाने का विचार प्रतापी महाराणा कुम्भकर्ण ने किया था, परन्तु व्यय अधिक होता देखकर प्रारम्भ करके अथवा कुछ भाग बन जाने पर ही छोड़ दिया। वचनों में सदा अडिग रहने वाले मेदपाटमहाराणाओं के लिये यह श्रुति मिथ्या प्रतीत होती है और फिर वह भी महाप्रतापी महाराणा कुम्भ के लिये तो निश्चिततः।

प्रतोलियों के ऊपर महालयों का वर्णन

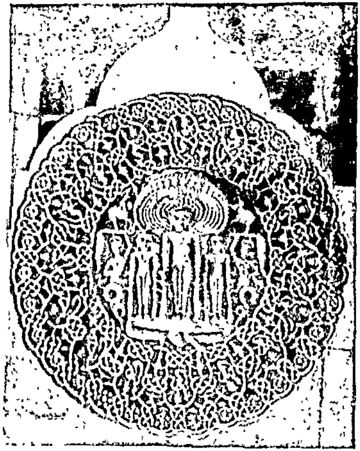
चतुष्क पर बाहिर की ओर कुछ हस्व स्थान छोड़कर चारों ओर चतुष्क की चारों बाहों पर प्रकोष्ठ बनाया गया है, जिसमें चारों प्रमुख द्वार चारों दिशाओं में खुलते हैं। द्वारों द्वारा अधिकृत भाग छोड़ कर प्रकोष्ठ के शेष भाग में देवकुलिकायें बनी हुई हैं, जो आमने-सामने की दिशाओं में संख्या और आकार-प्रकार में एक-सी हैं। ये कुल देवकुलिकायें संख्या में ८० हैं। इनमें से छिहत्तर देवकुलिकायें तो एक-सी शिखरबद्ध और छोटी हैं। ४ चार इनमें से बड़ी हैं, जिनमें से दो उत्तर-द्वार की प्रतोली के दोनों पक्षों पर हैं—पूर्वपक्ष पर महावीरदेवकुलिका और पश्चिमपक्ष पर समवसरणकुलिका है। इसी प्रकार दक्षिण-द्वार की प्रतोली के पूर्वपक्ष पर आदिनाथकुलिका और पश्चिमपक्ष पर नंदीश्वरकुलिका है। इन चारों की बनावट भी विशालता एवं प्रकार की दृष्टि से एक-सी है। ये चारों गुम्बजदार हैं। इनके प्रत्येक के आगे गुम्बजदार रंगमण्डप हैं, जो छोटी देवकुलिकाओं के प्रांगण-भाग से आगे निकला हुआ है। समस्त छोटी देवकुलिकाओं का प्रांगण स्तम्भ उठा कर छतदार बनाया हुआ है। उपरोक्त रंगमण्डपों तथा देवकुलिकाओं के प्रांगण के नीचे भ्रमती है, जो चारों कोणों की विशाल शिखरबद्ध देवकुलिकाओं के पीछे चारों प्रतोलियों के अन्तरमुखों को स्पर्श करती हुई और चारों दिशाओं में बने चारों मेघमण्डपों को स्पर्शती हुई चारों ओर जाती हैं।

प्रकोष्ठ, देवकुलिकाओं और भ्रमती का वर्णन

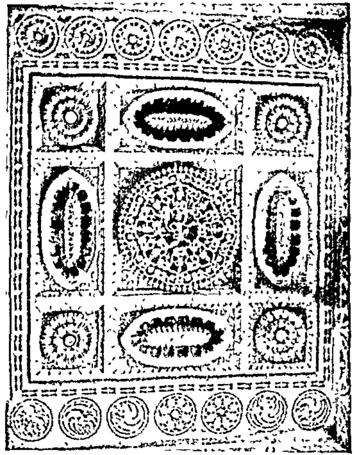
चारों कोणों में शिखरबद्ध चार विशाल देवकुलिकायें हैं। प्रत्येक देवकुलिका के आगे विशाल गुम्बजदार रंगमण्डप है। इन देवकुलिकाओं को महाधर-प्रासाद भी लिखा है। ये इतनी विशाल हैं कि प्रत्येक एक अच्छा जिनालय है। ये चारों भिन्न २ व्यक्तियों द्वारा बनवाई गई हैं। इनमें जो लेख हैं वे वि० सं० १५०३, १५०७, १५११ और १५१६ के हैं। इस प्रकार धरणविहार में अस्सी दिशाकुलिकायें और चार कोण-कुलिकायें मिलाकर कुल चौरासी देवकुलिकायें हैं।

कोणकुलिकाओं का वर्णन

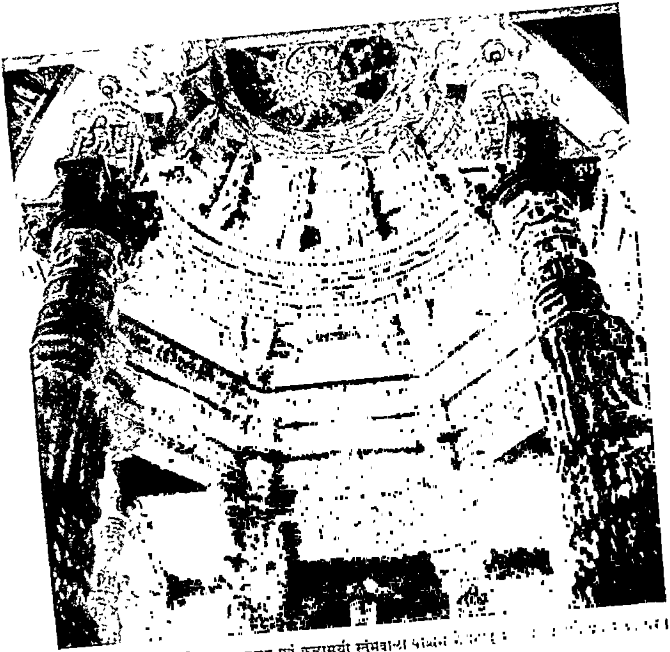
सं० १७२३ का लेख पूरा पढ़ा नहीं जाता है। पत्थर में खड्डे पड़ गये हैं और अक्षर मिट गये हैं। 'सं० १५५१ वर्षे वैशाख वदि ११सोमे सं० जावड़ भा० जसमादे पु० गुणराज भा० सुगदाते मु० जगमाल भा० श्री वच्छ करावितं' ।एक ही लेख में दो संवत् कैसे ?



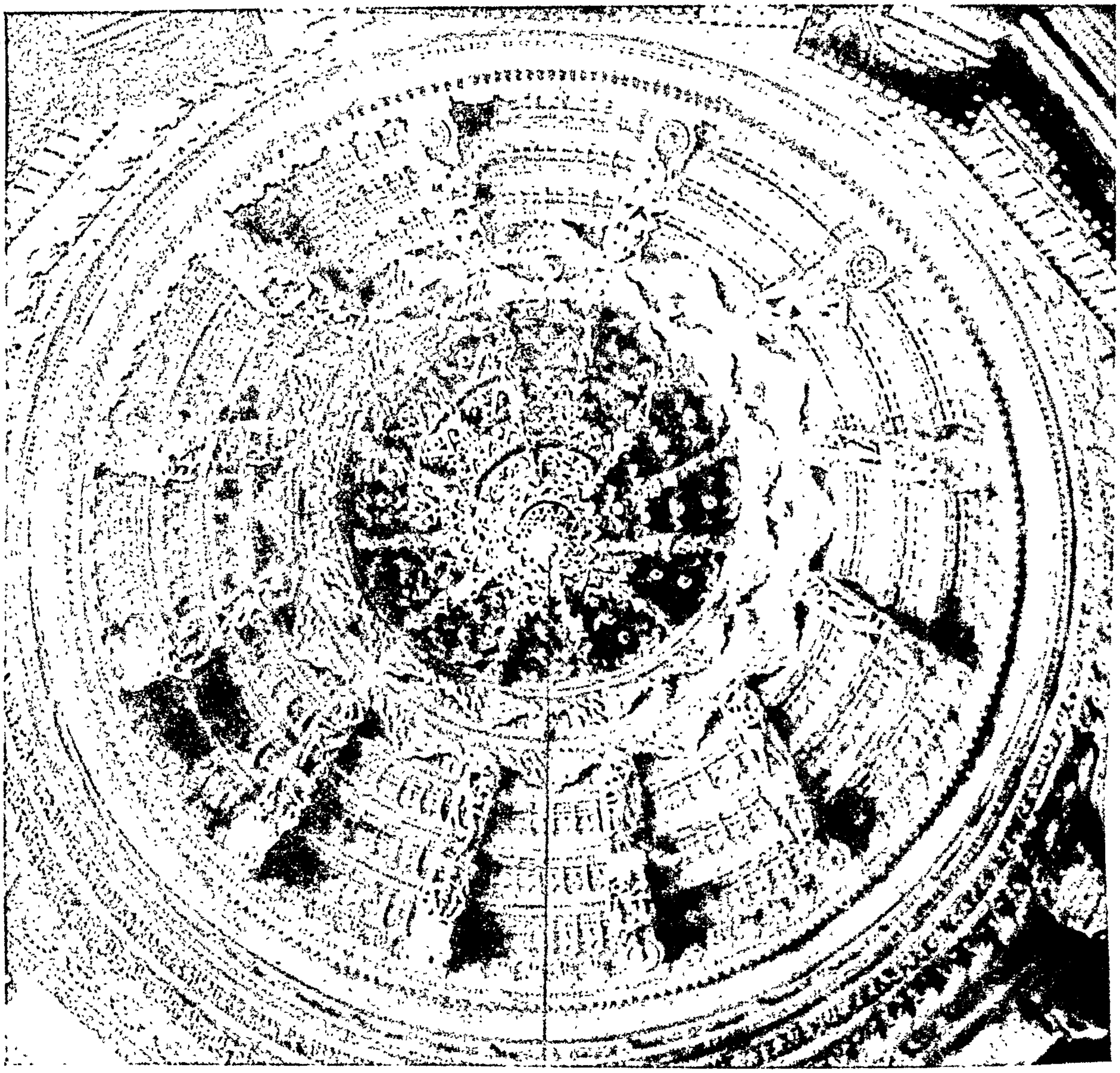
श्री राणकपुरतीर्थ धरणविहार की दक्षिण पक्ष पर विनिर्मित देवकुलिकाओं में श्री आदिनाथ-देवकुलिका के बाहर भीत्ति में उत्कीर्णित श्री सहस्त्रफणा-पार्श्वनाथ।



श्री राणकपुरतीर्थ धरणविहार की एक देवकुलिका के छत का मनोहारी शिल्पकाम।



श्री राणकपुरतीर्थ धरणविहार का उन्नत एवं कलामयी स्तंभवाला [illegible]



श्री राणकपुरतीर्थ धरणविहार के पश्चिम मेघनादमण्डप का द्वादश देवियोंवाला अनंत कलामयी मनोहर मण्डप। देखिये पृ० २७३ पर।

चारों दिशाओं में चार मेघमण्डप हैं, जिनको इन्द्रमण्डप भी कह सकते हैं। प्रत्येक मण्डप ऊंचाई में लगभग चालीस फीट से भी अधिक ऊँचा है। इनकी विशालता और प्रकार भारत में ही नहीं, जगत के बहुत कम स्थानों में मिल सकते हैं। दो कोण-कुलिकाओं के मध्य में एक २ मेघ-मण्डप की रचना है। स्तम्भों की ऊंचाई और रचना तथा मण्डपों का शिल्प की दृष्टि से कलात्मक सौन्दर्य दर्शकों को आल्हादित ही नहीं करता है, वरन् आत्मविस्मृति भी करा देता है। घण्टों निहारने पर भी दर्शक थकता नहीं है।

मेघ-मण्डप और उसकी शिल्पकला

चारों दिशाओं में मूल-देवकुलिका के चारों द्वारों के आगे मेघ-मण्डपों से जुड़े हुये चार रंगमण्डप हैं, जो विशाल एवं अत्यन्त सुन्दर हैं। मेघ-मंडपों के आंगन-भागों से रंगमण्डप कुछ प्रोत्थित चतुष्कों पर विनिर्मित हैं। पश्चिम दिशा का रंगमण्डप जो मूलनायक-देवकुलिका के पश्चिमाभिमुख द्वार के आगे बना है, दोहरा एवं अधिक मनोहारी है। उसमें पुतलियों का प्रदर्शन कलात्मक एवं पौराणिक है।

रंग-मण्डप

त्रैलोक्यदीपक-धरणविहारतीर्थ की मूलनायक-देवकुलिका जो चतुर्मुखी-देवकुलिका कहलाती है*, चतुष्क के ठीक बीचों-बीच में विनिर्मित है। यह तीन खण्डी है। प्रत्येक खण्ड की कुलिका के भी चार द्वार हैं जो प्रत्येक दिशा में खुलते हैं। प्रत्येक खण्ड में वेदिका पर चारों दिशाओं में मुंह करके श्वेतप्रस्तर की चार सपरिकर प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। कुल प्रतिमाओं में से २-३ के अतिरिक्त सर्व सं० धरणाशाह द्वारा वि० सं० १४९८ से १५०९ तक की प्रतिष्ठित हैं। इन चतुर्मुखी खण्डों एवं प्रतिमाओं के कारण ही यह तीर्थ चतुर्मुखप्रासाद के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इस चतुर्मुखी त्रिखण्डी युगादिदेवकुलिका का निर्माण इतना चातुर्य्य एवं कौशलपूर्ण है कि प्रथम खण्ड में प्रतिष्ठित मूलनायक प्रतिमाओं के दर्शन अपनी २ दिशा में के सिंहद्वारों के बाहर से चलता हुआ भी ठहर कर कोई यात्री एवं दर्शक कर सकता है तथा इसी प्रकार समुचित अन्तर एवं ऊंचाई से अन्य ऊपर के दो खण्डों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं के दर्शन भी प्रत्येक प्रतिमा के सामने की दिशा में किये जा सकते हैं।

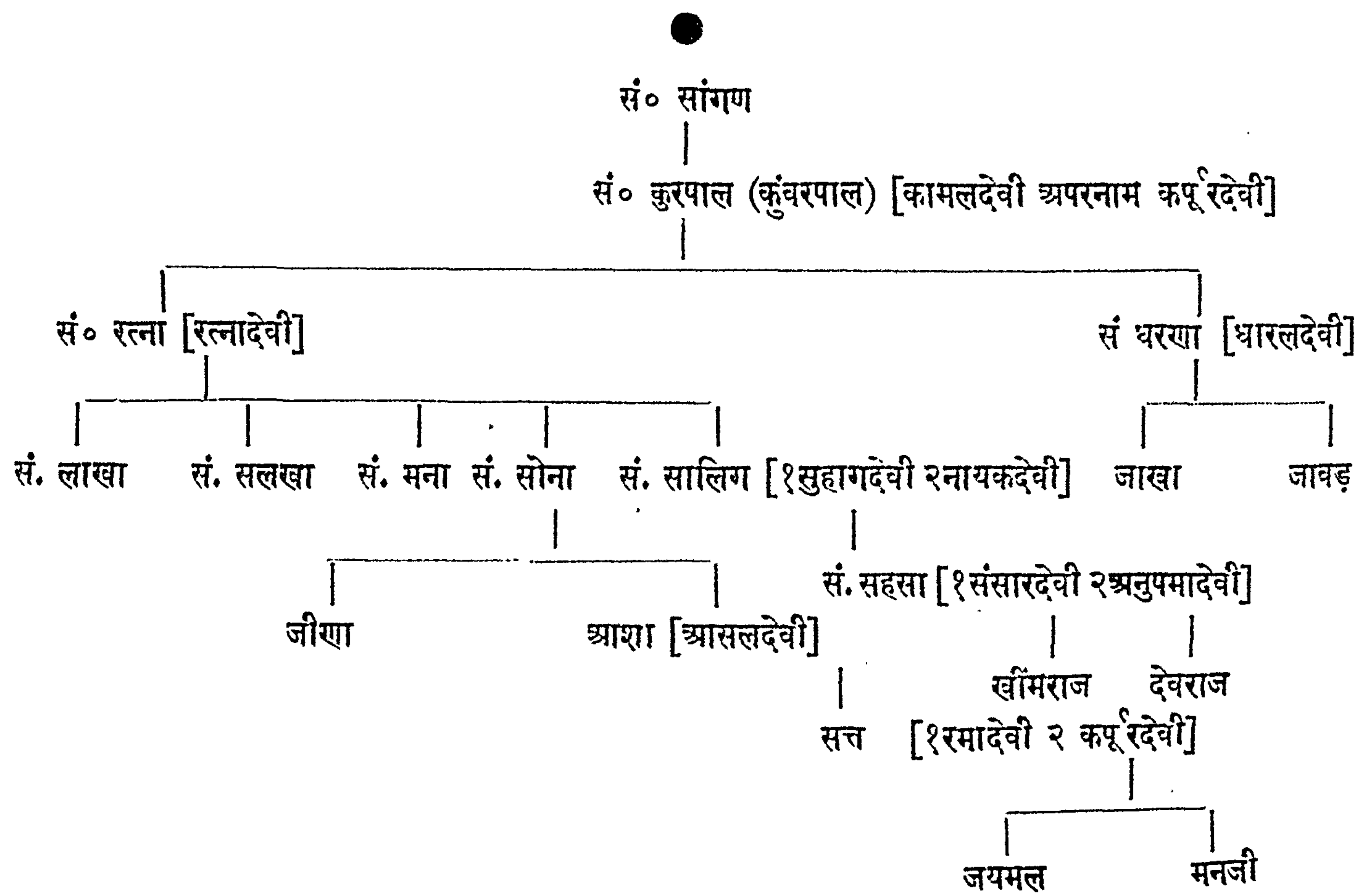
राणकपुरतीर्थ चतुर्मुख-प्रासाद क्यों कहलाता है ?

इस प्रकार यह श्री धरणविहार-आदिनाथ-चतुर्मुख-जिनालय भारत के जैन-अजैन मन्दिरों में शिल्प एवं विशालता की दृष्टि से अद्वितीय है—पाठक सहज समझ सकते हैं। शिल्पकलाप्रेमियों को आश्चर्यकारी और दर्शकों को आनन्ददायी यह मन्दिर सचमुच ही शिल्प एवं धर्म के क्षेत्रों में जाज्वल्यमान ही है, अतः इसका त्रैलोक्यदीपक नाम सार्थक ही है।

टाड साहब का राणकपुरतीर्थ के विषय में लिखते समय नीचे टिप्पणी में यह लिख देना कि सं० धरणा ने इस तीर्थ की नींव डाली और चन्दा करके इसको पूरा किया—जैन-परिपाटी नहीं जानने के कारण तथा अन्य व्यक्तियों के द्वारा विनिर्मित कुलिकाओं, मण्डपों एवं प्रतिष्ठित प्रतिमाओं को देख कर ही उन्होंने ऐसा लिख दिया है।

**प्रथम खण्ड की मूलनायकदेवकुलिका के पश्चिमद्वार के बाहिर दांयी ओर एक चौड़ी पट्टी पर राणकपुर-प्रशस्ति वि० सं० १४९६ की उत्कीर्णित है। इससे यह सिद्ध होता है कि राणकपुरतीर्थ की यह देवकुलिका उपरोक्त संवत् तक बन कर तैयार हो गई थी।*

वीरप्रसविनी मेदपाटभूमीय प्राग्वाट-वंशावतंस सं० रत्ना-धरणा का वंश-वृक्ष



सं० धरणा के वंशज

राणकपुर नगर कुछ ही वर्षों पश्चात् उजड़ हो गया। सं० धरणा और रत्नाशाह का परिवार सादड़ी में, जो राणकपुर से ठीक उत्तर में ७ मील अन्तर पर बसा है जा बसा। फिर सादड़ी से सं० धरणा का परिवार घाणेराव में और सं० रत्ना का परिवार मांडवगढ़ (मालवप्रान्त की राजधानी) में जा बसा। घाणेराव में रहने वाले १ शाह नथमल माणकचन्द्रजी, २ चन्दनमल रत्नाजी, ३ छगनलाल हंसाजी, ४ हरकचन्द्र गंगारामजी, ५ नथमल नवलाजी,

---

प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ३०७ में 'मांगण' छपा है, परन्तु मूललेख-प्रस्तरपट्ट में 'सांगण' है।

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ४६४.

अचलगढ़ में विनिर्मित श्री चतुर्मुख-ऋषभदेव-मन्दिर के सं० सहसा के वि० सं० १५६६ के लेख सं० ४६४ में सं० रत्ना के पुत्र लाषा के पश्चात् सलषा उल्लिखित है। यह नाम राणकपुरतीर्थ की प्रशस्ति में नहीं है–विचारणीय है।

मेदपाटदेशान्तर्गत ग्राम गुड़ा में रहने वाले ६ स्व० शाह खींमराज रामाजी और केलवाड़ा ग्राम में रहने वाले ७ शाह किस्तूरचन्द्र नन्दरामजी सं० धरणाशाह के वंशज हैं। त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार के ऊपर ध्वजा-दंड चढ़ाने का अधिकार उपरोक्त परिवारों को आज भी प्राप्त हैं। क्रम-क्रम से प्रत्येक परिवार प्रति वर्ष बिंबस्थापना-दिवस फा० कृ० १० के दिन (राजस्थानी चैत्र कृ० १०) ध्वजा चढ़ाता है और प्रथम पूजा भी इनकी ही ओर से करवाई जाती है।

वंशवृक्ष

- सं० धरणा (धर्मा) [१धारलदेवी २चन्द्रादेवी]
  - जाखा [जयवंती]
    - गुणराज [गुणादेवी]
      - वीरम [वीरमति]
        - गमनाजी
          - तलाजी
          - कानाजी [कौड़मदेवी]
            - रूपा [स्वरूपदेवी]
              - रत्ना
                - चांपा
                  - ऊदा
              - हरचन्द्र
                - माना
                  - डूङ्गा
              - राजा
                - लुम्बा
                  - मना
              - खेता
                - डाहाजी
                  - पुरमल
            - पद्मा
            - धना
          - गंगाजी
  - जावड़ [जसमादेवी]
    - वनाजी [वजूदेवी]
      - आशपाल
      - गुणपाल

मरुधरदेशान्तर्गत वाली एक प्राचीन नगर है। वहाँ के कुलगुरु भट्टारक मियाचन्द्रजी अच्छे वैद्य है। वे ही सं० धरणाशाह के वंशजों के कुलगुरु हैं। ता० ३१-३-१९५२ को मैं श्री ज्ञानचन्द हंसराजजी की प्रेरणा एवं निमंत्रण पर वाली गया था और उक्त

शोभा | टीकम | तलसा | मोती | हीरा | जीता | अनोपचन्द्र

गौड़ीदास | नवला | रामचन्द्र | कपूर | तिलोकचंद्र | रोड़ा | हंसराज | नन्दराम

गंगाराम | नत्थमल५ | खीमराज६ (मेदपाटान्तर्गत ग्राम गुड़ा में रहते थे) | माणकचन्द्र | रत्नचन्द्र | नवला | छगनलाल३ | किस्तूरचन्द्र७ (मेदपाटान्तर्गत केलवाड़ा ग्राम में रहते हैं)

हरकचन्द्र४ (मरुधर-देशांतर्गत धाणेराव में रहते हैं) | रतनलाल | ताराचन्द्र | नथमल१ (धाणेराव में रहते हैं) | चन्दनमल२ | शोभाचन्द्र (धाणेराव में रहते हैं)

केसरीमल (धाणेराव में रहते हैं) | पुखराज | मांगीलाल (धाणेराव में रहते हैं)

मालवपति की राजधानी मांडवगढ में सं० रत्नाशाह का परिवार

सादड़ी छोड़ कर सं० धरणाशाह का परिवार घाणेराव में जा बसा और सं० रत्नाशाह का परिवार मालवप्रान्त की राजधानी मांडवगढ़ में बसा। मांडवगढ़ में मुहम्मद खिलजी ने वि० सं० १५२६ तक राज्य किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र ग्यासुद्दीन शासक बना। ग्यासुद्दीन का राज्य वि० सं० १५५६-५७ तक रहा। सं० सहसा अत्यन्त साहसी और वीर पुरुष था। सं० सहसा सं० कुंवर(कुर)पाल के ज्येष्ठ पुत्र सं० रत्ना के पांचवें पुत्र सं० सालिग की ज्येष्ठ स्त्री सुहागदेवी का पुत्र था। इसकी सौतेली माता का नाम नायकदेवी थी। सं० सहसा के संसारदेवी और अनुपमादेवी नामकी दो स्त्रियाँ थीं।

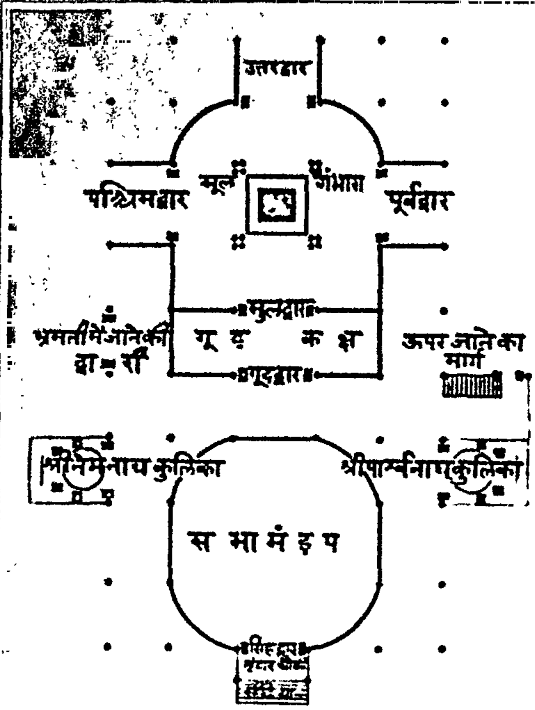
मालवपति के साथ सं० रत्ना के परिवार का संबंध

कुलगुरु साहब से मिल कर तथा वि० सं० १६२५ में लिखी गई प्रति के ऊपर से, जिसमें सं० धरणा का वृत्त और उसके वंशजों का वृत्त लिखा था, वंश-वृक्ष तैयार किया है। उक्त प्रति में यह भी लिखा है कि सं० रत्ना का वंश मालवा में जाकर बस गया था।

सं० रत्नाशाह का परिवार घाणेराव में नहीं बस कर अपने निकट संबंधियों एवं परिजनों को छोड़ कर इतना दूर मांडवगढ़ में क्यों जा बसा ? इसका कोई विशेष हेतु होना चाहिए।

वि० सं० १४६६ में मेदपाट (मेवाड़) के ऊपर मालवपति मुहम्मद खिलजी ने बड़ा भारी सैन्य लेकर आक्रमण किया था। यवन-सैन्य हारा और मुहम्मद खिलजी बंदी हुआ। महाराणा कुम्भकर्ण ने कुछ समय पश्चात् मुहम्मद खिलजी को मुक्त कर दिया। महाराणा की वीरता, उदारता, सौजन्य एवं हिन्दूवीरों का शत्रुओं के प्रति आदर-मान देख कर मुहम्मद खिलजी अत्यंत प्रसन्न हुआ। दोनों अधीश्वरों में फलतः शत्रुता घटी और स्नेह-सम्बन्ध बढ़ा। एक दूसरे को एक-दूसरे के सामंत, वीरों और श्रीमंतों से परिचय हुआ। हो सकता हैं सं० रत्नाशाह का होनहार, बुद्धिमान् एवं सद्गुणी कनिष्ठ पुत्र सालिग मालवपति मुहम्मद खिलजी को अधिक पसंद पड़ा हो।

सं. सहसा [illegible] विनिर्मित
श्री चतुर्मुख आदिनाथ शिखरबद्ध जिनालय
अचलगढ़



DRAWN BY. AUTHOR

सांकेतिक चिह्नों के अर्थ:-

— दिवार
• स्तंभ
▪ द्वार शाख
○ मण्डप
◇ गूढ़मण्डप

संसारदेवी के खीमराज और अनुपमादेवी के देवराज नामक पुत्र हुये। खीमराज के भी रमादेवी और कर्पूर(कपूर)-देवी दो स्त्रियाँ थीं। कपूरदेवी के जयमल और मनजी नामक दो पुत्र हुये। सं० सहसा ग्यासुद्दीन का प्रमुख मंत्री बना। सं० सहसा जैसा शूरवीर एवं राजनीतिज्ञ था, वैसा ही दानवीर एवं धर्मवीर भी था। उसने अचलगढ़ में श्री चतुर्मुख-आदिनाथ नामक एक अति विशाल जिनालय बनवाया और अपने परिवारसहित बहुत बड़ा संघ निकाल कर उसमें श्री मु० ना० आदिनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया। जिनालय और उसकी प्रतिष्ठा का वर्णन नीचे दिया जाता है।

सं० सहसा द्वारा विनिर्मित अचलगढ़स्थ श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-शिखरबद्धजिनालय

अर्बुदाचल पर वैसे बारह ग्राम बसे हुए कहे जाते हैं, परन्तु इस समय चौदह ग्राम बसते हैं। भारतवर्ष में वैसे तो अति ऊंचा पर्वत हिमालय है; परन्तु वह पर्वत जिस पर ग्राम बसते हों, वैसा ऊंचे से ऊंचा पर्वत अर्बुदगिरि है। गुरुशिखर नामक इसकी चोटी समुद्रस्तल से ५६५० फीट लगभग ऊंची है। ग्रामों के स्थल ४००० फीट से अधिक ऊंचे नहीं है। अर्बुदपर्वत बीस मील लम्बा और आठ मील चौड़ा है।

अचलगढ़

अर्बुदपर्वत के ऊपर जाने के लिए वैसे चारों ओर से अनेक पदमार्ग हैं, परन्तु अधिक व्यवहृत और प्रसिद्ध तथा सुविधापूर्ण मार्ग खराड़ी से जाता है। खराड़ी से आबू-कैम्प तक पक्की डामर रोड़ १७॥ मील लंबी बनी है। यहाँ से देलवाड़ा, ओरिया होकर अचलगढ़ को भी पक्की सड़क जाती है जो ५॥ मील लंबी है। ओरिया से गुरुशिखर को पदमार्ग जाता है। ओरिया से अचलगढ़ १॥ मील के अन्तर पर पूर्व-दक्षिण में एक ऊंची पहाड़ी पर बसा है। दुर्ग में बसती बहुत ही थोड़ी है। यहाँ अचलेश्वर-महादेव का अति प्राचीन मन्दिर है तथा महाराणा कुंभा का बनाया हुआ पन्द्रहवीं शताब्दी का गढ़ है। इन दोनों नामों के योग पर यह (अचल+गढ़) अचलगढ़ कहलाता है। गुरुशिखर की चोटी तथा उस पर बने हुये मठ और श्री दत्तात्रेय का स्थानादि यहाँ से अच्छी प्रकार दिखाई देते हैं। अचलगढ़ की पहाड़ी का ऊंचाई में स्थान गुरुशिखर के बाद ही आता है। वैसे दोनों पर्वत आमने-सामने से एक दूसरे से ४ मील के अन्तर पर ही आ गये हैं। दोनों पर्वतों का और उनके बीच भाग का दृश्य प्रकृति की मनोहारिणी सुषमा के कारण अत्यन्त ही आकर्षक, समृद्ध और नैसर्गिक है।

अचलगढ़ दुर्ग के सात द्वार थे। जिनमें से दो द्वार ही ठीक स्थिति में रह गये हैं। शेष चिह्नशेष रह गये हैं। ये द्वार पोल के नामों से क्रमशः अचलेश्वरपोल, गणेशपोल, हनुमानपोल; चंपा पोल, भैरवपोल, चामुण्डापोल कहे जाते हैं। सातवां द्वार कुंभाराणा के महलों का है। कुंभाराणा के महलों के खण्डहर आज भी विद्यमान् हैं। श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय भैरवपोल के पश्चात् एक

श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-चैत्यालय और उसकी रचना

जैसा सं० धरणा का इतिहास लिखते समय यह लिखा जा चुका है कि सं० धरणा बादशाह गजनीखाँ के समय में दो वर्ष पर्यन्त मांडवगढ में रहा था और ज्योंहि मुहम्मद खिलजी बादशाह बना, वह नांदिया चला गया था। अर्थ यह कि मुहम्मद खिलजी सं० धरणा के परिवार

ऊंची टेकरी पर बना है। वैसे मन्दिर से संबन्धित जैन कार्यालय, धर्मशाला भी इसी टेकरी पर ठीक भैरवपोल के पास ही एक दूसरे से ऊपर-ऊपर बने हैं। चौमुखा-आदिनाथ-जिनालय टेकरी के सर्वोपरि भाग पर बना है, जहाँ से पूर्व और दक्षिण में सैदान और मैदान में बसे रोहीड़ा आदि ग्राम स्पष्टतया दिखाई देते हैं।

जैन कार्यालय से चौड़ी और लंबी सुदृढ़ पत्थर-शिलाओं की रपट जैन-धर्मशाला तक बनी हुई है। जैन धर्मशाला की छत पर होकर चौमुखा-आदिनाथचैत्यालय को नाल जाती है। चैत्यालय सुदृढ़ परिकोष्ठ के भीतर बना है। परिकोष्ठ में एक ही द्वार है और वह पश्चिमाभिमुख है। इस द्वार के भीतर आंगन में आदीश्वरनाथ का एक छोटा पश्चिमाभिमुख चैत्यालय है, इस चैत्यालय के द्वार के पास में उत्तराभिमुख लंबी २३२ सीढ़ियाँ चढ़कर श्री चतुर्मुखाचैत्यालय के उत्तराभिमुखद्वार में प्रविष्ट होते हैं।

चैत्यालय द्विमंजिला है। चैत्यालय लंबाई-चौड़ाई में तो मध्यम श्रेणी का ही है, परन्तु स्तंभों की ऊंचाई और उनकी अद्भुत मोटाई पर उसकी विशालता सत्तर वर्ष पूर्व वि० सं० १४९६ में प्रतिष्ठित नलिनिगुल्मविमान-श्री राणकपुरतीर्थ-धरणविहार-चौमुखा-आदिनाथ-चैत्यालय का स्मरण करा देती है।

मन्दिर का निर्माता संघवी सहसा जो राणकपुरतीर्थ के निर्माता संघवी धरणा के ज्येष्ठ भ्राता रत्नाशाह के पुत्र संघवी सालिग का पुत्र था, राणकपुरतीर्थ की बनावट से अवश्य प्रभावित था, ऐसा प्रतीत होता है। दोनों मन्दिरों में कला को उतना ऊंचा स्थान नहीं दिया गया है, जितना सीधी कायिक विशालता को।

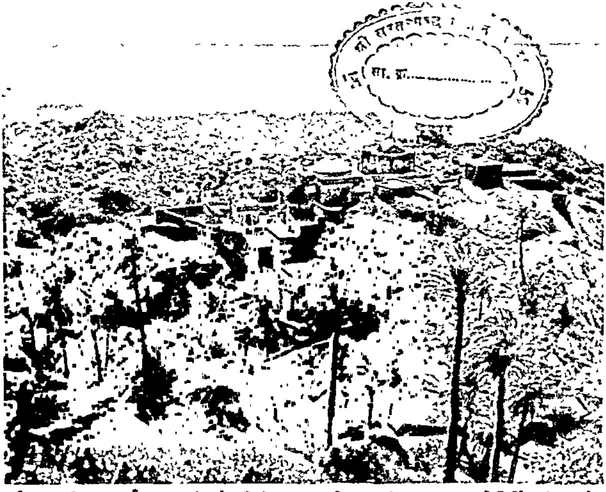
मूलगंभारा चतुर्मुखी और समचतुरस्राकार है और वह बहुत ही सुदृढ़ बना हुआ है। १४॥ फीट ऊंचे और ६ फीट परिधि वाले बारह स्तंभों पर इसकी रचना हुई है। गंभारे के ठीक बीच में ६ फीट समचौरस और ४॥ फीट ऊंची वेदिका बनी है। इस वेदिका को प्रत्येक कोण पर चार-चार वैसे ही दीर्घकायिक स्तंभों का संयोग करके बनाया गया है। ऐसा करने से वेदिका अत्यन्त ही सुदृढ़ बन गई है। मूलगंभारे के बाहर उत्तर दिशा में गोलगुम्बजवाले गूढ़मण्डप के स्थान पर एक लम्बा कक्ष गंभारे की लम्बाई के बराबर बनाया गया है। मूलगंभारे के द्वार के दोनों ओर इस कक्ष की भित्तियों में दो ऊंचे और मोटे गवाक्ष बने हैं। ये दोनों गवाक्ष खाली हैं। तत्पश्चात् सभामण्डप की रचना आती है। इस सभामण्डप का मण्डप आठ स्तंभों पर अष्टकोणवाला अति ही सुदृढ़ बना है। इस सभामण्डप के पूर्व और पश्चिम पक्षों पर दो गंभारे हैं। पूर्व दिशा के गंभारे के पास में दक्षिण की ओर केसर घोटने का स्थान है। सभामण्डप के पश्चात् भ्रमती है। पहिले इन तीनों गंभारों के अतिरिक्त मन्दिर के अन्य भाग में दिवारें नहीं बनी हुई थीं। आज भ्रमती के स्तंभों को दिवारों से जोड़कर परिकोष्ठ बना दिया गया है। सभामण्डप के बाहर उत्तर में शृंगारचौकी बनी है, जिसमें से होकर भ्रमती में जाते हैं।

मूलगंभारे के अन्य तीनों द्वारों के बाहर एक-एक चौकी बनी है। ठीक इसी मूलगंभारे के ऊपर छत पर दूसरा चौमुखा गंभारा बना है। इस गंभारे के उत्तर-द्वार के बाहर शृंगारचौकी बनी है। गंभारे के बीच में वेदिका की रचना है। इस वेदिका के ऊपर मन्दिर का विशाल शिखर है और इसकी शृंगारचौकी के आगे सभामण्डप का विशाल

से पूर्व ही परिचित था। राणकपुरतीर्थ-धरणविहार भी वि० सं० १४९६ तक बहुत अधिक बन चुका था और संभव है वि० सं० १४९८ में प्रतिष्ठोत्सव के समय महाराणा और उनके वीर सामंतों के साथ मुहम्मद खिलजी भी उपस्थित हुआ हो और सं० धरणा एवं रत्ना के परिवार से उसका अधिक परिचय बढ़ा हो और फलतः उसने या उसके पुत्र ने सं० रत्ना की मृत्यु के पश्चात् सं० सालिग को मांडवगढ़ में बसने के लिये निमंत्रित किया हो। मुहम्मद के पुत्र ग्यासुद्दीन का सं० सालिग का पुत्र सं० सहसा मंत्री था।



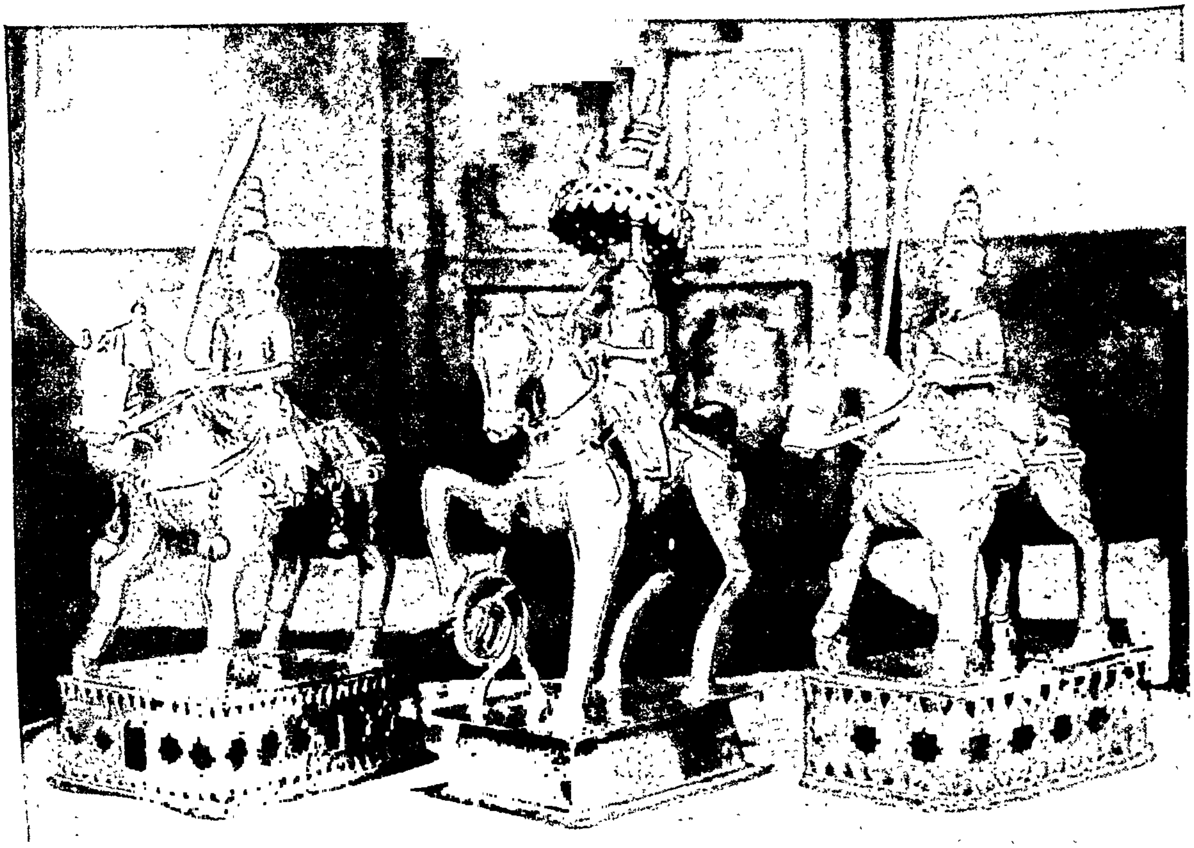
अचलगढ़ः उन्नत पर्वतशिखर पर सं० सहसा द्वारा विनिर्मित श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनप्रासाद। वर्णन पृ० २७७ पर देखिये।



अचलगढ़ः अर्बुदाचल की उन्नत पर्वतमाला एवं मनोहारिणी वृक्षसुषमा के मध्य सं० सहसा द्वारा विनिर्मित श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनप्रासाद का रम्य दर्शन। वर्णन पृ० २७७ पर देखिये।



अचलगढ़ : श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनप्रासाद में सं० सहसा द्वारा १२० मण (प्राचीन तोल से) तोल की प्रतिष्ठित सर्वाङ्गसुन्दर एवं विशाल श्री मूलनायक-आदिनाथ-धातुप्रतिमा। वर्णन पृ० २७९ पर देखिये।



७ : श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनप्रासाद के प्रतिष्ठोत्सव के शुभावसर पर ही प्रतिष्ठित तीन क्षत्रिय वीरों की अश्वारोही धातुप्रतिमायें।
(पीढ़ी के कार्यालय में रक्खी हुई हैं)

गुम्बज आ गया है। ऊपर के गंभारे में जाने के लिये भ्रमती में नाल बनी है, जो सभामण्डप के पश्चिमपक्ष पर बने गंभारे के दक्षिणपक्ष पर होकर ऊपर जाती है। कला और कृतकाम यहाँ है ही नहीं। केवल गूढमण्डप के द्वार की ऊपर की पट्टी पर चौदह स्वप्नों का प्रदर्शन और मूलगंभारे के पूर्व, पश्चिम और दक्षिण द्वारों के बाहर के स्तंभों के ऊपर के भागों में और भित्तियों पर कुछ २ कला का काम किया गया है। फिर भी यह श्री चतुर्मुखा-आदिनाथजिनालय इतना ऊंचा और विशाल है कि अर्बुदराज के अन्य धर्मस्थानों, मन्दिरों का अधिनायक-सा प्रतीत होता है।

संक्षेप में इस द्विमंजिले जिनालय में नीचे के तीन और ऊपर का एक—ऐसे चार गम्भारे, चार नीचे और एक ऊपर—ऐसे पाँच शृंगारचौकियाँ और एक विशाल सभामण्डप, एक गुम्बज, एक शिखर तथा सत्रह स्तम्भों की सुदृढ़ और मनोहारिणी रचना संघवी सहसा द्वारा करवाई गई थी।

अर्बुदगिरि और उसके आस-पास का प्रदेश लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी से सिरोही के महारावों के आधिपत्य में रहा है। महाराव जगमाल के विजयी राज्य में वि० सं० १५६६ फाल्गुण शुक्ला दशमी सोमवार को संघवी सहसा ने लगभग १२० मण तोल पीतल की श्री मूलनायक आदिनाथ भगवान् की सुन्दर प्रतिमा बनवाकर अपने काका-भ्राता आशाशाह द्वारा किये गये प्रतिष्ठोत्सव पर तपागच्छनायक श्री सोमसुन्दरसूरि के परिवार में हुये श्री सुमतिसुन्दरसूरिजी के शिष्य श्री कमलकलशसूरि के शिष्य-प्रवर श्री जयकल्याणसूरिजी के करकमलों से उत्तराभिमुख प्रतिष्ठित करवाई तथा इसी शुभावसर एवं शुभ मुहूर्त में अन्य पित्तलमय बिंबों की भी प्रतिष्ठा एवं स्थापना हुई, जिनकी सूची आगे के पृष्ठ पर दी गई है। प्रतिमा की स्थापना के शुभावसरपर सं० सहसा और काका-भ्राता आशाशाह ने दान, पुण्य और स्वामीवात्सल्य में लाखों मुद्राएँ व्यय कीं। इस शुभ अवसर पर वे बड़ा संघ निकालकर अचलगढ़ गये थे। सं० सहसा के धर्मप्रेम को समझने के लिये मैं इतना ही पाठकों से निवेदन करता हूँ कि वे मन्दिर के दर्शन पधारकर करें तो उनको अनुमान लग जावेगा कि इतने ऊंचे अर्बुदाचल पर्वत के ऊपर के विषम पर्वतों में भी विषम और दुर्गम इस पर्वत पर मन्दिर बनाने में कितना लक्ष द्रव्य व्यय हुआ होगा, निर्माता का उत्साह और भाव कितना ऊंचा और बड़ा हुआ होगा और उसके ही अनुकूल उसने संघ निकालने में, संघ की भक्ति करने में, प्रतिष्ठोत्सव के समय दान, पुण्य में कितना द्रव्य खुले हृदय, श्रद्धा और भक्तिपूर्वक व्यय किया होगा।

मंदिर की प्रतिष्ठा और मू० ना० बिंब की स्थापना

श्री मू० ना० उत्तराभिमुख आदिनाथबिंब का लेख—

'संवत् (त्) १५६६ वर्षे फा० शुदि १० (सोमे) दिने श्री अर्बुदोपरि श्री अचलदुर्गे राजाधिराजश्रीजगमालविजयराज्ये। प्राग्वाटज्ञाति (तीय) सं० कुंवरपाल पुत्र सं० रतना सं० धरणा सं० रतना पुत्र स० लापा॥ सं० सलपा सं० सजा सं० सोना सं० सालिग भा० सुहागदे पुत्र सं० सहसाकेन भा० संसारदे पुत्र खीमराज द्वि० [भा०] अणुपमादे पु० देवराज खीमराज भा० रमादे कपू पु० जयमल्ल मनजी प्रमुखयुतेन॥ निजकारितचतुर्मुखप्रासादे उत्तरद्वारे पित्तलमयमूलनायकश्रीआदिनाथबिंबं कारितं प्र० तपागच्छे श्री सोमसुन्दरसूरिपट्टे श्री मुनिसुन्दरसूरि श्री जयचन्द्रसूरिपट्टे श्री विशालराजसूरि। पट्टे श्री रत्नशेखरसूरि॥ पट्टे श्री लक्ष्मीसागरसूरि श्री सोमदेवसूरिशिष्य श्री सुमतिसुन्दरसूरिशिष्य गच्छनायक श्री कमलकलशसूरिशिष्य संप्रतिविजयमानगच्छनायकश्रीजयकल्याणसूरिभिः। श्री चरणसुन्दरसूरिप्रमुखपरिवारपरिवृतैः॥ सं० सोना पुत्र सं० जिणा भ्रातृ सं० आसाकेन भा० आसलदे पुत्र सपयुतेन कारितप्रतिष्ठामहे। श्री रस्तु'॥ सू० माण्डा पुत्र सू० देपा पुत्र सू० अरबुद पुत्र हरदास॥

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४६४

प्रतिष्ठोत्सव के शुभ मूहूर्त में प्रतिष्ठित प्रतिमायें :—

प्रतिमा	धातु	निर्माता	प्रतिमा का स्थान	सूत्रधार
उत्तराभिमुख मू० ना० श्री आदिनाथ	पित्तलमय	प्रा० ज्ञा० सं० सहसा	मूलगंभारा	हरदास
दक्षिणाभिमुख मू० ना० प्रतिमा के बायें पक्ष पर श्री सुपार्श्वनाथ	,,	श्री संघ	,,	,,
पश्चिमाभिमुख मू० ना० प्रतिमा के दायें पक्ष पर श्री आदिनाथ	,,	सं० श्रीपति	,,	,,
पश्चिमाभिमुख मू० ना० प्रतिमा के बायें पक्ष पर श्री आदिनाथ	,,	सं० सालिगभार्या नायकदेवी	,,	,,
श्री पार्श्वनाथ	,,	समस्त संघ	द्वि० गंभारा	,,
श्री आदिनाथ	,,	सं० कृपा चांडा	,,	,,
श्री आदिनाथ	,,	,,	,,	,,

ये सात ही बिंब पित्तलमय और अति सुन्दर बने हुये हैं। यहाँ सूत्रधार हरदास जो सूत्रधार अरबुद का पुत्र और देपा का पौत्र तथा जिसका प्रपितामह सू० वाच्छा था अति ही कुशल प्रतीत होता है और उसकी

१. अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४६४, ४७१, ४७३, ४७४, ४८२, ४८३, ४८४ देखिये
श्री पूर्णचन्द्रजी नाहर के जै० ले० सं० भा० २ ले० २०२८ में श्री संघ द्वारा प्रति० श्री आदिनाथबिंब का भी उल्लेख है; परन्तु अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ में इस लेखक का उल्लेख नहीं है, अतः छोड़ दिया गया है।

गुरुपरम्परा

२. तपागच्छीय श्री सोमसुन्दरसूरि
|
श्री मुनिसुन्दरसूरि श्री जयचन्द्रसूरि
|
श्री विशालराजसूरि
|
श्री रत्नशेखरसूरि
|
श्री लक्ष्मीसागरसूरि श्री सोमदेवसूरिशिष्य श्री सुमतिसुन्दरसूरिशिष्य गच्छनायक श्री कमलकलशसूरिशिष्य संप्रतिविजयमानगच्छनायक श्री जयकल्याणसूरि।

सूत्रधारवंश

३. सूत्रधार वाच्छा
|
,, देपा
|
,, अरबुद
|
,, हरदास

प्राग्वाट-इतिहास के सम्बन्ध में ता० ४-६-५१ से ६-७-५१ तक तीर्थ और मंदिरों का पर्यटन करने के लिए यात्रा पर रहा। ता० २९, ३०-६-५१ को मैं अचलगढ़ था। श्रीमद् पूज्य मु० जयंतविजयजी का मैं ही नहीं, इतिहास और पुरातत्त्व का प्रत्येक प्रेमी और शोधक आभारी रहेगा कि उन्होंने जिन २ स्थानों का इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टियों से वर्णन लिखा, पुनः उसी के लिये समय, द्रव्य और श्रम अधिक लगाने की आवश्यकता ही नहीं रक्खी। वैसे शोध कभी भी पूर्ण नहीं होती है। वह जितनी की जावे, आगे ही बढ़ती है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि पूर्वगामियों के श्रम और अनुभव का लाभ उठाने पर अपेक्षाकृत श्रम और समय, द्रव्य कुछ तो कम ही होगा। अचलगढ़ का मंदिर वैसे विशाल है; परन्तु देलवाड़े के जैनमंदिरों की भाँति गूढ़ और एक दम कलापूर्ण नहीं होने से शीघ्र ही समझा और वर्णित किया जा सकता है।

मंदिर में चार कायोत्सर्गिकबिंब, २१ प्रतिमायें और एक पादुकापट्ट है। पित्तल की बारह प्रतिमायें तथा दो कायोत्सर्गिक मूर्त्तियाँ और पाषाण के दो कायोत्सर्गिकबिंब तथा नव प्रतिमायें हैं। धातुप्रतिमाओं में मूलगंभारा में चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित चार

कुशलता, उसकी निर्माणचतुरता का सच्चा और सिद्ध प्रमाण ये चित्र हैं, जिनकी अलौकिक सुन्दरता और सौष्ठवता दर्शकों एवं शिल्पविज्ञों को आश्चर्य में डाल देती हैं।

बड़ी प्रतिमायें, दो कायोत्सर्गिकबिंब और तीन मध्यम ऊंचाई की—इस प्रकार ६ प्रतिमायें, ऊपर के गंभारा में प्रायः एक-सी मध्यम ऊंचाई की चारों दिशाओं में अभिमुख चार प्रतिमायें और नीचे सभामण्डप के पूर्वपक्ष पर बने हुये गंभारा में मध्यम ऊंचाई की एक प्रतिमा—इस प्रकार इन चौदह धातुप्रतिमाओं का वजन १४४४ मण (कच्चा) होना कहा जाता है और अनेक पुस्तकों में इतना ही होना लिखा भी मिलता है। उत्तराभिमुख प्रतिमा का वजन १२० मण होना लिखा गया है। इस तौल को सत्य मानना ही पड़ता है। देलवाड़े के पित्तलहरभीमवसहिका के मूलनायकबिंब पर १०८ मण वजन में होना लिखा है। दोनों के आकार और तौल के अनुमान पर तो उपरोक्त १४ चौदह प्रतिमाओं का वजन १४०० या १४४४ होना मान्य है। मंदिर की सर्व प्रतिमायें भिन्न २ समय की प्रतिष्ठित हैं। उत्तराभिमुख मूलनायकप्रतिमा पर ही संघवी सहसा का लेख है और उसके विषय में अधिक परिचय देने वाला अन्य लेख कोई प्राप्त नहीं है।

चौमुखा-आदिनाथ-जिनालय के अतिरिक्त अचलगढ़ में तीन जैन मंदिर और हैं, जिनका निर्माण और जिनकी प्रतिष्ठायें भिन्न २ समयों पर हुई हैं।

१– श्री ऋषभदेव-जिनालय—

चौमुखा-आदिनाथ-जिनालय में जाने के लिये बनी हुई उत्तराभिमुख २२ सीढ़ियों के पूर्वपक्ष पर नीचे आंगन में यह मंदिर बना हुआ है। इसका सिंहद्वार पश्चिमाभिमुख है। मू० ना० आदिनाथबिंब पर वि० सं० १७२१ ज्ये० शु० २ रविवार को प्रतिष्ठित किये गये का लेख है। इस मंदिर के उत्तर, पूर्व में चौबीस छोटी २ देवकुलिकायें विनिर्मित हैं।

२– श्री कुंथुनाथ-जिनालय—

जैन कार्यालय के भवन में पश्चिम भाग पर जैन धर्मशाला के ऊपर की मंजिल में पूर्वाभिमुख यह जिनालय बना हुआ है। मू० ना० कुंथुनाथबिंब पर उसके वि० सं० १५२७ वै० शु० ८ को प्रतिष्ठित हुए का लेख है।

३– श्री शांतिनाथ-जिनालय—

अचलगढ़ में जाते समय यह मन्दिर सड़क के दाहिनी ओर कुछ अंतर पर एक छोटी-सी टेकरी पर बना हुआ है। मन्दिर विशाल और भव्य तथा प्राचीन है। हो सकता है महाराजा कुमारपाल द्वारा अर्बुदाचल पर बनवाया हुआ शांतिनाथ-जिनालय यही जिनालय हो, क्यों कि शांतिनाथ नाम का अन्य कोई जिनालय अर्बुदगिरि पर बने हुए मंदिरों में नहीं है। ओरिया के महावीर-मंदिर के विषय में पूर्व में उसके शांतिनाथ-जिनालय होने का प्रमाण मिलता है; परन्तु वह तो वि० सं० १५०० की आस-पास में प्रतिष्ठित हुआ था।

अचलगढ़तीर्थ रोहिड़ा के श्रीसंघ की देख-रेख में है। रोहिड़ा के श्रीसंघ की ओर से वहाँ एक प्रधान मुनीम और उसके आधीन कई एक पुजारी, चौकीदार और अन्य सेवक रहते हैं। व्यवस्था सुन्दर और प्रशंसनीय है। मन्दिर की बनावट तो यद्यपि वैसी ही और वह ही है, परन्तु फिर भी जहाँ २ परिवर्तन-वर्धन करने का अवकाश मिला, वहाँ पीढ़ी ने निर्माणकार्य करवाया है। भमती के सर्व स्तंभ जो पहिले खुले ही थे, अब दीवारों में पटा दिये गये हैं। सभामण्डप को चारों ओर से ढक कर बनी हुई इन दीवारों पर विविध तीर्थ-धर्मस्थानों के सुन्दरपट्ट सहस्रों रुपया व्यय करके बनवा दिये गये हैं। जीर्णोद्धार का कार्य चालू है। यात्रियों और दर्शकों के ठहरने, खाने-पीने आदि का सब प्रबन्ध उपरोक्त पीढ़ी के प्रधान मुनीम करते हैं। मन्दिर के नीचे जैन-धर्मशाला है और उसके थोड़े नीचे जैन-कार्यालय और जैन-भोजनशाला के भवन आ गए हैं। कुछ नीचे सड़क के पास में बगीचा बना हुआ है। ऊपर तक शिलाओं की सड़क बनी है। कार्यालय की व्यवस्था सर्व प्रकार समुचित और सुन्दर है।

इस प्रकार इस समय अचलगढ़ में जैनमन्दिर चार, धर्मशालायें दो, कार्यालय का भवन एक और एक कार्यालय का बगीचा है। कार्यालय का नाम 'अचलसी अमरसी' है। ओरिया के जिनालय की देख-रेख भी यही कार्यालय करता है। विशेष परिचय के लिए पाठक मु० सा० जयन्तविजयजीकृत 'अचलगढ़' नामक पुस्तक को पढ़ें।

सिरोही राज्यान्तर्गत वशंतगढ़ में श्री जैनमन्दिर के जीर्णोद्धारकर्त्ता श्रे० झगड़ा का पुत्र श्रेष्ठि मण्डन और श्रेष्ठि धनसिंह का पुत्र श्रेष्ठि भादा

वि० सं० १५०७

वि० सं० १५०७ माघ शु० ११ बुधवार को महाराणा कुम्भकर्ण के विजयीराज्यकाल में वशंतपुर के चैत्यालय का उद्धारकराने वाले प्रा० ज्ञा० शाह झगड़ा(?) की स्त्री मेवादेवी के पुत्र मण्डन ने स्वस्त्री माणिकदेवी, पुत्र काल्हा, पौत्र जोणा आदि के सहित तथा प्रा० ज्ञा० व्य० धनसिंह की स्त्री लींबीदेवी के पुत्र व्य० भादा ने स्वस्त्री आल्हूदेवी, पुत्र जावड़, भोजराज आदि के सहित मूलनायक श्री शांतिनाथबिंब को तपा श्री सोमसुन्दरसूरि के पट्टालंकार श्री मुनिसुन्दरसूरि, श्रीजयचन्द्रसूरि के पट्टप्रभावक श्री रत्नशेखरसूरि के द्वारा महामहोत्सव करके प्रतिष्ठित करवाई ।१

पत्तननिवासी प्राग्वाटज्ञातिशृङ्गार श्रेष्ठि सुश्रावक छाड़ाक और उसके प्रसिद्ध प्रपौत्र श्रेष्ठिवर खीमसिंह और सहसा

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में अणहिलपुरपत्तन में पुण्यशाली जिनेश्वरभक्त सुश्रावक छाड़ाक नामक श्रेष्ठि रहता था । उसके कावा(?) नामक एक सुयोग्य पुत्र था । श्रे० कावा की स्त्री का नाम कदूदेवी था । कदूदेवी के सादा और राजड़ नामक दो बुद्धिमान् पुत्र थे । श्रे० सादा की पत्नी ललितादेवी थी और उसके देवा नामक पुत्र था । श्रे० राजड़ की स्त्री का नाम गोमती था ।

श्रे० छाड़ाक और उसके वंशज

श्रे० राजड़ के खीमसिंह और सहसा नामक महापुण्यशाली अति प्रभावक दो पुत्र उत्पन्न हुये । श्रे० खीमसिंह का विवाह धनाई नामक कन्या से हुआ था । श्रा० धनाई के देता और नेता नामक पुत्र हुये । इनकी कनकाई और लालीदेवी नामा दोनों की क्रमशः पत्नियाँ थी । देता के तीन पुत्रियाँ पूरी, जसू, वासू और दो पुत्र सोनपाल और असीपाल थे । नोता का पुत्र पुण्यपाल था ।

श्रे० सहसा का विवाह चारुमती नामा कन्या से हुआ था और उसके समधर, ईसर (ईश्वर) नामक दो पुत्र और मल्लाई नामा पुत्री थी । समधर का विवाह वड़धूदेवी और ईसर का विवाह जीविणी के साथ में हुआ था । समधर के हेमराज और ईसर के धरण नामक पुत्र थे ।२

१-जै० ले० सं० भा० १ ले० ९५४
२-जै० स० प्र० वर्ष ११ अंक १०-११ पृ० २७४ से २७७



वसंतगढ़ः- वसंतगढ़ आज उजड़ ग्राम बन गया है। प्राचीन खण्डहर एवं भग्नावशेष अब मात्र वहां दर्शनीय रह गये हैं। वहां से लायी हुई दो अति सुन्दर धातुप्रतिमायें, जो अभी पींडवाड़ा के श्री महावीर-जिनालय में विराजमान हैं। पृ० २८२।

पूरी जैसा लिखा जा चुका है श्रे० खीमसिंह के पुत्र देवा की ज्येष्ठा पुत्री थी। वह महागुणवती थी। धीरे २ वह संसार की असारता को देखकर वैराग्यरंग में रंगने लगी और निदान उसने भागवती-दीक्षा ग्रहण की। प्रपिता खीमसिंह ने अपनी प्यारी पौत्री पूरी का दीक्षोत्सव अति द्रव्य व्यय करके अति सुन्दर और चिरस्मरणीय किया था। साध्वी पूरी बड़ी ही बुद्धिमती थी। धीरे २ शास्त्रों का अभ्यास करके वह प्रवर्त्तिनीपद के योग्य हो गई। आचार्य जयचन्द्रसूरि ने उसको प्रवर्त्तिनीपद देना उचित समझ कर श्रे० खीमसिंह और श्रे० सहसा द्वारा आयोजित प्रवर्त्तिनीपदोत्सव का समारम्भ करके शुभमुहूर्त में उसको प्रवर्त्तिनीपद प्रदान किया। इस अवसर पर दोनों भ्राताओं ने रेशमी वस्त्रों एवं कम्बलों की भेंट दी और स्वामी-वात्सल्यादि से संघ की भारी संघभक्ति की।

श्रे० खीमसिंह और सहसा द्वारा प्रवर्त्तिनी-पदोत्सव

चांपानेर-पावागढ़ के ऊंचे पर्वत पर चैत्यालय बनवाया और उसमें विशाल जिनप्रतिमाओं को महामहोत्सव-पूर्वक वि० सं० १५२७ पौष कृष्णा ५ को शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठित करवाई। वि० सं० १५३३ में प्रसिद्ध क्षेत्रों में अनेक सत्रागार खुलवाये। दोनों भ्राताओं ने श्री शत्रुंजयमहातीर्थ और गिरनारतीर्थों की बड़ी २ यात्रायें कीं और बड़े २ उत्सव किये। तपागच्छनायक श्रीमद् लक्ष्मीसागर-सूरि के प्रमुख शिष्यों में अग्रणी सोमजयगुरु के सदुपदेश से दोनों भ्राताओं ने वि० सं० १५३४ में 'चित्कोश-ज्ञानभण्डार' के लिये समस्त जैनागमों को अति सुन्दर अक्षरों में लिखवाया।

दोनों भ्राताओं के अन्य पुण्यकार्य

इस प्रकार उक्त दोनों भ्राता श्रेष्ठ परिवार वाले, धर्म के धुर, सदाचारी, जिनेश्वरभक्त, विचारशील, उदार और साधु-साध्वियों के परम अनुरागी थे। दोनों भ्राताओं ने अनेक धर्मकृत्य किये, अनेक बार स्वामीवात्सल्यादि करके तथा लाडूओं में रुपयादि रख कर लामिनियाँ, पहिरामणियाँ देकर प्रशंसनीय संघभक्तियाँ कीं। तीर्थोद्धार, परोपकार, गुरुमहाराज का सत्कार, नगर-प्रवेशोत्सव, प्रतिमा-प्रतिष्ठायें, पदोत्सव आदि अनेक धर्मकृत्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया। अनेक बार उत्तम वस्त्रों की भेंटें दीं। इस प्रकार दोनों भ्राताओं ने जैन-धर्म की निरंतर सेवा करके अपना धन और जीवन सफल बनाया।

वंश-वृक्ष

छाड़ाक
|
काना [कदू]
|
सादा [ललितादेवी] — राजड़ [गोमतीदेवी]

सादा [ललितादेवी]
|
देवा

राजड़ [गोमतीदेवी]
|
खीमसिंह [धनाई] — सहसा [चारुमती]

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० १६ से २१

देता [कनकाई] — नोता [लाली] — समधर [वइधू] — ईसा [जीविणि] — मल्लाई

देता [कनकाई] : पूरी, जखू, वासु, सोनपाल, अमीपाल

(पुत्रियाँ)

नोता [लाली] : पुण्यपाल

समधर [वइधू] : हेमराज

ईसा [जीविणि] : धरण

श्री सिरोहीनगरस्थ श्रीचतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय का निर्माता कीर्त्तिशाली श्रीसंघमुख्य सं० सीपा और उसका धर्म-कर्म-परायण परिवार

वि० सं० १६३४ से वि० सं० १७२१ पर्यन्त

राजस्थान की रियासतों में सिरोही-राज्य का गौरव और मान अन्य रियासतों से घटकर नहीं है। क्षेत्रफल और आय की दृष्टि से अवश्य सिरोही का मान द्वितीय श्रेणी की रियासतों में है। उदयपुर के राणाओं का मान अगर यवन-सम्राटों को डोला नहीं देने पर ही प्रमुखतया आधारित है, तो सिरोही के महारावों ने भी यवन-सम्राटों को डोला नहीं दिया और सदा राज्य और अपने वंश को संकट में डाले रक्खा। ऐसे गौरवशाली राज्य के वशंतपुर नामक ग्राम में, जो सिरोही नगर से थोड़े ही अन्तर पर आज भी विद्यमान है प्राग्वाटज्ञातीय सं० सदा अपने फल-फूले परिवार सहित रहता था। सं० सदा की स्त्री का नाम सहजलदेवी था। सहजलदेवी के पांच पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र जयवंत था। सं० श्रीवंत, सं० सोमा, सं० सुरताण और सं० सीपा ये क्रमशः सं० जयवंत के छोटे भ्राता थे। इन सर्व में सं० सुरताण और सं० सीपा के परिवार अधिक गौरवान्वित और प्रसिद्ध हुये।

सं० सीपा का वंश-परिचय

सं० सुरताण के दो स्त्रियाँ थीं, गउरदेवी और सुवीरदेवी। गउरदेवी के यादव नामक पुत्र हुआ। यादव का विवाह लाड़िगदेवी नामा कन्या से हुआ, जिसके करमचन्द्र नामक पुत्र हुआ। करमचन्द्र की स्त्री का नाम सुजाणदेवी था। सुजाणदेवी की कुक्षी से सं० मोहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुवीरदेवी की कुक्षी से जयमल नामक पुत्र हुआ। जयमल का विवाह जमणादेवी से

सं० सुरताण का परिवार

मूलगंभारा में उत्तराभिमुख श्री आदिनाथप्रतिमा का लेखः—

'संवत् १६४४ वर्षे फागण वदि १३ बुधे श्री सिरोहीनगरे महाराजश्रीसुरताणजीविजयीराज्ये। प्राग्वाटज्ञातीय वृद्ध० वसंतपुरवास्तव्य सं० सदा भार्या सहजलदे पुत्र सं० जयवंत सं० श्रीवंत सं० सोमा सं० सुरताण सं० सीपा भार्या सरूपदे पुत्र सं० आसपालेन सं० वीरपाल सं० सचवीर सं० आसपाल भार्या जयवंतदे पुत्र आंबा चांपा सं० वीरपाल भार्या विमलादे पुत्र मेहजलादि कुटुम्बयुतेन

हुआ। जमणादेवी की कुक्षी से हरचन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हरचन्द की स्त्री का नाम सुखमादेवी था। हरचन्द को सुखमादेवी से धारा, जगा, आणंद और मेघराज नामक चार पुत्रों की प्राप्ति हुई।

सं० सीपा की सरूपदेवी नामा स्त्री थी। सरूपदेवी की कुक्षी से सं० आशपाल, सं० वीरपाल और सं० सचवीर नामक तीन प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुये। सं० आशपाल की जयवंतदेवी नामा स्त्री थी। जयवंतदेवी की कुक्षी से आंबा, चांपा और जसवन्त नामक तीन पुत्र हुये। चांपा की स्त्री का नाम उ... देवी था। जसवन्त के ऋषभदास नामक पुत्र हुआ। ऋषभदास का विवाह रुखमादेवी से हुआ था। सं० वीरपाल का विवाह विमलादेवी से हुआ था। विमलादेवी के मेहाजल नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ सं० मेहाजल के मनोरमदेवी, कल्याणदेवी और नीवादेवी नामा तीन स्त्रियाँ थीं। मनोरमदेवी के गुणराज और कल्यादेवी के अति पुण्यात्मा कर्मराज नामक विश्रुत पुत्र पैदा हुये। सं० गुणराज की स्त्री अजबदेवी नामा थी जिसकी कुक्षी से वीरभाण और राजभाण नामक पुत्र हुये। वीरभाण की स्त्री का नाम जसरूपदेवी था।

सं० सीपा और उसका परिवार

सं० कर्मराज कर्मा के केसरदेवी और कमलादेवी नामा दो स्त्रियाँ थीं, जिनकी कुक्षी से क्रमशः जइराज और थिरपाल नामक पुत्र हुये। जइराज की स्त्री का नाम महिमा देवी था।

सुन्दर प्रस्तर प्रयोमूर्त्ति निर्मापित श्री चतुर्मुखचैत्ये श्री आदिनाथबिंबं सयुक्तं कारितं प्रतिष्ठितं च श्री तपागच्छाधिराज श्री विजयदान सूरीश्वरपट्टालंकार दिल्लीपतिप्रदत्तजगद्गुरुबिरुदधारकस्य…………………………………………………………… भट्टारिक श्री ६ श्री हीरविजयसूरिभिः। चिरंजयतु ॥'

दशाओसवालों के श्री आदीश्वरनाथ-जिनालय में खेलामण्डपस्थ आदिनाथबिंब का लेखांश—

'सुरताणाख्येन भार्या गउरिदे पुत्र यादवादि'

'सा० यादव भार्या लाड़िगदे सुत सा० रामचन्द्र भार्या सुजाणदे सुत सं० मोहन'

श्री चौमुखाजिनालय की उत्तराभिमुख सशिखर बड़ी दे० कु० में—

'संघवी सुलतान भार्या सुवीरदे सुत सं० जयमल भार्या जमणादे सुत सं० हरचन्द्रकेन भार्या सुखमादे सुत सं० धारा सं० ... सं० आणंद सं० मेघराज'

१– वायव्यकोण श्री सशिखर देवकुलिका में दक्षिणाभिमुख शांतिनाथबिंब का लेखांश—
'सं० आसपाल सुत सं० जमा पुण्यार्थं सं० कर्माकेन … … ……………' चौ० जिनालय

२– दक्षिणपक्ष की पूर्वाभिमुख देवकुलिका सं० ३ में महावीरबिंब का लेखांश—
'सं० धारा भार्या उद्यांगदे पुण्यार्थं सं० कर्माकेन' चौ० जिनालय

३– उत्तरपक्ष की दे० कु० सं० २ में शांतिनाथबिंब का लेखांश—
'सं० ऋषभदास भार्या रूपमादे नाम्न्या श्री शांतिनाथबिंबं' चौ० जिनालय

४– द्वि० मंजिल के गंभारा में पार्श्वनाथबिंब का लेखांश—
'सं० वीरपाल भार्या विमलादे सुत सं० मेहाजल भार्या मनोरमदे सुत सं० गुणराजकेन' चौ० जिनालय

५– नैऋत्यकोण की दे० कु० में आदिनाथबिंब का लेखांश—
'सं० मेहाजल भार्या कल्याणदे सुत सं० कर्माकेन' चौ० जिनालय

६– उत्तरपक्ष की दे० कु० में श्री वासुपूज्यबिंब का लेखांश—
'सं० कर्मा पुत्र जइराज भार्या महिमा नाम्न्या' चौ० जिनालय

७– दक्षिणपक्ष की दे० कु० २ में धर्मनाथबिंब का लेखांश—
'सं० मेहाजल भार्या नीवादे पुण्यार्थं सं० कर्माकेन' चौ० जिनालय

सं० सचवीर की शृंगारदेवी नामा स्त्री थी। शृंगारदेवी के देवराज, कृष्णराज और केशवराज नामक तीन योग्य पुत्र हुये। कृष्णराज का विवाह कमलादेवी नामा कन्या से हुआ। कमलादेवी के धनराज नामक पुत्र हुआ, जिसका विवाह सारुदेवी से हुआ था। सं० केशव की स्त्री का नाम रूपादेवी था। रूपादेवी की कुक्षी से सं० नाथा का जन्म हुआ। सं० नाथा की स्त्री का नाम कमलादेवी था। कमलादेवी के जीवराज नामक पुत्र हुआ।

पश्चिमाभिमुख श्री आदिनाथ-चतुर्मुख-जिनप्रासाद

सिरोही नगर सिरोही-राज्य की राजधानी है। राजप्रासादों की तलहटी में सशिखर जिनमन्दिरों की हारमाला इतनी लम्बी और इतने क्षेत्र को घेरे हुये है कि इसी के कारण सिरोही 'अर्धशत्रुंजयतीर्थ' कहा जाता है। उपरोक्त सशिखर जिनमन्दिरों में भव्य, विशाल और प्रमुख मन्दिर सं० सीपा का बनाया हुआ श्री आदिनाथ-चतुर्मुख-जिनालय है। इस मन्दिर की बनावट को देखकर श्री नलिनी-गुल्मविमान-त्रैलोक्यदीपक—धरणविहार—श्री राणकपुरतीर्थ—आदिनाथ—चतुर्मुखजिनप्रासाद

सं० सीपा का सिरोही में चौमुखा-जिनचैत्यालय बनाना और उसकी प्रतिष्ठा

८— द्वि० मंजिल के गंभारा में पूर्वाभिमुख प्रतिमा का लेखांश—
'सं० गुणराज भा० अजवदे सु० सं० वीरभाणेन' चौ० जिनालय

९— दक्षिण की उत्तराभिमुख बड़ी देवकुलिका में दूसरी आसनपट्टी पर प्रतिमा सं० १०, १२ श्री अजितनाथबिंब और सुविधिनाथ-बिंबों का लेखांश—
'सं० गुणराज सुत सं० वीरभाण भार्या जसरूपदे नाम्न्या श्री अजितनाथबिंबं'
'सं० गुणराज सुत सं० राजभाणेन श्री सुविधिनाथबिंबं' चौ० जिनालय

१०— वायव्यकोण की सशिखर दे० कु० में नमिनाथबिंब का लेखांश—
'सं० कर्मा भार्या केसरदे नाम्न्या श्री नमिनाथबिंबं' चौ० जिनालय

११ दक्षिण की एक बड़ी दे० कु० में पूर्वाभिमुख आदिनाथबिंब का लेखांश—
'सं० कर्मा भार्या कमलादे नाम्न्या श्री नमिनाथबिंबं' चौ० जिनालय

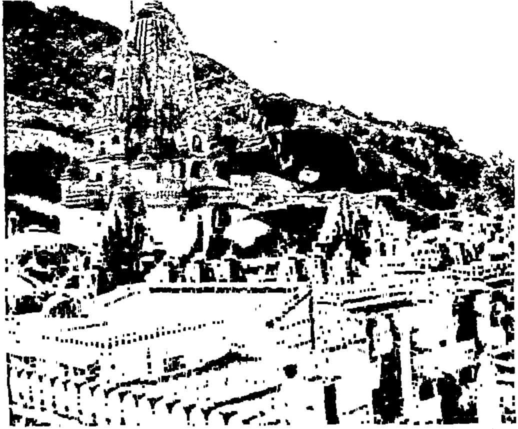
१२— श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथचैत्य के खेलामण्डप के उत्तरदिशा के आलय में श्री सम्भवनाथबिंब का लेखांश—
'सं० कर्मा भार्या कमला पुण्यार्थं सं० थिरपालकेन'

१३— द्वि० मंजिल के गंभारा में उत्तराभिमुख श्री मुनिसुव्रतबिंब का लेखांश—
'सं० सचवीर भार्या सिणगारदे सुत सं० देवराज पुण्यार्थं सं० कर्माकेन' चौ० जिनालय

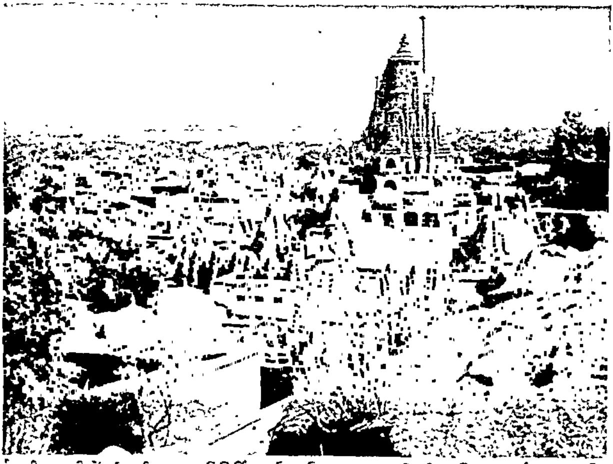
१४— दक्षिण दिशा की उत्तराभिमुख बड़ी दे० कु० में पूर्वाभिमुख श्री श्रेयांसनाथबिंब का लेखांश—
'सं० सचवीर भार्या सणगारदे पुत्र सं० कृष्णा पुण्यार्थं सं० कर्माकेन' चौ० जिनालय

१५— उत्तर दिशा की दे०कु० सं० १ में श्रेयांसनाथबिंब का लेखांश—
'सं० सचवीर सुत सं० केशव भार्या रूपादे सुत सं० नाथाकेन' चौ० जिनालय

१६— दक्षिणपक्ष की दे०कु० सं० २ में श्री नमिनाथबिंब का लेखांश—
'सं० कृष्णा भार्या कमला पुण्यार्थ सं० कर्माकेन'
'सं० कृष्णा सुत सं० धनराजेन' चौ० जिनालय



सिरोही: पर्वत की तलहटी में सं० सीपा द्वारा विनिर्मित पश्चिमाभिमुख गगनचुम्बी श्री आदिनाथ-चतुर्मुख-बावन जिनप्रासाद।
वर्णन पृ० २८६ पर देखिये।



सिरोही: पर्वत की तलहटी में सं० सीपा द्वारा विनिर्मित पश्चिमाभिमुख गगनचुम्बी श्री आदिनाथ-चतुर्मुख-बावन जिनप्रासाद का नगर के मध्य एवं समीपवर्त्ती भूभाग के साथ मनोहर दृश्य। वर्णन पृ० २८६ पर देखिये।

स्मरण हो आता है। इस मन्दिर की बनावट में और उसकी बनावट में क्षेत्रफल, विशालता, भव्यता आदि में तो अन्तर प्रतीत होता ही है; परन्तु इसमें दोनों की समान भाँति में अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें मेघमण्डपों की रचना नहीं है और देवकुलिकाओं के परिकोष्ठ में वैसे चार द्वार भी नहीं हैं। इसका भी सिंहद्वार पश्चिमाभिमुख है। इस भव्य चतुर्मुखा-मूलकुलिका का निर्माण विक्रम संवत् १६३४ में सम्पूर्ण हुआ और सं० सीपा के पुत्र आसपाल ने तपा० पट्टालंकार दिल्लीपति यवनसम्राट् अकबरशाह द्वारा प्रदत्त जगद्-गुरुबिरुद के धारक श्रीमद् श्री ६ श्री श्री विजयहीरसूरीश्वरजी के करकमलों से विक्रम संवत् १६४४ फाल्गुण कृष्णा १३ बुधवार को सिरोही महाराजाधिराज महाराय श्री सुरताणसिंहजी के विजयी राज्यकाल में राजसी सज-धज एवं अति ही धूम-धाम से इसकी प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रतिष्ठोत्सव के समय सं० सीपा धन, परिवार और मान की दृष्टि से अधिक ही गौरवशाली था। प्रतिष्ठोत्सव में सं० सीपा ने अत्यन्त द्रव्य व्यय किया था। याचकों को विपुल द्रव्य दान में दिया था और संघ और साधुओं की भक्ति विशाल स्वामीवात्सल्यादि करके अत्यधिक की थी।

महाराय सुरताण सिरोही के राज्यासन पर हुये महारायों में सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी और गौरवशाली राजा थे। जगद्गुरु हीरविजयसूरि भी ख्याति और प्रतिष्ठा में अन्य जैनाचार्यों से कितने बढ़ कर हैं—यह भी किसी से

सं० सीपा के सुख और गौरव पर दृष्टि

अज्ञात नहीं है। सम्राट् अकबर का शासन काल था। सिरोही के समस्त मन्दिरों में यह चतुर्मुखा-जिनालय अधिकतम् भव्य और प्राचीन है। उपरोक्त समस्त बातें विचार करके यह सहज माना जा सकता है कि जिसका धर्मगुरु और राजा अद्वितीय हों, ऐसे महापुरुषों का कृपापात्र पुरुष भी कितना गौरवशाली हो सकता है, सहज समझा जा सकता है। चौमुखाप्रासाद सं० सीपा के महान् गौरव और कीर्त्ति का परिचय आज भी भलीविध संसार को दे रहा है। सं० सीपा को मन्दिर के लेख में भी 'श्रीसंघमुख्य' पद से अलंकृत किया गया है। समाज में भी उसका अतिशय मान था—यह इस पद से सिद्ध होता है। वसंतपुरवासी सं० सीपा जैसा ऊपर लिखा जा चुका है बहुपरिवारसम्पन्न था। सरूपदेवी नामा उसकी पतिपरायणा धर्मिष्ठा स्त्री थी। उसके आसपाल, वीरपाल और रत्नवीर जैसे प्रसिद्ध और धर्मसेवक तीन पुत्र थे और सं० मेहाजल, आंबा, चांपा, केशव, कृष्ण, जसवंत और देवराज जैसे होनहार उसके सात पौत्र थे—इतने पुत्र, पौत्र, पुत्रवधूयें एवं भ्रातादि से समृद्ध और भरेपूरे परिवार वाला, राज्य और समाज में अग्रणी तथा धर्म के क्षेत्र में अपने अतिशय द्रव्य का सदुपयोग करने वाला पुरुष सर्व प्रकार से सुखी और प्रतिष्ठावान् ही निर्विवादतः माना जायगा।

यह मन्दिर एक ऊंचे चतुष्क पर बना है। चतुष्क के मध्य में अति ऊंची त्रिमंजिली मूलदेवकुलिका बनी है। तीनों मंजिल चतुर्मुखी हैं। मूलदेवकुलिका के चारों दिशाओं में विशाल सभामण्डप बने हैं। पश्चिम, उत्तर और दक्षिण

श्री चतुर्मुखा जिनालय की बनावट

दिशाओं के सभामण्डपों के बीच में नैऋत्य और वायव्य दोनों कोणों में सशिखर विशाल दो-दो द्वारवर्ती दो देवकुलिकायें बनी हैं। नैऋत्य कोण में बनी देवकुलिका की बाहरी

१७- दक्षिणपक्ष की दे० कु० सं० १ में पार्श्वनाथबिंब का लेखांश—
'सं० सीपा पुत्र सं० आसपालेन' चौ० जिनालय

दिवार से लगा कर ऊपर की मंजिल में जाने के लिये पदनाल बनी है। सभामण्डपों के आगे भ्रमती आ गई है, जिसमें भक्तगण मन्दिर की परिक्रमा करते हैं। इस भ्रमती से लगकर चारों ओर बनी हुई बावन देवकुलिकाओं की रचना आ जाती है। देवकुलिकाओं के आगे स्तंभवती वरशाला है। देवकुलिकाओं का पृष्ठ भाग सुदृढ़ परिकोष्ठ में विनिर्मित है। यह परिकोष्ठ चतुष्क की चारों भुजाओं पर अपनी योग्य ऊंचाई, कुलिकाओं के शिखरों के कारण अति ही विशाल एवं मनोहर प्रतीत होता है। मन्दिर का सिंहद्वार जैसा ऊपर भी लिखा जा चुका है, पश्चिमाभिमुख है और द्विमंजिला है। मन्दिर में कलाकाम नहीं है, फिर भी बावन देवकुलिकाओं से, उनके शिखरों से, नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों में बनी हुई विशाल देवकुलिकाओं के ऊंचे शिखर और गुम्बजों से, चारों दिशाओं में बने हुये चारों सभामण्डपों के चारों विशाल गुम्बजों की रचना से वह ऊंचाई पर से देखने पर अति ही विशाल, भव्य और मनोहर प्रतीत होता है। मन्दिर की प्रतिष्ठा यद्यपि विक्रम संवत् १६३४ में ही हो चुकी थी। फिर भी जैसा इस मन्दिरगत प्रतिमाओं के प्रतिष्ठासंवतों से प्रतीत होता है, चौमुखी मंजिलों, देवकुलिकाओं में मूर्त्तियों की प्रतिष्ठायें वि० सं० १७२१ तक होती रहीं और तदनुसार मन्दिर का निर्माणकार्य भी प्रतिष्ठोत्सव पश्चात् भी कई वर्षों तक चालू रहा। सं० सीपा के पुत्रों, पौत्रों, प्रपौत्रों द्वारा श्री चतुर्मुखी-आदिनाथचैत्यालय में विभिन्न २ संवतों में प्रतिष्ठित करवाई गयीं प्राप्त मूर्त्तियों का परिचय निम्नवत् है:—

	प्रतिष्ठा—संवत्-तिथि	प्रतिष्ठाकर्त्ता	प्रतिष्ठापक	प्रतिमा	विशेष
			मूलगंभारा में		
१	१६४४ फा० कृ० १३ बुध.	हीरविजयसूरि.	आशपाल.	मू० ना० आदिनाथ.	पश्चिमाभिमुख.
२	,,	,,	,,	,,	उत्तराभिमुख.
३	,,	,,	,,	,,	पूर्वाभिमुख.
			गूढ़मण्डप की चौपट्टी पर		
४	१७२१ ज्ये० सु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	धनपाल (धनराज).	जिनबिंब.	
५	,,	,,	कर्मराज.	वासुपूज्य.	
६	,,	,,	गुणराज.	पार्श्वनाथ.	
७	,,	,,	,,	सुबाहुस्वामी.	
८	,,	,,	कर्मराज.	संभवनाथ.	मंत्री वस्तुपाल के श्रेयार्थ.
			द्वि० चौमुखी मंजिल के गम्भारा में		
६	१७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	गुणराज.	पार्श्वनाथ.	पश्चिमाभिमुख.
१०	,,	,,	कर्मराज.	मुनिसुव्रत.	देवराज के पुण्यार्थ उत्तराभिमुख.
११	,,	,,	वीरभाण.	जिनबिंब.	पूर्वाभिमुख.
१२	,,	,,	कर्मराज.	आदिनाथ.	सचवीर के पुण्यार्थ दक्षिणाभिमुख

१८— श्री सांखेश्वर-पार्श्वनाथ-जिनालय के उत्तराभिमुख आलयस्थ श्री आदिनाथबिंब का लेखांश—
'सं० कृष्णा तत्पुत्र धनराज तस्य भार्या सारू'

प्रतिष्ठा-संवत्-तिथि	प्रतिष्ठाकर्त्ता	प्रतिष्ठापक	प्रतिमा	विशेष
		नैऋत्यकोण की सशिखर देवकुलिका में		
१३ १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	कर्मराज.	आदिनाथ.	पूर्वाभिमुख.
१४ ,,	,,	,,	धर्मनाथ.	सं० चापा के पुण्यार्थ.
		वायव्यकोण की सशिखर देवकुलिका में		
१५ १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	कर्मराज.	विमलनाथ.	वीरपाल के पुण्यार्थ.
१६ ,,	,,	ऋषभदास.	सुमतिनाथ.	पूर्वाभिमुख.
१७ ,,	,,	कर्मराज.	चन्द्रप्रभ.	अंबा के पुण्यार्थ.
१८ ,,	,,	,,	नमिनाथ.	केसरदेवी के पुण्यार्थ.
१६ ,,	,,	,,	शांतिनाथ.	जसराज के पुण्यार्थ.
		दक्षिणपक्ष की देवकुलिका में		
२० १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	जीवराज.	धर्मनाथ.	देवकुलिका सं० १ में.
२१ ,,	,,	,,	जिनबिंब.	,, ,,
२२ ,,	,,	कर्मराज.	अजितनाथ.	,, ,,
२३ ,,	,,	,,	नमिनाथ.	कमलादेवी के पुण्यार्थ दे.कु.सं. २
२४ ,,	,,	,,	,,	देवकुलिका सं० २.
२५ ,,	,,	धनराज.	शीतलनाथ.	,, ,,
२६ ,,	,,	कर्मराज.	महावीर	उछरंगदेवी के पुण्यार्थ. दे. कु. सं. ३
२७ ,,	,,	,,	धर्मनाथ.	नीवादेवी के पुण्यार्थ. ,, ,,
२८ ,,	,,	नाथाभार्या कमलादेवी	आदिनाथ	,, ,,
		उत्तरपक्ष की देवकुलिका में		
२६ १७२१ ज्ये० सु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	महिमादेवी.	वासुपूज्य.	दे० कु० सं० १.
३० ,,	,,	नाथा.	श्रेयांसनाथ.	,, ,,
३१ ,,	,,	कर्मराज.	पद्मप्रभ.	,, ,,
३२ ,,	,,	रुखमादेवी.	शान्तिनाथ.	सं० २
३३ ,,	,,	धनराज.	जिनबिंब.	सं० ३
३४ ,,	,,	कृष्णराज.	अजितनाथ.	,, ,,
		दक्षिण दिशा की एक बड़ी देवकुलिका में		
३५-१७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	कर्मराज.	वासुपूज्य.	आसपाल के पुण्यार्थ पूर्वाभिमुख
३६ ,,	,,	कमलादेवी.	आदिनाथ.	पूर्वाभिमुख
३७ ,,	,,	कर्मराज.	श्रेयांसनाथ.	कृष्णराज के पुण्यार्थ
३८ ,,	,,	,,	सुमतिनाथ.	मेहाजल के पुण्यार्थ

३६–५६–इसी कुलिका में ऊपर की प्रथम आसनपट्टी पर उत्तराभिमुख प्रतिमाओं में से सं० १, २, ३, ४, ६, ७, ८, ६, १०, ११, १३, १४, १६, १७, १८, २०, २१, २२, २३, २४, २५ वीं प्रतिमायें संवत् १७२१ फा० शु० ३ रविवार सं० कर्मराज ने विजयराजसूरि के कर-कमलों से प्रतिष्ठित करवाईं।

६०–६२ १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि. विजयराजसूरि. गुणराज. महावीरबिंब. प्रतिमा सं० १६

द्वितीय आसनपट्टी पर विराजित प्रतिमाओं में से सं० ४, ७, ८ भी सं० सीपा के ही वंशजों द्वारा सं० १७२१ फा० शु० ३ रविवार को ही प्रतिष्ठित की हुई हैं।

६३–६४	१७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	कर्मराज.	सुमतिनाथ.	प्रतिमा सं० ५, ६
६५	,,	,,	गुणराज.	जिनबिंब.	प्र० सं० ६
६६	,,	,,	जसरूपदेवी.	अजितनाथ.	,, १०
६७	,,	,,	राजभाण.	सुविधिनाथ.	,, १२
६८	,,	,,	धनराज.	जिनबिंब.	,, १४

श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथ-जिनालय में

६६	१७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	थिरपाल.	सम्भवनाथ.	खेलामण्डप में उत्तराभिमुख

श्री दशा ओसवालों के आदीश्वर-जिनालय में

७०	१७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	विजयराजसूरि.	यादव.	नमिनाथ	खेलामण्डप में दक्षिणाभिमुख
७१	१६४४ फा० शु० १३	,,	सुरताण.	आदिनाथ.	,, पूर्वाभिमुख
७२	१७२१ ज्ये० शु० ३ रवि.	,,	······	नमिनाथ.	दे० कु० उत्तराभिमुख
७३	,,	,,	कर्मराज.	सम्भवनाथ.	,, ,,
७४	,,	,,	हरचन्द्र.	आदिनाथ.	खेलामण्डप ,,
७५	,,	,,	कर्मराज.	कुंथुनाथ.	दे० कु० दक्षिणाभिमुख
७६	,,	,,	नाथाभार्या कमला.	नमिनाथ.	पश्चिमाभिमुख दे. कु. के खेलामंडप में

उपरोक्त सूची से ज्ञात होता है कि सं० सीपा के वंशजों ने वि० सं० १७२१ ज्ये० सु० ३ रविवार को अंजनशलाका-प्राण-प्रतिष्ठोत्सव अति धूम-धाम से श्रीमद् विजयराजसूरि की तत्त्वावधानता में किया और बहु द्रव्य व्यय करके अनेक बिंबों की प्रतिष्ठायें करवाईं।

सं० सीपा के परिवार के प्रसिद्ध वंशजों का परिचय और मेहाजल का यशस्वी जीवन

सं० सदा तो वशन्तपुर में ही रहता था। सं० सदा के पाँचवें पुत्र सं० सीपा के पुत्रों तक यह परिवार वशन्तपुर में ही रहा। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में अथवा अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह परिवार सिरोही में ही आकर रहने लग गया। सं० सीपा के वि० सं० १६३४ के लेख* से प्रतीत होता है कि मन्दिर की मूलनायक देवकुलिका का प्रथम खण्ड उक्त संवत् में पूर्ण हो गया था–और सं० सीपा ने उसकी प्रतिष्ठा उसी संवत् में श्रीमद् विजयहीरसूरिजी के कर-कमलों से करवाई थी। तत्पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र आसपाल ने फिर वि० सं० १६४४ फा० कृ०

*मंदिर का प्रतिष्ठा-लेख, जो गूढ़मंडप के पश्चिम द्वार के बाहर उसके दाँयी ओर की दीवार में आलय के ऊपर खुदा है निम्न है।

१३ बुधवार को अंजनशलाका-प्राणप्रतिष्ठोत्सव करके श्रीमद् विजयहीरसूरि के कर-कमलों से निजमन्दिर में श्री आदिनाथ भगवान् की श्वेत प्रस्तर की विशाल तीन मूलनायक प्रतिमायें पश्चिमाभिमुख, पूर्वाभिमुख और उत्तराभिमुख प्रतिष्ठित करवाईं।

सं० सीपा के पौत्रों में वीरपाल का पुत्र मेहाजल अधिक यशस्वी और श्रीमंत हुआ। इसने वि० सं० १६६० में श्री शत्रुंजयमहातीर्थ की विशाल संघ के साथ में यात्रा की थी और पुष्कल द्रव्य व्यय करके अपार यश एवं मान प्राप्त किया था। मेहाजल की स्त्री मनोरमादेवी की कुक्षी से उत्पन्न गुणराज और द्वितीय स्त्री कल्याणदेवी की कुक्षी से उत्पन्न कर्मराज भी अधिक योग्य और प्रख्यात हुये। प्राप्त बिंबों में आधे से अधिक बिंब कर्मराज के द्वारा तथा अवशिष्ट में से भी अन्य परिजनों द्वारा प्रतिष्ठित बिंबों की संख्या से अधिक गुणराज और उसके पिता मेहाजल द्वारा प्रतिष्ठित हैं। ये सर्व प्रतिमायें वि० सं० १७२१ ज्येष्ठ शुदी ३ रविवार को श्रीमद् विजयराजसूरि द्वारा प्रतिष्ठित की गई थीं।

सं० सीपा के तृतीय पुत्र सं० सचवीर के पौत्र सं० धनराज और नत्थमल तथा नत्थमल के पुत्र जीवराज तक अर्थात् सं० सदा से ६ पीढ़ी पर्य्यन्त इस कुल की कीर्त्ति बढ़ती ही रही और राज्य और समाज में मान अक्षुण्ण रहा। श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय आज भी इस कुल की कीर्त्ति को अमर बनाये हुये हैं।

सं० सीपा के परिजन एवं वंशजों ने चौमुखा-जिनालय के अतिरिक्त सिरोही के श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथ-जिनालय और श्री दशा-ओसवालज्ञाति के श्री आदीश्वर-जिनालय में भी अनेक जिनबिंबों की प्रतिष्ठायें करवाईं, जैसा उपरोक्त जिनबिंबों की सूची से प्रकट होता है।

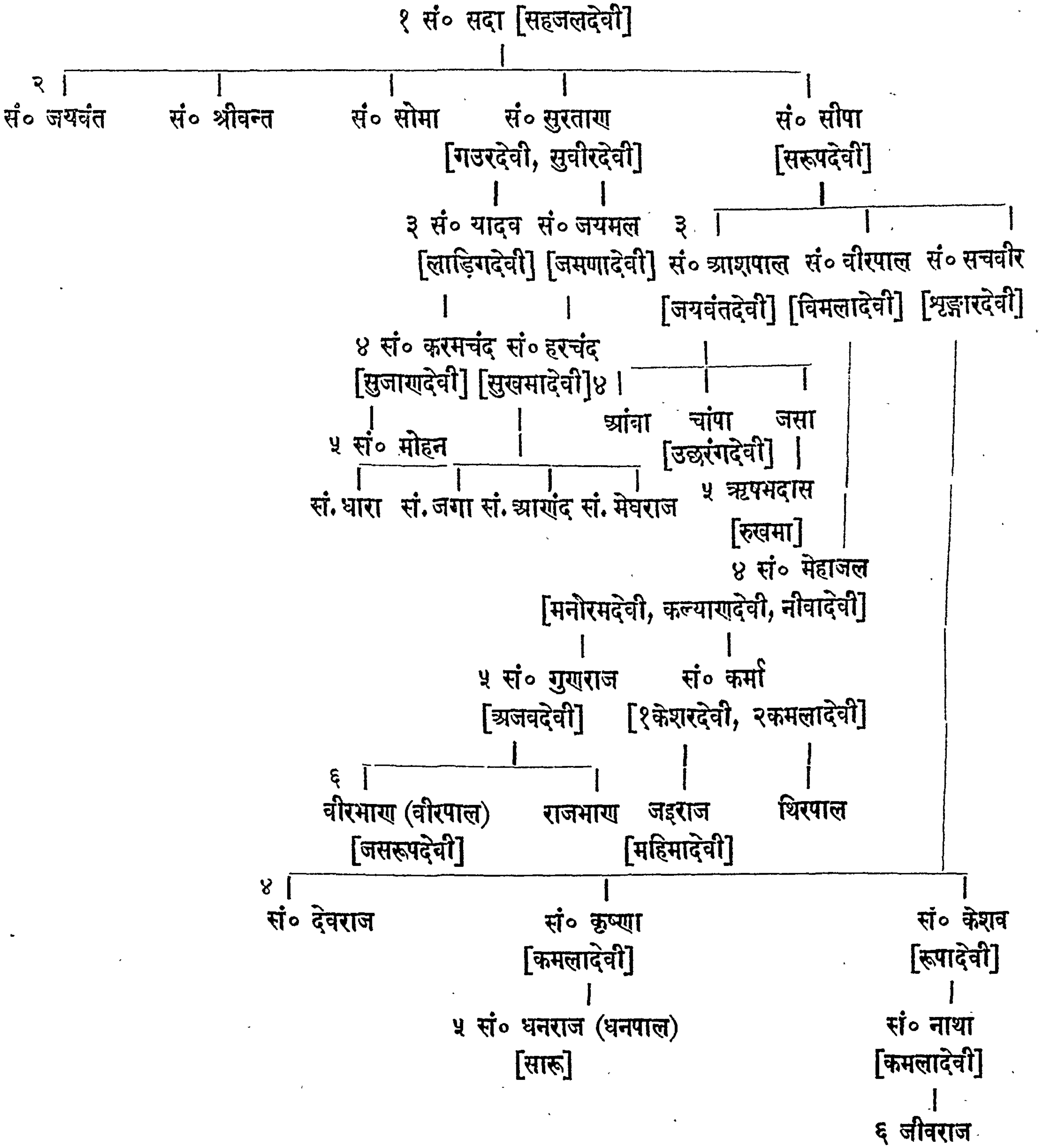
'संवत् १६३४ वर्षे शाके १५०१ प्रवर्त्तमाने हेमंत ऋतौ मार्गशिर मासे शुक्ल पक्षे पंचम्यां तिथौ। महाराय श्री महाराजाधिराज श्री सुरताणजी। कुंअरजी श्री राजसिंहजी विजयीराज्ये श्री सीरोहीनगरे श्री चतुर्मुखप्रासाद कारापितं॥ श्री संघमुख्य श्री सं० सीपा भार्या सरूपदे पुत्र सं० आसपाल सं० वीरपाल सं० सचवीर। तत्पुत्रा (पौत्र) सं० मेहाजल, आंबा, चांपा, येसर, कृष्णा, जसवंत, देराज॥ तपागच्छे श्री गच्छाधिराज श्री ६ हीरविजयसूरि आचार्य श्री श्री ५ विजयसेनसूरिणा श्री आदिनाथ श्री चतुर्मुखं प्रतिष्ठितं॥ श्री॥ सूत्रधार नरसिंघ श्री राइण सु० हांसा रोपी सु० मना पुत्र सु० हंसा पुत्र शिवराज कमठाकारापितं॥शुभं भवतु॥'

जै० गु० क० भा० २ पृ० ३७४

'महापुरुष मेहाजल नाम, तीरथ 'आबु' करिचल धाम, संवत् ने हुई सोलिसठी, शेत्रुंजा यात्रा करी मनिरली।'

(शीलविजयकृत तीर्थमाला)

सिरोहीनगरस्थ श्री चतुर्मुखा-आदिनाथजिनालय के निर्माता सं० सीपा का वंश-वृक्ष



तीर्थ एवं मन्दिरों में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादिकार्य—

श्री शत्रुंजयमहातीर्थ पर एवं श्रीपालीताणा में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि कार्य

प्रेमचन्द्र मोदी की टूँक में

प्र० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्र० श्रावक अथवा श्राविका और उसका परिवार
सं० १३७८	·········	मल० तिलकसूरि	ठ० वयजल की पुत्री ने
सं० १४४६ वै. कृ. ३ सोम.	अजितनाथ-पंचतीर्थी	नागेन्द्र० रत्नप्रभसूरि	श्रे० सादा ने पिता धणसिंह और माता हांसलदेवी के श्रेयार्थ

मोतीशाह की टूँक में

सं० १५०३ ज्ये. शु. ६	नमिनाथ	तपा० जयचन्द्रसूरि	शा० कापा की स्त्री हांसलदेवी के पुत्र झांझण ने स्वस्त्री नागलदेवी, पुत्र मुकुंद, नारद और भ्राता धनराज के श्रेयार्थ जीवादि परिजनों के सहित

पालीताणा के मोती सुखियाजी के जिनालय में

सं० १५०३ ज्ये. शु. १०.	श्रेयांसनाथ	तपा० जयचंद्रसूरि.	गणवाड़ावासी श्रे० आमा स्त्री सेगू के पुत्र पर्वत ने स्वस्त्री माई आदि परिजनों के सहित स्वश्रेयार्थ.
सं० १५५६ आश्विन शु. ८ बुध.	सिद्धचक्रपट्ट	·········	म० वछा (वत्सराज) ने
सं० १५७१ माघ कृ. १ सोम.	नमिनाथ-चौवीशीपट्ट	तपा० हेमविमलसूरि	वीसलनगरवासी श्रे० चहिता की स्त्री लाली के पुत्र नारद की स्त्री नारिंगदेवी के पुत्र जयवंत ने स्वस्त्री हर्षादेव्यादि परिवारसहित स्वश्रेयार्थ.

श्रे० नरसिंह-केशवजी के मन्दिर में

सं० १६१४ वै. शु. २ बुध.	पार्श्वनाथ	तपा० धर्मविजयगणि	दोसी देवराज स्त्री देवमती के पुत्र चनेचन्द्र स्त्री चनदेवी के पुत्र कुंघजी ने पिता के श्रेयार्थ.

श्री गौड़ीपार्श्वनाथ के मन्दिर में

सं० १५१५ माघ शु. ५ शनि.	शांतिनाथ	आ०ग० पद्मप्रभसूरि	सहयालावासी म० राउल स्त्री राउलदेवी द्वि० हांसलदेवी के पुत्र मूलराज ने स्वस्त्री अरखूदेवी, पुत्र भोजा, हांसा, राजा स्त्री मकूदेवी के सुत हीरा, माणिक, हरदास के सहित स्वपूर्वजश्रेयार्थ

जै० ले० सं० भा० १ ले० ६८४, ६८६, ६०८, ६४७, ६४६, ६५०, ६५१, ६६०,

सं० १५१६ ज्ये. कृ. ६.शनि.	वासुपूज्य	उदयवल्लभसूरि	श्रे० काला स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र अर्जुन ने स्वस्त्री देऊं भ्राता सं० भीमा स्त्री देवमती पुत्र हरपाल स्त्री टमकू सहित स्वश्रेयार्थ*
सं० १५६६ माघ. कृ. ६	चन्द्रप्रभ	द्विवंदनीक ग० कक्कसूरि	श्राविका हेमवती के पुत्र देवदास ने स्त्री देवलदेवी सहित*

बड़े मन्दिर में

सं० १५७२ वै.शु. १३ सोम.	संभवनाथ चौवीशी	नागेन्द्र० गुणवर्द्धनसूरि	जूनागढ़वासी दोसी सहिजा के पुत्र भरणा की स्त्री कूमटी के पुत्र चहु ने स्त्री वल्हादेवी के सहित स्वश्रेयार्थ और पितृश्रेयार्थ*

जगद्गुरु श्रीमद् विजयहीरसूरिजी के सदुपदेश से श्री आदिनाथदेव-जिनालय में पुण्यकार्य
वि० सं० १६२०

श्रेष्ठि कोका

श्री आदिनाथ-मुख्यजिनालय के द्वार के दाँयी ओर जो देवकुलिका है, उसको वि० सं० १६२० वै० शु० २ को गंधारनिवासी श्रे० पर्वत के पुत्र कोका के सुपुत्र ने अपने कुटुम्बीजनों के सहित तपागच्छीय श्रीमद् विजयदानसूरि और जगद्गुरु विजयहीरसूरि के सदुपदेश से प्रतिष्ठित करवाई थी।‡

श्रेष्ठि समरा

इसी मुख्य जिनालय के उत्तर द्वार के पश्चिम में दाँयी ओर आई हुई जो शांतिनाथ-देवकुलिका है, उसको वि० सं० १६२० वै० शु० ५ गुरुवार को गंधारनगरनिवासी व्य० श्रे० समरा ने स्वपत्नी भोलीदेवी, पुत्री वेरथाई और कीबाई आदि के सहित तपा० श्रीमद् विजयदानसूरि और श्रीमद् विजयहीरसूरि के सदुपदेश से प्रतिष्ठित करवाई थी।‡

श्रेष्ठि जीवंत

इसी मुख्यमंदिर की दीवार के समक्ष ईशानकोण में जो पार्श्वनाथ-देवकुलिका है, उसको वि० सं० १६२० वै० शु० ५ गुरुवार को श्रीमद् विजयदानसूरि और विजयहीरसूरि के सदुपदेश से गंधारवासी सं० जावड़ के पुत्र सं० सीपा की स्त्री गिरसु के पुत्र जीवंत ने सं० काउजी, सं० आढुजी प्रमुख स्वभ्राता आदि कुटुम्बीजनों के सहित प्रतिष्ठित करवाई थी।‡

उपरोक्त संवत् एवं दिन के कुछ अन्य लेख भी प्राप्त हैं। इससे सिद्ध होता है कि गंधारनगर से कई एक सद्गृहस्थ जगद्गुरुविरुदधारक श्रीमद् विजयहीरसूरिजी की अधिनायकता में श्री शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा करने के

---

*जै० ले० सं० भा० १ ले० ६६१, ६६७, ६७७
‡प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ६, ८, ६

लिये सपरिवार आये थे और कई दिवस पर्यन्त वहां ठहरे थे तथा उनमें से कई एक ने उपरोक्त प्रकार से निर्माण-कार्य करवाये थे।

श्रेष्ठि पंचारण

इसी मुख्य जिनालय की भ्रमती में दक्षिण दिशा में बनी हुई जो श्री महावीर-देवकुलिका है, उसको वि० सं० १६२० आषाढ़ शु० २ रविवार को श्री गंधारनगरनिवासी श्रे० दोसी गोइआ के पुत्र तेजपाल की स्त्री मोटकी के पुत्र दो० पंचारण ने स्वभ्राता दो० भीम, नना और देवराज प्रमुख स्वकुटुम्बीजनों के सहित तपा० श्रीमद् विजयदानसूरिजी और विजयहीरसूरिजी के सदुपदेश से प्रतिष्ठित करवाई थी।*

प्राग्वाटज्ञातीयकुलभूषण श्रीमंत शाह शिवा और सोम तथा श्रेष्ठि रूपजी द्वारा शत्रुञ्जयतीर्थ पर शिवा और सोमजी की ट्रॅंक की प्रतिष्ठा
वि० सं० १६७५

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में अहमदाबाद की जाहोजलाली अपने पूरे रूप को प्राप्त कर चुकी थी। यहाँ गूर्जरभूमि के अत्यधिक बड़े २ श्रीमंत शाहूकार बसते थे। जैनसमाज का विशेषतया राजसभा में अधिक संमान था, अतः अनेक धनकुबेर जैन श्रावक अहमदाबाद में रहते थे। ऐसे धनी एवं मानी जैन श्रीमंतों में प्राग्वाटज्ञातीय लघुशाखीय विश्रुत श्रे० देवराज भी रहते थे। देवराज की स्त्री रूढ़ी बहिन से श्रे० गोपाल नामक पुत्र हुआ। श्रे० गोपाल की स्त्री राजूदेवी की कुक्षी से श्रे० राजा पैदा हुआ। श्रे० राजा के श्रे० साईआ नामक पुत्र हुआ और साईआ की स्त्री नाकूदेवी के श्रे० जोगी और नाथा दो पुत्र उत्पन्न हुये।

श्रे० जोगी की स्त्री का नाम जसमादेवी था। जसमादेवी के सं० शिवा और सोम नामक दो पुत्र पैदा हुए। सं० सोमजी का विवाह राजलदेवी नामा गुणवती कन्या से हुआ, जिसकी कुक्षी से रत्नजी, रूपजी और खीमजी तीन पुत्र पैदा हुये। रत्नजी की स्त्री का नाम सुजाणदेवी और रूपजी की स्त्री का नाम जेठी बहिन था। सं० रत्नजी के सुन्दरदास और सखरा, सं० रूपजी के पुत्र कोड़ी, उदयवंत और पुत्री कुंअरी तथा खीमजी के रविजी नामक पुत्र उत्पन्न हुये।

श्रे० साईआ का लघुपुत्र श्रे० नाथा जो श्रे० जोगी का लघुभ्राता था की स्त्री नारंगदेवी की कुक्षी से सूरजी नामक पुत्र हुआ। श्रे० सूरजी की स्त्री सुषमादेवी के इन्द्रजी नामक दत्तक पुत्र था। श्रे० साइआ के ज्येष्ठ पुत्र जोगी के दोनों पुत्र श्रे० शिवा और सोमजी अति ही धर्मिष्ठ, उदारहृदय, दानी एवं धर्मसेवी हुये। इन्होंने अनेक नवीन जिनमन्दिर बनवाये, अनेक नवीन जिनप्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाईं और ग्रन्थ लिखवाये। वि० सं० १५६२ में खरतरगच्छीय श्रीमद् जिनचन्द्रसूरि के सदुपदेश से ज्ञानभण्डार के निमित्त सिद्धान्त की प्रति लिखवाई। प्रतिष्ठाओं एवं साधर्मिकवात्सल्य आदि धर्मकृत्यों में पुष्कल द्रव्य का

शिवा और सोमजी और उनके पुण्यकार्य

*प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४

सदुपयोग किया। इन्होंने श्री शत्रुंजयमहागिरि के ऊपर श्री चतुर्मुखविहार-श्रीआदिनाथ नामक जिनप्रासाद सप्राकार बनवाना प्रारंभ किया था, परन्तु काल की कुगति से उसकी प्रतिष्ठा इनके हाथों नहीं हो सकी थी।

सं० सोमजी के यशस्वी, महागुणी एवं राजसभा में शृंगारसमान पुत्र रूपजी था। उस समय भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली के सिंहासन पर प्रसिद्ध प्रतापी मुगलसम्राट् अकबर का पुत्र नूरदी जहांगीर विराजमान था।

सोमजी के पुत्र रूपजी और शत्रुंजयतीर्थ की संघयात्रा

उसके शासनकाल में सं० रूपजी ने एक विराट् संघ निकाल कर शत्रुंजयमहातीर्थ की यात्रा की और संघपति का तिलक धारण किया तथा अपने पिता सोमजी और काका शिवजी द्वारा जिस उपरोक्त चतुर्मुख-आदिनाथ जिनालय का निर्माण प्रारम्भ करवाया गया था को पूर्ण करवाकर श्रीमद् उद्योतनसूरि की पाटपरंपरा पर आरूढ़ होते आते हुये क्रमशः आचार्य जिनचन्द्रसूरि, जिनको मुगलसम्राट् अकबर ने युगप्रधान का पद अर्पित किया था के शिष्यप्रवर श्रीमद् जिनसिंहसूरि के पट्टालंकार आचार्य श्रीमद् जिनराजसूरि के करकमलों से वि० सं० १६७५ वैषाख शु० १३ शुक्रवार को पुष्कल द्रव्य व्यय करके महामहोत्सव पूर्वक प्रतिष्ठित करवाया तथा उसमें चार अति भव्य आदिनाथबिंब चारों दिशाओं में अभिमुख विराजमान करवाये और एक आदिनाथ-चरण जोड़ी भी प्रतिष्ठित करवाई। सं० रूपजी, सं० सूरजी, सं० सुन्दरदास और सखरादि ने इस प्रतिष्ठोत्सव के शुभावसर पर ५०१ जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई थी। शत्रुंजयतीर्थ पर आज भी उपरोक्त चतुर्मुखादिनाथ-मंदिर 'श्री शिवा और सोमजी की टूँक' के नाम से ही प्रसिद्ध है। इस टूँक के बनाने में 'मिराते-अहमदी' के लिखने के अनुसार ५८०००००) अट्ठावन लक्ष रुपयों का व्यय हुआ था तथा ऐसा भी कहा जाता है कि केवल ८४०००) चौरासी हजार रुपयों की तो रस्सा और रस्सियाँ ही खर्च हो गई थीं।

उक्त खरतरवसहिका श्री चतुर्मुखादिनाथ-जिनालय में आज भी निम्न प्रतिमायें सं० रूपजी और उसके कुटुम्बियों द्वारा स्थापित विद्यमान हैं:—

१—टूँक के वायव्यकोण में विनिर्मित देवकुलिका में सं० रूपजी द्वारा स्थापित श्री आदिनाथ-चरण-जोड़ी एक।

२—टूँक के मूलमन्दिर में चारों दिशाओं में मूलनायक के रूप में सं० रूपजी द्वारा स्थापित श्री आदिनाथ भव्य प्रतिमायें चार।

३—टूँक के ईशानकोण में सं० नाथा के पुत्र सं० सूरजी द्वारा स्वस्त्री सुखमादेवी और दत्तक पुत्र इन्द्रजी के सहित स्थापित करवाई हुई श्री शान्तिनाथ-प्रतिमा एक।

४—सं० रूपजी के वृद्धभ्राता सं० रत्नजी के पुत्र सुन्दरदास और सखरा द्वारा स्वपिता के श्रेयार्थ आग्नेयकोण में स्थापित श्री शान्तिनाथ-प्रतिमा एक।

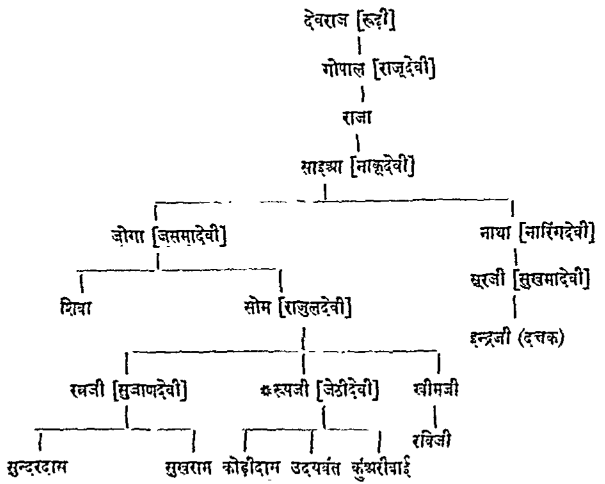
उपरोक्त बिंबों के प्रतिष्ठाकर्त्ता आचार्य श्री जिनराजसूरि ही हैं। शोध करने पर सम्भव है इस अवसर पर इनके द्वारा संस्थापित और भी अधिक बिंबों का पता लग सकता है।

---

१. क्षमाकल्याणक की खरतरगच्छ की पट्टावली में श्रे० शिवा और सोमजी दोनों भ्राताओं के विषय में लिखा है कि वे अति द्ररिद्रावस्था में थे और चीभड़ा (शुष्क शाक-काचरी) का व्यापार करते थे। खरतरगच्छीय श्रीमद् जिनचंद्रसूरि के सदुपदेश से इन्होंने चीभड़ा का व्यापार करना छोड़ा और श्रावक के योग्य अन्य धंधा करने लगे। देवयोग से थोड़े ही वर्षों में पुष्कल द्रव्य अर्जित कर लिया और अत्यंत धनवान् हो गये।

'अहमदाबादनगरे चिर्भटीव्यापारेणाजीविकां कुर्वाणौ मिरथ्यात्विकुलोत्पनौ प्राग्वाटज्ञातीयौ सिवा सोमजी नामानौ द्वौ भ्रातरौ (प्रतिबोध्य सकुटुम्बौ श्रावकौ) वृतवन्तः ॥'

'शत्रुंजयतीर्थस्थ शिवा-सोमजी की टूँक' के निर्माता सं० शिवा और सोमजी का वंश-वृक्ष



श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ श्री विमलवसहिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि कार्य

श्रेष्ठि विजयड़

वि० सं० १३१६

श्री विमलवसति नामक श्री आदिनाथ-जिनालय की उनचालीसवीं देवकुलिका में मूलनायक के दाहिने पक्ष पर विराजमान श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमा वि० सं० १३१६ माघ शु० ११ शुक्रवार को श्री चन्द्रसूरिशिष्य श्री

---

*जै० गो० सं० इति० पृ० ५६७, प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १५, १७ से २०

वर्द्धमानसूरिजी के कर-कमलों से प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० सागर के पुत्र श्रे० पासदेव की स्त्री माधी (माध्वी) की कुक्षी से उत्पन्न पुत्री पाल्ही, पुत्र हरिचन्द्र की स्त्री देवश्री के पुत्र विजयड़ ने अपनी स्त्री विजयश्री और पुत्र प्रद्युम्नसिंह आदि परिवार के साथ में प्रतिष्ठित करवाई थी ।[1]

ठ० वयजल

वि० सं० १३७८

श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय की छट्ठी देवकुलिका में प्राग्वाटज्ञातीय वीजड़ के पुत्र ठ० वयजल ने श्रे० धरणिग और जिनदेव के सहित ठ० हरिपाल के श्रेयार्थ श्री मुनिसुव्रतस्वामीबिंब को वि० सं० १३७८ में श्री श्रीतिलकसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाया ।[2]

तीन जिन-चतुर्विंशतिपट्ट

वि० सं० १३७८

श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय की बीसवीं देवकुलिका में संगमरमर-प्रस्तर के बने हुये तीन जिनचतुर्विंशतिपट्ट हैं । इनकी प्रतिष्ठा वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ कृ० ५ को निम्न व्यक्तियों के द्वारा करवाई गई थी ।

प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० महयण की स्त्री महणदेवी का पुत्र गेहल की स्त्री मोहादेवी का पुत्र······स्त्री शृङ्गारदेवी के अभयसिंह, रत्नसिंह और समर नामक पुत्र थे । इनमें से समर ने अपनी स्त्री हंसल और पुत्र सिंह तथा मौकल आदि कुटुम्बीजनों के साथ मूलनायक श्री आदिनाथ आदि चौवीस जिनेश्वरों का एक जिनपट्ट प्रतिष्ठित करवाया ।[3]

प्राग्वाटज्ञातीय व्य०······की स्त्री मोरादेवी के पुत्र जसपाल, छाड़ा,······सीहड़ और नरसिंह थे । इनमें से शाह छाड़ा ने अपनी स्त्री वाली और पुत्र के सहित दूसरा जिनपट्ट प्रतिष्ठित करवाया ।[4]

श्रे० साधु और उसकी स्त्री सोहगादेवी के कल्याण के लिये इनके पुत्र श्रे० हनु स्त्री सहजल, श्रे० लूणा स्त्री लूणादेवी, श्रे० जेसल स्त्री रयणदेवी और श्रे० वीरपाल और उसकी स्त्री आदि कुटुम्ब के समुदाय ने सम्मिलित रूप से तीसरा जिन-चतुर्विंशति-पट्ट प्रतिष्ठित करवाया ।[5]

श्रेष्ठि जीवा

वि० सं० १३८२

श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय की नववीं देवकुलिका में वि० सं० १३८२ कार्त्तिक शु० १५ के दिन प्राग्वाटज्ञातीय व्य० रावी के पुत्र ठ० मंतण और राजड़ के कल्याण के लिये राजड़ के पुत्र जीवा ने मू० ना० श्री नेमिनाथ भगवान् की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई ।[6]

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १३५,[1] । ३८[2]

माण्डव्यपुरवास्तव्य उपकेशज्ञातीय सा० लल्ल और वीजड़ ने वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ शु० ९ को श्रीमद् ज्ञानचन्द्रसूरिजी के तत्त्वावधान में श्री विमलवसतिका का बहुत द्रव्य व्यय करके जीर्णोद्धार करवाया था। ऊपर के तीनों जिनपट्टों की स्थापना ज्येष्ठ शु० ५ को केवल चार दिवस पूर्व ही हुई थी । हो सकता है जिनपट्टों की प्रतिष्ठा भी श्री ज्ञानचन्द्रसूरिजी ने ही की हो ।

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ८८,[3] ८९,[4] ९०[5] । ४६[6]

महं० भाण

वि० सं० १३६४

श्री विमलवसतिका नामक श्री आदिनाथ-जिनालय की इक्कीसवीं देवकुलिका में वि० सं० १३६४ ज्येष्ठ कृ० ५ शनिश्चर को प्राग्वाटज्ञातीय विमलान्वयीय ठ० अभयसिंह की स्त्री अहिवदेवी के पुत्र महं० जगसिंह, लखमसिंह, कुरसिंह में से ज्येष्ठ महं० जगसिंह की स्त्री जेतलदेवी के पुत्र महं० भाण ने कुटुम्बसहित श्री अंबिकादेवी की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया ।[1]

श्रेष्ठि भीला

वि० सं० १४७१

श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० लखमण की स्त्री रुद्रीदेवी के पुत्र व्य० भीला ने अपने पिता, माता तथा अपनी आत्मा के श्रेय के लिये वि० सं० १४७१ माघ शु० १३ बुधवार को श्रीब्रह्माणगच्छीय श्रीमद् उदयानंदसूरिजी के कर-कमलों से श्री भगवान् पार्श्वनाथ का बिंब प्रतिष्ठित करवाया ।[2]

श्रेष्ठि साल्हा

वि० सं० १४८५

श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय में प्राग्वाटज्ञातीय व्य० श्रे० डूङ्गर की स्त्री उमादेवी के पुत्र व्य० साल्हा ने अपनी स्त्री माल्हणदेवी, पुत्र कीना, दीना आदि के सहित श्री तपागच्छीय श्रीमद् सोमसुन्दरसूरिजी के कर-कमलों से वि० सं० १४८५ में श्री सुपार्श्वनाथ मू० ना० वाला चतुर्विंशतिपट्ट प्रतिष्ठित करवाया ।[3]

मं० आल्हण और मं० मोल्हण

वि० सं० १५२०

श्री विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय के गूढ़मण्डप में प्राग्वाटज्ञातीय सं० वरसिंह की स्त्री मंदोदरी के पुत्र मंत्री आल्हण और मंत्री मोल्हण ने अपने कनिष्ठ भ्राता मंत्री कीका और उसकी स्त्री भोली के कल्याणार्थ श्री पद्मप्रभबिंब को वि० सं० १५२० आषाढ़ शु० १ बुधवार को शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठित करवाया ।[4]

श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ श्री लूणसिंहवसहिकाख्य श्री नेमिनाथ-जिनालय में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि-कार्य

श्रेष्ठि महण

श्री लूणवसतिकाख्य (लूणवसहि) श्री नेमिनाथ-जिनालय की देवकुलिका में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वीजड़ की[5]

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ६२[1]
'महं भाण' इस लेख से प्रतीत होता है विमलवसति के मूलनिर्माता महामात्य दंडनायक विमलशाह का वंशज है ।
अ० प्रा० जै० ले० सं० भा २ ले० १७,[2] १६,[3] ६,[4] ३१६[5]

धर्मपत्नी मोटीवाई के पुत्र महण नामक ने अपने माता, पिता के कल्याणार्थ श्री नेमिनाथ भ० की मूर्त्ति श्रीमद् माणिकसूरि के पट्टधर श्रीमान् देवसूरि के कर-कमलों से प्रतिष्ठित करवाई।

श्रेष्ठि झांझण और खेटसिंह

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-जिनालय की छब्बीसवीं देवकुलिका में हणाद्रावासी प्राग्वाटज्ञातीय शाह घोना की स्त्री हमीरदेवी के पुत्र शा० झांझण और खेटसिंह ने अपने पिता, माता के श्रेय के लिये मू० ना० श्री आदिनाथबिंब को श्रीमद् रामचन्द्रसूरिजी के कर-कमलों से प्रतिष्ठित करवाया।[1]

श्रेष्ठि जेत्रसिंह के भ्रातृगण

वि० सं० १३२१

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-जिनालय में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० ठ० कुंदा की धर्मपत्नी सहजु के पुत्र श्रे० भुवन, धनसिंह और गोसल ने अपने भ्राता जेत्रसिंह के श्रेय के लिये श्री नेमिनाथबिंब की वि० सं० १३२१ फाल्गुण शु० २ को श्रीमलधारी श्रीमद् प्रभाणंदसूरिजी के कर-कमलों से प्रतिष्ठा करवाई।[2]

श्रेष्ठि आसपाल

वि० सं० १३३५

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में आरासणवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० गोनासंतानीय श्रे० आमिग की पत्नी रत्नादेवी के तुलहारि, आसदेव नामक दो पुत्र थे। आमिग के भ्राता श्रेष्ठि पासड़ के पुत्र श्रीपाल तथा श्रे० आसदेव की स्त्री सहजूदेवी के पुत्र आसपाल ने भ्रा० धरणि भार्या श्रीमती तथा स्वस्त्री आसिरिण और पुत्र लिंबदेव, हरिपाल तथा श्रे० धरणि की स्त्री श्रीमती के पुत्र ऊदा की स्त्री पाल्हणदेवी आदि कुटुम्बसहित संविज्ञ-विहारी श्री चक्रेश्वरसूरिसन्तानीय श्री जयसिंहसूरिशिष्य श्री सोमप्रभसूरिशिष्य श्री वर्धमानसूरि के द्वारा श्री मुनिसुव्रत-स्वामीबिंब को अश्वावबोधशमलिकाविहारतीर्थोद्धारसहित वि० सं० १३३५ ज्येष्ठ शु० १४ शुक्रवार को प्रतिष्ठित करवाया।[3]

वंश-वृक्ष

- गोनासन्तानीय श्रे० आमिग [रत्नावती]
  - तुलहारि
  - आसदेव [सहजूदेवी]
    - आसपाल [आसिरिण]
      - लिंबदेव
      - हरिपाल
    - धरणि [श्रीमती]
      - ऊदा [पाल्हणदेवी]
- पासड़
  - श्रीपाल

[1]अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३२४,[1] २५३।[2] २६७[3]

श्रेष्ठि पूपा और कोला

वि० सं० १३७६

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में नंदिग्रामवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे०······सिंह के पुत्र पूपा और कोला ने श्री पार्श्वनाथबिंब को वि० सं० १३७६ वैशाख के शुक्लपक्ष में प्रतिष्ठित करवाया ।१

श्रा० रूपी

वि० सं० १५१५

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय के गूढ़मण्डप में अर्बुदाचलस्थ श्री देलवाड़ाग्रामवासी प्राग्वाट-ज्ञातीय व्य० झाँटा की स्त्री वन्ही की पुत्री रूपी नामा श्राविका ने, जो व्य० वाघा की स्त्री थी अपने भ्राता व्य० आल्हा, पाचा तथा व्य० आल्हा के पुत्र व्य० लाखा और लाखा की पत्नी देवी तथा देवी के पुत्र खीमराज, मोकल आदि पितृकुटुम्बसहित वि० सं० १५१५ माघ कृ० ८ गुरुवार को तपागच्छीय श्री सोमसुन्दरसूरि के शिष्य श्री मुनिसुन्दरसूरि के पट्टधर श्री जयचन्द्रसूरि के शिष्य श्रीमद् रत्नशेखरसूरि के द्वारा श्री राजिमती की बहुत ही भव्य, बड़ी और खड़ी प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया । श्रीमद् रत्नशेखरसूरि के संग में उनके परिवार के अन्य आचार्य श्रीमद् उदयनंदिसूरि, श्री लक्ष्मीसागरसूरि, श्री सोमदेवसूरि और श्रीमद् हेमदेवसूरि आदि भी थे ।२

श्रेष्ठि डूङ्गर

वि० सं० १५२५

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में वि० सं० १५२५ वैशाख शु० ६ को प्राग्वाटज्ञातीय शाह लीला की स्त्री धोघरी के पुत्र शाह डूँगर ने अपनी स्त्री देवलदेवी तथा पुत्र देठा आदि के सहित श्री सुविधिनाथ भगवान् की धातु की छोटी पंचतीर्थी-प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया, जिसकी प्रतिष्ठा जैनाचार्य श्रीसूरि के द्वारा सीरोहड़ी नामक ग्राम में हुई थी ।३

श्रेष्ठि चांडसी

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० चांडसी ने भगवान् नेमिनाथ की सपरिकर बड़ी प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई ।४

महं० वस्तराज

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में प्राग्वाटज्ञातीय मं० सिरपाल की स्त्री संसारदेवी के पुत्र महं० वस्तराज ने अपनी माता के श्रेय के लिये श्री पार्श्वनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया ।५

श्रेष्ठि पोपा

श्री लूणवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय की आठवीं देवकुलिका प्राग्वाटज्ञातीय व्य० पोपा ने अपने श्रेय के लिये अपने पुत्र लापा के सहित प्रतिष्ठित करवाई ।६

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३७६,[1] २५५ ।[2] २५७,[3] ४०६ ।[4] २८८,[5] ३०८[6]

श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ श्री भीमसिंहवसहिकाख्य श्री पित्तलहर-आदिनाथ-जिनालय में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि कार्य

श्रीअर्बुदाचलस्थ श्रीभीमसिंहवसहिकाख्य श्री पित्तलहर-आदिनाथ-जिनालय को वि० सं० १५२५ फाल्गुण शु० ७ शनिश्चर रोहणी नक्षत्र में देवड़ा राजधर सायर श्री डूंगरसिंह के विजयीराज्य में गूर्जरज्ञातीय शाह भीमसिंह ने बनवाया था। इस मन्दिर में प्राग्वाटज्ञातीय बन्धुओं द्वारा पूर्व प्रतिष्ठित बिंब निम्नवत् विद्यमान हैं।

श्रेष्ठि देपाल
वि० सं० १४२०

गूढ़मण्डप में श्रीआदिनाथ भ० की छोटी एकतीर्थी-धातु-प्रतिमा विराजित है। इस बिंब को वि० सं० १४२० वैशाख शु० १० शुक्रवार को प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० लींबा की स्त्री देवलदेवी के पुत्र देपाल ने अपने माता, पिता और भ्राता के श्रेय के लिये पिप्पलीय श्रीवीरदेवसूरि के द्वारा प्रतिष्ठित करवाया था।[१]

श्रा० रूपादेवी
वि० सं० १४२३

गूढ़मण्डप में श्रीसुमतिनाथ भ० की छोटी एकतीर्थी-धातु-प्रतिमा विराजित है। इस बिंब को वि० सं० १४२३ मार्गशिर कृ० ८ बुधवार को प्राग्वाटज्ञातीय थिरपाल की पत्नी सल्हणदेवी की पुत्री रूपादेवी ने अपने आत्म-कल्याण के लिये श्री गूदा० (गुंदोचीया ?) श्री रत्नप्रभसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित करवाया था।[२]

श्रेष्ठि कालू
वि० सं० १४३६

गूढ़मण्डप में श्री पद्मप्रभ भ० की छोटी एकतीर्थी-धातु-प्रतिमा विराजित है। इस बिंब को वि० सं० १४३६ पौष कृ० ६ रविवार को प्राग्वाटज्ञातीय व्यापारी सोहड़ के पुत्र जाणा की पत्नी अनुपमादेवी के पुत्र कालू ने अपने समस्त पूर्वजों के श्रेय के लिये साधुपूर्णिमागच्छीय श्री धर्मतिलकसूरि के उपदेश से प्रतिष्ठित करवाया था।[३]

श्रेष्ठि सिंहा और रत्ना
वि० सं० १५२५

राजमान्य मंत्री सुन्दर और गदा ने वि० सं० १५२५ फाल्गुण शु० ७ शनिश्चर को १०८ मण प्रमाण धातु की प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव की सपरिकर दो नवीन प्रतिमायें पाटण, अहमदाबाद, खंभात, ईडर आदि अनेक ग्राम, नगरों के संघों के साथ में श्रीचतुर्विधसंघ निकाल कर श्री अर्बुदाचलतीर्थ के श्री भीमवसहिकाख्य श्री पित्तलहर-आदिनाथ-जिनालय के गूढ़मण्डप में तपागच्छीय श्री लक्ष्मीसागरसूरि के कर-कमलों से महामहोत्सव पूर्वक प्रतिष्ठित करवाई थी।

श्री भीमवसतिका का निर्माण वि० सं० १५२५ में हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि उपरोक्त तीनों बिंबों की स्थापन किसी संवत् में पीछे से की गई है।
अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४२४,[१] ४२३,[२] ४२५[३]



अर्बुदगिरिस्थ पित्तलहरवसहि (भीमवसहि): जैनबंधुओं के अद्भुत प्रभुप्रेम को प्रकट सिद्ध करनेवाली भगवान् आदिनाथ को मण १०८ (प्राचीन तोल) की पंचधातुमयी पित्तलप्रतिमा। देखिये पृ० ३०२ पर। (प्राग्वाट-इतिहास के उद्देश्य के बाहर है, परन्तु पाठकों की भक्ति एवं शिल्पपरायणा अभिरुचि को दृष्टि में रख कर यह प्रतिमाचित्र दिया गया है।)



अर्बुदगिरिस्थ श्री खरतरवसहि:- अद्भुत भावनाट्यपूर्णा पांच नृत्यपरायणा वराङ्गनाओं के शिल्पचित्र। (प्राग्वाट-इतिहास के उद्देश्य के बाहर है; परन्तु पाठकों की शिल्पपरायणा अभिरुचि को दृष्टि में रख कर शिल्प के ये उत्तम चित्र दिये गये हैं।)

सीरोड़ीग्रामवासी प्राग्वाटज्ञातीय व्य० पोदा के पुत्र मण्डन की स्त्री वजूदेवी के तीन पुत्र सजन, सिंहा, और रत्ना थे। सजन के फाँफू और वयजूदेवी नामा दो स्त्रियाँ थीं और दूदा नामा पुत्री थी। सिंहा की पत्नी अचूँ के गांगा, चांदा और टील्हा नामक तीन पुत्र थे। रत्ना की स्त्री राजलदेवी के भी सन्तान हुई थी। उसी दिन उपरोक्त समस्त कुटुम्बीजनादि मोटा परिवार युक्त व्य० सिंहा और रत्ना ने श्री तपागच्छीय सोमदेवसूरिजी के उपदेश से पंचतीर्थीमयपरिकरयुक्त श्वेत संगमरमरप्रस्तर का श्री आदिनाथ भ० का मोटा और मनोहर बिंब करवाया, जिसको तपागच्छनायक श्री सोमसुन्दरसूरिजी के पट्टधर श्री मुनिसुन्दरसूरिजी के पट्टधर श्री जयचन्द्रसूरिजी के पट्टधर श्री रत्नशेखरसूरिजी के पट्टधर श्रीलक्ष्मीसागरसूरिजी ने श्री सुधानन्दसूरि, श्री सोमजयसूरि, महोपाध्याय श्रीजिनसोमगणि प्रमुख परिवार से युक्त प्रतिष्ठित किया।[1]

श्रेष्ठि सूदा और मदा

वि० सं० १५३१

मालवदेशीय नवासियाग्रामवासी प्राग्वाटज्ञातीय जिनेश्वरदेव के परमभक्त ज्ञातिशृङ्गार शाह सरवण की पत्नी पद्मादेवी के भुंभच, सूदा, मदा और हांसा नामक चार पुत्र थे। ज्ये० पुत्र भुंभच की पदू नामा स्त्री थी। द्वितीय पुत्र शाह सूदा की रमादेवी नामा धर्मपत्नी थी और उसके ताना, सहजा और पाल्हा नामक तीन पुत्र थे। तृतीय पुत्र मदा के नाई और जइतूदेवी नामा दो स्त्रियाँ थीं। चतुर्थ पुत्र हंसराज की धर्मपत्नी हंसादेवी नामा थी। श्री अर्बुदाचलस्थ भीमसिंहवसतिकाख्य श्री पित्तलहर-आदिनाथ-जिनालय के नवचतुष्क के बांयी पक्ष पर वि० सं० १५३१ ज्ये० शु० ३ गुरुवार को शाह सूदा और मदा ने अपने उपरोक्त समस्त कुटुम्ब सहित अपनी माता श्राविका पद्मीदेवी (पद्मादेवी) के श्रेय के लिये आलयस्था देवकुलिका करवाई और उसमें तपागच्छनायक श्री लक्ष्मीसागरसूरिजी के कर-कमलों से श्री सुमतिनाथ भ० की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाई।[2]

वंशवृक्ष

शाह सरवण [पद्मादेवी]

भुंभच [पदूदेवी] | सूदा [रमादेवी] | मदा [१ नाई २ जइतू] | हांसा [हांसू]

सूदा [रमादेवी] — ताना | सहजा | पाल्हा

सं० भड़ा और मेला

वि० सं० १५३१

उपरोक्त मन्दिर के नव चतुष्क के दायें पक्ष पर उपरोक्त दिवस पर ही मालवदेशीय सीणराग्रामवासी प्राग्वाटज्ञातीय शाह गुणपाल की पत्नी रांऊ के संघवी लींबा, सं. भड़ा और सं. मेला नामक तीन पुत्र रत्नों में से सं. भड़ा और मेला ने

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४१८, ४१९। ४२८ । ४२९ ।

ने सं० लींवा की स्त्री लीलादेवी, उसके ज्ये० पुत्र वडुआ और वडुआ की स्त्री जशदेवी, द्वितीय पुत्र कडुआ और उसकी स्त्री देक; संघवी भड़ा और उसकी पत्नी वीरिणी और जीविणी, जीविणी के पुत्र उदयसिंह और उसकी स्त्री चन्द्रावलीदेवी और चन्द्रावलीदेवी के पुत्र रत्ना तथा तृतीय भ्राता मेला और मेला की प्र० स्त्री शांतिदेवी और द्वि० स्त्री वारु और वारु के पुत्र घाहरु आदि परिजनों के सहित पुष्कल द्रव्य व्यय करके आलयस्था देवकुलिका बनवा कर, उसमें तपागच्छीय श्री लक्ष्मीसागरसूरिजी के कर-कमलों से श्री सुमतिनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।

वंशवृक्ष

सीणराग्रामवासी शाह गुणपाल [रांऊ]

सं० लींवा [लीलादेवी] — सं० भड़ा [१ वीरिणी २ जीविणी] — सं० मेला [१ शांतिदेवी २ वारूदेवी]

सं० लींवा [लीलादेवी]: वडुआ [जशदेवी], कडुवा [देक]

सं० भड़ा: उदयसिंह [चन्द्रावलीदेवी] → रत्ना

सं० मेला: घाहरू

श्री आरासणपुरतीर्थ अपरनाम श्री कुम्भारियातीर्थ और दंडनायक विमलशाह तथा प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि-कार्य

आरासणपुर का वर्तमान नाम कुम्भारिया है। यह अभी केवल ८–१० घरों का ग्राम है और दाता-भगवान-गढ़ (स्टेट) के अन्तर्गत है। यहाँ आरासण नामक प्रस्तर की खान थी; अतः यह आरासणाकर अथवा आरासणपुर कहलाता था। वहाँ अनेक जैनमन्दिर बने हुये थे; अतः यह आरासणतीर्थ के नाम से विख्यात रहा है। अर्बुदपर्वतों में जो प्रसिद्ध अम्बिकादेवी का स्थान है, वहाँ से लगभग १॥ मील के अन्तर पर यह तीर्थ है। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के पूर्व तक तो अम्बावजीतीर्थ और कुम्भारियातीर्थ के जैनमन्दिरों की गणना एक ही आरासणपुर नगर में ही होती थी, परन्तु खिलजी सम्राट् अल्लाउद्दीन के सेनापति उगलखखां और नसरतखां ने वि० सं० १३५४ में जब गूर्जर-सम्राट् कर्ण पर आक्रमण किया था, वे चन्द्रावती राज्य में होकर अणहिलपुर-पत्तन की ओर बढ़े थे। चन्द्रावती उन दिनों भारत की अति समृद्ध एवं वैभवपूर्ण नगरियों में थी और अति प्रसिद्ध जैन श्रीमंत चन्द्रावती में ही बसते थे। यवन-सेनापतियों ने चन्द्रावती को नष्ट-भ्रष्ट किया और चन्द्रावती-राज्य के समस्त शोभित एवं समृद्ध स्थानों को उजाड़ा। इसी समय आरासणपुरतीर्थ भी उनके निष्ठुर प्रहारों का लक्ष्य बना। आरासणपुर उजड़ गया और फिर नहीं बस पाया। इस प्रकार अम्बावजीतीर्थ और कुम्भारियाग्राम के बीच फिर आबादी नहीं बढ़ने के कारण अलगाव पड़ गया, वस्तुतः दोनों तीर्थ एक ही आरासणपुर के अन्तर्गत रहे हैं।

गूर्जर-महाबलाधिकारी दंडनायक विमलशाह ने जब चन्द्रावती के राज्य को जीता था, उसको पुष्कल द्रव्य प्राप्त हुआ था। इतना ही नहीं आरासणपुर के निकट के पर्वतों में सुवर्ण की अनेक खानें भी थीं। उसने उन खानों से प्रचुर मात्रा में सुवर्ण निकलवाया और अनेक धर्मस्थानों में उसका व्यय किया। ऐसा कहा जाता है कि विमलशाह ने आरासणपुरतीर्थ में ३६० तीन सौ साठ जिनमन्दिर बनवाये थे। खैर इतने नहीं भी बने हों, परन्तु यह तो निश्चित है कि आरासणपुर के जैनमंदिरों के निर्माण के समय दण्डनायक विमलशाह विद्यमान था। आरासणपुर अर्थात् कुम्भारियातीर्थ के वर्तमान जैनमन्दिर जो संख्या में पाँच हैं, कोराई और कारीगरी में अर्बुदाचलस्थ विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय की बनावट से बहुत अंशों में मिलते हैं। स्तम्भों की बनावट, गुम्बजों की रचना, छत्त में की गई कलाकृतियाँ, पट्टों एवं शिलापट्टियों पर उत्कीर्णित चित्र दोनों स्थानों के अधिकतर आकार-प्रकार एवं वास्तु-दृष्टि से मिलते-से हैं। कुम्भारियातीर्थ के मन्दिरों में विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के कई एक लेख भी हैं। इन कारणों से अधिक यही सम्भावित होता है कि इनका निर्माता सम्भवतः दण्डनायक विमलशाह ही है। इतना अवश्य है कि कुम्भारियातीर्थ के मन्दिरों का निर्माण और उनकी प्रतिष्ठा सम्भवतः विमलवसति के निर्माण और उसकी प्रतिष्ठा के पश्चात् हुई है।

इस समय कुम्भारिया में १ श्री नेमिनाथ-जिनालय, २ श्री पार्श्वनाथ-जिनालय, ३ श्री महावीर-जिनालय, ४ श्री शान्तिनाथ-जिनालय और ५ श्री सम्भवनाथ-जिनालय है। प्रथम चार जिनालय तो अति विशाल और चौवीस देवकुलिकायुक्त हैं और कलादृष्टि से विमलवसति और लूणवसति से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। पाँचवा जिनालय छोटा है। पांचों जिनालय उत्तराभिमुख हैं।

प्रा० जै० ले० सं० भा० २ का अनुवादविभाग पृ० १६५ से १८४

श्री कुम्भारियाजी उर्फे आरासण (जयंतविजयजीलिखित)

ता० २१-६-५१ को मैंने श्रीकुम्भारियाजीतीर्थ की यात्रा की थी और वहाँ के कतिपय लेखों को शब्दान्तरित किया था। उनके आधार पर उक्त वर्णन दिया गया है।

(अ) *श्री महावीरजिनालय के मू०ना० प्रतिमा के शासनपट्ट का लेख*

'ॐ ।। संवत् १११८ फाल्गुन सुदी ६ सोमे । आरासणाभिधाने स्थाने तीर्थाधिपस्य प्रतिमा कारिता'

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० २

(ब) *श्री शांतिनाथ-जिनालय के एक प्रतिमा का लेख*

'ॐ ।। संवत् ११३८ पौष (?) वल्लभदेवीसुतेन पौरकश्रावकेन श्रेयांसजिनप्रतिमा कारिता ।।'

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ४

(स) *श्री पार्श्वनाथ-जिनालय की एक प्रतिमा के आसनपट्ट का लेख,*

।। 'संवत् ११६१ थिरापद्रीयगच्छे श्री शीतलनाथबिंबं (कारितं)' ।।

(द) *श्री नेमिनाथजिनालय की एक प्रतिमा का लेख*

'संवत् ११६१ वर्षे.................................,

जबकि अर्बुदाचलस्थ विमलवसति की प्रतिष्ठा वि० सं० १०८८ में हुई है और उसमें आरासणपुर की खान का प्रस्तर लगा है; अतः यह बहुत संभवित है कि आरासणपुर के जैनमंदिरों में विमलशाह के ही अधिकतम बनवाये हुये मंदिर हों, क्योंकि वह अनन्त धनी और प्रभुप्रतिमा का अनन्य भक्त था।

प्राग्वाटज्ञातीयवंशावतंस चैत्यनिर्माता श्रे० वाहड़ और उसका वंश

विं० शताब्दी तेरहवीं और चौदहवीं

श्रेष्ठि बाहड़ के पुत्र ब्रह्मदेव और शरणदेव

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में प्रा० ज्ञा० श्रे० वाहड़ एक अति प्रसिद्ध एवं धार्मिकवृत्ति का सद्पुरुष हो गया है। उसने श्रीमद् जिनभद्रसूरि के सदुपदेश से पादपरा (संभवतः बड़ोदा के पास में आया हुआ पादराग्राम) ग्राम में उदेरवसहिका (?) नामक श्री महावीरस्वामी का मन्दिर बनवाया।

श्रे० वाहड़ के ब्रह्मदेव और शरणदेव नामक दो पुत्र थे। श्रे० ब्रह्मदेव ने वि० सं० १२७५ में श्री आरासणाकर में श्री नेमिनाथचैत्यालय में दाढ़ाधर बनवाया।

श्रे० शरणदेव का विवाह सूहवदेवी नामा परम गुणवती कन्या के साथ हुआ था। सूहवदेवी की कुक्षी से वीरचन्द्र, पासड़, आंवड़ और रावण नामक चार पुत्र हुये थे। इन्होंने श्रीमद् परमानन्दसूरि के सदुपदेश से सं०१३१० में एक सौ सित्तर जिनबिंबवाला जिनशिलापट्ट (सप्ततिशततीर्थजिनपट्ट) प्रतिष्ठित करवाया। वि० सं० १३३८ में इन्होंने इन्हीं आचार्य के सदुपदेश से श्रे० वीरचंद्र की स्त्री सुखमिणी और उसका पुत्र पूना और पूना की स्त्री सोहग तथा सोहगदेवी के पुत्र लूणा और झांझण; श्रे० आंवड़ की स्त्री अभयश्री और उसके पुत्र बीजा और खेता; रावण की स्त्री हीरादेवी और उसके पुत्र बोड़सिंह और उसकी प्रथम स्त्री कमलादेवी के पुत्र कडुआ और उसकी द्वितीया स्त्री जयतलदेवी के पुत्र देवपाल, कुमारपाल, अरिसिंह और पुत्री नागउरदेवी आदि कुटुम्बीजनों के सहित श्री नेमिनाथचैत्यालय में श्री वासुपूज्य-देवकुलिका को प्रतिष्ठित करवायी तथा वि० सं० १३४५ में इन्होंने सम्मेतशिखरतीर्थ में मुख्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई और मोटे २ तीर्थों की यात्रा करके अपने जन्म को इस प्रकार अनेक धर्म के सुकृत्य करके सफल किया। ये आज भी पोसीना नामक ग्राम में जो कुम्भारिया से थोड़े ही अन्तर पर रोहिड़ा के पास में है श्री संघ द्वारा पूजे जाते हैं।

वंश-वृक्ष

- वाहड़
  - ब्रह्मदेव
  - शरणदेव [सुहवदेवी]
    - वीरचन्द्र [सुखमिणी]
      - पूना [सोहगदेवी]
        - लूणा
        - झांझण
    - पासड़
    - आंवड़ [अभयश्री]
      - बीजा
      - खेता
    - रावण [हीरादेवी]
      - बोड़सिंह [१कमला २जयतलदेवी]
        - कडुआ (१)
        - देवपाल (२)
        - कुमारपाल (२)
        - अरिसिंह (२)
        - नागउरदेवी (२)

जै० ले० सं० भा० २ ले० १७६५। प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २७६, २६०। अ०प्र०जै०ले०सं० ले० ३०, ३२.

श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में

श्रेष्ठि आसपाल

वि० सं० १३१०

वि० सम्वत् १३१० वैशाख कृ० ५ गुरुवार को प्रा०ज्ञा० श्रे० वील्हण और माता रूपिणीदेवी के श्रेयार्थ पुत्र आसपाल ने सिद्धपाल, पद्मसिंह के सहित आरासणनगर में श्री अरिष्टनेमिजिनालय के मण्डप में श्री चन्द्रगच्छीय श्री परमानन्दसूरि के शिष्य श्रीरत्नप्रभसूरि के सदुपदेश से एक स्तंभ की रचना करवाई।[1]

श्रेष्ठि वीरभद्र के पुत्र-पौत्र

वि० सं० १३१४

वि० सं० १३१४ ज्येष्ठ शु० २ सोमवार को आरासणपुर में विनिर्मित श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में बृहद्गच्छीय श्री शान्तिसूरि के शिष्य श्री रत्नप्रभसूरि श्रीहरिभद्रसूरि के शिष्य श्रीपरमानन्दसूरि के द्वारा प्रा०ज्ञा० श्राविका रूपिणी के पुत्र वीरभद्र स्त्री सिद्धिदेवी, सुविदा स्त्री सहजू के पुत्र-पौत्रों ने रत्नीणी, सुपमिनी, प्रा० श्रे० चांदा स्त्री आसमती के पुत्र अमृतसिंह स्त्री राजल और लघुभ्राता आदि परिजनों के श्रेयार्थ श्री अजितनाथ-कायोत्सर्गस्थ-दो प्रतिमा करवाई।[2]

श्रेष्ठि अजयसिंह

वि० सं० १३३५

वि० सम्वत् १३३५ माघ शु० १३ शुक्रवार को प्रा०ज्ञा० श्रे० सोमा की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र श्रे० अजयसिंह ने अपने पिता, माता, भ्राता और अपने स्वकल्याण के लिये भ्राता छाड़ा और सोढ़ा तथा कुल की स्त्रियाँ वस्तिणी, राजुल, छापू, घांघलदेवी, सुहड़ादेवी और उनके पुत्र वरदेव, झांझण, आसा, कडुआ, गुणपाल, पेथा आदि समस्त कुटुम्बीजनों के सहित बृहद्गच्छीय श्री हरिभद्रसूरि के शिष्य श्री परमानन्दसूरि के द्वारा नेमिनाथ-जिनालय में देवकुलिका विनिर्मित करवाकर उसमें श्री अजितनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।[3]

श्रेष्ठि आसपाल

वि० सं० १३३८

आरासणाकरवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० गोना के वंश में श्रे० आमिग हुआ। आमिग की स्त्री रत्नदेवी थी। रत्नदेवी* के तुलाहारि और आसदेव दो पुत्र थे। आमिग के भ्राता पासड़ का पुत्र श्रीपाल था। आसदेव की स्त्री का नाम सहजूदेवी था। श्रे० आसदेव के आसपाल और धरणिग दो पुत्र थे। श्रे० आसपाल ने स्वस्त्री आशिणी, स्वपुत्र लिंबदेव, हरिपाल तथा भ्राता धरणिग के कुटुम्ब के सहित श्री मुनिसुव्रतस्वामीबिंब अश्वावबोधशमलिका-विहारतीर्थोद्धारसहित करवाकर वि० सम्वत् १३३८ ज्येष्ठ शु० १४ शुक्रवार को श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में संविग्नविहारि श्री चक्रेश्वरसूरिसंतानीय श्री जयसिंहसूरि के शिष्य श्री सोमप्रभसूरि के शिष्य श्री वर्द्धमानसूरि के द्वारा प्रतिष्ठित करवाया। इस आसपाल ने अपने और अपने भ्राता के समस्त कुटुम्ब के सहित श्री अर्बुदगिरितीर्थस्थ

अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० [1] २५, [2] २६, [3] २८

*अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० २१ और अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २६७ में वर्णित वंश एक ही है।

श्री लूणसिंहवसति की एक कुलिका में वि० सं० १३३५ ज्ये० शु० १४ शुक्र को श्री मुनिसुव्रतस्वामीबिंब को भी आश्वावबोधशमलिकाविहारतीर्थोद्धारसहित इन्हीं आचार्य के द्वारा प्रतिष्ठित करवाया था, जिसका उल्लेख पूर्व हो चुका है।

श्रेष्ठि कुलचन्द्र

नंदिग्राम के रहने वाले प्रा० ज्ञा० महं० वरदेव के संभवतः पौत्र दुल्हेवी के पुत्र आरासणाकर नगर में रहने वाले श्रे० कुलचन्द्र ने स्वभ्राता रावण और उसके पुत्र पासल और पोहड़ी, भ्रातृजाया पुनादेवी के पुत्र वीरा और पाहड़, पाहड़ के पुत्र जसदेव, सुल्हण, पासु और पासु के पुत्र पारस, पासदेव, शोभनदेव, जगदेव आदि तथा वीरा के पुत्र काहड़ और आम्रदेव आदि अपने गोत्र और कुटुम्ब के जनों के संतोष के निमित्त तथा ग्राम के कल्याण के लिये श्री नेमिनाथ-चैत्यालय में श्रीसुपार्श्वनाथ भ० का बिंब भरवा कर प्रतिष्ठित करवाया।[१]

श्री जीरापल्लीतीर्थ-पार्श्वनाथ-जिनालय में

●

प्राग्वाटान्वयमण्डन श्रे० खेतसिंह और उसका यशस्वी परिवार

वि० सं० १४८१

राजस्थानान्तर्गत सिरोही-राज्य में जीरापल्लीतीर्थ एक अति प्रसिद्ध जैनतीर्थ है। इस तीर्थ की विक्रम की पन्द्रहवीं, सौलहवीं शताब्दी में बड़ी ही जाहोजलाली रही है। तीर्थ का विश्रुत नाम श्री जीरावला-पार्श्वनाथ-बावनजिनालय है।

विशलनगरवासी प्राग्वाटवंश को सुशोभित करने वाले श्रे० खेतसिंह के पुत्र श्रे० देहलसिंह के पुत्र श्रे० खोखा की भार्या पिंगलदेवी और उसके पुत्र सं० सादा, सं० हादा, सं० मादा, सं० लाखा, सं० सिधा ने इस तीर्थ के बावन-जिनालय में तीन देवकुलिकायें क्रमशः २, ३, ४ बनवाईं और सं० १४८१ वै० शु० ३ के दिन बृहत्तपापक्षीय भट्टारक श्री रत्नाकरसूरि के अनुक्रम से हुये श्री अभयसिंहसूरि के पट्टारूढ़ श्री जयतिलकसूरीश्वर के पाट को अलंकृत करने वाले भट्टारक श्री रत्नसिंहसूरि के सदुपदेश से महामहोत्सव पूर्वक उनकी प्रतिष्ठा करवाई।[२]

१–अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ४१

२–जै० प्र० ले० सं० ले० २७४, २७५, २७६.

श्री पूर्णचन्द्रजी नाहर एम० ए० बी० एस० द्वारा संग्रहीत 'जैन लेख-संग्रह' प्रथम भाग के लेखांक ८७७ से उक्त तीनों लेखांक बहुत अधिक मिलते हैं। श्री नाहरजी ने 'पिंगलदेवी' के स्थान पर 'पिनलदेवी,' 'सं० मादा' के स्थान पर 'सं० मूदा' और 'देहल,' 'हादा' नहीं लिख कर स्पष्ट 'देवल' और 'दादा' लिखा है और सं० 'लाखा' का नाम भी नहीं है।

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० १२६, १२७, १२८ में उक्त तीनों लेख प्रकाशित हैं। परन्तु उनमें 'देहल' के स्थान पर 'देदल,' 'पींगलदेवी' के स्थान पर 'पीतलदेवी,' सं० 'हादा' के स्थान पर 'हीदा,' 'मादा' के स्थान पर 'सुद्री' और 'सिधा' के स्थान पर 'सिहा' लिखा है।

श्रे० जामद की पत्नी

वि० सं० १४८७

सं० १४८७ पौ० शु० २ रविवार को अंचलगच्छीय श्रीमद् मेरुतुङ्गसूरि के पट्टधर गच्छनायक श्री जयकीर्त्तिसूरि के उपदेश से पुंगलनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० भाणा* के पुत्र श्रे० जामद की पत्नी ने देवकुलिका विनिर्मित करवाकर प्रतिष्ठित करवाई ।[१]

श्रे० भीमराज, खीमचन्द्र

वि० सं० १४८७

सं० १४८७ पौ० शु० २ रविवार को तपागच्छीय श्री देवसुन्दरसूरि के पट्टधर श्री सोमसुन्दरसूरि श्रीमुनिसुन्दरसूरि श्री जयचन्द्रसूरि श्री भुवनसुन्दरसूरि श्री जिनचन्द्रसूरि के उपदेश से पत्तनवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० लाला के पुत्र श्रे० नत्थमल, मेघराज‡ के पुत्र भीमराज, खीमचन्द्र ने अपने कल्याणार्थ देवकुलिका विनिर्मित करवाकर प्रतिष्ठित करवाई ।[२]

श्री धरणविहार-राणकपुरतीर्थ-श्रीत्रैलोक्यप्रासाद-श्रीआदिनाथ-जिनालय में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि कार्य

सं० भीमा

वि० सं० १५०७

संघवी चापा और संघवी साजण दो भाई थे। सं० चापा ने उक्त प्रासाद में नैऋत्यकोण में सशिखर महाधर-देवकुलिका बनवाई थी। सं० साजण की भार्या श्रीदेवी का पुत्र सं० भीमा बड़ा यशस्वी हुआ है। सं० भीमा से सं० लक्ष्मण और सारंग दो बड़े भाई और थे। सं० भीमा के तीन स्त्रियाँ थीं—भीमिणी, नानलदेवी और पउमादेवी और यशवंत नामक पुत्र था। भीमा ने अपने काका द्वारा विनिर्मित नैऋत्यकोण की महाधर-देवकुलिका में श्री रत्नशेखरसूरि द्वारा वि० सं० १५०७ चैत्र कृ० ५ को निम्नवत् बिंबादि प्रतिष्ठित करवा कर स्थापित किये।

१—पूर्वाभिमुख श्री महावीरबिंब का परिकर

२—अपने चाचा चांपा के श्रेयार्थ उत्तराभिमुख श्री अजितनाथबिंब। इस प्रतिमा का परिकर भी वि० सं० १५११ आषाढ़ शु० २ को श्री रत्नशेखरसूरि के द्वारा ही प्रतिष्ठित करवाया गया था।[†]

१-२—जै० प्र० ले० सं० ले० २७७, २७८

*प्रा० प्र० जै० ले०सं० के लेखांक १६० में 'भाडा' सुत सा० 'झामट' लिखा है और १६१ में लेखांक २७८ भी लिखित है।

‡मेघराज के एक पुत्र रामचन्द्र का होना उसमें और पाया जाता है।

†सन् १६५० के जून के द्वितीय सप्ताह में मैं श्री राणकपुरतीर्थ का अवलोकन श्रीप्राग्वाट-इतिहास की रचना के सम्बन्ध में करने के लिये गया था तथा वहाँ ४ दिवस पर्यंत ठहर कर जो वहाँ के लेख शब्दान्तरित कर लाया उनके आधार पर उक्त वर्णन है। —लेखक

३—वायव्यकोण में विनिर्मित शिखरबद्ध महाधर—देवकुलिका में श्री सीमंधरस्वामीबिंब को स्वस्त्री चउसादेवी, पुत्र यशवंत और भ्रातृगण तथा भ्रातृजों के सहित पूर्वाभिमुख प्रतिष्ठित करवाया।

श्रेष्ठि रामा

वि० सं० १५०१

वि० सं० १५०१ ज्ये० शु० १० को प्रा०ज्ञा० श्रे० करण के पुत्र रामा ने तपा० श्री मुनिसुन्दरसूरि के कर-कमलों से श्री सुमतिनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।

श्रेष्ठि पर्वत और सारंग

वि० सं० १५११

वि० सं० १५११ मार्ग शु० ५ रविवार को देवकुलपाटकवासी प्रा०ज्ञा० सा० रामसिंह भार्या रत्नादेवी के पुत्र सा० जयसिंह भार्या मेघवती के पुत्र अमरसिंह भार्या श्रीदेवी के पुत्र पर्वत ने स्वस्त्री, पुत्री फली, भ्रातृ सा० माला, रामदास और रामदास की पुत्री राणी आदि कुटुम्बियों के सहित तथा राणीदेवी के पुत्र खोगहड़ावासी सा० हीरा स्त्री आल्हणदेवी के पुत्र सा० सारंग ने पुत्री श्री फली के श्रेयार्थ श्री धरणविहार-चतुर्मुखप्रासाद में पश्चिमप्रतोली के द्वार पर मुख्य देवकुलिका करवा कर उसकी प्रतिष्ठा तपा० श्री रत्नशेखरसूरि के द्वारा करवाई।

सं० कीता

वि० सं० १५१६

वि० सं० १५१६ वैशाख कृ० १ को राणकपुरवासी प्रा०ज्ञा० सं० हीरा भार्या वामादेवी के पुत्र सं० कीता ने स्वस्त्री कल्याणदेवी, मटकुदेवी, भ्राता सं० राजा, नरसिंह तथा इनकी स्त्रियाँ गौरीदेवी, नायकदेवी, और पुत्र दूला आदि के सहित श्री मुनिसुव्रतप्रतिमा को श्री रत्नशेखरसूरि के करकमलों से प्रतिष्ठित करवाकर स्वविनिर्मित देवकुलिका में स्थापित करवाई।

सं० धर्मा

वि० सं० १५३६

वि० सं० १५३६ मार्ग शु० ५ शुक्रवार को राणकपुरवासी प्रा०ज्ञा० सं० खेता भार्या खेतलदेवी के पुत्र मण्डन भार्या हीरादेवी के पुत्र धर्मराज ने स्वभार्या सरलादेवी पुत्र माला और माला की स्त्री रणदेवी आदि कुटुम्बियों के सहित जिनबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।

श्रेष्ठि खेतसिंह और नायकसिंह

वि० सं० १६४७

अहमदाबाद के निकट में उसमापुर में प्रा०ज्ञा० श्रे० रायमल रहता था। वह जगद्गुरु श्रीमद् विजयहीरसूरि का भक्त था। वह अति धनाढ्य एवं प्रतिष्ठित पुरुष था। श्रे० रायमल के वरजूदेवी और स्वरूपदेवी नामा दो

वि० सं० १५१६, १५३६ के वर्णनों से सिद्ध है कि राणकपुर में जैनियों के घर उस समय तक बस गये थे।
य० वि० दि० भा० १ पृ० ५६

स्त्रियाँ थीं। वरजूदेवी की कुक्षी से रत्नसिंह और नायकसिंह नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये और स्वरूपदेवी के खेतसिंह पुत्र उत्पन्न हुआ।

वि० सं० १६४७ फाल्गुन शु० ५ गुरुवार को श्री तपागच्छाधिराज, सम्राट्अकबरदत्तजगद्गुरुविरुद-धारक भट्टारक श्री विजयहीरसूरीश्वर के उपदेश से श्री धरणविहारप्रासाद में सुश्रावक सा० खेतसिंह, नायकसिंह ने ज्येष्ठ पुत्र यशवंतसिंह आदि कुटुम्बीजनों के सहित अड़तालीस (४८) स्वर्णमुद्रायें व्यय करके पूर्वाभिमुख द्वार की प्रतोली के ऊपर का भाग विनिर्मित करवाया।

वि० सं० १६५१ वैशाख शु० १३ को उक्त आचार्य श्री के सदुपदेश से ही खेतसिंह और नायकसिंह ने अपने कुटुम्बीजनों के सहित पूर्वाभिमुख द्वार की प्रतोली से लगा हुआ अति विशाल, सुन्दर, एवं सुदृढ़ मेघमण्डप अपने कल्याणार्थ सूत्रधार समल, मांडप और शिवदत्त द्वारा विनिर्मित करवाया।

वि० सं० १६५१ ज्येष्ठ शु० १० शनिश्चर को तपागच्छाधिपति श्रीमद् विजयसेनसूरि के करकमलों से रत्नसिंह और नायकसिंह ने अपने भ्राता सा० खेतसिंह आदि तथा भ्रातृज सा० धरमा आदि कुटुम्बियों के सहित श्री महावीरबिंब को श्री महावीरदेवकुलिका का निर्माण करवा कर उसमें प्रतिष्ठित करवाया।

श्री अचलगढ़स्थ जिनालयों में प्रा०ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि कार्य

श्री चतुर्मुख-आदिनाथ-जिनालय में
श्रेष्ठि दोसी गोविन्द
वि० सं० १५१८

प्राग्वाटज्ञातीय दोसी डूंगर की स्त्री धापुरी के कर्मा, करणा और गोविन्द तीन पुत्र थे। संभवतः श्रे० डूंगर कुम्भलमेर का रहने वाला था। वि० सं० १५१८ वैशाख कृ० ४ शनिश्चर को कुंभलमेरदुर्ग में तपागच्छीय श्री रत्नशेखरसूरि के पट्टधर श्री लक्ष्मीसागरसूरि के द्वारा धातुमय श्री नेमिनाथबिंब की प्रतिष्ठा ज्येष्ठ भ्राता कर्मा की स्त्री करणुदेवी के पुत्र श्राशा, अखा, अदा तथा द्वि० ज्येष्ठ भ्राता करणा की स्त्री कउतिगदेवी के पुत्र सीधर (श्रीधर) तथा स्वभार्या जयतूदेवी और स्वपुत्र वाछा आदि कुटुम्बीजनों के सहित माता तथा भ्राताओं के श्रेयार्थ कुंभलगढ़ के जिनालय में स्थापित करवाने के अर्थ से करवाई।

यह मूर्त्ति चतुर्मुखप्रासाद के सभामण्डप के दांयी ओर की देवकुलिका में मूलनायक के स्थान पर विराजमान है।

श्रेष्ठि वणवीर के पुत्र
वि० सं० १६६८

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में सिरोही (राजस्थान) में प्राग्वाटज्ञातीय वृद्धशाखीय शाह गांगा रहता था। उस समय सिरोही के राजा श्री अखयराज थे और उनके श्री उदयमाण नाम के महाराजकुमार थे। शाह

अ० प्रा० जै० सं० भा० २ ले० ४७५

गांगा का परिवार सम्राट् अकबर द्वारा संमानित जगत्विख्यात तपागच्छेश श्रीमद् हीरविजयसूरिजी के भक्तों में अग्रगण्य था। श्रे० गांगा के मनरंगदेवी नामा धर्मपत्नी थी। मनरंगदेवी के वणवीर नामक पुत्र हुआ। वणवीर की स्त्री का नाम पसादेवी था। पसादेवी के चार पुत्र हुये—सा० राउत, लक्ष्मण, कर्मचन्द्र और दुहिचन्द्र। वणवीर के इन चारों पुत्रों ने श्री अचलगढ़तीर्थ की सपरिवार यात्रा की और वहाँ श्री चतुर्मुखविहाराख्य श्री ऋषभदेवजिनालय में वि० सं० १६६८ पौष शु० १५ गुरुवार को श्रीतपागच्छीय भ० श्री हीरविजयसूरि त० भ० श्रीविजयसेनसूरि त० श्री विजयतिलकसूरि भ० श्री विजयाणंदसूरि के कर-कमलों से पं० श्रीमान्विजयगणि शिष्य उ० श्रीअमृतविजयगणि के सहित पांच जिनेश्वरबिंबों को प्रतिष्ठित करवाये।

श्रे० राउत के साहिबदेवी और नापूग नामा दो स्त्रियाँ थीं। इसके धर्मराज, हांसराज और धनराज नामक तीन पुत्र थे।

श्रे० राउत ने अपने भ्राता लक्ष्मण, कर्मचन्द्र और दुहिचन्द्र के साथ श्री पार्श्वनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया और इसके तृतीय पुत्र सा० धनराज के पुत्र ने श्री कुंथुनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।

श्रे० लक्ष्मण की स्त्री का नाम लक्ष्मीदेवी था। लक्ष्मीदेवी के भीमराज और हरिचन्द्र नामक दो पुत्र थे।

श्रे० लक्ष्मण ने अपने भ्राता राउत, कर्मचन्द्र और दुहिचन्द्र के साथ में शांतिनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया तथा इसके द्वि० पुत्र हरिचन्द्र की स्त्री ने श्री आदिनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।

श्रे० कर्मचन्द्र की स्त्री का नाम अजबदेवी था। अजबदेवी ने श्री नेमिनाथबिंब को प्रतिष्ठित करवाया।*

गांगा [मनरंगदेवी]
|
वणवीर [पसादेवी]
|
राउत [साहिबदेवी, नापूगदेवी] | लक्ष्मण [लक्ष्मीदेवी] | कर्मचन्द्र [अजबदेवी] | दुहिचन्द्र

राउत: धर्मराज | हांसराज | धनराज

लक्ष्मण: भीमराज | हरिचन्द्र

श्री कुंथुनाथजिनालय में

सं० देव के पुत्र-पौत्र

वि० सं० १५२७

यह कुंथुनाथजिनालय श्री अचलगढ़तीर्थ की जैन-पीढ़ी के कार्यालय के पश्चिम में उससे जुड़ती जैनधर्मशाला के ऊपर की मंजिल के दक्षिण पक्ष पर बना है। मंदिर छोटा है, परन्तु चतुर्मुखादिनाथजिनालय से प्राचीन है।

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४७७-७८-७९-८०

वि० सं० १५२७ वैशाख शु० ८ को प्राग्वाटज्ञातीय संघवी देव की स्त्री नागूदेवी के पुत्र संघवी सिंहा और उसकी स्त्री साहीया, शा० कर्मा और उसकी स्त्री धर्मिणी; उनमें से शा० कर्मा के पुत्र शा० सपदा की स्त्री जिसूदेवी की कुक्षि से उत्पन्न पुत्र संघवी खेता और उसकी स्त्री खेतलदेवी; संघवी गोविंद और उसकी स्त्री १ गोगादेवी २ सुहवदेवी, उनमें से संघवी गोविंद का पुत्र शा० सचवीर और उसकी स्त्रियाँ १ पद्मादेवी २ प्रीमलादेवी आदि कुटुम्बीजनों ने श्री कुंथुनाथ भगवान् की धातुमय सुन्दर प्रतिमा भरवाकर श्री तपागच्छाधिपति श्री लक्ष्मीसागरसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाकर उसको शुभ मुहूर्त में यहाँ स्थापित करवाई।

उक्त मूलनायक प्रतिमा का बनाने वाला महेसाणावासी सूत्रधार मिस्त्री देव भार्या करमी के पुत्र मिस्त्री हाजा और काला थे।

निम्न धातुप्रतिमाओं के प्रतिष्ठापक प्रा० ज्ञा० श्रेष्ठि और उनका यथाप्राप्त परिचयः—

प्र. विक्रम संवत्	प्र. प्रतिमा	प्र. आचार्य	प्रतिमाप्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
१–१५२० आ० शु० २	श्री मुनिसुव्रत	त० लक्ष्मीसागरसूरि	चूरावासी प्रा० ज्ञा० व्य० सादा भा० रूपी के पुत्र काजा ने अपनी स्त्री रूपिणी और पुत्र शोभा, देभा, विक्रमादि के सहित.
२–१२९३ फा० कृ० ५ सोमवार	चौवीशी	लेऊअगच्छीय श्री आम्रदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रावदेव के पुत्र मं० देवचन्द्र ने स्त्री अपहव के तथा अपने श्रेयार्थ.
३–१३६८	आदिनाथ	श्री आनंदसूरि-पट्टधर श्री हेमप्रभसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० आसराज की स्त्री पाईण के पुत्र अभय, वीक्रम, गोहण और तेजादि ने पितृश्रेयार्थ.
४–१३७४ ज्ये० शु० १० बुधवार	चौवीशी	श्री सूरि	ठ० ममरपाल के पुत्र ठ० अभयसिंह के श्रेयार्थ पुत्र आमा ने.
५–१३७५ माघ कृ० ११	आदिनाथ	भावदेवसूरि	प्रा० श्रे० सोना ने पिता वीरपाल, माता मूंधी के श्रेयार्थ
६–१३७६ माघ कृ० १२ बुधवार	महावीर	जिनसिंहसूरि	प्रा०श्रे० काला भार्या कपूरदेवी, धना भार्या वलालदेवी ने अपने पिता जशचन्द्र, माता नायकदेवी के श्रेयार्थ.
७–१३७९ वै० कृ० १० सोमवार	शांतिनाथ	अभयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जगपाल भार्या लखादेवी के पुत्र मेघराज ने.
८–१३७९ ज्ये० शु० ८ शनिश्चर	आदिनाथ-पंचतीर्थी	पासदेवसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० जगपाल भार्या सलूजलदेवी के पुत्र ने पिता-माता के श्रेयार्थ.
९–१३८२ वै० कृ० ८ गुरुवार	पार्श्वनाथ	पद्मचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धनपाल भार्या धांधलदेवी की पुत्रवधू चाहिणदेवी ने अपने पति चाचा के श्रेयार्थ.
१०–१३८९ फा० शु० ८ सोमवार	शांतिनाथ	मड़ा० रत्नसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देपाल ने अपने पिता पूनसिंह, माता नयणदेवी के श्रेयार्थ.

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४९१। अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० (१)५०३, (२)५२२, (३)५४०, (४)५४५, (५)५४६, (६)५४७, (७)५४८, (८)५४९, (९)५५१, (१०)५५८,

प्र. विक्रम संवत्	प्र. प्रतिमा	प्र. आचार्य	प्रतिमाप्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
११–१४०० वै० शु० ३ बुधवार	आदिनाथ	माणिक्यसूरि	प्रा०ज्ञा०.................
१२–१४०४ वै० शु० १२	अजितनाथ	सोमसेण (?) सूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० हाना ने पिता के श्रेयार्थ.
१३–१४०६ ज्ये० कृ० ६ रविवार	कुंथुनाथ	साधुपूर्णिमा० जिनसिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लूंपा ने अपने पिता छारा, माता रांभलदेवी के श्रेयार्थ.
१४–१४१४ वै० शु० १०	महावीर	सोमतिलकसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० झांझण ने अपने पिता आशपाल, माता लक्ष्मीदेवी के श्रेयार्थ.
१५–१४२० वै० शु० १० बुधवार	पार्श्वनाथ	मड़ाहड़ीय पूर्णचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सोनपाल ने स्व भा० पूनी सहित पिता कर्मसिंह, माता मान्हणदेवी के श्रेयार्थ.
१६–१४२३ ज्ये० शु० ६ शनिवार	शांतिनाथ	नड़ी० सर्वदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भीमसिंह ने पिता रणसिंह तथा माता के श्रेयार्थ
१७–१४२५ वै० शु० १० बुधवार	पार्श्वनाथ	जयप्रभसूरिपट्टे श्री हेमचंद्रसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० जाला ने अपने पिता तिहुणसिंह, माता मुक्तादेवी के श्रेयार्थ.
१८–१४२६ वै० शु० १० रविवार	शांतिनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राणा ने पिता सहजा, माता सोमलदेवी, काका कुंअर, भ्राता डूँगर आदि के श्रेयार्थ.
१९–१४२९ ज्ये० शु० २ सोमवार	पंचतीर्थी	....	प्रा० ज्ञा० श्रे०.........ने पिता वसारा, माता पूनी के श्रेयार्थ.
२०–१४३६ वै० कृ० ११ मंगलवार	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	रत्नप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राणा ने पिता धनपाल, माता पूजी, पितृभ्राता रामा के श्रेयार्थ.
२१– ,,	आदिनाथ-पंचतीर्थी	मड़ा० विजयसिंह-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० संग्रामसिंह ने पिता चहथ, माता चाहणदेवी के श्रेयार्थ.
२२–१४४० पौ० शु० १२	आदिनाथ	मड़ा०सोनचंद्र-सूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० झाँटा ने पिता नींदा, माता सुमलदेवी के श्रेयार्थ.
२३–१४४० वै० कृ० १३ सोमवार	....	कमलचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पाका ने पिता तथा माता पालूदेवी के श्रेयार्थ.
२४–१४४१ फा० शु० १ सोमवार	शांतिनाथ	मड़ा० श्री० हरिभद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भाभा, पांचा, दापर आदि ने पिता सहजा, माता गांगी, पितृभ्राता हेमराज के श्रेयार्थ.
२५–१४४६ वै० कृ० ३	शांतिनाथ	मड़ा० मुनिप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेता भार्या खेतलदेवी के पुत्र रणसिंह ने

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० (११)५६७, (१२)५६८, (१३)५६९, (१४)५७२, (१५)५७५, (१६)५८१, (१७)५८३, (१८)५८५, (१९)५८६, (२०)५९४, (२१)५९५, (२२)५९६, (२३)५९७, (२४)५९९, (२५)६०२

प्र. विक्रम संवत्	प्र. प्रतिमा	प्र. आचार्य	प्रतिमाप्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
२६—१४४६ वै० शु० ६ शुक्रवार	पद्मप्रभ	जीरा० शालिभद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जयशल ने पिता चाहड़, माता चांपलदेवी के श्रेयार्थ
२७—१४५२ वै० शु० ५ सोमवार	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	देवसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० माला ने पिता जीदा, माता फलूदेवी के श्रेयार्थ
२८—१४५३ फा० शु० ५ शुक्रवार	वासुपूज्य-पंचतीर्थी	सा० पू० धर्मतिलकसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सोमराज भार्या सोनलदेवी ने पुत्र माठवी, धवल, मंशा के श्रेयार्थ
२९—१४५८ वै० शु० २ बुधवार	आदिनाथ	तपा० श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जशराज ने स्वपत्नी पद्मिनी के सहित श्रे० मामत पुत्र श्रे० पाता भार्या पामिणी के श्रेयार्थ
३०—१४५८ वै० शु० ५ गुरुवार	पार्श्वनाथ	सोमसेनसूरि	प्रा० ज्ञा० वाला और आका ने मं० कुरसिंह की स्त्री जयतूदेवी के पुत्र रूपा, कोला, कहूया के श्रेयार्थ
३१—१४६१ ज्ये० शु० १० शुक्रवार	आदिनाथ-पंचतीर्थी	पासचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० साल्हा ने अपने पिता राम, माता राजलदेवी, अपने तथा अपने भ्राता वनफला के श्रेयार्थ
३२—१४६७ माघ शु० ५ शुक्रवार	शान्तिनाथ-पंचतीर्थी	अंचल० मेरुतुंगसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० डीडा भार्या रयणादेवी की पुत्री मेची ने अपने श्रेयार्थ
३३—१४७४ ज्ये० शु० २ शनिश्चर	नेमिनाथ-पंचतीर्थी	पूर्णि० पासचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जशराज भार्या राऊ की पुत्रवधू चांदूदेवी ने पति हीरा के श्रेयार्थ
३४—१४७७ मार्ग कृ० ४	शान्तिनाथ-पंचतीर्थी	देवगुप्तसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० झांझण भार्या जालूदेवी के पुत्र धरणा ने स्वश्रेयार्थ
३५—१४७७ मार्ग कृ० ४	सुपार्श्वनाथ-पंचतीर्थी	तपा० सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धरणा भार्या पूनी के पुत्र खेता भार्या हाँसलदेवी के पुत्र श्रे०सुरसिंह ने स्वभार्या रूपी के सहित
३६—१४७७ ज्ये. शु० ४	कुंथुनाथ-पंचतीर्थी	,, ,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मसिंह भार्या धारूदेवी के पुत्र सबल ने स्वभार्या वयजलदेवी, पुत्र शिवादि के सहित
३७—१४७८ माघ शु० ६	सुपार्श्व-चौवीशी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० श्रीचन्द्र भार्या सोढ़ी के पुत्र सींहा ने अपने श्रेयार्थ स्वभार्या जसमादेवी, पुत्र वीशल, विमल, देशलादि के सहित
३८—१४८१	आदिनाथ-पंचतीर्थी	,,	जंधुरालवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० शेपराज ने स्वभार्या शाणीदेवी, पुत्र कुना के सहित पिता गोधा, माता माणिकदेवी के श्रेयार्थ.

अ० प्रा० लि० जै० सं० भा० २ लि० (२६)६०३, (२७)६०४, (२८)६०६, (२९)६०७, (३०)६०८, (३१)६०९, (३२)६१०, (३३)६११, (३४)६१४, (३५)६१५, (३६)६१६, (३७)६१७, (३८)६१९

प्र. विक्रम संवत्	प्र. प्रतिमा	प्र. आचार्य	प्रतिमाप्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
३९–१४८२ फा० शु० ३	कुंथुनाथ	सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सामंत के पुत्र मेघराज की पत्नी मेवादेवी के पुत्र झीझा, मला, रणसिंह में से रणसिंह ने स्वपितामाता के श्रेयार्थ.
४०–१४९१ मा० शु० ५ बुधवार	अभिनंदन	सा० पू० हीराणंदसूरि	प्रा० ज्ञा० नयणा भार्या कांऊ के पुत्र दादा, वाछा ने अपने सर्व पूर्वज एवं अपने श्रेयार्थ
४१–१४९१ मार्ग शु० ५ बुधवार	महावीर चौवीशी	जिनसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मण्डन के पुत्र ईश्वर ने
४२–१४९२ फा० शु० ९ सोमवार	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	रत्नप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धागा भा० टवी ने पिता मोहन, माता माणिकदेवी के श्रेयार्थ.
४३–१४९२ वै० कृ० ५ शुक्रवार	,,	पूर्णि० सर्वाणंद-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राणा भार्या रयणदेवी के पुत्र लूणा ने स्वश्रेयार्थ.
४४–१४९६ …………	महावीर-पंचतीर्थी	सोमसुन्दरसूरि	अंबरणीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० लापा भार्या राजी के पुत्र शा० पांचा ने स्वभार्या सीतादेवी, पुत्र सामंत आदि के सहित.
४५–१४९९ मार्ग शु० २	अनंतनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० हेमा ने पिता गोहा, माता पूनी, स्वभार्या चारु तथा पुत्र वीरम आदि के सहित काका सामल के श्रेयार्थ.
४६–१५०२ मार्ग कृ० ९	विमलनाथ-पंचतीर्थी	तपा०जयचंद्र-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० विजयसिंह भार्या वीरुदेवी के पुत्र देपा ने स्वभार्या पूरी, वीरी, पुत्र काहा, रामा, साजर, सवादि के सहित स्वश्रेयार्थ.
४७–१५०२	कुंथुनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० देवड़ भार्या भली की पुत्री श्रा० रही ने स्वश्रेयार्थ.
४८–१५०३ मार्ग० शु० २	धर्मनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० मं० लूणा भार्या तेजू के पुत्र मं० चांपा ने स्वश्रेयार्थ स्व भा० चांपलादेवी, पुत्र भीड़ा, सांडा, जेसा खेटू पौत्र विमल, नाभा, राववादि के सहित
४९–१५०३ फा० कृ० २	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० लाला भार्या सूदी के पुत्र छाड़ा ने स्वभार्यादि कुटुम्बसहित.

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० (३९)६२१, (४०)६२५, (४१)६२६, (४२)६२७, (४३)६२८, (४४)६२९, (४५)६३०, (४६)६३१, (४७)६३२, (४८)६३३, (४९)६३४

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]		[illegible]
[illegible]	[illegible]		[illegible]
[illegible]	[illegible]		[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

[illegible]

प्र. विक्रम संवत्	प्र. प्रतिमा	प्र. आचार्य	प्रतिमाप्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
६०–१५२८ ज्ये० कृ० ११	विमलनाथ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० डहामल की स्त्री मधुमति के पुत्र वडूआ ने स्वस्त्री मेही, पुत्र खीमराज आदि कुटुम्बीजनों के सहित श्रे० छाला के श्रेयार्थ.
६१–१५३२ ज्ये० शु० २ रविवार	संभवनाथ-पंचतीर्थी	,,	सांगवाड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गोसल की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र श्रे० तोलराज की स्त्री चाहिणदेवी के पुत्र वनराज ने स्वस्त्री अमरदेवी, पुत्र केल्हा आदि कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयार्थ
६२–१५३२	शीतलनाथ-पंचतीर्थी	,,	नीतोड़ावासी प्रा० ज्ञा० मं० लूणराज के पुत्र मं० लांपा की स्त्री वयजूदेवी के पुत्र मं० धर्मराज ने स्व भ्राता सालिग, डूंगर और पुत्र राणा विमलदास, कर्मसिंह, हीरा, वीरमल, ठाकुरसिंह, होला आदि कुटुम्बीजनों के सहित
६३–१५३३ फा० ६	वासुपूज्य-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० डूंगर की स्त्री मेही के पुत्र आसराज ने स्वस्त्री गांगी, पुत्र धारा और भ्राता जसराज, धनराज आदि कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयार्थ
६४–१५३६ चै० कृ० ५ गुरुवार	आदिनाथ-पंचतीर्थी	,,	आकुलिग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० शिवराज ने स्वस्त्री पूरीदेवी, पुत्र सोमादि कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयार्थ
६५–१५४२ वै० कृ० ११	वासुपूज्य-पंचतीर्थी	,,	धनेरीग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० हेमा की स्त्री मचकूदेवी के पुत्र हीरा स्त्री आपू पुत्र अदा ने स्वस्त्री चमकूदेवी आदि कुटुम्बीजनों के सहित अपने पूर्वजों के श्रेयार्थ
६६–१५५१ माघ शु० ५ शनिवार	मुनिसुव्रत-पंचतीर्थी	श्री सूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० खीमराज ने भीमराज आदि कुटुम्बीजनों के श्रेयार्थ

अ०प्रा०ले०जै०सं०भा० २ ले० (६०)६४६, (६१)६५१, (६२)६५२, (६३)६५४, (६४)६५६, (६५)६५७, (६६)६५८.

श्री पिण्डरवाटक (पींडवाड़ा) के श्री महावीर-जिनालय में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि कार्य

श्रेष्ठि गोविन्द

वि० सं० १६०३

सिरोहीराय दुर्जणसिंहजी के राज्यकाल में प्रा० ज्ञा० शाह गोविन्द नामक एक प्रसिद्ध पुरुष हुआ है। उसकी स्त्री का नाम घनीकुमारी था। घनीकुमारी के केल्हा नामक पुत्र हुआ, जिसका विवाह चांपलदेवी और गुणदेवी नामा दो कन्याओं से हुआ था। इनके जीवराज, जिनदास और केला नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुये। शा० जीवराज ने वि० सं० १६०२ फाल्गुण कृष्णा ८ को चालीस दिन का अनशन तप करके पारणा किया था। इस महातप के उपलक्ष में शा० गोविन्द ने वि० सं० १६०३ के माघ कृ० ८ शुक्रवार को पिंडरवाटक (पींड़वाड़ा) के अति प्रसिद्ध एवं प्राचीन श्री महावीर-जिनालय में शाह जीवराज के श्रेयार्थ देवकुलिका करवा कर उसको तपागच्छीय श्रीमद् कमलकलशसूरि के पट्टालंकार श्रीमद् विजयदानसूरि के करकमलों से प्रतिष्ठित करवाई।[१]

शाह थाथा

वि० सं० १६०३

सिरोहीराय श्री दुर्जनसिंहजी के विजयीराज्यकाल में सिरोहीनिवासी शाह थाथा ने अपनी स्त्री गांगादेवी, पुत्र और पुत्रवधू करमीरदेवी, पुत्री रंभादेवी के सहित वि० सं० १६०३ माघ कृ० ८ शुक्रवार को पींडवाड़ा के अति प्राचीन एवं महामहिम श्री महावीर-चैत्यालय में स्वस्त्री गांगादेवी के श्रेयार्थ देवकुलिका करवा कर प्रतिष्ठित करवाई।[२]

कोठारी छाछा

वि० सं० १६०३

सिरोहीराय श्री दुर्जणसिंहजी के राज्यसमय में सिरोही में कोठारी छाछा नामक श्रीमंत सद्गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम हांसिलदेवी था। हांसिलदेवी की कुक्षी से कोठारी श्रीपाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीपाल के खेवलदेवी, लाच्छलदेवी और संसारदेवी नाम की तीन स्त्रियाँ थीं, जिनकी कुक्षियों से उसको तेजपाल राजपाल, रत्नसिंह, रामदास, करणसिंह और सहसकिरण नाम के पुत्र प्राप्त हुये थे।

शाह छाछा ने तपागच्छीय श्री हेमविमलसूरि के पट्टालंकार श्री आणंदविमलसूरि के पट्टधर श्रीमद् विजयदानसूरि के करकमलों से पींडवाड़ा के अति प्राचीन एवं गौरवशाली महावीर-जिनालय में वि० सं० १६०३ माघ कृ० ८ शुक्रवार को श्रा० लाच्छलदेवी और तेजपाल के श्रेयार्थ दो देवकुलिकाओं को प्रतिष्ठित करवाईं तथा वि० सं० १६१२ फाल्गुण कृ० ११ शुक्रवार को सिरोही के महाराजा श्री उद[illegible]जी के राज्य-काल में उपरोक्त

१—जै० ले० सं० भा० १ ले०६४६। २—जै० ले० सं० भा० १ ले० ६४६।

आचार्य श्री विजयदानसूरिजी के करकमलों से ही तृतीय देवकुलिका को लाछलदेवी के पुत्र रामदास, करणसिंह और सहसकिरण के श्रेयार्थ प्रतिष्ठित करवाई ।१

उपरोक्त शाह गोविन्द, शाह थाथा और कोठारी छाछा के प्राप्त वर्णनों से सिद्ध होता है कि वि० सं० १६०३ माघ कृ० ८ को पींडवाड़ा में महाप्रसिद्ध विजयदानसूरिजी के कर-कमलों से देवकुलिकाओं की प्रतिष्ठा करवाई जाने के निमित्त महामहोत्सव का आयोजन किया गया था और अति धूम-धाम से प्रतिष्ठाकार्य पूर्ण किया गया था ।

श्री नाडोल और श्री नाडूलाई (नड्डूलाई) तीर्थ में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों के देवकुलिका-प्रतिमाप्रतिष्ठादि कार्य

श्रेष्ठि मूला
वि० सं० १४८५

वि० संवत् १४८५ वैशाख शु० ३ बुधवार को श्रे० समरसिंह के पुत्र दो० धारा की स्त्री सुहवदेवी के पुत्र महिपाल की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र मूलचन्द्र ने पितृव्य धर्मचन्द्र और भ्राता माइआ तथा पिता महिपाल के श्रेयार्थ श्री सुविधिनाथबिंब को श्री तपागच्छीय श्रीमद् सोमसुन्दरसूरिजी के करकमलों से प्रतिष्ठित करवाया। यह प्रतिमा नाडोल के अति भव्य एवं सुप्रसिद्ध श्री पद्मप्रभुजिनालय में स्थापित है ।२

श्रेष्ठि साडूल
वि० सं० १५०८

वि० संवत् १५०८ वैशाख कृ० १३ को श्रे० जगसिंह के पुत्र सं० केल्हा, कडुआ, हेमा, माला, जयंत, रणसिंह और लाखा भार्या ललितादेवी के पुत्र साडूल ने स्वस्त्री वाल्हीदेवी, पुत्र नरसिंह, नगा आदि कुटुम्बीजनों के सहित कई चतुर्विंशति जिनप्रतिमायें करवाईं, जिनकी प्रतिष्ठा तपागच्छीय श्रीसोमसुन्दरसूरि के पट्टालंकार श्रीमद् रत्नशेखरसूरि ने श्री मेदपाटदेशीय देवकुलपाटक में की थी । एक शांतिनाथचौवीसी नाडोल के सुप्रसिद्ध श्री पद्मप्रभुजिनालय में विराजमान है । इसी ही शुभावसर पर अर्बुदगिरि, श्री चंपकमेरु, चित्रकूट, जाउरनगर, कायद्राह, नागहृद, ओसवाल, श्री नागपुर, कुंभलगढ़, देवकुलपाटक, श्री कुण्ड आदि सुप्रसिद्ध तीर्थ एवं स्थानों के लिये दो दो प्रतिमायें भेजने के लिये भी इन्होंने प्रतिष्ठित करवाई थीं—ऐसा उक्त चौवीसी के लेख से आशय निकलता है ।३

१–जै० ले० सं० भा० १ ले० ६४७, ६४८, ६५०.

२–३ प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३६८, ३७१.

श्रेष्ठि नाथा
वि० सं० १७२१

नाडोल यह जोधपुर (राजस्थान) राज्य के गोडवाड़प्रांत का एक प्रसिद्ध और प्राचीन नगर है। यहाँ के वासी प्राग्वाटज्ञातीय वृद्धशाखीय शाह जीवाजी की स्त्री जशमादेवी की कुक्षी से उत्पन्न शा० नाथा ने महाराजाधिराज श्री अभयराजजी के विजयी राज्य में भट्टारक श्री विजयप्रभसूरि के द्वारा श्री मुनिसुव्रतस्वामी का बिंब वि० सं० १७२१ ज्येष्ठ शु० ३ रविवार को प्रतिष्ठित करवाया। यह बिंब इस समय नाडूलाई के श्री सुपार्श्वनाथ-मंदिर में विरामान है।* इस मंदिर के निर्माता भी शाह जीवा और नाथा ही थे ऐसी वहाँ के लोगों में जनश्रुति प्रचलित है।‡

तीर्थादि के लिये प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों द्वारा की गई संघयात्रायें

संघपति श्रेष्ठि सूरा और वीरा की श्री शत्रुंजयतीर्थ की संघयात्रा
विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में माण्डवगढ़ में, जब कि मालवपति ग्यासुद्दीन खिलजी बादशाह राज्य करता था, उस समय में प्राग्वाटज्ञातीय नररत्न श्रे० सूरा और वीरा नामक दो भ्राता बड़े ही धर्मात्मा हो

---

*प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३४०

‡इस मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में एक दन्त-कथा प्रचलित है। सं० जीवा और उसका पुत्र नाथा दोनों ही बड़े उदार-हृदय एवं दयालु श्रीमंत थे। एक वर्ष बड़ा भयंकर दुष्काल पड़ा और नाडूलाई का प्रगणा राज्यकर देने में असमर्थ रहा। राज्यकर नहीं देने पर राज्यकर्मचारी प्रजा को पीड़ित करने लगे। प्रजा को इस प्रकार सताई जाती हुई देखकर दोनों पितापुत्रों ने समस्त प्रजा का राज्यकर अपनी ओर से देने का निश्चय किया और वे मुख्य राज्याधिकारी के पास में पहुँचे और अपना विचार व्यक्त किया। उनका विचार सुनकर मुख्य राज्यकर्मचारी अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ। उसने भी तुरन्त ही नाडूलाई से राज्यकर को नरेश्वर के कोष में भिजवा दिया। जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि नाडूलाई के प्रगणा में अकाल है और फिर भी उस प्रगणा का राज्यकर पूरा उद्ग्रहीत हुआ है और अन्य वर्षों की अपेक्षा भी राज्यकोष में पहिले आ पहुँचा है, उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने साथ में यह भी सोचा कि मुख्य राज्याधिकारी ने दुष्काल से पीड़ित प्रजा को राज्यकर की प्राप्ति के अर्थ अवश्यमेव संताड़ित किया होगा। सत्य कारण ज्ञात करने के लिये उसने अपने विश्वासपात्र सेवकों को नाडूलाई में भेजा। सेवकों ने नाडूलाई से लौट कर राजा को राज्यकर की इस प्रकार हुई त्वरायुक्त प्राप्ति का सच्चा २ कारण कह सुनाया। राजा श्रे० जीवा और नाथा की परोपकारवृत्ति पर अत्यन्त ही मुग्ध हुआ। उसने विचारा कि मेरे राज्य का एक शाहूकार मेरी प्यारी प्रजा के दुःख के लिये अपने कठिन श्रम से अर्जित विपुल राशी व्यय कर सकता है तो क्या मैं प्रजा का अधीश्वर कहा जाने वाला एक वर्ष के लिये भी दुःखित प्रजा को राज्यकर क्षमा नहीं कर सकता। ऐसा सोचकर राजा ने नाडूलाई से आया हुआ समस्त राज्यकर श्रे० जीवा और नाथा को लौटाने के लिए अपने मुख्य राज्याधिकारी के पास में भेज दिया। राजा की भेजी हुई उक्त धनराशी को जब मुख्य राज्याधिकारी श्रे० जीवा और नाथा को ससम्मान देने के लिये गया, तो दोनों पिता-पुत्रों ने लेने से अस्वीकार किया और कहा कि हम तो इसको धर्मार्थ लिख चुके, अब यह किसी भी प्रकार ग्राह्य नहीं हो सकती है। मुख्य राज्याधिकारी ने यह समाचार राजा को पहुँचा दिये। स्वयं राजा भी जीवा और नाथा की धर्मपरायणता एवं निस्वार्थपरोपकारवृत्ति पर अत्यन्त ही मुग्ध तो हुआ, परन्तु वह भी उस राशी को अपने राज्यकोष में डालने के लिये प्रसन्न नहीं हुआ। बहुत समय तक दोनों ओर इस विषय में विचार होते रहे। निदान राजा की आज्ञा को शिरोधार्य करके राजा की सम्मति के अनुसार उन्होंने उक्त राशी को किसी धर्मक्षेत्र में अपनी इच्छानुसार व्यय करना स्वीकृत किया और निदान उस राशी से इस जिनालय का निर्माण करवाया।

गये हैं। ये दोनों भ्राता जिनेश्वरदेव के परम भक्त थे। ये बड़े उदार एवं सज्जनात्मा श्रावक थे। इन्होंने बादशाह ग्यासुद्दीन खिलजी की आज्ञा प्राप्त करके श्रीमद् सुधानन्दसूरि की तत्त्वावधानता में श्री माण्डवगढ़ से श्री शत्रुंजयमहातीर्थ की संघयात्रा करने के लिये संघ निकाला था। संघ जब उपरहट्ट नामक ग्राम में आया तो वहाँ मुनि शुभरत्नवाचक को बड़ी धूम-धाम से सूरिपद प्रदान करवाया गया। मार्ग में ग्राम, नगरों के जिनालयों में दर्शन, पूजन का लाभ लेता हुआ संघ अनुक्रम से सिद्धाचलतीर्थ को पहुंचा। वहाँ दोनों भ्राताओं ने आदिनाथ-प्रतिमा के दर्शन किये और अतिशय भक्ति-भावपूर्वक सेवा-पूजन किया। संघ ने दोनों भ्राताओं को संघपतिपद से अलंकृत किया। तत्पश्चात् संघ सिद्धाचल से लौट कर सकुशल माण्डवगढ़ आ गया। दोनों संघवी भ्राताओं ने संघ-भोजन किया और संघयात्रा में सम्मिलित हुये प्रत्येक सधर्मी बन्धु को अमूल्य पहिरामणी देकर अत्यन्त कीर्त्ति का उपार्जन किया।[१]

सिरोही के प्राग्वाटज्ञातिकुलभूषण संघपति श्रेष्ठि ऊजल और काजा की संघयात्रायें

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल में सिरोही के राजा महाराव लाखा थे। ये बड़े वीर एवं पराक्रमी थे। इनके सम्मानित एवं प्रतिष्ठित जनों में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० ऊजल और काजा नामक दो भ्राता भी थे। ये दोनों भ्राता सिरोही में रहते थे। राजसभा, समाज और राज्य में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इन्होंने शत्रुंजयमहातीर्थ की बड़े ही धूम-धाम से संघयात्रा की थी। उस संघयात्रा में सिरोही के महामात्य और कई संरक्षक अश्वारोही सम्मिलित हुये थे। दोनों भ्राताओं ने संघयात्रा में पुष्कल द्रव्य व्यय किया था।

एक वर्ष दोनों भ्राताओं ने श्रीमद् सोमदेवसूरि की अध्यक्षता में श्री जीरापल्लीतीर्थ की सात दिवस पर्यन्त यात्रा करी और यात्रा से सिरोही में लौटकर भारी समारोह के मध्य गुरुदेव की शास्त्रवाणी को श्रवण करके ८४ चौरासी आर्य दम्पतियों के साथ में शीलव्रत के पालन करने की प्रतिज्ञा ली। इस प्रकार धन का सदुपयोग करके, तन एवं वैभव, विषय-वासनाओं से विरक्त बन करके दोनों भ्राताओं ने अपने समय में अपनी और अपने कुल की अक्षय कीर्त्ति बढ़ाई।[२]

संघपति जेसिंह की अर्बुदगिरितीर्थ की संघयात्रा

वि० सं० १५३१

वि० सं० १५३१ वैशाख शु० २ सोमवार को सारंगपुरनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय आभूषणस्वरूप और अनेक तीर्थ यात्राओं के करने वाले और संघयात्राओं के कराने वाले तथा सत्रागार खुलवाने वाले संघवी वेलराज की धर्मपत्नी अरखूदेवी के पुत्ररत्न संघनायक संघवी जेसिंह ने स्वस्त्री माणिकी, पुत्री जीविणी आदि प्रमुख कुटुम्बसहित मालवा के श्री संघ के साथ में श्री अर्बुदगिरितीर्थ की संघयात्रा की और श्री नेमिनाथ भगवान् के अतिशय भक्ति और भावना से दर्शन किये।[३]

१–जै० सा० सं० इति पृ० ४६७-६८
२–जै० सा० सं० इति० पृ० ४६६
३–अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३८८।

संघपति हीरा की श्री अर्बुदगिरितीर्थ की संघयात्रा

वि० सं० १६०३

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय वृद्धशाखीय शाह जीवराज हो गया है। शाह जीवराज की स्त्री का नाम पाल्हाईदेवी था। इनके श्रे० हीरजी नामक पुत्ररत्न हुआ। श्रे० हीरजी अति श्रीमंत, साधु-साध्वियों का परम भक्त और धर्मात्मा श्रावक था। उसने वि० सं० १६०३ पौष शुक्ला १ गुरुवार को श्री पाल्हणपुरीयगच्छ के पण्डित श्री संघचारित्रगणि के शिष्य श्री महोपाध्याय विमलचारित्रगणि के उपदेश से श्री अर्बुदाचलतीर्थ की यात्रा करने के लिये श्री चतुर्विध संघ निकाला और अपने और पूर्वजों द्वारा न्याय से उपार्जित द्रव्य का सदुपयोग किया। इस संघयात्रा में उपरोक्त पाल्हणपुरीयगच्छ के उपाध्याय श्री विमलचारित्रगणि अपने शिष्य माणिक्यचारित्र, ज्ञानचारित्र, हेमचारित्र, शवधर और धर्मधीर तथा शिष्यिणी प्रवर्त्तिनी विद्यासुमति, रत्नसुमति प्रमुख परिवार के सहित विद्यमान थे। संघयात्रा में एक सौ से ऊपर वाहन थे। गूर्जरज्ञातीय मंत्री नरसिंह की स्त्री लीलादेवी का पुत्र भाणेज मंत्री थाक्रजी, उसकी स्त्री पकुदेवी तथा उनकी पुत्रियाँ जावणी और लालाबाई, श्रीमालज्ञाति के शृंगारस्वरूप संघवी रूपचन्द्र, संघवी देवचन्द्र, संघवी सहसकिरण, श्रीमल्लमलजी आदि अनेक प्रतिष्ठित श्रावक अपने कुटुम्बसहित सम्मिलित हुये थे। श्रे० हीरा ने अपने पुत्र देवजी और पारू तथा अपने प्रमुख कुटुम्ब के साथ में साधु और साध्वियों तथा संघ के समस्त श्रावक, श्राविकाओं को श्री अर्बुदाचलतीर्थ की यात्रा करवाई और इस प्रकार बहुत द्रव्य व्यय करके अपने पूर्वज, माता, पिता तथा कुटुम्ब के कल्याणार्थ संघ निकाल कर अपने द्रव्य का सदुपयोग किया।[१]

हरिसिंह की संघयात्रा

भीमसिंह लूणिया, प्राग्वाटज्ञातीय हरिसिंह, ब्रह्मदेव ने चतुर्विध श्री श्रमणसंघ के साथ में श्री अर्बुदाचलतीर्थ की यात्रा की थी।[२]

श्रेष्ठि नथमल की अर्बुदगिरितीर्थ और अचलगढ़तीर्थ की यात्रा

वि० सं० १६१२

प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० नथमल के पुत्र श्रे० भीमराज और चारु ने क्रमशः अपने २ पुत्र पेथड़सिंह, कृष्ण और नरसिंह के साथ में वि० सं० १६१२ मार्गशिर कृष्णा ६ शुक्रवार को श्री अर्बुदगिरितीर्थ और अचलगढ़तीर्थ की दुष्काल पड़ने के कारण यात्रा की थी। इस यात्रा में इनके साथ में अन्य श्रावकगण भी थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

सा० जोधा, कर्मसिंह पुत्र रणसिंह, और देवा, स० भीम, छीतर पुत्र सगण, स० सोना, वालीदास पुत्र पं० कर्मा, काला पुत्र कला, छीतर, देपाल पुत्र नवा, माका और महेश का पुत्र हरिपति। इन सर्व ने समुदाय बना कर बड़ी धूम-धाम से यात्रा की थी।[३]

अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० २१४-२१५[१] । २८६[२] । ७८[३]

संघपति मूलवा की श्री अर्बुदगिरितीर्थ की संघयात्रा
वि० सं० १६२१

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में अहमदाबाद में प्राग्वाटज्ञातीय संघवी गंगराज अहमदाबाद के अति संमानित प्रमुख व्यक्तियों में था। उसके सं० जयवंत नामक पुत्र था। सं० जयवंत की स्त्री मनाईदेवी नामा थी। जयवंत की विमाता जीवादेवी की कुक्षी से सं० मूलवा (मूलचन्द्र) नाम का पुत्र हुआ। संघवी मूलचन्द्र उदार और धर्मात्मा था। वह तीर्थयात्रा का बड़ा प्रेमी था। उसने वि० सं० १६२१ माघ कृ० १० शुक्रवार को श्री तपागच्छाधिपति श्री कुतुवपुरीयपक्षगच्छवाले श्री हंससंयमसूरि के शिष्य श्री हंसविमलसूरि के उपदेश से श्री अर्बुदगिरितीर्थ की यात्रा करने के लिये संघ निकाला और इस प्रकार संघाधिपतिपद को प्राप्त करके अपनी स्त्री रंगादेवी, पुत्र मूला, भला, मघा तथा संघवी हरिचन्द्र, भाई सीदा, संघवी भीमराज के पुत्र वन (?) के पुत्र नारायण आदि समस्त कुटुम्बसहित और सकलसंघयुक्त श्री अर्बुदतीर्थ की यात्रा करके उसने अपने मनोरथ को सफल किया।*

श्री जैन श्रमणसंघ में हुये महाप्रभावक आचार्य और साधु

तपागच्छाधिराज आचार्यश्रेष्ठ श्रीमद् सोमतिलकसूरि
दीक्षा वि० सं० १३६६, स्वर्गवास वि० सं० १४२४

तपागच्छपट्ट पर ४७ सैंतालीसवें श्रीमद् सोमप्रभसूरिद्वितीय के पट्ट पर ४८ अड़तालीसवें श्रीमद् सोमतिलकसूरि नामक आचार्य हो गये हैं। इनका जन्म प्राग्वाटज्ञातीय कुल में वि० सं० १३५५ के माघ महीने में हुआ था। इन्होंने १४ चौदह वर्ष की वय में वि० सं० १३६९ में भगवतीदीक्षा ग्रहण की थी। सोमतिलकसूरि श्रीमद् सोमप्रभसूरि के प्रिय एवं प्रभावक साधुओं में थे। सोमप्रभसूरि के पट्टोत्तराधिकारी युवराज-आचार्य श्रीमद् विमलप्रभसूरि का जब असमय में स्वर्गवास हो गया तो वि० सं० १३७३ में सोमप्रभसूरि ने सोमतिलकसूरि और परमानन्दसूरि दोनों को आचार्यपदवी प्रदान की। परमानन्दसूरि का भी अल्प समय में ही स्वर्गवास हो गया। सोमप्रभसूरि के स्वर्गवास पर सोमतिलकसूरि गच्छनायकपद को प्राप्त हुये।

श्रीमद् सोमतिलकसूरि अत्यन्त उन्नत और विशाल विचारों के आचार्य थे। इनके विशाल विचारों के कारण अन्य गच्छाधिपति भी इनका भारी मान करते थे। खरतरगच्छीय जिनप्रभसूरि ने स्वशिष्यों के पठनार्थ रचे हुये ७०० स्तोत्रों के संग्रह को सम्मान पूर्वक इनको समर्पित किया था। इनके श्री पद्मतिलकसूरि, श्री चन्द्रशेखरसूरि, श्री जयानन्दसूरि और श्री देवसुन्दरसूरि नामक प्रखर विद्वान् एवं प्रतापी शिष्य थे। इन्होंने अपने उक्त चारों शिष्यों को बड़ी धूमधाम से एवं महोत्सवपूर्वक आचार्यपद प्रदान किया था। पद्मतिलकसूरि का तो आचार्यपद प्राप्ति के एक वर्ष पश्चात् ही स्वर्गवास हो गया था। चन्द्रशेखरसूरि को वि० सं० १३९३ में आचार्यपद दिय

---

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० १९६

गया था तथा जयानन्दसूरि और देवसुन्दरसूरि दोनों को वि० सं० १४२० में अणहिलपुरपत्तन में आचार्यपद प्रदान किये गये थे।

जैसे ये प्रखर तेजस्वी थे, वैसे ही विद्वान् भी थे। इनके बनाये हुये ग्रंथ निम्नप्रकार हैं:—

१—बृहन्नव्यक्षेत्रसमाससूत्र	२—सत्तरिसयठाणम्	३—यत्राखिल-जयवृषभशास्तारामेंवृत्तियाँ
४-५—श्री तीर्थराज० चतुरर्था स्तुति	तथा उसकी वृत्ति	६—शुभ भावानत
७—श्री महावीरस्तवन	८—कमलबंधस्तवन	९—शिवशिरसिस्तवन
१०—श्री नाभिसंभवस्तवन	११—श्री शैवेयस्तवन इत्यादि	

उपरांत इनके आपने गुरु द्वारा रची गई अट्ठावीस यमक-स्तुतियों पर वृत्ति लिखी और कई एक नवीन स्तोत्रों की भी रचनायें की हैं। इनके हाथ से अनेक नवीन जिनबिंबों की प्रतिष्ठायें हुई के उल्लेख मिलते हैं। ६९ वर्ष का आयु पूर्ण करके वि० सं० १४२४ में इनका स्वर्गवास हो गया।*

श्री तपागच्छाधिराज श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि

दीक्षा वि० सं० १४३५. स्वर्गवास वि० सं० १४९९

पालणपुर (प्रह्लादनपुर) में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्राग्वाटज्ञातिशृंगार नरश्रेष्ठ श्रेष्ठिवर्य सज्जन मंत्री रहता था। सज्जन मन्त्री बड़ा ही धर्मात्मा, जिनेश्वरभक्त, उदार श्रावक था। राजसभा, समाज एवं नगर में वह अग्रगण्य पुरुष था। उसके दान एवं पुण्य की दूर २ तक ख्याति फैली हुई थी। जैसा सज्जन धर्मात्मा था, वैसी ही गुणवती एवं धर्मानुरागिनी उसकी माल्हणदेवी नामा पतिपरायणा स्त्री थी। दोनों स्त्री-पुरुष सदा धर्म-पुण्य में लीन रहकर सुख एवं शांतिपूर्वक अपने गृहस्थ-धर्म का पालन कर रहे थे।

वंश-परिचय

वि० सं० १४३० में माघ कृष्णा १४ को सज्जन श्रेष्ठि को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र का मुख चन्द्र के समान उज्ज्वल और कान्तियुक्त था, अतः उसने अपने पुत्र का नाम भी सोम ही रक्खा। सोम बड़ा ही चंचल हृष्ट-पुष्ट एवं मनोहारिणी आकृति वाला शिशु था। वह सज्जन मंत्री के घर का दीपक था और प्रह्लादनपुर का सचमुच चन्द्रमा ही था। उसके रूप एवं लावण्य को निहार कर समस्त नगर मुग्ध रह जाता था। सोम धीरे २ बड़ा होने लगा और अपनी अद्भुत बालचेष्टाओं से प्रत्येक जन को चमत्कृत करने लगा। सोम की बुद्धि, वाकचपलता एवं बाललीला को देख कर बुद्धिमान् जन विचार करते थे कि यह बालक समाज, देश एवं धर्म की महान् सेवा करने वाला होगा। इस प्रकार बाललीला करता हुआ सोम जब सात वर्ष का हुआ ही था कि प्रह्लादनपुर में तपागच्छनायक श्रीमद् जयानन्दसूरि पधारे।

पुत्र सोम का जन्म

*१—श्री ऋषभदास कृत हीरसूरिरास पृ० २६४. २—जै० गु० क० भा० २ पृ० ७१८. ३—तं० प० पृ० १८०.

उन दिनों में जैनाचार्यों में श्रीमद् जयानन्दसूरि का मान अत्यधिक था। गुरु का आगमन श्रवण करके समस्त नगर के जैन-अजैन जन एवं राजा और उसके अधिकारीजन अति हर्षित होकर गुरु का स्वागत करने के लिये नगर के बाहर गये और गुरु का नगर-प्रवेश अति धूम-धामपूर्वक करवाया। सज्जन मंत्री भी गुरु के स्वागतार्थ अपने पुत्र और स्त्री सहित गया था। श्रीमद् जयानन्दसूरि के दिव्य तेज एवं वाणी का बालक सोम पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह वैराग्यरस में पगने लगा। गुरु की देशना श्रवण करके सोम जैसे प्रतिभाशाली एवं होनहार बालक के हृदय में एक दम ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठा और घर आकर तो वह एकदम गूढ़ विचारों में लीन हो गया। बालक सोम के माता और पिता को सोम के चिंतन का पता नहीं लगा।

सोम की दीक्षा

सज्जन मंत्री नित्य नियमपूर्वक सपरिवार गुरु की शास्त्रवाणी श्रवण करने जाता था। श्रीमद् जयानंदसूरि ने सोम को उसकी दिव्य आकृति से जान लिया कि यह लड़का आगे जाकर महान् तेजस्वी एवं प्रभावक निकलेगा; अतः उन्होंने सज्जन श्रेष्ठि से सोम की मांग की। सज्जन श्रेष्ठि और उसकी स्त्री माल्हणदेवी ने पुत्र-मोह के वश होकर प्रथम तो कुछ आना-कानी की, परन्तु गुरु के समझाने पर उन्होंने अपने प्राणप्रिय पुत्र सोम को स्वयं अपने हाथों दीक्षा देकर गुरु की सेवा में अर्पण करने का निश्चय कर लिया। फलतः अति धूम-धाम से महामहोत्सव पूर्वक वि० सं० १४३७ में सज्जन मंत्री ने अपने पुत्र सोम और एक पुत्री को श्रीमद् जयानंदसूरि के कर-कमलों से भगवतीदीक्षा दिलवाकर अपना गृहस्थ-जीवन सफल किया। माल्हणदेवी भी अपने पुत्र एवं पुत्री दोनों को दीक्षित देख कर अपना सौभाग्य मानने लगी। गुरु ने नवदीक्षित बालमुनि का नाम सोमसुन्दर ही रक्खा।

श्रीमद् जयानंदसूरि का कुछ ही समय पश्चात् स्वर्गवास हो गया और उनके पाट पर महान् तेजस्वी आचार्य श्री देवसुन्दरसूरि प्रतिष्ठित हुये। श्रीमद् देवसुन्दरसूरि की बालमुनि सोमसुन्दरसूरि पर महती कृपा थी। उन्होंने मुनि सोमसुन्दर को विद्याध्ययन करने के लिये महाविद्वान् मुनिवर्य्य ज्ञानसागरजी के पास भेज दिया। बालमुनि सोमसुन्दर प्रखर बुद्धिशाली तो थे ही, गुरु जितना भी पाठ देते, वे तुरन्त ही याद कर लेते। थोड़े ही वर्षों में उन्होंने व्याकरण, साहित्य, छंद, न्याय, आगमों का इतना अच्छा और गहरा अभ्यास कर लिया कि उनकी विद्या की प्रखरता, ज्ञान की विशालता देखकर श्रीमद् देवसुन्दरसूरि अति ही मुग्ध हुये और उन्हें गणिपद प्रदान किया तथा वि० सं० १४५० में तो महामहोत्सव का समारंभ करके बड़ी ही धूमधाम से उनको वाचकपद भी प्रदान कर दिया। आपकी आयु इस समय केवल २० वर्ष की ही थी। ऐसी अल्प आयु में बहुत कम मुनिवरों को वाचकपद जैसे अति उत्तरदायित्वपूर्ण पद की प्राप्ति होती है। गुरु ने श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि को अब सर्व प्रकार योग्य एवं समर्थ समझ कर स्वतंत्र विहार करने की आज्ञा भी प्रदान कर दी।

बाल-मुनि सोमसुन्दर का विद्याध्ययन और गणिपद तथा वाचक-पद की प्राप्ति

१–सोमसुन्दरसूरि के पिता माता प्राग्वाटज्ञातीय थे—देखो जै० सा० इति० पृ० ५०१ पर ले० सं० ७२६.

२–'तत्पट्टे ५० सोमसुन्दरसूरि—प्राग्वंशी राणपुरप्रतिष्ठाकृत, पालणपुरे भगिन्या सह संयमं जग्राह।' प० समु० पृ० १७२.

वाचक-पद की प्राप्ति के पश्चात् श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि ने गुरु श्रीमद् देवसुन्दरसूरि की आज्ञा लेकर अपने शिष्य एवं साधु-मण्डली के सहित मेदपाट-प्रदेश की ओर विहार किया। अनुक्रम से विहार करते हुये देवकुलपाटक (देलवाड़ा) के सामीप्य में पधारे। उन दिनों मेदपाटनरेश महाराणा लाखा थे, जो जैनधर्म के प्रति बड़े ही श्रद्धालु थे। महाराणा लाखा के प्रधान श्रेष्ठि रामदेव थे। महाराणा के अद्वितीय प्रीति-भाजन व्यक्ति उनके ही ज्येष्ठ पुत्र चुण्डा थे, जो अति ही प्रभावशाली व्यक्ति और प्रधान रामदेव के परम मित्र एवं स्नेही थे। प्रधान रामदेव के साहचर्य्य से युवराज चुण्डा भी जैन-धर्म का बड़ा मान करते थे। जब महाराणा लाखा को राजसभा में यह शुभ समाचार पहुंचे कि युवान् वाचक श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि का पदार्पण मेदपाटप्रदेश के भीतर हो गया है, प्रधान रामदेव और महायुवराज चुण्डा दोनों ही महाराणा की आज्ञा से आपश्री के दर्शन करने के लिये गये और उनकी सेवा में पहुंच कर बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से अभिवंदन किया और उनके साथ विहार में रह कर गुरुभक्ति का लाभ लिया तथा जब श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि का देवकुलपाटक में प्रवेश हुआ तो राजाज्ञा निकाल कर राजसी-शोभा से हर्षोल्लासपूर्वक नगर-प्रवेश करवाया।

मेदपाटदेश में विहार

देवकुलपाटक में आपश्री कुछ दिवस विराजे और विहार करके मेदपाटप्रदेश की भूमि को अपने वचनामृत से प्लावित करने लगे। वन, ग्राम, नगरों में विहार करते हुए उपाध्यायों में मुकुटरूपसूरि अपने महान् प्रताप को प्रसारित करते हुते मिथ्यात्व दुर्मति का नाश करने लगे, पाप का मूलोच्छेद करने लगे, पृथ्वी में दुर्लभ ऐसे समकितरत्न को मुक्तहस्त भव्यजनों को प्रदान करने लगे। किसी को देशविरति, किसी को सर्वविरति, किसी को शीलव्रत, किसी को दुःख-दरिद्र को नाश करने में समर्थ ऐसी कर्मक्रिया, किसी को भव-भव के पापों का नाश करने वाली देव-गुरु-भक्ति ग्रहण करवाने लगे। बहुत दिनों तक मेदपाटभूमि में इस प्रकार युवान मुनिपति अपनी साधु एवं शिष्य-मण्डली-सहित भ्रमण करके धर्म की ज्योति जगा कर पुनः अणहिलपुरपत्तन की ओर विहार कर चले; क्योंकि अति वृद्ध गुरु श्रीमद् देवसुन्दरसूरि के दर्शन करने की लालसा सर्व साधु एवं स्वयं आपश्री के हृदय में उत्कट जाग्रत हो गई थी और वे अणहिलपुरपत्तन में ही उन दिनों विराज रहे थे। ग्रामानुग्राम एवं दुर्गम पार्वतीय मार्गों में विहार करते हुये अनुक्रम से अणहिलपुरपत्तन में पहुँचे और गुरु के दर्शन करके अति ही आनंदित हुये।

अणहिलपुरपत्तन में नृसिंह नामक एक अति धर्मिष्ठ एवं अत्यंत धनी श्रावक रहता था। वह युवान मुनिपति वाचक सोमसुन्दरसूरि के तेज एवं दृढ चारित्र को देख कर अति ही मुग्ध हुआ और गुरुवर्य्य श्रीमद् देवसुन्दरसूरि से अवसर देखकर निवेदन करने लगा कि उसकी ऐसी इच्छा है कि मुनिपति सोमसुन्दरसूरि को आचार्यपद से अलंकृत किया जाय और उसको महोत्सव का समारम्भ करने का आदेश दिया जाय। गुरु देवसुन्दरसूरि ने श्रे० नृसिंह की श्रद्धा एवं भक्तिभरी विनती स्वीकार करली और फलतः वि० सं० १४५७ में अणहिलपुरपत्तन में महामहोत्सवपूर्वक वाचक मुनिपति सोमसुन्दरसूरि को २७ सत्ताइस वर्ष की वय में आचार्यपद से अलंकृत किया गया। इस महोत्सव के समारंभ पर श्रे० नृसिंह ने कुंकुम-पत्रिकायें प्रेषित करके दूर २ के संघों को, प्रतिष्ठित कुलों एवं सद्गृहस्थों को निमंत्रित किया था। श्रे० नृसिंह ने अति हर्षित होकर इस शुभावसर पर बहुत ही द्रव्य याचकों को दान में दिया, विविध मिष्टान्नवाला नगर-प्रीति-भोज किया और सधर्मी बंधुओं की अच्छी सेवा-भक्ति की।

नृसिंह मंत्री ने इस आचार्यपदोत्सव के अवसर पर अपने न्यायोपार्जित द्रव्य को हर्षपूर्वक इतना अधिक व्यय किया कि जिसका वर्णन और अंकन करना भी कठिन है।

इस समय तक श्रीमद् देवसुन्दरसूरि अधिक वृद्ध हो गये थे। कुछ ही समय पश्चात् वे स्वर्ग को सिधार गये और गच्छ का भार श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के कंधों पर आ पड़ा। श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि सर्व प्रकार से योग्य तो थे ही, उन्होंने जिस प्रकार जैन-शासन की सेवा की, गच्छ का गौरव बढ़ाया वह स्वर्णाक्षरों में अनेक ग्रंथों के पत्रों में उल्लिखित है। यहाँ तो उसका साधारण शब्दों में स्मरण मात्र करना ही बन पड़ेगा। वृद्धनगर अथवा मोटाग्राम, जिसको वड़नगर (गुजरात) भी कहते हैं, उस समय अति समृद्ध एवं विशाल नगर था। श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि अपनी साधु एवं प्रखर विद्वान् शिष्य-मण्डली के सहित भ्रमण करते हुये नगर ग्रामों में अनेक प्रकार के सुधार करते हुये उक्त मोटा ग्राम में पधारे। मोटा ग्राम में देवराज नामक अति प्रतिष्ठित श्रीमंत एवं जिनेश्वर और गुरु का परम भक्त सुश्रावक रहता था। उसका छोटा भाई हेमराज था, जो राजा का विश्वासपात्र मंत्री था। मंत्री हेमराज से छोटा घटसिंह नामक तृतीय भ्राता था। तीनों भ्राता अधिकाधिक गुणी, धर्मात्मा एवं सुश्रावक थे। दोनों छोटे भ्राता ज्येष्ठ भ्राता देवराज के पूर्ण भक्त एवं परम आज्ञाकारी थे। नगर में महान् तेजस्वी प्रखर पंडित एवं जैनाचार्यों में मुकुटरूप युगप्रधानसमान आचार्य श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि का पदार्पण हुआ सोच कर देवराज का मन अत्यंत ही हर्षित हुआ और उसके मन में यह भाव उठे कि वह गुरु की आज्ञा लेकर कोई शुभ कार्य में अपनी न्यायोपार्जित लक्ष्मी का सदुपयोग करे। इस प्रकार धर्ममूर्त्ति देवराज ने अपने मन में निश्चय करके अपने दोनों अनुवर्त्ती योग्य भ्राताओं की सम्मति ली। वे भला शुभावसर पर द्रव्य का सदुपयोग करने, कराने में और अनुमोदन करने में कब पीछे रहने वाले थे। उन्होंने तुरन्त ही ज्येष्ठ भ्राता देवराज की बात का समर्थन किया और देवराज ने अपने भ्राताओं की इस प्रकार सुसम्मति लेकर गुरु के समक्ष आकर अपनी सद्भावनाओं को व्यक्त किया और निवेदन किया कि आचार्यपदोत्सव जैसे महा पुण्यशाली कार्य का समारम्भ करवा कर वह अपने द्रव्य का सदुपयोग करना चाहता है। श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि ने श्रे० देवराज की विनती स्वीकार करली और आचार्यपदोत्सव का शुभमुहूर्त भी तत्काल निश्चित कर दिया।

गुरु देवसुन्दरसूरि का स्वर्गवास और गच्छपतिपद की प्राप्ति तथा मोटा ग्राम में श्री मुनिसुन्दरवाचक को सूरिपद प्रदान करना

श्रे० देवराज और उसके अनुज दोनों भ्राताओं ने कुंकुमपत्रिकायें लिख कर दूर २ के संघों को आमंत्रित किया और महामहोत्सव का समारंभ किया। इस प्रकार वि० सं० १४७८ के शुभमुहूर्त में गच्छनायक श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि ने श्रीमुनिसुन्दरवाचक को सूरिपद से अलंकृत किया। आचार्यपदोत्सव की शुभसमाप्ति करके श्रे० सुश्रावक देवराज ने गच्छपति की आज्ञा लेकर श्रीमद् मुनिसुन्दरसूरि की अध्यक्षता में शत्रुंजय, गिरनारतीर्थों की संघयात्रा की और संघपति के अति गौरवशाली पद को प्राप्त किया। संघ में ५०० गाड़ियाँ थीं और संघ की सुरक्षा के लिये ५०० सुभट थे। आचार्यपदोत्सव और संघयात्रा में सुश्रावक देवराज ने पुष्कल द्रव्य का व्यय किया, याचकों को अमूल्य भेंटें दीं और सधर्मी बन्धुओं की अच्छी सेवा-भक्ति की एवं अमूल्य पहिरामणियाँ दीं।

एक वर्ष आपश्री का चातुर्मास श्रे० संग्राम सोनी की प्रमुख विनती तथा मांडवगढ़ के श्री संघ की श्रद्धापूर्ण विनती से माण्डवगढ़तीर्थ में हुआ था। उक्त चातुर्मास का व्यय अधिकांशतः संग्राम सोनी ने वहन किया था।

संग्राम सोनी ने गुरु महाराज से भगवतीसूत्र का वाचन करवाया था और प्रत्येक शब्द पर एक-एक सुवर्ण मुद्रा चढ़ाई थी। संग्राम सोनी ने ३६००० सुवर्ण मुद्रायें, उसकी माताश्री ने १८००० तथा उसकी स्त्री ने ६००० कुल ६३००० सुवर्ण मुद्रायें चढ़ाई थीं। तत्पश्चात् उक्त मुद्राओं में और मुद्रायें सम्मिलित करके कुल १४५००० सुवर्ण मुद्रायें वि० सं० १४७१ में कल्पसूत्र और कालिकाचार्य की कथा की प्रतियाँ सचित्र और सुवर्ण के अक्षरों से लिखवाने में व्यय की गई थीं और उक्त प्रतियाँ साधुओं को वाचनार्थ अर्पित की गई थीं। संग्राम सोनी ने श्री मक्षीजी में श्रीपार्श्वनाथ-जिनालय का निर्माण करवाया था और उसमें श्री पार्श्वनाथबिंब की महामहोत्सव पूर्वक गुरु के कर-कमलों से स्थापना करवाई थी। गिरनारतीर्थ पर भी श्रे० संग्राम ने एक विशाल जिनालय बनवाया था, जो 'संग्राम सोनी' की टूँक कहा जाता है। इसकी प्रतिष्ठा भी आपश्री के सदुपदेश से ही संग्राम सोनी ने महामहोत्सव पूर्वक करवाई थी।*

गच्छाधिराज श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि विहार करते हुए ईडर (इलादुर्ग) में अपनी साधुमण्डली एवं शिष्यवर्ग सहित पधारे। उस समय ईडर का महाराजा रणमल्ल था, जो अत्यन्त प्रतापी और शूरवीर था। रणमल्ल का पुत्र श्रीपुंज भी वैसा ही महापराक्रमी और रणकुशल योद्धा था। उसने अनेक बार संग्राम में जय प्राप्त की थी और वह 'वीराधिवीर' कहलाता था। ऐसे प्रतापी पिता-पुत्र का प्रीति-भाजन श्रे० गोविंद था। श्रे० गोविंद जैसा श्रीमन्त था, वैसा ही सद्गुणी, धर्मात्मा और उदार सज्जन था। गोविन्द अपने विशुद्ध चरित्र के लिये समस्त जैन-समाज में अग्रणी था। उसने पुष्कल द्रव्य व्यय करके श्री तारंगतीर्थ पर कुमारपाल-प्रासाद का जीर्णोद्धार करवाया था। श्रे० गोविंद का पुत्र श्रीवीर भी पिता के सदृश ही गुणी, धर्मात्मा और उदार था। नगर में युगप्रधान-समान गच्छनायक श्री सोमसुन्दरसूरि का पदार्पण पा कर दोनों पिता-पुत्र अत्यन्त हर्षित हुये और अपनी न्यायोपार्जित पुष्कल संपत्ति का सदुपयोग करने के लिये शुभ अवसर देखकर गुरु की सेवा में उपस्थित होकर दोनों पिता-पुत्र निवेदन करने लगे कि उत्तमसूरिपद की प्रतिष्ठा करवा कर उनको कृतार्थ करिये। सूरिजी महाराज ने श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक उनकी विनती देख कर उसको स्वीकार कर ली और श्री आचार्यपदोत्सव की तैयारियाँ होने लगी। श्रे० गोविन्द ने योग्य गुरु का समागम देखकर पुष्कल द्रव्य का उपयोग करने का निरचय किया। उसने बहुत दूर तक कुंकुमपत्रिकायें भेजीं। महामहोत्सव का समारंभ प्रारम्भ हुआ। अनेक नगर, ग्रामों से अगणित जनमेदनी एकत्रित हुई और ऐसे महासमारोह के मध्य राजा रणमन्ल की उपस्थिति में गच्छनायक श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि ने श्री जयचन्द्रवाचक को सूरिपद से अलंकृत किया। श्रे० गोविन्द ने याचकों को भरपूर दान दिया और समस्त नगर के श्री संघ को और बाहर से आये हुये सर्व संघों को विविध व्यंजनों वाला साधर्मिक-वात्सल्य दिया। तत्पश्चात् श्रे० गोविन्द ने श्री शत्रुंजयमहातीर्थ, गिरनारतीर्थ, सोपारकतीर्थादि की विशाल संघ के सहित संघयात्रा की और श्री तारंगगिरितीर्थ पर विशाल श्री अजितनाथ-आरसप्रस्तर-बिंब की प्रतिष्ठा गच्छपति श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के करकमलों से वि० सं० १४७६ में करवाई। प्रतिष्ठोत्सव के समय संघ-रक्षा एवं व्यवस्था की दृष्टियों से गूर्जर बादशाह अहमदशाह के और ईडरनरेश

श्रे० गोविंद का श्री गच्छपति की निश्रा में आचार्य-पदोत्सव का करना और तत्पश्चात् शत्रुञ्जय, गिरनार, तारंगतीर्थों की संघ-यात्रा और अन्य धर्मकार्यों का करना

*'ऐतिहासिक सज्झाय माला' by विद्याविजयजी भा० १ पृ० ३२ (सं० १९७३ य० जै० ग्रं० मा० भावनगर)

को तृप्त करने वाला एक विशाल जिनबिंब ६३ तिरानवे अंगुल मोटा करवा कर शुभमुहूर्त में चित्तौड़ के श्री श्रेयांसनाथ-जिनालय में प्रतिष्ठित करवाया तथा फिर आचार्यपदोत्सव का दूसरा समारम्भ रच कर गच्छनायक के करकमलों से पंडितवर्य्य श्रीमद् जिनकीर्त्तिवाचक को सूरिपद प्रदान करवाया। इसी अवसर पर आचार्य श्री सोमसुन्दरसूरि ने कितने ही मुनियों को पण्डितपद और कितने ही श्रावकों को दीक्षायें प्रदान की थीं। इन दोनों महोत्सवों में श्रे० चम्पक ने १७७ दूर २ के नगर, ग्रामों के संघों को कुकुंमपत्रिकायें प्रेषित करके उनको निमंत्रित किया था। पुष्कल द्रव्य व्यय करके उसने भारी साधर्मिक-वात्सल्य किये, याचकों को बहु द्रव्य दान में दिया तथा प्रत्येक सधर्मी बंधु को तीन २ अमूल्य वस्तुयें भेंट में दीं और इस प्रकार अपने पिता के तुल्य कीर्त्ति प्राप्त करके कुल का गौरव बढ़ाया।

श्रे० चंपक की विधवा माता सुश्राविका खीमादेवी ने पंचमी का उद्यापन किया। जिसमें उसके दोनों पुत्र श्रे० धीर और चंपक ने सुवर्ण, रत्न और रुपयों की भेंटें दीं और विशाल साधर्मिक वात्सल्य किया और अतिशय संघ-भक्ति की।

तत्पश्चात् धर्म-मूर्त्ति चंपक ने सुगुरु श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि से समकितरत्न ग्रहण किया और इस हर्ष के उपलक्ष में दूर २ के संघों में प्रति घर पांच सेर अति स्वादिष्ट मोदक की लाहणी (लाभिणी) वितरित करवाई।

श्री धरणाशाह के प्रकरण में आपश्री की अधिनायकता में श्री शत्रुंजयतीर्थ की की गई संघयात्रा का वर्णन तथा श्रीराणकपुरतीर्थसंबन्धी यथासंभव अधिकतर वर्णन दे दिया गया है। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि गच्छनायक ने देवकुलपाटक से विहार करके सं० रत्ना एवं धरणाशाह की विनती को मान देकर श्री राणकपुर की ओर विहार किया और श्री राणकपुर में पहुँच कर सं० धरणाशाह द्वारा विनिर्मित काष्ठमयी चौरासी स्तंभवाली पौषधशाला में आपश्री अपनी योग्य साधुमण्डली सहित विराजे और मंदिर के निर्माणकार्य का अधिकांश भाग अपनी उपस्थिति में विनिर्मित करवाया तथा वि० सं० १४९८ में फाल्गुण कृ० ५ शुभ मुहूर्त में उसको अति राजसी सज-धज एवं महाशोभाशाली विविध रचनायें करवा कर उसको प्रतिष्ठित किया और मूलगर्भगृह में चारों दिशाओं में अभिमुख चार विशाल श्री आदिनाथबिंबों की स्थापना की। उसी महोत्सव के शुभावसर पर श्री सोमदेववाचक को सूरिपद से अलंकृत किया।

श्री राणकपुरतीर्थ-धरण-विहार की प्रतिष्ठा

आपश्री के द्वारा किये गये सर्व कृत्यों का लेखन इतिहास में स्थानाभाव के हेतु कर भी नहीं सकते हैं, फिर भी विविध धर्मकृत्यों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है:—

देवकुलपाटक में देवगिरिवासी श्रीमंत श्रावक द्वारा आयोजित महामहोत्सव के साथ श्री मुनि रत्नशेखरवाचकवर्य्य को सूरिपद प्रदान किया।

श्रे० गुणराज के सुयोग्य पुत्र बाला ने चितौड़दुर्ग में कीर्तिस्तंभ के सामीप्य में चार विशाल देवकुलिकावाला जिनालय विनिर्मित करवाया और उसमें उसने तीन जिनबिंबों की प्रतिष्ठा गच्छनायक श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के कर-कमलों से महामहोत्सवपूर्वक पुष्कल द्रव्य व्यय करके करवाई।

श्री विजया नामक ठक्कुर ने कपिलवाटक में जिनालय बनवाया और उसमें आपश्री के कर-कमलों द्वारा श्री शांतिनाथबिंब की शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठा हुई।

अहमदाबाद के बादशाह अहमदशाह का प्रीतिपात्र एवं अति प्रतिष्ठित श्रे० समरसिंह सोनी ने गच्छपति श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के सदुपदेश से श्री शत्रुंजयमहातीर्थ की यात्रा की और वहाँ से श्री गिरनारतीर्थ की यात्रा को गया और पुष्कल द्रव्य व्यय करके महामात्य वस्तुपाल के जिनालय का जीर्णोद्धार करवाया। श्रे० समरसिंह और वेदरनगर के नवाब के मानीता श्रे० पूर्णचन्द्र कोठारी ने श्री गिरनारतीर्थ पर जिनालय बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा गच्छपति श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के उपदेश से जिनकीर्त्तिसूरि ने की।

गंधारवासी श्रे० लखीया ने श्री गिरनारतीर्थ पर जिनालय बनवाया और गच्छपति श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि की आज्ञा से उसकी प्रतिष्ठा श्रीमद् सोमदेवसूरि ने की।

मूंजिगपुरवासी श्रे० मूंट नामक सुश्रावक ने अगणित पीतल प्रतिमा और चौबीशी बनवाई और उनकी प्रतिष्ठा स्वयं आपश्री ने अति धूम-धाम से की।

अणहिलपुरपत्तन में श्रे० श्रीनाथ अति प्रतिष्ठित एवं श्रीमंत सुश्रावक था। वह आपश्री का अनन्य भक्त था। आपश्री की अधिनायकता में उसने अपने परिवार सहित श्री शत्रुंजयमहातीर्थ और गिरनारतीर्थ की स्मरणीय यात्रा की। श्रे० श्रीनाथ के सं० मण्डन, वच्छ, पर्वत, नर्बद और डूंगर पांच पुत्र थे। ये भी गुरुदेव के अनन्य भक्त थे। ये सज्जन पत्तन में रह कर सदा गुरु का यश बढ़ाने के लिये जैन धर्म की नित नवीन प्रभावना करते रहते थे।

आप श्री महाप्रभावक थे। आप श्री के भक्तगण भी समस्त उत्तर भारत में फैले हुये थे। कुछ एक अनन्य भक्तगणों का परिचय तो यथाप्रसंग लिखा ही जा चुका है, जैसे सं० धरणा और रत्ना, संग्राम सोनी, संघवी गुणराज आदि और कुछ प्रसिद्ध भक्तों का नामोलेख नीचे दिया जाता है।

१. अणहिलपुरपत्तन के यवन-अधिकारी का बहुमानीता श्रे० कालाक सौवर्णिक (सोनी)

२. स्तंभतीर्थवासी लखमसिंह सौवर्णिक का पुत्र यशस्वी मदन तथा उसका भ्राता वीर, जिन्होंने अनेक बार तीर्थयात्रायें कीं, अनेक आचार्यपदोत्सव, प्रतिष्ठा आदि करवाये।

३. घोघानिवासी श्रे० वस्तुपति विरुयचन्द्र, जिन्होंने अनेक महोत्सव किये और तीर्थयात्रायें कीं।

४. पंचवारक देश के संघपति महुणसिंह, जिसने गुरुवर्य सोमसुन्दरसूरि के सदुपदेश से ऊंचा शिखरों-वाला जैन प्रासाद करवाया, जिसकी प्रतिष्ठा श्रीमद् शीलभद्र उपाध्याय ने की थी।

अतिरिक्त इनके भी गच्छपति श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के अनेक अनन्य भक्त थे, जो समस्त भारत भर में फैले हुए थे। उस समय ऐसा शायद ही कोई प्रसिद्ध नगर होगा, जहाँ का अति प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित, धर्मात्मा, अग्रगण्य श्रावक आपका अनन्य भक्त नहीं रहा हो। आपश्री के सदुपदेश से समस्त उत्तर भारत के प्रसिद्ध नगरों में इतने अधिक संख्या में महामहत्त्वशाली पुण्यकार्य, जैसे संघयात्रायें, यात्रायें, तप-उद्यापन, साधर्मिक-वात्सल्य, अंजन-शलाका-प्राणप्रतिष्ठायें, जीर्णोद्धार, नवीन-मन्दिरों का निर्माणकार्य आदि हुये कि आपश्री का समय आप के नाम के पीछे 'सोमसुन्दरयुग' कहा जाता है। जितने जैन-प्रतिमा-लेख आपके युग के भारत भर में

मिलते हैं, उनमें अधिकांश लेख आप श्री से ही संबंधित पाये जाते हैं। ऐसा संभवतः शायद ही कोई तीर्थ, नगर, ग्राम होगा; जहाँ प्राचीन दश-पाँच प्रतिमाओं में आप के कर-कमलों से या आप श्री के सदुपदेश से प्रतिष्ठित कोई प्रतिमा नहीं हो। आपश्री के गच्छनायकत्व से जैसी धर्मक्षेत्र में जाग्रति हुई, उसी के समकक्ष आप श्री की तत्त्वावधानता में साहित्यक उन्नति भी हुई। अनेक प्रमाण प्राप्त हैं कि आपश्री स्वयं शास्त्रों के पूर्णपंडित थे और आपश्री का शिष्य-परिवार एवं साधुमण्डल भी विद्वत्ता एवं पांडित्य में अपना अग्रगण्य स्थान रखता था। आपश्री की निश्रा में रहने वाले साधुगण शक्तिशाली लेखक, उपदेशक, वादी और ग्रंथकार थे। आपके अति तेजस्वी सूरि-शिष्यों में अग्रग्ण्य (१) श्री मुनिसुन्दरसूरि, (२) 'कृष्णसरस्वती' विरुदधारक श्री जयसुन्दरसूरि, (३) श्री भुवन-सुन्दरसूरि, (४) श्री जिनसुन्दरसूरि थे, जिन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे और अनेक प्राचीन ग्रंथों की टीकायें कीं। स्वयं आप श्री ने गुजराती भाषा में-(१) योगशास्त्र—बालावबोध, (२) उपदेशमाला—बालावबोध, (३) षडावश्यक—बालावबोध, ४ नवतत्त्व—बालावबोध, ५ चैत्यवंदन, ६ भाष्यावचूरि, ७ कल्याणस्तव, ८ नेमिनाथ-नवरसफाग, ९ आराधनापताका बालावबोध, १० षष्टिशतक—बालावबोध, नामक ग्रन्थ लिखे हैं तथा ११ चउशरण—पयन्ना पर संस्कृत में अवचूरि और अन्य विविध स्तवनों की रचना की। वि० सं० १४९७ में उन्होंने अष्टादशस्तत्री लिखी, जिस पर उनके शिष्य सोमदेव ने अवचूर्णि लिखी। १३ सप्तति पर अवचूर्णि, १४ आतुरप्रत्याख्यान पर अवचूर्णि आदि छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थ बनाये।

आपश्री के शिष्य-प्रशिष्यों में प्रसिद्ध साहित्यसेवी सर्वश्री मुनि १ विशालराज, २ उदयनन्दी, ३ लक्ष्मीसागर, ४ शुभरत्न, ५ सोमदेव, ६ सोमजय आदि आचार्य ७ जिनमण्डन, ८ चारित्ररत्न, ९ सत्यशेखर, १० हेमहंस, ११ पुण्यराज, १२ विवेकसागर, १३ राजवर्धन, १४ चरित्रराज, १५ श्रुतशेखर, १६ वीरशेखर १७ सोम-शेखर, १८ ज्ञानकीर्त्ति, १९ शिवमूर्त्ति, २० हर्षमूर्त्ति, २१ हर्षकीर्त्ति, २२ हर्षभूषण, २३ हर्षवीर, २४ विजय-शेखर, २५ अमरसुन्दर, २६ लक्ष्मीभद्र २७ सिंहदेव, २८ रत्नप्रभ, २९ शीलभद्र, ३० नंदिधर्म, ३१ शांतिचन्द्र, ३२ तपस्वी विनयसेन, ३३ हर्षसेन, ३४ हर्षसिंह आदि वाचक-उपाध्याय पण्डित थे। आप श्री के परिवार में १८०० साधु थे।

आपश्री के युग में प्राचीन ग्रन्थों का लिखना और उनका संग्रह करना अत्यावश्यक कर्तव्य समझा जाता था। प्राचीन ग्रन्थ अधिकतर ताड़पत्र पर ही लिखे हुए होते थे। आपश्री के युग में आपश्री के शिष्य एवं साधु-मण्डल ने और अन्य गच्छाधिपति एवं उनके विद्वान् आचार्य, साधु, वाचक, पंडित शिष्यों ने कागज पर लिखने का अति ही भगीरथ एवं विशेष व्यापक प्रयास किया। राजपूताना और गुजरात के सर्व ज्ञान-भंडारों के ग्रन्थों को जो ताड़-पत्र पर थे कागज पर लिख डाले गये। खंभात के प्रसिद्ध ज्ञान-भण्डार के सर्व ग्रन्थों को तपागच्छीय आचार्य देवसुन्दर और सोमसुन्दरसूरि के शिष्य एवं साधु-मण्डली ने कागज पर लिखे। सं० १४७२ में खंभातवासी मोढ़ज्ञातीय श्रे० पर्वत ने पुष्कल द्रव्य व्यय करके आपश्री के कर-कमलों से ग्यारह मुख्य अंगों को कागज पर लिखवायें। सांडेरानिवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० मंडलिक ने श्रीमद् जयानंदसूरि के सदुपदेश से अनेक पुस्तकों का लेखन कागज पर करवाया। आपश्री के सदुपदेश से ताड़-पत्र पर भी लिखे हुये कई ग्रन्थ पत्तन के भंडार में मिलते हैं।

आपश्री के समय में आपश्री के प्रभाव एवं प्रताप, सहाय, योग, लगन, तत्परता से जो धर्मोन्नति एवं साहित्योन्नति हुई वह स्वर्णाक्षरों में उपलब्ध है और यह काल 'सोमसुन्दर-युग' कहा जाता है तो उचित ही है।

ऐसे प्रतापी राजराजेश्वरमान्य सूरिसम्राट् प्रातः स्मरणीय गच्छपति का स्वर्गवास वि० सं० १४९९ में हुआ और वह अभाव आज तक अपूर्ण ही रहा।[१]

तपागच्छाधिराज श्रीमद् हेमविमलसूरि

दीक्षा वि० सं० १५३८. स्वर्गवास वि० सं० १५८४

मरुधर प्रान्तान्तर्गत वड़ग्राम में विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि गंगराज[२-३] रहता था। उसकी स्त्री गंगाराणी थी। वि० सं० १५२२ कार्त्तिक शु० १५ को उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और उसका नाम हादकुमार रक्खा गया। हादकुमार बचपन से ही विरक्तभावुक था। सोलह वर्ष की वय में तपागच्छाधिपति श्रीमद् लक्ष्मीसागरसूरि के कर कमलों से उसने वि० सं० १५३८ में दीक्षा ग्रहण की। उसका नाम हेमधर्ममुनि रक्खा गया। हेमधर्ममुनि प्रखरबुद्धि और गंभीर विद्याभ्यासी थे। आपने थोड़े वर्षों में ही अनेक ग्रंथों का अच्छा अध्ययन कर लिया। आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर श्रीमद् लक्ष्मीसागरसूरि के पट्टालंकार श्रीमद् सुमतिसाधुसूरि ने महामहोत्सव पूर्वक पंचालसग्राम में वि० सं० १५४८ में आपको आचार्यपद प्रदान किया। यह उत्सव श्रीमालज्ञातीय श्रेष्ठि पाताक ने किया था। हेमविमलसूरि आपका नाम रक्खा गया। वि० सं० १५५० में देवदत्त के स्वप्नानुसार खंभात के संघ के साथ में आपने शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा की। वि० सं० १५५२ में खंभात में श्रेष्ठि सोनी जीवा, जागा द्वारा आयोजित प्रतिष्ठोत्सव-कार्य महामहोत्सव पूर्वक किया तथा उसी अवसर पर मुनि दानधीर को सूरिपद प्रदान किया। आचार्य दानधीर छः माह जीवित रह कर स्वर्गस्थ हो गये। हेमविमलसूरि कठोर तपस्वी और शुद्ध साध्वाचारी थे। उस समय में साध्वाचार अति शिथिल पड़ चुका था। अनेक महातपस्वी विद्वान् आचार्य शिथिलाचार को नष्ट करने का प्रयत्न कितने ही वर्षों से करते आ रहे थे। आपने शिथिलाचार को नष्ट करने का एक प्रकार से संकल्प किया। आपकी निश्रा में जो साधु शिथिलाचारी थे और शुद्ध साध्वाचार पालने में असमर्थ एवं अयोग्य रहे, उनको संघ से बहिष्कृत कर दिया। आप निःस्पृही एवं अखण्ड ब्रह्मचारी थे। वि० सं० १५५२ में क्रियोद्धार किया और वि० सं० १५५६ में ईडरनगर में आपको गच्छनायकपद से संघ ने अलंकृत किया गच्छनायक-पदोत्सव कोठारी सायर और श्रीपाल ने बड़े धूम-धाम से बहुत द्रव्य व्यय करके किया था। ईडर-नरे रायभाण आपका प्रशंसक था। उसने भी इस महोत्सव में सराहनीय भाग लिया था।

वंश-परिचय और दीक्षा तथा आचार्यपद

१—सोमसौभाग्य काव्य २—जै० सा० सं इति० पृ० ४५१ से ४७१। तपागच्छपट्टावली सूत्रम् प० गा०।

२—ऋषभदेव कृत हीरसुरिरास पृ० २६५ पर लिखा है कि वे प्राग्वाटज्ञातीय थे।

३—वीर वंशावली। २—जैन गुर्जर क० भा० २ पृ० ७२३ (टि० ५५) ७४३, ७४४। ३ त० प० पृ० २०२

लालपुर का ठक्कुर श्रेष्ठि थिरपाल जो प्राग्वाटज्ञातीय था, आपका बड़ा भक्त था। उसने हेमविमलसूरि का वि० सं० १५६३ में लालपुर चातुर्मास करवाया और समस्त व्यय उसने ही किया तथा गुरु के उपदेश से उसने एक जिनालय बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा महोत्सवपूर्वक गुरु के हाथों करवाई। इसी अवसर पर हेमविमलसूरि ने सूरिमन्त्र की भी आराधना की थी।

सूरिमंत्राराधना

वि० सं० १५७० में डाभिला नामक ग्राम में आपश्री ने विद्वान् एवं प्रखर तेजस्वी मुनि आनंदविमल को आचार्यपद प्रदान किया। इस महोत्सव का व्यय खंभात के सोनी जीवा जागा ने बड़ी भाव-भक्तिपूर्वक किया। श्रेष्ठि थिरपाल आनंदविमलसूरि का बड़ा भक्त था। आचार्यपद के दिलाने में उसने अधिक प्रयत्न और श्रम किया था। आप शुद्ध साध्वाचार के पोषक एवं पालक थे। आपश्री ने अपने जीवन में जिन २ को साधु-दीक्षा दी अथवा वाचक, उपाध्याय, पंडितपद प्रदान किये, उनकी साध्वाचार की दृष्टि से पूरी परीक्षा लेकर ही उनको उनकी योग्यतानुसार पद प्रदान किये थे।

आनंदविमल मुनि को आचार्यपद

वि० सं० १५७२ में आप विहार करते हुए कर्पटवाणिज्य अर्थात् कपड़वंज नामक ग्राम में पधारे। वहाँ के संघ ने आपका प्रवेशोत्सव अत्यन्त वैभव एवं शोभा के साथ में किया। इस समय अहमदाबाद में महमूद-बेगड़ा का पुत्र मुजफ्फर द्वितीय बादशाह था। उसने जब इस शाही प्रवेशोत्सव के विषय में अत्यन्त प्रसंशायें सुनी तो उसने सूरिजी को बंदी करने की आज्ञा दी। सूरिजी बादशाह का प्रकोप श्रवण करके सोजीत्रा होते हुये खंभात पहुँच गये। बादशाह के कर्मचारियों ने सूरिजी को वहाँ बंदी बना लिया। संघ से बारह हजार रुपिया लेकर उनको पुनः मुक्त किया। सूरिजी ने सूरि-मंत्र का आराधन किया और उन्होंने पं० हर्षकुलगणि, पं० संघहर्षगणि, पं० कुशलसंयमगणि और शीघ्रकवि पं० शुभशीलगणि को बादशाह मुजफ्फर की राज-सभा में भेजे। बादशाह उस समय चांपानेरदुर्ग में था। ये चारों राजसभा में पहुँचे और बादशाह को अपनी विद्वत्ता एवं काव्यशक्तियों से मुग्ध किया। बादशाह ने इनका बड़ा सम्मान किया और बारह हजार रुपयों को वापिस खंभात के संघ को लौटाने की आज्ञा दी तथा हेमविमलसूरि को वंदना लिख कर भिजवाई।

कपड़वंज ग्राम में प्रवेशोत्सव और बादशाह की ईर्ष्या

वि० सं० १५७८ में आपने पत्तन में चातुर्मास किया तथा तत्पश्चात् दो चातुर्मास वहाँ और किये। श्रे० दो० गोपाक ने आपश्री के द्वारा जिनपट्ट प्रतिष्ठित करवाये। खंभात में प्रतिष्ठोत्सव किया तथा विद्यानगर में को० सायर श्रीपाल द्वारा विनिर्मित चैत्यादि की प्रतिष्ठा की। हेमविमलसूरि की व्याख्यानकला अमित प्रभावक थी। आपके सहवास का भी अन्य साधु एवं मुनियों पर भी भारी प्रभाव पड़ता था। अन्य मतानुयायी साधु भी आपकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे। लुंकामतानुयायी ऋषि हाना, ऋषि श्रीपति, ऋषि गणपति ने अपना मत छोड़ कर हेमविमलसूरि की निश्रा में शुद्धसाध्वाचार ग्रहण किया था। आपने अपने जीवन में ५०० साधु-दीक्षायें दी थीं।

अन्य प्रतिष्ठितकार्य और आपकी शुद्ध क्रियाशीलता का प्रभाव

जै० गु० क० भा० २ पृ० ७४३

जै० ए० रा० माला० भा० १ पृ० २२, २३.

हेमविमलसूरि की निश्रा में रहने वाले साधु शुद्ध साध्वाचारी एवं प्रखर पंडित और शास्त्रों के ज्ञाता होते थे। आपके शिष्य-समुदाय ने अनेक नवीन ग्रंथ, वृत्तियाँ, कथापुस्तकें संस्कृत-प्राकृत-भाषाओं में लिखी हैं। जिनमाणिक्यमुनि, हर्षकुलगणि आदि आपके प्रखर विद्वान् शिष्य थे। आपके शिष्य-वर्ग की विशेषता शुद्ध साध्वाचार की थी; अतः आपके नाम पर विमलशाखा पड़ गई। आपके साधुओं को लोग विमलशाखीय कह कर ही संबोधित करते थे। आपके समय में तपगच्छ में कुतुबपुरा, कमलकलशा और पालणपुरा ये तीन शाखायें और पड़ीं। संक्षेप में कि आपके समय में शुद्ध साध्वाचार का पालन करने के पक्ष में बड़े २ प्रयत्न हुये और फलतः कई एक शुद्धाचारी मतों की उत्पत्ति भी हुई।

हेमविमल-शाखा

कडुवामत

नाडूलाईवासी नागरज्ञातीय कडुवा नामक व्यक्ति का वि० सं० १५१४ में १६ वर्ष की वय में अहमदाबाद के आगमीया पन्यास हरिकीर्त्ति से मिलाप हुआ। कडुवा का मन शास्त्राभ्यास करके साधुदीक्षा ग्रहण करने का हुआ, परन्तु गुरु के मुख से यह श्रवण करके कि वर्तमान में शास्त्रोक्त विधि से साधु-दीक्षा पल सके संभव नहीं है; अतः उसने साधुध्यान में श्रावक के वेष में ही साधुभावपूर्वक रहकर विहार करना आरम्भ किया। उसने वि० सं० १५६२ में कडुकमत की स्थापना की और इस प्रकार त्रयस्तुतिकमत की आगमोक्त प्रथा का पुनः प्रादुर्भाव किया।*

बीजामत

वि० सं० १५७० में बीजा ने लुंकामत का त्याग करके अपना अलग शुद्धाचार के पालन करने में तत्पर रहने वाला मत स्थापित किया और वह मत बीजामत कहलाया।*

पार्श्वचन्द्रगच्छ

वि० सं० १५७२ में तपागच्छीय नागोरीशाखीय श्रीमद् पार्श्वचन्द्रसूरि ने शुद्ध साध्वाचार के पालन करने वाले पार्श्वचन्द्रगच्छ की स्थापना की। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हेमविमलसूरि का समय शुद्धसाध्वाचार के लिये की गई क्रांति के लिये प्रसिद्ध रहा है।*

वि० सं० १५८३ में हेमविमलसूरि का चातुर्मास विलासनगर में था। सूरि आनन्दविमल को आपने वटपल्ली से बुलवा कर गच्छभार संभलाना चाहा, लेकिन उन्होंने अस्वीकार किया। अंत में सौभाग्यहर्षसूरि को गच्छभार सौंपा और इस प्रकार शुद्धाचार का पालन करते हुये तथा प्रचार करते हुये आप वि० सं० १५८४ आश्विन शु० १३ को स्वर्गवासी हुये। आपने 'सूयगडांगसूत्र' पर दीपिका और 'मृगापुत्र-चौपाई' (सज्झाय) लिखी।

स्वर्गारोहण

जै० गु० क० भा० २ पृ० ७४३, ७४४। जै० सा० सं० इति० पृ० ५१७-१८-१६, ५०६

जै० गु० क० भा० २ सं० १ पृ० ५८२ (६५)। जै० प० रा० भा० १ पृ० ३२ (टिप्पणी)। त० प० वंश-वृक्ष पृ० ११

*'तदानीं वि० द्वापष्ठ्यधिक पंचदशशत १५६२ वर्षे "सम्प्रति साधवो न दृश्यन्ते" इत्यादिप्ररूपणापरःकडुकनाम्नो गृहस्थात् त्रिस्तुतिकमतशालितोत् कडुकनाम्ना मतोत्पत्तिः॥ तथा वि० संवत्सप्तत्यधिकपंचदशशतं १५७० वर्षे लुंकामताद्विनिर्गत्य बीजाख्यवेषधरेण

तपागच्छीय श्रीमद् सोमविमलसूरि

गणिपद वि० सं० १५६०, स्वर्गवास वि० सं० १६३७

खंभात के समीप में कंसारी नामक ग्राम में प्राग्वाटज्ञातीय वृद्ध मंत्री समधर के परिवार में मंत्री रूपचन्द्र की स्त्री अमरादेवी की कुक्षि से वि० सं० १५७० में एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ। अल्पवय में ही उसने हेमविमल-सूरि के करकमलों से अहमदाबाद में दीक्षा ग्रहण की और सोमविमल नाम धारण किया। दीक्षा-महोत्सव सं० भूंभच जसदेव ने बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न किया था।

वंश-परिचय, दीक्षा और आचार्यपद

कुशाग्रबुद्धि होने के कारण आपने थोड़े वर्षों में ही शास्त्रों का अच्छा अभ्यास कर लिया और व्याख्यान-कला में भी निपुणता प्राप्त करली। फलस्वरूप आपको खंभात में सं० १५६० फा० कृ० ५ को प्राग्वाटज्ञातीय कीका द्वारा आयोजित महोत्सवपूर्वक गणिपद प्राप्त हुआ।

वि० सं० १५६४ फा० कृ० ५ को शिरोही में गांधी राणा जोधा द्वारा आयोजित महामहोत्वपूर्वक श्रीमद् सौभाग्यहर्षसूरि ने आपको पंडितपद प्रदान किया। तत्पश्चात् आपने अजाहरी में शारदा की आराधना की और शारदा को प्रसन्न करके उससे वर प्राप्त किया। वहाँ से विहार करके आप गुरु के साथ में विद्यापुर आये। विद्यापुर में आपको जनमेदनी के समक्ष वि० सं० १५६५ में वाचकपद से अलंकृत किया गया। श्रेष्ठि दो० तेजराज मांगण ने उत्सव में बहुत द्रव्य व्यय किया था।

विद्यापुर से विहार करके आप वि० सं० १५६७ में अहमदाबाद आये। अहमदाबाद में श्रीमद् सौभाग्य-हर्षसूरि ने आपको सूरिपद प्रदान किया। चतुर्विधसंघ के अधिनायक रूप से आपश्री ने तीर्थों की कई वार यात्रायें की थीं। कुछ एक का यथाप्राप्त संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है।

विद्यापुरनिवासी दो० तेजराज मांगण ने वि० सं० १५६७ में ही आपश्री के साथ में अनेक ग्रामों के संघों के सहित चार लक्ष रुपयों का व्यय करके प्रमुख तीर्थों की संघयात्रा की थी। इस संघ में भिन्न २ गच्छों के अन्य ३०० साधु सम्मिलित हुये थे।

वि० सं० १५६६ में आपका चातुर्मास अणहिलपुरपत्तन में हुआ। वि० सं० १६०० में पत्तन के श्री संघ ने आपश्री के साथ में विमलाचल और रैवंतगिरितीर्थों की यात्रा की।

उक्त यात्रा के पश्चात् आप विहार करते हुए दीवबंदर पधारे और वहाँ वि० सं० १६०१ चै० शु० १४ को अभिग्रह धारण किया। अभिग्रह के पूर्ण होने पर आपश्री शत्रुंजय की यात्रा को पधारे। शत्रुंजय की तृतीय यात्रा करके आप विहार करते हुये धोलका, खंभात जैसे प्रसिद्ध नगरों में होते हुए कान्हमदेश में वणछरा नामक ग्राम में पधारे। वहाँ आपने आणंदप्रमोद मुनि को

गच्छाधीशपद की प्राप्ति

''बीजामती'' नाम्ना मतं प्रवर्तितं तथा वि० द्विसप्तत्यधिकपंचदशशत १५७२ वर्षे नागपुरीय तपागणान्निर्गत्य उपाध्यायपार्श्वचन्द्रेण स्वनाम्ना मतं प्रादुष्कृतमिति' ॥१७॥ त० प० स० पृ० ६७, ६८, ६६ (तपा० पट्टावली)

वाचकपद प्रदान किया। वणछरा के श्रीसंघ ने श्री वाचकपदोत्सव बड़ी ही शोभा और समृद्धि से सम्पन्न किया था।

वणछरा से विहार करके आपश्री आम्रपद (आमोद) नामक नगर में पधारे। वहाँ पर श्रे० सं० मांडण द्वारा आयोजित उत्सवपूर्वक मुनि विद्यारत्न और विद्याजय को आपने विबुध की पदवी प्रदान की। वि० सं० १६०२ में आपका चातुर्मास अहमदाबाद में, वि० सं० १६०३ में वागड़देश के गोलनगर में, वि० सं० १६०४ में ईडर में और तत्पश्चात् वि० सं० १६०५ में आपका चातुर्मास खंभात में हुआ। वि० सं० १६०५ माघ शु० ५ को श्री संघ ने आपको खंभात में बड़ा भारी महोत्सव करके भारी जनसमूह के समक्ष गच्छाधीशपद से अलंकृत किया।

वि० सं० १६०८ में आपने चातुर्मास राजपुर में किया और वि० सं० १६०६ में हविद्पुर में किया। हविद्पुर में आपने मासकल्प किया था। वि० सं० १६१० में आपका चातुर्मास अणहिलपुरपत्तन में हुआ। पत्तन में आपश्री ने वि० सं० १६१० वै० शु० ३ को चौठिया अमीपाल द्वारा कारित प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। वि० सं० १६१७ में आपका चातुर्मास अक्षयदुर्ग नामक नगर में हुआ। आश्विन शु० १४ को आपने वहाँ अशुभसूचक शकुन देख कर संघ को चेताया कि दुर्ग का भंग होगा।

अन्य चातुर्मास और गच्छ की विशिष्ट सेवा

आपकी बात को स्वीकार करके संघ ने आपके सहित हाथिलग्राम में कुछ दिनों के लिये निवास किया। वहाँ से थोड़े अंतर पर हुँडग्रद नामक ग्राम में मरकी का प्रकोप उठा। आपश्री हुँडग्रद पधारे और मरकीरोग का निवारण किया। वि० सं० १६१६ में आपका चातुर्मास पुनः खंभात में हुआ और सं० १६२० में दरबार नामक ग्राम में हुआ। वहाँ से विहार करते हुये आप अनेक नगरों में विचरे और संघों का रोग, भय दूर करते हुये धर्म का प्रभाव फैलाते रहे। वि० सं० १६२२ में आपका चातुर्मास अहमदाबाद में था। वहाँ आपने छः विगय का अभिग्रह लिया और उनको पूर्ण किया।

इस प्रकार धर्म-प्रचार और गच्छ की प्रतिष्ठा बढ़ाते हुये वि० सं० १६३७ मार्गशिर मास में आपका स्वर्गवास हो गया। आपने अपने करकमलों से लगभग २०० दो सौ साधु-दीक्षायें दीं और अनेक जिनबिंबों की प्रतिष्ठायें कीं। आपको अनेक पदवियाँ जैसे अष्टावधानी, इच्छालिपिवाचक, वर्धमानविद्यासूरिमंत्रसाधक, चौर्यादिभयनिवारक, कुष्ठादिरोगनिवारक, कल्पसूत्रटबार्थादि-बहुसुगमग्रन्थकारक, शतार्थविरुद्धारक प्राप्त थीं।

स्वर्गारोहण और आपका महत्त्व

आपकी लिखी हुई कुछ प्राप्त कृतियों के नाम निम्न प्रकार हैं :—

१—श्रेणिकरास—जिसको आपने सं० १६०३ में लिखा था।

२—चंपकश्रेष्ठिरास—जिसको आपने विराटनगर में सं० १६२२ श्रावण शु० ७ को लिखा था।

३—धुल्लककुमाररास—जिसको आपने अहमदाबाद में वि० सं० १६३३ भाद्र कृ० ८ को लिखा था।

४—धम्मिलकुमाररास, ५ कल्पसूत्र-बालबोध, ६ दृष्टान्त-गीता आदि।

जै० गु० क० भा० २ पृ० ७४५ पर आपका दीक्षा सं० १५७४ लिखा है। मुझको यह भ्रमात्मक प्रतीत होता है।
सं० प्रा० जै० इति० पृ० ५५.

तपागच्छीय श्रीमद् कल्याणविजयगणि

दीक्षा वि० सं० १६१६, स्वर्गवास वि० सं० १६५५ के पश्चात्

गूर्जरभूमि में पलखड़ी नामक नगर में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० आजड़ रहता था। उसका पुत्र जीधर था। जीधर ने संघयात्रा की थी; अतः वह संघवी कहलाता था। सं० जीधर के दो पुत्र थे। दोनों पुत्रों में राजसी अधिक उदार और गुणवान् हुआ। राजसी का पुत्र थिरपाल अति प्रख्यात पुरुष हुआ। अहमदाबाद में इस समय मुहम्मद बेगड़ा राज्य करता था। वह थिरपाल पर अधिक प्रसन्न था। श्रे० थिरपाल को उसने लालपुर की जागीर प्रदान की थी। थिरपाल ने तपागच्छीय श्रीमद् हेमविमलसूरि के सदुपदेश से वि० सं० १५६२ में एक जिनमन्दिर बनाया था। वि० सं० १५७० में हेमविमलसूरि ने थिरपाल के अत्याग्रह से मुनि आनन्दविमल को डाभिलाग्राम में सूरिपद प्रदान किया था। सूरिपदमहोत्सव में थिरपाल ने व्यवस्थासंबंधी पूर्ण भाग लिया था। उसी अवसर पर बिम्बप्रतिष्ठोत्सव भी भारी धूम-धाम से किया गया था। थिरपाल के छः पुत्र थे—मोटा, लाला, खीमा, भीमा, करमण और धरमण। छः ही भ्राताओं ने संघयात्रायें कीं और वे संघपति कहलाये।

वंश-परिवार और प्रसिद्ध पुरुष थिरपाल

थिरपाल के चौथे पुत्र संघवी भीमा के पांच पुत्र हुये—सं० हीरा, सं० हरषा, सं० विरमाल, सं० तेजक और एक और। सं० भीमा ने चारों पुत्रों का विवाह करके उनको अपनी जीवितावस्था में ही अलग २ कर दिया और फिर दोनों स्त्री पुरुष स्वर्ग सिधारे। सं० हरषा की स्त्री पूंजी की कुक्षि से वि० सं० १६०१ आश्विन कृ० ५ सोमवार को एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम ठाकुरसी रक्खा गया। छः वर्ष की वय में ठाकुरसी को पढ़ने के लिये पाठशाला में भेजा गया। एक समय जगद्गुरु हीरविजयसूरि का लालपुर में शुभागमन हुआ। ठाकुरसी के कुटुम्बीजन हीरविजयसूरि के भक्त थे। उन्होंने आचार्यजी का स्वागतोत्सव बड़े धूम-धाम से किया। ठाकुरसी उस समय योग्य अवस्था को पहुँच गया था। हीरविजयसूरि की वैराग्यभरी देशना श्रवण कर उसके हृदय में वैराग्यभावनायें उत्पन्न हो गई। माता, पिता और परिजनों ने ठाकुरसी को बहुत समझाया, लेकिन उसने एक की नहीं सुनी। अंत में थक कर सबने उसको दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दे दी। इस अन्तर में आचार्य हीरविजयसूरि महेसाणा (महीशानक) नगर को पधार गये थे। ठाकुरसी अपने माता, पिता को साथ लेकर अपने नाना चंपक के घर, जो महेसाणा में ही रहते थे आया। श्रे० चंपक ठाकुरसी की माता पूंजी का पिता था। श्रे० चंपक के दो पुत्र सोमदत्त और भीमजी थे। दोनों ही भ्राताओं का अपनी बहिन और भाणेज ठाकुरसी पर अगाध प्रेम था। ठाकुरसी को उन्होंने भी बहुत समझाया। परन्तु जब ठाकुरसी ने किसी की नहीं मानी; तब सोमदत्त और भीमजी ने दीक्षामहोत्सव का आयोजन अपने व्यय से किया और बहुत धूम-धाम से वि० सं० १६१६ वैशाख कृ० २ को ठाकुरसी को जगद्गुरु श्रीमद् हीरविजयसूरि ने दीक्षा प्रदान की और मुनि कल्याणविजय आपका नाम रक्खा।

कल्याणविजयजी का जन्म और दीक्षा

जगद्गुरु हीरविजयसूरि लालपुर से विहार कर अन्यत्र पधारे। मुनि कल्याणविजय भी उनके साथ में विहार करने लगे। वि० सं० १६२४ तक आपने वेद, पुराण, तर्कशास्त्र, छंदग्रंथ और चिंतामणि जैसे प्रसिद्ध ग्रंथों का अध्ययन करके अच्छी योग्यता प्राप्त करली। हीरविजयसूरि ने आपको सब प्रकार से योग्य समझ कर वि० सं० १६२४ फाल्गुण कृ० ७ को अणहिलपुरपत्तन में महा-महोत्सव पूर्वक उपाध्यायपद प्रदान किया।

स्वाध्याय और वाचकपद की प्राप्ति

उपाध्याय कल्याणविजयजी व्याख्यानकला में अति निपुण थे। इनकी सरस और सरल भाषा में कठिन से कठिन विषयों को श्रावकगण अच्छी प्रकार समझ जाते थे। सरस व्याख्यानकला के कारण उपाध्याय कल्याण-विजयजी की ख्याति अत्यधिक प्रसारित होने लगी। ये भी ग्राम २ भ्रमण करके धर्मप्रचार करने लगे। जहाँ जहाँ ये गये, वहाँ उग्रतप और बिम्ब-प्रतिष्ठायें अधिक संख्या में हुईं। खंभात और अहमदाबाद में बिम्ब-प्रतिष्ठा करवा कर गुरु महाराज के आदेश से वागड़ और मालवप्रान्त में इन्होंने भ्रमण करना प्रारंभ किया। धुँडासा नामक ग्राम में इन्होंने ब्राह्मण पंडितों को वाद में परास्त किया। वहाँ से आपने वागड़देश में अंतरिक्षप्रभु की यात्रा की। कीका भट ने आपके व्याख्यान से रंजित होकर एक जिनालय बनवाया और उपाध्यायजी ने उपरोक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा जगद्गुरु हीरविजयसूरि के करकमलों से बड़ी सज-धज के साथ करवाई। वहाँ से विहार करके आप अवन्ती पधारे। वहाँ आप में और स्थानकवासी साधुओं में वाद हुआ। वाद में आपकी जय हुई और वहाँ आपने चातुर्मास किया।

अलग विहार और धर्म की सेवा

अवंती से विहार करके आप भारी संघ से श्री मक्षीजीतीर्थ की यात्रा को पधारे। श्रे० सोनपाल ने इस संघ में भारी व्यय किया था। उसने मक्षीतीर्थ में साधर्मिकवात्सल्य किया और उपाध्यायजी की सुवर्ण से पूजा की। तत्प-श्चात् संघ के समक्ष श्रे० सोनपाल ने अपनी अन्तिम अवस्था जानकर उपाध्यायजी महाराज से उसको दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। उपाध्यायजी ने श्रे० सोनपाल को महामहोत्सव पूर्वक दीक्षा प्रदान की और उसका मुनि सोनपाल ही नाम रक्खा। दीक्षा ग्रहण करते ही मुनि सोनपाल ने उपाध्याय महाराज साहब से अनशनव्रत ग्रहण किया। इस व्रत का महोत्सव श्रे० नाथूजी ने किया था। नव दिन अनशन करके मुनि सोनपाल स्वर्ग गये।

मक्षीतीर्थ की यात्रा और सोनपाल की दीक्षा और उनका स्वर्गारोहण

मक्षीतीर्थ से आप सारंगपुरक्षेत्र की यात्रा करते हुये मण्डपदुर्ग (मांडवगढ़) पधारे और वहाँ आपने चातु-र्मास किया। मांडवगढ़ से चातुर्मास के पश्चात् आप अनेक श्रावक, श्राविकाओं के सहित बड़ी धूम-धाम से बड़वाण पधारे। इस यात्रा का व्यय श्रे० भाईजी, सौधजी और गांधी तेजपाल ने किया था। बड़वाण में बावनगजी जिनप्रतिमा के दर्शन करके आपने खानदेश की ओर विहार किया और बुरहानपुर में आपने चातुर्मास किया। चातुर्मास के पश्चात् बुरहानपुर के श्रेष्ठि भानुशाह ने उपाध्यायजी महाराज की तत्त्वावधानता में अंतरिक्षतीर्थ के लिये संघयात्रा निकाली। अंतरिक्षतीर्थ की यात्रा करके आप देवगिरि पधारे और वहाँ ही आपका चातुर्मास हुआ। देवगिरि से आप प्रतिष्ठानपुर (पैठण) पधारे। यहाँ आपको जगद्गुरु हीरविजयसूरि का मरुधरप्रान्त से पत्र मिला कि तुरन्त विहार करके इधर आवें; क्योंकि मुझे दिल्ली जाने के लिये सम्राट् अकबर बादशाह का निमंत्रण प्राप्त हो चुका था।

अन्यत्र विहार और सूरी-श्वर का पत्र

सूरीश्वर से भेंट और विराट-नगर में प्रतिष्ठा

प्रतिष्ठानपुर से आपने तुरन्त मारवाड़ की ओर विहार किया और सादड़ी में जाकर जगद्गुरु के दर्शन किये। सूरीश्वर ने उपाध्यायजी से कहा कि विजयसेनमुनि को सूरिपद दिया गया है; अतः उनकी आज्ञा में चलना और गूर्जरभूमि में विहार करके धर्म की प्रभावना करना, जिससे शासन की सेवा होगी और गच्छ का गौरव बढ़ेगा। तत्पश्चात् हीरविजयसूरि ने दिल्ली की ओर प्रयाण किया। उपाध्याय कल्याणविजयजी गुरु के दिल्ली से लौटने तक मारवाड़ में ही विहार करते रहे। जगद्गुरु हीरविजयसूरि सम्राट् अकबर से मिलकर, भारी संमान प्राप्त करके लौटे और नागोर में पधारे। उपाध्यायजी महाराज भी नागोर पहुँचे और गुरु के दर्शन करके तथा दिल्ली राज-दरबार में मिले संमान को श्रवण करके अत्यन्त प्रसन्न हुये। नागोर में विराटनगर के शाही अधिकारी संघपति इन्द्रराज ने आकर जिनालय की प्रतिष्ठा करने की विनती की। गुरुमहाराज ने उपाध्याय कल्याणविजयजी को विराटनगर में जिनालय की प्रतिष्ठा करवाने की आज्ञा दी। संघपति अत्यन्त प्रसन्न हुआ और जब उपाध्याय श्री का विराटनगर में आगमन हुआ तो उसने भारी महोत्सव करके उनका नगर-प्रवेश करवाया। शुभमुहूर्त में प्रतिष्ठा-कार्य करके मूलनायक विमलनाथ प्रभु की प्रतिमा स्थापित की तथा सं० इन्द्रराज ने अपने पिता भारहमल के श्रेयार्थ श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा और पुत्र अजयराज के श्रेयार्थ श्री आदिनाथप्रभु की और मुनिसुव्रतस्वामी की प्रतिमायें उपाध्यायजी के पवित्र कर-कमलों से प्रतिष्ठित करवाईं। सं० इन्द्रराज ने बहुत द्रव्य व्यय करके संघ की पूजा की और साधर्मिक-वात्सल्य किया। विराटनगर से विहार करके आप गूर्जरभूमि में पधारे। खंभात-वासी सं० उदयकरण ने वि० सं० १६५५ मार्ग कृ० २ सोमवार को श्रीमद् विजयसेनसूरि द्वारा सिद्धाचल पर श्रीमद् विजयहीरसूरिजी की पादुका स्थापित करवाई, उस समय आप भी उपस्थित थे। धर्म की इस प्रकार प्रभावना करते हुये योग्य अवस्था प्राप्त करके इन्हीं दिनों में आप स्वर्ग को पधारे। आपके प्रशिष्य-शिष्य उपा० यशोविजयजी वर्तमान युग में प्रसिद्ध महाविद्वान् हुये हैं।

१—जै० ऐ० रासमाला पृ० ३२ (कल्याणविजयगणि)

२— ,, ,, पृ० २१४ (कल्याणविजयगणि नो रास)

३— शिष्य-परंपरा:—

जगद्गुरु हीरविजयसूरि
|
उपाध्याय कल्याणविजय
|
पं० लाभविजयगणि
|
जीतविजय — नवविजय
नवविजय
|
उपाध्याय यशोविजय

४—D. C. M. P. (G. O. S. Vo. No. CXVI.) P. 1 (नयचक्र की पत्तन-भंडार की पुस्तक के प्रारम्भ में)

५—श्री यशोविजयकृत ३५० गाथा की प्रशस्ति के आधार पर

६—जै० गु० क० भा० २ पृ० २०, २१ (२६०)

तपागच्छीय श्रीमद् हेमसोमसूरि

दीक्षा वि० सं० १६३०. सूरिपद वि० सं० १६३६

पालणपुर के पास में धाणधार नामक प्रान्त में प्रग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि जोधराज की पत्नी रूढ़ी नामा की कुक्षि से वि० सं० १६२३ में आपका जन्म हुआ और हर्षराज आपका नाम रक्खा गया। वि० सं० १६३० में वड़ग्राम में सोमविमलसूरि का पदार्पण हुआ। श्रे० जोधराज अपनी पत्नी और पुत्र सहित गुरु को वंदनार्थ वड़ग्राम गया। उस समय हर्षराज की आयु आठ वर्ष की ही थी। उसने दीक्षा लेने की हठ ठानी और बहुत समझाने पर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। अंत में दीक्षा लेने की आज्ञा देनी पड़ी और धूम-धाम सहित सोमविमलसूरि ने हर्षराज को विशाल समारोह में साधु-दीक्षा प्रदान की और हेमसोम नाम रक्खा। वि० सं० १६३५ में तेरह वर्ष की वय में ही आपको पंडितपद प्राप्त हुआ। सं० लक्ष्मण ने पंडितपदोत्सव का आयोजन किया था। एक वर्ष पश्चात् ही वड़ग्राम के श्री संघ ने भारी महामहोत्सवपूर्वक वि० सं० १६३६ में श्रीमद् सोमविमलसूरि के करकमलों से पं० हेमसोम को सूरिपद प्रदान करवाया। इस सूरिमहोत्सव में अधिक भाग श्रे० लक्ष्मण ने ही लिया था। चौदह वर्ष की बालवय में सूरिपद का प्राप्त होना आपके प्रतिभासम्पन्न, बुद्धिमान्, तेजस्वी एवं शुद्धसाध्वाचार तथा गच्छभार संभालने के योग्य होने जैसे आप में स्तुत्य गुणों के होने को सिद्ध करता है। साधन-सामग्री के अभाव में आपका अधिक वृत्तान्त देना अशक्य है।*

वंशपरिचय, दीक्षा और आचार्यपद

तपागच्छीय श्रीमद् विजयतिलकसूरि

दीक्षा वि० सं० १६४४. स्वर्गवास वि० सं० १६७६.

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुजरात-प्रदेश के प्रसिद्ध नगर वीशलपुर में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि देवराज रहता था। उसकी स्त्री का नाम जयवंती था। दोनों स्त्री-पुरुष धर्मप्रेमी एवं उदारमना थे। इनके रूपजी और रामजी नाम के दो पुत्र थे। दोनों का जन्म क्रमशः वि० सं० १६३४ और १६३५ में हुआ था। उन दिनों में खंभात अति प्रसिद्ध और गौरवशाली नगर था। जैन-समाज का नगर में अधिक गौरव एवं मान था। खंभात में ओसवालज्ञातीय पारखगोत्रीय राजमल और विजयराज नामक दो धनाढ्य भाई रहते थे। उन्होंने बिम्बप्रतिष्ठा करवाने का विचार किया। श्रीमद् ... सूरिजी की आज्ञा से आचार्य विजयसेनसूरि बिम्बप्रतिष्ठा करवाने के लिये खंभात में पधारे। आप श्री का नगर-

वंश-परिचय और दीक्षा

*जै० गु० क० भा० २ पृ० ७४७ (५८)

प्रवेश शाही सज-धज से किया। वि० सं० १६४४ में जिनबिंब-प्रतिष्ठा महामहोत्सव पूर्वक बड़ी धूम-धाम से पूर्ण हुई। इस प्रतिष्ठोत्सव में अनेक समीप एवं दूर के नगर, पुर, ग्रामों से छोटे-बड़े श्रीसंघ और अनेक जैनपरिवार आये थे। वीशलनगर से श्रेष्ठि देवराज भी अपनी पत्नी और दोनों प्रिय पुत्रों को लेकर आया था। देवराज को यहाँ वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने अपने दीक्षा लेने के विचार को अपनी अनुगामिनी धर्मपरायणा स्त्री जयवंती से जब कहा तो उसने भी दीक्षा लेने की अपनी भावना प्रकट की। उस समय तक दोनों पुत्र भी क्रमशः आठ और नव वर्ष के हो चुके थे। वे भी अपने माता, पिता को दीक्षा लेते देखकर दीक्षा लेने के लिये हठ करने लगे। अन्त में समस्त परिवार को शुभ मुहुर्त में श्रीमद् विजयसेनसूरि ने साधु-दीक्षा प्रदान की। रूपजी और रामजी के क्रमशः साधुनाम रत्नविजय और रामविजय रक्खे गये। इन दोनों बाल-मुनियों को सूरिजी ने विद्याभ्यास में लगा दिये। दैवयोग से बालमुनि रत्नविजय का थोड़े ही समय पश्चात् स्वर्गवास हो गया। मुनि रामविजय उपाध्याय सोमविजयजी की संरक्षणता में विद्याध्ययन करते रहे। सूरिजी ने आपको कुछ वर्षों पश्चात् पण्डितपद प्रदान किया।

तपागच्छाधिपति श्रीमद् विजयदानसूरिजी के पट्टालंकार जगद्विख्यात् श्रीमद् विजयहीरसूरिजी और प्रखर विद्वान् स्वतंत्रविचारक उपाध्याय धर्मसागरजी में 'कुमतिकुद्दाल' नामक ग्रंथ को लेकर विग्रह उत्पन्न हो गया।

सागरपक्ष की उत्पत्ति और पं० रामविजयजी को आचार्यपद

उपाध्यायजी 'कुमतिकुद्दाल' ग्रन्थ की मान्यता के पक्ष में थे और सूरिजी विरोध में। दोनों में कभी मेल हो जाता और कभी विग्रह बढ़ जाता। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहा। तपागच्छ में इस विग्रह के कारण दो पक्ष बन गये—विजयपक्ष और सागरपक्ष। श्रीमद् विजयदानसूरिजी ने जब पक्षों के कारण गच्छ की मान-प्रतिष्ठा को धक्का लगने का अनुभव किया, उन्होंने 'कुमतिकुद्दाल' ग्रन्थ को जलशरण करवा दिया और उपाध्याय धर्मसागरजी को समझा-बुझा कर गच्छ में पुनः लिया। उपाध्याय धर्मसागरजी अलग विचरण करके पुनः 'कुमतिकुद्दालग्रंथ' की मान्यतानुसार अपना अलग पंथ चलाने लगे। किसी भी प्रकार फिर भी विजयहीरसूरि सहन करते रहे और उधर उपाध्याय धर्मसागरजी ने भी कभी गच्छ के टुकड़े करने के लिये प्रबल प्रयत्न नहीं किया। दोनों की मृत्यु के पश्चात् जो लगभग साथ साथ ही घटी विजयपक्ष और सागरपक्ष में एक दम द्वंद्वता बढ़ गई। श्रीमद् विजयहीरसूरि के पट्टधर श्रीमद् विजयसेनसूरि इस बढ़ती हुई द्वंद्वता को दबाने में असमर्थ रहे। वि० सं० १६७२ ज्ये० कृ० ११ को विजयसेन-सूरि का स्वर्गारोहण हुआ और तत्पश्चात् विजयदेवसूरि गच्छनायकपद को प्राप्त हुये। ये आचार्य सागरपक्ष में सम्मिलित हो गये। इस पर विजयपक्ष में बड़ी खलभली मच गई। विजयपक्ष में प्रमुख साधु उपाध्याय सोम-विजयजी ही थे। इन्होंने अन्य प्रमुख साधुओं को, प्रतिष्ठित श्रेष्ठियों को साथ लेकर विजयदेवसूरिजी को अनेक बार समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु संतोषजनक हल कभी नहीं निकला। अंत में हार कर विजयपक्ष ने अपना संमेलन किया और निश्चित् किया कि हीर-परम्परा का अस्तित्व रखने के लिये किसी नवीन आचार्य की स्थापना

ऐ० रा० सं० भा० ४ पृ० २, ३, ४.
ऐ० रा० सं० भा० ४ (निरीक्षण) पृ० ५६, १३, १४, १५, १६, १७, १८, २१, २२.
ऐ० रा० सं० भा० ४ पृ० ७२, ७३ तथा (निरीक्षण) पृ० २२, २३

करनी चाहिए। निदान सूरत, खंभात, बुरहानपुर, सिरोही आदि प्रसिद्ध नगरों के श्री संघों के अनुमति-पत्र मंगवाकर राजनगर में वि० सं० १६७३ पौ० शु० १२ बुधवार के दिन शुभ मुहूर्त में उपाध्याय सोमविजयजी, उपाध्याय नन्दीविजयजी, उपा० मेघविजयजी, वाचक विजयराजजी, उपा० धर्मविजयजी, उपा० भानुचन्द्रजी, कविवर सिद्धचन्द्रजी आदि विजयपक्ष के प्रसिद्ध साधुओं ने तथा अनेक ग्राम, नगर, पुरों से आये हुये श्री संघों ने तथा श्री संघों के अनुमति-पत्रों के आधार पर सबने एक मत होकर बृहद्शाखीय विजयसुन्दरसूरि के करकमलों से आपश्री को आचार्यपदवी प्रदान की गई और स्व० विजयसेनसूरिजी के पट्ट पर आपको विराजमान किया और विजयतिलकसूरि आपका नाम रक्खा। यह सूरिपदोत्सव बड़ी ही सज-धज एवं शाही ठाट-पाट से किया गया था।

राजनगर से आप श्री विहार करके प्रसिद्ध नगर शिकन्दरपुर में पधारे। सम्राट् जहाँगीर के उच्च पदाधिकारी मकरुखान के सैनिक तथा कर्मचारियों ने अनेक शृंगारे हुये हाथी और घोड़ों के वैभवमध्य आपका नगर-प्रवेश बड़ी ही श्रद्धा एवं भाव-भक्तिपूर्वक करवाया। सुवर्ण और चांदी की मुद्राओं से आपकी श्रावकों ने पूजा की और बहुत द्रव्य व्यय किया। वहाँ आपने पं० धनविजय आदि आठ मुनियों को वाचकपद प्रदान किया और समस्त तपागच्छ के प्रमुख व्यक्तियों का एक सम्मेलन करके प्रान्त-प्रान्त में आदेशपत्र भेजे। इस प्रकार विजयतिलकसूरि गच्छभार को वहन करने लगे।

विजयतिलकसूरिजी का शिकंदरपुर में पदार्पण

विजयपक्ष और सागरपक्ष में कलह दिनोंदिन अधिक बढ़ने लगा। इसके समाचार बादशाह जहाँगीर तक पहुंचे। मुगलसम्राट् अकबर हीरविजयसूरि का बड़ा ही सम्मान करता था। उसी प्रकार उसका पुत्र जहाँगीर भी तपागच्छीय इन सूरियों का बड़ा मान करता था। ऐसे गौरवशाली गच्छ में उत्पन्न हुये इस प्रकार के कलह को श्रवण कर उसको भी अति दुःख हुआ और उसने अपने दरबार में दोनों पक्षों के आचार्य विजयतिलकसूरि और विजयदेवसूरि को निमंत्रित किया। उस समय सम्राट् माडवगढ़ में विराजमान था। उपयुक्त समय पर दोनों आचार्य अपने अपने प्रसिद्ध शिष्यों एवं साधुओं के सहित सम्राट् जहाँगीर की राज्यसभा में मांडवगढ़ पहुँचे। सम्राट् ने दोनों पक्षों की वार्त्ता श्रवण की और अन्त में दोनों को आगे से कलह तथा विग्रह नहीं करने की अनुमति दी। दोनों आचार्यों ने सम्राट् के निर्णय को स्वीकार किया; परन्तु दो वर्ष पश्चात् पुनः कलह जाग्रत हो गया। दोनों आचार्य अलग २ अपना मत सुदृढ़ करने लगे और अपने २ पक्ष का प्रचार करने लगे।

बादशाह जहाँगीर का दोनों पक्षों में मेल करवाना

वि० सं० १६७६ पौष शु० १३ को सिरोही (राजस्थान) में विजयतिलकसूरिजी ने उपाध्याय सोमविजयजी के शिष्य कमलविजयजी को आचार्यपद प्रदान किया और उनका नाम विजयानन्दसूरि रक्खा। दूसरे ही दिन चतुर्दशी को आप स्वर्ग को सिधार गये। विजयतिलकसूरि का मान तपगच्छ में हुये साधु एवं आचार्यों में अधिक ऊंचा गिना जाता है। आपश्री धर्मशास्त्रों के अच्छे ज्ञाता और लेखक थे, परन्तु दुःख है कि अभी तक आपश्री की कोई उल्लेखनीय कृति प्रकाश में नहीं आई है।

स्वर्गारोहण

ऐ० रा० सं० भा० ४। जै० गु० क० भा० २ पृ० ७४८

विजयतिलकसूरिजी का पादुका-लेख वि० सं० १६७६ फा० शु० २ का सिरोही में है।

तपागच्छीय श्रीमद् विजयाणंदसूरि

दीक्षा वि० सं० १६५१. स्वर्गवास वि० सं० १७११

मरुधरप्रान्त के वररोह नामक ग्राम में श्रीवंत नामक प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि रहता था। उसकी स्त्री का नाम शृंगारदेवी था। वि० सं० १६४२ में चरित्रनायक का जन्म हुआ और कल्याणमल आपका नाम रक्खा गया। अतिशय प्रेम और स्नेह के कारण आप को सब कला, कलो कहकर ही सम्बोधित करते थे। आप प्रखर बुद्धि एवं मोहक आकृति वाले थे। आपको होनहार समझ कर नव (९) वर्ष की अल्प वय में यवन-सम्राट् अकबर-सम्मान्य जगद्विख्यात सूरि-सम्राट् तपागच्छाधिपति श्रीमद् विजयहीरसूरि ने वि० सं० १६५१ माह शु० ६ को दीक्षा दी और आपको उपाध्याय सोमविजयजी के शिष्य बनाये। कमलविजय आपका नाम रक्खा गया।

वंश-परिचय और दीक्षा

वि० सं० १६५२ में सूरिसम्राट् हीरविजयसूरि का स्वर्गवास हुआ और उनके पट्ट पर श्रीमद् विजयसेनसूरि विराजमान हुये। अकबर सम्राट् आपका भी बड़ा सम्मान करता था। सम्राट् ने आपको 'सूरिसवाई' का पद प्रदान किया था। वि० सं० १६७० में 'सूरिसवाई' विजयसेनसूरि ने चरित्र-नायक मुनि कमलविजय को उनकी प्रखर बुद्धि और विद्यानुराग को देखकर 'पंडित' पद प्रदान किया। वि० सं० १६७२ में 'सूरिसवाई' का स्वर्गवास हो गया और विजयदेवसूरि उनके पट्ट पर विराजे। विजयदेवसूरि प्रखर बुद्धिमान् और तपस्वी थे। ये सागरपक्ष में जा सम्मिलत हुये। इससे तपागच्छ में भारी हल-चल मच गई। उपाध्याय सोमविजय, भानुचन्द्र, सिद्धचन्द्र और चरित्रनायक ने इनको समझाने का बहुत प्रयत्न किया; परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई। निदान रामविजय नामक मुनिराज को वि० सं० १६७२ में आचार्यपद से सुशोभित करके स्वर्गस्थ आचार्य के पट्ट पर विराजमान किया और उनका विजयतिलकसूरि नाम रक्खा। वि० सं० १६७६ में विजयतिलकसूरि ने सिरोही (राजस्थान) में आपश्री को महामहोत्सवपूर्वक आचार्य-पद प्रदान किया और आपका नाम विजयाणंदसूरि रक्खा।

पंडितपद और आचार्यपद की प्राप्ति

वि० सं० १६७६ में ही विजयतिलकसूरि का स्वर्गवास हो गया। और उनके पट्ट पर आपश्री विराजमान हुये; परन्तु विजयदेवसूरि के सागरपक्ष में सम्मिलित हो जाने का आपको दुःख हो रहा था। वि० सं० १६८० तक आपने मेवाड़ और मारवाड़-प्रदेशों में विहार किया। आपके साथ में आठ वाचक-मेघविजय, नन्दविजय, उपा० धनविजय, देवविजय, विजयराज, दयाविजय, धर्मविजय और सिद्धिचन्द्र और वाद में कुशल कई वादी पण्डित थे। सागरपक्ष के विरुद्ध आपने खूब प्रचार किया। मेवाड़ और मारवाड़ में अतः सागरपक्ष नहीं बढ़ सका। वि० सं० १६८१ में विजयदेवसूरि अहमदाबाद में विराजमान थे। सागरपक्ष में पड़कर इन्होंने अनेक कष्ट

जै० गु० क० भा० १ पृ० ५४४, ५४५। जै० ऐ० रा०मा० भा० १ पृ० ३०
जै० गु० क० भा० ३ खं० २। जै० सा० सं० इति० पृ० ५६८(८३१)
ऐ० रा० सं० भा० ४ पृ० ८०.। ऐ० रा० सं० भा० ४ के अधिकार २ में सविस्तार वर्णन है।
जै० गु० क० भा० २ पृ० ७४६ (६१)

देखे और मेल करना चाहते थे। सिरोही का दीवान मोतीशाह तेजपाल उपरोक्त दोनों आचार्यों में मेल कराने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा था। चरित्रनायक तो पारस्परिक भेद को नष्ट करने का प्रयत्न कर ही रहे थे। वे इस समय ईडर में थे। संघ और साधुओं की प्रार्थना पर वे अहमदाबाद पधारे। दीवान मोतीशाह तेजपाल भी अहमदाबाद पहुँच गया। साधुओं एवं संघ के प्रयत्नों से दोनों उपरोक्त आचार्यों में वि० सं० १६८१ प्रथम चैत्र शु० ६ नवमीं को मेल हो गया और आपने विजयदेवसूरि को नमस्कार किया। इससे आपकी संघ में अतिशय कीर्ति प्रसारित हुई। सिरोही के दीवान मोतीशाह तेजपाल को 'गच्छभेदनिवारणतिलक' और संघपतितिलक प्राप्त हुआ। अहमदाबाद के नगरसेठ शांतिदास को जो सागरमति था यह मेल बुरा लगा। उसने दोनों आचार्यों को कैद करवाने का प्रयत्न किया। परन्तु दोनों आचार्य किसी प्रकार बच कर ईडर जा पहुंचे। परन्तु दुःख की बात है कि यह मेल अधिक समय तक नहीं ठहर सका। पुनः मेल टूट गया और 'देवसूर' और 'आणंदसूर' नाम के दो प्रबल पक्ष पड़ गये, जिनका प्रभाव आज तक चला आ रहा है।

मेल टूट जाने से आपको अतिशय दुःख हुआ। निदान आपको विजयराजसूरि को अपना पट्टधर घोषित करना पड़ा। आपने अनेक तप किये और अनेक यात्रायें कीं और ६ बार जिनबिंबों की प्रतिष्ठायें कीं। सूरत और खंभात में आपका अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव रहा। आपने कई प्रकार के तप किये जैसे तेरहमासिक, वीशस्थानकपद-आराधना, सिद्धचक्र की ओली। आपने अनेक बार छट्ठ और अष्टमतप किये। एक बार आपने त्रैमासिक तप करके ध्यान किया था। आपने तीर्थ यात्रायें भी कई बार की थीं। श्री अर्बुदाचलतीर्थ की ६ बार, शंखेश्वरतीर्थ की पांच बार, तारंगगिरितीर्थ की दो बार, अंतरिक्षपार्श्वनाथतीर्थ की दो बार, सिद्धाचलतीर्थ की दो बार, गिरनारतीर्थ की एक बार—इस प्रकार आपने एक २ तीर्थ की कई बार यात्रायें की थीं। आप बड़े ही सरल स्वभावी और निष्कपट महात्मा थे। आप अपने पक्ष में मेल देखना चाहते थे। मेल हो जाने के पश्चात् विजयदेवसूरि की आज्ञा से आपने अनेक जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठायें की थीं। कपरवाड़ा नामक ग्राम में आपने २५० जिनबिंबों की प्रतिष्ठा की थी। अचलगढ़ के छोटे आदिनाथ-जिनालय में आप द्वारा प्रतिष्ठित वि० सं० १६९८ की चार जिनप्रतिमायें विराजमान हैं, जिनको सिरोहीनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय शाह गांगा के पुत्र वणवीर के पुत्र शाह राउल, लक्ष्मण आदि ने प्रतिष्ठित करवाई थीं। इस प्रकार धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुये खंभात में वि० सं० १७११ आषाढ़ कृ० १ मंगलवार को आपका स्वर्गवास हुआ। महाकवि ऋषभदास आपका अनन्य भक्त और श्रावक था।*

विजयानन्दसूरि की संक्षिप्त धर्म-सेवा और स्वर्गगमन

तपागच्छीय श्रीमद् भावरत्नसूरि

दीक्षा वि० सं० १७१४

मरुधरप्रांत के सोनगढ़ (जालोर) से ७ कोस के अन्तर पर गुढ़ा (बालोतरान) में प्राग्वाटज्ञातीय देवराज की धर्मपत्नी नवरंगदेवी की कुक्षी से भीमकुमार नाम का वि० सं० १६६६ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी

---

*अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४७१-८०। आ० क० म० मौ० तृतीय की प्रस्तावना

दीक्षा अहमदाबाद में श्रीमद् हीररत्नसूरि के करकमलों से वि० सं० १७१४ में हुई थी और उनका नाम भावरत्न रक्खा गया था। ये आचार्य बड़े ज्ञानी एवं सरल स्वभावी थे। तपागच्छाधिराज श्रीमद् विजयदानसूरि के पश्चात् उनके पट्टधर अकबर सम्राट्-प्रतिबोधक जगद्गुरु श्रीमद् विजयहीरसूरि थे। विजयहीरसूरि के पीछे गच्छ में दो शाखायें प्रारम्भ हो गई थीं। श्रीमद् विजयराजसूरि के पट्ट पर अनुक्रम से श्रीमद् विजयरत्नसूरि, हीररत्नसूरि और हीररत्नसूरि के पट्ट पर जयरत्नसूरि हुये। जयरत्नसूरि के पश्चात् उनके गुरुभ्राता श्रीमद् भावरत्नसूरि पट्टनायक बने। ये अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रभावक आचार्य थे। ये विक्रम की अट्ठारवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में विद्यमान थे।[1]

तपागच्छीय श्रीमद् विजयमानसूरि

दीक्षा वि० सं० १७१६, स्वर्गवास वि० सं० १७७०

आपका जन्म वि० सं० १७०७ में बुरहानपुर निवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वाघजी की पत्नी श्रीमती विमलादेवी की कुक्षि से हुआ था। आपका जन्मनाम मोहनचन्द्र था। आपके बड़े भ्राता का नाम इन्द्रचन्द्र था। वि० सं० १७१६ में दोनों भ्राताओं ने साधु-दीक्षा ग्रहण की। मानविजय आपका नाम रक्खा गया। तीस वर्ष की वय में वि० सं० १७३६ में प्रसिद्ध नगर सिरोही में श्रीमद् विजयराजसूरि ने आपको सर्व प्रकार योग्य समझ कर बड़ी धूम-धाम एवं उत्सव पूर्वक आपको भारी जनमेदिनी के समक्ष आचार्यपद प्रदान किया। यह उत्सव श्रे० धर्मदास ने बहुत व्यय करके सम्पन्न किया था। वि० सं० १७४२ आषाढ़ कृ० १३ को खंभात में श्रीमद् विजयराजसूरि का स्वर्गवास हो गया। उसी संवत् में फागण कृ० ४ को आपको विजयराजसूरि के पट्ट पर विराजमान किया गया। साणंद में वि० सं० १७७० माघ शु० १३ को आपका स्वर्गवास हो गया।[2]

तपागच्छीय श्रीमद् विजयऋद्धिसूरि

दीक्षा वि० सं० १७४२, स्वर्गवास वि० सं० १८०६

मरुधरप्रान्त के थाणा ग्राम में रहने वाले प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० जशवंतराज की धर्मपत्नी श्रीमती यशोदा की[3] कुक्षि से वि० सं० १७२७ में आपका जन्म हुआ। वि० सं० १७४२ में श्रीमद् विजयमानसूरि के कर-कमलों से दोनों पिता-पुत्रों ने साधु-दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम सूरविजय रक्खा गया। सिरोही में विजयमानसूरि ने

१–जै० गु० क० भा० ३ खण्ड २ पृ० २२६०-६१
२-३–जै० गु० क० भा० २ पृ० ७५१

आपको वि० सं० १७६६ में आचार्यपद प्रदान किया। श्रे० हरराज खीमकरण ने सूरिपदोत्सव बहु द्रव्य व्यय करके किया था। वि० सं० १७७० में जब विजयमानसूरि का स्वर्गवास हो गया, तो सार्णद में महता देवचन्द्र और महता मदनपाल ने पाटोत्सव करके आपको विजयमानसूरि के पाट पर विराजमान किया। वि० सं० १८०६ में सूरत में आप स्वर्ग सिधारे। आपके दो पट्टधर हुये—१. सौभाग्यसूरि और २. प्रतापसूरि।

तपागच्छीय श्रीमद् कर्पूरविजयगणि

दीक्षा वि० सं० १७२०, स्वर्गवास वि० सं० १७७५

गूर्जरभूमि की राजधानी अणहिलपुरपत्तन के सामीप्य में आये हुये वागरोड़ नामक ग्राम में प्राग्वाटज्ञातीय सुश्रावक श्रे० मीमजीशाह रहते थे। उनकी स्त्री का नाम वीरादेवी था। वीरादेवी की कुक्षि से कहानजी नाम का एक पुत्र वि० सं० १७०६ के लगभग हुआ। कहानजी छोटे ही थे कि उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। मीमजीशाह की एक बहिन का विवाह पत्तन में हुआ था। छोटे कहानजी को उनके फूफा पत्तन में ले गये।

वंश-परिचय, जन्म और माता-पिता का स्वर्गवास

एक समय पं० सत्यविजयजी पत्तन में पधारे। उस समय कहानजी चौदह वर्ष के हो गये थे। पन्यासजी महाराज की वैराग्यपूर्ण देशना श्रवण कर कहानजी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। फूफा आदि संबंधियों के बहुत समझाने पर भी वे नहीं माने। अंत में वि० सं० १७२० मार्ग मास के शुक्ल पक्ष में पन्यासजी महाराज ने कहानजी को दीक्षा दी और कर्पूरविजय नाम रक्खा। कर्पूरविजयमुनि ने शास्त्राभ्यास करके थोड़े वर्षों में ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। योग्य समझकर श्रीमद् विजयप्रभसूरि ने आपको आणंदपुर में पण्डितपद प्रदान किया।

गुरु का समागम, दीक्षा और पण्डितपद की प्राप्ति

गुरु की आज्ञा से आप अलग विहार करके धर्म का प्रचार करने लगे। आपके दो शिष्य थे—वृद्धिविजयगणि और क्षमाविजय पन्यास। आपका विहार-क्षेत्र प्रमुखतः गूर्जरप्रदेश, सौराष्ट्र और मारवाड़ रहा। वडीआर, राजनगर (अहमदाबाद), राधनपुर, साचोर, सादरा, सोजित्रा और वड़नगर शहरों में आपके अधिक श्रद्धालु भक्त थे। वि० सं० १७५६ के पौष शु० १२ शनिश्चर को उपाध्याय सत्यविजयजी का पत्तन में स्वर्गवास हो गया। आपको स्वर्गस्थ उपाध्यायजी के पट्टधर स्थापित किया गया।

विहार-क्षेत्र और स्वर्गवास

लगभग १९ वर्ष पर्यन्त जैन शासन की सूरिपन से सेवा करके वि० सं० १७७५ श्रावण कृ० १४ सोमवार को अनशनव्रत ग्रहण कर पत्तन नगर में आप स्वर्ग सिधारे।

जै० ए० रासमाला पृ० ३७-३९ (श्रीमद् सत्यविजयगणि)
" " " ४५-४६ (कर्पूरविजयगणि)
" " " ११८-१२५ (कर्पूरविजयगणिनिर्वाणरास)

तपागच्छीय पं० हंसरत्न और कविवर पं० उदयरत्न

वि० सं० १७४६ से वि० सं० १७६६

खेड़ा नामक ग्राम में विक्रमीय अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वर्धमानशाह रहता था। मानबाई नामा उसकी पतिपरायणा पत्नी थी। पं० हंसरत्न और पं० उदयरत्न दोनों इनके सुपुत्र थे। हंसरत्न बड़े और उदयरत्न छोटे सहोदर थे। बड़े होने पर दोनों भ्राताओं ने रत्नशाखा में दीक्षा ग्रहण की।

वंश-परिचय और दीक्षा

तपागच्छाधिराज विजयदानसूरि के पट्टधर आचार्य सम्राट् अकबर-प्रतिबोधक श्री श्रीमद् विजयहीरसूरि के पश्चात् विजयराजसूरि से रत्नशाखा उद्भूत हुई।

तपागच्छ-परम्परा

श्रीमद् विजयराजसूरि
|
रत्नविजयसूरि
|
श्री हीररत्नसूरि
|
- *श्री जयरत्नसूरि* → *श्री भावरत्नसूरि* → *श्री दानरत्नसूरि*
- *पं० श्री लब्धिरत्न* → *उपा० सिद्धरत्न*
  - *मेघरत्नगणि* → *श्री अमररत्न* → *पं० शिवरत्न* — *शिष्य उ० उदयरत्न*
  - *पं० राजरत्न* → *पं० लक्ष्मीरत्न* → *पं० ज्ञानरत्न* — *शिष्य हंसरत्न*

१–त० श्र० वंश-वृक्ष पृ० ७
२–पट्टावली समुच्चय पृ० १०६ (टिप्पणी)
३–'श्री राजविजयसूरीश्वर सद्गुरु, सकलसूरीनिं जीपेजी, तास पाटिं श्री रत्नविजयसूरि, तेजनो अंबारजी।
श्री हीररत्नसूरीश्वर जगगुरु, सोहिं तस पटोधारजी, तस पाटिं तरणी तणी परि, प्रतपि श्री जयरत्नसूरिंदोजी।
जयवंता श्री भावरत्नसूरी (प्राग्वाटज्ञातीय) भवियण भावे वन्दोजी, श्रीहीररत्नसूरीश्वर केरा, गिरुआ प्रमथ गणधारजी।
पंडित लब्धिरत्न महामुनिवर भवजल तारणहारजी, तस अन्वय वाचकपदधारी, श्री सिद्धरत्न उवजायाजी।

इनका गृहस्थ नाम हेमराज था। पं० उदयरत्न के ये ज्येष्ठ भ्राता तो थे ही, साथ में काका-गुरु-भाई भी थे; क्यों कि पं० शिवरत्न और पं० ज्ञानरत्न दोनों उपा० सिद्धरत्न के प्रशिष्य-शिष्य होने से गुरु भाई थे। पं० शिवरत्न के शिष्य उपा० उदयरत्न थे और आप पं० ज्ञानरत्न के शिष्य थे। वि० सं० १७६८ चैत्र शु० ६ शुक्रवार को मुनि हंसरत्न का मियाग्राम में स्वर्गवास हो गया। मियाग्राम में आपका एक स्तूप है जो अभी भी विद्यमान है। वि० सं० १७८१ में आपने धनेश्वरकृत 'शत्रुंजय माहात्म्य' को पन्द्रह सर्गों में सरल संस्कृत गद्य में लिखा और वि० सं० १७६८ के पहिले 'अध्यात्मकल्पद्रुम' पर प्र० प्रकरण रत्नाकर भा० ३ लिखे।

हंसरत्न

ये गूर्जर-भाषा के प्रसिद्ध कवि एवं अनुभवशील विद्वान् थे। इनकी छोटी-बड़ी लगभग २७ सत्ताईस कृतियाँ उपलब्ध हैं। गूर्जर-भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था। आपकी कविता सरल और सुबोध एवं मनोहर शब्दों में होती थी। सहस्रों स्त्री, पुरुष आपकी कविता को कंठस्थ करने में रुचि प्रकट करते थे। आपके समय में आपकी कविताओं का अच्छा प्रचार बढ़ा। आपने प्रसिद्ध आचार्य स्थूलभद्र का वर्णन नवरस में लिखा। आपने समय २ पर जो कृतियाँ लिखीं, उनके नाम इस प्रकार हैं:—

उपाध्याय उदयरत्न

१—जंबूस्वामीरास वि० सं० १७४६ द्वि० भा० शु० १३ खेड़ा हरियालाग्राम में।
२—अष्टीप्रकारी पूजा सं० १७५५ पौ० शु० १० पाटण में।
३—स्थूलभद्ररास-नवरस सं० १७५६ मार्ग शु० ११ उनाग्राम में।
४—श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथ नो शलोको सं० १७५६ चै० कृ० ६।
५—मुनिपतिरास सं० १७६१ फा० कृ० ११ शुक्र० पाटण में।
६—राजसिंह (नवकार) रास सं० १७६२ मार्ग शु० ७ सोमवार अहमदाबाद में।
७—बारहव्रतरास सं० १७६५ फा० शु० ७ रवि० अहमदाबाद में।
८—मलयसुन्दरीमहाबल (विनोद-विलास) रास सं० १७६६ मार्ग कृ० ८ खेड़ा हरियालाग्राम में।
९—यशोधररास सं० १७६७ पौ० शु० ५ गुरुवार पाटण के उर्णाकपुरा में (उनाउ)।
१०—लीलावती-सुमतिविलासरास सं० १७६७ आश्विन० कृ० ६ सोम० पाटण के उनाउ में।
११—धर्मबुद्धि अने पापबुद्धिनो रास सं० १७६८ मार्ग शु० १० रवि० पाटण में।
१२—शत्रुंजयतीर्थमाला-उद्धाररास सं० १७६६
१३—भुवनभानु-केवली-रास (रसलहरी-रास) सं० १७६६ पौ० शु० १३ मंगलवार पाटण के उनाउ में।
१४—नेमिनाथ शलोको।
१५—श्रीशालिभद्रनो शलोको।
१६—भरत-बाहुबलि शलोको सं० १७७० मार्ग शु० १३ आद्रज में।
१७—भावरत्नसूरि-प्रमुखपांचपाट-वर्णनगच्छ-परम्परारास सं० १७७० खेड़ा में।

तस गणधर वंदु गुणवंता, श्री मेघरत्न मुणिरायाजी, तास शिष्य शिरोमणि सुन्दर, श्री अमररत्न सुपसाईजी।
गणि शिवरत्न तसु शिष्य प्रसीधा, पंडित चेरो हरायारे,.ते मई गुरु तिणें सुपसाई, जो कथा कही भई रागीजी।'
उदयरत्नकृत 'जंबूस्वामीरास' की ढाल ६६, उदयरत्नकृत 'अष्टप्रकारीपूजा' पृ० ७५, उदयरत्नकृत 'हरिवंशरास' का अन्तिमभाग।

१८–ढुंढणमुनिनी सज्झाय सं० १७७२ भा० शु० १३ बुध० अहमदाबाद में।
१९–चौवीशी सं० १७७२ भा० शु० १३ बुध० अहमदाबाद में।
२०–सूर्ययशा (भरतपुत्र) नो रास सं० १७८२
२१–दामन्नकरास सं० १७८२ आसो० कृ० ११ बुध० अहमदाबाद में
२२–वरदत्तगुणमंजरी सं० १७८२ मार्ग० शु० १५ बुध० अहमदाबाद में।
२३–सुदर्शनश्रेष्ठिरास सं० १७८५ भा० कृ० ५ गुरु० भाजल में।
२४–श्री विमलमेतानो शलोको सं० १७९५ ज्ये० शु० ८ खेड़ा हरियालाग्राम में।
२५–नेमिनाथ-राजिमती-बारहमास सं० १७९५ श्रा० शु० १५ सोम० उनाउश्रा में।
२६–हरिवंशरास सं० १७९९ चै० शु० ६ गुरु० उमरेठग्राम में।
२७–महिपति राजा और मतिसागरप्रधानरास (पूना से प्रकाशित)

उपरोक्त कृतियों के अतिरिक्त सम्भव है आपकी कुछ और कृतियाँ, जब जैन-भंडारों का उद्धार होगा निकल आवेंगी। आप जैसे कवि और विद्वान् थे, वैसे ही महातपस्वी भी थे। आप खेड़ा के गृहस्थ थे। खेड़ा के प्रति आपका मातृ-भूमिराग भी था। वैसे खेड़ा सुन्दर ग्राम भी है। खेडा के पास में तीन नदियों का संगम होता है। आपने एक बार त्रिवेणी-संगम पर चार माह तक नित्य नियम से कायोत्सर्गतप किया था। इस प्रखर तपस्या के प्रभाव से मुग्ध हो कर पाँच सौ भावसार वैष्णवमतानुयायी जैन बन गये। सोजींत्रा ग्राम के पटेलों को आपने जैन बनाये। खेड़ा का रहने वाला रत्न नामक भावसार कवि आपके संग में रह कर ही प्रसिद्ध कवि बना था। वि० सं० १७८९ चैत्र शु० १२ को आपने शत्रुँजयतीर्थ की यात्रा की। आपका स्वर्गवास भी मियाग्राम में ही हुआ। आपकी कृतियों से ज्ञात होता है कि आपका अधिक जीवन पाटण, अहमदाबाद और खेड़ाग्राम में रहते हुये साहित्य की सेवा करते हुये व्यतीत हुआ। वि० सं० १७४९ से वि० सं० १७९९ तक आपका साहित्य-काल रहा। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आपका स्वर्गवास उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ हो।*

तपागच्छीय श्रीमद् विजयलक्ष्मीसूरि

दीक्षा वि० सं० १८१४, स्वर्गवास वि० सं० १८६६.

मरुधरप्रान्त में अर्बुदाचल के सामीप्य में बसे हुये पालड़ी नामक ग्राम में रहने वाले प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० हेमराज की स्त्री श्रीमती आणंदादेवी की कुक्षि से वि० सं० १७९७ चैत्र शु० ५ को आप का जन्म हुआ और सूरचन्द्र आपका नाम रक्खा गया। श्रीमद् विजयसौभाग्यसूरि के कर कमलों से वि० सं० १८१४ माघ शु० ५

---

*जै० गु० क० भा० २ पृ० ३८६-४१५ (४०४)
जै० गु० क० भा० ३ खं० २ पृ० १३४६-१३६५ (४०४)
जै० सा० सं० इतिहास में मुनि उदयरत्नकृत ग्रंथों में से कई एक का रचना-संवत् उक्त संवतों से नहीं मिलता है।

शुक्रवार को सिनोर (गुजरात) नामक नगर में आपने दीक्षा ग्रहण की और आपका दीक्षा-नाम सुविधिविजय रक्खा गया। दैवयोग से सिनोर में उसी वर्ष वि० सं० १८१४ चैत्र शु० १० को श्रीमद् विजयसौभाग्यसूरि का स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास के एक दिन पूर्व स्वर्गस्थ आचार्य की मृत्यु निकट आई हुई समझ कर तथा मृत्यु-शय्या पर पड़े हुये आचार्य की अभिलाषा को मान देकर सिनोर के श्रीसंघ ने वि० सं० १८१४ चै० शु० ६ गुरुवार को महामहोत्सव पूर्वक आपको आचार्य पदवी से अलंकृत किया और आपका नाम विजयलक्ष्मीसूरि रक्खा गया। आचार्यपदोत्सव श्रे० छीता वसनजी और श्रीसंघ ने किया था।

विजयमानसूरि के स्वर्गवास पर उनके पाट पर दो आचार्य अलग २ पट्टधर बने थे—विजयप्रतापसूरि और विजयसौभाग्यसूरि। विजयसौभाग्यसूरि के स्वर्गवास पर आपश्री पट्टधर हुये। वि० सं० १८३७ पौ० शु० १० को जब विजयप्रतापसूरि के पट्टधर विजयउदयसूरि का भी स्वर्गवास हो गया तब दोनों परम्परा के साधु एवं संघों ने मिल कर वि० सं० १८४६ में आपश्री को ही विजयउदयसूरि के पट्ट पर विराजमान किया। ऐसा करके दोनों परम्पराओं को एक कर दिया गया। मरुधरप्रान्त के पालीनगर में वि० सं० १८६६ में आपका स्वर्गवास हो गया।‡

इनका बनाया हुआ संस्कृतगद्य में 'उपदेशप्रासार'* नामक सुन्दर ग्रंथ है। इस ग्रन्थ में ३६० हितोपदेशक व्याख्यानों की चौबीस स्तंभों (प्रकरण) में रचना है। इस ग्रंथ के बनाने का लेखक का प्रमुख उद्देश्य यही था कि व्याख्यान-परिषदों में व्याख्यानदाताओं को व्याख्यान देने में इस ग्रंथ से उपदेशात्मक वृत्तान्त सुलभ रहें। और भी कई ग्रन्थ इनके रचे हुये सुने जाते हैं।*

अंचलगच्छीय श्रीमद् सिंहप्रभसूरि

दीक्षा वि० सं० १२९१. स्वर्गवास वि० सं० १३१३

गुर्जरप्रदेशान्तर्गत वीजापुर नामक नगर में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि अरिसिंह की धर्मपत्नी प्रीतिमती की कुक्षि से वि० सं० १२८३ में सिंह नामक पुत्र का जन्म हुआ। सिंह जब पांच वर्ष का हुआ उसके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। अनाथ सिंह का पालन-पोषण उसके काका हराक ने किया। एक वर्ष वीजापुर नगर में वल्लभी-शाखीय श्रीमद् गुणप्रभसूरि बड़े आडम्बर से पधारे। सिंह के काका हराक ने विचार किया कि सिंह को आचार्य-महाराज को भेंट कर दूं तो इसका धन मेरे हाथ लग जायगा। लोभी काका ने बालक सिंह को गुणप्रभसूरि को भेंट कर दिया। गुणप्रभसूरि ने सिंह को आठ वर्ष की वय में वि० सं० १२९१ में दीक्षा दी और सिंहप्रभ उनका नाम रक्खा। मुनि सिंहप्रभ अल्प समय में ही शास्त्रों का अभ्यास करके योग्य एवं विद्वान् मुनि बन गये।

‡जैन पुस्तक १, अंक ७, सं० १९८२ पृ० २५१ से २५३ जै० गु० क० भा० २ पृ० ७५२
*उक्त ग्रंथ जैनधर्म-प्रसारक सभा, भावनगर की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

न्यायशास्त्र के ये अच्छे विद्वान् थे। पत्तन में इन्होंने शैवमती वादियों को परास्त करके अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। वि० सं० १३०६ में खंभात में श्री संघ ने महोत्सव करके इनको सूरिपद प्रदान किया। खंभात से विहार करके आप गांधार पधारे और वहाँ आपने चातुर्मास किया। इधर खंभात में नाणकशाखीय श्रीमद् महेन्द्रसूरि का चातुर्मास हुआ। इसी चातुर्मास में महेन्द्रसूरि का देहावसान हो गया। खंभात के संघ ने स्वर्गस्थ श्रीमद् महेन्द्रसूरि के तेरह शिष्यों में से किसी को भी योग्य नहीं समझ कर आपश्री को गांधार से बुलाया और महामहोत्सवपूर्वक श्रीमद् महेन्द्रसूरि के पट्ट पर आपको विराजमान किया। इस प्रकार वृहद्गच्छ की दोनों शाखाओं में मेल हो गया। सिंहप्रभसूरि यौवन, विद्या और अधिकार का मद पाकर परिग्रह धारण करने लगे। वि० सं० १३१३ में ही आपका स्वर्गवास हो गया।[१]

अंचलगच्छीय श्रीमद्धर्मप्रभसूरि

दीक्षा वि० सं० १३५१. स्वर्गवास वि० सं० १३९३.

मरुधरप्रदेशान्तर्गत प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर भिन्नमाल में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि लिंबा की स्त्री विजयादेवी की कुक्षि से वि० सं० १३३१ में धर्मचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रेष्ठि लिंबा भिन्नमाल छोड़कर परिवार सहित जावालिपुर (जालोर राजस्थान) में रहने लगा। जावालिपुर में वि० सं० १३५१ में श्रीमद् देवेन्द्रसूरिजी का बड़े ठाट-पाट से चातुर्मास हुआ। आचार्य के व्याख्यान श्रवण करने से धर्मचन्द्र को वैराग्य उत्पन्न हो गया और निदान अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर वि० सं० १३५१ में उपरोक्त आचार्य के पास में दीक्षा ग्रहण की और वे धर्मप्रभमुनि नाम से सुशोभित हुये। कुशाग्रबुद्धि होने से अल्प समय में ही आपने शास्त्रों का अच्छा अभ्यास कर लिया। आप को योग्य समझ कर वि० सं० १३५९ में श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने आपको जावालिपुर में ही सूरिपद प्रदान किया। वहाँ से विहार करके आप अनुक्रम से नगर पारकर(?) में पधारे और वहाँ परमारक्षत्रिय नव कुटुम्बों को प्रतिबोध देकर जीवहिंसा करने का त्याग करवाया। इस प्रकार आप ग्रामानुग्राम भ्रमण करके अहिंसा-धर्म का प्रचार करने लगे। वि० सं० १३७१ में श्रीमद् देवेन्द्रसूरि का स्वर्गवास हो गया। गुरु के पट्ट पर आपश्री को गच्छनायकत्व का भार प्राप्त हुआ। लगभग बावीस वर्ष सूरिपन से शासन की सेवा करने के पश्चात् वि० सं० १३९३ माघ शु० १० को आसोटी नामक नगर में आपका स्वर्गवास हो गया।[२]

१–म० प० पृ० २१४. जै० गु० क० भा० २ पृ० ७६८.
२–म० प० पृ० २१८. जै० गु० क० भा० २ पृ० ७६६ पर भूल से श्रीमालज्ञातीय लिखा प्रतीत होता है

अंचलगच्छीय श्रीमद् मेरुतुङ्गसूरि

दीक्षा वि० सं० १४१८, स्वर्गवास वि० सं० १४७३

मरुधरप्रान्त के नाना (नाणा) नामक ग्राम में विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अन्त में और पन्द्रहवीं के प्रारम्भ में प्राग्वाटज्ञातीय मीठड़ीयागोत्रीय वहरसिंह नामक श्रावक रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम नाहलणदेवी था। वि० सं० १४०३ में चरित्रनायक का जन्म हुआ और उनका नाम मालणकुमार रक्खा गया। वि० सं० १४१८ में अंचलगच्छीय श्रीमद् महेन्द्रप्रभसूरि के कर-कमलों से आपने भगवतीदीक्षा ग्रहण की और मुनिमेरुतुङ्ग नाम से प्रसिद्ध हुये। आपश्री अत्यन्त ही कुशाग्रबुद्धि थे। थोड़े वर्षों में ही अच्छी विद्वत्ता एवं ख्याति प्राप्त करली। आचार्य श्रीमद् महेन्द्रप्रभसूरि ने आपको अति योग्य समझकर वि० सं० १४२६ में आपको आचार्यपद प्रदान किया।

वंश-परिचय

अंचलगच्छ के महाप्रभावक आचार्यों में आप अग्रगण्य हो गये हैं। आपके विषय में अनेक चमत्कारी कथायें उल्लिखित मिलती हैं। लोलाड़नामक ग्राम में आप श्री एक वर्ष चातुर्मास रहे थे। उक्त नगर पर यवनों ने आक्रमण किया था। आपश्री ने नगर पर आयी हुई विपत्ति का अपने तेज एवं प्रभाव से निवारण किया।

वड़नगर नामक नगर में नागर ब्राह्मणों के घर अधिक संख्या में बसते थे। एक वर्ष आपश्री का वड़नगर में पदार्पण हुआ। आपश्री के शिष्य नगर में आहार लेने के लिये गये; परन्तु अन्यमती नागर ब्राह्मणों ने आहार प्रदान नहीं किया। इस पर आप ने नगर-श्रेष्ठि को जो नागर ब्राह्मणज्ञातीय था अपने मंत्रबल एवं शुद्धाचार से मुग्ध किया और समस्त ब्राह्मण-समाज पर ऐसा प्रभाव डाला कि सर्व ने श्रावकव्रत अंगीकृत किया।

एक वर्ष आपश्री ने पारकर-प्रान्त के उमरकोट नगर में चातुर्मास किया था। उमरकोटनिवासी लालणगोत्रीय श्रावक वेलाजी के सुपुत्र कोटीश्वर जेसाजी ने आपश्री के नगर-प्रवेशोत्सव को महाडम्बर सहित किया था तथा चातुर्मास में भी उन्होंने कई एक पुण्यकार्य अति द्रव्य व्यय करके किये थे। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री के सदुपदेश से उन्होंने बहोत्तर कुलिकाओं से युक्त श्री शांतिनाथ भगवान् का विपुल द्रव्य व्यय करके जिनालय बनवाया था और पुष्कल धन व्यय करके उसकी प्रतिष्ठा भी आपश्री के कर-कमलों से ही महामहोत्सव पूर्वक करवाई थी।

उमरकोट में प्रतिष्ठा

आपके समय में अणहिलपुरपत्तन यवनों के अधिकार में था। यवन सूबेदार जिसका नाम हंसनखान होना लिखा है, आपश्री का परम श्रद्धालु था। उसके अश्वस्थल में से श्री गौड़ीपार्श्वनाथ भगवान् की एक दिन खोदकाम करते समय महाप्रभाविका प्रतिमा निकली। सूबेदार ने उक्त प्रतिमा अपने हर्म्य में संस्थापित की। हंसनखान ने उक्त प्रतिमा को पारकरदेश से आये हुये मेघाशाह नामक एक श्रीमंत व्यापारी को सवा लक्ष मुद्रा लेकर प्रदान कर दी। श्रीमंत मेघाशाह आपश्री की आज्ञानुसार उक्त प्रतिमा को अपने देश पारकर में लाया और जिनप्रासाद बनवाकर उसको शुभमुहूर्त में संस्थापित किया।

म० प० पृ० २२२ से २२६. गु० क० भा० २ पृ० ७७०-१.
'प्रबन्धचिंतामणि' के कर्ता मेरुतुंगसूरि इनसे भिन्न नागेन्द्रगच्छीय मेरुतुंगसूरि हैं।

आप श्री द्वारा प्रतिष्ठित कुछ मन्दिर और कुछ प्रतिमाओं का विवरण:—

प्र० वि० संवत्	नगर	प्रतिष्ठित प्रतिमा तथा जिनालय
१४२९	लोलाड़ग्राम में	श्रीमाल ज्ञा. श्रे. धांध के पुत्र आसा ने जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई
१४३८	,,	श्रा० तेजू ने जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई ।
१४३९	वीछीवाड़ा में	स्थानीय श्रे० पद्मसिंह ने श्री मुनिसुव्रतप्रासाद करवाया तथा एक दानशाला बनवाई ।
१४४५ का० कृ० ११ रविवार	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० भादा ने पार्श्वनाथादि तेवीस जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई ।
१४४५	....	पारकरदेशवासी नागड़गोत्रीय श्रे० मुंजा ने श्री पार्श्वनाथबिंब की प्रतिष्ठा करवाई ।
१४४५	मोंढ़ेरग्राम में	मोंढ़ेरग्रामवासी भादरायणगोत्रीय श्रे० भावड़ ने चौवीशी की प्रतिष्ठा करवाई ।
१४४६ माघ शु० १३ रविवार	राजनगर में	प्रा० ज्ञा० श्रे० कोल्हा और आल्हा ने जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई.
१४४७ फा० शु० ६ सोमवार	....	शानापतिज्ञाति (?) के मारू श्रे० हरिपाल की पत्नी सुहवदेवी के पुत्र देपाल ने श्रीमहावीरबिंब की प्रतिष्ठा करवाई ।
१४४९ माघ शु० ६ रविवार	....	उकेशवंशीय गोखरूगोत्रीय श्रे० नालुण की स्त्री तिहुणदेवी ने तथा उनके पुत्र नागराज ने अपने पिता के श्रेयार्थ श्री शांतिनाथ की प्रतिमा भराई और प्रतिष्ठित करवाई ।
१४५६ ज्ये० कृ० १३ शनैश्चर	....	श्री० ज्ञा० महन ने श्री चन्द्रप्रभबिंब की प्रतिष्ठा करवाई ।
१४५६	सिंहवाड़ा में	श्रे० पाताशाह ने श्री आदिनाथ-मन्दिर बनवाया ।
१४६८ का० कृ० २ सोम.	शंखेश्वरतीर्थ में	श्रे० कडुआ ने जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई ।
,,	,,	श्री० ज्ञा० कडुक ने तेवीस जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई ।
१४६८ वै० शु० ३ गुरुवार.	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० राउल ने श्री शांतिनाथपंचतीर्थी की प्रतिष्ठा करवाई.
१४६८	सलखणपुर में	स्थानीय हरियाणगोत्रीय श्रे० सांगशाह ने मनोहर जिनालय बनवाया ।
१४६९ माघ शु० ६ रविवार	....	प्रा० ज्ञा० उदा की स्त्री तथा उसके पुत्र जोला, जोला की स्त्री जमणादेवी और उसके पुत्र शुद्द ने श्री पार्श्वनाथबिंब को भरवाया और उसकी प्रतिष्ठा करवाई ।
१४७० चै० शु० ८ गुरु.	....	श्री० ज्ञा० श्रे० सांसण ने विमलनाथबिंब की प्रतिष्ठा करवाई ।

इन्होंने १ नाभिवंशकाव्य, २ यदुवंशसंभवकाव्य, ३ नेमिदूतकाव्य आदि काव्य लिखे। एक नवीन व्याकरण और सूरिमंत्रकल्प तथा अन्य ग्रंथों की भी रचना की हैं, जिनमें शतपदीसमुद्धार, लघुशतपदी (वि० सं० १४५० में) कंकालय रसाध्याय प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार अनेक धर्मकार्य एवं साहित्यसेवा करते हुये, करवाते हुये आप श्री का स्वर्गवास वि० सं १४७१ में जीर्णदुर्ग में हुआ।

श्रीमद् उपाध्याय वृद्धिसागरजी

दीक्षा वि० सं० १६८०, स्वर्गवास वि० सं० १७७३

मरुधरप्रदेश के कोटड़ा नामक नगर में प्राग्वाटज्ञातीय नेमलजी की श्रीदेवी नामा स्त्री की कुक्षि से वि० सं० १६६३ चैत्र कृ० पंचमी को वृद्धिचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्रह वर्ष की वय में वृद्धिचन्द्र ने श्रीमद् मेघसागर उपाध्याय के पक्ष में वि० सं० १६८० माघ कृ० द्वितीया को दीक्षा ग्रहण की और उनका वृद्धिसागर नाम रक्खा गया। मुनि वृद्धिसागर को योग्य समझ कर मेड़ता नगर में उपाध्यायजी महाराज ने उनको उपाध्यायपद वि० सं० १६६३ कार्त्तिक शु० पंचमी को प्रदान किया। वि० सं० १७३३ ज्येष्ठ शु० तृतीया को श्रीमद् मेघसागरजी उपाध्याय का वाहड़मेर में स्वर्गवास होगया। संघ ने महामहोत्सवपूर्वक उपाध्याय वृद्धिसागरजी को स्वर्गस्थ उपाध्यायजी के पट्ट पर विराजमान किया। दीर्घायु पर्यन्त जैन-शासन की सेवा करके तथा ११० वर्ष का दीर्घायु भोग कर आप वि० सं० १७७३ आषाढ़ शु० सप्तमी को अपने पट्ट पर उपाध्याय हीरसागरजी को मनोनीत करके नलीया नामक ग्राम में स्वर्ग को सिधारे। श्रीमद् हीरसागर एक महाप्रभावक उपाध्याय हुये हैं।[1]

अंचलगच्छीय मुनिवर मेघसागरजी

वि० शताब्दी सत्रहवीं के उत्तरार्ध में प्रभासपत्तन नामक प्रसिद्ध नगर में जो अरबसागर के तट पर बसा हुआ है और जहाँ का वैष्णवतीर्थ सोमनाथ जगद्विख्यात् है, प्राग्वाटज्ञातीय सज्जनात्मा श्रे० मेघजी रहते थे। वे दयावान्, उपकारी, सरल हृदय, सत्यभाषी, गुरु और जिनेश्वरदेव के परम भक्त थे। श्रावक के बारह व्रतों का वे बड़ी तत्परता एवं नियमितता से अखंड पालन करते थे। बचपन से ही वे उदासीन एवं विरक्तात्मा थे। धीरे २ उन्होंने संसार की असारता और धन, यौवन, आयु की नश्वरता को पहिचान लिया और निदान अंचलगच्छीय श्रीमद् कल्याणसागरसूरि के करकमलों से भगवतीदीक्षा ग्रहण करके इस असार, मोहमायामयी संसार का त्याग किया। वे मेघसागरजी नाम से प्रसिद्ध हो कर कठिन तपस्यायें करके अपने कर्मों का क्षय करने लगे। वे श्रीमद् रत्नसागरजी उपाध्याय के प्रिय शिष्य थे; अतः उक्त उपाध्यायजी की निश्रा में रह कर ही उन्होंने जैनागमों एवं[2]

१–म० प० पृ० २६५। २–म० प० पृ० २६३

धर्म-ग्रंथों का पूर्ण अध्ययन करके पारंगतता प्राप्त की। इस प्रकार मु० मेघसागरजी साधु-जीवन व्यतीत कर अपने प्रखर पांडित्य एवं शुद्ध साध्वाचार से जैन-शासन की शोभा बढ़ाने वाले हुये।

श्रीमद् पुण्यसागरसूरि

दीक्षा वि० सं० १८३३, स्वर्गवास वि० सं० १८७०

गूर्जरप्रदेशान्तर्गत बड़ौदा में प्राग्वाटज्ञातीय शा० रामसी की स्त्री मीठीबहिन की कुक्षि से वि० सं० १८१७ में पानाचन्द्र नामक पुत्र का जन्म हुआ। पानाचन्द्र श्रीमद् कीर्त्तिसागरसूरि का भक्त था। पानाचन्द्र को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने वि० सं० १८३३ में कच्छभुज में कीर्त्तिसागरसूरि के पक्ष में दीक्षा ग्रहण की। पुण्यसागर उनका नाम रक्खा गया। कीर्त्तिसागरसूरि की सदा इन पर प्रीति रही। वि० सं० १८४३ में कीर्त्तिसागरसूरि का सूरत में स्वर्गवास हो गया। संघ ने पुण्यसागर मुनि को सर्व प्रकार से योग्य समझ कर उक्त संवत् में ही आचार्य-पद और गच्छनायक के पदों से अलंकृत किया। श्रेष्ठि लालचन्द्र ने बहुत द्रव्य व्यय करके उपरोक्त पदों का महामहोत्सव किया था। वि० सं० १८७० कार्त्तिक शु० १३ को आपका पत्तन में स्वर्गवास हो गया।*

श्री लोंकागच्छ-संस्थापक श्रीमान् लोंकाशाह

वि० सं० १५२८ से वि० सं० १५४१

राजस्थान के छोटे २ राज्यों में सिरोही का राज्य अधिक उन्नतशील और गौरवान्वित है। सिरोही-राज्य के अन्तर्गत अरहटवाड़ा नामक समृद्ध ग्राम में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि हेमचन्द्र रहते थे। लोग उन्हें हेमाभाई कहकर पुकारते थे। हेमचन्द्र की स्त्री का नाम गंगाबाई था। श्रीमती गंगाबाई की कुक्षि से विक्रम संवत् १४७२ कार्त्तिक शुक्ला १५ को एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ; जिसका नाम लुंका या लोंका रक्खा गया।

लुंका बड़ा चतुर और व्यापार कुशल निकला। छोटी ही आयु में उसने अपने घर का भार सम्भाल लिया और वृद्ध माता-पिता को अति सुख और आनन्द पहुँचाने लगा। लुंका जब लगभग २३—२४ वर्ष का हुआ होगा कि दुर्विपाक से उसके माता-पिता विक्रम संवत् १४९७ में स्वर्गवासी हो गये। अरहटवाड़ा यद्यपि समृद्ध और कृषि के योग्य ग्राम था; परन्तु होनहार लुंका के लिये वह धन उपार्जन की दृष्टि से फिर भी छोटा क्षेत्र ही था। निदान बहुत कुछ सोच-विचार करने के पश्चात् उसने अरहटवाड़ा को त्याग कर अहमदाबाद में जाकर बसने का विचार किया।

माता, पिता का स्वर्गवास

*म० प० पृ० ३७३-४

माता-पिता का स्वर्गवास होते ही उसी वर्ष होनहार लोंकाशाह अरहटवाड़ा का त्याग करके अपनी स्त्री आदि के सहित अहमदाबाद चले गये और वहाँ जवेरी का धन्धा करने लगे। उन दिनों अहमदाबाद में मुहम्मदशाह 'जार बक्स' नामका बादशाह शासन करता था। कुशल लोंकाशाह की जवेहरात परखने की कुशलता एवं ईमानदारी की प्रशंसा बादशाह के कर्णों तक पहुँची और बादशाह ने लोंकाशाह को अपने यहाँ नवकर रख लिया। वि० सं० १५०८ में बादशाह मुहम्मदशाह मार डाला गया और उसके स्थान पर उसका पुत्र कुतुबुद्दीन बादशाह बना। राजसभा में खट-पट और षड्यन्त्र चलते ही रहते थे। निदान लोंकाशाह ने भी कुछ वर्षों के पश्चात् राज्यकार्य से त्याग-पत्र दे दिया।

अहमदाबाद में जाकर बसना और वहाँ राजकीय सेवा करना

लोंकाशाह बहुत ही सुन्दर अक्षर लिखते थे। बड़गच्छीय एक यति आपका सुन्दर लेख देख कर आप पर अति ही प्रसन्न हुये और आपको अपने यहां वि० सं० १५२६ में लेखक रख लिया। लोंकाशाह जिस प्रति को लिखते, उसकी दो प्रतियाँ बनाते थे। एक प्रति आप रख लेते और दूसरी प्रति यतिजी को दे देते। लोंकाशाह की इस युक्ति का पता किसी प्रकार यतिजी को लग गया और दोनों में अन-बन हो गई। फलतः लोंकाशाह ने वहाँ से नवकरी का दो वर्ष पश्चात् ही वि० सं० १५२८ में त्याग कर दिया।

लोंकाशाह द्वारा लहिया का कार्य और जीवन में परिवर्तन

प्रतियों के लिखने से बुद्धिमान् लोंकाशाह को शास्त्रों का अध्ययन करने का अच्छा अवसर मिल गया और आपको अच्छा ज्ञान हो गया तथा कर्तव्यांकर्तव्य का भान हो गया।

स्थानकवासी संप्रदाय के विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में हुये क्रमशः सोलहवें और सत्रहवें पूज्य श्री तेजसिंह और कानजी द्वारा कृत 'गुरुगुणमाला' की ११ ग्यारहवीं ढाल में लिखा है:—

'पोरवाड़ प्रसिद्ध पाटण में 'लका' नामे 'लुंका' कहाई—'लके' ॥१॥

संवत् पनर अठयासीसे, बड़गच्छ सूत्र सिद्धान्त लिखाई। लिखी परति दोई एक आप राखी, एक दीधे गुरु ने ले जाई ॥२॥
दोय वरस सूत्र अर्थ सर्व समजी, धर्म विध संघ ने बताई। 'लके' मूल मिथ्यात उथापी, देव गुरु धर्म समजाई ॥३॥
'नीते धीर' राखी मध्यमह उतरता, जिम 'वीर' कह्यो तिम भाई। उदे उदे पूज्या जिनशासन नीति दयाधर्म दीपाई ॥४॥
'रंगनीसें भाणजीए' संजम लेई, 'लुंकागच्छ' 'आदिजति' थाई। 'लुंकागच्छ' नी उतपति ईण विध, कहे 'तेजसंघ' समझाई' ५.

जैं० गु० क० भा० ३ सं० २ पृ० २२०५

मुनि श्री तेजसिंहजी भी स्वीकार करते है कि यति और लोंकाशाह के मध्य वि० सं० १५२८ में खटपट हुई। लोंकाशाह के जीवन में दिशापरिवर्तन का प्रमुख कारण उक्त खटपट ही है यह सिद्ध हो जाता है।

'लोंकामत निराकरण' चौ० सं० १६२७ चै०शु० ५ रवि० दादानगर में

'अणहिलपुर पाटण गुजरात, महाजन वसई चउरासी न्यात। लघु शाखी ज्ञाति पोरवाड़, 'लोंको' सोठि लहिओ लिखवाड ॥१॥
पंथ संख्या नई कारणे पड्यो, जैन यतिनुं बहु विड्गड़िओ। 'लोंके' लीहे कीधा भेद, धर्म तणा उपजाया छेद ॥२॥
शास्त्र जाणे सेवक तणा, कालई बल दीधा आपणा। प्रतिमा पूजा छेद्या दान, धर्मतणी तेणई कीधी हाणि ॥३॥
संवत् 'पनर सतावीस,' 'लोंकामत' उपना कहीस + +। गाथा पदनो कीधो फेर, विपंकधरी लाभलिज्यो फेर ॥४॥'

जैं० गु० क० भा० ३ सं० १ पृ० ७११.

उक्त चौपाई में से यहाँ इतना ही ग्रहण करना है कि लोंकाशाह और यति के मध्य वि० सं० १५२७ में खट-पट हुई, लोंकाशाह यतिवर्ग के विरोधी बने और समय भी उनको अनुकूल प्राप्त हुआ।

उस समय जैनसमाज में भी शिथिलाचार एवं आडम्बर बहुत ही बढ़ा हुआ था। शिथिलाचार को अन्तप्रायः करने के लिये पूर्वाचार्यों ने समय २ पर कठोर प्रयत्न किये थे, परन्तु वह तो बढ़ता ही चला जा रहा था। विशेषतः यतिगण बहुत ही शिथिलाचारी हो गये थे। ये मंदिरों में ही रहते थे, सुखासनों में सवारी करते थे, सुन्दर वस्त्र धारण करने लग गये थे, इच्छानुसार खाते-पीते थे। यतिवर्ग ने मंत्र-तंत्र के प्रयोगों से जैनसमाज के ऊपर अपना अच्छा प्रभाव जमा रक्खा था। यतिवर्ग के शिथिलाचार को लेकर समाज में दो पक्ष बनते जा रहे थे। एक पक्ष चैत्यवासी यतिवर्ग के पक्ष में था और दूसरा विरोध में। इसी प्रकार अन्य धार्मिक स्थान जैसे पौषधशाला आदि में भी धार्मिक वर्त्तन शिथिलाचार एवं आडम्बरपूर्ण था। मंदिरों में भी आडम्बर बढ़ा हुआ था। पूजा की सामग्री में भी अति होती जा रही थी। दया का महत्व कम पड़ रहा था। इस सर्व धर्मविरुद्ध वर्त्तन का अधिक उत्तरदायी यतिवर्ग ही था। यतिवर्ग के इस शैथिल्य के कारण तथा उनके चैत्यनिवास के फलस्वरूप मंदिरों में होती हुई आशातनाओं के कारण मंदिर की ओर से लोगों को उदासीनता-सी उत्पन्न होने लग गई थी। इधर जैनसमाज के अंतर में यह सर्व हो रहा था और उधर यवन लोग मंदिरों को तोड़ने और मूर्त्तियों को खण्डित करने में अपना धर्म समझते थे। विक्रम की तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियाँ जैन और हिन्दू धर्म के लिये बड़े ही संकट का काल रही हैं। यवन-शासक भारत में राज्य करते हुये भी भारतीय प्रजा का धन लूटने में, बहू-बेटियों का मान हरने में पीछे नहीं रहे। जहाँ इन्होंने मंदिरों को तोड़ा, वहाँ की स्त्रियों एवं कुमारी कन्याओं का भी इन्होंने अपहरण किया ही। मंदिर तोड़ कर उसको मस्जिद में परिवर्तित करना ये महान् धर्म का कार्य समझते थे। अतः जहाँ २ इनको विश्रुत, समृद्ध मंदिर दिखाई दिये, इन्होंने आक्रमण किये; मंदिरों को तोड़ा, मूर्त्तियों को खंडित किया, वहाँ का धन-द्रव्य लूटा और वहाँ की बहू-बेटियों का मान हरा। जैन और हिन्दूसमाज में मन्दिरों के कारण बढ़ते हुये उत्पात पर मन्दिरविरोधी भावनायें जाग्रत होने लगीं और यह स्वाभाविक भी था। इस प्रकार जैनसमाज भी बाहर से संकटग्रस्त और भीतर से विकल हो रही थी। लोंकाशाह वैसे भी क्रांतिकारी विचारक तो थे ही और फिर लहिया का कार्य करने से आपको शास्त्रों का भी अच्छा ज्ञान हो गया था। जैनसमाज में धर्मविरुद्ध फैले हुये शिथिलाचार एवं आडम्बरपूर्ण धर्मक्रियाओं के विरोध में आपने आवाज उठाई और अपने विचारों का प्रचार करने लगे। आप दया पर अधिक जोर देते थे और दान की अपेक्षा दया का महत्व अधिक होना समझाते थे। पौषध, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान जैसी जैनधर्म-क्रियाओं को अमान्य करते हुये आप विचरण करने लगे। अल्पतम हिंसावाली जैनधर्म की क्रियाओं का एवं विधियों का आपने विरोध किया और उनको, जिनमें थोड़ी भी हिंसा होती थी आपने शास्त्रनिषिद्ध बतलायीं। मूर्त्तिपूजन, मन्दिर-निर्माण और तीर्थयात्राओं को भी दयादृष्टि से आपने अनागमोक्त बतलाया। चैत्यवासी यतिवर्ग के शैथिल्य के कारण जैनसमाज में विक्षोभ तो बढ़ता ही जा रहा था और मन्दिरों के कारण यवन-आततायियों के होने वाले आक्रमणों पर मन्दिरों के प्रति एक विरोधी भावना जन्म ही रही थी; श्रीमान् लोंकाशाह को जैनसमाज में इस प्रकार अपने विचारों के अनुकूल बढ़ता हुआ वातावरण प्राप्त हो गया। आप ग्राम-ग्राम भ्रमण करके अपने विचारों का प्रचार करने लगे। मेरी समझ में श्रीमान् लोंकाशाह की क्रांति पूर्णतः दयास्थापना के अर्थ एवं समाज में फैले हुये अतिशय आडम्बर और धर्मक्रियाओं में बढ़े हुये अतिचार के प्रति ही थी। जहाँ तक दयास्थापना का प्रश्न है आपकी क्रांति उस समय की समाज को प्रथम नहीं अखरी; परन्तु पूर्णतः दयास्थापना

जैनसमाज में शिथिलाचार और लोंकाशाह का विरोध

के उद्देश्य के समक्ष तो मूर्त्तिपूजन, मन्दिर-निर्माण और तीर्थों के लिये की जानेवाली संघयात्राओं की विधियें भी आलोच्य बन गई और उस समय का मन्दिरविरोधी वातावरण भी श्रीमान् लोंकाशाह को स्वभावतः उधर ही खींचने लगा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। हुआ यह है कि श्रीमान् लोंकाशाह का विरोधी आन्दोलन अन्य दिशाओं में कम पड़ कर मन्दिरविरोधी दिशा में परिवर्तित होता हुआ बढ़ने लगा। जैसा आगे लिखा जायगा कि श्री भाणजी द्वारा मन्दिरविरोधी आन्दोलन तीव्रतर हो उठा और श्वेताम्बर-जैनसमाज दो खण्डों में विभाजित होता हुआ प्रतीत होने लगा।

पत्तननिवासी प्रतिभासम्पन्न लखमसी आपकी ओजस्वी वाणी, तर्कशक्ति, शिथिलाचार-विरोधी-आन्दोलन से बहुत ही आकृष्ट हुये और वि० सं० १५३० में आपके शिष्य बन गये। प्रखर बुद्धिशाली लखमसी जैसे शिष्य को पाकर अब वि० सं०१५३१ से लोंकाशाह ने शिथिलाचारी यतियों के विरोध में घोर आन्दोलन प्रारम्भ किया और शुद्धाचार एवं दयाधर्म का सबल प्रचार करने लगे। शिथिलाचारी चैत्यावासी यतियों के कारण मन्दिरों में बढ़े हुये आडम्बर तथा असावधानी और शिथिलाचार के कारण होती हुई आलोच्य प्रक्रियाओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने लगे। लोंकाशाह का चरित्र बड़ा ऊंचा था, वैसी ही उनकी बुद्धि भी अतर्क्य थी, फिर समय भी उनके अनुकूल था; लोगों ने लोंकाशाह के व्याख्यानों को बड़े ध्यान से सुना और थोड़े ही समय में उनके मत को मानने वाले अनेक स्त्री-पुरुष हो गये।

लोंकागच्छ की स्थापना

लोंकाशाह आप दीक्षित नहीं हुये थे, परन्तु इनके अनेक भक्त दीक्षित होना चाहते थे। निदान लोंकाशाह के वैराग्यरंगरंगित शिष्य सर्वाजी, हमालजी, मानजी, नूकजी, जगमालजी आदि पैंतालीस (४५) जन सिंघ-हैदराबाद में विराजमान इक्कीस साधुओं से युक्त श्रीमद् ज्ञानजी स्वामी की सेवा में पहुंचे और दीक्षा देने के लिये उनसे प्रार्थना की। वि० सं० १५२६ में वैशाख शु० त्रयोदशी को ज्ञानजी स्वामी ने श्रीमान् लोंकाशाह के पैंतालीस भक्तों को साधु-दीक्षा प्रदान करके लोंकागच्छ की स्थापना की।

अमूर्त्तिपूजक आन्दोलन. लोंकाशाह का स्वर्गवास

इस लोंकागच्छ के आदि साधु भाणाजी थे। इन्होंने वि० सं० १५३१ में दीक्षा ग्रहण की थी। ये भी अरहटवाड़ा के निवासी और प्राग्वाटज्ञातीय थे। इन्होंने यतियों के विरुद्ध छेड़े गये आन्दोलन को पूर्णतः मूर्त्तिपूजा के विरोध में परिवर्तित कर दिया। इन्होंने मूर्त्ति-पूजा का प्रचंड विरोध वि० सं० १५३३ से प्रारंभ किया। वि० सं० १५३७ में ये स्वर्गवासी हुये थे। स्थानकवासी-संप्रदाय के आदि साधु ये ही माने जाते हैं। साधुवर्ग ने भ्रमण करके लोंकाशाह के विचारों का थोड़े ही समय में

वि० सं० १५४३ में लावण्यसमयकृत रचित चौपाई का अन्शः—
'पोसह पडिक्कमणुं पच्चखाण, नवि माने ए ईस्या ++ १३, जिनपूजा करिया मति टली, अष्टापद बहु तीरथ वली।
नवि मानें प्रतिमा प्रासाद,' ++ १४ 'लुंकई वात प्रकासी इसी, तेहनु सीस हुउ लखमसी' जै० सा० सं० इति० पृ० ५०७

श्री मेरुतुङ्गाचार्यविरचित 'विचारश्रेणिः' अपरनाम 'स्थविरावली' में मतोत्पत्तियों के संवत् देते समय 'लुंकागच्छ' की उत्पत्ति के लिये लिखा है कि 'विरनि० २०३२ व० 'लुंका जाताः', अर्थात् वि० सं० १५६२ में 'लुंकामत' की स्थापना हुई। सं० १५६२ में तो 'लुंका' विद्यमान ही नहीं थे, अतः 'लुंकामत' की उत्पत्ति का वीर सं० २०३२ या वि० सं० १५६२ मानना असंगत है।

'सं० १५३३ मां सिरोही पासेना अरघट्ट पाटका (अरहट्टवाटक) वासी प्राग्वाटज्ञातिना भाणाथी प्रतिमानिषेधनो वाद विशेष प्रचार मां आव्यो।'
जै० सा० सं० इति० पृ० ५०८ लेख सं० ७३७

राजस्थान, मालवा और गूर्जरभूमि में दूर २ तक अच्छा प्रचार कर दिया। लोंकाशाह अपनी शिष्य-मंडली सहित भ्रमण करते हुये वि० सं० १५४१ में अलवर में पधारे। वहाँ आपको आपके शत्रुओं ने तेले के पारणे के अवसर पर आहार में विष दे दिया, जिसके कारण आपकी मृत्यु हो गई।

लोंकागच्छीय पूज्य श्रीमल्लजी

दीक्षा वि० सं० १६०६, स्वर्गवास वि० सं० १६६६

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में अहमदाबाद में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० थावर रहते थे। उनकी स्त्री का नाम कुंवरबाई था। श्रीमल्लजी इनके पुत्ररत्न थे। श्रीमल्लजी बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि और निर्मलात्मा थे। संसार में इनका मन कम लगता था। साधु-संतों की संगत से इनको बड़ा प्रेम था। निदान इन्होंने जीवाजी ऋषि के कर-कमलों से वि० सं १६०६ मार्गशीर्ष शुक्ला ५ पंचमी को अहमदाबाद में भगवतीदीक्षा ग्रहण की। तप और आचार इनका बड़ा कठिन था। थोड़े ही समय में इन्होंने साध्वाचार के पालन में अच्छी उन्नति की और शास्त्राभ्यास भी खूब बढ़ाया। वि० सं० १६२८ जेष्ठ कृष्णा ५ को इनको पूज्यपद से अलंकृत किया गया। अपनी आत्मा का कल्याण करते हुये, श्रावकों को जैन-धर्म का सदुपदेश देते हुये ये वि० सं० १६६६ आषाढ़ शु० १३ को स्वर्गवासी हुये। ये दशवें आचार्य थे और बड़े प्रभावक आचार्य थे। अतः इनके शिष्यगणों का समुदाय श्रीमल्लजी की सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। स्थानकवासी-सम्प्रदाय में श्रीमल्लजी की सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान है और इसके अनुयायी भी अपेक्षाकृत अधिक संख्या में हैं।

लोंकागच्छीय पूज्य श्री संघराजजी

दीक्षा वि० सं० १७१८, स्वर्गवास वि० सं० १७५५

गूर्जरभूमि के प्रसिद्ध नगर सिद्धपुर में विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वासा अपनी पतिपरायणा स्त्री वीरमदेवी के साथ में सुखपूर्वक रहते थे। दोनों स्त्री-पुरुष बड़े ही धर्मनिष्ठ, शुद्धप्रकृति एवं निर्मलात्मा थे। वीरमदेवी की कुक्षि से वि० सं० १७०५ आषाढ़ शु० १३ को संघराज नामक पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र संघराज प्रतिभासम्पन्न और होनहार था। श्रे० वासा जैसे धर्मनिष्ठ थे, उनका पुत्र संघराज भी वैसा ही धर्म के प्रति श्रद्धालु और सद्गुणी था। आखिर दोनों पिता-पुत्रों ने वि० संवत् १७१८ वैशाख कृ० १० गुरुवार को

जै० गु० क० भा० ३ खण्ड २ पृ० २२०५-६-१२-१३

इस असार संसार का त्याग करके दीक्षाव्रत अंगीकार किया। अब मुनि संघराज शास्त्राभ्यास में खूब मन लगाकर तीव्र अध्ययन करने लगे। थोड़े ही वर्षों में आपने शास्त्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। वि० सं० १७२५ माघ शु० १४ शुक्रवार को अहमदाबाद में बड़ी धूमधाम से आपको पूज्यपद से अलंकृत किया गया। आचार्य संघराजजी बड़े ही तपस्वी एवं कठिन साध्वाचार के पालक थे। आपका स्वर्गवास वि० सं० १७५५ फा० शु० ११ को प्रसिद्ध नगर आगरा में हुआ। स्थानकवासी-सम्प्रदाय के ये चौदहवें आचार्य थे।

ऋषिशाखीय श्रीमद् सोमजी ऋषि

विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी

श्री लवजी ऋषि ने लोंकागच्छ का त्याग करके अपना अलग गच्छ स्थापित किया था। इनके अनेक सुयोग्य शिष्य थे। उनमें सोमजी ऋषि भी थे और वे प्रमुख थे। श्री लवजी ऋषि को अपने जीवन में अनेक कष्ट भुगतने पड़े थे। श्री सोमजी उनके अधिकांश कष्टों में सहभोगी, सहयोगी रहे थे। श्री सोमजी कालुपुर ग्राम के दशा प्राग्वाटज्ञातीय थे और तेवीस २३ वर्ष की वय में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। बुरहानपुर में श्री लवजी ऋषि अपनी शिष्य-मण्डली के सहित एक वर्ष पधारे थे। श्री सोमजी भी आपके साथ में थे। लोंकागच्छ के एक यति की प्रेरणा से श्री लवजी ऋषि को आहार में विष दे दिया गया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। गुरु की मृत्यु से श्री सोमजी को बड़ा दुःख पहुँचा। श्री सोमजी के कानजी और पंजाबी हरदासजी नामक दो बड़े ही तेजस्वी शिष्य थे। पंजाबी हरदासजी का परिवार इस समय पंजाबी-संप्रदाय के नाम से विख्यात है, जो अति ही उन्नतावस्था में है और कानजी ऋषि का संप्रदाय मालवा, मेवाड़ में और गूर्जरभूमि में फैला हुआ है। श्री सोमजी ऋषि ऋषिसंप्रदाय के प्रमुख संतों में हुये हैं।[१]

श्री लींमड़ी-संघाडे के संस्थापक श्री अजरामरजी के प्रदादा गुरु श्री इच्छाजी

दीक्षा वि० सं० १७८२. स्वर्गवास वि० सं० १८३२.

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में गूर्जरभूमि के प्रसिद्ध नगर सिद्धपुर में प्राग्वाटज्ञातीय जीवराजजी नामक श्रेष्ठि संघवी रहते थे। उनकी स्त्री का नाम बालयबाई था। उनके इच्छाजी नामक तेजस्वी पुत्र था। इच्छाजी बचपन से ही वैराग्य भावों में लीन रहते थे। साधु-सेवा और शास्त्र-श्रवण से आपको बड़ा प्रेम था। आप ने वि० सं० १७८२ में साधु-दीक्षा अंगीकार की और अपनी आत्मा का कल्याण करने लगे। आपने अनेक भविजनों को साधु-दीक्षायें प्रदान की थीं। उनमें हीराजी, नाना कानजी और अजरामरजी अधिक प्रख्यात थे। लींबड़ी-संघाड़े के संस्थापक श्री अजरामरजी पूज्य ही कहे जाते हैं। श्री इच्छाजी का स्वर्गवास वि० सं० १८३२ में लींबड़ी नगर में हुआ था।[२]

१–जै० गु० क० भा० ३ खं० २ पृ० २२१६-१७ २–जै० गु० क० भा० ३ खं० २ पृ० २२१६

श्री पार्श्वचन्द्रगच्छ-संस्थापक श्रीमद् पार्श्वचन्द्रसूरि
दीक्षा वि० सं० १५४६, स्वर्गवास वि० सं० १६१२

●

अर्बुदगिरि की पश्चिमीय उपत्यका में हमीरगढ़ नामक प्रसिद्ध पुर में प्राग्वाटज्ञातीय वेलोशाह रहते थे। उनकी स्त्री का नाम विमलादेवी था। चरित्रनायक इन्हीं के पुत्र थे। हमीरगढ़ यद्यपि पार्वतीय भूमि में बसा हुआ था, फिर भी वह अति सम्पन्न एवं समृद्ध नगर था। यहाँ साधु मुनिराजों का आवागमन बराबर रहता था। अर्बुदतीर्थ के कारण भी आवागमन में अधिक वृद्धि हो गई थी। सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दियों तक इस दुर्ग की जाहोजलाली बनी रही।

वंश-परिचय

चरित्रनायक ने नव वर्ष की वय में, जिनका जन्म वि० सं० १५३७ चैत्र शु० नवमी शुक्रवार को हुआ था श्रीबृहत्तपागच्छीय नागोरीशाखीय श्रीमद् साधुरत्नसूरि के करकमलों से वि० सं० १५४६ वैशाख शु० नवमी को साधु दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम मुनि पार्श्वचन्द्र रखा गया। आप कुशाग्रबुद्धि थे; अतः अल्प समय में ही अच्छे निष्णात पंडित हो गये। आपकी तर्कशक्ति प्रबल थी। उस समय वाद अधिक होते थे। आपने अनेक वादों में जय प्राप्त की। फलस्वरूप वि० सं० १५५४ में सत्रह वर्ष की वय में ही आपके दादागुरु श्रीमद् पुण्यरत्नसूरि ने आपको उपाध्यायपद से नागोर (नागपुर) में महा-महोत्सवपूर्वक विभूषित किया। उपाध्यायपदोत्सव ओसवालज्ञातीय छजलाणीगोत्रीय श्रे० सहसाशाह की ओर से आयोजित किया गया था।

दीक्षा और उपाध्याय-पद

कुछ शताब्दियों से साध्वाचार शिथिल होता चला आ रहा था। अनेक विद्वान् आचार्यों ने इस शिथिला-चार को मिटाने के लिये भगीरथ प्रयत्न किये थे। उपाध्याय पार्श्वचन्द्र ने भी इस शिथिलाचार को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। वि० सं० १५६४ में आप क्रियोद्धार करने पर तत्पर हुये और शिथिला-चार का विरोध करने लगे। वि० सं० १५६५ में आपको जोधपुर नगर में श्रीमद् पुण्यरत्नसूरि के शिष्य विजयदेवसूरि के समक्ष श्री संघ ने सूरिपद प्रदान किया।

क्रियोद्धार और सूरिपद

उस समय के साधुओं के शिथिलाचार को देखकर आपने जो क्रियोद्धार किया था, उसके फलस्वरूप आपको अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे। श्रीमद् साधुरत्नसूरि आपका बड़ा मान करते थे। यहाँ तक कि आपके दिखाये हुये मार्ग पर ही चलते थे। परन्तु अन्य बृहत्तपागच्छीय साधुओं के साथ विरोध और ईर्ष्या बढ़ती ही गई। आपने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की। फलस्वरूप वि० सं० १५७२ में अलग होकर आपने श्री पार्श्वचन्द्रगच्छ की स्थापना की और आप अपने मत का प्रचार कोंकण, सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा, मेवाड़ और मरुधर-प्रान्तों में भ्रमण करके करने लगे।

पार्श्वचन्द्रगच्छ की स्थापना

हमीरगढ़ सिरोही-राज्य में है। सिरोही से नैर्ऋत्यकोण में ६ मील के अन्तर पर, सिदरथ से दक्षिण नैर्ऋत्य में ३ मील के अन्तर पर, हणाद्रा से ईशानकोण में १३ मील के अन्तर पर, मेडा से ईशानकोण में ३ मील के अन्तर पर मीरपुर नामक ग्राम है। इस ग्राम से पूर्व दिशा में एक मील के अन्तर पर हम्मीरगढ़ का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग अर्बुदगिरि के पश्चिमीढ़ाल की उपत्यका में बसा हुआ है। इस दुर्ग के तीन ओर पहाड़ और एक ओर मैदान है। *हम्मीरगढ़ प्र० २ पृ० ४*

जै० गु० क० भा० १ पृ० १३६, १५२ (टिप्पणी) *ऐ० रा० सं० भा० १ पृ० ११-१६*

आपके मत की शुद्धता और महत्ता देखकर अनेक जैनेतर कुल भी जैन बनने लगे। जोधपुराधीश राव गंगजी (वि० सं० १५७२-१५८८) और उनके पुत्र युवराज मालदेव को आपने प्रतिबोध दिया और लगभग २२०० बावीससौ क्षत्रियवंशीय मुहणोत गोत्रीयकुलों को जैन बनाकर उन्हें ओसवाल-ज्ञाति में परिगणित किया। इसी प्रकार आपने गूर्जर-प्रदेश में उनावाग्राम में वैष्णव-मतानुयायी सोनीवणिकों को तथा अन्य अनेक पुर एवं ग्रामों में ऐसे गृहस्थों को जो महेश्वरी बन चुके थे प्रतिबोध देकर पुनः जैन श्रावक बनाये।

अनेक कुलों को जैन बनाना

आपके समय में समस्त उत्तर भारत में यवनों का जोर था। यवन मन्दिर तोड़ते थे और उनके स्थान पर मस्जिद और मकबरे बनाते थे। वि० सं० १५३० में श्रीमान् लोंकाशाह ने शिथिलाचारविरोधी आन्दोलन को जन्म दिया और दयासिद्धान्त का घोर प्रचार करना प्रारम्भ किया। तीर्थयात्रा, प्रतिमापूजा आदि की क्रियाओं का भी लोंकाशाह ने दयादृष्टि से खण्डन करना प्रारम्भ किया। इस कार्य में लखमसिंह नामक उनके शिष्य ने उनको पूरी २ सहायता दी थी। तुरन्त ही लोंकाशाह के अनेक अनुयायी हो गये; क्योंकि चैत्यवासीयतिओं के शिथिलाचार से उनको घृणा हो उठी थी और उधर मन्दिरों के प्रति उदासीनता बढ़ चली थी। जैनसमाज में मूर्त्तिपूजा के खण्डन से भारी हलचल मच गई। फलस्वरूप जाग्रति उत्पन्न हुई और अनेक जैनाचार्यों ने क्रियोद्धार करके मन्दिरों और साधुओं में फैले हुये आडम्बर एवं शिथिलाचार को नष्ट करने का प्रयत्न किया। ऐसे क्रियोद्धारक साधुओं में श्री पार्श्वचन्द्रसूरि भी थे। आपने लोंकाशाह के मत के साधुओं के साथ में प्रतिमा-सामाचारी आदि विषयों पर तथा एक सौ बावीस बोलों पर चर्चा की थी।

लोंकामत और पार्श्वचन्द्रसूरि

आप जैसे महान् तपस्वी एवं क्रियोद्धारक थे, वैसे ही महान् साहित्यसेवी विद्वान् भी थे। आपने धार्मिक, सामाजिक एवं नीति सम्बन्धी विषयों पर अनेक छोटे-बड़े ग्रंथ, गीत, रास आदि की रचनायें की हैं। आप संस्कृत, प्राकृत के अच्छे विद्वान् थे। गुजराती-भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था। आपश्री द्वारा लिखित जितना साहित्य प्राप्त हुआ है, वह आपके युग के साहित्यसेवियों में आपकी रही हुई प्रमुखता को सिद्ध करता है, जैसा पाठकगण आप द्वारा रचित पुस्तकों की नीचे दी गई सूची से अनुमान कर सकेंगे।

पार्श्वचन्द्रसूरि और उनका साहित्य

आपके रचना-साहित्य की सूची निम्न प्रकार हैः—

१–साधु-वन्दना	२–अतिचार-चौपाई गा० १५६	३–पाक्षिक-छत्रीशी. पृ० ५ गा० ३६
४–चारित्र-मनोरथमाला	५–श्रावक-मनोरथमाला	६–वस्तुपाल-तेजपाल रास सं० १५६७
७–आत्म-शिक्षा	८–आगम-छत्रीशी	९–उत्तराध्ययन-छत्रीशी. (ढाल)
१०–गुरु-छत्रीशी.	११–मुहपत्ति-छत्रीशी	१२–विवेक-शतक
१३–दूहा-शतक	१४–ऐषणा-शतक	१५–संघरंग-प्रबन्ध

गी० प्र० (जैन गीता) पृ० ६५। भा० रा० इ० प्र० भा० आ० शो० च० (आराम शोभा चरित्र) प्रस्तावना पृ० ६ जै० सा० सं० इ० पृ० ५०६-७३६, ५२२-७६५.

जै० गु० क० भा० १ पृ० १३६

लोंका साथे १२२ बोलनीचर्चा

१६—जिनप्रतिमा-स्थापनाविज्ञप्ति　१७—अमर-द्वासप्तिका　१८—नियतानियत-प्रश्नोत्तर-प्रदीपिका
१९—ब्रह्मचर्य-दश समाधिस्थान कुल　२०—चित्रकूटचैत्यपरिपाटी-स्तवन　२१—सत्तरभेदी पूजा (विधिगर्भित)
२२—११ बोल-सजाय　२३—कायोत्सर्ग के १६ दोष.　२४—वंदन-दोष
२५—उपदेश-रहस्य गीत　२६—२४ दंडकगर्भित पार्श्वनाथ-स्तवन.　२७—आराधना मोटी
२८—आराधना नानी　२९—खंधक चरित्र-सज्झाय*　३०—विधि-शतक
३१—आदीश्वर-स्तवन-विज्ञप्तिका　३२—विधि-विचार　३३—निश्चय-व्यवहार
३४—वीतरागस्तवन (ढ़ाल)　३५—गीतार्थ-पदावबोध कुल　३६—रास-श्रुतका पद्य
३७—३४ अतिशय स्त०　३८—वीश विहरमान जिन-स्तुति　३९—शांतिजिन-स्त०
४०—सज्झाय　४१—रूपकमाला सं० १५८६ (राणकपुरतीर्थ में रची)
४२—एकादशवचन द्वात्रिंशिका　४३—दशवैकालिक सूत्र-बाला० पत्र ३३ (जैसलमेर के भंडार में)
४४—आचारांग-बालावबोध　४५—औपपातिक सूत्र-बाला० पत्र १२५ (कच्छी द० ओ० भं० मुंबई)
४६—साधु-प्रतिक्रमणसूत्र-बाला०　४७—सूत्रकृतांग सूत्र-बाला० पत्र ८७ (खंभात)
४८—रायपसेणीसूत्र-बाला०　४९—नवतत्त्व-बाला०　५०—प्रश्नव्याकरण सूत्र-बाला०
५१—भाषा के ४२ भेदों का बाला०　५२—तंदुल वेयालीय पयन्ना-बाला०　५३—जंबूचरित्र-बाला०
५४—लोंकासाथे १२२ बोल नी चर्चा　५५—चउसरण-प्रकीर्णक-बाला० सं० १५९७ फा० शु० १३ रवि०
५६—जिनप्रतिमा अधिकार (गद्य)　५७—चर्चाओ (प्रतिमा, सामाचारी, पाखी के ऊपर)
५८—देवसी-प्रतिक्रमणविधि-सज्झाय.

युगप्रधानपद की प्राप्ति और देहत्याग

श्रीपार्श्वचन्द्र ने इस प्रकार धर्म और साहित्य की अतिशय सेवा की। फलस्वरूप वि० सं० १५९९ वैशाख शु० ३ को श्रीमद् साधुरत्नसूरि की अध्यक्षता में सलखणपुर में मोढ़ज्ञातीय मंत्री विक्रम और सबर तथा श्रीमाली-ज्ञातीय दोसीगोत्रीय हेमा के पुत्र उगा, बोघा और पासराज ने महोत्सव करके आपको युगप्रधानपद से और उसी अवसर पर आपके प्रमुख शिष्य महाविद्वान् समरचन्द्र को उपाध्यायपद से सुशोभित किया। वि० सं० १६०० वैशाख शु० ८ शुक्र० को श्रीमद् साधुरत्नसूरि का स्वर्गवास हुआ। तदनन्तर वि० सं० १६०४ में मालवान्तर्गत खाचरोद नगर में उपाध्याय समरचन्द्र को आपने आचार्य-पदवी प्रदान की। श्रेष्ठि भीलग और वत्सराज ने बहु द्रव्य व्यय करके सूरिपदोत्सव किया। वि० सं० १६१२ मार्ग शु० ३ को जोधपुर में आपका स्वर्गवास हुआ और श्रीमद् समरचन्द्रसूरि आपके पाट पर विराजे।

---

*वडतपगच्छि गुणरयणनिधान, 'साहुरयण' पण्डित सुप्रधान 'पार्श्वचन्द्र' नामे तसु सीस, तिणि कीधो मनि आणी जगीश–१००
सूत्र थकी कांई अधिको ऊण, तेय खमो जिनवाणीनूण। खखरस (१६००) चंद वरसे उजली, वइसाखी आठमि मनरली १०१
शुक्रवारि ए पुरो कर्यो, महा ऋषीवर भवजल तर्यो। खंदकचरित्र-सज्झाय
ऐ० रा० सं० भा० १ पृ० १४-१५। जै० गु० क० भा० १ पृ० १०७ (१९२) पृ० १३६-१४८
जै० गु० क० भा० ३ पृ० २४ (४५) पृ० १५८७–८९
जै० सा० सं० इ० ३२६। टि० ३७४, ४७५।७६५, ७७९, ७८३, ७८५, १०५२।

खरतरगच्छीय कविवर श्री समयसुन्दर

विo संo १६३०. से विo संo १७००

विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी यवन-शासनकाल में स्वर्ण-युग कही जाती है। इसी शताब्दी में लोकप्रिय, नीतिज्ञ, उदार, वीर एवं धीर सम्राट् अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ हुये हैं। ये ही सम्राट् समस्त यवनकाल के नभ में जगमगाते रवि और चन्द्र ही नहीं, उसके मस्तिष्क, वक्ष और रीढ भी ये ही हैं। इनके अभाव में समस्त यवनकाल पाशविक, घृणास्पद, अवांछनीय और भार स्वरूप है। शेरशाहसूर अवश्य एक ध्रुव तारा है। ऐसे लोक-प्रिय सम्राटों के समय में धर्म, समाज, साहित्य, कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य की उन्नति होना स्वाभाविक है। कविवर समयसुन्दरजी इसी समय में हुये हैं। इनका जन्म साचोर (मारवाड़) में लगभग विo संo १६२० में प्राग्वाटज्ञातीय कुल में हुआ और लगभग विo संo १६३० या १६३२ के आपकी दीक्षा वृहत् खरतरगच्छ में हुई। उस समय खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि अधिक प्रख्यात एवं नामांकित आचार्य थे। उनके ६६ प्रसिद्ध शिष्य थे। इन प्रसिद्ध शिष्यों में प्रथम शिष्य सकलचन्द्र उपाध्याय के कविवर समयसुन्दर शिष्य थे। शत्रुंजयमहातीर्थ का सत्रहवां उद्धार करवाने वाला महामंत्री कर्मचन्द्र वच्छावत जिनचन्द्रसूरि का अनन्य भक्त था। उसका सम्राट् अकबर की राजसभा में अतिशय मान था। सम्राट् अकबर ने कर्मचन्द्र के मुख से सूरीश्वर जिनचन्द्र की प्रसिद्धि सुन कर, उनको राज्जसभा में निमंत्रित किया था। उस समय जिनचन्द्रसूरि गूर्जर-प्रदेश में विचरण कर रहे थे। वे निमंत्रण पाकर वहाँ से रवाना हुये और जाबालिपुर (जालोर-राजस्थान) में आकर चातुर्मास किया। तदनन्तर वहाँ से विहार करके मेड़ता, नागौर होते हुये लाहौर पहुँचे। कविवर समयसुन्दर भी आपके साथ में थे। सम्राट् अकबर ने जिनचंद्रसूरि का भारी संमान किया और 'युगप्रधान' पद प्रदान किया। सम्राट् युवानमुनि कविवर समयसुन्दर की बुद्धि, प्रतिभा एवं चारित्र को देख कर अति मुग्ध हुआ। विo संo १६४६ फाल्गुण शुo २ को सम्राट् अकबर के कहने के अनुसार युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि ने मुनि मानसिंह को आचार्यपद और कविवर समयसुन्दर तथा गुणविनय को उपाध्यायपद प्रदान किये। यह पदोत्सव महामंत्री कर्मचन्द्र वच्छावत ने बहु द्रव्य व्यय करके शाही धूम-धाम से किया था।

कविवर समयसुन्दर और उनका समय तथा वंश और गुरुपरिचय

निवृत्त पुरुषों के प्रमुख दो ही कार्य होते हैं। आध्यात्मिक जीवन और साहित्य-सेवा। विo सत्रहवीं शताब्दी एक शान्त और सुखद शतक था। इन दोनों प्रकार के कार्यों के उत्कर्ष के लिये भी शान्त और सुखद वातावरण चाहिए। फलस्वरूप विo सत्रहवीं शताब्दी में धर्माचार्यों की प्रतिष्ठा रही और साहित्य में भी अतिशय उत्कर्ष हुआ। उत्कृष्ट संत-साहित्य इसी काल की देन है। सर्व धर्मों के चारित्रवान् एवं विद्वान् धर्माचार्यों का उत्कर्ष बढ़ा और सर्व देशी भाषाओं में नव साहित्य का सर्जन चरमता पर पहुंच गया। महाकवि तुलसीदास,

'प्रज्ञाप्रकर्षः प्राग्वाटे इति सत्यं व्यधायियैः येषां हस्तात् सिद्धिः संताने शिष्य शिष्यादौः।
अष्टलक्षानर्थानेकपदे प्राप्य ये तु निर्मं थाः संसारसकलसुभगाः विशेषतः सर्वराजानाम्॥ मध्याह्नपद्धति

केशवदास, रसखान, सेनापति, गंग, दादूदयाल, सुन्दरदास, बनारसीदास, बीरबल आदि अनेक प्रसिद्ध कवि एवं विद्वानों को इस शतक ने जन्म दिया। इनके साहित्य से आज हिन्दीभाषा का घर अनुप्राणित हो रहा है और संसार में उसका मुख उज्ज्वल है। कविवर समयसुन्दर भी प्रतिभावान् एवं अध्ययनशील व्यक्ति थे। अनुकूल राजा हो, कृपालु गुरु हो, गौरवशाली कुल या गच्छ हो और सहायक वातावरण हो तो फिर जागरूक एवं प्रतिभाशाली पुरुष को बढ़ने में बाधा भी कौनसी रह जाती है। कविवर समयसुन्दर को सारे उत्तम साधन प्राप्त थे। बस उन्होंने अपना समस्त जीवन धर्म-प्रचार और साहित्य-सेवा में व्यतीत किया और सत्रहवें शतक के प्रधान कवियों एवं मुनियों में आप गिने गये। सिंध और पंजाब-प्रांतों में आपने जीवदयासंबंधी अच्छा प्रचार किया। सिंध का मखनूस महमद शेख और सम्राट् अकबर आपके चारित्र और उपदेश से सदा आपके प्रशंसक बने रहे।

आप एक महान् विद्वान्, टीकाकार, संग्राहक, छंद एवं काव्यमर्मज्ञ, भाषानिष्णात, सुयोग्य समालोचक और जिज्ञासु थे। आपकी कृतियों में संस्कृत की कृतियाँ निम्नवत् हैं:—

१—भावशतक. श्लो० १०१. सं० १६४१। (सर्वप्रथम कृति) २—रूपकमाला पर वृत्ति. श्लो० ४००. सं० १६६३ चातुर्मासपर्व-व्याख्यान-पद्धति. सं० १६६५ चै० शु० १०. अमरसर में। ३—कालिकाचार्यकथा. सं० १६६६। ४—समाचारीशतक. सं० १६७२। ५—विशेषशतक. सं० १६७२। ६—विचारकशतक. सं० १६७४. मेड़ता में।

मेड़ता और मंडोर के राजा आपका बहुत संमान करते थे। फलतः आपने जीवदयासम्बन्धी अनेक सुकृत्य वहाँ पर करवाये थे।

७—अष्टलक्षार्थी. सं० १६७६. 'राजानो ददते सौख्यम्' इस प्रकार के वाक्यों का आठ लाख अर्थोंवाला यह ग्रंथ है। लाहौर में सम्राट् इस अद्भुत ग्रन्थ को देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ था और इसको स्वहस्त में लेकर पुनः कविवर को देकर प्रमाणभूत किया था। इस ग्रंथ की रचना वि० सं० १६४६ में प्रारम्भ हो गई थी और वि० सं० १६४९ में जब आप सम्राट् से मिले थे, उस समय तक इसका अधिक भाग तैयार हो चुका था।

८—विसंवादशतक. सं० १६८५।

९—विशेषसंग्रह. सं० १६८५. लूणकर्णसर में। १०—गाथासहस्री. सं० १६८६। ११—जयतिहुयण नामक स्तोत्र पर वृत्ति. सं० १६८७. पाटण में। १२—दशवैकालिकसूत्र पर शब्दार्थवृत्ति. श्लो० ३३५०. सं० १६९१। १३—वृत्तरत्नाकरवृत्ति. सं० १६९४. जावालिपुर में। १४—कल्पसूत्र पर कल्पलता नामक वृत्ति. श्लो० ७७००। १५—नवतत्त्वपर-वृत्ति। १६—जिनवल्लभसूरिकृत वीरचरित्र-स्तवन पर ८०० श्लोकों की टीका। १७—संवादसुन्दर. श्लो० ३३३। १८—चातुर्मासिक व्याख्यान। १९—रघुवंशवृत्ति। २०—कल्पलता मध्य भोजन-विच्छित्ति। २१—कल्याणमंदिरस्तोत्र पर वृत्ति. सं० १६९४.।

२२—जीवविचार, २३—नवतत्त्व, २४—दंडक. सं० १६९८ में अहमदाबाद में हाजा पटेल की पोल में रह कर रचे.

गूर्जर-भाषा में पद्यकृतियाँ—

कवि ने गूर्जर भाषा में अनेक ढ़ाल, स्तवन, देशियाँ, रास, काव्य गीत रचे।

१—चौवीशी. सं० १६५८. अहमदाबाद में विजयादशमी के शुभोत्सव पर (पालीताणा भंडार में)

२—शांबप्रद्युम्न-प्रबंधरचा. सं० १६५९ खंभात विजयादशमी के शुभोत्सव के दिन रचा। इसकी रचना उपकेशज्ञातीय

लोढ़ागोत्रीय शाह शिवराज की अभ्यर्थना से हुई। इसमें गाथा ५३५. ढ़ाल २१० श्लो० ८०० प्रमाण हैं (लीं० भण्डार में)

३—दान-शील-तप-भावना-संवाद. सं० १६६२. सांगानेर में।

४—चार प्रत्येकबुद्ध का रास. सं० १६६५ ज्ये० शु० १५. आगरा में। प्रत्येक बुद्ध-सिद्ध करकंडु, दुर्मुख, नेमिराज और निर्गति (नग्गति) इन चारों का चार खंड में वर्णन है (भी० मा० बम्बई)

५—पोषधविधि-स्तवन. सं० १६६७ मार्ग शु० १० गुरु०. मरोट में।

६—मृगावतीचरित्र-रास. सं० १६६८. मुलतान में। ७—कर्मछत्रीशी. सं० १६६८. माह शु० ६ मुलतान में।

८—पुण्यछत्रीशी. सं० १६६८. सिद्धपुर में।

९—शीलछत्रीशी. सं० १६६६. ,, } प्रत्येक में ३६ कड़ी हैं.

१०—संतोषछत्रीशी. ,, ,,

११—क्षमाछत्रीशी. नागौर में।

१२—प्रियमेलकरास. सं० १६७२ मेड़ता में। प्रियमेलक नाम के एक तीर्थ का इसमें माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये कवि ने उत्तम श्रावक कैसे २ उत्तम धर्मकृत्य करके समाधिमृत्यु प्राप्त करता है का दिग्दर्शन कराया है।

१३—नलदमयन्तीरास. सं० १६७३. वसंतमास में मेड़ता में। १४—पुण्यसारचरित्र. सं० १६७३।

१५—राणकपुरस्तवन. सं० १६७६ मार्गशिर. राणकपुर में। १६—वल्कलचीरीरास. सं० १६८१. जैसलमेर में।

१७—मौन एकादशी का बृहत्स्तवन. सं० १६८१. जैसलमेर में। १८—वस्तुपाल तेजपाल का रास. सं० १६८२ तिमरीपुर में (प्रकाशित) १९—शत्रुंजयरास. सं० १६८२ श्रावण कृ० पक्ष में. नागौर में। २०—सीताराम-प्रबंध-चौपाई. सं १६८३. मेड़ता में (आ० भण्डार में)। २१—बारहव्रतरास. सं० १६८५। २२—गौतमपृच्छा. सं० १६८६। २३—थावच्चा चौपाई. सं० १६९१। २४—व्यवहारशुद्धि चौपाई. सं० १६९३। २५—चंपक श्रेष्ठिनी चौपाई. सं० १६९५. जावालिपुर में (आ० का० भण्डार में) २६—धनदत्त चौपाई. सं० १६९६. अहमदाबाद में। २७—साधुवंदना. सं० १६९७ (लीं० भण्डार में) २८—पापछत्रीशी. सं० १६९८. अहमदपुर में (पूर्णचन्द्रजी नाहर) २९—सुसढ़रास. (अप्राप्त) ३०—पुण्याढ़यरास. (र० वि० भण्डार अहमदाबाद में) ३१—पुंजऋषि का रास (?) ३२—आलोयणाछत्रीशी. सं० १६९८। ३३—द्रुपदीसती सम्बन्ध. सं० १७००।

अतिरिक्त उपरोक्त संस्कृत, गूर्जरभाषा कृतियों के कवि ने अनेक सज्झाय, स्तवन और छोटे २ पदों की रचनायें की हैं। आपकी विविध कवितायें निम्नवत् हैं:—

१. जंबूरास। २. नेमिराजिमतीरास। ३. प्रश्नोत्तरचौपाई। ४. श्रीपालरास।
५. हंसराज-वच्छराजचौपाई। ६. प्रश्नोत्तरसारसंग्रह। ७. पद्मावतीसज्झाय। ८. चार प्रत्येक बुद्ध पर सं०।
९. पार्श्वनाथ-पंचकल्याणक-स्तवन। १०. प्रतिमा-स्तवन। ११. मुनिसुव्रत-स्तवन।

जै० गु० क० इति० पृ० ५७६ (८४७), पृ० ५८८ (८६४), । जैनसाहित्य संशोधक अंक ३ खं० २ पृ० १ से ७१
G. O. S. Vo. no—XXI (जेसलमेर-भंडार की सूची) प्र० पृ० ६०, ६१

विविध काव्यगीत—

१. नलदमयन्ती	२. जिनकुशलसूरि	३. ऋषभनाथ	४. सनत्कुमार
५. अर्हन्नक	६. स्थूलिभद्रजी	७. गौतमस्वामी	८. क्रोधनिवारण
९. माननिवारण	१०. मोहनिवारण	११. मायानिवारण	१२. लोभनिवारण
१३. अतिलोभनिवारण	१४. मनशुद्धि	१५. जीव-प्रतिबोध	१६. आर्शिनिवारण
१७. निंदानिवारण	१८. हुँकारनिवारण	१९. कामिनी-विश्वास	२०. जीवनट
२१. स्वार्थ	२२. पार की होड़निवारण	२३. जीवव्यापार	२४. घड़ीलाखीणी
२५. घड़ियाला	२६. उद्यमभाग्य	२७. मुक्तिगमन	२८. कर्म
२९. नाव	३०. जीवदया	३१. वीतराग-सत्यवचन	३२. मरणभय
३३. संदेह	३४. सूता-जगावण	३५. परमेश्वरपृच्छा	३६. भणनप्रेरण
३७. क्रियाप्रेरण	३८. परमेश्वरस्वरूपदुर्लभता	३९. जीवकर्मसम्बन्ध	४०. परमेश्वरलय
४१. निरंजनध्यान	४२. दुःषमकाल में संयम-पालन		

भण्डारों का जब शोधन होगा, अनुमान है कि कवि की और कृतियों का पता लगेगा। फिर भी उपलब्ध कृतियों की सूची पूरी २ दी गई है।

मेवाड़, मरुधर, गुजरात, काठियावाड़, पंजाब, संयुक्त-प्रदेश आदि उत्तर भारत के प्रमुख प्रान्तों में उन्होंने गुरु एवं अपनी शिष्यमण्डली के साथ में विहार और चातुर्मास किये थे। वि० सं० १६४९ तक तो वे गुजरात-भूमि में ही विचरण करते रहे। परन्तु सम्राट् अकबर के निमंत्रण पर जब वे अपने प्रगुरु श्रीमद् जिनचन्द्रसूरि के साथ में सम्राट् अकबर से मिलने के लिये लाहौर गये थे, तब उनको मारवाड़, मेवाड़ और आगराप्रान्तों में होकर जाना पड़ा था। वि० सं० १६४८ में जाबालिपुर में गुरु के साथ चातुर्मास रहे थे। इस प्रकार इस यात्रा में अनेक नगर, ग्रामों के श्री संघों से परिचय बढ़ा। फलस्वरूप विहार में रुचि बढ़ी। अनेक तीर्थों की यात्रायें कीं और अनेक नगर, ग्रामों में रहकर रचनायें कीं। उन्होंने जिन स्थानों पर रचनायें कीं और रचना के कारण अधिक समय पर्यंत निवास किया, उन स्थलों की सूची मय सम्वत् के इस प्रकार हैं:—

कविवर का विहारक्षेत्र एवं चातुर्मास और विविध प्रांतीय भाषाओं से परिचय

सं० १६४९ लाहौर	सं० १६५८ अहमदाबाद	सं० १६५९ खंभात
सं० १६६२ सांगानेर	सं० १६६५ आगरा	सं० १६६७ मरोट
सं० १६६८ मुलतान	सं० १६७२-७३-७४ मेड़ता	सं० १६७६ राणकपुर
सं० १६८१ जैसलमेर, लोद्रवपुर, शत्रुंजय	सं० १६८२ नागौर	सं० १६८३ मेड़ता
	सं० १६८५ लूणकर्णसर	सं० १६८७ पाटण
सं० १६९१ खंभात	सं० १६९६ अहमदाबाद	सं० १६९८ अहमदपुर

कविवर ने संमेतशिखर, चंपा, पावापुरी, फलोधी, नाडोल, बीकानेर, अर्बुदाचल, गौड़ी, वरकाणा, जीरावला, शंखेश्वर, अंतरीक्ष, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रायें की थीं और जैसलमेर में आप कई वर्षों तक रहे थे। जैसलमेर के महा राउल भीम ने आपके सदुपदेश से सांड का वध करना अपने राज्य में बंध किया था।

कविवर का साहित्यसेवियों में स्थान

अनेक प्रांतों में अधिक समय तक विचरण और निवास करने से कविवर समयसुन्दर को अनेक प्रान्तीय भाषाओं से परिचय हुआ, जो हम उनकी रचनाओं में स्पष्ट देखते हैं। उनकी रचनाओं में गूर्जर-भाषा के शब्दों के अतिरिक्त राजस्थान, फारसी आदि शब्दों का भी प्रयोग है। कवि यद्यपि साधु थे, फिर भी उनका प्रकृतिप्रेम और उससे अद्भुत परिचय जो हमको उनके फुटकल पद्यों में मिलता है सिद्ध करता है कि उनका अनुभव विस्तृत एवं अगाध था और ऐसे चारित्रवान् महान् विद्वान् साधु का प्रकृति से सीधा तादात्म्य सिद्ध करता है कि प्रकृति शुद्ध और सदा मुक्त है, जो आध्यात्मिक जीवन को चढ़ाती और बनाती हैं। जैसे ये जिनेश्वर के भक्त थे, वैसा ही उनका उत्कृष्ट अनुराग सरस्वती, गुरु, माता-पिता के प्रति भी था।

कविवर की भाषा प्रांजल, मधुर, सरल और सुन्दर है। इन्होंने धार्मिक विषयों, तीर्थङ्करों, तीर्थों के अतिरिक्त सामाजिक विषयों पर भी अनेक फुटकल रचनायें की हैं। इनकी रचनाओं में कथा, वार्त्ता और इतिहास है तथा धर्म की प्ररूपणा है। इनकी वसंत-विहार, वसंत-वर्णन, अतृप्त स्त्री, नगर-वर्णन, दुकाल-वर्णन रचनायें भी अधिक चित्ताकर्षक हैं। कविवर को देशियों और ढालों से भी अधिक प्रेम था। ये संगीत के अच्छे ज्ञाता एवं प्रेमी थे। ये सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि थे एवं व्याख्याता थे। श्रीमद् जिनचन्द्रसूरि ने इनको वाचकपद प्रदान किया था। संस्कृत, प्राकृत, गूर्जरभाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था। स्थानाभाव के कारण तुलनात्मक दृष्टि से इनका पूरा २ साहित्यिक-मूल्यांकन करना यहाँ असम्भव और अप्रासंगिक भी प्रतीत होता है। ये श्रावक-कवि ऋषभदास के समकालीन थे। ऋषभदास इनके प्रबल प्रशंसक थे।

कविरचित स्तवनः—

शत्रुञ्जे ऋषभ समोसर्या भला गुण भर्या रे, सिद्धा साधु अनन्त, तीरथ ते नमु रे।
तीन कल्याण तिहां थया, मुगते गया रे, नमीश्वर गिरनार, तीरथ ते नमु रे।
अष्टापद एक देहरो, गिरि-सेहरो रे, भरतें भराव्या बिंब—ती०
आबु चौमुख अति भलो, त्रिभुवनतिलो रे, विमल-वसई वस्तुपाल.
समेतशिखर सोहामणो, रलियामणो रे, सिद्धा तीर्थंकर वीश,
नयरीचंपा निरखियेरे, हैये हरखियेरे, सिद्धा श्री वासुपूज्य.
पूर्वेदिशे पावापुरी. ऋद्धि भरी रे, मुक्ति गया महावीर,
जैसलमेर जुहारिये, दुःख वारी येरे, अरिहंतबिंब अनेक.
विकानेर ज वंदीये, चिरनंदी येरे, अरिहंत देहरा आठ,
सेरिसरो शंखेश्वरो, पंचासरो रे, फलोधी थंभण पास,
अंतरिक अंजावरो अमीजरो रे, जीरावलो जगनाथ,
त्रैलोक्यदीपक देहरो, जात्रा करो रे, राणपुरे रिसदेश.
श्री नाडुलाई जादवो, गोडी स्तवोरे, श्री वरकाणो पास,
नंदीश्वरणा देहरा, बावन भलारे, रुचककुंडले चार चार,

कविवर की अंतिम कृति वि० सं० १७०० की है। इससे सिद्ध है कि कवि का स्वर्गवास वि० सं० १७०० के लगभग हुआ है। इस प्रकार कविवर लगभग अस्सी वर्ष का आयु भोग कर स्वर्ग सिधारे। उनकी साहित्यिक सेवाओं का प्रभाव उनके शिष्य समुदाय पर भी अमिट पड़ा। उनका हर्षनंदन नामक शिष्य अति विख्यात् विद्वान् एवं प्रभावक हुआ। हर्षनंदन ने ख० सुमतिकल्लोल की सहायता से 'स्थानांग-आगम' की गाथाओं पर १३६०४ श्लोकों की एक वृत्ति रची। इनका प्रशिष्य उपाध्याय हर्षकुशल भी बड़ा विद्वान् था। उन्नीसवीं शताब्दी तक इनकी शिष्य-परंपरा अखंड रूप से विद्यमान रही।*

कविवर का शिष्य-समुदाय और स्वर्गारोहण.

श्री पूर्णिमागच्छाधिपति श्रीमद् महिमाप्रभसूरि

दीक्षा वि० सं० १७१६. स्वर्गवास वि० सं० १७७२

गूर्जरभूमि के धाणधारप्रान्त में आये हुये पालणपुर नगर के पास में गोला नामक एक ग्राम है। वहाँ प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वेलजी रहते थे। उनकी स्त्री का नाम अमरादेवी था। अमरादेवी की कुक्षि से दो पुत्र और एक पुत्री हुई थी। चरित्रनायक का नाम मेघराज था और ये सब से छोटे पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १७११ आश्विन कृ० ६ मघा नक्षत्र में हुआ था। जब इनकी आयु चार वर्ष की हुई माता अमरादेवी का स्वर्गवास हो गया। श्रे० वेलजी का गृहस्थ-जीवन एकदम दुःखपूर्ण हो गया। बड़ा पुत्र अलग हो गया और पुत्री का विवाह हो जाने से वह अपने श्वसुरालय में चली गई। दुःखी पिता वेलजी और लघु शिशु मेघराज को भोजन बनाकर भी कोई देने वाला नहीं रहा। श्रे० वेलजी अधिकाधिक दुःखी रहने लगा। निदान वेलजी ने दुःख को भूलने के लिये यात्रा करने का निश्चय किया और शिशु पुत्र मेघराज को ले कर वि० सं० १७१७ में यात्रार्थ निकल पड़े। अणहिलपुरपत्तन में पहुँच कर ढंढेरवाड़ा के श्री महावीरजिनालय में दोनों पिता-पुत्रों ने प्रभुप्रतिमा के भावपूर्वक दर्शन किये और तत्पश्चात् उपाश्रय में जाकर श्रीमद् ललितप्रभसूरि के पट्टधर श्रीमद् विनयप्रभसूरि को सविनय सविधि वंदना की। उक्त आचार्य का उपदेश

वंश-परिचय

---

*शाश्वती अशाश्वती, प्रतिमा छती रे स्वर्ग मृत्यु पाताल,
तीरथयात्रा फल तिहां, होजो मुज इहाँ, समय सुन्दर कहे ऐम,

सेरीसर–गुजरात में कल्लोल के पास में. शंखेश्वर–अणहिलपुरपत्तन से २० मील. थंभण–खंभात में.
फलोधी–मेडता (मारवाड़) रोड़ से १० मील. अंतरिक्ष-पार्श्वनाथ–आकोला से ४० मील.
अजावरो (अजाहरो)–काठियावाड़ में उनाग्राम के पास में. अमीजरापार्श्वनाथ–ढुआ में (पालणपुरस्टेट)
जीरावला-पार्श्वनाथ। वरकाणा। नाडुलाई। राणकपुरतीर्थ।] मारवाड़ में

भावनगर में हुई गु० सा० प० के सातवें अधिवेशन के अवसर पर श्रीयुत् मोहनलाल दलीचन्द देसाई द्वारा लिखे गये निबंध 'कविवर समयसुन्दर' के आधार पर ही तैयार किया गया है। निबंध अति विस्तृत और पूरे श्रम से तैयार किया गया था। मैं निबंधकर्त्ता का अत्यन्त आभारी हूं कि जिनके श्रम ने मेरे श्रम को बचाया। देखो, जैन साहित्य संशोधक अंक ३ खं०२ पृ० १ से ७१

श्रवण करके श्रे० वेलजी ने अपने प्यारे पुत्र को सुखी करने की दृष्टि से गुरु महाराज साहब को अर्पित कर दिया।

बालक मेघराज अत्यन्त ही कुशाग्रबुद्धि था। दो वर्ष के अल्प समय में उसने सराहनीय अभ्यास कर लिया। श्रीमद् विनयप्रभसूरि मेघराज की प्रतिभा देखकर अति प्रसन्न हुये और वि० सं० १७१६ में उसको आठ वर्ष की वय में ही भगवतीदीक्षा प्रदान कर दी और मेघरत्न नाम रक्खा। बालमुनि मेघरत्न ने गुरु की सेवा में रह कर हैमपाणिनी-महाभाष्य आदि व्याकरण-ग्रन्थों का अध्ययन किया और तत्पश्चात् बुरहानपुर में भट्टाचार्य की निश्रा में चिन्तामणि-शिरोमणि आदि न्याय-ग्रन्थों का, ज्योतिष 'थ सिद्धान्तशिरोमणि, यंत्रराज आदि का, गणित, जैनकाव्य आदि अनेक विषयक ग्रन्थों का परिपक्व अभ्यास किया और बीस वर्ष की वय तक तो आप महाधुरन्धर ज्योतिषपण्डित और शास्त्रों के ज्ञाता हो गये।

विद्याभ्यास और दीक्षा

वि० सं० १७३१ में श्रीमद् विनयप्रभसूरि का स्वर्गवास हो गया और आप श्री को उसी वर्ष फाल्गुण मास में सूरिपद से सुशोभित करके उनके पाट पर आरूढ़ किया गया और महिमाप्रभसूरि आपका नाम रक्खा। उक्त पाटोत्सव श्रे० श्री लाधा सूरजी ने बहुत द्रव्य व्यय करके किया था। आप अपने समय के जैनाचार्यों में प्रखर विद्वान् एवं महातेजस्वी आचार्य थे। आपके पाण्डित्य एवं तेज से जैन और जैनेतर दोनों अत्यन्त प्रभावित थे।

सूरिपद की प्राप्ति

आपने अनेक प्रतिष्ठायें करवाई। अनेक प्रकार के तपोत्सव करवाये। श्रे० वत्सराज के पुत्र चन्द्रभाण विजयसिंह के सहित दोसी उत्तम ने आपश्री के कर-कमलों से प्रतिष्ठोत्सव करवाया। आपने अनेक ग्रन्थों को लिखवाया और साहित्य-भण्डार की अमूल्य वृद्धि की। आपने अनेक तीर्थयात्रायें कीं। अनेक श्रावक किये। पत्तनवासी लीलाधर आदि तीन भ्राताओं ने आपश्री के सदुपदेश से सातों क्षेत्रों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया। इस प्रकार आपश्री ने जैनशासन की भारी शोभा बढ़ाई। वि० सं० १७७२ के मार्गमास के प्रारम्भ में आपश्री बीमार पड़े और थोड़े दिनों का कष्ट सहन करके मार्ग कृ० नवमीं को स्वर्ग सिधार गये।[१]

आपश्री के कार्य और स्वर्गवास

श्री कडुआमतीगच्छीय श्री खीमाजी

दीक्षा वि० सं० १५२४ के लगभग. स्वर्गवास वि० सं० १५७१.

मरुधरदेशान्तर्गत नढ़ुलाई नगर के निवासी नागरज्ञातीय श्रेष्ठि काहनजी की स्त्री कनकादेवी की कुक्षि से वि० सं० १४६५ में उत्पन्न कडुआ नामक पुत्र ने आगमिकगच्छ में साधु-दीक्षा ग्रहण की थी। शुद्धाचारी साधुओं का अभाव देखकर कडुआ मुनि ने वि० सं० १५६२ में अपना अलग गच्छ स्थापित किया, जिसका

जै० गु० क० भा० ३ खं० २ पृ० १४२५ और २२४१'। २२२३'

नाम कडुआगच्छ पड़ा। इस गच्छ के दूसरे आचार्य खीमाजी थे। इनके पिता कर्मचन्द्र प्राग्वाटज्ञातीय थे और पत्तननिवासी थे। इनकी माता का नाम कर्मादेवी था। श्री खीमाजी ने सोलह वर्ष की आयु में श्री कडुआ के करकमलों से भगवतीदीक्षा ग्रहण की थी। चौवीस वर्ष पर्यन्त इन्होंने साधु-पर्याय पाला और ७ वर्ष पर्यन्त ये पट्टधर रहे। ४७ सैंतालीस वर्ष की वय में सं० १५७१ में इनका पत्तन में स्वर्गवास हो गया। कडुआमत का इन्होंने खूब प्रचार किया। थराद (थिरपद्र) में इनके समय में कडुआमत के उपाश्रय की स्थापना हुई थी।

श्री साहित्यक्षेत्र में हुए महाप्रभावक विद्वान् एवं महाकविगण

कविकुलभूषण कवीश्वर धनपाल

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब कि गूर्जरेश्वर वीशलदेव का राज्य-काल था गूर्जरप्रदेश के पालणपुर नामक प्रसिद्ध नगर में प्राग्वाटज्ञातिकुलशृंगार श्रे० भोवई नामक हो गये हैं। श्रे० भोवई अत्यन्त गुणवान्, दयाधर्मी एवं दृढ़ जिनेश्वरभक्त थे। श्रे० भोवई के सुहड़प्रभ नामक एक अति गुणाढ्य पुत्र था। सुहड़प्रभ की स्त्री का नाम सुहड़ादेवी था। कवि धनपाल का जन्म इस ही सौभाग्यशालिनी सुहड़ादेवी की कुक्षि से हुआ था। धनपाल से संतोपचन्द्र और हरिराज नामक दो और छोटे भ्राता थे।

वंश-परिचय

कवि धनपाल बड़ा प्रतिभाशाली पुरुष था। श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अन्वय में सरस्वतीगच्छ में हुये भट्टारक श्री रत्नकीर्त्ति के पट्टधर श्रीप्रभाचन्द्रसूरि का वह शिष्य था और इनके पास में रह कर ही उसने विद्याध्ययन किया था। उक्त प्रभाचन्द्रसूरि फिरोजशाह तुगलक के राज्य-काल में, जो ई० सन् १३५१ वि० सं० १४०८ में शासनारूढ़ हुआ था हो गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि कवि

कवि धनपाल 'कृतवाहुवलि-चरित्र'

'गुज्जरदेस-मज्झि पवट्टणु, वसई विड़लु पाल्हणपुरपट्टणु। वीसलएउ राउ पय-पालउ, कुवलय-मंडणु सयलु व मालउ।
तह पुरवाड़वंश जायामल, अगणित पुव्वपुरिस विनिम्मल कुल। पुण हुउ राय सेट्ठि जिण-भत्तउ, भोवई णामे दयागुण-जुत्तउ।
सुहडप्पउ तहो णंदणु जायउ, गुरु सज्जणहिहं भुअणि विक्खायउ।' बाहुबलिचरित्र पत्र २
गुज्जर-पुरवाड़वंस-तिलउ, सिरि सुहड़ सेट्ठि गुणगणणि लउ। तहो मणहर छाया गेहणिय, सुहड़ा एवी णामे भणिय।
तहो उवयरि जाउ वहु-विणमजुओ घणवालु विसुउ णाभण हुओ। तहो विण्णि तणुब्भव विउल-गुण, संतोसु तह हरिराजिय पुण।
—बाहुबलिचरित्र के अंत में लिखित प्रशस्ति से

बाहुबलि-चरित्र में प्रभाचन्द्रसूरि का वर्णन लिखते हुये धनपाल ने उनके पास में रह कर विद्याध्ययन करना स्वीकार किया है। 'संवत् १४१६ वर्षे चैत्र सुदि पंचम्या सोमवासरे सकलराज शिरोमुकुटमाणिक्यमरिचिपिंजरीकृत-चरणकमलपादपीठस्य पिरोज

धनपाल विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ है। कवि धनपाल ने 'बाहुबलि-चरित्र' की रचना की है। यह ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में अट्ठारह संधियों में पूर्ण हुआ है और उसकी पत्र-संख्या २७० है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति आमेर (जयपुर राज्य) के भट्टारक श्री महेन्द्रकीर्त्ति-भण्डार में विद्यमान है। इससे अधिक धनपाल कवि के विषय में कुछ नहीं मिला है।

विद्वान् चण्डपाल

●

प्राग्वाटज्ञातीय यह विद्वान् आचार्य यशोराज का पुत्र था। विद्वान् पिता का पुत्र भी विद्वान् ही होना चाहिए यह कहावत सचमुच चंडपाल ने सिद्ध की थी। यह कवि लूणिग नामक गुरु का शिष्य था। लूणिग भी अति विद्वान् एवं शास्त्रज्ञाता था। महाकवि चंडपाल ने ई० सन् ९१५ में हुये त्रिविक्रमभट्ट नामक विद्वान् द्वारा लिखित 'दमयन्ती-कथा' (चम्पू) पर 'दमयन्त्युदारविवृति' लिखी।

गर्भश्रीमन्त कवीश्वर ऋषभदास

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी

●

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी राजनीति, समाज, धर्म, कला, व्यापार, वाणिज्य, साहित्य की दृष्टियों से यवनशासन-काल में बेजोड़ एवं स्मरणीय है। सम्राट् अकबर जैसे महान् नीतिज्ञ, लोकप्रिय, प्रजापालक और जहाँगीर जैसे सहृदार, न्यायशील एवं शाहजहाँ जैसे प्रेमी, वैभवशाली शासक इस शताब्दी में

कवि का समय

हो गये हैं। ये सर्व धर्मों का, सर्व ज्ञातियों का बराबर २ सम्मान करते थे। इनके निकट हिन्दू और मुसलमानों का, हिन्दूधर्म और इस्लामधर्म का भेद नहीं था। ऐसे शासकों के शासन-काल में प्रत्येक धर्म, समाज, साहित्य, कला की उन्नति होना स्वाभाविक है। अकबर के दरबार में हीरविजयसूरि का, जहाँगीर के दरबार में हीरविजयसूरि के पट्टधर 'सूर-सवाई' विजयसेनसूरि और उनके पट्टधर विजयदेवसूरि का तथा अन्य

[illegible] श्री दिल्ल्यां श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री रत्नकीर्तिदेव तत्पट्टे [illegible] भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव तत् शिष्याणां [illegible] लिखापितं'
(दिगम्बरजैन [illegible] गौरव से) अनेकान्त वर्ष ७, अंक ७, ८,

'श्रीप्राग्वाटकुलामलाब्धिशशभृत् श्रीमान् यशोराज, इत्यासीत्तस्य [illegible] श्रीचण्डपालाभिधः।
[illegible] श्री लूणिग [illegible], सोऽकार्षीद् दमयन्त्युदारविवृतिं श्रीचण्डपालः सुधीः।
जै० सा० सं० इति० पृ० ५९०

जैनाचार्यों का अक्षुण्ण प्रभाव रहा है। जैन-धर्म की भी अन्य धर्मों के समान अच्छी उन्नति हुई और जीव-दया सम्बन्धी अनेक महान् कृत्य हुये। उपरोक्त आचार्यों एवं शासकों के मध्य रहे हुये अद्भुत एवं प्रभावक सम्बन्ध का प्रभाव गूर्जरभूमि पर भी अधिक पड़ा। खंभात जिसको खंभनगर, त्रंबावती, भोगवती, लीलावती, कर्णावती भी कहते हैं, उस समय गूर्जरभूमि में धर्म, व्यापार, साहित्य, सुख, समृद्धि की दृष्टि से प्रसिद्ध एवं गौरवशाली नगर था। इस नगर में अधिक प्रभावक, गौरवशाली, समृद्धज्ञाति जैन थी। जिसका प्रभाव समस्त गूर्जरभूमि पर था। खंभात पर जैनाचार्यों एवं शासकों का भी महत्त्वपूर्ण अनुराग था। फलतः खंभात में धर्मात्मा, साहित्यसेवी पुरुषों एवं विद्वानों का उत्कर्ष बढ़ा। कवीश्वर ऋषभदास खंभात में इसी उन्नत काल में हुये।

कवि का वंश-परिचय पितामह संघवी महिराज और पिता सांगण.

महाकवि ऋषभदास का कुल वीशलनगर का रहने वाला था। इनके पिता सांगण खंभात में आकर रहने लगे थे। वे वृहत्शाखीय प्राग्वाटज्ञातीय थे। माहकवि के पितामह संघवी महिराज थे। महिराज वीशलनगर के प्रतिष्ठित पुरुषों में से थे। ये बड़े शीलवान्, उदार एवं परम दयालु दृढ़ जैन-धर्मी थे। प्रातः बड़े सवेरे उठते थे और नित्य सांझ और सवेरे सामायिक, प्रतिक्रमण करते थे। पूजा, प्रभावना आदि धर्मकार्य इनके जीवन के मुख्य अंग थे। अर्थात् ये शुद्ध बारहव्रतधारी श्वेताम्बर श्रावक थे। जैसे ये दृढ़ धर्मी एवं परोपकारी पुरुष थे, वैसे ही कुशल व्यवहारी भी थे। यद्यपि ये प्रथम श्रेणी के श्रीमंतों में नहीं थे, परन्तु मध्यम श्रेणी के श्रीमंतों में ये अधिक सुखी और समृद्ध थे। गिरनार, शत्रुंजय और अर्बुदाचलतीर्थों की इन्होंने यात्रायें की थीं और संघ भी निकाले थे। इनका पुत्र संघवी सांगण भी गुण और धर्म-कार्यों में इनके समान ही था। उस समय खंभात नगर जैसा ऊपर लिखा जा चुका है अति प्रसिद्ध नगर था। व्यापार, कला, समृद्धि में अद्वितीय था। दिनोंदिन इसकी उन्नति ही होती जा रही थी। वहाँ के व्यापारी भारत के बाहर जा कर व्यापार करते थे। उस समय के प्रसिद्ध बंदरगाहों में से यह एक था और यवन-बादशाहों का इस पर सदा प्रेम रहा। इन सब बातों के अतिरिक्त खंभात की प्रसिद्धि का मुख्य कारण एक और था। वहाँ का श्वेताम्बर-संघ अति प्रतिष्ठित, समृद्ध, गौरवशाली एवं महान् व्यापारी था। दिल्लीपति सदा खंभात के जैन-श्री-संघ का मान रखते आये हैं। संघवी सांगण खंभात की इस प्रकार

'संघवी श्री महिराज बखाणू', प्रागवंश बड़ वीसोजी। समकीत सील सदाशय कहींई, पुण्य करे निस दीसोजी ॥
पड़कमणु' पूजा परभावना, पोषध परउपगाराजी। वीवहार शुद्ध चूके नहीं चंतुरा, शास्त्र सुअर्थ विचारीजी' ॥

जीवविचार-रास सं० १६७६

'प्रागवंसि वडो साह महीराज जे,संघवी तिलक सिरि सोय धरतो। श्री शत्रुञ्जय गिरनारे गिरि आबूए,पुण्य जाणी बहु यात्रा करतो'॥

क्षेत्रसमास-रास सं० १६७८

'प्रागवंशे संघवी महिराजे,तेह धरतो जिनशासन काजे। संघपति तिलक धरावतो सारो, शत्रुञ्जय पूजी करे सफल अवतारो ॥
समकित शुद्ध व्रत बारनो धारी, जिनवर पूजा करे नित्य सारी। दान दया धर्म उपर राग, तेह साधे नर मुक्तिनो माग' ॥

मल्लिनाथ-रास सं० १६८५

'सोय नयरि वसि प्रागवंसि वड़ो, महिराज नो सुत तें सिंह सरिखो।
तेह त्रंबावती नगर वासे रहयो, नाम तस संघवी सांगण पेखो' ॥ *व्रतविचार-रास, कुमारपाल-रास.*

'तास पुत्र हुई नयन भलेरा, सांगण संघ गराछ धोरी जी। संघपति-तिलक धरायां तेणइ, बांधी पुण्यनी दोरी जी ॥
बार वरतना जे अधिकारी, दान शील तप धारी जी। भावि भगति करइ जिनकेरी, नवि नरखई परनारी जी' ॥

समकितसार-रास सं० १६७८.

उन्नति देखकर वीशलनगर छोड़ कर वहाँ जा बसे। दृढ़ एवं शुद्ध बारहव्रतधारी श्रावक होने के कारण ये तुरन्त ही खंभात के प्रसिद्ध पुरुषों में गिने जाने लगे। ये प्रसिद्ध हीरविजयसूरि के अनुयायी थे। ये नित्य सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा, पौषध करते और ऐसे ही आत्मोन्नति करने वाले परोपकारी कार्य करते तथा दान, शील, तप, सद्भावनाओं में तल्लीन रहते और मृषावाद से अति दूर रहते। पिता के सदृश ये शुद्ध व्यवहारी जीवन व्यतीत करते थे। अपनी स्थिति से इनको परम संतोष था।

महाकवि ऋषभदास ऐसे पिता के पुत्र और ऐसे ही, अथवा इनसे भी अधिक सर्वगुणसम्पन्न पितामह के पौत्र थे। इस प्रकार महाकवि ऋषभदास का जन्म, पोषण, शिक्षण समृद्ध एवं दृढ़ धर्मी कुल में, उत्तम धर्म में प्रसिद्धपुर में, उन्नतकाल में और गौरवशाली, तेजस्वी गुरु-छाया में हुआ—यह जैनसाहित्य के सद्भाग्य का लक्षण था। हीरविजयसूरि के पट्टधर शिष्य विजयसेनसूरि के पास में इन्होंने शिक्षण प्राप्त किया था। यद्यपि ये प्राकृत एवं संस्कृत के उद्भट विद्वान् नहीं थे; फिर भी दोनों भाषाओं का इनको संतोषजनक ज्ञान अवश्य था। गूर्जरभाषा पर तो इनका पूरा २ अधिकार था। सरस्वती और गुरु के ये परमभक्त थे। अपने पूर्वजों के सदृश ये भी परम संतोषी, सद्भावी बारहव्रतधारी श्रावक थे। इन्होंने अपनी दिनचर्य्या अपनी कलम से लिखी है। नित्य शक्ति के अनुसार ये धर्माराधना करते, प्रातः जल्दी उठते, भगवान् महावीर का नाम स्मरण करते, शास्त्राभ्यास करते, सम्यक्त्वव्रत का पालन करते, सामायिक-प्रतिक्रमण, पौषध, पूजा करते और द्वयशन (बे आसणु) करते। नित्य दश जिनालयों के दर्शन करने जाते और अक्षत-नैवेद्य चढ़ाते। अष्ठमी को पौषध करते, दिन में सज्झाय करते, गुरुदेशना श्रवण करने जाते, कभी मृषावाद नहीं करते, दान, शील, तप, सद्भावना में लीन रहते, बावीस अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से दूर रहते तथा हरी वनस्पति का सेवन प्रायः बहुत कम करते। इस प्रकार ये शुद्ध श्रावकाचार का विशुद्ध परिपालन करते हुये साहित्य की भी महान् सेवा करनेवाले जैन-जगत में एक ही श्रावक हो गये हैं।

महाकवि ऋषभदास और उनकी दिनचर्या

इन्होंने उत्तम रासों की रचना की है। इनकी रास-रचना सूर और तुलसी का स्मरण करा देती है। रासों की रचना सरल एवं मधुर भाषा में है। रासों की धारावाही गति कवि के महान् अनुभव एवं भाषाधिकार को प्रकट करती है। इन्होंने चौंतीस ३४ रासों की रचना की। रासों की सूची रचना-सम्वत्-क्रम से इस प्रकार है।

ऋषभदास की कवित्वशक्ति और रचनायें

रास	गाथा	रचना-संवत्
१—व्रतविचाररास	८६२	१६६६ का० १५ (दीपावली)
२—श्री नेमिनाथनवरस		१६६७ पौष शु० २

'सघवी सांगणनो सुत वारु, धर्म आराधतो शक्तिज सारु। ऋषभ 'कवि' तस नाम कहावे, प्रह उठी गुण वीरना गावे॥ समज्यो शास्त्रतणा ज विचारो, समकितशुं मत पालतो वारो। प्रह उठि पड़िक्कमणु करतो, बेआसणुं मत ते अंग धरतो॥ चउदे नियम संभारी संक्षेपु,वीर-वचन-रसें अंग मुझ लेपुं। नित्य दश देरां जिन तणा जुहारुं, अक्षत मूकि नित आतम तारुं॥ आठम पाखी पोषधमांहि, दिवस घति सज्झाय करूं त्यांहि। वीर-वचन सुणी मनमां भेदुं, प्रायें वनस्पति नवि छुं दुं॥ मृषा अदत्त प्राय नहिं पाप, शील पालुं मन वच काय आप। पाप परिग्रहें न भिलुं मांहि, दिशितणुं मान धरुं मनमांहि॥ अभक्ष्य बावीश ने कर्मादान, प्रायें न जाये त्यां मुझ ध्यान।'

—हितशिक्षा-रास.

३–स्थूलिभद्ररास	७२८	१६६८ का० १५ (दीपावली) शुक्र०
४–सुमित्रराजारास	४२६	१६६८ पौं० शु० २ गुरु
५–कुमारपालरास	४५०६	१६७० भाद्र शु० २ गुरु
६–जीवविचाररास	५०२	१६७६ आश्वि० शु० पूर्णिमा
७–नवतत्त्वरास	८११	१६७६ का० कृ० १५ रवि०
८–अजापुत्ररास	५५९	१६७७
९–श्रीऋषभदेवरास	१२७१	
१०–श्री भरतेश्वररास	११११	१६७८ पौं० शु० १०
११–श्री चैत्रप्रकाश	५८४	१६७८ माघ शु० २ गुरु
१२–शत्रुंजयरास	३०१	
१३–समकितरास	८७९	१६७८ ज्ये० शु० २ गुरु
१४–आरा-आरा-स्तवन अथवा गौतम-प्रश्नोत्तर-स्तवन		१६७८ भाद्र शु० २
१५–समयस्वरूपरास	७९१	
१६–देवस्वरूपरास	७८५	
१७–कुमारपालरास (छोटा)	२१९२	
१८–जीवितस्वामीरास	२२३	
१९–उपदेशमाला	७१२	१६८०
२०–श्राद्धविधिरास	१६१६	
२१–पूजाविधिरास	५७१	१६८२ वै० शु० ५ गुरु
२२–आर्द्रकुमाररास	९७२	
२३–श्रेणिकरास	१८३९	१६८२ आश्वि० शु० ५ गुरु
२४–हितशिक्षारास	१८४५	१६८२ माघ शु० ५ गुरु
२५–पुण्यप्रशंसारास	३२८	१६८३
२६–कइ(य)वन्नारास	२८४६	१६८३
२७–वीरसेनरास	४४५७	१६८३
२८–हीरविजयसूरि का बारहबोलरास		१६८४ श्रा० कृ० २ गुरु
२९–हीरविजयसूरिरास		१६८५ आश्वि० शु० १० गुरु
३०–मल्लिनाथरास		१६८५ पौं० शु० १३ रवि०
३१–वीसस्थानकतपरास		१६८५
३२–अभयकुमाररास		१६८७ का० शु० गुरु
३३–रोहिणीरास	२५००	१६८८ (१६८४) पौं० शु० ७
३४–सिद्धशिक्षा		

महाकवि ने उपरोक्त रासों के अतिरिक्त स्तवन ५८ (३३), नमस्कार ३२, स्तुति ४२, सुभाषित ५४००, गीत ४१, हरियाली ५ की रचनायें कीं। रासों की रचनाओं की पूर्णतिथि देखते हुये यह प्रतीत होता है कि महाकवि का गुरुवार के प्रति अधिक श्रद्धापूर्ण अनुराग था, जो उनकी गुरु के प्रति भक्ति का द्योतक है तथा द्वितीया और पंचमी तपतिथियों से भी उनका विशेषानुराग था सिद्ध होता है। प्रकट बात यह है कि महाकवि ने अपनी प्रत्येक रचना की पूर्णाहुति शुभ दिवस और शुभ तिथि में ही की। कवि को राग-संगीत एवं देशियों का अच्छा ज्ञान था। जैन-साहित्य से उनका जैसा परिचय था, वैसा जैनेतर-साहित्य से भी था। अपनी रचनाओं में कवि ने अनेक जैनेतर दृष्टान्त एवं कथाओं का उल्लेख किया है।

महाकवि का साहित्यिक स्थान

महाकवि ऋषभदास सामाजिक कवि थे, जो सुधारवादी और प्राचीन युग के प्रति श्रद्धालु होते हैं। इनके रासों में अधिकतम ऐसे रास हैं जो महापुरुषों के जीवन-चरित्रों, नीति एवं धर्मसिद्धान्तों के आधार पर बने हैं। इन रासों में मुक्तिमार्ग का ही एक मात्र उपदेश है। वैसे कवि अपनी मातृभूमि के प्रति भी अधिक श्रद्धावान् था। खंभात का वर्णन इन्होंने बड़ी श्रद्धापूर्णभावना एवं उत्साह से लिखा है। हर रास में कुछ न कुछ वर्णन खंभात का मिलता ही है। इन्होंने यत्र-तत्र अपने विषय में भी लिखा है। ऐसा लिखने का इनका उद्देश्य यही था कि आगे आनेवाली संतति किसी भी प्रकार से भ्रम में नहीं पड़े। भारत के बहुत कम कवियों ने इस प्रकार अपने विषय में लिखने का साहस किया है। इस प्रकार महाकवि ऋषभदास सुधारवादी, देश और धर्म के भक्त और गूर्जरभाषा के उद्भट विद्वान् थे। गुरु, देव और सरस्वती तीनों के ये परम पुजारी थे। जैसे जिनेश्वर के भक्त थे, वैसे ही ये गुरु के अनन्य अनुयायी थे। विजयसेनसूरि को ये अपना गुरु मानते थे और आयुभर उनके प्रति उत्कट श्रद्धालु रहे थे। सरस्वती के भी ये वैसे ही अनन्योपासक थे। अपनी प्रत्येक रचना के प्रारम्भ में इन्होंने सरस्वती को वन्दन किया है।

महाकवि का गार्हस्थ्य-जीवन

अपनी स्थिति में इनको संतोष था; अतः ये परम सुखी थे। परिजनों से इनका अनुराग रहा। कवि ने स्वयं लिखा है कि मेरी पत्नी सुलक्षिणी है, मेरे भाई और भगिनी हैं, आज्ञाकारी पुत्र, पुत्रियाँ हैं, दुधारु गाय और भैंस हैं; मुझ पर लक्ष्मी प्रसन्न है, परिवार में संप है, समाज, लोक एवं राज्य में मान है। वैसे कवि सर्व प्रकार सुखी थे, परन्तु उनकी संघ निकालने की अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई, क्यों कि इतना अधिक द्रव्य उनके पास नहीं था कि तीर्थों का संघ निकालने का व्यय वे सहन कर सकते। यह अपनी अतृप्ति स्वयं अपनी कृतियों में उन्होंने प्रकाशित की है।

देखो (१) 'कवीश्वर ऋषभदास' नामक रा० रा० मोहनलाल दलीचन्द देसाई का लेख जो सन् १९२५ में 'जै० श्वे० कान्फ्रेंस हेरल्ड' को उद्देशित करके प्रकाशित हुए अङ्क में पृ० ३७३ से ४०१ पर प्रकाशित हुआ है।

(२) जै० गु० क० भा० १ पृ० ४०९–४५८. (३) श्रा० का० म० मौक्तिक ८, (कुमारपाल-रास) प्रवेशक पृ० १-११०.

'ते जयसिंह गुरु माहरोरे, तिजयतिलक तस पाट। समता शील विद्या घणीरे, देसाई शुभ गति वाट॥
कवियन केरी पोहोती आस, हीर तणो मि जोड्यो रास। ऋषभदेव गणिधर महिमाय, तूठी शारदा भगमुता य॥
सार वचन दो सरस्वती, तुं छे भगमुता य। तुं मुझ मुख आवी रमे, जगमति निर्मल थाय'॥ भरतेश्वर-रास.

'सुन्दर घरणी शोभती, भ० बहिन बांधव जोडि। बाल रमि बहु बारणि, भ० कुटुम्ब तणि कई जोडि॥
गाय महिषी दुझना, भ० सुरतरु फलीओ बारि। सकल पदारथ भाग थी, भ० घिर थई लक्षी नारि'॥

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जैसे वे उद्भट कवि और साहित्यकार थे, वैसे ही उत्तम श्रेणि के क्रियाशील अर्हद्भक्त श्रावक थे। शत्रुंजय, गिरनार, शंखेश्वरतीर्थों की उन्होंने यात्रायें की थीं। अनेक विद्यार्थियों को पढ़ाया था। संक्षेप में वे बहुश्रुत, शास्त्राभ्यासी और उत्तम संस्कारी कवि, पुरुष एवं श्रावक थे और उनका कुटुम्ब भी उत्तम संस्कारी एवं सुसंस्कृत था, तभी वे इतने ऊंचे साहित्यकार भी बन सके।

महाकवि की कृतियों के रचना-संवत् से ज्ञात होता है कि संवत् १६६६ से सं० १६८८ उनका रचना-काल रहा। इस रचना-काल से यह माना जाता है कि कवि का जन्म सं० १६४०, ४१ के लगभग हुआ होगा और निधन १६९० के लगभग या इसके पश्चात्। कवि आध्यात्मिक पुरुष थे। इस पर यह भी अनुमान लग सकता है कि वृद्धावस्था में उन्होंने लिखना बंद कर दिया हो और अर्हद्भक्ति में ही जीवन बिताने लगे हों।*

जैन साहित्य में गूर्जरभाषा के महाकवि ऋषभदास ही प्रथम श्रावक कवि हैं, जो सत्रहवीं शताब्दी में साहित्य-क्षेत्र में इतने ऊँचे उठे और उस समय के अग्रगण्य साहित्यसेवियों में गिने गये।*

न्यायोपार्जित द्रव्य का सद्व्यय करके जैनवाङ्मय की सेवा करने वाले प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थ

श्रेष्ठि धीणा (धीणाक)

वि० सं० १३०१

वि० सं० १३०१ आषाढ़ शु० १२ (१५), १५ (१२) शुक्रवार को धवलक्कपुरवासी प्राग्वाटज्ञातीय व्य० पासदेव के पुत्र गांधिक श्रे० धीणा ने अपने ज्येष्ठ भ्राता सिद्धराज के श्रेयार्थ मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरि-विरचित श्री 'अनुयोगद्वारवृत्ति' और 'श्री सवृत्तिक अनुयोगद्वारसूत्र' की एक एक प्रति ताड़पत्र पर लिखवायी। यह प्रति खंभात के श्री शांतिनाथ-प्राचीन-ताड़पत्रीय जैन-भण्डार में विद्यमान है।†

---

*नित्य नामुं हुँ साधर्नि सासो, थानिक आराध्या जे वली वासो।
दोय आलोयणा गुरु कन्हइ लीधी, आठिम छठि सुधि आतमि कीधी॥
शत्रुञ्जय गिरिनारि संपेसर यात्रो, सुलशाखा (ख शाता) भणाव्या बहु छात्रो।
सुख शाता मनील गणुं दोय, एक पर्गि जिन आगलि सोय॥
नित्यिं गणुं वीस नोकरवालि, उभा रही अरिहंत निहाली'।

†प्र० सं० प्र० भा० पृ० २५ (ताड़पत्र) प्र० ३१ (अनुयोगद्वारवृत्ति)
,, ४८ ,, प्र० ५८ (,, सूत्र)
जै० पु० प्र० सं० पृ० १२४ प्र० १९७ (,,)

श्रेष्ठि सज्जन और नागपाल और उनके प्रतिष्ठित पूर्वज

वि० सं० १३२२

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अति विश्रुत एवं गौरवशाली प्राग्वाटज्ञातीय एक कुल में श्रेष्ठि सीद नामक दानवीर एवं कुलीन श्रीमन्त हुआ है। वीरदेवी नाम की उसकी सहधर्मिणी थी, जो अत्यन्त गुणवती, पुण्यशालिनी और शीलवती स्त्री थी। वह इतनी गुणाढ्या थी कि मानो वह कमला और विमला का रूप धारण करके ही मृत्युलोक में अवतरित हुई हो। ऐसे गुणवान् स्त्री-पुरुषों के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम पुण्यदेव रक्खा गया।

पुण्यदेव भी गुणों का कोष और सर्वथा दोषविहीन नरवर था। उसने श्रीमद् विजयसिंहसूरि के कर-कमलों से जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवाई और पुत्रद्वय को व्रत विधापन करवा कर अपनी आयु और लक्ष्मी को सार्थक किया। पुण्यदेव की स्त्री बाल्हिवि भी वैसी ही गुणवती, शीलवती, दृढ़धर्म-कर्मरता और जिनेश्वरदेव की परम भक्ता थी। दोनों स्त्री-पुरुषों ने अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का सातों क्षेत्रों में प्रशंसनीय सदुपयोग किया, उग्रतप-वाला उपधान नामक तप करवाया और श्रीमद् विजयसिंहसूरि की निश्रा में ये सर्व धर्मकार्य भक्ति-भावपूर्वक सम्पन्न करवाकर अपना मालाधिरोपण-कार्य महोत्सवपूर्वक पूर्ण किया। ऐसे धर्मात्मा स्त्री-पुरुषों के आठ पुत्ररत्न हुये। क्रमशः ब्रह्मदेव, वोहड़ी, बहुदेव, आमण, वरदेव, यशोवीर, वीरचन्द्र और जिनचन्द्र उनके नाम हैं।

श्रे० पुण्यदेव का प्र० पुत्र श्रे० ब्रह्मदेव अति भाग्यशाली एवं वैभवपति हुआ। अपनी आज्ञानुकारिणी गुणगर्भा धर्मपत्नी पोइणी का साहचर्य्य पाकर उसने चन्द्रावती नामक प्रसिद्ध नगरी में जिनालय में भगवान् महावीर की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई तथा श्रीमद् पद्मदेवसूरि के सदुपदेश से त्रिषष्ठिशलाका-चरित्र को लिखवा-कर लक्ष्मी का सदुपयोग किया।

श्रे० पुण्यदेव के द्वितीय पुत्र श्रे० वोहड़ी को अपनी आंबी नामा स्त्री से विल्हण, आल्हण, जाल्हण और मल्हण नामक चार पुत्रों की और एक पुत्री मोहिनी की प्राप्ति हुई। श्रे० पुण्यदेव के तृतीय पुत्र बहुदेव ने चारित्र-ग्रहण किया। वह कुशाग्रबुद्धि एवं बड़ा प्रतिमा-संपन्न था। साधु-दीक्षा लेकर उसने समस्त जैन-शास्त्रों का अध्ययन किया तथा शुद्ध प्रकार से साध्वाचार का परिपालन किया। परिणामस्वरूप उसको गच्छनायक का पद प्राप्त हुआ और वह श्रीमद् पद्मदेवसूरि के नाम से विख्यात हुआ। श्रे० पुण्यदेव का चतुर्थ पुत्र आमण, पाँचवा पुत्र वरदेव भी उदार-हृदयी और गुणवान् ही थे। छट्ठा पुत्र यशोवीर विद्वान् पंडित हुआ। उसने चारित्र-ग्रहण किया और अंत में सूरिपद प्राप्त करके वह परमानन्दसूरि नाम से प्रसिद्ध हुआ। सातवां पुत्र वीरचन्द्र और आठवां पुत्र जिनचंद्र भी ख्यातनामा ही निकले।

श्रे० वोहड़ि का ज्येष्ठ पुत्र विल्हण भी बड़ा ही धर्मात्मा हुआ। उसने अपने पिता की सम्पत्ति को अनेक धर्मकृत्यों में व्यय किया। विल्हण की स्त्री रूपिणी बड़ी ही धर्मपरायणा सती थी। उसके आसपाल, सीधु,

जगतसिंह और पद्मसिंह नामक चार पुत्र और वीरी नामा एक परम सुन्दरा मनोहरा, पवित्रा, सुशीला, सद्गुणाढ्या पुत्री उत्पन्न हुई। श्रे० वोहड़ि का द्वितीय पुत्र आल्हण भी भाग्यशाली एवं सौजन्यता का आगार था। तृतीय पुत्र जाल्हण भी अपने अन्य भ्राताओं के सदृश दृढ़ जैनधर्म-सेवक था। उसकी स्त्री नाऊदेवी थी। नाऊदेवी की कुक्षि से वीरपाल, वरदेव और वैरसिंह नामक तीन पुत्रों की उत्पत्ति हुई। श्रे० विल्हण के ज्येष्ठ पुत्र आसपाल को अपनी खेतूदेवी नामा स्त्री से सज्जनसिंह, अभयसिंह, तेजसिंह और सहजसिंह नामक चार पुत्रों की प्राप्ति हुई।

श्रे० आसपाल प्रसिद्ध पुरुष था। कवि आसड़ द्वारा वि० सं० १२४८ में रचित 'विवेकमंजरीप्रकरण' की प्रति, जिसकी वृत्ति श्री वालचन्द्राचार्य ने वनाई थी, उसने (आसपाल ने) वि० सं० १३२२ कार्त्तिक कृष्णा ८ को अपने पिता के पुण्यार्थ लिखवाई। इस प्रति के प्रथम एवं द्वितीय पृष्ठों पर श्री तीर्थंकर भगवान् एवं आचार्य के सुन्दर चित्र हैं। आचार्य के चित्र में व्याख्यान-परिषद का सुन्दर चित्रण किया गया है तथा इसी प्रकार पृ० २३६, २४० पर एक २ देवी के मनोरम चित्र हैं।

विल्हण का द्वितीय पुत्र सीधू भी उदारमना श्रावक था। उसकी स्त्री सोहगा अति पुण्यवती दाक्षिण्यशालिनी और परम स्वभाव-सुन्दरा रूपवती थी। विल्हण का तृतीय पुत्र जगतसिंह बचपन से ही विरक्त भावुक और उदासीनात्मा था। उसने चारित्र-ग्रहण किया और विद्या एवं तप में प्रसिद्धि प्राप्त करके सूरिपद को प्राप्त हुआ। विल्हण के चतुर्थ पुत्र पद्मसिंह को उसकी सद्गृहिणी वालूदेवी से नागपाल नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।

नागपाल परम बुद्धिमान् एवं सत्त्वगुणी पुरुषवर था। उसने श्रीमद् रत्नप्रभसूरि के सदुपदेश से हाड़ापद्रपुर में जिनालय वनवाया तथा उसमें सुमतिनाथबिंब की महामहोत्सवपूर्वक वहुत द्रव्य व्यय करके प्रतिष्ठा करवाई।

वि० सं० १३२२ कार्त्तिक कृ० अष्टमी चन्द्रलग्न में श्रे० आसपाल के पुत्र सज्जनसिंह ने स्वपिता आसपाल के कल्याणार्थ 'विवेकमंजरीवृत्ति' नामक प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ की प्रति ताड़पत्र पर लिखवाकर ज्ञान की परम भक्ति की तथा लक्ष्मी का सदुपयोग कर अपना यश अमर किया। 'विवेकमंजरीवृत्ति' की प्रशस्ति का शोधन श्रीमद् पूज्य प्रद्युम्नसूरि ने किया था।

वंशवृक्ष

सीद [वीरदेवी]

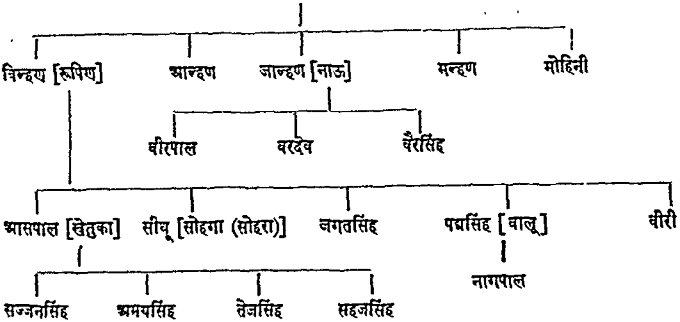
|

पुण्यदेव (पूर्णदेव) [वाल्हिवि]

|

ब्रह्मदेव [पोइणी (पोहणी)]	वोहड़ी [आंबी]	बहुदेव (पद्मदेवसूरि)	आमण	वरदेव	यशोवीर (परमानन्दसूरि)	वीरचन्द्र	जिनचन्द्र

प्र० सं० प्र० भा० पृ० ३६, ४०, ४१ ता० प्र० ४५ (श्री विवेकमंजरीवृत्ति)
जै० पु० प्र० सं० पृ० ३४-३५ प्र० ३० (विवेकमंजरीप्रकरणवृत्ति) खं० शां० प्रा० ता० जै० ज्ञा० भं० की सूची पृ० ६.



श्रेष्ठि सेवा

वि० सं० १३२६

श्रे० शुभंकर और उसका पौत्र यशोधन

विक्रम की दशवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय शुभंकर नामक अति गौरवशाली पुरुष हो गया है।* उसके सेवा नामक पुत्र था। सेवा के यशोधन नामक पुत्र हुआ। यशोधन के उद्धरण, सत्यदेव, शुभदेव, थाहू और लीला नामक पांच पुत्र हुये। शुभदेव ने चारित्र ग्रहण किया और अपनी योग्यता एवं प्रखर तपस्या के कारण गच्छनायकपद को प्राप्त हुआ और श्री मलयप्रभसूरि के नाम से विख्यात हुआ।

श्रे० थाहू और उसके पुत्र दाहड़ का परिवार

श्रे० थाहू के त्रिभुवन को अलंकृत करने वाले तीन पुत्र हुये। उनमें ज्येष्ठ पुत्र दाहड़ था और लाडण और सलखण छोटे थे। इनके चार बहिनें थीं। लषमिणी सुषमिणि, जसहिणि और जेही। वैसे तो तीनों भ्राता पवित्र, विश्रुत और समाज में अग्रगण्य थे। फिर भी दाहड़ अधिक विख्यात था। वैसे दाहड़ ज्येष्ठ भी था। दाहड़ की धर्मपत्नी सिरियादेवी बड़ी तपस्विनी और धर्म-परायणा स्त्री थी। उसके चार पुत्र हुये। सोलाक ज्येष्ठ पुत्र था। सोलाक से छोटा वासल था। वासल से छोटा साधु बन गया था और आगे उन्नति करके श्री मदनप्रभसूरि के नाम से विख्यात हुआ। चौथा पुत्र थारुक नामक था। सांउदेवी नामा कनिष्ठा पुत्री थी।

---

*जै० पु० प्र० सं० पृ० १५-१६ प्र० १२ (परिशिष्टपर्वपुस्तिका)

श्रे० सोलाक की स्त्री का नाम लक्षणा था। लक्षणा के पांच पाण्डवों के समान महापराक्रमी, धर्मात्मा, महाव्रती एवं परिव्राजक पांच पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम आंबू था। आंबू से छोटे भ्राता ने चारित्र ग्रहण किया और वह उदयचन्द्रसूरि के नाम से प्रख्यात हुआ। तीसरा और चौथा पुत्र चांदा और रत्ना थे। पांचवा वाल्हाक हुआ। दो पुत्रियाँ थीं। कनिष्ठा पुत्री का नाम धाल्ही था।

श्रे० सोलाक और उसका विशाल परिवार

श्रे० आंबू के पासवीर, वाहड़, छाहड़ नामक तीन पुत्र और वाल्ही, दिवतिणि और वस्तिणि नामा तीन पुत्रियाँ हुईं। श्रे० चांदा के पूर्णदेव और पार्श्वचन्द्र नामक दो पुत्र और सीलू, नाउलि, देउलि, झणकुलि नामा चार मुख्या पुत्रियाँ हुईं। नाउलि नामा पुत्री ने चारित्र ग्रहण किया और वह जिनसुन्दरी नामा साध्वी के नाम से विश्रुता हुई।

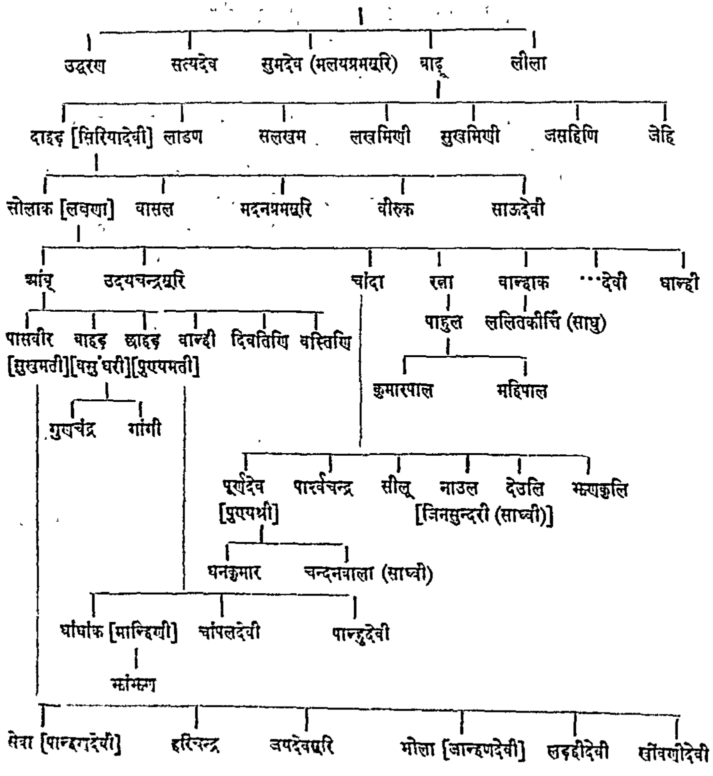
श्रे० पूर्णदेव की स्त्री पुण्यश्री थी। पुण्यश्री की कुक्षि से धनकुमार नामक पुत्र हुआ और एक पुत्री हुई, जिसने चारित्र ग्रहण किया और वह चंदनबाला नामा गणिनी के नाम से विख्याता हुई। श्रे० रत्ना के पाहुल नामा पुत्र हुआ। पाहुल के कुमारपाल और महिपाल नामक पुत्र हुये। श्रे० सोलाक का कनिष्ठ पुत्र वाल्हाक था। वाल्हाक के एक पुत्र हुआ और उसने चारित्र ग्रहण किया और वह साधुओं में अग्रणी हुआ। उसका नाम ललितकीर्त्ति था। श्रे० आंबू के द्वि० पुत्र वाहड़ की धर्मपत्नी वसुन्धरी नामा थी। इनके गुणचन्द्र नामक पुत्र और गांगी नामा विश्रुता पुत्री हुई। श्रे० छाहड़ की धर्मपत्नी पुण्यमती थी। जो श्रे० कुलचन्द्र की धर्मपत्नी रुक्मिणी की कुक्षि से उत्पन्न हुई थी। पुण्यमती स्त्री शिरोमणि सती थी। इसके धांधाक नामक पुत्र और चांपलदेवी और पाल्हु नामा दो पुत्रियाँ हुईं। धांधक की स्त्री माल्हिणी के झांझण नामक पुत्र हुआ।

श्रे० आंबू का ज्येष्ठ पुत्र जैसा ऊपर लिखा जा चुका है पासवीर था। पासवीर की पत्नी का नाम सुखमती था। सुखमती गुणनिर्मला और मधुर स्वभाववाली स्त्री थी। उसके गुणों पर जनगण मुग्ध रहते थे। सुखमती के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। ज्येष्ठ पुत्र सेवा नामा अति विख्यात हुआ। द्वि० पुत्र का नाम हरिचन्द्र था। तीसरे पुत्र ने चारित्र ग्रहण किया और वह उन्नति करके गच्छनायक पद को प्राप्त हो कर श्री जयदेवसूरि नाम से जगत में विख्यात हुआ। चौथे पुत्र का नाम भोला था। पुत्रियों के नाम लडही और खींवणी थे।

श्रे० सेवा की धर्मपत्नी पाल्हदेवी नामा थी। भोला की जाल्हणदेवी नामा स्त्री थी। इस प्रकार पासवीर एक विशाल कुटुम्ब का स्वामी था। श्रे० सेवा ने वि० सं० १३२६ श्रावण शु० ८ को वरदेव के पुत्र लेखक नरदेव द्वारा श्री 'परिशिष्टपर्वपुस्तिका' मुनिजनों के वाचनार्थ बहुत द्रव्य व्यय करके लिखवाई।

वंशवृक्ष

शुभंकर
|
सेवा
|
यशोधन
|


उद्धरण
सत्यदेव
सुमदेव (मलयप्रभसूरि)
बाहू
लीला
दाहड़ [सिरियादेवी]
लाडण
सलखम
लखमिणी
सुखमिणी
जसहिणि
जेहि
सोलाक [लखणा]
वासल
मदनप्रभसूरि
वीरुक
साऊदेवी
आंबू
उदयचन्द्रसूरि
चांदा
रत्ना
वान्हाक
···देवी
धान्ही
पासवीर [सुखमती]
वाहड़ [धसु'धरी]
छाहड़ [पुण्यमती]
वान्ही
दिवतिणि
वस्तिणि
पाहुल
ललितकीर्चि (साधु)
कुमारपाल
महिपाल
गुणचंद्र
गांगी
पूर्णदेव [पुण्यश्री]
पार्श्वचन्द्र
सीलू
नाउल [जिनसुन्दरी (साध्वी)]
देउलि
झणकुलि
धनकुमार
चन्दनबाला (साध्वी)
धांधाक [मान्हिणी]
चांपलदेवी
पान्हुदेवी
झांझण
सेवा [पान्हणदेवी]
हरिचन्द्र
जयदेवसूरि
भोजा [आन्हणदेवी]
लड़हीदेवी
सौवर्णदेवी

श्रेष्ठि गुणधर और उसका विशाल परिवार
वि० सं० १३३०

विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अंत में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० धनेश्वर हो गया है। उसका कुल प्राचीन कुलों में से था और प्रतिष्ठित एवं गौरवशाली था। श्रे० धनेश्वर के धनदाक नामक एक धर्मात्मा एवं गुणवान् पुत्र हुआ। काशहदग्राम के श्री आदिनाथ-जिनालय में उसने मूलनायक प्रतिमा विराजमान करवाई थी। श्रे० धनदाक के तीन संतान हुईं। ब्रह्मदेव और वाग्भट नामक दो पुत्र हुये और लक्ष्मणीदेवी नाम की एक पुत्री हुई। श्रे० ब्रह्मदेव का विवाह मन्दोदरी नामा सुशीला कन्या के साथ हुआ। मन्दोदरी की कुक्षि से चार पुत्र उत्पन्न हुये। आल्हाक, साल्हाक, राल्हाक और एक और। श्रे० वाग्भट के गोगाक नामक पुत्र था। गोगाक की स्त्री का नाम समूला था। समूला की कुक्षि से ऊधिग, धांधू, आकड़ ये तीन पुत्र और साल्हू नामक एक पुत्री हुई। तीनों पुत्रों की सुभगादेवी, श्रीदेवी और दाखीबाई नामा क्रमशः स्त्रियाँ थीं।

श्रे० आल्हाक निर्मलात्मा, धर्मबुद्धि और सर्वदोष-विहीन नरवर था। उसकी स्त्री रत्नदेवी भी वैसी ही चतुरा, गुणशीला गृहिणी थी। रत्नदेवी के चार संतान उत्पन्न हुईं। गुणधर, यशधर, चाहणीदेवी और समधर-इस प्रकार तीन पुत्र और एक पुत्री हुई। श्रे० साल्हाक श्रे० आल्हाक का छोटा भाई था। वह भी गुणवान् और सज्जन था। श्रे० राल्हाक श्रे० साल्हाक से छोटा था। इसकी स्त्री कुमारदेवी थी। कुमारदेवी से इसको ब्रह्मनाग, काल्हूक और रत्नसिंह नामक तीन पुत्रों की और ब्राह्मी और सोहगा नामक दो पुत्रियों की प्राप्ति हुई। इस प्रकार पांच सन्तान हुईं।

श्रे० गुणधर जो श्रे० आल्हाक का ज्येष्ठ पुत्र था बड़ा ही न्यायशील एवं तप, दान, शील और भावनाओं में उत्कृष्ट श्रावक था। ऐसी ही उसकी राजिमती नामा गुणगर्भा स्त्री थी। राजिमती के पार्श्वभट, वीरा, अम्बा, लींबा, सोम, देव, शीलू, हीर और लडुहित नामक संतानें उत्पन्न हुईं। द्वितीय पुत्र वीरा का विवाह राजश्री से हुआ था और उससे उसको वि० सं० १३३० तक जगपाल, हरपाल, और देवपाल नामक तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई। तृतीय पुत्र अम्बा की स्त्री ललिता थी और ललिता के नरपाल नामक एक ही उक्त समय तक पुत्र था। श्रे० गुणधर का चौथा पुत्र लीम्बा था। लींबा को अपनी स्त्री कल्याणदेवी से उक्त समय तक विजय, श्रीयश, धरय और नरसिंह नामक चार पुत्र और पाती नामक पुत्री—इस प्रकार पाँच संतानों की प्राप्ति हुई। श्रे० गुणधर ने वि० सं० १३३० में निवृत्तिगच्छीय श्रीमद् भुवनरत्नसूरि-आनन्दप्रभसूरि-वीरदेवसूरि के पट्टधर श्रीमद् कनकदेवसूरि के सदुपदेश से अपने चतुर्थ एवं सुयोग्य भ्राता समधर की सुसम्मति से अपनी न्यायोपार्जित लक्ष्मी का सदुपयोग करके अत्यन्त भक्ति-भावपूर्वक 'श्री शांतिनाथ-चरित्र' की प्रति ताड़पत्र पर लिखवायी।

श्रे० समधर की स्त्री कर्मणदेवी थी। उसके कोल, आसा, पासल, सेढ़ा, पूना, हरिचन्द्र और वयर नामक पुत्र थे और पासल की स्त्री साजिणी के विजयसिंह और नयणाक नामक दो पुत्र उत्पन्न हो चुके थे। उक्त वि० सं० अर्थात् १३३० में श्रे० गुणधर इतने बड़े विशाल एवं प्रतिष्ठित कुल का गृहपति था।

प्र० सं० भा० १ पृ० २६ प्र० ता० प्र० ३८ (श्री शांतिनाथचरित्र)

वंशवृक्ष

- १ धनेश्वर
  - २ धनदाक
    - ३ ब्रह्मदेव [मंदोदरी]
      - ४ आल्हाक [रत्नदेवी]
        - ५ गुणधर [राजिमती]
          - ६ पार्श्वभट
          - ६ धीरा [राजश्री]
            - ७ जगपाल
            - ७ हरपाल
            - ७ देवपाल
          - ६ अम्बा [ललिता]
            - ७ नरपाल
          - ६ लींबा [कल्याणदेवी]
            - ७ विजय
            - ७ श्रीयश
            - ७ धरय
            - ७ नरसिंह
            - ७ पाती
          - ६ सोम
          - ६ देव
          - ६ शीलू
          - ६ हीर
          - ६ लहुहित
        - ५ यशधर
        - ५ चाहणीदेवी
        - ५ समधर [कर्मणीदेवी]
          - ६ कोल
          - ६ आसा
          - ६ सपाल (पासल)
          - ६ सेढ़ा [साजिणी]
            - ७ विजयसिंह
            - ७ नयणाक
          - ६ पूना
          - ६ हरिचन्द्र
          - ६ वयर
      - ४ साल्हाक
      - ४ राल्हाक [कुमारदेवी]
        - ५ ब्रह्मनाग
        - ५ काल्हूक
        - ५ रत्नसिंह
        - ५ ब्राह्मीदेवी
        - ५ सोहगादेवी
      - ४ ......
    - ३ वाग्भट
      - ४ गोगाक [समूला]
        - ५ ऊधिग [सुभगादेवी]
        - ५ धांधू [श्रीदेवी]
        - ५ आकड [दाखीबाई]
        - ५ साल्हूकुमारी
    - ३ लक्ष्मणीदेवी

श्रेष्ठि हीरा
वि० सं० १३३६

वि० सं० १३३६ आषाढ़ शु० प्रतिपदा रविवार को श्री महाराजाधिराज श्रीमत् सारंगदेव के विजयीराज्य के महामात्य श्री कान्हा के प्रबन्धकाल में प्राग्वाटज्ञातीय ठ० हीरा ने बृहत् श्री 'आदिनाथ-चरित्र' लिखवाया ।[१]

श्रेष्ठि हूलण
वि० सं० १३४४

विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० गोगा की संतति में शाह सपून हो गया है। श्रे० सपून के शाह दुर्ल्लभ, आहड़, धनचन्द्र, वीरचन्द्र नामक चार पुत्र हुये। वीरचन्द्र के शा० मोल्हा, शा० जाहड़, शा० हेमसिंह, खेढ़ा आदि पुत्र हुये। श्रे० खेढ़ा के हूलण, देवचन्द्र, कुमारपाल आदि पुत्र हुये। श्रे० हूलण ने वि० सं० १३४४ आश्विन शु० ५ को श्री कन्हसिंसंतानीय श्री पद्मचंद्रोपाध्यायशिष्य श्रे० हेमसिंह के श्रेयार्थ अपनी पितृव्यभक्ति से 'श्री व्यवहारसिद्धान्त' नामक ग्रन्थ की तीन प्रतियाँ साकंभरीदेश में सिंहपुरी नामक नगरी के अधिवाशी मथुरावंशीय कायस्थ पंडित सांगदेव के द्वारा लिखवाईं ।[२]

श्रेष्ठि देदा
वि० सं० १३५२

चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में दयावट नामक नगर में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि कुमारसिंह हुआ है। वह अति धर्मात्मा और शुद्ध श्रावकव्रत का पालने वाला था। वैसी ही गुणवती, स्त्रीशृंगार कुमरदेवी नाम की उसकी धर्मपत्नी थी। कुमरदेवी की कुक्षि से पांच पुत्ररत्न उत्पन्न हुये—देदा, सांगण, केसा (किसा), धनपाल और अभय। देदा की स्त्री विशलदेवी थी। सांगण की शृंगारदेवी धर्मपत्नी थी। धनपाल की स्त्री का नाम सलपणदेवी था तथा कनिष्ठ अभय की धर्मपत्नी आल्हणदेवी नामा थी। देदा के अजयसिंह नामक पुत्र था।

एक दिन देदा ने सुगुरु की देशना श्रवण की कि मनुष्य-जीवन का प्राप्त होना अति दुर्लभ है। इस दुर्लभ जीवन को प्राप्त करके जो सुखार्थी होते हैं वे धर्म की आराधना करते हैं। गृहस्थों के लिये दान-धर्म का अधिक महत्त्व माना गया है। यह दान-धर्म तीन प्रकार का होता है—ज्ञानदान, अभयदान और अर्थदान। इन तीनों दानों में ज्ञानदान का अधिकतम महत्त्व है। ऐसी देशना श्रवण करके देदा ने वि० सं० १३५२ में 'लघुवृत्तियुक्त उत्तराध्ययनसूत्र' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की एक प्रति ताड़पत्र पर लिखवाई और बड़े समारोह के मध्य एवं कुटुम्बीजनों की साक्षी में जैन-दीक्षा ग्रहण करके उपरोक्त प्रति को भक्तिपूर्वक ग्रहण की ।[३]

१–जै० पु० प्र० सं० पृ० १३१ प्र० २६० (आदिनाथचरित्र) २–जै० पु० प्र० सं० पृ० १३२ प्र० २६१ (व्यवहारसूत्रटीका)
३–प्र० सं० भा० १ पृ० ३१ ता० प्र० ३६ (उत्तराध्ययनसूत्रलघुवृत्ति) जै०पु०प्र०सं० पृ० ५७. ता०प्र० ५६ (,,)

श्रेष्ठि चांडसिंह का प्रसिद्ध पुत्र पृथ्वीभट

वि० सं० १३५४

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के अन्त में संडेरक नामक ग्राम में, जहाँ प्रसिद्ध महावीर-जिनालय विनिर्मित है प्राग्वाटज्ञातिशृंगार सुश्रावक श्रेष्ठिवर मोखु रहता था। उसकी धर्मपरायणा स्त्री का नाम मोहिनी था। श्रा० मोहिनी के यशोनाग, वाग्धन, प्रह्लादन और जाल्हण नामक चार अति गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुये थे।

श्रे० वाग्धन का विवाह सीतू (सीता) नामक रूपवती एवं गुणवती कन्या से हुआ था। श्रा० सीता के चांडसिंह नामक अति प्रसिद्ध पुत्र और खेतूदेवी, मूंजलादेवी, रत्नदेवी, मयणलदेवी और भीमलादेवी नामा निर्मलगुणा धर्मप्रिया पाँच पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं।

श्रे० चाण्डसिंह की गौरीदेवी नामा स्त्री थी। श्रा० गौरीदेवी गुरुदेव की परमभक्ता और पतिपरायणा स्त्री थी। उसके पृथ्वीभट, रत्नसिंह, नरसिंह, चतुर्थमल, विक्रमसिंह, चाहड़ और मुंजाल नामक सात पुत्र उत्पन्न हुये और खोखी नामा एक पुत्री हुई। सातों पुत्रों की स्त्रियाँ स्वसा खोखी की सदा सेवा करने वाली क्रमशः सुहवदेवी, सुहागदेवी, नयणादेवी, प्रतापदेवी, भादलादेवी, चांपलादेवी थीं। इनके कई पुत्र और पुत्रियाँ थीं। श्रे० पृथ्वीभट (पेथड़) ने वि० सं० १३५४ में गुरु रत्नसिंहसूरि के सदुपदेश से श्री 'भगवतीसूत्रसटीक' अति द्रव्य व्यय करके लिखवाया था।'

इस वंश का विस्तृत परिचय इस इतिहास के तृतीय खण्ड के पृ० २४६ से २५६ के पृष्ठों में आ चुका है।[१]

महं० विजयसिंह

वि० सं० १३७५

श्री 'विवेकविलास' नामक धर्मग्रंथ की एक प्रति प्राग्वाटज्ञातीय महं० विजयसिंह, महं० चीमाक ने वि० सं० १३७५ आश्विन शु० ६ बुद्धवार को दिल्लीपति कुतुबुद्दीनखिलजी के प्रतिनिधि साहमदीन के शासनकाल में लिखवाई।[२]

श्राविका सरणी

वि० सं० १४००

विक्रमीय चौदहवीं शताब्दी में धान्येरक (धानेरा) नामक ग्राम में प्रसिद्ध प्राग्वाटज्ञाति में उत्पन्न शोभित नामक श्रेष्ठि रहता था। वह राजा और प्रजा में बहुमान्य था। रूक्मणी नामा उसकी पत्नी अति गुणवती, सुशीला थी। उसके तीन पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हुई। ज्येष्ठ पुत्र वीरचन्द्र था, वह निर्मलगुणी एवं ख्यातनामा था। उसका विवाह राजिनी नामा अति गुणवती कन्या के साथ में हुआ था। वीरदेव और पूर्णपाल नामक दो अन्य पुत्र थे। प्रथम पुत्री सरणी नामा थी। सरणी कीर्त्तिवती एवं सुलक्ष्मी थी। उसका विवाह पासड़ नामक व्यवहारी[३]

१-D.C.M.P.(G.O.S.Vo.LXXVI.) P. 248 (409)   २-प्र० सं० द्वि० भा० पृ० २ प्र० ४ (विवेकविलास)
३-जै० पु० प्र० सं० पृ० ७१-७२, प्र० ७५ (उत्तराध्ययनसूत्र) D.C.M.P. (G.O.S.Vo.LXXVI.) P. 333-5 (287)

के साथ हुआ था। अन्य पुत्रियाँ मरुदेवी, संतोषा, यशोमती, विनयश्री थीं। ये सर्व बहिनें अति ही गुणवती, सुशीला थीं। मरुदेवी ज्ञान-दर्शन-चारित्र को धारण करने वाली सुश्राविका थी। श्राविका सरणी ने अनुमानतः वि० सं० १४०० के आस-पास एक दिन गुरुवचन श्रवण करके अपने पुत्र विमलचन्द्र, देवचन्द्र, यशश्चन्द्र की संमति लेकर तथा अपनी बहिन संतोषा की इच्छा को मान्य कर के 'उत्तराध्ययनसूत्र' नामक ग्रंथ की टीका की पुस्तक लिखवाई। श्रा० सरणी के तीनों पुत्रों ने इस कार्य में भूरि २ आर्थिक सहायता की थी।

श्राविका वीझी और उसके भ्राता श्रेष्ठि जसा और डूङ्गर
वि० सं० १४१८

●

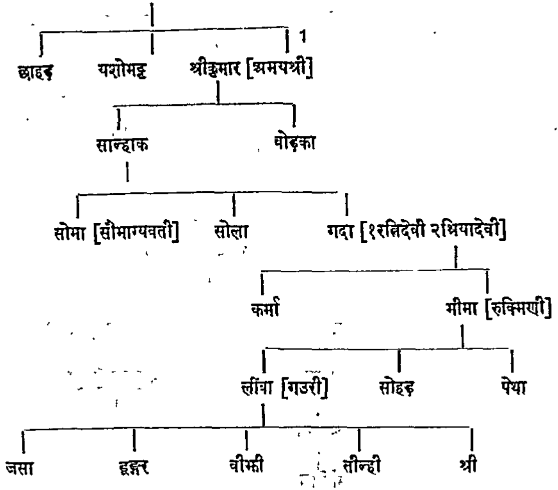
चीत्राग्राम में प्राग्वाटज्ञाति में सहदेव नाम का एक सुश्रावक हो गया है। वह कच्छोलिकामण्डन-श्रीपार्श्वनाथ का परमोपासक था। उसके गुणचन्द्र नामक पुत्र था। गुणचन्द्र का पुत्र श्रीवत्स हुआ। श्रीवत्स-के छाहड़, यशोभट्ट और श्रीकुमार नाम के तीन पुत्र हुये थे। श्रे० छाहड़ के परिवार के गुरु श्रीमाणिक्य-प्रभसूरि हुये तत्पश्चात् श्री कमलसिंहसूरि हुये। श्रे० यशोभट्ट के परिवार के गुरु श्री प्रभसूरि और प्रज्ञातिलक-सूरि थे। श्रीकुमार ने श्रीमद् कमलसिंहसूरिजी की उत्तम पदस्थापना (सूरिपदोत्सव) अपने वृद्ध ग्राम में करवाई थी।

श्रीकुमार की स्त्री का नाम अभयश्री था। अभयश्री के साल्हाक और वोड़का नाम के दो पुत्र हुये थे। श्रे० साल्हाक के सोभा, सोला और गदा नाम के तीन पुत्र हुये। श्रे० गदा के रत्नादेवी और श्रियादेवी दो स्त्रियाँ थीं। श्रा० श्रियादेवी के कर्मा और भीमा दो पुत्ररत्न हुये। श्रे० भीमा की रुक्मिणी नामा स्त्री से लींबा, सीहड़ और पेथा नाम के तीन नरवीर उत्पन्न हुये। श्रे० लींबा का विवाह गउरी नामा गुणवती कन्या से हुआ था। श्रा० गउरी के जसा और डूङ्गर दो पुत्र थे और वीझिका, तील्हिका और श्रीनामा तीन पुत्रियाँ थीं। श्रे० लींबा श्री कच्छूलिका (कछोली) पार्श्वनाथ मन्दिर का गोष्ठिक था। श्रा० वीझिका ने स्ववंशगुरु श्रीमद् रत्नप्रभसूरि के द्वारा श्री 'उपदेशमाला' पुस्तक का व्याख्यान अपने ज्येष्ठ भ्राता जसा की अनुमति से करवाया।

वि० सं० १४१८ कार्त्तिक कृ० दशमी (१०) गुरुवार को श्रे० जसा, डूङ्गर और उनकी भगिनियाँ वीझी और तील्ही की सहायता से श्री नरचन्द्रसूरि के शिष्य श्री रत्नप्रभसूरि के बंधु पंडित गुणभद्र ने श्री प्रभसूरिविरचित 'धर्मविधिप्रकरण' जिसकी वृत्ति श्री उदयसिंहसूरि ने लिखी थी सवृत्ति लिखवाया।

वंश-वृक्ष

सहदेव
|
गुणचन्द्र
|
श्रीवत्स
|



श्रेष्ठि स्थिरपाल

वि० सं० १४१८

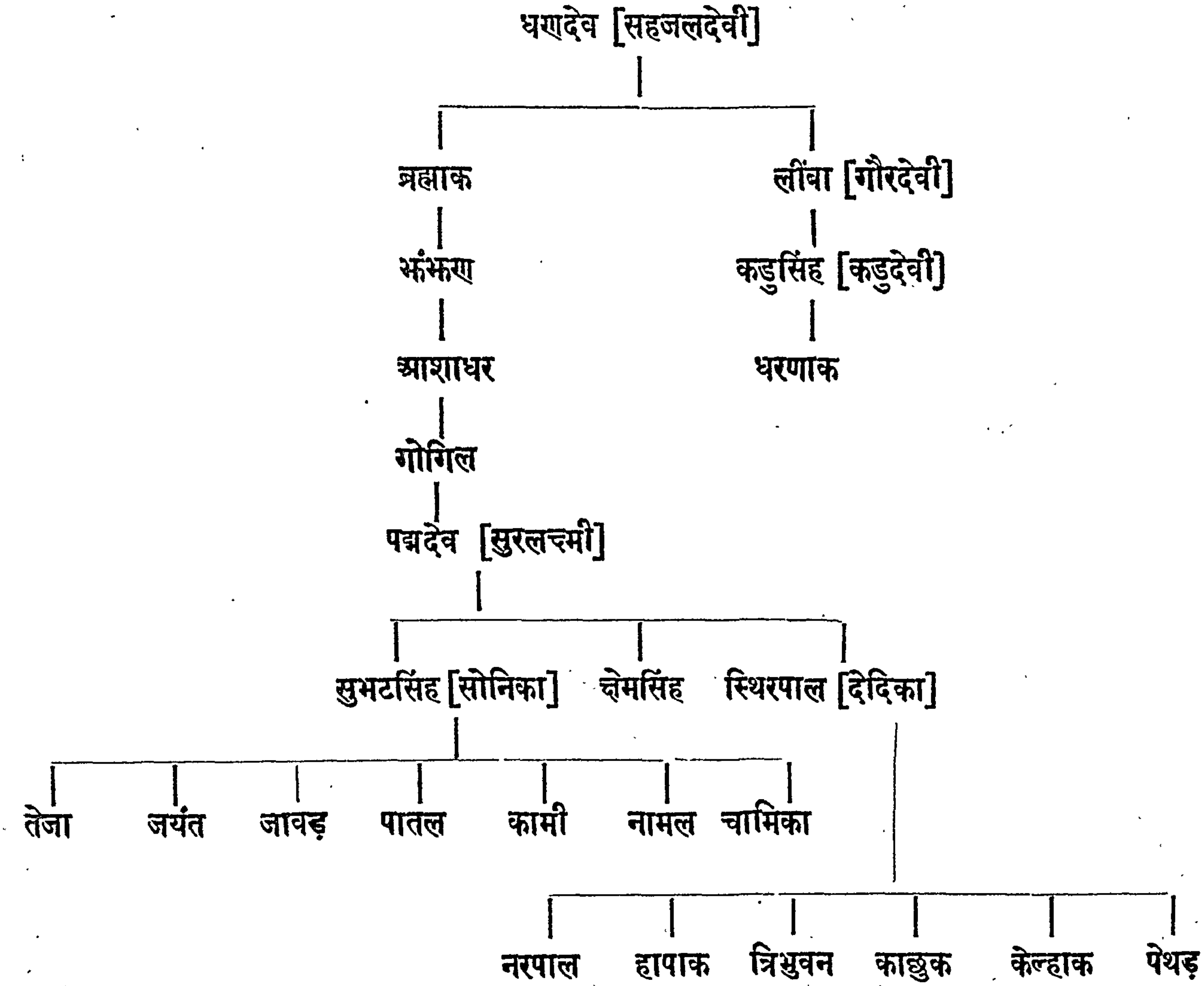
जावालिपुर दुर्ग में प्राग्वाटज्ञातिशृंगार धरणदेव नामक सुश्रावक हो गया है। उसके सहजलदेवी नाम की [2] स्त्री थी। उसके ब्रह्माक और लींबा नाम के दो पुत्र थे। श्रे० लींबा की स्त्री गौरदेवी थी, जिसके कडुसिंह नाम का पुत्र था। कडुसिंह की स्त्री का नाम भी कडुदेवी ही था। कडुदेवी की कुक्षि से धरणाक नामक पुत्र हुआ।

श्रे० ब्रह्माक के भंभण नामक पुत्र था, जो अति गुणी और धर्मात्मा था। वह सचमुच ही प्राग्वाटवंश-शिरोमणि था। उसके आशाधर नाम का पुत्र था। श्रे० आशाधर के गोगिल नाम का श्रेष्ठ पुत्र हुआ। श्रे०—

1D.C.M.P.(G.O.S.Vo.LXXVI.) P. 345 2P. 344-345

गोगिल के पद्मदेव नाम का पुत्र हुआ। श्रे० पद्मदेव सुकृती और सुकृतज्ञ था। श्रे० पद्मदेव की स्त्री का नाम सुरलक्ष्मीदेवी था, जो धर्मक्रिया में दृढ़हृदया और उदारचेता श्रे० रमणी थी। उसके सुभटसिंह, क्षेमसिंह, स्थिरपाल नाम के तीन कीर्त्तिशाली पुत्र हुये थे। श्रे० सुभटसिंह के सोनिकादेवी नामा अति रूपवती स्त्री थी, जिसकी कुक्षि से तेजा, जयंत, जावड़ और पातल नाम के चार पुत्र हुये और कार्मी, नामल, चामिका नाम की तीन गुणवती कन्यायें हुई थीं। श्रे० स्थिरपाल की देदिका नामा स्त्री थी। उसके नरपाल, हापाक, त्रिभुवन, काछुक, केल्हाक और पेथड़ नाम के छः पुत्र थे। श्रीमद् नरचन्द्रसूरि के शिष्य श्रीमद् रत्नप्रभसूरि द्वारा श्रे० स्थिरपाल ने 'धर्मविधि' ग्रन्थ का वाचन करवाया।

वंश-वृक्ष



श्रेष्ठि बोड़क के पुत्र
वि० सं० १४१८

कच्छूलिपुरी में प्राग्वाटज्ञातीय पार्श्व नाम का एक प्रसिद्ध पुरुष था, जिसका पुत्र देसल था। देसल के बहुदेव और वीरचन्द्र दो विश्रुत पुत्ररत्न हुये। श्रे० वीरचन्द्र के मालक नाम का अति पुण्यशाली पुत्र था। श्रे० मालक के आस (धरमराज), गुणधर, सांब और वीर चार प्रतापी पुत्र थे। श्रे० आसधर का पुत्र सोलक हुआ। श्रे० सोलक की स्त्री का नाम सरस्वतीदेवी था। इसके मान्हण, पार्श्वचन्द्र, बूटरोथ, महिचन्द्र और सेढ़क पांच पुत्र हुये थे। श्रे० सेढ़क की स्त्री जसिणीदेवी थी, जिसके राल्हण, सोहड़, आल्हण, पद्मराज, ब्रह्मा और बोड़क छः पुत्र हुये थे।

श्रे० बोड़क की स्त्री का नाम वीरीदेवी था। इसके वीर, धीर, एवं बुद्धिमान् देपाल, देवसिंह, सोम और सलखा नाम के अति प्रसिद्ध चार पुत्र हुये। इन्होंने 'श्री धर्मविधिग्रन्थ' के लिखवाने में अपने द्रव्य से सहायता की।

वंश-वृक्ष

पार्श्व
- देसल
  - बहुदेव
  - वीरचन्द्र
    - मालक
      - आसधर
        - सोलक [सरस्वती]
          - मान्हण
          - पार्श्वचन्द्र
          - बूटरोथ
          - महिचन्द्र
          - सेढ़क [जसिणी]
      - गुणधर
      - सांब
      - वीर

D. C M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI.) P. 346 (27).

राल्हण सोहड़ आल्हण पद्म ब्रह्मा चोड़क [वीरी]

(चोड़क के पुत्र:) देपाल देवसिंह सोम सलखा

सुप्रसिद्ध श्रावक सांगा गांगा और उनके प्रतिष्ठित पूर्वज

वि० सं० १४२७

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में उदयगिरिवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० धांध एक प्रसिद्ध श्रावक था। यह दृढ़ जैन धर्मी, शुद्ध श्रावकव्रतपालक एवं साधु-मुनियों का परम भक्त था। देल्हणदेवी नाम की उसकी पतिपरायणा स्त्री थी।

श्रे० धांध और उसका परिवार

उसके अर्जुन और भड़सिल नामक दो अति प्रसिद्ध पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र अर्जुन बड़ा दानी, उदार था। वह प्रभु-पूजन में बड़ा रस लेता था। उस समय के चोटी के उत्तम श्रावकों में वह गिना जाता था। होने वाले उत्सव, महोत्सवों में उसका अग्रभाग और अधिक सहयोग रहता था। उसका मन सदा धर्म-ध्यान में लीन रहता था। ऐसी ही गुणवती सहजल्लदेवी नाम की उसकी प्रिया थी। सहजल्लदेवी के नामांकिता छः पुत्र हुये। ज्येष्ठ पुत्र मुंजालदेव था। वह अत्यंत विश्वसनीय एवं आज्ञा-पालक था। दूसरा पुत्र धवर नामक था। धवर प्रखर बुद्धिमान् था। तृतीय पुत्र गुणपल्ल और चतुर्थ धना था। ये दोनों भी गुणवान् थे। पांचवें और छट्ठे पुत्र क्रमशः सांगा और गांगा थे। वि० सं० १४२७ में सांगा गांगा दोनों भ्राताओं ने 'श्री कल्पसिद्धान्त' अर्थात् 'कल्पसूत्र' को ताड़ पत्र पर लिखवा कर सोत्सव एवं भक्ति-भाव पूर्वक पूर्णिमापक्षीय श्रीमद् गुणचन्द्रसूरि-गुणप्रभसूरि-गुणभद्रसूरि के गुरु भ्राता श्रीमद् मतिप्रभ को समर्पित किया।[१]

श्रेष्ठि अभयपाल

वि० सं० १४४०

आशापल्लीवासी प्राग्वाटज्ञातीवंशभूषण व्य० अणंत की भार्या मटू की पुत्री माभादेवी के पुत्र व्य० अभयपाल और सरवण थे। सरवण ने दीक्षा ग्रहण की थी; अतः उस के श्रेयार्थ श्रे० अभयपाल ने न्यायोपार्जित द्रव्य से ज्ञानाराधना के लिये तपागच्छनायक श्रीमद् जयानन्दसूरि के सदुपदेश से वि० सं० १४४० में श्रीमद् प्रसन्नचन्द्र-सूरिशिष्य श्रीमद् देवभटाचार्यविरचित 'श्री पार्श्वनाथचरित्र' नामक ग्रंथ की प्रति आशापल्लीनिवासी गोडान्वयी कायस्थ कवि सेल्हण के पुत्र वल्लिग द्वारा ताड़पत्र पर लिखवाई।[२]

१-प्र० सं० भा० १ पृ० ३-४ (श्री कल्पसूत्र ता० प्र० ८) २-प्र० सं० भा० १ पृ० ६६ (ताड़पत्र) प्र० १०७ (पार्श्वनाथचरित्र)

श्रेष्ठि लींबा

वि० सं० १४४१

●

सलखणपुरवासी प्राग्वाटज्ञातीय मं० भीम की स्त्री खोखटदेवी की कुक्षि से उत्पन्न मं० ठ० लींबा ने तपागच्छाधिनायक श्रीमद् देवसुन्दरसूरि के सदुपदेश से पं० पद्मानन्द द्वारा वि० संवत् १४४१ पौ० कृ० १२ सोमवार को अपनी स्त्री लूणादेवी, भ्राता मं० सारंग आदि कुटुम्बीजनों के सहित श्री 'शब्दानुशासनावचूरि' नामक ग्रंथ की एक प्रति लिखवायी ।[१]

श्राविका साऊदेवी

वि० सं० १४४४

विक्रमीय चौदहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० देदा नामक एक अति प्रसिद्ध व्यवहारी हेरंडकनगर में रहता था । उसके वसा (वत्सराज) नामक पुत्र हुआ । श्रे० वसा का पुत्र मोख था । श्रे० मोख की धर्मपत्नी जयतलदेवी की कुक्षि से मलयसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । श्रे० मलयसिंह अधिक प्रख्यात् एवं श्रीमन्त और धर्मप्रिय था । श्रे० मलयसिंह की धर्मपत्नी साऊ नामा अति धर्मपरायणा पतिभक्ता स्त्री थी । साऊ के पिता का नाम भी मलयसिंह ही था और माता का नाम मोहणदेवी था । श्रा० साऊ के पांच पुत्र और सात पुत्रियाँ हुई । पुत्रों में सब से बड़ा जूठिल था और सारंग, जयंतसिंह, खेतसिंह, मेघा, क्रमशः उससे छोटे भ्राता थे । बहिनों में बड़ी देऊ थी और सारू, धरणू, उम्टमू, पांचू, रूड़ी, मानू क्रमशः उससे छोटी थीं ।

तपागणाधिप श्रीमद् देवसुन्दरसूरि के उपदेश को श्रवण करके श्रा० साऊदेवी ने अपने पति श्रे० मलयसिंह के श्रेयार्थ पुत्र-पुत्रियों के सहित शुभ कामनापूर्वक 'ज्योतिः करंडविवृत्ति', 'तीर्थकल्प', 'चैत्यवन्दनचूर्णी' आदि ग्रन्थों को ताड़पत्र पर वि० सं० १४४४ में नागशर्मा द्वारा अणहिलपुरपत्तन में श्वसुर मोख और श्वसुरमह वसा की तत्त्वावधानता में बहु द्रव्य व्यय करके लिखवाये ।[२]

वंश-वृक्ष

देदा
|
वसा
|
मोख [जयतलदेवी]
|

१—प्र० सं० भा० २ पृ० ४ प्र० १६ (शब्दानुशासनावचूरि)

२—जै० पु० प्र० सं० पृ० ४१ ता० प्र० ४१. D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI.) P. 88.

मलयसिंह [साऊदेवी]

जूठिल सारंग जयंतसिंह खेतसिंह मेघा देऊ सारू धरणू उद्यम् पांचू रूड़ी मानू

श्रेष्ठि महणा
वि० सं० १४४७.

प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० खोखा के पुत्र श्रे० महणा की स्वपत्नी गोनीदेवी की पुत्री विलू श्राविका ने यात्रादि बहुपुण्यकार्य करने वाले सं० हरचन्द्र के साथ खंभात में भट्टारक श्री देवसुन्दरसूरिगुरु के सदुपदेश से होने वाले अभयचूला नामा प्रवर्तिनी के पदस्थापनार्थ एवं श्री तीर्थयात्रा आदि के अर्थ आकर वि० सं० १४४७ में (सं० १४४६ फा० शु० १४ सोमवार) श्री 'सम्मतितर्कवृत्ति' की प्रति श्री स्तंभतीर्थ में ताड़ पत्र पर लिखवाई ।[१]

श्राविका स्याणी
वि० सं० १४५०

प्राग्वाटज्ञातीय सुधर्मी व्यवहारी श्रे० देसल के पुत्र संघपति मेघा की स्त्री मिणलदेवी की कुक्षि से उत्पन्न पुण्यवती, गुणवती, श्राविका स्याणी नामा ने सुगुरु तपागच्छनायक श्रीमद् देवसुन्दरसूरि के उपदेश से वि० सं० १४५० भाद्रपद शु० २ (कृ० १ शुक्र०) को अपने कल्याणार्थ श्री 'आचारांगसूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ की प्रति ताड़पत्र पर लिखवाई। स्याणी का पाणिग्रहण प्राग्वाटज्ञातीय गांधिक गोत्रीय श्रे० नरसिंह की गागलदेवी नामा स्त्री से उत्पन्न विश्रुत धर्णिग के साथ में हुआ था ।[२]

श्राविका कडू
वि० सं० १५४१

विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी में फीलणी नामक ग्राम में प्राग्वाटवंशीय वैभवशाली श्रे० वज्रसिंह नामक श्रावक हो गया है। उसकी धर्मपत्नी कडूदेवी बड़ी ही धर्मपरायणा और शीलगुणसम्पन्ना स्त्री थी। कडूदेवी की कुक्षि से

१-जै० पु० प्र० सं० पृ० १४० प्र० ३२३. D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXX VI P.) 227 (369)
प्र० सं० भा० १ पृ० ६२ (६७) २-प्र० सं० भा० १ पृ० ८१ (ताड़पत्र) प्र० ११७ (आचारांगसूत्रवृत्ति)
जै० पु० प्र० सं० ७३-४ प्र० ७८ (आचारांगसूत्रवृत्ति) D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI.) P. 243 (399)

उज्ज्वलयशस्वी धांगा, धामा, पुण्यशाली लखमसिंह और सज्जनाग्रणी रावण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुये। श्रा० कडू ने तपागच्छनायक देवसुन्दरसूरि के उपदेश से वि० सं० १४५१ श्रा० शु० ५ गुरु० को श्रीदेवेन्द्रसूरिकृत 'सुदर्शनाचरित्र' नामक ग्रन्थ लिखवाया और उसको अणहिलपुरपत्तन के ज्ञानमण्डार में स्थापित किया।[१]

श्राविका आसलदेवी
वि० सं० १४५३

प्राग्वाटज्ञातीय व्य० आसा की धर्मपत्नी आसलदेवी ने अपने पुत्र व्य० आका, धर्मसिंह, वत्सराज, देवराज आदि और शिवराज आदि पौत्रों से युक्त हो कर तपागच्छनायक श्री देवसुन्दरसूरिगुरु के उपदेश से 'विशेषावश्यकवृत्ति (द्वितीय खण्ड)' वि० सं० १४५३ भाद्रपद कृ० १४ गुरुवार को श्री अणहिलपुरपत्तन में लिखवाई।[२]

श्राविका प्रीमलदेवी
वि० सं० १४५४

विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय ठक्कुर काला स्तम्भतीर्थ में रहता था। उसकी धर्मपत्नी संभलदेवी नामा धर्मात्मा स्त्री थी। उनके भूभड़ नामक विश्रुत विशदबुद्धि पुत्र हुआ। भूभड़ का पाणिग्रहण महायशस्वी, अति श्रीमंत, दानवीर गंग नामक व्यक्ति की धर्मपत्नी विशदशीला निःसीमरूपसमलक्ष्मी प्राग्वाटकुलावतंसा गउरदेवी की कुक्षि से उत्पन्न गुणाढ्य, सुशीला प्रीमलदेवी नामक पुत्री से हुआ।

प्रीमलदेवी अति धर्मप्राणा, सती स्त्री थी। उसने तपागच्छनायक देवसुन्दरसूरि का उपदेश श्रवण करके शीलाचार्यकृत 'सूत्रकृतांगटीका' नामक पुस्तक को वि० सं० १४५४ माघ शु० १३ सोमवार को कायस्थज्ञातिभूषण जाना के पुत्र मंत्रीप्रवर भीमा द्वारा स्तंभतीर्थ में बहुत द्रव्य व्यय करके लिखवाई।[३]

श्राविका आल्हू
वि० सं० १४५४

स्तंभतीर्थाधिवासी प्राग्वाटज्ञातीय सुकृती धर्मात्मा श्रेष्ठि लाखण की धर्मपत्नी आल्हू नामा ने अपने पुत्र रणवीर, पुत्री चापलदेवी के सहित श्री देवसुन्दरसूरि का सदुपदेश श्रवण करके वि० सं० १४५४ में श्री 'पंचांगीसूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ की प्रति अपने द्रव्य का सदुपयोग करके भक्ति-भावना पूर्वक ताड़पत्र पर लिखवाई।[४]

१-जै० पु० प्र० सं० पृ० ४३, ४४ ता० प्र० ४२. D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI.) P. 208 (341).
२-जै० पु० प्र० सं० पृ० ४४ प्र० ३२८ (विशेषावश्यकवृत्ति). D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI.) P. 239 (393)
३-जै० पु० प्र० सं० पृ० ४४ प्र० ४३. D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI) P. 260 (46)
४-प्र० सं० भा० १ पृ० ७७-७८ ता० प्र० ११४ (पंचांगीसूत्रवृत्ति)

श्राविका आल्हू
वि० सं० १४५४

●

विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० लापण खंभात नगर में महादयालु, यशस्वी एवं धर्मात्मा पुरुष हो गया है। उसका विवाह रूपगुणसम्पन्ना साऊ नामा कन्या से हुआ था। श्राविका साऊदेवी दृढ़ जैनधर्मी, स्त्रीशिरोमणि थी। उसके आल्हू नामा कन्या उत्पन्न हुई। आल्हू सुशीला, गुणवती कन्या थी। प्रभु-पूजन में उसकी सदा अपार श्रद्धा, भक्ति रही। उसका विवाह स्थानीय प्राग्वाटज्ञातीय प्रसिद्ध व्यवहारी श्रीमंत वीदा भार्या चांपलदेवी के पुत्र वीरम नामक अति गुणवान् युवक से हुआ था। श्रा० आल्हू ने तपागच्छ-नायक श्रीमद् देवसुन्दरसूरि के उपदेश को श्रवण करके तथा धन, वैभव, ऋद्धि-सिद्धि को असार समझ कर वि० सं० १४५४ में खंभातवास्तव्य कायस्थकुलकमलरवि जाना नामक प्रसिद्ध पुरुष के पुत्र मंत्रीवर भीमा से बहुत द्रव्य व्यय करके 'पञ्चांगीसूत्रवृत्ति' नामक पुस्तक लिखवाई।[१]

श्राविका रूपलदेवी
वि० सं० १४५६

●

वि० पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में अणहिलपुरपत्तन में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वीर नामक श्रावक रहता था। वह व्रतनिष्ठ, सदाचारी, सभ्य एवं लब्धप्रतिष्ठ पुरुष था। उसके महापुण्यशाली वयज नामक पुत्र हुआ। श्रे० वयज की धर्मपत्नी माकूदेवी (माऊदेवी) थी। माकूदेवी चतुरा और अति सौभाग्यशालिनी स्त्री थी। वह अति उदार-हृदया एवं दयालु थी। उसके चार संतानें हुईं। तेजसिंह, भीमसिंह, पद्मसिंह नामक तीन पुत्र और रूपलदेवी नाम की एक पुत्री। रूपलदेवी गुणाढ्या, सौभाग्यशालिनी थी। बालपन से ही वह धर्मरता, करुणार्द्रचेता, पुण्य-कर्मकर्त्री तथा देव, गुरु में अतिशय भक्ति रखने वाली, नित्य कठोर तपकर्म करने वाली थी। तपागच्छनायक श्री देवसुन्दरसूरिगुरु के उपदेश को श्रवण करके उसने वि० सं० १४५६ में बहुत द्रव्य व्यय करके श्री 'पद्मचरित्र' नामक ग्रन्थ की प्रति ताड़पत्र पर लिखवा कर पत्तन के ज्ञानभण्डार में स्थापित करवाई।[२]

श्रेष्ठि धर्म
वि० सं० १४७४

●

विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्राग्वाटज्ञातीय नरपाल, धनसिंह, खेता नाम के तीन प्रसिद्ध भ्राता हो गये हैं। उनका लख नामक काका प्रसिद्ध व्यक्ति था। लख की धर्मपत्नी झबकू अति पतिपरायणा एवं सती-

१–जै० पु० प्र० सं० पृ० ४५. ता० प्र० सं० ४५. D.C.M.P. (G.O.S. Vo. LXXVI.) P. 240 (395)
२–प्र० सं० भा० १ पृ० ६१ ता० प्र० ८८ (पद्मचरित्र) D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI.) P. 228 (371)

साध्वी स्त्री थी। उसके धर्म नामक पुत्र हुआ। धर्म चतुर, निर्मलबुद्धि एवं धर्ममर्म का जाननेवाला था। धर्म की स्त्री रत्नावती थी। रत्नावती सचमुच ही गुणरत्नों की खान थी। वह विशुद्धहृदया, शुद्धशीला स्त्री थी। उसके अजितचूला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। अजितचूला पापरूपपंक का शोषण करने में समर्थ ऐसा दुस्तप करनेवाली थी। अजितचूला के एक भाई भी था, जिसने साधुदीक्षा ग्रहण की थी और वह विनयानन्द नाम से विख्यात हुआ था। मुनि विनयानन्द भी विनयादिगुणालय, साधुशिरोमणि, परमहंस साधु था।

श्रे० धर्म धर्मकृत्यों के करने में सदा तत्पर रहता था। उसने यौवनावस्था में ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण परिपालन किया था। वह नित्य 'पंचशक्रस्तव' करके मनोहारिणी भूरिभक्ति से जिनेश्वरदेवों की प्रतिमाओं के दर्शन और उनका पूजन करता था। उसने विशाल वैभव के साथ में श्री अर्बुदतीर्थ की संघयात्रा की थी। इस संघयात्रा में उसके मामा संघवी कर्मण और लक्ष्मसिंह नामक अति प्रसिद्ध, पुण्यकर्मा व्यक्ति भी अपने प्रसिद्ध पुत्र गोधा और लींबादि के सहित सम्मिलित हुये थे। श्रे० धर्म ने संघ का आतिथ्य बड़ी भक्ति एवं भावनाओं से किया था तथा संघ और गुरु का पूजन तथा अर्चन सोत्साह करके संघयात्रा सफल की थी। धर्म ने देवकुलपाटक (देलवाड़ा) के आदिनाथ-जिनालय में कुल का उद्योत करने वाली देवकुलिका विनिर्मित करवाई थी। तपागच्छाधिपति श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि का सदुपदेश श्रवण करके उसने लक्षग्रन्थमान (लाख श्लोक-प्रमाण) आगम पुस्तक, जिनमें अभयदेवकृतवृत्तियुक्त 'औपपातिकसूत्र' आदि प्रमुख गण्य हैं वि० सं० १४७३ फा० कृ० ४ बुधवार से वि० सं० १४७४ मार्ग शु० ६ रविवार पर्यन्त विप्रज्ञातीय नागशर्मा से अणहिलपुरपत्तन में लिखवाये और स्वद्रव्य को सप्त क्षेत्रों में व्यय किया।[१]

श्राविका माऊ
वि० सं० १४७६

श्री अणहिलपुरपत्तन में देवगिरिवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय सा० सलखण भार्या धनू की पुत्री माऊ नामा ने तपाधिराज श्री सोमसुन्दरसूरि के उपदेश से संवत् १४७६ वैशाख शु० ५ गुरुवार को 'स्याद्वादरत्नाकर' प्रथम खण्ड लिखवाया।[२]

श्रेष्ठि धर्मा
वि० सं० १४८१

हडाद्रनगर का महत्त्व जैनतीर्थों के स्थानों में प्राचीन एवं विशिष्ट है। वहाँ वि० शताब्दी पंद्रहवीं में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० लाखा नाम का एक प्रसिद्ध व्यक्ति रहता था। श्रे० लाखा अति ही सज्जन, उदारहृदय और

१-जै० पु० प्र० सं० पृ० ४७ प्र० ४७ D.C.M.P. (G.O.S. Vo. LXXVI.) P. 214 (348)
जै० पु० प्र० सं० पृ० १४२ प्र० ३४० (औपपातिकसूत्रवृत्ति)
२-जै० पु० प्र० सं० पृ० १४३ प्र० ३४३ (स्याद्वादरत्नाकर)
D. C. M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI,) P. 202 पर 'माऊ' के स्थान पर 'माऊ' लिखा है।

उत्तम कोटि का सज्जन श्रावक था। उसकी स्त्री लक्ष्मीदेवी भी वैसी ही गुणवती सतीसाध्वी स्त्री थी। उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम धर्मा रक्खा गया। श्रे० धर्मा अपने माता, पिता से भी बढ़कर हुआ। वह रात्रि-दिवस धर्मकृत्यों के करने में तल्लीन रहता था। वह सत्यभाषण, ब्रह्मव्रत एवं शीलव्रत के पालन के लिये दूर २ तक प्रख्यात था। उसने अनेक बिंबों की स्थापना और उद्यापनतप करवाये थे। तपागच्छनायक श्रीमद् देवसुन्दरसूरि के पट्टालंकार श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि का उपदेश श्रवण करके उसने वि० सं० १४७६ वैशाख कृ० ४ गुरुवार से वि० सं० १४८१ पर्यन्त दो लक्षग्रन्थप्रमाण श्री देवसूरिरचित 'प्राकृत-पद्मप्रभस्वामिचरित्र' की प्रति लिखवा कर पतन के ज्ञानभण्डार में अर्पित की।

प्रसिद्ध पंचम उपांग 'श्री सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्ति' को जो श्रीमद् मलयगिरि ने रची थी। उसने वि० सं० १४८१ में ही ताड़पत्र पर लिखवाई। धर्म की स्त्री का नाम रतू अथवा रत्नावती था। रत्नावती पति की आज्ञापालिनी, गृहकर्मदक्षा एवं अति उदारहृदया स्त्रीशिरोमणि महिला थी।[१]

श्रे० गुणेयक और को० वाघा

वि० सं० १४६०

चम्पकनेर (चांपानेर) वासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० खेता भा० लाडी सा० गुणेयक ने ३८ फीट लम्बा और १२॥ इञ्च चौड़ा एक पंचतीर्थी-आलेखपट वि० सं० १४६० का० कृ० ३ को करवाया और उसी मुहूर्त में प्राग्वाटज्ञातीय कोठारी सं० तेजमल भा० भावदेवी के पुत्र वाघमल ने भी श्री शांतिनाथप्रासाद में द्वितीय पंचतीर्थी-आलेखपट करवाया।[२]

श्रेष्ठि मारू

वि० सं० १५०४

प्राग्वाटज्ञातीय मं० मारू ने जिसकी स्त्री का नाम चमकूदेवी था, अपने पिता-माता मं० धनराज धांधलदेवी के और अपने कल्याण के लिये वि० सं० १५०४ वैशाख शु० ६ मंगलवार को श्री 'पार्श्वनाथचरित्र' नामक ग्रन्थ लिखवाकर श्री पूर्णिमापक्षीय श्रीमद् पासचन्द्रसूरि के पट्टधर श्रीमद् जयचन्द्रसूरि को भेंट किया।[३]

श्रेष्ठि कर्मसिंह

वि० सं० १५११

मालवदेशान्तर्गत खरसउदनगरवासी प्राग्वाटज्ञातीय तपापक्षीय शा० कर्मसिंह ने अणहिल्लनगर में तपागच्छीय श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि के शिष्य पं० रत्नहंसगणि के वाचन के लिये उदीच्यज्ञातीय लेखक म० धरणीधरण

१-प्र० सं० भा० १ पृ० ६६-६७ ता० प्र० १०४ (पद्मप्रभुचरित्र) जै० पु० प्र० सं० पृ० ४८ प्र० ४८ (लक्षद्वयग्रथमान) प्र० सं० भा० १ पृ० ६ ता० प्र० ११ (सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्ति) २-D. C.M. P. (G. O. S. Vo. LXXVI.) P. 154 (240)
३-प्र० सं० भा० २ पृ० १० प्र० ३७ (श्रीपार्श्वनाथचरित्र)

द्वारा श्री 'शांतिनाथचरित्र' नामक ग्रंथ को लिखवा कर वि० सं० १५०६ आषाढ़ शु० २ सोमवार को उनको अर्पित किया। श्रेष्ठि कर्मसिंह के पिता का नाम गोगा और माता का नाम सावित्रीदेवी था तथा पितामह शा० नानू नामा और पितामही राजूदेवी नामा थी। शा० गोगा से शा० पासड़, शा० देल्हा, शा० पेथा क्रमशः बड़े भ्राता थे और शा० डूङ्गर छोटा भ्राता था। कर्मसिंह ने अपनी स्त्री लाठीकुमारी, पुत्र वाछा, भ्राता शा० आल्हा भा० नांईदेवी और भगिनी टरकूदेवी प्रमुख स्वपरिजनों के सहित तपागच्छनायक श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि, श्री मुनिसुन्दरसूरि, श्रीजयचन्द्रसूरि, श्रीजिनसुन्दरसूरि के पट्टपरंपरागत संप्रति विजयमान श्रीमद् रत्नशेखरसूरि, श्री उदयनंदिसूरि, श्री लक्ष्मीसागरसूरि, श्री सोमदेवसूरिशिष्य पं० रत्नहंसगणि के उपदेश से वि० सं० १५११ में सविस्तार पञ्चम्युद्यापन करके 'शांतिनाथचरित्र' की एक प्रति लिखवाई।[१]

वंश-वृक्ष

शा० नानू [राजूदेवी]

- पासड़
- देल्हा
- पेथा
- गोगा [सावित्री]
  - कर्मसिंह [लाठीकुमारी]
    - वाछा
  - आल्हा [नांईदेवी]
  - टरकूदेवी
- डूङ्गर

श्रेष्ठि पोमराज
वि० सं० १५११

●

उग्रनदुर्गवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० पोमराज ने अपने पुत्र पूला, पुत्रवधु हर्षुदेवी और पौत्र अमरादि परिवार के जनों के सहित वि० सं० १५११ चैत्र शु० ११ शुक्रवार को पं० विष्ठारत्नगणि के उपदेश से श्री 'षड़शीतिकावचूरि' नामक ग्रन्थ की एक प्रति लिखवाई।[२]

मंत्री गुणराज
वि० सं० १५१४

●

प्राग्वाटज्ञातीय प्रसिद्ध मन्त्रीश्वर केशव की जिनधर्मभक्तिचतुरा स्त्री देमतिदेवी की कुक्षि से उत्पन्न नीति-

१-प्र० सं० भा० २ पृ० १६ प्र० ६३ (शांतिनाथचरित्र)   २-प्र० सं० भा० २ पृ० १७ प्र० ६७ (षड़शीतिकावचूरि)

निपुण मन्त्री गुणराज ने जो अति धनवान् एवं धर्मात्मा था अपनी स्त्री रूपिणीदेवी और पासचन्द्र आदि पुत्रों के सहित अपनी माता देमतीदेवी के प्रमोद के लिये वृहत्तपागच्छीय श्री ज्ञानकलशसूरि, विद्यागुरु उपाध्याय चरणकीर्त्ति की निश्रा में वि० सं० १५१४ माघ शु० २ सोमवार को श्री 'कल्पसूत्र' की एक प्रति मं० देव द्वारा लिखवाकर श्री पूज्य भ० श्री विजयरत्नसूरि गच्छाधिप के विजयराज्य में पं० विजयसमुद्रगणि को अर्पित की ।[१]

श्रेष्ठि केहुला

वि० सं० १५१६

●

अहमदाबादवासी प्राग्वाटज्ञातीय मं० महुणसिंह भार्या महुणदेवी के पुत्र महं० लाखा भार्या वैदेउ, महं० श्री ठाकुरसिंह भार्या झबकूदेवी के पुत्र केहुला भार्या कर्मादेवी, वेला भार्या मेघू—इन में से शा० केहुला ने अपनी स्त्री कर्मादेवी के तथा अपने श्रेय के लिये वि० सं० १५१६ माघ कृ० १४ गुरुवार को श्री 'प्रवचनसारोद्धारसूत्र' नामक ग्रन्थ की एक प्रति लिखवाई ।[२]

वंश-वृक्ष

महं० महुणसिंह [महुणदेवी]
- महं० लाखा [वैदेउदेवी]
- महं० ठाकुरसिंह [झबकूदेवी]
  - केहुला [कर्मादेवी]
  - वेला [मेघूदेवी]

श्रेष्ठि जिणदत्त

वि० सं० १५४३

●

अहमदाबादनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि जुगपाल के पुत्र वइरसिंह की धर्मपत्नी गउरदेवी के पुत्र संघवी जिणदत्त ने श्री 'कल्पसूत्र' (सावचूरी) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की प्रति वि० सं० १५४३ द्वितीय श्रावण कृ० एकादशी को लिखवाई ।[३]

१-प्र० सं० भा० २ पृ० १८ प्र० ७५ (श्री कल्पसूत्र)
२-प्र० सं० भा० २ पृ० २१ प्र० ८१ (प्रवचनसारोद्धारसूत्र)
३-प्र० सं० भा० २ पृ० ४३ प्र० १८२ (श्री कल्पसूत्र)

श्रेष्ठि ठाकुरसिंह

वि० सं० १५४८

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में वीरमग्राम में प्राग्वाटज्ञातीय ज्ञातिभूषण श्रेष्ठि ठाकुरसिंह हुआ है। वह अति धर्माराधक एवं दृढ़ जैनधर्मी था। उसका विवाह वानूदेवी नाम की एक परम गुणवती कन्या से हुआ था। वानूदेवी के पिता प्राग्वाटज्ञातीय पाँच थे। ये भी वीरमग्राम के ही निवासी थे। पाँचराज के पिता जसराज थे तथा माता का नाम रमाईदेवी था। पाँचराज पाँच भाई-बहिन थे। धारा, वीरा, हीरा नामक तीन छोटे भ्राता और हरदेवी नामक एक बहिन थी। पाँचराज की धर्मपत्नी का नाम वूटीदेवी था। वूटीदेवी की कुक्षि से धनराज और कान्हा नामक दो पुत्र और कीकी, ललतू, अरधू और वानूदेवी नाम की चार पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। यह वानूदेवी श्रे० ठाकुरसिंह की पत्नी हुई।

श्रे० ठाकुरसिंह को अपनी पत्नी वानूदेवी से खीमराज और कतइया नामक दो संतानों की प्राप्ति हुई। खीमराज का विवाह श्वेतानूदेवी और नागलदेवी नामक दो गुणवती एवं शीलशालिनी कन्याओं से हुआ। वि० सं० १५४८ में श्रे० ठाकुरसिंह ने श्रीमद् धर्महंससूरि के सदुपदेश से श्री 'शान्तिनाथचरित्र' की प्रति लिखवा कर अपने द्रव्य का सदुपयोग किया और श्रीमद् ईन्द्रहंससूरिगुरुमहाराज को वाचनार्थ अर्पित कर अपार कीर्त्ति प्राप्त की।

(अ)

वंश-वृक्ष

ठाकुरसिंह [वानूदेवी]

खीमा [श्वेतानूदेवी, नागलदेवी] कतइया

(ब)

जसराज [रमाईदेवी]

धारा वीरा हीरा हरदेव पाँचराज [वूटीदेवी]

धना कान्हा कीकी ललतू अरधू वानूदेवी

प्र० सं० भा० २ पृ० ५० प्र० १६६ (शांतिनाथचरित्र)

श्राविका सदूदेवी
वि० सं० १५४८

प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि धीरा की धर्मपत्नी सदू नामा ने पुत्र आसधर, रूपराज के सहित वि० सं० १५४८ का०शु० ३ गुरुवार को श्री अणहिलपुर में तपागच्छीय श्रीमद् जिनरत्नसूरि के शिष्य पं० पुण्यकीर्त्तिगणि के शिष्यप्रवर पं० साधुसुन्दरगणि के पठन के लिये श्री 'उत्तराध्ययनसूत्र' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की प्रति लिखवायी ।१

श्री ज्ञानभण्डार संस्थापक नंदुरवारवासी प्राग्वाटज्ञातीय सुश्रावक श्रेष्ठि कालूशाह
वि० सं० १५५१

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में नंदुरवारवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि भीम अति विख्यात संघपति हुआ है। वह दृढ़ जैनी था। उसका पुत्र डूँगर भी वैसा ही प्रसिद्ध एवं पुण्यशाली हुआ। डूँगर का पुत्र गुणराज था। गुणराज भी अति गुणवान् एवं दृढ़ जैनी था। गुणराज ने पदोत्सव एवं प्रतिष्ठोत्सव करवाये तथा श्री शत्रुंजयमहातीर्थ रैवंततीर्थ, जीरापल्लीतीर्थ, अर्बुदतीर्थ की यात्रायें कीं और अपने न्योयोपार्जित द्रव्य का इस प्रकार व्यय करके अपार कीर्त्ति प्राप्त की। श्रे० गुणराज का पुत्र कालू हुआ। कालू के तीन स्त्रियाँ थीं—जसमति, ललतादेवी और वीरादेवी। कालू अपने पिता के सदृश ही धर्मात्मा एवं पुण्यशाली हुआ। उसने स्वोपार्जित द्रव्य को तथा पूर्वजों से प्राप्त अतुल द्रव्य को जैनमन्दिरों के निर्माण में, पूजाओं में, पुस्तक-लेखनों में तथा संघ की सेवाओं में व्यय किया। जीवन में उसने अतिशय दान दिया तथा कोश, आगम, सूत्र एवं वृत्तियाँ लिखवाईं। श्रे० कालूशाह ने मुनिवर्य्य वाचक श्रीमद् महीसमुद्र का सदुपदेश श्रवण करके एक विशाल ज्ञान-भण्डार की स्थापना की और समस्त आगम-सिद्धान्तों की सटीक प्रतियाँ लिखवाकर उसमें संस्थापित कीं। महोपाध्याय श्रीमद् महीसमुद्र के शिष्य पं० कनकविजयगणि के निरीक्षण में उक्त ज्ञान-भण्डार की स्थापना एवं सिद्धान्तों का लेखन-कार्य पूर्ण करवाया गया था। उसने श्री 'पिंडनिर्युक्ति' की भी प्रति वि० सं० १५५१ आश्विन शु० १० शुक्रवार को लिखवाई थी। यह प्रति मु० श्री० हं० वि० सं० शास्त्रसंग्रह वड़ोदा में विद्यमान है।२

१–प्र० सं० भा० २ पृ० ५० प्र० १८७ (उत्तराध्ययनसूत्र)

२–लींबड़ी, भावनगर, पत्तन, जैसलमेर के ज्ञान-भण्डारों में श्रे० कालूशाह द्वारा लिखवाई गईं कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं:–

वि० सं० १५५१ आषाढ शु० १० शुक्रवार को 'व्यवहारभाष्य' की प्रति लिखवाई गई। यह प्रति भावनगर-ज्ञान-भण्डार में विद्यमान है।

लींबड़ी के ज्ञान-भण्डार में 'आचारांगनिर्युक्ति' 'सूत्रकृतांगवृत्ति' की प्रतियाँ विद्यमान हैं।

'श्री जिनभवन-जिनार्चा-पुस्तक-संघादिके सदप्तक्षेत्रे। वित्तव्ययस्य कर्ता दानार्थि जनान् समुद्धर्ता ॥५॥
श्रीमत्कालूनाम्ना निजकर कमलार्जितेन वित्तेन। चित्कोशे सिद्धांताःससूत्रका वृत्तिसंयुक्ताः ॥६॥
श्री मद्वाचकनायक महीसमुद्राभिधानमुखकमलात्। लब्ध्वा वरोपदेशं नंदंतु लेखिताः सुचिरं ॥७॥'

जै० सा० सं० खं० ३ अं० २ पृ० १६६. –'व्यवहारभाष्य' की प्रशस्ति। प्र० सं०भा० २ पृ० ५२ प्र० २०५ (पिंडनिर्युक्ति)

श्रेष्ठि नचीं
वि० सं० १५५७

●

वड़लीनगर निवासी प्राग्वाटज्ञातीय गांधी सोमा के पुत्र सवराज के पुत्र नचीराज, महिमराज और अपा ने, जो पत्तन में रहने लग गये थे वि० सं० १५५७ मार्गशिर शु० १४ शुक्रवार को 'श्री शतश्लोकवृत्ति' लिखवाई ।[१]

श्रेष्ठि जीवराज
वि० सं० १५८३

●

प्राग्वाटज्ञातीय परम श्रावक व्य० जीवराज की धर्मपत्नी जीवादेवी ने पुत्ररत्न छाछा सहित तपागच्छनायक श्री० म० परमगुरु श्रीमद् हेमविमलसूरि के विजयराज्य में वि० सं० १५८३ चैत्र शु० १४ रविवार को श्री 'अनुयोगद्वारसूत्र' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की प्रति लिखवायी ।[२]

श्राविका अनाई
वि० सं० १५६०

●

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में चंपकदुर्ग में प्राग्वाटज्ञातीय दोसी धरणा प्रसिद्ध श्रावक हो गया है । उसकी स्त्री का नाम अनाईदेवी था । श्राविका अनाईदेवी ने कुतुबपुरीयशाखीय श्रीमद् हर्षसंयमगणि के शिष्य पंडितवर राणा का उपदेश श्रवण करके वि० सं० १५६० आशोज शु० १३ बुधवार को श्री 'सूयगडांगसूत्र' (मूल) की प्रति लिखवाई । यह प्रति खंभात के श्री शांतिनाथ-प्राचीन-ताड़पत्रीय जैन-ज्ञानभंडार में विद्यमान है ।[३]

मं० सहसराज
वि० सं० १६१५

●

आगमगच्छाधिराज श्री विवेकरत्नसूरि के पट्टालंकार विद्यमान भट्टारक श्रीमद् संयमरत्नसूरि के सदुपदेश से श्री प्राग्वाटज्ञातीय श्रीचैत्रनिवासी मं० मणीराज के पुत्र मं० वेलराज की धर्मपत्नी खदकूदेवी के पुत्र मं० शिवराज की धर्मपत्नी चंपादेवी के पुत्र, अनेक प्रतिष्ठा एवं यात्रा और अन्य पुण्यकर्म करने वाले सुश्रावक मं० सहसराज ने अपने भ्राता मं० सुरराज, भगिनी कीकादेवी, धर्मपत्नी नाकूदेवी, पुत्री श्री बाई, वीरादेवी, पुरादेवी पुत्र महं० मांकराज और उसकी धर्मपत्नी अहंकारदेवी, धनादेवी, पौत्र वभूराज प्रमुख कुटुम्बसहित वि० सं० १६१५ कार्त्तिक कृ० ११ रविवार को श्री 'भगवतीसूत्र' नामक ग्रन्थ की प्रति लिखवाई ।[४]

१-प्र० सं० भा० २ पृ० ६० प्र० २३४ (शतश्लोकवृत्ति) २-प्र० सं० भा० २ पृ० ८६ प्र० ३१६ (अनुयोगद्वारसूत्र)
३-खं० शां० प्रा० ता० जै० ज्ञा० भं० पृ० ४३ ४-प्र० सं० भा० २ पृ० १११ प्र० ४१८ (भगवतीसूत्र)

वंशवृक्ष

मं० मणीराज

|

मं० वेलराज [खदकूदेवी]

|

मं० शिवराज [चंपादेवी]

|

मं० सहसराज [नाकूदेवी] | मं० सुरराज | कीकादेवी

मं० सहसराज [नाकूदेवी] →

श्रीबाई | वीरादेवी | पुरादेवी | मांकराज [१ अहंकारदेवी २ धनादेवी]

मांकराज [१ अहंकारदेवी २ धनादेवी] →

बभूराज

श्रेष्ठि पचकल
वि० सं० १६१६

प्राग्वाटज्ञातीय श्रीक्षेत्रनिवासी श्रे० जीवराज की धर्मपत्नी देसाई के पुत्र श्रे० मकरंद की धर्मपत्नी अमरदेवी के पुत्र श्रे० पचकल नामक सुश्रावक ने अपनी धर्मपत्नी लाडकुमारी, भ्राता श्रे० मंगल, कमल, हर्षराज प्रमुख कुडम्ब सहित सहोदरा मानकुमारी के श्रेयार्थ श्री आगमगच्छीय श्री विवेकरत्नसूरि के पट्टालंकार गच्छाधीश श्री संयमरत्नसूरि के सदुपदेश से ज्ञानवृद्धि के निमित्त वि० सं० १६१६ वैशाख शु० ३ रविवार को श्री 'विपाकसूत्र' नामक ग्रंथ की प्रति लिखवाई।*

वंशवृक्ष

जीवराज [देसाई]

|

मकरंद [अमरादेवी]

|

पचकल [लाडकुमारी] | मंगल | कमल | हर्षराज | मानकुमारी

---

*प्र० सं० भा० २ पृ० ११२ प्र० ४२३ (विपाकसूत्र)

श्रेष्ठि सूदा

विं० सं० १६२७

●

तपागच्छगगनमणिभट्टारक श्री ६ आनंदविमलसूरि के पट्टधर श्री ६ विजयदानसूरि के पट्टप्रभावक गौतमावतार परमगुरु गच्छाधिराज ६ हीरविजयसूरि के विजयराज्य में पं० श्रीमद् ज्ञानविमलगणि के सदुपदेश से पं० सूदा ने धर्मपत्नी श्रीदेवी, पुत्र शाह संग्राम, धनराज, देवचन्द्र, रूपचन्द्र, दीपचन्द्र आदि प्रमुख कुटुम्ब श्रेयोर्थ श्री ज्ञानभंडार की अभिवृद्धि के निमित्त श्री 'नंदीसूत्र' नामक धर्मग्रंथ की प्रति प्राग्वाटज्ञातीय वृद्धशाखीय नंदरबारनगर-निवासी ले० खीमराज द्वारा वि० सं० १६२७ मार्गशिर शु० ५ को नंदरबारनगर में लिखवाई । १

मं० धनजी

वि० सं० १६७४

●

प्राग्वाटज्ञातीय मं० देवजी के पुत्र मं० धनजी ने अपने वाचन के लिये वीरमग्रामनिवासी पं० विमलसिंह से वि० सं० १६७४ भाद्रपद कृष्णा ७ गुरुवार को श्री 'राजप्रश्नीयसूत्र' नामक ग्रन्थ की प्रति लिखवायी ।२

श्रेष्ठि देवराज और उसका पुत्र विमलदास

वि० सं० १६८०

●

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में धवल्लकपुर में प्राग्वाटज्ञातीय देवराज नामक एक धर्मप्रवृत्ति श्रावक अपने पुत्र विमलदास के सहित रहता था । वह श्रीमद् पार्श्वचन्द्रसूरिगच्छ का अनुयायी था । दोनों पिता और पुत्र बड़े ही श्रीमन्त और शास्त्रों का अनुशीलन करने वाले थे । इनकी धर्मप्रियता से प्रसन्न होकर ब्रह्मर्षि जिनको विनयदेवसूरि भी कहते हैं ने वि० सं० १६८० चैत्र कृ० ११ रविवार को 'अढारपापस्थानपरिहारभाषा' नामक ग्रन्थ देवराज के पुत्र विमलदास के पठनार्थ लिखकर पूर्ण किया था ।

श्रीमद् रत्नसिंहसूरि के समय में श्रीमद् समरचन्द्रशिष्य नारायण ने 'श्रेणिकरास' सं० १७०६ फाल्गुण कृ० ११ सोमवार को आर्या सोमा और देवराज के पुत्र विमलदास के पठनार्थ लिख कर पूर्ण किया था ।३

श्राविका सोनी

वि० सं० १७२१

●

पितापक्ष से जूनागढ़निवासी प्राग्वाटज्ञातीय वृद्ध सं० सोनी श्रीपाल के पुत्र सो० खीमजी के पुत्र सो० रामजी के पुत्र सो० मनजी के पुत्र सो० पासवीर और मातृपक्ष से स्तम्भतीर्थवासी तपापक्षीय श्री हीरविजयसूरि के

१-प्र० सं० भा० २ पृ० १२३ प्र० ४७० (नंदीसूत्र) २-प्र० सं० भा० २ पृ० १८३ प्र० ७२४ (श्री राजप्रश्नीयसूत्र)
३-जै० गु० क० भा० १ पृ० १५६, ५१६

राज्य में सो० सोमसिंह भार्या बाई कर्मावती की पुत्री बाई बछाई की पुत्री सोनी ने कर्मों का क्षय करने के लिये तथा मोक्ष के अर्थ पासवीर, सा० राघवजी, धनुआ की सांनिध्यता में ४५ आगमों का भण्डार वि० सं० १७२१ पौष कृ० १० को संस्थापित करवाया।[१]

श्रेष्ठि रामजी
वि० सं० १७२९

तपागच्छीय श्रीमद् विजयदेवसूरि की सम्प्रदाय के वाचक श्रीमद् सौभाग्यविजयजी ने वि० सं० १७२९ में अणहिलपुरपत्तन में चातुर्मास किया था। उनकी निश्रा में पण्डित हर्षविजय भी थे। पत्तन में अनेक गर्भश्रीमंत रहते थे। उनमें प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० विसुआ का पुत्र रामजी धनी, समकितधारी, विनयवंत, दानी, धर्मधुरन्धर, श्रावकव्रतधारी और परम साधुभक्त था। श्रे० रामजी के आग्रह से श्रीमद् विजयदेवसूरिशिष्य साधुविजयशिष्य पं० हर्षविजयजी ने 'चैत्यपरिपाटि स्त०' ९ ढाल में रचा।[२]

श्रेष्ठि रंगजी
वि० सं० १७३६

बुर्हानपुर में प्राग्वाटज्ञातीय वृद्धशाखीय रंगजी एक बड़े प्रसिद्ध श्रावक हो गये हैं। रंगजी ने श्रीमच्तीतीर्थ, श्री फलवर्धितीर्थ (फलौदी), श्री राणकपुरतीर्थ, श्री वरकाणातीर्थ, श्री अर्बुदाचलतीर्थ, श्री संखेश्वरपार्श्वनाथतीर्थ, श्री शत्रुंजयतीर्थ की संघयात्रायें कीं और अपनी भुजाओं के बल से न्यायपूर्वक उपार्जित द्रव्य का अति ही सद्-व्यय किया तथा वि० सं० १७३६ भाद्रपद शु० सप्तमी मंगलवार को भाग्यनगर में पं० श्री हर्षविजयगणि के शिष्य पं० प्रीतिविजयगणि के द्वारा अपने पुत्ररत्न चतुरशिरोमणि औदार्य, धैर्य, गाम्भीर्यादि गुणों से सुशोभित संघवी श्री गोडीदास के वाचन के अर्थ श्री 'माधवानलचतुष्पदी' नामक ग्रंथ की प्रति लिखवाई।[३]

श्रेष्ठि लहूजी
वि० सं० १७४३

ये अहमदाबाद में कालू संघवी की पोल में रहते थे। ये वृद्धशाखीय प्राग्वाटज्ञातीय थे। वि० सं० १७४३ श्रा० कृ० १३ गुरु को इनके पुत्र श्रे० वीरा ने 'अठारह-पापस्थानक' सज्झाय लिखवाई।[४]

१–प्र० सं० भा० २ पृ० २३० प्र० ८५६ (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र) और पृ० २३१ प्र० ८७० (प्रश्नव्याकरण)
२–जै० गु० क० भा० ३ खं० २ पृ० १२७१.
३–प्र० सं० भा० २ पृ० २५१ प्र० ९४८ (माधवानलचतुष्पदी)
४–जै० गु० क० भा० ३ खं० २ पृ० ११९८.

विभिन्न प्रान्तों में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें

भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के कई नगर एवं ग्रामों में विनिर्मित जिनालयों में विराजमान प्रतिमाओं में प्रा० ज्ञा० सद्गृहस्थों द्वारा प्रतिष्ठित एवं संस्थापित प्रतिमायें बहुत संख्या में हैं। उनके प्रतिष्ठापक प्रा० ज्ञा० श्रावक श्रेष्ठियों का परिचय देना इतिहास के उद्देश्य के भीतर आ जाता है; अतः प्रतिमा के प्रा० ज्ञा० प्रतिष्ठापक का नाम, गोत्र, निवास, पूर्वज, कुटुम्बीजन तथा किन भगवान् की प्रतिमा, किस संवत् में, किस के श्रेयोर्थ, किन आचार्य के द्वारा, किन २ परिजनों की साक्षी एवं साथ में प्रतिष्ठित करवाई का संक्षिप्त परिचय प्रांत एवं ग्राम-नगर के क्रम से निम्न प्रकार दिया जाता है।

राजस्थान-प्रान्त

उदयपुर (मेदपाट)

श्री शीतलनाथ-जिनालय में पंचतीर्थियाँ और मूर्त्तियाँ

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १३६६ वै० शु० १	......	भावदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० छाड़ा ने स्वस्त्री वाल्हू के सहित
सं० १४२२ वै० शु० ११ बुध०	पार्श्वनाथ	कछोलीगच्छीय रत्नप्रभसूरि	कछोलीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० तिहुण स्त्री चाहिणीदेवी के पुत्र सेगा ने स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ
सं० १४२३ फा० शु० ८ सोम०	......	शालीभद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हरपाल भार्या आल्हणदेवी के पुत्र विजयपाल ने माता-पिता के श्रेयोर्थ
सं० १४५७ आषाढ़ शु० ५ गुरु०	......	साधु-पूर्णिमा धर्मतिलकसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० छाहड़ स्त्री मोखलदेवी के पुत्र त्रिभुवन ने पिता-माता के श्रेयोर्थ
सं० १४७८	चन्द्रप्रभ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे०नरदेव स्त्री गांगी के पुत्र श्रे० झाबट ने स्वस्त्री कहूदेवी, पुत्र वरणादिसहित पितृव्य चांपा के श्रेयोर्थ.
सं० १४८१ वै० शु० २ शनि०	,,	मड़ाहड़गच्छीय- उदयप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० काला स्त्री कील्हणदेवी पुत्र सरवण ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४८३ द्वि० वै० कृ० ५ गुरु०	सुव्रतस्वामि	अंचलगच्छीय- जयकीर्त्तिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खीमसिंह स्त्री सारूदेवी के पुत्र जसराज ने पुत्र वीका, आशा के सहित.
सं० १४८६	कुंथुनाथ	तपा. सोमसुन्दर- सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कान्हा स्त्री उमादेवी के पुत्र सूरा ने स्वस्त्री नीणदेवी, भ्रात् चांपा, पुत्र सादा, पेथा, पन्ना के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै०ले०सं० भा० २ ले० १०४७, १०५३ (प्रा० ले० सं० ले० ७५), १०५४, १०६१, १०६६, १०६६, १०७१, १०६७।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४८९ ज्ये० कृ० ११	पार्श्वनाथ-चौवीशी	तपा. सोमसुन्दर-सूरि	वीसलनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सूरा स्त्री पोमादेवी के पुत्र आशराज ने स्वस्त्री रूपिणी, पुत्र राउल,माणिकलाल,जोगा आदि के सहित स्वभ्राता गोला और स्वपुत्र सारंग के श्रेयोर्थ.
सं० १४९२ ज्ये० कृ० ११	नमिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० अरसिंह स्त्री आल्हणदेवी के पुत्र चाचा ने स्वभार्या चाहणदेवी, पुत्र तोलराज, वाला, सुहड़, राणा, पांचा आदि के सहित स्वपुत्र डोसा के श्रेयोर्थ.
सं० १५०८ ज्ये० शु० १३ बुध०	वर्द्धमान	तपा-रत्नशेखर सूरि	कूणीगिरि (कूणगिर) वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सोमराज स्त्री धर्मिणी के पुत्र मालराज ने लालचन्द्र भार्या गेलूदेवी, रंभादेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०९ वै० शु० ३	आदिनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० मेघराज भार्या हीरादेवी के पुत्र आशराज डोडा ने भार्या केल्हू, आल्हा पुत्र शिखर आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१७ पौ० कृ० ८ रवि०	शांतिनाथ	,,	अहमदाबादवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० डूंगर स्त्री सुहासिनी के पुत्र लक्ष्मणसिंह ने स्वस्त्री सोनादेवी, पुत्र नागराज आदि के सहित स्वपिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१७ फा० शु० ११ शनि०	विमलनाथ-चौवीशी	त० लक्ष्मी-सागरसूरि	सीणूरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० चूड़ा स्त्री गउरी के पुत्र देल्हा ने स्वस्त्री रूपिणी पुत्र गुरु आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ माघ शु० ६ रवि०	आदिनाथ	,,	आगमियाग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० घोघा स्त्री जमलू के पुत्र श्रे० रीड़ी आदि वाछलदेवी की पुत्री हलूदेवी ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३ माघ शु० १३ सोम०	नमिनाथ	अंचलगच्छीय-जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० शा० नाऊ स्त्री हंसादेवी के पुत्र ठाकुरसिंह, वरसिंह के भ्राता वीशराज ने स्वभार्या सोमादेवी, पुत्र जीवा के सहित.
सं० १५४२ फा० कृ० २	धर्मनाथ	तपा-लक्ष्मी-सागरसूरि	जालोरगढ़वासी प्रा०ज्ञा० शा० पोखर स्त्री पोमादेवी के पुत्र जसराज ने स्वस्त्री जसमादेवी, भ्राता लाखादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६६ फा० कृ० ६ गुरु०	पार्श्वनाथ	तपा०-नंद-कल्याणसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० तोलाराम स्त्री रुक्मिणी के पुत्र गांगा ने स्वस्त्री पीवूदेवी, पुत्र लाला, लोला, लाखादि के सहित.

जै० ले० सं० भा० २ ले० १०२६, १०७६, १०८४, १०८५, १०३०, १०६१, १०६२, १०६७, ११००, ११०२,

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५६६ वै० कृ० १३ रवि०	धर्मनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	प्रा० ज्ञा० माणकचन्द्र स्त्री रत्नकूदेवी के पुत्र पार्श्व ने स्वस्त्री ईन्द्रमती, पुत्र नत्थमल, सोनपाल आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६६ ज्ये० शु० २	श्रेयांसनाथ	तपा० विजयदानसूरि	उथायपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० हापा स्त्री दानी के पुत्र शा० सरवण ने स्वस्त्री मनादेवी, भ्राता शा० सामंत स्त्री कर्मादेवी पुत्र शा० सूरा, सीमा, खेता समस्त परिवारके सहित स्वश्रेयोर्थ.
			श्री धर्मशाला में
सं १४७७ मार्ग कृ० ४ रवि०	शांतिनाथ	पू० प० पद्माकरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नरसिंह की स्त्री सारूदेवी के पुत्र रामचन्द्र ने स्वपिता के श्रेयोर्थ.
			श्री गौड़ी-पार्श्वनाथ-जिनालय में धातु-प्रतिमायें
सं० १४२७ ज्ये० कृ० १	चंद्रप्रभ	मलधारी मुनिशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० दउलसिंह ने पिता ठ० पूनसिंह ठ० भ्रीमलदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १४२७ ज्ये० कृ० १०	आदिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० ठ० गोवल धीणिग ने ठ० पूनसिंह ठ० भ्रीमलदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १४६६ वै० शु० ३ सोम०	आदिनाथ	कोरंटगच्छीय-नन्नसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० शोभित भा० लाऊलदेवी के पुत्र भादा ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५०१ माघ कृ० ५ गुरु०	सुमतिनाथ	तपा० मुनिसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धणसिंह भा० भ्रीमलदेवी के पुत्र लाखा भा० लाखणदेवी के पुत्र खीमचन्द्र ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०५	पद्मप्रभ	तपा० जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० माला की स्त्री भादा के पुत्र गोपीचन्द्र ने भा० सातलदेवी, पुत्र मान्हा, सीहादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०६ माघ शु० १० शनि०	आदिनाथ	सा० पूर्णिमा-पुण्यचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मांडण की स्त्री सलखूदेवी के पुत्र भीमचन्द्र ने स्वभा० स्रलेश्री सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१० फा० कृ० ३ शुक्र०	विमलनाथ	आगमग०-सिंहदत्तसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्ना भा० अमकूदेवी की पुत्री देमई ने स्वपति के श्रेयोर्थ.
सं० १५१२ का० शु० १ रवि०	शान्तिनाथ	कालिकाचार्य-सं० वीरसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० विमल के पुत्र मं० माकड़ की स्त्री धारूदेवी के पुत्र पोपा, राघव ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३६ आषाढ़ शु० ३	सुमतिनाथ	कालिकाचार्य-सं० भावदेवसूरि	तीनाविगोत्रीय मं० माकड़ की स्त्री धारूदेवी के पुत्र राघव ने स्वस्त्री पूरी, पुत्र धरणा भा० जेठीदेवी, पौत्र सहसकिरण, मांगा भार्या पूतली, मनीदेवी के श्रेयोर्थ.

जै० ले० सं० भा० २ ले० ११०२, ११०४ । प्रा० ले० सं० १ ले० ११७, ७८, ७६, १०१, १८०, २१५, २४६, २६०, २७२, ४७८.

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५५७ ज्ये० शु० १०	विमलनाथ	मड़ा० रत्नपुरीय गुणचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० साजण स्त्री मान्हूदेवी के पुत्र डगड़ा के भ्राता देवराज ने स्वश्रेयोर्थ स्वस्त्री देवलदेवी के सहित.
सं० १८०८ ज्ये० शु० ६ बुध०	पार्श्वनाथ	तपा० विजयधर्मसूरि	उदयपुरवासी भण्डारी जीवनदास की स्त्री मटकूदेवी ने.

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (सेठों की वाड़ी) पंचतीर्थी-प्रतिमायें

सं० १६२८ वै० शु० ११ बुध०	धर्मनाथ-पंचतीर्थी	तपा० हीर-विजयसूरि	नारदपुरीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० टीला के पुत्र चूड़ा ने स्वभार्या पानदेवी, पुत्र लाधु, हीरा आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ

श्रीऋषभदेव-जिनालय में (सेठों की हवेली के पास)

सं० १५२६ वै० कृ० ४ शुक्र०	कुंथुनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	झाड़ोलीग्रामवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० चांपसिंह की स्त्री पोमादेवी के पुत्र साँगा ने स्वभा० दई, पुत्र करण, भ्राता सहसमल आदि के सहित स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ

करेड़ा (उदयपुर-राज्य) के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १३३४ वै० शु० ११ शुक्र०	शान्तिनाथ-प्रतिमा	......	प्रा०ज्ञा० अंचलगच्छानुयायी महं० साजण, महं० तेजपाल के पुत्र झाँझण ने पुत्र महं० मण्डलिक, महं० मालराज, महं० देवीसिंह, महं० प्रमत्तसिंह के सहित स्वमाता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १३८१ ज्ये० कृ० ८	पार्श्वनाथ	तपा० सोम-तिलकसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धीना की स्त्री देवलदेवी के पुत्र चडूजा ने स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ
सं० १४०८ वै० शु० ५		सैद्धान्तिक माणिकचंद्रसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० रीस्तरा(?), पद्म, साहड़, साकल, श्रे० देवसिंह ने
सं० १४८५ ज्ये० शु० १३	मुनिसुव्रत	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कालू की स्त्री कामलदेवी के पुत्र खेतमल ने स्वभा० हरमादेवी के सहित*
१५०६ माघ शु० ५ शुक्र०	वासुपूज्य-पंचतीर्थी	अंचल० जय-केसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० कर्मट की स्त्री माजू के पुत्र उधरण ने स्वस्त्री सोहिनीदेवी, पुत्र आल्हा, वीसा, नीसा के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५२५ मार्ग० शु० ६	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वाघा की स्त्री गाऊदेवी के पुत्र माला ने स्वभा० आल्हूदेवी, पुत्र पर्वत भा० नाई आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ

जै० ले० सं० भा० २ ले० ११२०, ११९६, १८६१, १६०२, १६१६, १६२४, १६२७, १६११, १६३८.
*प्रा० ले० सं० भा० ले० ३४.

जयपुर

●

श्री सुपार्श्वनाथ-पंचायती-जिनालय में पंचतीर्थियाँ

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४३७ वै० कृ० ११ सोम०	पार्श्वनाथ	रत्नप्रभसूरी	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोहा स्त्री ललितादेवी के पुत्र मुञ्ज ने स्वपिता-माता एवं ' ाता के श्रेयोर्थ.
सं० १५०२ वै० कृ० ५	कुंथुनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लाखा भार्या लाखणदेवी के पुत्र सामन्त ने स्वभार्या शृंगारदेवी, पु० पाल्हा,रत्ना, डीडा आदि के सहित.
सं० १५३० माघ कृ० २ शुक्र०	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	पालणपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नरसिंह भा० नामलदेवी के पुत्र कान्हा ने स्वस्त्री सांवलदेवी, पु० खीमा, अखु, माणिक भार्या सीचू के श्रेयोर्थ.
सं० १५३० माघ कृ० १०बुध०	मुनिसुव्रत	,,	प्रा० ज्ञा० शा० शिवराज भार्या संपूरी के पुत्र पान्हा भार्या पाल्हणदेवी के पुत्र नाथा ने भ्रातृ ठाकुरसिंह के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३४ फा० शु० २	शीतलनाथ	,,	वासानिवासी प्रा० ज्ञा० व्य० आल्हा भार्या देसू के पुत्र पर्वत ने स्वभार्या मर्मी आदि प्रमुख परिवार के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६६ फा० शु० ३ सोम०	आदिनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जीवा भार्या रंगीदेवी के पुत्ररत्न डाहीआ, भ्राता श्रीवंत ने स्वभार्या रत्नादेवी, द्वि० दाडिमदेवी, पुत्र खीमा, भीमादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५८७ पौ० कृ० ६ रवि०	चन्द्रप्रभ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० काका भार्या 'यांकदेवी के पुत्र पदिराज भार्या वरधांगदेवी ने स्वश्रेयोर्थ.

श्री सुमतिनाथ-जिनालय में पंचतीर्थियाँ

सं० १५१७ चै० शु० १३ गुरु०	पार्श्वनाथ	तपा० मुनिसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लक्ष्मण की स्त्री साधूदेवी के पुत्र श्रे० गोवल ने स्वभार्या राजूदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ

जै० ले० सं० भा० २ ले० ११३६ ११४६, ११६०, ११६१, ११६४, ११७०, ११७२, ११८५।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५३२ वै० कृ० २ शुक्र०	संभवनाथ-चौवीशी	पूर्णि:पुण्यरत्न-सूरि	प्रा० ज्ञा० व्य० मामल भा० कांईदेवी के पुत्र पाता भा० वाऊंदवी के पुत्र देवराज ने भार्या देवलदेवी प्र० भ्रातृ सामंत भा० लाड़ी पुत्र समधर भा० अजीदेवी सु० मांडण भोजराज, राणा, द्वि० भ्राता ऊदा भा० वाई पु० साईआ भा० सहिजादि सहित
सं० १५६७ पौ० कृ० ५ शुक्र०	आदिनाथ	जिनसाधुसूरि	साहूआलवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वीरचन्द्र भार्या भाणदेवी, भरमादेवी स्वश्रेयोर्थ.

श्री नवीन आदिनाथ-जिनालय में पंचतीर्थियाँ

सं० १५७० माघ शु०१३मंग०	आदिनाथ	नागेन्द्रगच्छीय हेमसिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० शा० शिवराज भा० सहजलदेवी के पुत्र हर्षचंद्र, रूपचन्द्र ने हर्षचन्द्र भार्या लाडकुंवर, पुत्र, माता, पिता, भृत्य के श्रेयोर्थ.
सं० १६२८ फा० शु० ७ बुध०	धर्मनाथ	हीरविजयसूरि	कुमरगिरिवासी अंबाईगोत्रीय वृ० शाखीय प्रा० ज्ञा० श्रे० खीमराज भार्या कनकदेवी पुत्र ठाकुरसिंह भा० सोभागदेवी, पुत्र देवर्ण परिवारसहित स्वश्रेयोर्थ.

जोधपुर

●

श्री महावीर-जिनालय में धातु-प्रतिमायें (जूनीमण्डी)

सं० १५०१	अजितनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० डोडा की स्त्री राणी के पुत्र सुपाकने स्वस्त्री सरस्वती, पुत्र साजण आदि के सहित
सं० १५६३ माघ शु० १५ गुरु०	सुमतिनाथ	पूर्णिमागच्छीय ...सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कला की स्त्री भमणादेवी के पुत्र सदा के पुत्र धना ने स्वस्त्री आदि के सहित

धर्मनाथ-जिनालय में

सं० १५०४ वै० शु० ३	मुनिसुव्रत	तपा० जयचंद्र-सूरि	धारवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भण्डारी शाणी के पुत्र खीमसिंह साया ने स्व-परिजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ

राजवैद्य भ० उदयचन्द्रजी के गृहजिनालय में

सं० १५१६ वै० शु०	संभवनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मोखसिंह की स्त्री टमकूदेवी के पुत्र जाणा हरखू ने पुत्र पुंजारण स्त्री पाहुदेवी के पुत्र जिनदत्त के सहित

जै० ले० सं० भा० २ ले० ११६८, ११६२, १२१३, १२१४. जै० ले० सं० भा० १ ले० ५८५, ५६५, ६२१
जै० ले० सं० भा० २ ले० १८८०,

जसोल (जोधपुर-राज्य) के जिनालय में पंचतीर्थी

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१६ माघ शु० शुक्र०	कुंथुनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मीचत की स्त्री नासलदेवी के पुत्र सूचा ने स्वभा० चांददेवी, मान्हीदेवी, पुत्र मेरा, तोलचन्द्र के सहित स्वश्रेयोर्थ

वाडमेर (जोधपुर-राज्य) के यति इन्द्रचन्द्रजी के उपाश्रय में

सं० १५१४	सुमतिनाथ	तपा०रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रून्हा ने स्त्री वर्जू, पुत्र वीरा, माणिक, वत्सादि के सहित पितृव्य शा० चांपा के श्रेयोर्थ.

मेडता (जोधपुर-राज्य) के श्री वासुपूज्य-जिनालयमें

सं० १५३२ ज्ये० कृ० १३ बुध०	शांतिनाथ	बृ०तपा०जिनरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० आशाधर ने स्त्री गांगी, पुत्र मदन, दमा, जिनदास, जीवराज पुत्र-पौत्रादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

धर्मनाथ-जिनालय में

सं० १५५६ चै० शु० ७ सोम०	चन्द्रप्रभ	अंचलगच्छीय-वर्द्धमानगणि	प्रा० ज्ञा० श्राविका संलखणदेवी के पति ने अपने पुत्र लोला, श्रे० पीमा ने स्त्री खेवलदेवी के सहित आत्मश्रेयोर्थ.

श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १५१० ज्ये० शु० ३	मुनिसुव्रत	तपा०रत्नशेखरसूरि	पीपलियावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वीरा ने स्त्री वीरदेवी के पुत्र डूङ्गर, भ्रातृ खेतसिंह, सहसा, समरदेवी (बहिन), धारकमी(?) भार्या जासलि तथा भ्राता कर्मसिंह के सहित.
सं० १५३२ ज्ये० शु० ३ बुध०	सुविधिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मही स्त्री राणी के पुत्र हीरा की स्त्री भर्मीनामा ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५२ माघ शु० ५	आदिनाथ	कमलकलशसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पुंजा स्त्री रकम के पुत्र सोमराज ने स्वस्त्री गौरी पुत्र हर्षादि के सहित.

नागौर (जोधपुर-राज्य) के श्री आदिनाथ-जिनालय में पंचतीर्थियाँ

सं० १४८५ ज्ये० शु० ७ मंगल०	संभवनाथ	पूर्णिमापक्षीय सर्वानंदसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० साढ़ा स्त्री भादी के पुत्र सहसा स्त्री सीतादेवी के पुत्र पान्हा ने स्वश्रेयोर्थ
सं० १५०७ का० शु० ११ शुक्र०	संभवनाथ	उपसगच्छीय ककसूरि	प्रा० ज्ञा० कोठारी लाखा भा० लाखणदेवी के पुत्र पर्वत ने पुत्र मोला, डाहा, नाना, डूङ्गर के सहित

जै० ले० सं० भा० २ ले० १८८४। भा० १ ले० ७४२, ७५५, ७६२, ७७४, ७७७, ७७६। भा० २ ले० १२४१, १२५०।

प्र० विक्रम संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१० वै० शु० १३ गुरु०	धर्मनाथ	तपा० रत्नसागर-सूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० गोगन भा० सदू के पुत्र जसराज ने स्वभा० राणी, भ्रातृ जामा भार्या हीरू आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५१२ मार्ग० शु० १५	आदिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोधा भार्या फसीदेवी के पुत्र नरदेव, सहसा, डाटा, भ्राता धीरज ने स्वभार्या तारादेवी, पुत्र खीमादि के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५१६ वै० कृ० ११	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	टोंवाचीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० केशव भा० भोलीदेवी के पुत्र लाडण ने स्वभार्या मृगादेवी, पुत्र जसवीर आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५२१ ज्ये० शु० ४	चन्द्रप्रभ-चौवीशी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	मण्डपदुर्ग में प्रा०ज्ञा० सं० अजन भा० टबकूदेवी के पुत्र सं० वस्तीमल भा० रामादेवी के पुत्र सं० चाहा ने स्वभा० जीविणी पुत्र सं० सोभाग, आड़ादि के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५२१ माघ शु० १३ गुरु०	नेमिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० नींबा के पुत्र खीमराज ने स्वभा० डूलीकुमारी पुत्र भीमराज, हेमराज, पाल्हा के सहित
सं० १५२४ वै० शु० ३ सोम०	शीतलनाथ	अंचलगच्छीय श्रीसूरि	जयतलकोटवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० आका भा० ललितादेवी के पुत्र धारा ने स्वभा० वीजलदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५२७	श्रेयांसनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० प्रथम भा० पाल्हणदेवी के पुत्र सं० पर्वत भा० चांपादेवी के पुत्र शा० नीसल ने भा० नांईदेवी के श्रेयोर्थ
सं० १५३० माघ शु० ४	शांतिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० रादा भा० आघू के पुत्र सिरोहीवासी शा० मण्डन ने भा० माणिकदेवी, पुत्र लक्ष्मणादि के सहित
सं० १६४३ फा० शु० ११	आदिनाथ	तपा० विजय-सेनसूरि	अहमदाबादवासी प्रा०ज्ञा० बाई कोड़कीदेवी ने पुत्री राजलदेवी (सेठी मूला की स्त्री) के सहित

श्री आदिनाथ-जिनालय में (दफ्तरी-मोहल्ला)

सं० १५३४	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	वीशनगर में प्रा० ज्ञा० श्रे० सोमा भा० देऊदेवी के पुत्र भोटा ने स्वभा० वानरीदेवी, भ्रातृ भोजराज आदि कुटुम्बी-जनों के सहित.

श्री सुमतिनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५२७ पौ० कृ० ५ शुक्र०	कुन्थुनाथ	उपकेशगच्छी०-सिद्धसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हरराज भार्या अमरीदेवी के पुत्र समधर ने स्वभा० नाई आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

: जै० ले० सं० भा० २ ले० १२५८, १२६०, १२६८, १३१४, १२७२, १२७३, १२७६, १२८३, १३०८, १३१६ १३२२।

श्री शांतिनाथ-जिनालय में (घोड़ावतों की पोल)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५४५ ज्येo कृ० ११	पार्श्वनाथ	श्रीसूरि	वीरवाड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्नचंद्र भा० माघूदेवी के ... भीमराज ने स्वभा० हेमवती आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

वीकानेर

●

श्री शंखेश्वर-पार्श्वनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १४६७ ज्येo शु० २ सोम०	श्रेयांसनाथ	मुनिप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जइता भा० वरजूदवी के पुत्र लुंठा स्वश्रेयोर्थ.

श्री सीमंधरस्वामि-जिनालय में (भांडासर)

सं० १५७६	संभवनाथ	तपा० इन्द्रनंदिसूरि	पत्तन में प्रा० ज्ञा० श्रे० गोगा ने स्वभा० राणीदेवी, ... वरसिंह भा० वींजूदेवी, भ्रातृ अमरसिंह, नरसिंह, ...

चूरु (वीकानेर-राज्य) के श्री शांतिनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५३० फा० कृ० २ रवि०	धर्मनाथ	कच्छोलीवाल-गच्छीय विद्यासागरसूरि	प्रा०ज्ञा० शा० कर्मा भा० कुनिगदेवी पुत्र दोला ने भा० देल्हादेवी, चोलादेवी, भ्रातृ भुंणा के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जैसलमेर

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (दुर्ग)

सं० १५१८	शीतलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहजा की स्त्री वजूदेवी के पुत्र धरणा ने स्वस्त्री कुंवरीबाई, ज्येष्ठ भ्राता जावड़, नाकर प्रमुख परि० के सहित अहमदाबाद में कालूपुरवासी

श्रीसंभवनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५१२ वै० कृ० ८	कुंथुनाथ-चौबीशी	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हापा की स्त्री रूपादेवी के पुत्र राणा ने स्वभार्या राजूदेवी, पुत्र पेथा आदि परिजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० ले० सं० भा० २ ले० १३२७, १३३१, १३५४, १३६१। भा० ३ ले० २१२५, २१५२।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५६१ वै० कृ० ६ शुक्र०	सुमतिनाथ	आनंदविमल-सूरि	सागवाड़ावासी प्रा०ज्ञा० वृ० शा० मंत्री वीसा ने स्वभा० टीबूदेवी, पुत्र मं० विरसा, लीला,देढ़ा और चांदा प्रमुख परिजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.
			श्री अष्टापद-जिनालय में
सं० १५३३ पौष कृ० १० गुरु०	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गांधी हीराचन्द्र की स्त्री हेमादेवी के पुत्र चाहित ने स्वभा० लालीबाई, पुत्र समरसिंह, पुत्रवधू लाड़-कुमारी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
			श्री सुपार्श्वनाथ-जिनालय में पञ्चतीर्थी
सं० १५३३ पौष कृ० १० गुरु०	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	वीशलनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० लूणा की स्त्री लूणादेवी के पुत्र राजमल ने स्वभार्या नीणादेवी पुत्र शकुनराज.
			श्री चन्द्रप्रभस्वामि-जिनालय में
सं० १३४६	आदिनाथ	श्री उव० श्री सिद्धसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पहुदेव की स्त्री देवश्री के श्रेयार्थ उसके पुत्र बुल्हर, झांझण और कागड़ ने.
सं० १३५५	,,	श्री परमचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० श्रीकुमार के पुत्र ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १३६८ माघ शु० ६ बुध०	पार्श्वनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जगसिंह की प्रथम स्त्री खेतुदेवी के श्रेयोर्थ द्वितीया स्त्री जासलदेवी के पुत्र अलक ने.
सं० १३८४ माघ कृ० ८ गुरु०	महावीर	शालिकर्मा तिलक-सूरि	प्रा० ज्ञा० पिता श्रे० आशचन्द्र, माता पारुअणदेवी के श्रेयोर्थ पुत्र नन सामा ने.
सं० १३६१ माघ कृ० ११ शनि०	पार्श्वनाथ	जिनसिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जगधर की स्त्री हांसी बहिन के पुत्र गोसल ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४४५ फा० कृ० १० रवि०	मुनिसुव्रत	वृ० गच्छीय-रत्नाकरसूरि	प्रा०ज्ञा० श्राविका साहूदेवी के पुत्र धीणा ने भ्राता धारा के श्रेयोर्थ.
सं० १४८६ माघ शु० ४ शनि०	महावीर	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा०ज्ञा० मं० दूदा की स्त्री श्रीमलदेवी के पुत्र सं० कान्हा ने स्वभा० वावूदेवी, पुत्र राजमल के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४६० वै० शु० ६ शनि०	चंद्रप्रभ	साधु० पू०-गच्छीय हीराणंदसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पांदा के पुत्र वाहड़ ने.
सं० १४६६ फा० कृ० ८	संभवनाथ	तपा० सोम-सुन्दरसूरि के उपदेश से सोमचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० मांडण की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र पासा की भा० वर्जूदेवी के पुत्र वस्तिमल ने काका कोला, काकी मटकूदेवी और स्वाभार्या अधूदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० ले० सं० भा० ३ ले० २१५१, २१७३, २१६४, २२३८, २२४०, २२४६, २२५०, २२५८, २२७६, २२६८, २३०६, २३१५।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५०३ आषाढ़ कृ० १३ सोम०	पद्मप्रभ (२)	जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मांजू के पुत्र श्रे० खीमा ने भ्रा० रणमल भा० केतश्री के सहित दो विंब.
सं० १५११ ज्ये० शु० ५	आदिनाथ	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे मांपर की स्त्री भूंनादेवी के पुत्र समर ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१६ मार्ग शु० १	संभवनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० नरसिंह के पुत्र श्रे० राघव की पत्नी के पुत्र कर्मसिंह की स्त्री लींबीबाई की पुत्री श्रीलवी नामा ने भ्राता ह (?) भ्रा, भ्रातृज महिराज, भरथ, राजमल के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१८ माघ शु० १३ गुरु०	चन्द्रप्रभ	पूर्णि० भीमपल्लीय जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मूंजा भा० लाछू के पुत्र वाछा ने (वत्सराज) स्वभार्या (... त्सादेवी), पुत्र मेलराम, कुरपाल के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५३४ चै० कृ० १०	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	सूरतवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० धर्मचन्द्र की स्त्री राजकुमारी के पुत्र धणवीर स्त्री भूरी के पुत्र महराज ने कुटुम्बसहित

श्री शीतलनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १३३३ ज्ये० शु० १३ शुक्र०	....	....	प्रा०ज्ञा० व्य० पुण्यपाल के पुत्र लूणवयण ने स्वपिता के श्रेयोर्थ
सं० १३४६ चै० शु० १.	चौवीशी	....	प्रा० ज्ञा० शा० गेल्हा
सं० १५३५ माघ कृ० ६ शनि०	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	ककरावासी प्रा०ज्ञा० श्रे० वस्ति . ल की स्त्री वील्हणदेवी के पुत्र पूंजा ने स्वभा० सोभागदेवी, पुत्र पर्वत, भ्रा० लाषा, धूता आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ

श्री महावीर-जिनालय में

सं० १५०८	सुमतिनाथ	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रूदा की स्त्री उली के पुत्र रणसिंह ने स्वभा० पूरी भ्रा० धणसिंह आदि परिजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ

श्री सुपार्श्व-जिनालय में

सं० १४६३ आषाढ़ शु० १० बुध०	पार्श्वनाथ	मड़ाहड़गच्छीय श्रीधनचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हेमराज की स्त्री भा० हीरादेवी के पुत्र अजयराज ने श्रेयोर्थ

जै० ले० सं० भा० ३ ले० २३१८-२३१६, २३३०, २३३६, २३४२, २३५३, २३८७, २३८८, २३६५, २४१६, २१७८ ।

श्रेष्ठि थीरूशाह के जिनालय में चौवीशी

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५७६ वै० शु० १२ रवि०	आदिनाथ-चौवीशी	साधु पू० मुनिचन्द्रसूरि	चंपकनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० शिवराज ने स्वस्त्री धर्मिणी, पुत्र हंसराज भा० हांसलदेवी, भ्रातृ वच्छराज भा० माणकदेवी पुत्र रवजी भा० हर्षादेवी पुत्र मूलराज के सहित स्वश्रेयोर्थ

श्रे० चांदमलजी के जिनालय में

सं० १५३७ वै० शु० ५ बुध०	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० पत्तनवासी श्रे० सहसा की स्त्री संपूरी ने पुत्र मेलचन्द्र भा० फदकूदेवी, द्वि० पुत्र सिंहराज आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५१३	नमिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० केल्हा की स्त्री कील्हणदेवी के पुत्र नाना चंपालाल ने स्वभा० गुरीदेवी, पुत्र मण्डन आदि के सहित स्वपितृव्य मं० कान्हा के श्रेयोर्थ

अर्बुदप्रदेश (गूर्जर-राजस्थान)

●

मानपुरा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५[०]७ आषाढ कृ० ८	आदिनाथ	तपा० रत्न-शेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्नचन्द्र की स्त्री जइतलदेवी के पुत्र श्रे नयणा ने.

मारोल ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५१६ वै० शु० ३	कुंथुनाथ	तपा० रत्न-शेखरसूरि	निजामपुर में प्रा० ज्ञा० श्रे० वेलचंद्र की स्त्री धरणूदेवी के पुत्र श्रे० सालिग ने स्वभा० श्रीदेवी, भ्रातृ वानर, हलू प्रमुखकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

भटाणा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १३६०	महावीर	सर्वदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वीरा की स्त्री कील्हणदेवी के पुत्र नरसिंह ने भ्रा० पासड़ आदि के सहित माता-पिता के श्रेयोर्थ.

जै० ले० सं० भा० २ ले० २४५७, २४६६, २५८३ । अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ४२, ६०, ६१ ।

मडार ग्राम के श्री जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं१४—८ माघ कृ०	संभवनाथ	तपा० विशाल-राजसूरि	प्रा० ज्ञा० श्राविका रूपादेवी के पुत्र वेलराज ने पुत्र साजणादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०५	सुमतिनाथ	तपा० जय-चन्द्रसूरि	सिद्धपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० डूगर की स्त्री रूदीबाई के पुत्र महिपाल रत्नचन्द्र ने भा० अमकूदेवी, कडूदेवी, पुत्र नगराजादि कुटुम्बसहित.
सं० १५२३ माघ शु० ६	सुविधिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देवपाल की स्त्री मलादेवी के पुत्र डूङ्गर ने भ्रा० काला, लाखा आदि कुटुम्बसहित.
सं० १५२५ फा० शु० ७	विमलनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० चांपा की स्त्री कडूदेवी के पुत्र वडूआ ने भा० फनूदेवी प्रमुखकुटुम्बसहित स्वमाता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५३३ वै० शु० १२ गुरु०	धर्मनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० सं० सोना की स्त्री हर्पूदेवी के पुत्र सं० जीवा ने भा० जासलदेवी पुत्र जीवराजादि कुटुम्बसहित सं० पासा के श्रेयोर्थ.
सं० १६२४ फा० शु० ३ रवि०	आदिनाथ	हीरविजयसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मगू की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र श्रे० ठाकुर ने स्वमा० वाछीबाई पुत्र सिधजी प्रमुख कुटुम्बसहित

सातसेण ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि०	शांतिनाथ	हीरविजयसूरिपट्ट-नायक विजयसेनसूरि	किसी प्रा० ज्ञा० श्राविका (सिरोही-निवासिनी) ने

रेवदर ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५०३ मार्ग शु० ६	सुमतिनाथ	तपा०जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा श्रे० हापा भार्या हीमादेवी की पुत्री श्रा० नामा ने.

सेलवाड़ा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५१८ फा० कृ० ५	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० रणसिंह की स्त्री वाछूदेवी पुत्र चांपा ने स्वमा० मांकड़ि पुत्र भोगराज, भोजराज कुटुम्ब सहित स्वश्रेयोर्थ.

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ७७, ८०, ८५, ८६, ८८, ६१, १०६, १८४, १८६ ।

लोरल ग्राम के श्री जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५७१ मा० कृ० २	आदिनाथ	श्रीसूरि	रोहीड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० जावड़ की पुत्री जाणी ने.

डवाणी ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १४८५ वै० शु० ८ सोम०	आदिनाथ	पूर्णिमापक्षीय जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लोला की स्त्री वदूदेवी के पुत्र सारंग ने स्वभा० रत्नादेवी के सहित पिता के श्रेयोर्थ तथा पितृव्य साजण के श्रेयोर्थ
सं० १४८९ आषाढ़ कृ० १०	अजितनाथ	तपा० सोमसुन्दरसूरि	वृद्धग्रामवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० गांगा की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र श्रे० सोनपाल ने स्वभा० साहगदेवी, पुत्र वनराजादि के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५३६ का० शु० २	सुमतिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० मांडण की स्त्री हांसूदेवी के पुत्र राणा ने भा० लक्ष्मीदेवी, पु० खनादि कुटुम्बसहित
सं० १५४० वै० शु० ३	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पांचा की स्त्री शंभूदेवी के पुत्र लांपा ने स्वभ्रातृ चेला, लूंभा, भ्रातृज लाला, शोभा, चाई आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ और पूर्वजों के श्रेयोर्थ
सं० १५४५ ज्ये० कृ० ११ रवि०	पद्मप्रभ	तपा० सुमतिसाधुसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० सीखरन ने पुण्यार्थ

माल ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १४६२ शु० ५	अजितनाथ	कोरंटगच्छीय नन्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० डूङ्गर ने
सं० १४६१ माघ शु० ५ बुध०	आदिनाथ	ब्रह्माण० उदयप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लक्ष्मण की स्त्री रूदीदेवी के पुत्र सेखा ने स्वस्त्री सहजलदेवी के श्रेयोर्थ
सं० १५५६ माघ शु० १४	पद्मप्रभ	तपा० हेमविमलसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोसल की स्त्री वांछूदेवी के पुत्र भरमाने स्वभा० रुखमिणी पु० लाखा, विजा, गहिंदा आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ

मेड़ा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५३२ वै० शु० १२ गुरु०	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	केरग्रामनिवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सोमचन्द्र की स्त्री सोनलदेवी के पुत्र लखा ने स्वभा० लक्ष्मीदेवी, पुत्र लुपा, लुम्भा, जेसा, पेथा आदि कुटुम्बसहित.

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० १६१, १६८, १६६ २०१, २०३, २०४, २१०, २११, २१५, २२५।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५३६ माघ० कृ० ५ रवि०	कुंथुनाथ	खतरगच्छीय-जिनचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मूजा के पुत्र साल्हा ने भा० वीरणिदेवी पुत्र नाल्दादि परिवारसहित.

हमीरगढ़ के श्री जिनालय में

सं० १५५६ वै० शु० १३ रवि०	देवकुलिका	वृ० तपा० उदयसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० वाछा की स्त्री वीजलदेवी के पुत्र सं० कान्हा कुतिगदेवी जांणी देसी के पुत्र सं० रत्नपाल की स्त्री कर्मादेवी ने स्वभर्तृ के श्रेयोर्थ.
सं० १५५६ द्वि० ज्ये० शु० १० शुक्र०	देवकुलिका	हेमविमलसूरि	प्रा० ज्ञा० संघवी समरा की स्त्री समरादेवी के पुत्ररत्न सं० सचवीर ने भार्या पद्मावती, पुत्ररत्न सं० देवीचन्द्र, स्वपरिवार के सहित स्वश्रेयोर्थ.

कोलर ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि०	आदिनाथ	तपा० विजयराजसूरि	सिरोहीनिवासी सं० मेहजल की स्त्री कल्याणदेवी के पुत्र सं० कर्मा की स्त्री केसरदेवी के पुत्ररत्न सं० उदयभाण ने

सिरोही के श्री शीतलनाथ-जिनालय में

सं० १६६८ पौ० शु० १५	शीतलनाथ	तपा० अमृतविजयगणि	सिरोहीनिवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वणवीर की स्त्री पसादेवी ने पुत्र राउत, कर्मचन्द्र के सहित*
सं० १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि०	शीतलनाथ	तपा० ·····	सिरोहीनिवासी प्रा० ज्ञा० वृ० शा० काकरेचा श्रे० रायपाल की धर्मपत्नी कल्याणदेवी के पुत्र जगमाल ने

ब्राह्मणवाड़ाग्रामस्थ श्री महावीर-जिनालय में

सं० १४८२ का० शु० १३ गुरु०	आदिनाथ	रत्नप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मा की स्त्री रूड़ी के पुत्र पिथु और पर्वत ने पिता के श्रेयोर्थ
सं० १५१० मार्ग० शु० ११ (५)	देवकुलिका	··········	प्रा० ज्ञा० श्रे० नेसा भा० मालदेवी के पुत्र सूरा ने भा० मांगी, देणद, पुत्र मेरा, तोला सहित
सं० १५१९ वै० शु० १३	देवकुलिका	··········	प्रा० ज्ञा० श्रे० धना श्रे० वाहु के पुत्र सं० मीठालाल ने भा० सरस्वती पुत्र थड़सिंह के सहित

*अ० प्र० जै० ले० सं० ले० २२६, २३६, २३७, २४३, २५७, २८३, २६३, २६१। *मेरे द्वारा सिरोही नगरस्थ जिनालयों के संग्रहीत लेखों पर (अप्रकाशित)*

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१६ मार्ग० शु० ५	देवकुलिका	....	वीरवाड़कवासी प्रा०ज्ञा० श्राविका नलष्मी (?) के पुत्र गदा की स्त्री देवलदेवी के पुत्र देवीचन्द्र ने भा० कीन्हम्पदेवी (?) पुत्र वाचर आदि कुटुम्बसहित
,,	,,	....	प्रा० ज्ञा० सं० सोमचन्द्र की स्त्री मंदोअरि के पुत्र सं० देवीचन्द्र ने भा० दामिढ़देवी के सहित
,,	,,	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० छाड़ा की स्त्री खेतूदेवी के पुत्र हरपाल लखा ने भा० अलूदेवी, पुत्र गोमा के सहित
,,	,,	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० रायमल की स्त्री रामादेवी के पुत्र हीराचन्द्र ने भा० रूयड़, पुत्र देपा, धर्मा, दला, धांधल आदि कुटुम्बसहित
,,	,,	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० वरदा ने स्वभा० मानकदेवी, पुत्र पाखा भा० जयतूदेवी पुत्र वरढ़ा ने भा० कर्मादेवी, पुत्र पाल्हण के सहित
सं० १५१६	,,	....	पनासीआवासी प्रा०ज्ञा० मं० झांझा की स्त्री थावलदेवी के पुत्र मं० कूपा ने भा० कामलदेवी, पुत्र गहिंदा, कुंभादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ
,,	,,	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	वीरवाटकवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० गदा की स्त्री देवलदेवी के पुत्र सोगा ने स्वभा० शृंगारदेवी पुत्र आसराजादि-कुटुम्बसहित
सं० १५२१ मा० शु० १३	देवकुलिका	....	तेलपुरवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० सोमचन्द्र ने श्रे० वरा पुत्र गांगा सुन्दर, खाखा, वना, देवा, वरस आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२१ माघ शु० १३	वड़प्रसाद	....	बाजववासी प्रा०ज्ञा० श्री सोमचन्द्र, मांडण, हेमराज, विला ने पुत्र पाता, सलखादि कुटुम्ब-सहित.
सं० १७१६ माघ कृ० ८ सोम०	श्री सिंहविजय-गुरुपादुका	तपा० श्री शील-विजयगणि	प्रा० ज्ञा० मंत्रीश्वर शाह श्री वणवीर के पौत्र धर्मदास धनराज ने सिरोही वीरवाड़ा के चतुर्विध-संघ समस्त समुदाय के सहित.

झाडोली ग्राम के श्री जिनालय में

सं० ११४५ ज्ये० कृ० २	आदिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० यशदेव ने श्रेयोर्थ.

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० २८५, २८६, २८६, २६०, २६१, २८७, २८८, २६४, २६५, २६८, ३०७।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४७५ माघ० शु० २ गुरु०	शांतिनाथ	कच्छोलीवाल ग० सर्वाणंदसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नरपाल की भा० संसारदेवी के पुत्र लाखा ने स्वभा० धरणूदेवी, पुत्र मूंजा, सयणा, सारंग, सिंघा के सहित पिता के श्रेयोर्थ.

मालणु ग्राम के श्री जिनालय में

....	महावीर	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देल्हा, श्रे० पाल्हा, श्रे० खेता, श्रे० मेल्हा, श्रे० डूङ्गर आदि प्राग्वाटज्ञातीय श्री संघ ने.

चामुण्डेरी ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५२७ माघ० कृ० ७	धर्मनाथ-चोवीशी	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	कोलपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० डूङ्गर के पुत्र साल्हा की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र सं० चुंडा ने, भा० करणादेवी, पुत्र सोमचन्द्र, राणा आदि कुटुम्बसहित.

नाणा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५३० मा० कृ० ६	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० चाहड़ की स्त्री राणीदेवी के पुत्र श्रे० वीटा ने स्वभा वूटीदेवी, पुत्र वेलराजादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

खुडाला ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५२३ वै० ११ बुध०	विमलनाथ	अंच० जयकेसरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गांगा की स्त्री कर्पूरदेवी के पुत्र वत्सराज ने स्वस्त्री पांचीबहिन, पुत्र वस्तुपाल के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५४३ ज्ये० शु० ११ शनि०	पार्श्वनाथ	श्री ज्ञानसागरसूरि के पट्टधर श्री-उदयसागरसूरि	विशलनगरवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० धर्मचन्द्र की स्त्री नांई के पुत्र जीवा और वोगा ने स्त्री गौमती, पुत्र हर्षराज, हीराचन्द्र, व्य० कमला पुत्र काढ़ा, पुत्री गौरी और पुत्री राजू, समस्त संघ के सहित व्य० कमला के श्रेयोर्थ.

नांदिया ग्राम के श्री महावीर-जिनालय में

सं० १५२१ मा० शु० १३	वासुपूज्य	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० हापा की स्त्री हीमादेवी के पुत्र श्रे० वीसलदेव की स्त्री वील्हू के पुत्र ऊधरण ने स्वभा० राजूदेवी, भ्रातृ दालादिसहित.
सं० १५२१ भाद्र० शु० १	देवकुलिका	....	नांदियापुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० दूल्हा भा० दूलीबाई के पुत्र जूठा ने, भा० जसमादेवी, भ्रातृ मउवा, झाला, वरजांग, खेता आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ३१२, ३२६, ३२८, ३५६ । प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ४००, ४०१ ।
अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ४५६, ४६० ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२८ माघ० कृ० ५	मुनिसुव्रत	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	अजाहरीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे ऊदा की स्त्री आनी के पुत्र नीसल ने स्वभा० अधू पुत्र नलादि कुटुम्बसहित.
सं० १५२६ फा० कृ० ३ सोम०	शांतिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० भोजराज ने, स्वभा० अछवादेवी, भ्रातृ रामादि सहित भगिनी राणी, पुत्र लाला के श्रेयोर्थ.
सं० १५२६ मा० कृ० ३ गुरु०	देवकुलिका	तपा० सोमजयसूरि	सीदरथाग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० ········कुटुम्बसहित.
सं० १५६५ माघ० शु० १३ शनि०	पार्श्वनाथ	पिप्पलगच्छीय-देवप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वेलराज की स्त्री धनीबाई के पुत्र नगा ने स्वभा० नारंगदेवी, पु० जगा, पिता के श्रेयोर्थ.

लोटाणा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० ११४४ ज्ये० कृ० ४	वर्द्धमान	निर्वृतककुलीय	आम्रदेवगच्छीय प्रा० ज्ञा० श्रे० आसदेव ने.

दीयाणा के श्री जिनालय में

सं० १४११	जिनयुगल	·········	प्रा०ज्ञा० श्रे०कुंयरा की स्त्री सहजूदेवी के पुत्र श्रे० तिहुणा ने स्वभा० जयतूदेवी, पुत्र रूदा भा० वसंतलदेवी के सहित.

पेशुवा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि०	कुंथुनाथ	विजयराजसूरि	पेशुवावासी प्रा० ज्ञा० श्री संघ ने.

धनारी के श्री जिनालय में

सं० १३४८ आषा० शु० ६ मंगल०	·········	·········	धनारीग्राम में प्रा० ज्ञा० श्री पूनदेव के पुत्र झाला की स्त्री राल्हदेवी के पुत्र श्रे०आम्रदेव ने स्वभा०लासदेवी और धार्मिक श्रे० लुंबा ने स्वभा० दमिणीदेवी पुत्र श्रे० लाखण, सलखण, विजयसिंह, पद्मसिंह, लाखण के पुत्र मोहन के सहित
सं० १४३४ वै० कृ० २ बुध०	अंबिकादेवी	मड़ाहड़ीयगच्छीय सोमप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मोहण भा० चांपल के पुत्र विरुआने
सं० १५५२ माघ शु० १२ बुध०	शीतलनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	कुएडवाड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० आल्हा की स्त्री रूपिणी के पुत्र श्रे० पाता ने, स्वभा० प्रीमलदेवी, पुत्र जावड़, आसराज भा० लक्ष्मीदेवी प्रमुखकुटुम्बसहित.

अ० प्र० जैं० ले० सं० ले० ४६१, ४६२, ४६३, ४६५, ४७३, ४६२, ५०४, ५०५, ५०८, ५११ ।

नीतोड़ा के श्री जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १२००	अरिष्टनेमि	विजयप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्राविका पान्हणदेवी की पुत्री
सं० १५२३ वै० शु० ६	विमलनाथ-चोवीशी	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पासड़ की स्त्री टमकू के पुत्र देवसिंह ने भा० देवलदेवी, पुत्र वीछा, आंबा, लींबा, बंधु, दरपति, बालादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ जड़तपुर में

भावरी ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५०७	शांतिनाथ	तपा० रत्नशेखर सूरि	पद् (?) प्रा० ज्ञा० श्रे० धनराज की स्त्री-चमकूदेवी के पुत्र पद् देवराज भा० देपाल ने श्रे० पद् मोकुल के श्रेयोर्थ

वासा ग्राम के श्री आदिनाथ-जिनालय में धातु-प्रतिमायें

सं० १३८६ वै० कृ० ११ सोम०	शांतिनाथ	वीरचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कुरां भा० कुंरदेवी के पुत्र राजड़ ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४१०	वर्द्धमान	मुनिसुन्दरसूरि(?)	प्रा० ज्ञा० श्रे० साल्हा की स्त्री जमणादेवी के पुत्र पनराज ने स्वभा० चांदू, पुत्र सोमादिसहित.
सं० १४३०	शांतिनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० आमा की स्त्री अहवदेवी के पुत्र
सं० १४८८ मार्ग० कृ० २	सुविधिनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भादूआ ने स्वश्रेयोर्थ
सं० १४९३	चंद्रप्रभ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खीदा की स्त्री खेतलदेवी के पुत्र चउथा ने स्वश्रेयोर्थ
सं० १५०१ ज्ये० शु०	अभिनन्दन	तपा० मुनिसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सामा के पुत्र साहणा ने स्त्री, पुत्र सोमद आदि तथा माता छादिबाई के सहित
सं० १५०३ ज्ये० शु० ११	धर्मनाथ	पिप्पलगच्छीय श्री हीरसूरि	टेलीगोष्ठिक प्रा०ज्ञा० श्रे० वरूआ की स्त्री मेचू के पुत्र डाडा ने स्वभार्या के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५०८ वै० शु० ३	संभवनाथ	तपा० रत्न-शेखरसूरि	वसंतपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भादा की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र चडुआ ने भार्या भवकू, पुत्र साचा, सुन्दर आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१९ माघ० शु० १३	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० शिवा की स्त्री वर्जूदेवी के पुत्र देदा ने स्वभा० वाल्ही श्राविका के पिता कर्मा भा० वान्देवी प्रमुख-कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ५१७, ५१६, ५२५, ५२७, ५२८, ५२६, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३७, ५३८।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२१ वै० शु० ३	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० म० गोधा की स्त्री भीली के पुत्र मेघराज ने स्वभा० माजू पुत्र हीरा, पर्वतादि के सहित वासा ग्राम में.
सं० १५२३ मा० शु० ६	धर्मनाथ	,,	कासदराग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० आल्हा की स्त्री रूहिणी के पुत्र माल की स्त्री जइतूदेवी ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२७ माघ० कृ० १	शीतलनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० नउला की स्त्री मधूदेवी, वइजूदेवी के पुत्र पाला, आसा, हासा ने भा० जसू, पुत्र झांझणादि के सहित सिरउत्राग्राम में.
सं० १५३२	वासुपूज्ज	,,	सांगवाड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नरपाल की स्त्री भठू के पुत्र मेघराज ने भा० कर्णूदेवी, भ्रातृ राणादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३२	मुनिसुव्रत	,,	सांगवाड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सिंघा की स्त्री गौरी के पुत्र कोहा ने स्वभा० राजूदेवी, पुत्र रहिआ, जावड़, भ्रातृ मेघराज, हेमराज आदि कुटुम्बसहित श्रेयोर्थ.
सं० १५३२ का० शु० ६	आदिनाथ	,,	सांगवाड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० पूंजा की स्त्री चांपलदेवी के पुत्र वेलराज ने स्वभा० सुन्दरदेवी कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३	शांतिनाथ	,,	सांगवाड़ावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० धरणा की स्त्री लाछी के पुत्र लूणा ने स्वभा० कला, पुत्र रामा, रामसिंह, कीका आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३ वै० शु० १२	महावीर	,,	अर्बुदाचलवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सायर की स्त्री भरमीदेवी के पुत्र झांझण ने भा० वीजू, पुत्र जाणा भा० धीरी पुत्र तेजराज, पुत्री सारु प्रमुख कुटुम्बसहित.
सं० १५३४ आ० कृ० २ सोम०	सुविधिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० धर्मराज की स्त्री तेजूदेवी के पुत्र भीमचन्द्र ने भा० चांपूदेवी, पुत्र झांझण भार्या धरणू आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३५ मा० शु० ६	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वेलराज ने स्वस्त्री गुदठि(?), पुत्र सांडा स्त्री गंगादेवी पुत्र हीराचन्द्र, उदादिकुटुम्बसहित.
सं० १५५२ वै० शु० ५	वासुपूज्य	तपा० हेमविमल-सूरि	प्रा०ज्ञा श्रा० लाखूदेवी के पुत्र मेरा ने पुत्र भोजराज, ऊग-ड़ादिकुटुम्बसहित.

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५५०, ५५१।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १७६८ मार्ग कृ० ५	कुन्थुनाथ	श्रीसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० साल्हा की स्त्री धरणू के पुत्र साया ने भ्रातृ के पुत्र सिंघा, साहणासहित.
सं० १–६६ वै० शु० ६ गुरु०	संभवनाथ	पद्माकरसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० कडूआ ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.

रोहिड़ा के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में धातु-प्रतिमायें

सं० १३६४	ऋषभदेव	अभयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे०........................
सं० १३६५ वै० शु० ३ सोम०	सुमतिनाथ-पंचतीर्थी	गुणप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लूणा की स्त्री चयजलदेवी के पुत्र महणा ने माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४०५ वै० शु० २ सोम०	शान्तिनाथ	सोमतिलकसूरि	मड़ाहड़गच्छानुयायी प्रा० ज्ञा० म० हरपाल के पुत्र मंडलिक ने भ्रातृ आल्हा मा० सुहवदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १४२६ द्वि० वै० शु० १० रवि०	पार्श्वनाथ-पंचतीर्थी	मड़ाहड़गच्छीय पूर्णचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मदन की स्त्री मान्हणदेवी के पुत्र देदा ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४७७ मा० कृ० ११	महावीर	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पूनसिंह की स्त्री पोमादेवी के पुत्र वासल ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४८० ज्ये० शु० ५	आदिनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्ना की स्त्री रत्नादेवी के पुत्र देल्हा ने स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५०३ फा० कृ० २ रवि०	नमिनाथ-पंचतीर्थी	तपा० प्रमोद-सुन्दरसूरि	रोहिड़ाग्रामवासी प्रा० ज्ञा० गांधी वाछा की स्त्री वूड़ी के पुत्र चांपसिंह ने मा० चांपलदेवी, पुत्र वीरम, वीसा, नागा, जीवा, माला, झालादि कुडम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०७ माघ शु० ५	कुन्थुनाथ-पंचतीर्थी	तपा० रत्नशेखर-सूरि	कासहदग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० धरणा की स्त्री लाछीदेवी के पुत्र सालिग ने भार्या तोलीदेवी, पुत्र रील्हादिसहित.
सं० १५१० ज्ये० शु० ३	संभवनाथ-पंचतीर्थी	तपा० रत्नशेखर सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० माल्हा की स्त्री मोहणदेवी के पुत्र वरसिंह ने भा० हर्षूदेवी, पुत्र सालिग के सहित स्वश्रेयोय.
सं० १५१५	नमिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० मला की स्त्री मान्हणदेवी के पुत्र श्रे० चांपा ने भ्रातृ सूरा, सिंघा, सहजा, विजा, तेजा, टहकू सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१६	विमलनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० वाछा की स्त्री सेगूदेवी के पुत्र देल्हा ने भा० सुन्दरदेवी, भ्रातृ चांपा, भ्रातृज धर्मचन्द्रादि कुटुम्बसहित भ्रातृ देवीचन्द्र के श्रेयोर्थ.

अ० प्रा० जै० ले० सं० ले० ५५५, ५५६, ५६६, ५६७, ५६८, ५६६, ५७१, ५७२, ५७६, ५८० ५८१, ५८५, ६८६।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१६	कुन्थुनाथ-पंचतीर्थी	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० साल्हा की स्त्री चांपूदेवी के पुत्र सहजा ने भार्या देवल, पुत्र सालिगादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५१८ माघ	धर्मनाथ-पंचतीर्थी	कछोलीवाला पूर्णि० गुणसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कोहा ने भा० कामलदेवी, पुत्र नाल्हा, हीदा के सहित वील्हा के श्रेयोर्थ
सं० १५२३ मा० शु० ६	आदिनाथ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मीसागर सूरि	आम्रस्थल में प्रा० ज्ञा० श्रे० पनालाल की स्त्री चांददेवी के पुत्र सोमालाल ने भा० मानूदेवी, भ्रातृ देवीचन्द्र आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५२७ पौ० शु० ६ शुक्र०	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० पर्वत की स्त्री साधूदेवी के पुत्र हीराचन्द्र ने भा० जाणी, पुत्री तोली प्रमुखकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५३० मा० ४	संभवनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्राविका हजू की पुत्री अरसी की पुत्री श्रा० वीरणि नामा ने
सं० १५३२	कुन्थुनाथ-पंचतीर्थी	,,	सांगवाड़ावासी प्रा०ज्ञा० श्रे० पूंजा के पुत्र श्रे० मला की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र सहजा ने स्वभा० तोली, भ्रातृ तेजी(?) वृद्ध भ्रा० पुत्र वीसा, वाघादि कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५३६ ज्ये० कृ० ११ शुक्र०	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	कछोलीवाल विजयप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कोहा ने स्त्री कामलदेवी पुत्र हीदा भा० कर्मादेवी पु० गोपा, जइता, जगमाल के सहित
सं० १५७५ फा० कृ० ५ गुरु०	कुन्थुनाथ-पंचतीर्थी	तपा० हेमविमल-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खुणा की स्त्री लखूदेवी के पुत्र ईला ने भार्या भाऊ, पुत्र गहिदा, तेजसिंह प्रमुख कुटुम्बसहित.

वाटेड़ा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १४६० वै० शु० ३	अजितनाथ-पंचतीर्थी	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० म० ठाकुरसिंह की स्त्री झवकूदेवी के पुत्र वाछादि सहित मं० केल्हा ने स्वश्रेयोर्थ.

कछोली ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५२३ माघ० शु० ६	धर्मनाथ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० ऊदा की स्त्री जोगिणि ने पुत्र सहजा सादादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

भारजा ग्राम के श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १५००	दो देव-कुलिकायें	....	प्रा०ज्ञा० श्रे० लींबा भार्या मांजूदेवी के पुत्र देवराज ने पुत्र गांगा, पिता लींबा के श्रेयोर्थ.

अ० प्र० जै० लें० सं० ले० ५८७, ५८८, ५८६, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६५, ६१०, ६१२, ६१५-६१६ ।

कासिन्द्रा ग्राम के श्री शांतिनाथ-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १२३४ वै० शु० १३ सोम०	जिनबिंब	....	प्रा०ज्ञा० श्रे० धणदेव की स्त्री लाखूदेवी के पुत्र अमरा ने भा० शांतिदेवी, पुत्र आंबड़, पुत्री पूनमती सहित पिता के श्रेयोर्थ.

देरणा ग्राम के श्री संभवनाथ-जिनालय में

सं० ११८२ ज्ये० कृ० ६ बुध०	पार्श्वनाथ	चंद्रगच्छीय चक्रेश्वरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लोकवड़ि(?) के पुत्र पासिल ने पुत्र पद्धदेव, पामदेव आदि पांच पुत्रों के सहित.

ओरग्राम के श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १२४२ ज्ये० शु० ११	कायोत्सर्ग-प्रतिमा	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहदेव के पुत्र सद्भ्रात के पुत्र वरदेव के पुत्र यशोधवल ने.
,,	कायोत्सर्ग-प्रतिमा	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहदेव के पुत्र सद्भ्रात के पुत्र वरदेव के पुत्र यशोधवल ने.

बनास-कांठा—उत्तर गुजरात

●

थराद (स्थिरपद्र) के श्रीमहावीर-जिनालय में धातु-प्रतिमायें

सं० १५१३ माघ कृ० ७ बुध०	शांतिनाथ	पूर्णिमापक्षीमाणिया जयकेसरिसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० भोजराज ने स्वभा० लाछीबाई पुत्र नत्थमल, सज्जन के सहित पिता-माता के श्रेयोर्थ
सं० १५१७ वै० शु० ३	विमलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	कालुआवासी श्रे० कूंपा की स्त्री रूड़ीदेवी के पुत्र देवसिंह की स्त्री वाल्हीबाई के पुत्र देपाल ने भांडादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ

श्री महावीर-जिनालयान्तर्गत श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १४३६ वै० कृ० ११	महावीर	श्रीपासचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जसवीर की स्त्री वांसलदेवी के पुत्र मामा ने स्वपिता के श्रेयोर्थ—

अ० प्र० जै० ले० सं० ले० ६२२, ६२६, ६४१, ६४२ । जै० प्र० ले० सं० ले० २८, ३०, १७० ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४६२ वै० शु० ६ शुक्र०	आदिनाथ	मड्डाहड़गच्छीय हरिभद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० प्रलेपन की स्त्री सायलदेवी के पुत्र मालण ने.
सं० १४८४	शांतिनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सायर के पुत्र गदा ने स्वभ्रातृ पद्मराज के श्रेयोर्थ.
सं० १५१० वै० शु० ३	सुमतिनाथ	तपा० रत्नशेखरसूरि	ऊढ़ववासी प्रा० ज्ञा० वीरम की स्त्री भानुमती के पुत्र राघव ने भ्रातृ हेमराज, हीराचन्द्र, वीसलराज भा० मचकूदेवी पुत्र अर्जुन, सांगा, सहजादि कुटुम्बसहित पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१५ ज्ये० कृ० १ शुक्र०	अजितनाथ	,,	अहमदाबादवासी मं० लींबा की स्त्री मथू के पुत्र अदा की स्त्री मांजी नामा ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१६ माघ कृ० ६ सोम०	शीतलनाथ	पूर्णिमापक्षीय देवचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खोखराज की स्त्री कील्हणदेवी के पुत्र देवराज ने भा० सूलेश्री पुत्र भरमादिसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० शु० १३	अभिनन्दन	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	मूजिगपुर में श्रे० मुंजराज की स्त्री जसदेवी के पुत्र हापा ने स्वभा० रत्नादेवी पुत्र जावड़, जीवराज, जगराजादि सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२४ मार्ग० कृ० २	सुविधिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० तेजपाल की स्त्री श्रीदेवी के पुत्र पोपा ने स्वभा० पांतीदेवी, पु० वर्जांग, देपाल प्रमुखकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२७ माघ कृ० ५ गुरु०	संभवनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्ण की स्त्री मापूदेवी के पुत्र वीढ़ा ने स्वभा० राजलदेवी, पुत्र पालादि कुटुम्बसहित.
सं० १५२८ वै० शु० ५ गुरु०	सुविधिनाथ	वृ० तपा० ज्ञान-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० काला की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र सं० रत्नचन्द्र की स्त्री लाबूबाई, सं० भीमराज ने स्वभा० देमति पुत्रकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३४ चै० कृ० १० सोम०	श्रेयांसनाथ	श्रीसूरि	डीसामहास्थान में प्रा० ज्ञा० श्रे० सेलराज की स्त्री तेजूदेवी के पुत्र अजराज की स्त्री वमीबाई के पुत्र नरपाल ने पितृव्य वाछा, डाहा, पांचादि कुटुम्बसहित.
सं० १५३४ ज्ये० शु० १०	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोपाल ने स्त्री लाखीबाई पुत्र श्रे० लाखा स्त्री कीमीबाई, प्रमुखसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३७ ज्ये० शु० २ सोम०	अजितनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	लघुशाखीय प्रा० ज्ञा० श्रे० हरदास की स्त्री गोली के पुत्र राणा की स्त्री टबकूदेवी नामा ने स्वपुण्यार्थ.

जै० प्र० ले० सं० ले० १०३, १६६, १४७, १५४, १४१, १२८, ६२, १५१, ४६, ५२, ३८, १६७।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५४७ वै० शु० ३ सोम०	शांतिनाथ	अंचलगच्छीय-सिद्धान्तसागरसूरि	डीसावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० लच्मण ने स्वभा० रमकूदेवी, पुत्र लींबा भा० टमकूदेवी, तेजमल, जिनदत्त, सोमदत्त सूरा सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५—— माघ कृ० २ गुरु०	विमलनाथ	वृ० तपा०-जिनसुन्दरसूरि	सहूआलावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० धांगा की स्त्री पंगादेवी के पुत्र पर्वत ने स्वभा० मटकूदेवी, पुत्र कर्मादिसहित.
सं० (१५) ६५ माघ० शु० १२ शुक्र०	शांतिनाथ	श्रीसूरि	माद्रीपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० जसराज के श्रेयोर्थ पुत्र पूनचन्द्र ने.
सं० १६१८ माघ० शु० १३	आदिनाथ	विजयदानसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सोनीगोत्रीय सासा की पुत्री सोनीबाई ने.
		श्री आदिनाथ के बड़े जिनालय में धातु-प्रतिमा	
सं० १५१५ वै० कृ० २ गुरु०	चन्द्रप्रभ	सिद्धांतीगच्छीय सोमचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वागमल ने स्वभा० पोमी, पुत्र वेलराज भा० लाची बाई पुत्र विरूआ सहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री विमलनाथ-जिनालय में धातु-प्रतिमा (देसाईसेरी)	
सं० १५२३ वै० शु० १३	वासुपूज्य	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मेहा की स्त्री लांपु के पुत्र महिमा ने स्वभा० मरघू, पुत्र लटकण, भ्रातृ नरवदादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री सुपार्श्वनाथ-जिनालय में धातु-प्रतिमा (आमलीसेरी)	
सं० १५०८ ज्ये० शु० १० सोम०	श्रेयांसनाथ	जीरापल्लीगच्छीय-उदयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मोकल ने स्वभा० दूपड़ी, पुत्र हीराचन्द्र, सहज पुत्र ऊवलसहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री अभिनंदन-जिनालय में धातु-प्रतिमा (राशियासेरी)	
सं० १५५३ आषाढ़ शु० २ शुक्र०	मुनिसुव्रत	पूर्णिमा० भीमपल्लीय-मुनिचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० सेंगा की स्त्री हर्पूदेवी के पुत्र सं० अमा ने स्वभा० लीलादेवी, पुत्र खीमचन्द्र, सिंधु, लच्मण, अलवा, धनराजादि सहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री विमलनाथ-जिनालय में धातु-प्रतिमा (मोदीसेरी)	
सं० १५८– वै० कृ० ५	श्रेयांसनाथ	पूर्णिमा-पक्षीय जिनहर्षसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० दूदा ने स्वभा० जाणी, पुत्र जयवंत के सहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री शांतिनाथ-जिनालय में धातु-प्रतिमा (सुतारसेरी)	
सं० १५१६ मार्ग० शु० ६ शनि०	संभवनाथ	अंचलगच्छीय जयकेसरिसूरि	रत्नपुरवासी लघुशाखीय मं० अमरसिंह भा० मांई पुत्र सं० गोपाल ने भा० सुलेश्रीदेवी, पुत्र देवदास, शिवदास सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० प्र० ले० सं० ले० १६४, १२७, ७६, ४७, २१२, २४२, २५६, २६०, २६७, २७२ ।

वरमाण के श्री जिनालय में प्रस्तरप्रतिमा

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १३५१ माघ कृ० १ सोम०	पार्श्वनाथ (युगल)	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० झांझण की स्त्री राउलदेवी के पुत्र सिंह ने स्वभा० पद्मादेवी,जलालूदेवी,पुत्र पद्मराज भा० मोहिनीदेवी, पुत्र विजयसिंह के सहित.

भीलड़िया के श्री जिनालय में

सं० १३६७ वै० शु० ६	आदिनाथ	मड़ाहड़० रविकरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० तिहुणसिंह की स्त्री हांसलदेवी के श्रेयोर्थ पुत्र सोमचन्द्र ने.
सं० १५३५ माघ कृ० ६ शनि०	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	कुतुबपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० काजा की स्त्री देवी के पुत्र भोलराज ने, स्वभा० राजूदेवी, पुत्र हंसराज, रतिराजादि कुटुम्बसहित स्वपिता के श्रेयोर्थ.

जुआणा (दियोदर) के श्री जिनालय में

सं० १५२२ माघ शु० ६ शनि०	मुनिसुव्रत	वृ० तपा० जिनरत्न-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० विरूआ की स्त्री आजीदेवी के पुत्र सं० मांकड़ भा० झांलीदेवी के पुत्र सं० अर्जुन ने स्वभा० अहिवदेवी सहित अपरा भा० रामति के श्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० शु० ३	विमलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	वीरमग्रामवासी प्रा० ज्ञा० सं० नापा ने स्वभा० लक्ष्मीदेवी पुत्र खोना, ठाइया, हांसा, जावड़, भावड़, इनकी स्त्रियाँ नाथीबाई,कन्हाईबाई, मेघादेवी, आसूदेवी, इनके पुत्र नाकर, झटका, रूपा, सूरादि कुटुम्बसहित.

गूर्जर-काठियावाड़ और सौराष्ट्र

●

डभोड़ा के श्री जिनालय में सपरिकर पाषाण-प्रतिमा

सं० १३०५ ज्ये० शु० ११ सोम०	रोहिणीबिंब	रत्नप्रभसूरि	प्रा०ज्ञा० ठ० सांगा की स्त्री सलखणदेवी ने

लींच के श्री जिनालय में धातु-प्रतिमा

सं० १४०४ वै० शु० १	पार्श्वनाथ	रत्नाकरसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० मोकल ने पिता भोतू, माता माल्हणदेवी के श्रेयोर्थ.

जै० प्र० ले० सं० ले० ३२५, ३३५, ३३४, ३५७, ३५८। प्रा० ले० सं० भा० १ ले० ४१, ६६, ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४५७ आषा० शु० ५ गुरु०	पार्श्वनाथ	पू० प० धर्मतिलक-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० छाहड़ की स्त्री मोखलदेवी के पुत्र त्रिभुणा ने पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५२१ माघ कृ० ५ शुक्र०	सुविधिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रामसिंह की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र मादा ने भा० लक्ष्मीदेवी, भ्रातृ भाना, देवराा प्रमुख कुटुम्बसहित.

कतार के श्रे० लाडूआ के छोटे जिनालय में

सं० १४३८ वै० शु० ३	महावीर	देवेन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्राविका मयणलदेवी के पुत्र कर्मसिंह ने स्वभा० लक्ष्मीदेवी और पिता-माता के श्रेयोर्थ.

पाटणी के श्री जिनालय में

सं० १४४० पौ० शु० १२ बुध०	शांतिनाथ	पिप्पलाचार्य उदयानन्दसूरि	प्रा० ज्ञा० पिता सिंह माता रूपादेवी के श्रेयोर्थ पुत्र तेजमल ने.
सं० १४६४	श्रेयांसनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्ना की स्त्री माऊदेवी के पुत्र ताल्हा की स्त्री सारूदेवी के पुत्र वेलराज ने भा० चांनूदेवी प्रमुख कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.

पूना के श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १४४६ वै० कृ० ३ सोम०	अजितनाथ	उढव(एस)गच्छीय कमलचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सावठ की स्त्री पाल्हादेवी के श्रेयोर्थ पुत्र जगड़ ने.
सं० १५१५ माघ शु० ७	अनंतनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	गंधारवासी प्रा० ज्ञा० सं० वयरसिंह भा० जईतूदेवी पुत्र सं० नरगा ने स्वभा० भरमादेवी, पुत्र वर्द्धमान, भ्रातृ सं० शिवराज भा० कर्मादेवी पुत्र वसुपालादि कुटुम्ब-सहित माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५२१ वै० शु० १० रवि०	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	घीणुजग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० पूनमचन्द्र की स्त्री रत्नादेवी ने पुत्र काजा-जिनदासादि-कुटुम्ब-सहित.

श्री पोरवालों के जिनालय में

सं० १५२० ज्ये० शु० ४ गुरु०	कुंथुनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्नचन्द्र की स्त्री धमकुनामा ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३७ वै० शु० १० सोम.	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	इलदुर्गवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भोजराज की स्त्री भमादेवी के पुत्र रत्नचन्द्र ने भा० पहुतीदेवी, पुत्र लापा, वेणा आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

प्रा०ले० सं० भा० १ ले० ६६, ३५६, ८३, १६६, ८८, ३०१, ३५८, ३५२, ४७४।
'पाटड़ी'—बी० बी० एण्ड० सी० आई० रे० वीरमग्राम-खाराघोड़ा ब्रांच लाईन में जुन्ड स्टे०से तीसरा स्टेशन है।

राधनपुर के श्री शान्तिनाथ-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४६० वै० शु० ३	पार्श्वनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मांडण की स्त्री सरस्वती के पुत्र आल्हा ने स्वभा० आल्हणदेवी, पुत्र सुगाल, गोविंद, गणपति के सहित.
सं० १५१७ माघ कृ० ८ सोम.	सुमतिनाथ	वृ० त० जिनरत्न-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सांगा की स्त्री मटकू की पुत्री पूरी नामा ने स्वश्रेयोर्थ.

महेसाणा के श्री सुमतिनाथ-जिनालय में

सं० १५०३ आषाढ़ शु० २ गुरु.	सुमतिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	वीसलनगरवासी प्रा०ज्ञा० सं० सादा के पुत्र सं० वाछा की स्त्री वीसलदेवी के पुत्र सं० कान्हा, राजा, मेघा, जगा, अदा; इनमें से श्रे० मेघा ने स्वभा० मीणलदेवी, पुत्र सूरदास प्रमुख कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३१ ज्ये० शु० २ रवि०	नेमिनाथ	....	सहीसाणावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मण ने.

वीरमग्राम के श्री शांतिनाथ-जिनालय में

सं० १४८१ माघ शु० १०	सुविधिनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धांगा की स्त्री धारिणीदेवी के पुत्र तीरा ने स्वभा० पोमीदेवी, पुत्र सोमचन्द्र, हेमचन्द्र के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०३ माघ० कृ० ६	संभवनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० धनराज नगराज ने.
सं० १५१३ ज्ये० शु० ३ गुरु०	श्रेयांसनाथ	आगमगच्छीय-देवरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० अर्जुन की स्त्री अहिवदेवी के पुत्र मं० पेथा की स्त्री रामतिदेवी के पुत्र हरदास ने स्वश्रेयोर्थ.

महुआ (सौराष्ट्र) के श्री जिनालय में

सं० १५१० फा० शु० १२	मुनिसुव्रत-चोवीशी	तपा० रत्नशेखर-सूरि	स्तम्भतीर्थवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० लापा की स्त्री मातृदेवी के पुत्र श्रे० करण ने, भा० कर्मादेवी, पुत्र महिराज, कुंरा, ठाकुर भ्रातृ श्रे० आका भा० टबकू पुत्र हेमराज, शिता, श्रे० सायर भा० धनदेवी पुत्र तेजराज, श्रे० राजमल भा० माणिकदेवी पुत्र पत्ता, सहजादि सहित सर्वश्रेयोर्थ.

प्रा० ले० सं० भा० १ ले० १४६, ३०७, १६७। खं० प्रा० जै० इति० ले० २८। प्रा० ले० सं० भा० १ ले० १२५। खं० प्रा० जै० इति० ले० १५। प्रा०ले० सं० भा० १ ले० २६२, २५६।

हिम्मतनगर के बड़े जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५०४ मा० कृ० ६ रवि०	शांतिनाथ	तपा० जयचन्द्र-सूरि	विराटपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० देवराज भार्या कर्मादेवी के पुत्र सहसराज ने भार्या चमकूदेवी, पुत्र सायर, रमणायर, माणिक्य, मांडण, धर्मा, पौत्र हराज, भला, ठाकुरसिंह आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०४ आ० शु० २	सुपार्श्वनाथ	तपा० जयचन्द्र-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० चांपा की स्त्री हमीरदेवी के पुत्र पूरा ने भार्या मांजूदेवी, पुत्र दलादि कुटुम्बसहित भ्रात् सायर और स्वश्रेयोर्थ.

जामनगर के श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १५०५	शीतलनाथ	तपा० जयचन्द्र-सूरि	वामईयावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० देटा की स्त्री सारूदेवी के पुत्र वयरा ने भा० फचकू नामा के श्रेयोर्थ.
सं० १५३३ वै० कृ० ११	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	मंगलपुरवासी प्रा० ज्ञा० दो० वरसिंह की स्त्री हर्षूदेवी के पुत्र दो० भीमा ने भा० सन्हीदेवी, पुत्र सोवा भा० भट्टू पुत्र कान्ह प्रमुख-कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३ ज्ये० शु० १५ सोम०	शीतलनाथ-चोवीशी	,,	काकरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गांधी वीरा भा० झामूदेवी पुत्र हेमा भा० हीरादेवी, हर्षादेवी पुत्र महिराज ने भा० सोहीदेवी, पुत्र लालादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

कोलीयाक (भावनगर) के श्री जिनालय में

सं० १५१२ ज्ये० शु० ५	पार्श्वनाथ	तपा० रत्नसिंह-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० साजण भा० तिलकूदेवी पुत्र छूटाक, उसकी स्वसा वारूदेवी नामा—इन सर्व के श्रेयोर्थ भ्रातृ गदा ने.

वढ़वाण के श्री जिनालय में

सं० १५१५ माघ० शु० १ शुक्र०	नेमिनाथ (जीवित)	बुद्धिसागरपट्ट-धर विमलसूरि	वढ़नाण (वढ़वाण) गच्छानुयायी प्रा० ज्ञा० श्रे० सूंटा ने, भा० लाखणदेवी,पुत्र डूङ्गर भा० चांपूदेवी के सहित जीवित-स्वामिबिंब आत्मश्रेयोर्थ.

छोटा वड़ोदा के श्री जिनालय में

सं० १५२१ माघ० शु० १३	शीतलनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	अहमदाबाद में प्रा० ज्ञा० श्रे० हीराचन्द्र भार्या चारूदेवी के पुत्र श्रे० धनराज ने भा० सोनादेवी, भ्रात् वत्रादि सहित स्वश्रेयोर्थ.

प्रा० लें० सं० भा० १ लें० २०१, २०६, २१६, ४५४, ४५५, २७८, २८८, ३५५।

मांडल के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२२ माघ० शु० १३	अंबिका	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लूणा भा० लूणादेवी के पुत्र चईरा ने.
सं० १५२३ वै० शु० १३ गुरु०	कुन्थुनाथ	वृ० त० ज्ञान-सागरसूरि	वीवीपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भूभव भा० लालीदेवी के पुत्र शिवराज ने भा० टबीदेवी, पुत्र वच्छामुख्य समस्त पुत्रों के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री शांतिनाथ-जिनालय में

सं० १५४१	संभवनाथ-चोवीशी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० देवराज भार्या रूपिणी के पुत्र मं० पुंजा ने भार्या चंपादेवी प्रमुख-कुटुम्बसहित.

घोघा के श्री जीलावाला (जीरावाला) जिनालय में

सं० १५२३ फा० कृ० ४ सोम०	कुंथुनाथ	आगमगच्छीय देवरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० सदा की भार्या सारूदेवी के पुत्र मं० भोजराज की स्त्री साधू नामा ने स्वश्रेयोर्थ.

श्री नवखण्डा-पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १५२९ फा० कृ० ३ सोम०	धर्मनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० दो० भोटा की स्त्री मांजूदेवी के पुत्र वासण की स्त्री जीविणि नामा ने देवर सोढ़ा, कर्मसिंह, पुत्र गोरा, वीरादि सहित स्वश्रेयोर्थ.

सादड़ी के श्री जिनालय में

सं० १५२३ वै० शु० ६	शांतिनाथ-चोवीशी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वासड़ की स्त्री टबकूदेवी के पुत्र श्रे० हरपति ने भा० हंसीदेवी, पुत्र झाला, रता, झांझण, झांटादि कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.

गंधार के श्री जिनालय में

सं० १५४७ वै० शु० ३ सोम०	अंबिका	सुमतिसाधुसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सं० पासवीर की स्त्री पूरीदेवी ने स्वकुटुम्ब के श्रेयोर्थ.
सं० १५६१ वै० कृ ७ शुक्र०	अनंतनाथ	....	गंधारवासी प्रा० ज्ञा श्रे० पर्वत के पुत्र श्रे० जकु के पुत्र धर्मसिंह अमीचन्द्र ने.

सोजींत्रा के श्री जिनालय में

सं० १५२३ वै० कृ० ४ गुरु०	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	सोजींत्रावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० आसवीर, श्रीपाल, श्रीरंगादि ने कुटुम्ब के श्रेयोर्थ.

प्रा० ले० सं० भा० १ ले० ३६३, ३७५, ४८०, ३७०, ४२२, ३७४ । खं० प्रा० जै० इति० ले० ६, ८, २० ।

जघराल के श्री जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४१५ ज्ये० कृ० १३ रवि०	पार्श्वनाथ-पंचतीर्थी	सागरचंद्रसूरि	जघरालवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वीक्रम ने.

सांबोसण के श्री जिनालय में

सं० १५३० माघ० शु० ४ शुक्र०	नेमिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	सांबोसणवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० जटकु ने.

वडदला के श्री जिनालय में

सं० १६२२ माघ० कृ० २ बुध०	पद्मनाथ	श्री हीरविजय-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धनराज, हीरजी.

जंबूसर के श्री जिनालय में

सं० १५६५ वै० कृ० ३ रवि	सुमतिनाथ	धर्मरत्नसूरि	जंबूसरवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० शाणा की स्त्री श्रा० रहितमा ने.

डाभिलाग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५०६ माघ शु० ५ गुरु०	चन्द्रप्रभ	तपा० रत्नशेखरसूरि	डाभिलाग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० हापड़, कीता, धना, मोजा आदि ने.

वालींवग्राम के श्री जिनालय में

सं० १५६४ ज्ये० १२ शुक्र०	अजितनाथ	तपा०लक्ष्मीसागर-सूरि	वालींवग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वरुआ सरुआ ने.

भरूच के श्री जिनालय में

सं० १६२२ माघ कृ० २ बुध०	अनंतनाथ	हीरविजयसूरि	भृगुकच्छवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० दो० लाला की स्त्री वच्छी-देवी के पुत्र श्रे० कोका ने.

सीनोर के श्री जिनालय में

सं० १७१० पौष कृ० ६ गुरु०	आदिनाथ	विजयसेनसूरि	प्रा० ज्ञा० श्राविका जीवदेवी गुजुदेवी ने स्वकुटुम्ब एवं स्वश्रेयोर्थ.

सं० प्रा० जै० इति० ले० २१, २४, २६, २८ ३३, ३८, ५२, ११।

उदयपुर के श्री जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१० फा० शु० ११	मुनिसुव्रत-चोवीशी	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० राजमल भार्या माणिकदेवी, श्रे० सहजादि ने.

डभोई (दर्भवती) के श्री सामलापार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १५०६ पौष कृ० ५ रवि०	नमिनाथ	साधुपूर्णिमा-श्री सोमचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० श्रे० सारंग भा० सहिजूदेवी ने पुत्री काकी, भ्रातादि के सहित.

श्री लोढ़ण-पार्श्वनाथ-जिनालय में चोवीशी

सं० १५०६ वै० शु० ६ रवि०	शांतिनाथ	श्रीसूरि	सहुयालावासी प्रा०ज्ञा० श्रे० रत्ना की स्त्री,रत्नादेवी के पुत्र मोखु की स्त्री मिणलदेवी के पुत्र धणसिंह, धरणि, गमदा भा० मागलदेवी, सुहीरुदेवी, हीरुदेवी, गलदेवी, धनसिंह भा० हांसलदेवी के पुत्र रामादि के पुत्र चांपा, लांपा, नाधु, भूभव ने स्वपितृ-मातृ-पितृव्य-भ्रातृ-श्रेयोर्थ.

श्री धर्मनाथ-जिनालय में

सं० १३८३ माघ कृ० १ शुक्र०	आदिनाथ	श्री कनकसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० आसदेव ने स्वस्त्री लुणादेवी के पुत्र चाहड़, ठहरा, खेता, रणमल, वीकल के श्रेयोर्थ.
सं० १५०६ वै० शु० ७ रवि०	शांतिनाथ	श्रीसूरि	सहुयालावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० मेघराज की स्त्री वीरमति के पुत्र लापा ने स्वभार्या लीलादेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५१२ ज्ये० शु० ५ रवि०	सम्भवनाथ	नागेन्द्रगच्छीय-श्री विनयप्रभसूरि	वलभीपुर-वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० पटील हीरा की स्त्री देकुन के पुत्र धमा ने पुत्र गदा, सदा, श्रीवंत के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१५ माघ शु० ७	अजितनाथ	तपा० श्री रत्न-शेखरसूरि	गंधर-वासी प्रा० ज्ञा० सं० वयरसिंह की स्त्री जसदेवी के पुत्र सं० नरपाल ने स्वभा० भर्मादेवी, पुत्र वर्द्धमान, भ्राता सं० शीवराज भा० कर्मादेवी पुत्र वस्तुपालादि, पुत्री हर्षादेवी के श्रेयोर्थ.

श्री मुनिसुव्रत-जिनालय में

सं० १५०१ वै० शु० ३	सुमतिनाथ	विजयतिलकसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वडूआ की स्त्री चांपलदेवी पुत्र आशधर की स्त्री रमकुदेवी ने पुत्र, पति और स्वश्रेयोर्थ.

श्री शांतिनाथ-जिनालय में

सं० १५२५ वै० शु० ६	अजितनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	वीरमग्राम-वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सायर भा० डाई लीला के पुत्र हंसराज ने स्वभार्या रंगादेवी के श्रेयोर्थ.

खं० प्रा० जै० ले० इति० ले० १३ । जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ७, ४१, ५१, ४६, ५५, ५२, ६७, ७० ।

गांभू ग्राम के श्री जिनालय में पंचतीर्थी

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१६ ज्ये० शु० ३	पद्मप्रभ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	[स]लखणपुरवासी प्रा० ज्ञा० महा० समधर भा० बानूदेवी की पुत्री गौरी (गां० भरम की पत्नी) नामा ने पुत्र राउल भा० लखीदेवी पुत्र साजणादि सहित.
सं० १५३५ माघ कृ० ६ शनि०	अभिनंदन	"	कुतुबपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० काजा की स्त्री चाई के पुत्र सर्वण ने स्वभा० माणकदेवी, पुत्री वीरमती, पुहूती आदि कुटुम्बसहित स्वपितृश्रेयोर्थ.

चाणस्मा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १४५७ वै० शु० ५ गुरु०	शांतिनाथ	साधु० पू० पक्षीय श्रीधर्मतिलकसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वजान्हा की स्त्री वान्हणदेवी के पुत्र टोआ ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५०३ माघ कृ० ५	कुंथुनाथ	तपा० जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सरवण की स्त्री सहजलदेवी के पुत्र राजमल ने स्वभा० लक्ष्मीदेवी, पुत्र महिराज, सायरादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५४३ वै० शु० ३	सुमतिनाथ	सिद्धांतगच्छीय देवसुन्दरसूरि	पत्तनवासी मं० ठाकुरसिंह भा० धनी के पुत्र उणायग, नारद भा० रजादेवी नामा ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५३ फा० शु० ४	शांतिनाथ	तपा० कमलकलशसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० विजयराज भा० मघुदेवी के पुत्र श्रे० डूङ्गरसिंह ने भार्या लीलादेवी, पुत्र हर्षचन्द्र, कान्हादि के सहित.
सं० १५५४ माघ कृ० २ सोम०	सुमतिनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	लोहरवाड़ावासी प्रा०ज्ञा० व्य० जयसिंह की स्त्री वत्सदेवी के पुत्र सूरा ने स्वभार्या देवमति, पुत्र लक्ष्मण, भावड़ सकुटुम्ब स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५५ चैत्र कृ० १० गुरु०	सुमतिनाथ	श्रीनागेन्द्रगच्छीय	प्रा० ज्ञा० मं० मेघराज के पुत्र रत्ना ने स्वभा० रही, पुत्र कान्हा, नाना, कूरा के सहित माता-पिता के श्रेयोर्थ एवं स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६०८ वै० शु० १३ शुक्र०	शांतिनाथ-चोवीशी	पूर्णिमापक्षीय श्रीपुण्यप्रभसूरि	कुमरगिरि-वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सूरा, मिलुसिंह, श्रे० लडुआ ने भा० हीरादेवी, पुत्र-पौत्र-सहित स्वपुण्यार्थ.

उंझा ग्राम के श्री जिनालय में

सं० १३७६ माघ कृ० १२ बुध०	आदिनाथ-पंचतीर्थी	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० झांसा की भार्या खेतलदेवी के पुत्र भणशाली ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ७५, ७३, ११७, १२३, १०७, ११५, ११०, १२७, १२४, १५६।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४–६	पार्श्वनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पाल्हा की स्त्री माणकदेवी के पुत्र श्रे० भीम ने स्वभा० चंपादेवी के सहित स्वपितामह कान्हड़ के श्रेयोर्थ.
सं० १४५६	शांतिनाथ	धर्मतिलकसूरि-	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहसदत्त की स्त्री वीणलदेवी के पुत्र रूदा, रत्ना ने पितादि के श्रेयोर्थ.
सं० १४८६ माघ शु० ४ शनि०	श्रीवर्धमान	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेता की स्त्री तिलकूदेवी के पुत्र श्रे० कामदेव ने स्वभार्या धरणूदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४८८	महावीर	सुविहितसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० कर्मा के पुत्र लींबा की स्त्री ऊनकूदेवी के पुत्र कडुआ ने पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४६६ माघ शु० ६	कुन्थुनाथ-चोवीशी	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राजड़ की स्त्री भवकूदेवी के पुत्र श्रे० आका की स्त्री मनीबाई के पुत्र रहिया ने स्वभा० लीलादेवी, भ्राता महीप आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०८ आ० शु० २ सोम०	पद्मप्रभ-पंचतीर्थी	वृ० तपा० रत्न-सिंहसूरि	वीशलनगरवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० हूदा के पुत्र सं० सायर की स्त्री आसलदेवी के पुत्र हरिराज, नथमल ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१२ फा० कृ० १ रवि०	धर्मनाथ-पंचतीर्थी	सा० पू० पुण्य-चन्द्रसूरि	उढ़ववासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सूद की स्त्री सहजलदेवी के पुत्र चांपा ने स्वभा० यापू, पुत्र लींबादि के सहित.
सं० १५१३ वै० शु० ३	संभवनाथ	तपा० सुरसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहदेव की स्त्री सलखणदेवी के पुत्र पुंज (राज) ने स्वभार्या पुरि, पुत्र वरजंगादि के सहित.
सं० १५१३ ज्ये० कृ० ७ मं०	शीतलनाथ-चोवीशी	सा० पू० विजय-चन्द्रसूरि	स्तंभतीर्थवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नल ने स्त्री नागलदेवी, पुत्र वाला, माला, देवदास, सूदा आदि कुटुम्बियों के सहित पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१५ माघ शु० १ शुक्र०	श्रेयांसनाथ	मलधारीगच्छीय-गुणसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० दोसी श्रा० मटकूदेवी के पुत्र वाछा की स्त्री चंगादेवी के पुत्र पद्मशाह ने पिता, भ्राता सधारण के श्रेयोर्थ.
सं० १५२३ माघ शु० ६	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	नांदियाग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्ना की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र व्य० समरा ने स्वभार्या सहजलदेवी, पुत्र डूङ्गर, जइना, विजय, दूदादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२५ फा० शु० ७ शनि०	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरी	उपहरावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० मेघा की स्त्री मटकूदेवी के पुत्र लींबा ने लाड़ीदेवी के सहित.

जै०धा० प्र०ले० सं० भा० १ ले० १५०, १४७, २०२, २०७, १६५, २००, १४६, १७१, १६८, १७२, १६७, १५६ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२५ वै० शु० ६ सोम०	आदिनाथ	,,	ऊंटवालवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नरसिंह की स्त्री चांददेवी के पुत्र लाला ने स्वभा० राजूदेवी, हलूदेवी, कडूदेवी, पुत्र पोपटादि सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२७ ज्ये० कृ० ७ सोम०	नमिनाथ	वृ० तपा० ज्ञान-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० सायर की स्त्री आसलदेवी के पुत्र सं० नल्यमल ने स्वभा० पीताणदेवी,पुत्र शिवराज आदि के सहित.
सं० १५२८ फा० शु० ८ सोम०	कुन्थुनाथ	,,	लइतलवसणावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० मूला की स्त्री पूरीदेवी के पुत्र मं० सहिसा ने स्वभा० सुहासिणी, पुत्र जगा, गपदि आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२९ वै० शु० ३ शनि०	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	दसावाटक-वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नीणा की स्त्री राउदेवी के पुत्र भांभण ने स्वभा० नायीदेवी, पुत्र मंडन भा० राणीदेवी आदि के सहित पितृव्य मेघा और स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३१ माघ कृ० सोम०	आदिनाथ	आगमगच्छीय-देवरत्नसूरि	अहमदाबाद-वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० कडूआ के पुत्र समरा के पुत्र सोमदत्त ने स्वभा० देमाईदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३ माघ कृ० १० गुरु०	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पर्वत की स्त्री माईदेवी के पुत्र सांडा ने स्वभा० तेजूदेवी, पुत्र रामादि के सहित.
सं० १५३४ फा० शु० १० गुरु०	विमलनाथ	पू० पक्षीय सिद्ध-सूरि	प्रा० ज्ञा०० श्रे घर्मसिंह की स्त्री लाड़ीदेवी के पुत्र विनायक ने स्वभा० धनादेवी आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३४ वै० कृ० १०	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागर	पीरीवाड़ा-वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नृसिंह की स्त्री धर्मिणी-देवी के पुत्र गोपा की भार्या माइना ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३५ पौष शु० ६ बुध०	शीतलनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहेद की स्त्री सलखणदेवी के पुत्र पूजा ने स्वभा० मापुरी पुत्र अदादेव आदि के सहित पुत्र वजङ्गी भा० रहीदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५६१ माघ कृ० ११ गुरु०	धर्मनाथ	श्रीसूरि	पत्तन में प्रा० ज्ञा० मं० पूंजा की स्त्री भलीदेवी के पुत्र मं० चांपा ने स्वभा० छाली, पुत्र लक्ष्मीदास, भ्राता चांगा भा० सोनादेवी पुत्र जयन्त, भगिनी अधकूदेवी, पुत्री वाछी-देवी आदि सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १७७, २०३, १७८, १८४, १८२, २०६, १६५, १६६, १५३, १४८।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५७६ चैत्र कृ० ५ शनि०	सुविधिनाथ	अंचलगच्छीय भावसागरसूरि	पत्तननगर में प्रा० ज्ञा० श्रे० लक्ष्मण की स्त्री लक्ष्मीदेवी के पुत्र श्रे० जगा की स्त्री कीवाईदेवी, तोहदेवी के पुत्र श्रे० गदा, लघुभ्राता श्रे० सहजा ने स्वभा० सौभाग्यवती संपूदेवी तथा द्वितीयामाता, वृद्ध भ्राता श्रे० रामादि प्रमुख कुटुम्ब के सहित.
सं० १५८४ चै० कृ० ५ गुरु०	सुमतिनाथ	तपा० सौभाग्य-हर्षसूरि	विशलनगर-वासी प्रा० ज्ञा० लघुशाखीय श्रे० नारद की स्त्री रत्नादेवी के पुत्र श्रे० रामा ने स्वभा० लीलादेवी, पुत्र राजपाल के सहित.
,, ,,	संभवनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	चूड़ीग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नाथा की स्त्री नाईदेवी के पुत्र विरुआ ने भ्राता मटा, लटा स्त्री हासीदेवी पुत्र माधव आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६२४ माघ शु० ६ सोम०	ऋषभदेव	तपा० हीरविजयसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० समरा की स्त्री पुँहुताईदेवी के पुत्र मं० ठाकर ने स्वभा० कमलादेवी, पुत्र देवचन्द्रादि के सहित.

गृह-जिनालय में

सं० १४— ज्ये०	आदिनाथ	घोषपुरीगच्छीय हेमचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वयरसिंह की स्त्री लाखूदेवी के पुत्र ने
सं० १५०६ माघ कृ० ६	संभवनाथ	बृह०गच्छीय देवचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रुहा की स्त्री मचकूदेवी के पुत्र देवसिंह ने स्वभा० चमकूदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.

शान्तिनाथ-जिनालय में

सं० १५१५ माघ० शु० १ शुक्र०	शांतिनाथ	मलधारीगच्छीय गुणसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मांकड़ की स्त्री मेचूदेवी के पुत्र जाऊआ, देऊआ, काला, धरणा ने अपनी माता के श्रेयोर्थ.

अणहिलपुरपत्तन के श्री भाभापार्श्वनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १३१०	शांतिनाथ	बृ० गच्छीय-मानदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० ऊदा की स्त्री आल्हादेवी के पुत्र ने.
सं० १४३४ वै० कृ० २ शुक्र०	विमलनाथ	कमलचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सोढ़ा की स्त्री मेपूदेवी के पुत्र महणसिंह ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १६४, १८६, १६२, १६६, २११, २१२, २१४ । २२६, २३२ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४८३ माघ कृ० ११ गुरु०	पार्श्वनाथ	आगमगच्छीय श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मेघराज की स्त्री मेवूदेवी के पुत्र आम्रसिंह ने स्वश्रेयोर्थ.

श्री मनमोहनपार्श्वनाथ-जिनालय के गर्भगृह में (खजूरी-मोहल्ला)

सं० १२७१	....	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० तिहुणसिंह ने पिता साजण और माता जाखणदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १३६४ चै० कृ० ६	....	राजशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा०....................................
सं० १४८५ वै० शु० ८ सोम०	विमलनाथ	पूर्वसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पातल की स्त्री कील्हणदेवी के पुत्र देव ने स्वभा० देवलदेवी के सहित माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५३० माघ शु० १३ सोम०	श्रेयांसनाथ	उएसगच्छीय-सिद्धसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खीमा ने स्वस्त्री अरघूदेवी पुत्र पंचायण, गिरूआ स्त्री सोही पुत्र वछादि सहित.
सं० १५५२ आषा. शु० २ रवि०	सुमतिनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	वड़लीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० डोसा की स्त्री डाही की पुत्री मल्ही नामा ने स्वश्रेयोर्थ.

श्री जूने-जिनालय में धातु-प्रतिमा (लींबड़ी-पाड़ा)

सं०१२(?)७० फा० कृ० २	अजितनाथ	भावदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वीजा स्त्री वीन्हदेवी के श्रेयोर्थ पुत्र सोमा ने.

श्री बड़े जिनालय में

सं० १५०१ माघ शु० १३ गुरु०	शीतलनाथ	वृ० त० रत्न-सिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० वदा भा० रूजी पुत्र मं० ठाकुरसिंह भा० फदू के पुत्र मं० पर्वत ने माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५०८ वै० शु० ३	चन्द्रप्रभ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	वीरमग्राम-वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० कड़ूआ भा० मटकू के पुत्र भामा ने स्वभा० फातू (पुत्र) वेला, माणिकादि कुटुम्बसहित सर्वश्रेयोर्थ.

श्री पंचासरा-पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १६६२ वै० शु० १५ सोम०	विजयहीरसूरि	विजयसेनसूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० वृ० शा० दोसी शंकर की स्त्री पान्हीदेवी ने पुत्र कुंअरजी और भातृव्य श्रीवंत भार्या आजाईदेवी पुत्र लालजी, पुत्र रत्नजी आदि परिवारसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६६४ फा० शु० ८ शनि०	विजयसेनसूरि-	विजयदेव-सूरि	

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले०, ३१७, २४६, २५५, २४४, २५२, २५४।
प्रा० ले० सं० भा० १ ले० ३१, १७६, २३६। प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ५११, ५१२।

शाहपुर के श्री जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १७७१ मार्ग० शु० ६ सोम०	सहस्रफणा-पार्श्वनाथ	....	शाहपुर-निवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० पुंजा पुत्र रवजी दोनों पिता-पुत्रों ने स्वश्रेयोर्थ.

पत्तन के श्री शांतिनाथ-गर्भगृह में पंचतीर्थी (लींबड़ी-मोहल्ला)

सं० १४६५	विमलनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पूना की स्त्री पूनादेवी के पुत्र देवराज ने स्वपितादि के श्रेयोर्थ.
सं० १४८४ ज्ये० शु० १० बुध०	शांतिनाथ	तपा० सोम-सुन्दर	प्रा० ज्ञा० श्रे० विजय के पुत्र माला, देवा ने भार्या धरणूदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १४६६ फा० शु० २	संभवनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० पद्मा, तिहुण, कीका, गदा की स्त्री वीरु नामा ने स्वपुत्र थावरु के श्रेयोर्थ.
सं० १५०३ ज्ये० शु० १० बुध०	मुनिसुव्रत-स्वामी	अंचलगच्छीय-जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गांगा की स्त्री गंगादेवी के पुत्र शा० आम्रराज की स्त्री उमादेवी के पुत्र श्रे० सहसा नामक सुश्रावक ने स्वभा० संसारदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०४	शांतिनाथ-चोवीशी	तपा० जयचंद्र-सूरि	प्रा० ज्ञा० सं० देवराज की स्त्री वर्जूदेवी के पुत्र रणसिंह वत्ससिंह, कौरणसिंह की स्त्री पूरीदेवी के पुत्र रहिआ ने भ्रातृ माणिकादि के सहित स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५२२ माघ शु० ६ शनि०	विमलनाथ-पंचतीर्थी	वृ० तपा० जिन-रत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० चांगा की स्त्री गौरी के पुत्र सं० भावड़ ने स्वभा० धनदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३० माघ शु० २	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	कुमरगिरि में प्रा०ज्ञा० श्रे० वाघमल ने स्वभा० कपूरदेवी, पुत्र गेला, जावड़, वीरा, हरदास भा० मानदेवी, शाणी-देवी, विजयादेवी, हांसलदेवी, पौत्र वरजांग आदि प्रमुख कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३ पौ० शु० पू० सोम०	आदिनाथ	,,	कुमरगिरि में प्रा० ज्ञा० श्रे० कोठारी भादा की स्त्री सोमादेवी के पुत्र हादा ने स्वभा० राजमती, पुत्र महिपाल जीवराज, जांजण के सहित.

जै० गु० क० भा० ३ ख० २ पृ० ११६६ ।
जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० २६४, २७७, २५६, २६१, २५७, २६७, २८३, २८२ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
			मूलनायक श्री शांतिनाथजी के बड़े जिनालयके गर्भगृह में (कनासा का मोहल्ला)
सं० १२६१	ऋषभनाथ-पंचतीर्थी	नागेन्द्रगच्छीय-रत्नाकरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पाल्हा ने पिता कुरपाल, माता लाछा के श्रेयोर्थ.
सं० १३०५ ज्ये० शु० १५ रवि०	....	कमलाकरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे०
सं० १३८० ज्ये० शु० १०	आदिनाथ-पंचतीर्थी	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० बूटा पुत्र साल्हा चांगण ने माता पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४१७ ज्ये० शु० ६ गुरु०	,, पंचतीर्थी	चैत्रगच्छीय-मानदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धरणा ने पिता ठ० हरपाल के श्रेयोर्थ.
सं० १४४७ फा० शु० ८ सोम०	पद्मप्रभ-पंचतीर्थी	नागेन्द्रगच्छीय-रत्नप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० मेघराज की स्त्री मीणलदेवी के पुत्र पर्वत ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४६६ वै० शु० ३ सोम०	वासुपूज्य	मंडागच्छीय-पासचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० थिरपाल ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४८८ वै० शु० ६	सुमतिनाथ-पंचतीर्थी	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० साल्हा भा० सहजलदेवी के पुत्र मंडन ने स्वभा० मर्वादेवी पुत्र गोधा, देवादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४६४ वै० शु० २ शनि०	श्रेयांसनाथ	सिद्धान्तिगच्छीय-मुनिसिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सांल्हा भा० मोहनदेवी के पुत्र राजा हापा ने पिता-माता और स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०७ वै० कृ० २ गुरु०	नमिनाथ	वृ० तपा० रत्न-सूरि	प्रा० ज्ञा० सं० सेउ की स्त्री मानदेवी के पुत्र कर्मसिंह ने स्वभा० संपूरी के सहित पिता, माता, भ्राता राउल के श्रेयोर्थ.
सं० १५०६ माघ शु० १० शनि०	अजितनाथ	सा. पूर्णिमा-पुण्यचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भीम की स्त्री भलीदेवी के पुत्र छांछा ने स्वभार्या माणकदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५११ ज्ये कृ० ६ शनि०	विमलनाथ	वृ० तपा० रत्न-सिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सामल की स्त्री रांकादेवी के पुत्र पान्हा ने स्वभा० कुतिगदेवी पुत्र कुंभा पासण, सूरा के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१५ ज्ये० शु० ५	,,	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० श्रीसा (?) ने स्वस्त्री रांका, पुत्र पुजा, कुजा भा० जीविणीदेवी, देवदेवी आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ३५३, ३३०, ३५६, ३२४, ३५६, ३१८, ३१३, ३२०, ३०८, ३२३, ३११, ३७०।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५५२ माघ कृ० १२ बुध०	आदिनाथ-पंचतीर्थी	चन्द्रगच्छीय-वीरदेवसूरि	पत्तन में प्रा० ज्ञा० श्रे० महिराज की स्त्री अधकूदेवी के पुत्र श्रे० हंसराज ने स्वभा० चंगीदेवी, पुत्री रूपादेवी, सोनादेवी, कीवादेवी, भ्रा० हलदेवादि के सहित सर्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६३ आषाढ़ शु० ७ गुरु०	पार्श्वनाथ	तपा० निगमप्रादुर्भावक इंद्रनंदिसूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नत्थमल की स्त्री वीरादेवी के पुत्र सोनमल की स्त्री सोनादेवी के पुत्र व्य० कडूआ ने सकुटुम्ब.

श्री आदिनाथ-गर्भगृह में

सं० १४०५ वै० शु० ३ मंगल०	महावीर	नाणचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० ठ० वीसल ने पिता जांजण माता सूहवदेवी तथा ठ० वउला के श्रेयोर्थ.

माणसा के श्री बड़े जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १७८५ मार्ग० शु० ५	विमलनाथ	अंचलगच्छीय-विद्यासागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वल्लभदास के पुत्र माणिक्यचन्द्र ने.

वीजापुर के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १४८८ ज्ये० कृ० ६	सुपार्श्वनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नोड़ा की स्त्री रुदी के पुत्र शिवराज ने स्वभा० तेजूदेवी, भ्रा० अर्जुनादि के सहित स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ.
१५४१	आदिनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राजमल ने स्वभा० नीणूदेवी, पुत्र कला भा० रुक्मिणीदेवी पुत्र वलादि के सहित.

श्री शांतिनाथ-जिनालय में

सं० १५१७ माघ शु०	पद्मप्रभ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे पेथा की स्त्री शाणी के पुत्र माला के श्रेयार्थ. भ्राता भीलराज ने भ्रातृ तेजपाल, मेलराजादि के सहित.

श्री गोड़ीपार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १५१० मार्ग० शु० १५	आदिनाथ-पंचतीर्थी	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देवराज भा० रत्नादेवी के पुत्र हाला ने स्वभा० कर्मिणि, पुत्रादि प्रमुख कुटुम्बसहित स्वमाता के स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ३०३, ३७५, ३८१, ३८८, ४२४, ४२७, ४३७, ४४६।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५३० माघ शु० १३ रवि०	कुन्थुनाथ-पंचतीर्थी	वृ० तपा० जिन-रत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० दो० तुला की स्त्री नामनदेवी के पुत्र सालिग ने स्वभा० रमी, जसादेवी, भ्रातृपुत्र सधारण के सहित भ्राता श्रीधर के श्रेयोर्थ

सलखणपुर के श्री जिनालय में

सं० १३११ चै० कृ० पच बुध०	अजितनाथ	....	मिलग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० धयरसिंह की स्त्री जयंता-देवी के पुत्र जयंतसिंह ने माता के श्रेयोर्थ.
सं० १३३० चै० कृ० ७ रवि०	संभवनाथ	श्री मुनिरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० महं० राजसिंह के पुत्र चाचा ने पुत्र महं० धनसिंह के श्रेयोर्थ.

लाडोल के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५१०	पार्श्वनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	उंडावासी श्रे० गांगा की स्त्री टीबूबहिन के पुत्र गहिदा ने स्वश्रेयोर्थ.

संडेसर के श्री आदिनाथ-जिनालय के गर्भगृह में

सं० १४८५ ज्ये० शु० १३	मुनिसुव्रत-स्वामि	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भोजराज की स्त्री पाल्हूदेवी के पुत्र श्रे० जयता ने स्वभा० जयतलदेवी आदि कुटुम्ब के सहित.
सं० १५०७	शांतिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धरसिंह ने स्वस्त्री वील्हणदेवी, पुत्र श्रे० लापा भा० सूदी आदि के सहित स्वमाता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५२७	श्रेयांसनाथ-	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	महिगाल (साखा)वासी प्रा०ज्ञा० गां० श्रे० पर्वत के पुत्र नरपाल ने भा० नागलदेवी, वृद्धभ्राता झांगट, धर्मिणी, पुत्र सहसादि के सहित.
सं० १५६४ ज्ये० शु० १३ शुक्र०	संभवनाथ	....	पालीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गदा की स्त्री हर्लीदेवी के पुत्र पदूआ की स्त्री कमलादेवी के पुत्र देवदास ने स्वभा० सोनदेवी, भ्राता गेरा आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री चन्द्रप्रभुजी के गर्भगृह में

सं० १५३३ पौ० शु० २	मुनिसुव्रत	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० आमा ने स्वस्त्री बाई, पुत्र श्रे० धुरकल भा० जीविणीदेवी प्रमुखकुटुम्ब के सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ४५१। प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ५६५, ४६३।
जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ४५४, ४७७, ४७६, ४७५, ४७८, ४८०।

करबटिया पेपरदर के श्री अभिनन्दन-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१४	शीतलनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	मेहतावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सोमचन्द्र की स्त्री वारूदेवी के पुत्र आसराज ने स्वभा० गोमतिदेवी, भ्रा० समधर पुत्र शिवादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
			श्री शांतिनाथ-जिनालय में चोवीशी
सं० १५२३ माघ शु० ६ रवि०	सुविधिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० केल्हा की स्त्री हंसादेवी के पुत्र श्रे० खेता की स्त्री खेतलदेवी के पुत्र भीमसिंह ने.

बीसनगर के श्री गोड़ीपार्श्वनाथ-जिनालय के गर्भगृह में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२५ माघ छु० ६	वासुपूज्य	तपा० सुधानंद-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० काजा भा० राजूदेवी के पुत्र श्रे० महणा ने स्वभा० माणकदेवी, पुत्र करणादि के सहित.
			श्री शांतिनाथ-जिनालय में
सं० १५२४ वै० शु० ३	पार्श्वनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	अजदरपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वाछा की स्त्री जसमादेवी के पुत्र सूंटा भा० हीरादेवी के पुत्र गुणिआ ने स्वभा० रामतिदेवी, भ्रातृ नाना, वीरादि के सहित.
सं० १५३५ माघ शु० ९ सोम०	अरनाथ	उदयसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० रामा की स्त्री हेमादेवी ने पंचम्युद्यापन पर प्रतिमाचक्र करवाया.
सं० १५७० माघ शु० १३ सं०	कुन्थुनाथ	नागेन्द्रगच्छीय-हेमसिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० अमा ने स्त्री उमादेवी, पुत्र जीवराज, सुरा भा० सुहवदेवी पुत्र हरराज के सहित माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५८१ माघ शु० १० शुक्र०	शांतिनाथ	निगमप्रभावक-आणंदसागरसूरि	पत्तनवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० आसराज की स्त्री लहिफूदेवी के पुत्र दो० गांगा ने स्वभा० पद्मावती, द्वितीया भा० हीरादेवी, पुत्र वीसलसिंह भा० विमलादेवी पुत्र श्रीचंद्रादि के सहित.
			श्री कल्याणपार्श्वनाथ-गर्भगृह में
सं० १५२४ वै० शु० ३	शीतलनाथ	,,	सलखणपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नरसिंह की स्त्री नागलदेवी के पुत्र जयंत, भ्रातृ पाना भा० हीरादेवी, पुत्र महीराज, जिनदासादि के सहित श्रे० पाना ने पिता माला प्रमुख स्वपूर्वजों के श्रेयोर्थ.
,,	पार्श्वनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० पातल की स्त्री चांपूदेवी के पुत्र श्रे० गुणराज ने स्वभा० नागनदेवी, पुत्र टील्हा एवं स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ४८२, ४६०, ५०१, ५१७, ५११, ५१५, ५१८, ५२६, ५३१।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १६१७ ज्ये० शु० ५ सोम०	श्रेयांसनाथ	तपा० विजयदान-सूरि	पत्तनवासी महं० गोगा ने स्वभा० जयवंती, सुनाबाई आदि के एवं स्वश्रेयोर्थ.

बड़नगर के श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १५१५ फा० शु० १२	सुपार्श्वनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे०....................
सं० १५१६ माघ शु० १३	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० महिपाल की स्त्री माणिकदेवी के पुत्र वेलराज ने स्वभा० वनादेवी प्रमुख परिवार के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५४ माघ कृ २ बुध०	नमिनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	गोलग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भादा की स्त्री हीरादेवी के पुत्र श्रे० जांटा ने स्वभा० टीहिकूदेवी आदि प्रमुख कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५५ वै० शु० ३ शनि०	धर्मनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	गालहउसैणग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० गोपाल की स्त्री अघुदेवी के पुत्र भोवा की स्त्री जाणीदेवी के पुत्र श्रे० जयसिंह ने स्वभा० जसमोददेवी, पुत्र पोपट आदि प्रमुख कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५५ फा० शु० २ सोम०	सुमतिनाथ	....	महिसाणा में प्रा० ज्ञा० श्रे० सोढ़ा की स्त्री देवमती के पुत्र श्रे० छापा देपा ने भा० कर्मादेवी, पुत्र लटकण, भा० लीलादेवी के सहित.
सं० १५५७ वै० शु० १३ शनि०	पद्मप्रभ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० धर्मपाल की स्त्री लक्ष्मीदेवी के पुत्र कुरा ने स्वभा० चंपादेवी, पुत्र महिराज के श्रेयोर्थ विसलनगर में.
सं० १५८४ चै० कृ० ५ गुरु०	शांतिनाथ	वृ० तपा० सौभाग्य-सागरसूरि	वीशलनगरवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० धर्मराज की स्त्री नाउदेवी पुत्र जोगा की स्त्री गोमती के पुत्र श्रे० धरणा ने वृद्धभ्राता हर्षा के सहित स्वभा० मणकीदेवी, पुत्र जयंत, जसराज, जयवंत, पौत्र जयचन्द्र आदि के सहित.
सं० १५६७ वै० शु० ३	आदिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सिंह की स्त्री वीलूदेवी के पुत्र सेदा ने स्वभा० धर्ती, भ्रातृ जसराज भा० रूपिणी, राजमल, भीमराज आदि कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६२८ वै० शु० ११ बुध०	धर्मनाथ	तपा० कल्याणविजय-गणि	वटपल्लीवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० जगमाल ने स्वभा० अजादेवी, पुत्र पुंजा आदि प्रमुख कुटुम्बीजनों के सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ५३१, ५५१, ५३६, ५४०, ५४६, ५५४, ५४८, ५४५, ५५५, ५४६।

श्री चतुर्मुख-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४८४ वै० शु० ३	विमलनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गणसिंह की स्त्री गच्छरदेवी के पुत्र नरदेव ने स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४८९ आषाढ़ शु० २	सुपार्श्वनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० हवसरसिंह की स्त्री वर्जूदेवी के पुत्र सारंग ने स्वभा० साल्ही के सहित.
सं० १५०४ ज्ये० कृ० ११ मंगल०	पार्श्वनाथ	उपकेशगच्छीय देवगुप्तसूरि	प्रा० ज्ञा० महं० गीला भा० पूरादेवी के पुत्र बालचन्द्र ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०५ पौ० कृ० ३ रवि०	संभवनाथ	वीरचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे०..

श्री आदीश्वरनाथ के गर्भगृह में

सं० १३३९ वै० शु० ११ शुक्र०	शांतिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० आसल के पुत्र सिद्धपाल ने.

श्री कुन्थुनाथ के गर्भगृह में

सं० १४९४	कुन्थुनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लाला की स्त्री जासुदेवी के पुत्र आसा ने.
सं० १५७६ वै० शु० ६ सोम०	अभिनन्दन	तपा० हेमविमल-सूरि	सदरपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० तोड़ा की स्त्री लाच्छी के पुत्र श्रे० शाणा ने स्वभा० जीवींदेवी, पुत्र राजा, हीरादि, पितृव्य श्रे० नरवदादि के सहित.

अहमदनगर के श्री महावीर-जिनालय में

सं० १५०४ माघ कृ० ९ रवि०	शांतिनाथ	तपा० जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देवराज भा० कर्मादेवी के पुत्र सहसराज ने स्वभा० चमकूदेवी, पुत्र सायर, आरायण, आयर, माणिक, मंडन, धर्मादि कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री अजितनाथ-जिनालय में

सं० १५०४ आषाढ शु० २	सुपार्श्वनाथ	तपा० जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० चांपा भा० हमीरदेवी के पुत्र पुरा ने स्वभा० माजूदेवी, पुत्र दलादि के सहित भ्रातृ सायर एवं स्वश्रेयोर्थ.

सूरत के जिनालय में (मोटी-देसाई पोल)

सं० १५४३ ज्ये० शु० ११ शनि०	संभवनाथ	वृ० तपा० उदय-सागरसूरि	वीसलनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० रामसिंह भा० धर्मिणी के पुत्र श्रे० आसराज ने स्वभा० कस्तूरदेवी, पुत्र तेजपाल, भ्रातृ थाईआ, कुरां, अमीपाल के सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ५६४, ५५८, ५६३, ५६०, ५६८, ५६९, ५७०, ५८७, ५९६, ६०५।

रायपुर के श्री जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२१ माघ शु० १३	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वाघा भा० हर्पूदेवी के पुत्र जिनदास ने स्वभा० शाणीदेवी, पुत्र हरराज, हेमराजादि कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.

साणंद के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५०६ ज्ये० कृ० ५	पार्श्वनाथ	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जसराज की स्त्री पद्मादेवी के पुत्र पोचमल ने स्वभा० फदकूदेवी पुत्र·········समरादि के सहित.
सं० १५२३ माघ कृ० ७ रवि०	नमिनाथ-चोवीशी	तपा०लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जयसिंह की स्त्री लंपूदेवी के पुत्र श्रीकाला, धरणा, भ्राता श्रे० गेलराज ने स्वभा० सारु आदि प्रमुख कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.

कोलवड़ा के श्री जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५३७ ज्ये० कृ० ११ गुरु०	शीतलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	महीशानकनगर में प्रा० ज्ञा० श्रे० काला की स्त्री धानूदेवी के पुत्र श्रे धनराज ने स्वभा० मेघमती, पुत्र महीराज, सोढ़, जिणदासादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

गेरीता के श्री जिनालय में

सं० १५२४ वै० शु० ६	शीतलनाथ	तपा०लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहसा की स्त्री रानीदेवी के पुत्र प्रयसाधु-केसव वेणाजिनदासादि ने प्रमुख कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५४६ आषाढ़ शु० १ सोम०	वासुपूज्य	अंचलगच्छीय सिद्धान्तसागरसूरि	कर्णावतीनिवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० सहसा की स्त्री सहसादाद(?) के पुत्र आसधीर ने स्वभा० रमादेवी के श्रेयोर्थ.

पेथापुर के श्री बावन-जिनालय में चोवीशी

सं० १५०५ वै० शु० १३	विमलनाथ-चोवीशी	तपा० जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० शा० चाँड़ा(?) की स्त्री गौरादेवी के पुत्र देन्हा ने स्वभा० देन्हणदेवी, भ्रातृ उगमचंद्र, भ्रातृपुत्र कालु, पांपा, रविन्द्रादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२५ वै० शु० ६ सोम०	सुविधिनाथ	तपा०लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० ट्रोमी महिया की स्त्री लाछु के पुत्र श्रे० धरणा ने स्वभा० हंगादेवी आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ६२०, ६३७, ६३६, ६६१, ६६८, ६६४, ६६५, ६८४।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५५२ वै० शु० १३ सं०	विमलनाथ	नागेन्द्रगच्छीय हेमरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोपीचन्द्र की स्त्री सुलेश्री के पुत्र देवदास ने स्वभा० शोभादेवी गुणिया माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५५६ आषाढ़ शु० ८ बुध०	चन्द्रप्रभ	तपा० विमलशाखीय ज्ञानविमलसूरि	राजनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वीयसव की स्त्री रामबाई के पुत्र श्रे० वीरचन्द्र ने स्वभा० सावित्रीदेवी, पुत्र जेठमलादि के सहित.
सं० १५६६ मार्ग० शु० ५ शुक्र०	आदीश्वर-चोवीशी	अंचलगच्छीय जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नाउ ने स्वस्त्री हंसादेवी, पुत्र ठाकुरसिंह भा० आल्हादेवी, भ्रातृ वरसिंह भा० सलाखुदेवी पुत्र चांदमल भा० सोमदेवी, ठाकुदेवी पुत्र जयसिंह के सहित.
सं० १७५१ आषाढ़ शु० ८ बुध०	चन्द्रप्रभ	तपा०विमलशाखीय ज्ञानविमलसूरि	राजनगरवासी प्रा० ज्ञा० सा० वधली की स्त्री रामबाई ने पुत्र सविरा भा० सावित्रीदेवी पुत्र जेत्रादि के सहित.
सं० १७५८ माघ शु० १० बुध०	अजितनाथ	विजयाणंदसूरि-गच्छीय धनेश्वरसूरि	राजनगर में प्रा० ज्ञा० श्रे० सौभाग्यचन्द्र के पुत्र विजयचंद्र ने.

कलोल

सं० १५६० पौ० कृ० १२ रवि०	आदिनाथ चोवीशी	तपागच्छीय-लघुशाखीय-सौभाग्यहर्षसूरि	त्रिश्वलनगरवासी प्रा०ज्ञा० दो० श्रे० राम की स्त्री रामादेवी के पुत्र ठाकुर ने स्वभा० अक्वादेवी, पुत्र हीराचंद्र, भ्रातृ नाकर भा० जीवादेवी पुत्र जयचंत, भ्रा० वत्सराज भा० अजीदेवी पुत्र जागा, भ्रातृ रंगा भा० कनकदेवी आदि के सहित सर्वश्रेयोर्थ.

कड़ी के मूलनायक श्री संभवनाथ के जिनालय में

सं० १४८१ माघ	विमलनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे०.....................

खेरालु के श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १४६६ श्रा० शु० १०	सुविधिनाथ	तपा० देवसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० पुत्र पाहड़ने भ्राता आदि के सहित
सं० १४८५	विमलनाथ	तपा० सोम-सुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वकराज ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४६६ माघ शु० ५	महावीर	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० आवड़ की स्त्री माल्हणदेवी के पुत्र वरसिंह ने पुत्र मूलसिंह, मणोर पुत्र मांकू के सहित स्वभा० हिमदेवी के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ७०१, ६६६, ६६८, ७०६, ७१०, ७१६, ७३०, ७६१, ७५३ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५५६ माघ कृ० २ गुरु०	सुमतिनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	गोलवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वाघमल की स्त्री वमकूदेवी के पुत्र सीहा की स्त्री राणादेवी ने भ्रातृ नाथा भा० जसमादेव के सहित स्वश्रेयोर्थ.

कोना

सं० १५०८ वै० शु० ५ शनि०	शांतिनाथ	द्विवंदनीकपक्षीय-देवगुप्तसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० करण की स्त्री लीलादेवी के पुत्र लाड़ा भा० ओतम.

अहमदाबाद के श्री बावन-जिनालय में (हठीभाई की वाड़ी)

सं० १५०४ ज्ये० शु० १० सोम०	आदिनाथ-पंचतीर्थी	वृ० तपा० रत्न-सिंहसूरि	अहमदाबादवासी प्रा० ज्ञा० मं० गेलराज की स्त्री रयकूदेवी की पुत्री आपूदेवी ने स्वश्रेयोर्थ.

श्री जिनालय में (सोदागर की पोल)

सं० १३०५ ज्ये० शु० ७	....	नागेन्द्रगच्छीय-उदयप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा०............
सं० १४५८ वै० कृ० २ बुध०	पार्श्वनाथ	पूर्णिमापक्षीय-शीतलचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कुंदा की स्त्री खांतीदेवी के पुत्र गोवल ने माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४८१ फा० शु० २	पार्श्वनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धरा की स्त्री पोपी के पुत्र आशा ने स्व-भार्या रूपिणीदेवी पुत्र सारंगादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१० माघ मास में	धर्मनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	देकावाटवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सता की स्त्री सूदीदेवी के पुत्र वसराज ने स्वस्त्री सहसुदेवी, पुत्र माणक, रंगादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० कृ० ४ शुक्र०	कुंथुनाथ	वृ० तपा० जिन-रत्नसूरि	सहुआलावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गांगा की स्त्री रूपिणी की पुत्री पाहू नाम्ना ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२५ मार्ग० शु० १०	आदिनाथ-चोवीशी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	अहमदाबाद में प्रा० ज्ञा० मं० चांपा की स्त्री चांपलदेवी के पुत्र मं० सरिया ने स्वभा० सहिजलदेवी, इजलदेवी, पुत्र हेमराज, धनराजादि के सहित पितृव्य भागा के श्रेयोर्थ.
सं० १५३० मा० शु० ५ शुक्र०	चन्द्रप्रभ-पंचतीर्थी	श्री सर्वसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पर्वत की स्त्री संपूरीदेवी के पुत्र मान्हा ने स्वभा० धनीदेवी, रूखिजादेवी, पुत्र नरपा, हापी के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० लें० सं० भा० १ लें० ७१२. ७५४, ७६८, ७८८, ७८४, ७८६, ७९८, ७८६, ८०१ ।

श्री संभवनाथ-जिनालय में (झवेरीवाड़ा)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४६६ माघ शु० १३ शनि०	पार्श्वनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० कडूण की स्त्री ललतीदेवी के पुत्र केल्हा, आल्हा ने.
सं० १४७१ माघ शु० ६ शनि०	शांतिनाथ	कवड़गच्छीय-भावशेखरसूरि	प्रा०ज्ञा० मं० हदा ने भा० वाहणदेवी पुत्र रत्ना भा०रत्नादेवी पुत्र सूरा के सहित सर्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०१ आषाढ़ शु० २	आदिनाथ	तपा० मुनि-सुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० ऊगम की स्त्री गूरीदेवी के पुत्र धर्मराज ने स्वभा० लीवी के सहित स्वभ्रातृ देवचन्द्र के श्रेयोर्थ.
सं० १५०८ वै० शु० ३	नमिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	अहमदाबाद में प्रा० ज्ञा० श्रे० भीम की स्त्री वावूदेवी के पुत्र मं० गोविंद की स्त्री झबकू नामा ने श्रे० चांपा भा० रूपी की पुत्री के श्रेयोर्थ.
सं० १५०८ का० कृ० ५	वासुपूज्य	साधुपूर्णिमा-पक्षीय पुण्यचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा महं० जीजा के पुत्र पाता की स्त्री हीरादेवी की पुत्री अंकीदेवी ने अपने पति चांइया के श्रेयोर्थ.
सं० १५१०	कुन्थुनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे पर्वत की स्त्री मनीदेवी के पुत्र साजण ने स्वभा अमकू, पुत्र नरपाल, मामा धारादि के सहित.
सं० १५१३ फा० कृ० ११	सुमतिनाथ	तपा० ,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० पाना की स्त्री नागिनीदेवी के पुत्र श्रे० महिराज, पहिराज ने स्वभा० पद्मादेवी, आल्हदेवी पुत्र पूनसिंह के सहित स्वमाता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१६ माघ शु० १३	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मून्जराज की स्त्री मांजूदेवी के पुत्र चांपा ने भ्रातृ गोपा, देवा भा० रामतिदेवी, वजूदेवी, नीतूदेवी के सहित सर्वश्रेयोर्थ.
सं० ,,	आदिनाथ-पंचतीर्थी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० केल्हा की स्त्री करेणु के पुत्र खात्रड़ भार्या अर्घूदेवी के पुत्र सोमचन्द्र ने स्वभा० मेघादेवी, पुत्र जइता, खेतादि के सहित.
सं० १५२४ आषा० शु० १० गुरु०	श्रेयांसनाथ-चोवीशी	सा० पूर्णिमा-पुण्यचन्द्र	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोदा की स्त्री रामतिनामा ने भला, रहिया के सहित.
सं० १५३० माघ कृ० ७ बुध०	शांतिनाथ	पिप्पल० धर्म-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० गांगा भा० लहकू के पुत्र मं० वीसा ने स्वभा० धरन्वति के सहित माता-पिता, भ्रा० रंगा, अद्रा, महिपा के एवं अपने श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ७६४, ८२३ । प्रा० ले० सं० भा० १ ले० ११० ।

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ८१७, ८०६, ८४०, ८३५, ८१३, ८१४, ८१५, ८४३ ८०४ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५३७ वै० शु० १० सोम०	वासुपूज्य-पंचतीर्थी	द्विवंदनीकगच्छीय-सिद्धसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्ना ने भा० रामति, पुत्र अदा भार्या कपूरी पुत्र कुरा के सहित.
सं० १५४४ फा० शु० २ शुक्र०	विमलनाथ	आगमगच्छीय-विवेकरत्नसूरि	पेयड़संतानीय प्रा० ज्ञा० श्रे० गणीआ के पुत्र भूपति ने स्वभा० साधूदेवी, पुत्र सचवीर, दूदादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५८० वै० शु० १२ शुक्र	सुमतिनाथ	आगमगच्छीय-शिवकुमारसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० अर्जुन ने स्वभा० आलूणदेवी, पुत्र देवराज स्त्री लक्ष्मीदेवी पुत्र लहुआ भा० वीरा के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री महावीर-जिनालय में

सं० १४८७ मार्ग० शु० ५	शांतिनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देवड़ भा० देल्हणदेवी के पुत्र हीराचन्द्र ने भा० पूरीदेवी, पुत्र राजा, वजादि के सहित.
सं० १५०६ माघ शु० ५ सोम०	शीतलनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० आका भा० घरणीदेवी पुत्र नृसिंह भा० माकूदेवी के पुत्र पासा ने स्वभा० चंपादेवी, भ्रा० सचादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१० चै० कृ० १० शनि०	सुमतिनाथ	उके० सिद्धाचार्य-संतानीय कक्कसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सारंग ने स्वभा० सांरूदेवी, पुत्र जाला, तलकादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० शु० ३ सोम०	विमलनाथ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लाखा भा० वयजू के पुत्र देवराज ने स्वभा० वानूदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री चतुर्मुखा-शांतिनाथ-जिनालय में पंचतीर्थी

सं० १५१२ माघ कृ० ५	सुविधिनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० महिपाक ने स्वस्त्री महूदेवी, पुत्र पद्मा, वान्हा, रत्ना, हाला, मका, कपिनादि के सहित स्वपितृ एवं स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५३ माघ शु० ५ रवि०	कुन्थुनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सरसा की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र श्रे० धरणा ने भा० सहजलदेवी, भ्रातृ कर्मसिंहादि के सहित.
सं० १५५८ फा० शु० ८ सोम०	विमलनाथ	पूर्णिमापक्षीय श्रीसूरि	नृसिंहपुर में प्रा० ज्ञा० को० श्रे० पेथा की स्त्री वजू के पुत्र गेला भा० कीकीदेवी के पुत्र थावर, माईआ, रत्ना—इनमें से थावर ने स्वभा० जामी, पुत्र हरिराज, रामादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान् के गर्भगृह में

सं० १४४६ वै० शु० ३ शुक्र०	मुनिसुव्रत	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धूघा ने स्वभा० चांपलदेवी, पुत्र देदा, वेला पिता-माता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ८४४, ८२४, ८१०, ८४५, ८५३, ८५८, ८७१, १४६, ८८६, ८७८, ६०२।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४६०	श्रेयांसनाथ	श्रीसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० करणराज भा० कर्मादेवी पुत्र खीमसिंह चांपादि ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४६३ फा० कृ० ११ गुरु०	शीतलनाथ	अंचलगच्छीय-जयकीर्त्तिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेता की स्त्री ऊमादेवी के पुत्र भीड़ा, छत्र धरणा ने.
सं० १५०७	संभवनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० सिंधा की भा० शृंगारदेवी पुत्र व्य० वसुक ने स्वभा० लहकू, पुत्र देल्हा, करणा, कर्मादि के सहित.
सं० १५२२	धर्मनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लींवा की स्त्री नांकूदेवी के पुत्र वना की स्त्री जीविणी नामा ने ज्येष्ठ श्रे० वाघमल, वीरा, देवर धना, देवृजाया रूपमती आदि प्रमुख कुडुम्ब के सहित.

श्री महावीर-जिनालय में (रीची रोड़ के ऊपर)

सं० १४२७ वै० शु० १० शुक्र०	कुलदेवीअंबिका	·········	कारटाड़वासी प्रा० ज्ञा० श्रे० जगसिंह की शाखा में उत्पन्न श्रे० झांझा के पुत्र दिपा ने.
सं० १४७३ ज्ये० शु० ४ गुरु०	विमलनाथ	लक्ष्मीचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० करणा की स्त्री कश्मीरदेवी के पुत्र देल्हा ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४८५	शीतलनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० झांझण की स्त्री चांपादेवी के पुत्र धनराज ने स्वभा० झमकू, भ्रातृ गांगा, येला के सहित.
सं० १४९२ वै० शु० २	वर्धमान	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० नृसिंह की स्त्री हंसादेवी के पुत्र श्रे० पर्वत ने स्वभा० छूसी, पुत्र धरणादि के सहित.
सं० १४९६ मार्ग० शु० ९	सुविधिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा०श्रे० पूना के पुत्र रूदा भा० धांई के पुत्र सं० महिराज ने स्वभा० रामति आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०९ माघ शु० ५ सोम०	सुमतिनाथ	भीमपल्लीय-जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धरणा की स्त्री रांका के पुत्र माईया ने भ्रातृवृद्धि के श्रेयोर्थ.
सं० १५१६ वै० शु० ५ गुरु०	अभिनन्दन	श्रीसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० डूंगर ने स्वस्त्री लाड़ीदेवी, पुत्र अमरसिंह भा० वाल्ही, महिराज भा० कडूदेवी स्वकुडम्ब के श्रेयोर्थ.
सं० १५१६	पार्श्वनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	अहमदावाद में प्रा० ज्ञा० गां० श्रे० जगसिंह की स्त्री सोभादेवी, पुत्र भावड़ ने स्वभा० गदूदेवी, पुत्र देवदत्त के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ९०६, ९०८, ९१०, ९१७, ९४८, ९७७, ९८२, ९६४, ९६७, ९३१, ९३७, ९३४ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२० वै० शु० ३	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० अलवा भा० धरणादेवी के पुत्र रामचन्द्र ने स्वभा० खेतादेवी, पुत्र जाणादि के सहित.
सं० १५४७ वै० कृ० ८ रवि०	मुनिसुव्रत	....	वीरमग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सिंघा की स्त्री अमरीदेवी के पुत्र नत्थमल ने स्वभा० टबकूदेवी, पुत्र आना, शाणा, सहुआ, भ्रातृ जावड़ादि के सहित.
सं० १५५५ वै० शु० ३	अजितनाथ	खरतरगच्छीय-जिनहर्षसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मा की स्त्री अमरीदेवी के पुत्र श्रे० हीराचन्द्र ने स्वभा० हीरादेवी, पुत्र रामचन्द्र, भीमराज आदि के सहित कड़िग्राम में.
सं० १५६४ ज्ये० शु० १२	शीतलनाथ	तपा० जयकल्याणसूरि	कर्णपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० केल्हा भा० चांईदेवी के पुत्र धरणा ने स्वभा० कडूदेवी, पुत्र, पुत्री के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५७२ फा० कृ० ४ गुरु०	वासुपूज्य	तपा० हेमविमलसूरि	पनानवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० रत्नचन्द्र की स्त्री जासूदेवी के पुत्र माईआ ने स्वभा० हर्षादेवी, पु० सांडा के सहित सर्वश्रेयोर्थ.
सं० १५७७ ज्ये० शु० ५	शीतलनाथ	,,	अहमदाबादवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वरसिंह की स्त्री रूड़ीदेवी की पुत्री पूहुती नामा ने स्वपुत्र अजा, भा० धनादेवी प्रमुख कुटुम्बीजनों के सहित.
सं० १५८१ पौष शु० ५ गुरु०	संभवनाथ	,,	शिकंदरपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० धर्मा भा० धर्मादेवी के पुत्र पोपट ने स्वभा० प्रीमलदेवी, पु० कुरजी प्रमुख कुटुम्बीजनों के सहित.
सं० १६६३ वै० शु० ६ बुध०	मुनिसुव्रत	तपा० विजयदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० तेजपाल के पुत्र सहजपाल ने.
सं० १६६४ माघ शु० ३	श्रेयांसनाथ	वृ०खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि	प्रा०ज्ञा० मं० वेगड़ की स्त्री चलहणदेवी के पुत्र देवचन्द्र ने स्वभा० धनदेवी, पुत्र मुरारि, मुकुन्द, माण आदि के सहित.
सं० १७२१ ज्ये० शु० ३	नेमिनाथ	तपा० विजयराजसूरि	सिरोहीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गहीजल के पुत्र सं० कर्मा ने.
सं० १७८३ वै० कृ० ५ गुरु०	नमिनाथ	वृ० तपा० भुवनकीर्त्तिसूरि	शिकंदरपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वाघजी की स्त्री नाथाबाई ने पुत्र पासवीर, समरसिंह के सहित.

श्रीअजितनाथ-जिनालय में (शेखजी का मोहल्ला)

सं० १४३२ माघ पूर्णिमा गुरु०	सुविधिनाथ-पंचतीर्थी	वृद्धिसागरसूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गोदा झांझण ने करवाया और श्रे० नाला ने प्रतिष्ठित किया.

जै०धा०प्र० ले० सं० भा० १ ले० ६६३, ६३२, ६२८, ६४५, ६२६, ६२७, ६८७, ६६१, ६२३, ६६०, ६७६, १००७।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५०४ फा० शु० ११	कुन्थुनाथ	तपा० जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० माला की स्त्री रखधू के पुत्र सांडा ने स्वभा० देऊदेवी आदि कुटुम्ब के सहित.
सं० १५१७ फा० शु० ३	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	मालवणग्रामवासी प्रा० ज्ञा० मं० माईआ के पुत्र रत्नचन्द्र ने स्वभा० रानूदेवी प्रमुखकुटुम्बसहित.
सं० १५२५ माघ शु० ३ सोम०	शांतिनाथ	अंचलगच्छीय जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मोल्हा की स्त्री माणिकदेवी के पुत्र भादा की स्त्री भावलदेवी के पुत्र ढावा, ढाका ने स्वपूर्वजश्रेयोर्थ.
सं० १५३८ वै० शु० ३	सुविधिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा०ज्ञा० दो० श्रे० शिवदास की स्त्री भली नामा ने पुत्र सहजा, अजा, पुत्री पद्मा प्रमुख-कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ अहमदावाद में.

श्रीशांतिनाथ-जिनालय में

सं० १४२५ वै० शु० १०	शांतिनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोटा ने पिता वरदेव, माता संसारदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५०५ पौ० कृ०	पार्श्वनाथ	तपा० जयचन्द्र-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेता की स्त्री गांगीदेवी के पुत्र तेजसिंह ने स्वभा० कदूदेवी, पुत्र समधर, मेला, भादा, चांदादि के सहित भ्रातृ हाजी के श्रेयोर्थ.
सं० १५०५ माघ शु० ८ शनि०	विमलनाथ	पूर्णिमापक्षीय दयासागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सूदा की स्त्री लाड़ीबाई के पुत्र देपा ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५८४ आषाढ़ शु० १	आदिनाथ	सौभाग्यनंदिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जयसिंह स्त्री जसमादेवी, जना, हरदास ने.

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (देवसा का पाड़ा)

सं० १४६० फा० शु० ११	वर्धमान	तपा० सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० महं० नरपाल भा० नामलदेवी के पुत्र वीसल ने स्वभा० वील्हणदेवी पुत्र सादा, भादा, हांसादि कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०७ ज्ये० शु० २	मुनिसुव्रत	तपा० रत्नसिंहसूरि	वालिंभावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मण भा० कर्मादेवी के पुत्र कांधा ने स्वभा० धारूदेवी, पुत्र हांसा, वानरादि कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १०१६, ६६६, १००८, १०२१, १०२४, १०४६, १०५१, १०२५, १०५५, १०८६ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१३	वासुपूज्य	तपा० रत्नशेखरसूरि	वीसलनगर में प्रा० ज्ञा० श्रे० महिराज की स्त्री वर्जूदेवी के पुत्र श्रे० आंबा ने स्वभा० संपूरी, पुत्र हेमराज, देवराजादि के सहित श्वसुर श्रे० केल्हण भा० किल्हणदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५१६ ज्ये० शु० ३	आदिनाथ	,,	पत्तन में प्रा० ज्ञा० श्रे० सागर की स्त्री सचूदेवी के पुत्र हलराज ने स्वभा० मटकूदेवी, पितृ देवदास, राघव, भूचरादि कुटुम्ब के सहित-स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२५ मार्ग शु० १०	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० गांगा भा० गंगादेवी के पुत्र देवदास ने स्वभा० पूरी, पुत्र दादादि कुटुम्ब के सहित.
सं० १५३२ वै० शु० १५	सुमतिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० देवराज की स्त्री रुपिणी के पुत्र पूंजा की स्त्री मृगदेवी ने.
सं० १५३३ माघ कृ० १०	आदिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० नत्थमल की स्त्री सुलेश्री के पुत्र प्रताप ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५० वै० शु० ५ रवि०	संभवनाथ	सा० पू० उदयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गुणीया की स्त्री धर्मादेवी के पुत्र लालचंद्र ने स्वभा० खीमादेवी के सहित
सं० १५५२ फा० शु० ६ शनि०	धर्मनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	सींहुजवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० कहूआ भा० चमकूदेवी के पुत्र जीतमल ने स्वभा० जसमादेवी, पुत्र मेघराज, वीका, नांई, आमाईयादि कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६७ ज्ये० शु० १ शुक्र०	आदिनाथ	जयकल्याणसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मनका की पुत्री श्रे० हरराज भा० कर्मादेवी पुत्र जगा की भा० हांसी ने स्वश्रेयोर्थ.
		श्री धर्मनाथ-जिनालय में (ऊपर के गर्भगृह में)	
सं० १५२५ फा० शु ७ शनि०	श्रेयांसनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० देवराज की स्त्री वर्जूदेव के पुत्र वाछा की स्त्री राजूदेवी के पुत्र कान्हा ने स्वभा० रत्नादेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६६ वै० शु० ६	अरनाथ	सा० पू० विद्याचन्द्रसूरि	पेथापुरवासी प्रा०ज्ञा० दो० श्रे० बालचन्द्र की स्त्री अमरादेवी, पुत्रवधू हेमादेवी पुत्र नत्थमल के सहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री शान्तिनाथ-जिनालय में	
सं० १५२८ माघ कृ० ४	सुविधिनाथ	तपा० श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० वृ० शा० मं० रत्ना भा० मरघोदलदेवी के पु० मं० भीमा के श्रेयोर्थ भ्रातृ मं० कीका ने भा० कर्मादेवी, पु० श्रीपाल के सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १०६७, १०६६, ११००, १०५६, ११०५, १०६८, १०६६, १०६८, १११७, १११८, ११४२।

श्री सीमंधरस्वामी के जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५०५ पौष कृष्णपक्ष में	मुनिसुव्रत	तपा० जयचंद्रसूरि	वड़लीग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० ऊमा की स्त्री ऊमादेवी के पुत्र सं० कोल ने स्वभा जीविणी, पुत्र शवा, नोवा, रत्ना पुत्रवधू, वानूदेवी, माणकदेवी कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५११	श्रेयांसनाथ	श्रीगुरु	प्रा० ज्ञा० सं० भीमराज की स्त्री रमकूदेवी, राजदेवी, उनके पुत्र सं० वछराज ने स्वभा० रामादेवी, पुत्र जिनदास प्रमुख कुटुम्बसहित माता-पिता, भ्राता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१२ मार्ग० शु० १५	वासुपूज्य	तपा० रत्नशेखर-सूरि	त्रिसीगमावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० करण स्त्री रुपिणी के पुत्र अजा ने स्वभा० आंखा(?) के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१६ वै० मास में	संभवनाथ	,,	फलोधिग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सोहण की स्त्री पूंजीदेवी के पुत्र वेलराज ने स्वभा वींजलदेवी,पुत्र वेला,ठाकुर प्रमुख कुटुम्बसहित.
सं० १५१६ वै० शु० ३	कुन्थुनाथ	,,	निजामपुर में प्रा० ज्ञा० श्रे० वेलराज की स्त्री धरणूदेवी के पुत्र सातिण ने स्वभा० सिरियादेवी, भ्रातृ वानर, हलू प्रमुखकुटुम्ब के सहित.
सं० १५१८ ज्ये० कृ० १	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	वीसलनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० आशराज की स्त्री सरूपिणी के पुत्र सं० राउल ने भ्रातृ मणी,लाला,माला भा० धर्मिणी, वाल्ही, लहूक, कपूरी पुत्र हथी, वर्जाङ्ग, माईआ, वीरा, मूड़ा, शाणा आदि कुटुम्ब के सहित पुत्र सं० नत्थ-मल के श्रेयोर्थ.
सं० १५२४ वै० कृ० ७ शुक्र०	संभवनाथ	तपा० ,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० जयसिंह की स्त्री पानूदेवी के पुत्र पूजा ने स्वभा० हर्पूदेवी, पुत्र गणपति आदि के सहित.
सं० १५२५ मार्ग० शु० १० गुरु०	चन्द्रप्रभ	,,	राजपुर में प्रा० ज्ञा० श्रे० देवराज की स्त्री अधकूदेवी के पुत्र सं० हरराज ने स्वभा० चंपामति,पुत्र सहसमल, रत्न-पाल प्रमुख कुटुम्ब के सहित.
सं० १५३३ वै० शु० ३ बुध	वासुपूज्य	द्विवंदनीकगच्छीय सिद्धसूरि	कुणजिरावासी प्रा० ज्ञा० लघुमंत्री······ने भा० वड़ी, पुत्र महिराज भा० अमकूदेवी, पुत्र जावड़ादि के सहित.
सं० १५४८ वै० शु० गुरु०	शीतलनाथ	तपा० सुमतिसाधु-सूरि	अहमदाबाद में प्रा० ज्ञा० श्रे० हेमराज की स्त्री हेमादेवी ने स्वश्रेयोर्थ.

जै०धा०प्र०ले० सं० भा० १ ले० ११६३, ११५८, ११६४, ११५७, ११६६, ११६१, ११६८, ११८८, ११७३, ११५५।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५५३ माघ शु० ५ रवि०	कुन्थुनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	राजपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सोढ़ा भा० कपूरी के पुत्र डाह ने स्वभा० नीमादेवी, भ्रातृ कूपा भा० कमलादेवी प्रमुख कुटुम्ब के सहित लघुभ्राता हेमराज के श्रेयोर्थ.
सं० १५७१ माघ कृ० १ सोम०	संभवनाथ-	,,	वीशलनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० चहिता की स्त्री लीलीदेवी के पुत्र रूपचन्द ने स्वभा० राजलदेवी, पुत्र वर्धमान भा० नाथीबाई, मटा भा० शाणीदेवी पुत्र कमलसिंह प्रमुख कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६३२ वै० शु० ३ सोम०	शांतिनाथ	बृ० तपा० हीर-विजयसूरि	प्रा० ज्ञा० दो० श्रे० श्रीपाल के पुत्र हरजी ने.

श्री जगवल्लभपार्श्वनाथ-जिनालय में (नीशापोल)

सं० १४५४ वै० कृ० ११ रवि०	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	साधु पू० श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लोला स्त्री रूपादेवी पुत्र पूनमचन्द्र भा० सलखणदेवी उनके श्रेयोर्थ पुत्र रूदा ने.
सं० १४६८ फा० कृ० ३ शुक्र०	,,	,,	प्रा० ज्ञा० ठ० जीजी की स्त्री हीमादेवी के पुत्र ठ० हीराचन्द्र ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४७३ फा० शु० ६	वासुपूज्य	देवचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० खेता के पुत्र ढूंढा की स्त्री नांवादेवी के पुत्र आल्हा ने स्वभ्रातृ सामंत के स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४८७ माघ शु० ५ गुरु०	पार्श्वनाथ-चोवीशी	आगमगच्छीय-हेमरत्नसूरि	देकावाटकवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सामंत की स्त्री गुरुदेवी के पुत्र मेघराज ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२५ फा० शु० ७ शनि०	आदिनाथ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सारंग की स्त्री चमकूदेवी के पुत्र खेतमल ने स्वभा० सारंगदेवी,पुत्र हंसराजादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३ आषाढ़ शु० २ रवि०	शांतिनाथ	सिद्धाचार्यसंतानीय देवप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे तेजमल ने स्वस्त्री मनीदेवी, पुत्र रूपचन्द्र भा० धनीदेवी, पुत्रादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री शांतिनाथ-जिनालय में

सं० १५१२ वै० शु० २ शनि०	संभवनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहस्रवीर ने स्वभा० अमरादेवी, पुत्र व्रजंग भ्रातृ मेघराज, भ्रातृ संघराज स्वकुटुम्ब एवं स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१६ वै० शु० ३	विमलनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वेलराज की स्त्री धरणूदेवी के पुत्र देवराज ने स्वभा० देवलदेवी, भ्रातृ वानर, हलू प्रमुखकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ११६२, ११८३, ११८७, ११६७, १२१०, ११६८, १२२६, १२२८, १२०५, १२४३, १२४६।

श्री शांतिनाथ-जिनालय में (श्री शांतिनाथजी की पोल)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४४० पौ० शु० १२ बुध०	अजितनाथ	श्री पूर्णचन्द्रपट्टा-लंकार हरिभद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० श्रीकर्मराज की स्त्री सहजलदेवी के पुत्र मदन ने स्वभा० माल्हणदेवी के सहित पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५०५ माघ शु० १० रवि०	सुविधिनाथ-चोवीसी	मलधारिगच्छीय-गुणसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नत्थमल की स्त्री रूड़ी के पुत्र डूङ्गर ने भ्रातृ श्रे० भीमचन्द्र के श्रेयोर्थ.
सं० १५१६ वै० शु० ३	अभिनन्दन	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० ऊधरण की स्त्री वजूदेवी के पुत्र शिवराज ने स्वभा० गउरी, भ्रातृ धर्मसिंह, मालराज पुत्र सातमण के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१६ मार्ग० कृ० १	सुविधिनाथ	श्रीसूरि	अहमदाबादवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नत्थमल की स्त्री रूड़ीदेवी के पुत्र डूङ्गर के अनुज श्रे० मेघराज भा० मीणलदेवी के पुत्र पर्वत ने स्वभा० सांकूदेवी, भ्रातृ महिपति, हरपति भ्रातृ-जाया चमकूदेवी, अधकूदेवी, मटीदेवी पुत्र पूनसिंह, भूंभच राजपाल, देवपाल, चौकसिंह, जयंतसिंह, ठाकुआ, मटकल, मालदेव, कीकादि कुटुम्बसहित भ्रातृ शिवराज भा० सरस्वती-देवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५२२ फा० शु० ३ सोम०	कुन्थुनाथ	अंचलगच्छीय जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पासराज की स्त्री वल्हादेवी की धर्मपुत्री शृंगारदेवी श्राविका ने समस्त कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ मण्डपमहादुर्ग में.
सं० १५२५ मार्ग० शु० १०	वासुपूज्य	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० मेघराज की स्त्री मूंजीदेवी के पुत्र वदा ने स्वभा० लाली, भ्रातृ हरदास भा० धनीदेवी, भ्रातृ धरकणादि कुटुम्ब-सहित सरवण, सारंग, मांडण, पाता, ठूसादि के श्रेयोर्थ.
सं० १५२७ पौ० कृ० ५ शुक्र०	विमलनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहदेव भा० चनू के पुत्र देवराज की स्त्री देवलदेवी ने पुत्र अजा, हेमा प्रमुखकुटुम्ब के सहित.
सं० १५४२ वै० शु० १० गुरू०	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	सिद्धपुर में प्रा० ज्ञा० रामचन्द्र भा० मांजूदेवी, अरघूदेवी पुत्र जागा ने स्वभा० रेईदेवी पुत्र पना, पटादि, वृद्धभ्रातृ महिराज, जीवादि कुटुम्बसहित आत्म एवं धांधलदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५४६ माघ शु० ३	कुन्थुनाथ	तपा० सुमतिसाधु-सूरि	निजामपुर में प्रा० ज्ञा० श्रे० सहज ने स्वभा० जालूदेवी पुत्र समधर, सालिग, तेजमल, पंचायणादि-सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १२७७, १३१३, १३२४, १२६१, १२६०, १२७४, १२६३, १३२८, १३२६।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५६४ ज्ये० शु० १२ शुक्र०	श्रेयांसनाथ	उदयचंद्रसूरि	कडीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० महिराज भा० जीविणी के पुत्र गांगा ने स्वभा० गांगादेवी, पुत्र मेला प्रमुख-कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५७६ माघ शु० ५ गुरु०	नमिनाथ	तपा० कुतुबपुरिशाखीय सौभाग्यनन्दिसूरि	प्रा०ज्ञा०श्रे० हरपति ने भा० ठूसीदेवी, पुत्र जाटा स्त्री रंगदेवी, पुत्र हंसराज भा० रत्नादेवी, द्वि० भ्रातृ श्रे० वीसादि सहित.
सं० १५८८ ज्ये० शु० ५ गुरु०	विमलनाथ	,,	अहमदावादवासी प्रा०ज्ञा०श्रे० गोरा ने स्वस्त्री रखिमणीदेवी, पुत्र वर्द्धमान भा० मृगादेवी पुत्र खीमा भा० वछादेवी प्रमुख कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५९० वै० शु० ६ रवि०	शीतलनाथ	,,	प्रा०ज्ञा० दो० श्रे० देवदास ने भा० रूपिणी पुत्र थावर, सापा, थावर भा० चंगादेवी पुत्र पासा भा० रहिदेवी—इनके श्रेयोर्थ.
सं० १५९८ वै० शु० ६	कुन्थुनाथ	सहुआलीआगच्छीय जिनकीर्त्तिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० शाणा ने भा० कुअरि पुत्र शिवराज स्वसा-बाई सामाई के पुण्यार्थ, भ्रातृज कीका, मांगा, रत्नपाल के श्रेयोर्थ.
सं० १६६७ ज्ये० शु० ५	श्रेयांसनाथ	तपा० विजयदानसूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० सं० ठाकर भा० श्रीमाउदेवी ने.

श्री अजितनाथ-जिनालय में (सुथार की खिड़की)

सं० १५०५ माघ कृ० ५	सुमतिनाथ	तपा० जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कूपा भा० कपूरदेवी के पुत्र मूलू ने स्वभा० सीलुदेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२० फा० कृ० ३ सोम०	संभवनाथ-चोवीसी	वृ० तपा० ज्ञानसागर-सूरि	अहमदावादवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० मण्डलसिंह भा० वीजलदेवी के पुत्र मं० सहसा भा० मृगदेवी के पुत्र धीरा ने स्वभा० जीविणी, पुत्र तेजमल, वेजराज, भ्रातृ चासण भा० वाली पुत्र हर्षासहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२८ आषा० शु० ५ रवि०	धर्मनाथ	साधु०पूर्णिमा-श्रीसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० देवधर भा० अमरादेवी के पुत्र महिराज ने पुत्र भा० मकूदेवी, द्वि० भा० हीरादेवी पुत्र स्थावर, वरजंग सहित.
सं० १५५६ वै० शु० १३	चन्द्रप्रभ	तपा० कमलकलश-सूरि	अहमदावादवासी प्रा० ज्ञा० सं० जिनदत्त के पुत्र सं० वत्सराज ने प्र० भा० हाष्टीदेवी, द्वि० भा० कदकूदेवी के सहित.
सं० १५७७ ज्ये० शु० ५	नमिनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	सरखिजवासी प्रा० ज्ञा० नरदेव की स्त्री मचूयुदेवी, सँघर भा० सिरियादेवी के पुत्र कसा ने स्वभा० सपूदेवी, पुत्र रीड़ादि कुटुम्बसहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १२८८, १३११, १३२५, १३०२, १२७८, १३१५, १३३७, १३४८, १३५४, १३४१, १३३८।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५८० वै० शु० २ शुक्र०	शांतिनाथ	रायकुमारसूरि(?)	वलासरवासी प्रा० ज्ञा० सेठि श्रे० नारद ने भा० डाही, पुत्र सेठि हर्षराज भा० हीरादेवी पुत्र आंबा के सहित.
		श्री श्रेयांसनाथ-जिनालय में (फताशाह की पोल)	
सं० १४५७ वै० शु० ३ शनि०	शांतिनाथ	साधुपूर्णिमा-धर्मतिलकसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेतसिंह के पुत्र छीड़ा भा० पोमादेवी के पुत्र भोजराज ने पितामह खेतसिंह के श्रेयोर्थ.
सं० १४७२	मुनिसुव्रत	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० कडूआदेवी की स्त्री कामलदेवी के पुत्र कल्हा ने स्वभा० महकूदेवी, पुत्र हमीर,लाला, भ्रातृ मांजा के श्रेयोर्थ.
सं० १४८२	विमलनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० महिपाल की भा० हापादेवी, भा० राऊदेवी के पुत्र नरसिंह ने भा० सोनी के सहित पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१७ वै० शु० ६ शनि०	आदिनाथ	अंचलगच्छीय-जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मणी० देवपाल भा० सोहासिनी के पुत्र मणी० शिवदास ने स्वमाता के श्रेयोर्थ.
सं० १५२४	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेतसिंह भा० लाड़ीदेवी के पुत्र गनिआ, अमरा, कर्मसिंह, करण, राउल, रीणा, खीमा, इनमें से कर्मसिंह ने स्वभा० अर्चूदेवी,पु० लाला, लाचा कुटुम्बसहित.
सं० १५६५ माघ शु० ५ गुरु०	अनंतनाथ	तपा० इन्द्रनंदिसूरि पं० विनयहंसगणि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नागराज भा० नागलदेवी के पुत्र जीवराज भा० उबाई नामा ने.
सं० १५८१ ज्ये० कृ० ६ गुरु०	शांतिनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	राजपुरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० मांगराज भा० पुहतीदेवी के पुत्र लटकण भा० लक्ष्मीदेवी के पुत्र लांबा ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६६७ फा० शु० ५	शांतिनाथ	तपा० विजयसिंह-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वीरचन्द्र भा० वयजलदेवी के पुत्र वच्छराज ने स्वभा० सतरंगदेवी, भ्रातृ गदाधर प्रमुख कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

ईडर के श्री कुवावाला-जिनालय में

सं० १३२७ माघ शु० ५ गुरु०	नमिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० जसचन्द्र ने मालदेवी, कुरी के श्रेयोर्थ.
सं० १३६४	आदिनाथ	देवेन्द्रसूरि (नागेन्द्रगच्छानुयायी)	प्रा० ज्ञा० श्रे० साभ्रण ने पिता पुसाराम के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १३५५, १३७५, १३७१, १३७६, १३५७, १३८१, १३६३, १३७२, १३८२, १४२६, १४२०।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४८३ माघ शु० १० बुध०	चन्द्रप्रभ	तपा० सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० परमा की स्त्री सारु के पुत्र गीनाने स्वमा० श्रमकुसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४६१ आषाढ़ १३	अभिनन्दन-चोवीशी	,,	डीसाग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० पान्हा भार्या हिमी, अंघु पुत्र हरपति ने भा० आसु, भ्रात् धरणा आदि कुटुम्बसहित.
सं० १५०० ज्ये० कृ० १२ गुरु०	पद्मप्रभ	कच्छोलीडागच्छीय-सकलचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धारसिंह ने भा० साहुदेवी, पुत्र काहा भा० कामलदेवी पुत्र वाहु, वान्हा, हीदा के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२५ पौ० शु० १५ गुरु०	अजितनाथ	साधूपूनमिया श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० डो० वाहड़ भा० कर्मणी के पुत्र हीरा की स्त्री हांसलदेवी के पुत्र डो० पर्वत ने पितृव्य के श्रेयोर्थ.
सं० १५३३ चै० कृ० २ गुरु०	चन्द्रप्रभ	नागेन्द्रगच्छीय सोमरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० तेजमल भा० पोमीदेवी के पुत्र जावड़, जगा ने पिता-माता, पुत्र देहलादि, मित्र एवं स्वश्रेयोर्थ.

पोसीना के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १३०२ वै० शु० १०	पार्श्वनाथ	नागेन्द्रगच्छीय श्रीयशो······सूरि	चांगवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वरसिंह ने पिता वस्तुपाल और माता मूलदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १४८१ माघ शु० १०	श्रेयांसनाथ	तपा० सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लाखा भा० सुल्ही के पुत्र मोकल ने स्वभा० पाविदेवी के सहित श्री० उद्यापन के शुभावसर पर.
सं० १६७८ ज्ये० कृ० ६ सोम०	शांतिनाथ पाषाण-प्रतिमा	विजयदेवेन्द्रसूरि	शावलीवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० नाना के पुत्र हंसराज ने.

वीरमग्राम के श्री संखेश्वर-पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १३३४ ज्ये० कृ० २ सोम०	श्रेयांसनाथ	द्विवंदनीकगच्छीय सिद्धसूरि	वीशलनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वरसिंह के पुत्र सालिग भा० साहूदेवी के पुत्र देवराज ने स्वभा० रत्नाईदेवी; भ्रा० वानर, अमरसिंहादि के सहित.
सं० १५०० वै० शु० ५	वर्धमान	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० उदयसिंह भा० चांपलदेवी पु० सं० नाथा भा० कड़ी ने पुत्र समधर, श्रीधर, आसधर, देवदत्त, पुत्री कपूरी, कीबाई, पूरी आदि कुटम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० कृ० ४ गुरु०	कुन्थुनाथ	चित्रवालगच्छीय रत्नदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मण भा० कपूरी के पुत्र कडूआ ने भा० मानदेवी, पुत्र धर्मसिंह भा० वडु आदि कुटुम्बसहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १४२६, १४१६, १४३८, १४३१, १४४३, १४७६, १४८२, १४८४, ११५१, १५०६, १५०५।

श्री आदिनाथ-कुलिका में (मणिया का पाड़ा)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४५२ वै० शु० ३ शुक्र०	पार्श्वनाथ	जेरंडगच्छीय विजयसिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० ठ० सीधण भा० सीमारदेवी, पितृव्य डूङ्गरसिंह, भ्रातृ, मातृ श्रेयोर्थ ठ० चाणक पासड़ ने.
सं० १४६४ ज्ये० शु० १० सोम०	नमिनाथ-चोवीशी	पूर्णिमा० सर्वाणंदसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० महिपाल भा० देवमती पुत्र चदुद्य(?) भा० गदी के पुत्र कर्मण धर्मा ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.

पादरा के श्री शान्तिनाथ-जिनालय में

सं० १५०३ माघ कृ० २ गुरु०	सुपार्श्वनाथ-चोवीसी	जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० लूणा के पुत्र सं० शोभा के पुत्र सं० सिंघा भा० गौरादेवी के पुत्र सं० सहदेव ने स्वभा० मदनदेवी, वीरमदेवी प्रमुख कुटुम्बसहित पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५५६ वै० शु० २	अभिनन्दन-चोवीसी	आगमगच्छीय विवेकरत्नसूरि	गंधारवासी पेथड़सन्तानीय प्रा० ज्ञा० श्रे० मंडलीक के पुत्र ढाईआ भा० मणकादेवी के पुत्र नरनद ने स्वभा० हर्षादेवी पु० भास्वर प्रमुखकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री सम्भवनाथ-जिनालय में

सं० १४३० आषा० शु० ६ शुक्र०	शांतिनाथ-पंचतीर्थी	चित्रभ० धर्मचन्द्र-सूरि	सौराष्ट्रप्राग्वाट ज्ञा० ठ० पेथा के पुत्र ठा० धाठ के पुत्र सामल ने.

दरापुरा के श्री जिनालय में

सं० १३८६ वै० शु० २ शनि०	शान्तिनाथ	श्री मेरुतुङ्गसूरि शाखीय...प्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० ठ० राजड़ की भा० राजलदेवी के श्रेयोर्थ उसके पुत्र नोहण ने.

वड़ोदा के श्री कल्याणपार्श्वनाथ-जिनालय में (माया की पोल)

सं० १५१५ ज्ये० शु० ५	शान्तिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	गुणवाटकवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भीमराज की स्त्री भावलदेवी के पुत्र लींबा ने स्वभा० लींबीदेवी, पु० वरसिंहादिसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१८ ज्ये० कृ० १०	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० मोइआ भा० भवकूदेवी के पु० मं० हरपति की स्त्री माधूदेवी ने पु० जूठा, सारंग,जोगादि कुटुम्बसहित पु० रामदास के श्रेयोर्थ.
सं० १५२६ फा० कृ० ३ सोम०	सुविधिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० मं० देवचन्द्र भा० भनकूदेवी के पु० पोपट ने भा० मानूदेवी, पु० क्रपहा(?) के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० १५५१, १५२२।
जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ३, ८, १४, २०, ३३, ३१, ३६,

श्री महावीर-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४४५ का० कृ० ११ रवि०	पार्श्वनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० मह० सलखण की स्त्री सलखणदेवी के पुत्र मं० मादा ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १४६८ वै० शु० ३ बुध०	शान्तिनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० मं० सामन्त की स्त्री ऊमलदेवी के पु० मं० धर्मसिंह की स्त्री धर्मादेवी के पुत्र मं० राउल बडूआ ने.
सं० १५०५	आदिनाथ	तपा० जयचन्द्र-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सांगा की स्त्री शृंगारदेवी के पुत्र शिवराज की स्त्री श्रे० दूदा देवलदेवी की पुत्री धरपू ने पुत्र नाथा के श्रेयोर्थ.

श्री शान्तिनाथ-जिनालय में (कोठीपोल)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४२६ ज्ये० कृ०	पार्श्वनाथ-चोवीशी	श्रीरत्नाकरसूरिपट्टधर हेमचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कोका की स्त्री राजलदेवी के पौत्र तिहुण-देवी के पुत्र अमीपाल ने.
सं० १५०४ माघ शु० १३ गुरु०	कुन्थुनाथ	तपा० जयचन्द्रसूरि	वीरमग्रामवासी प्रा०ज्ञा० सं० गेला की स्त्री धारु के पुत्र सं० सलखा ने स्वभा कर्मणी, पुत्र धर्मसिंह,नारदादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५३ माघ शु० १ बुध०	चन्द्रप्रभ	अंचलगच्छीय-सिद्धान्तसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हरदास की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र वर्द्धमान की भा० चांपलदेवी के पुत्र श्रे० वीरपाल सुश्रावक ने भा० विमलादेवी, लघुभ्रातृ मांका सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री मनमोहन-पार्श्वनाथ-जिनालय में (पटोलीआपोल)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १२५६ वै० शु० ३	पार्श्वनाथ	प्रद्युम्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कुमारपाल ने पिता राणक के श्रेयोर्थ.
सं० १४०८ आषाढ़ कृ० ५ गुरु०	अजितनाथ	तपा० जयशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० डूङ्गर की स्त्री हीरादेवी के पु० वेलराज ने स्वभा० वीजलदेवी के सहित माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४७१ माघ शु० १० शनि०	मुनिसुव्रत-चोवीशी	अंचलगच्छीय महितिलकसूरि	प्रा० ज्ञा० दोषशाखीय श्रे० ठ० सोला पु० ठ० खीमा पु० ठ० उदयसिंह पु० ठ० लड़ा स्त्री हकूदेवी के पुत्र श्रे० भांवट ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४८८ वै० मास में	मल्लिनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पान्हा के पुत्र रामचन्द्र, खीमचन्द्र, भ्रातृ मामा की स्त्री जीविणी नामा ने स्वपति के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० लें० सं० भा० २ लें० ४०, ४३, ४६, ५२, ५३, ६१, ७१, ८८, ६२, ८६।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४९९ का० शु० १२ सोम०	सुमतिनाथ	अंचलगच्छीय जयकीर्त्तिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सोला के पुत्र खीमा के पुत्र उदयसिंह के पुत्र लड़ा के पु० झांवट भा० मान्हदेवी पु० पारा, सापहि(?) राजा ने.
सं० १५१२	महावीर	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खीमचन्द्र की स्त्री जासूदेवी के पुत्र नारद ने स्वभार्या कुंयरि के सहित स्वपिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५७७ ज्ये० शु० ५ शनि०	आदिनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	प्रा०ज्ञा० दो०श्रे० वत्सराज ने भा० राजति, पुत्र सीपा, श्रीराज, श्रीरंग, शाणा, शिव प्रमुखकुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री आदीश्वर-जिनालय में

सं० १३५६ माघ शु० ६ बुध०	मल्लिनाथ	शांतिप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० दयाल के पुत्र ठ० जोगी ठ० धरणा ने भ्राता ठ० सरस के श्रेयोर्थ.
सं० १३७३ वै० शु० १३	शांतिनाथ	......चंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पोल(?) की स्त्री देवमती के पुत्र राणा ने.
सं० १५०३	अभिनन्दन	तपा० जयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० लाखा की स्त्री लहकूदेवी के पुत्र धरणा ने स्वभा० शाणी पु० कुरपाल, नरपालादि कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०४ माघ शु० ६ गुरु०	पार्श्वनाथ	साधुपूर्णिमा-रामचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हादा की भार्या हांसलदेवी के पुत्र कडूआ, रामसिंह, लालचन्द्र, इनमें से लालचन्द्र ने पिता-माता, पितृव्य चूड़ा के श्रेयोर्थ.
सं० १५१७ माघ कृ० ८ सोम०	शांतिनाथ	तपा० रत्नशेखरसूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० पाल्हा की स्त्री वरजूदेवी, कुतिगदेवी, वरजूदेवी के पु० वासण ने स्वभा० अमरादेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री दादा-पार्श्वनाथ-जिनालय में (नरसिंहजी की पोल)

सं० १४०८	आदिनाथ	....	प्रा०ज्ञा० महं० धरणिग भा० सुहागदेवी के श्रेयोर्थ पुत्र जसादा ने इन सर्वजनों के श्रेयोर्थ.
सं० १४८९	महावीर	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मसिंह की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र वरसिंह ने स्वभा० आसूदेवी, पुत्र भादादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२० मार्ग० शु० ९ शनि०	सुमतिनाथ	अंचलगच्छीय-जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० राउल की स्त्री फालू के पुत्र नारद की स्त्री अमकू श्राविका ने पुत्र पहिराज, अंबकदास के सहित स्व-पति के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ७१, ६६, ९०, ११०, १११, १०३, १०५, ११७, १४१, १३५, १३७।

श्री आदीश्वर-जिनालय में (जानीसेरी)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १३८६ माघ कृ० २ सोम०	शांतिनाथ	चैत्रगच्छीय-मानदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० लूणा के श्रेयोर्थ उसके पुत्र नागपाल, धनपाल ने.
सं० १५११ ज्ये० कृ० १३	पार्श्वनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देदा की स्त्री रयणीदेवी के पुत्र चडुआ की स्त्री चाईदेवी नामा ने स्वभ्रात् जावड़ के श्रेयोर्थ.
सं० १५२१ ज्ये० शु० ४	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	मंडपदुर्ग में प्रा० ज्ञा० मं० कडूआ की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र मं० माधव की स्त्री फदू के पुत्र संग्राम ने स्वभा० पद्मावती, पुत्र सायर, रयण, आयर आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३२ वै० शु० ३	आदिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कडूआ की स्त्री वाछूदेवी के पुत्र हरपाल ने स्वभा० हीरादेवी, पुत्र जीवराज, जयसिंह कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में (पीपलासेरी)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१३ वै० शु० १०	नमिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० लुणा की स्त्री लूणादेवी के पुत्र खीमचन्द्र ने स्वभा० खेतूदेवी, श्रे० जीणादि कुटुम्ब के सहित.
सं० १६७८ आश्वि० कृ० १४ गुरु०	ऋषिमंडल-यंत्र	उपाध्याय-विजयराजगणि	प्रा० ज्ञा० दो० श्रे० नानजी पुत्र दवजी भा० आसबाई के पुत्र प्राग्वाटवंशभूषण केशवजी ने स्वश्रेयोर्थ.

श्री नेमिनाथ-जिनालय में (महेतापोल)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १३३८ चै० कृ० २ शुक्र०	पार्श्वनाथ	उपाध्याय-वयरसेन	प्रा० ज्ञा० श्रे० वयरसिंह के पुत्र श्रे० लूणसिंह के श्रेयोर्थ उसके पुत्र साजण, तिजण ने.
सं० १४०१ वै० कृ० ३ बुध०	पार्श्वनाथ	माणिक्यसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० आंबड़ की स्त्री आल्हणदेवी ने पुत्र चड़ा के सहित पिता तथा माता नर्मदा के श्रेयोर्थ.
सं० १४८० ज्ये० शु० ५	चन्द्रप्रभ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहजा की स्त्री जाणीदेवी के पुत्र चांपा ने स्वभा० चांपलदेवी के श्रेयोर्थ पुत्र ऊपरण के सहित.
सं० १५१५ पै० शु० १३	विमलनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० महिराज भा० धर्जू के पुत्र मं० आंबराज, नागराज ने भा० संपूरीदेवी, सुहासिणिदेवी के सहित स्वमाता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० १५०, १५५, १४६, १५१, १६२, १६७, १८२, १७६, १६८।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२३ वै० कृ० ४ गुरु०	श्रेयांसनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	ओड़ग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० माईआ भा० मेचूदेवी के पुत्र नाथा ने स्वभा० नामलदेवी, पुत्र नाकर, धनराजादि सहित स्वश्रेयोर्थ.
			श्री चन्द्रप्रभ-जिनालय में (सुलतानपुरा)
सं० १४८६ वै० शु० १० बुध०	मुनिसुव्रत	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	आसापोपटवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० लूणा ने भा० कामलदेवी पुत्र खीमसिंह भा० देऊसहित.
सं० १५१६ वै० शु० ११	शान्तिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	झंटोड़ावासी प्रा० ज्ञा० को० भीला की स्त्री दूसी के पुत्र लुभा ने भा० मृगदेवी, भ्रातृ कडूआ, राजादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५४ फा० शु० २	आदिनाथ	उदयसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० प्रताप सुता, श्रे० सहिसा ने.
			श्री शीतलनाथ-जिनालय में (नवीपोल)
सं० १५३६ ज्ये० शु० ११	आदिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	राजपुर में प्रा० ज्ञा० मेघराज की स्त्री संपूरीदेवी के पुत्र हरदास ने स्वभा० हीरादेवी, पुत्र वर्द्धमान, वृद्धिचन्द, भगिनी नेतादेवी, भ्रातृ श्रे० खीमराज, पर्वत, भीमराजादिसहित भ्रातृश्रीधर के श्रेयोर्थ.
सं० १५४८ वै० शु १० सोम०	पार्श्वनाथ	गुणसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० चांदमल के पुत्रगण सोमचन्द्र, लपुचन्द्र, छोटमल के पुत्र गटा माधव ने पूर्वपूर्वजों के श्रेयोर्थ.
			श्री गौड़ीपार्श्वनाथ-जिनालय में (वावाजीपुरा में देरापोल)
सं० १६३२ माघ शु० १० बुध०	सुमतिनाथ	तपा० हीरविजय-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहस्रकिरण की स्त्री सौभाग्यदेवी की पुत्री जीवादेवी ने स्वश्रेयोर्थ.
			श्रे० गरबड़दास वीरचन्द्र घीया के गृह-जिनालय में
सं० १२६४ वै० ७ शनि०	आदिनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धरणिग की स्त्री नागलदेवी के पुत्र ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
			श्रे० फूलचन्द्र डाह्याभाई के गृहजिनालय में
सं० १५८४ वै० कृ० ५ गुरु०	जिनबिंब	बृहत्तपा० सौभाग्य-सागरसूरि	वीसनगरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० जीवराज की स्त्री टमकूदेवी के पुत्र सीपा ने स्वभा० वीरादेवी, पुत्र पद्मा, लहुआ, पूजा, सामल, वयजा, पौत्र वरसिंह, वासण प्रमुख कुटुम्बसहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० १७८, १६२, १६४, १६०, २०६, २०८, २१५, २३०, २३४।

हिन्दविजय-मुद्रणालयवालों के गृहजिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १६४४ ज्येo शु० १२ सोम०	शांतिनाथ	तपा०विजयसेनसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जसवीर की स्त्री कीकी के पुत्र धनराज ने.

श्रे० लीलाभाई रायचन्द्र के गृहजिनालय में

सं० १५२५ मार्ग शु० १०	अजितनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० चांपा भा० चांपलदेवी के पुत्र मं० साईआ ने भा० सहिजलदेवी, वइजलदेवी, पुत्र हेमराज, धनराजादि के सहित माता के श्रेयोर्थ.
सं० १६३२ माघ शु० १० बुध०	श्रेयांसनाथ	तपा० हीरविजय-सूरि	अहमदाबादवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० हंसराज ने भा० हांसलदेवी, पुत्री रत्नादेवी एवं स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६४४ ज्ये० शु० १२ सोम०	मुनिसुव्रत	तपा० विजयसेन-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जसवीर की स्त्री कीकी के पुत्र कुँअरजी ने.

श्रे० मोतीलाल हर्षचन्द्र के गृहजिनालय में

सं० १६८३ फा० कृ० ४ शनि०	सुविधिनाथ	तपा० विलयाणंद-सूरि	लंबूसरवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वोरा उदयकरण भा० ऊभरिदेवी के पुत्र शान्तिदास ने.

छायापुरी (छाणी) के श्री शांतिनाथ-जिनालय में

सं० १४८६ वै० शु० १० बुध०	विमलनाथ-पंचतीर्थी	तपा० सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सरवण की स्त्री सुहवदेवी के पुत्र देदराज ने स्वभा० जासुदेवी, पुत्र लक्ष्मण, अमरसिंह, समधर, धनराजादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२१ ज्ये० शु० ४	शांतिनाथ	....	मंडपदुर्ग में प्रा० ज्ञा० सं० अर्जुन की स्त्री टबकूदेवी के पुत्र सं० वस्तीमल की स्त्री रामादेवी के पुत्र चांदमल की स्त्री जीविणी ने स्वपुत्र लांबराज, आकराजादि कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२६	विमलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	जयंतपुर में प्रा०ज्ञा० श्रे० तिहुणसिंह की स्त्री करणदेवी के पु० मनोहरसिंह ने स्वभा० चमकूदेवी, पुत्र वरसिंह, पितृव्य सुहणसिंह, लखराजादि के सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० २४२, २५२, २५०, २५१, २५४, २६३, २५७, २६४।

सीयाग्राम के श्री मनमोहन-पार्श्वनाथ-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४८१ माघ शु० ५	शांतिनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेतसिंह की स्त्री खेतलदेवी के पुत्र देदल की स्त्री हमीरदेवी के पुत्र खोखराज की स्त्री प्रीमलदेवी के पुत्र सं० सादा की स्त्री सलखणदेवी के पुत्र सं० भुंभुव की स्त्री कर्मादेवी ने स्वश्रेयोर्थ.

श्री संभवनाथ-जिनालय में

सं० १४७६(८)माघ शु० ७ शुक्र०	शांतिनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० पं० महणसिंह ने स्वस्त्री रूपलदेवी, पुत्र पं० धरणा, गदा, सोभ्रमा(?) माता-पिता के श्रेयोर्थ.

श्री शांतिनाथ-जिनालय में

सं० १४२३ फा० शु० ८	आदिनाथ	गुणभद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० झाटा स्त्री लक्ष्मीदेवी, पितृव्य वीक्रम, रावण, भ्रातृ वहुत्रड़ के श्रेयोर्थ श्रे० सीहड़ ने.

भरूच के श्री आदिनाथ-जिनालय में

सं० १५७८ माघ कृ० ५ गुरु०	धर्मनाथ-चतुर्मुखा	आगमगच्छीय विवेकरत्नसूरि	गंधारवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० डूङ्गर के पुत्र श्रे० कान्हा ने स्वभा० खोखी, मेलादेवी, पुत्र वस्तुपाल आदि के सहित मेलादेवी के प्रमोदार्थ.

श्री अनंतनाथ-जिनालय में

सं० १५२५ चै० कृ० १० शनि०	धर्मनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नाथा की स्त्री खेतूदेवी के पुत्र जूठा ने स्वभा० लाड़ीदेवी, भ्रातृ शाणा, वासण, माइआ प्रमुख कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १५०८ चै० शु० १३ रवि०	चन्द्रप्रभ	आगमगच्छीय श्रीसिंहदत्तसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० देवा की भार्या देवलदेवी के पुत्र आसराज की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र मं० जूठा शाणा ने.
सं० १५१५ फा० शु० ६ रवि०	कुन्थुनाथ	वृद्धतपा० श्रीजिनरत्नसूरि	प्रा०ज्ञा० मं० मोखा ने भा० माणिकदेवी, पुत्र भीमराज भा० चंगादेवी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२६ आषाढ़ शु० २ सोम०	मुनिसुव्रत	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० सं० लखा, सं० गुणिआ पुत्र वीरचन्द्र भा० नाथीदेवी के देवर सं० कालू ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३३ माघ शु० ५ रवि०	संभवनाथ	आगमगच्छीय देवरत्नसूरि	पेथड़संतानीय प्रा० ज्ञा० श्रे० हरराज पुत्र गुणीआ भा० लालीदेवी पुत्र भूपति, वस्तीमल, देवपाल, सहजपाल की स्त्री देवमति ने स्वश्रेयोर्थ एवं स्वपति के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० २७२, २८६, २८६, २६४, ३०३, ३१५, ३१४, ३०६, ३०८।

श्री मुनिसुव्रतस्वामि-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४८८ ज्ये० शु० ५	शीतलनाथ-पंचतीर्थी	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० परी० श्रे० कडूआ भा० रुपिणी के पुत्र शिवराज ने स्वमाता के श्रेयोर्थ.
सं० १५०८ वै० शु० ३	अभिनंदन	तपा०रत्नशेखरसूरि	जंहरवारवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० खेता भा० खेतलदेवी के पुत्र वजयराज की भा० जयतूदेवी के पुत्र हरपति ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०६ वै० कृ० ५ शनि०	कुन्थुनाथ-चोवीशी	आगमगच्छीय-देवरत्नसूरि	भृगुकच्छवासी प्रा०ज्ञा० ठ० कमलसिंह ने स्वस्त्री कमलादेवी, पुत्र हरिजन भा० रंगदेवी प्रमुख कुटुम्बसहित माता-पिता और स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६२२ माघ कृ० २ बुध०	अनंतनाथ	तपा० हीरविजय-सूरि	भृगुकच्छवासी प्रा०ज्ञा० दो० लाला ने भा० वच्छीबाई,पुत्र कीका के सहित.

द्वि० श्री मुनिसुव्रतस्वामि-जिनालय में

सं० १५६५ माघ शु० १२ शुक्र०	पार्श्वनाथ	तपा० विजयदान-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हिरु, नाना, धीना, धर्मसिंह, मातृजाया, कीबाई ने.

श्री आदिनाथ-जिनालय में (वेजलपुरा)

सं० १५०३	सुमतिनाथ	तपा० जयचन्द्र-सूरि	प्रा०ज्ञा० मं० सायर की स्त्री कपूरी के पुत्र मं० महणसिंह ने स्वमा० वर्जूदेवी, पुत्र खेतादि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१३ वै० शु० १० बुध०	धर्मनाथ-चोवीशी	आगमगच्छीय-देवरत्नसूरि	गंधारवासी पेथड़संतानीय प्रा० ज्ञा० श्रे० हरराज की स्त्री हीरादेवी के पुत्र गुणीआ ने भा० लालीदेवी, पुत्र भूपति, वस्तीमल,देवपाल, सहजपाल आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० शु० ३ शनि०	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	सींहुँजग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भाला भा० मेघदेवी के पुत्र श्रे० काला ने स्वभा० हचीदेवी,पुत्र करण, वना(?), वीछा, गांगा आदि कुटुम्बसहित स्वपितृव्य भूणपाल के श्रेयोर्थ.

सिनोर के श्री अजितनाथ-जिनालय में

सं० १५४२ फा० कृ० ८ शनि०	विमलनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	देवगिरिनगरनिवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० देवसिंह भा० ... के पुत्र आसराज भा० धाईबाई के पुत्र सं० पचराज स्वभा० माणकदेवी, पुत्री नायी प्रमुखकुटुम्बसहित ...

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ३२८, ३२६, ३३१, ३३३, ३५४, ३५८, ३५५, ३५७, ३६६।

नड़िआद के श्री आदिनाथ-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१२	शांतिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भांभण की स्त्री जसूदेवी के पुत्र रत्नचन्द्र भा० रत्नादेवी के पुत्र लाखा सलखा ने भा० लक्ष्मीदेवी, पुत्र आसराजादिसहित.

श्री अजितनाथ-जिनालय में

सं० १५२२ फा० शु० १०	मुनिसुव्रत	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	सीहुंजग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० अर्जुन भा० तेजूदेवी के पुत्र नाभराज ने भा० चांददेवी, पुत्र धनराज, भ्रातृ जक्कु, भामता(?) पुत्री भोली आदि सहित स्वश्रेयोर्थ.

खेड़ा के श्री आदिनाथ-जिनालय में (परा)

सं० १५१८ ज्ये० शु० ६ बुध०	सुमतिनाथ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० खेतसिंह ने भा० साधुदेवी, पुत्र मदा भा० मणिकदेवी पुत्र जीवराज, भ्रातृ बालचन्द्र आदि कुटुम्बसहित.
सं० १५२० मार्ग० कृ० ५ गुरु०	आदिनाथ-चोवीसी	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० दुदा की स्त्री देवलदेवी के पुत्र श्रे० हरदास ने स्वभा० देवमति, पुत्र देव, दावट, सूरादि कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२७ ज्ये० कृ०	नमिनाथ	,,	कर्करानगर में प्रा० ज्ञा० सं० मोकल की स्त्री जाणी के पुत्र सं० कर्मसिंह ने स्वभा० रमकूदेवी, पुत्र सं० थिरपाल भा० वाल्ही प्रमुखकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३० माघ कृ० २ शुक्र०	श्रेयांसनाथ	,,	गोवूवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० राणा ने स्त्री शाणीदेवी, पुत्र नागराज भा० रूड़ीदेवी पुत्र आसराज कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५२ ज्ये० शु० १३ बुध०	आदिनाथ	पीपल० देवप्रभ-सूरि	प्रा० ज्ञा० अंबाईगोत्रीय सं० वीढ़ा ने भा० शाणी पुत्र पदा, गदा, देवा आदि के पुण्यार्थ.

श्री मुनिसुव्रतस्वामि-जिनालय में (लांबीसेरी)

सं० १५२१ माघ शु० १३ गुरु०	शीतलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	अहमदाबाद में प्रा० ज्ञा० दो० श्रे० सापल भा० आसूदेवी के पुत्र धीगा ने स्वभा० भरमा, पुत्र सधारण, नाथा, तागादि कुटुम्ब-सहित माता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ३८६, ३६४, ४१५, ४०८, ४२५, ४१६, ४१३. ४२८।

मातर के श्री सुमतिनाथ-प्रमुख-बावन-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४११ ज्ये० शु० १२ शनि०	आदिनाथ	श्रीमाणदेवसूरि (मड़ाहड़)	प्रा०ज्ञा० दो० लीला भा० कुँरदेवी दोनों के श्रेयोर्थ आका ने.
सं० १४२४ वै० शु० २ बुध०	महावीर	देवचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० पिता देला, माता लाछि के श्रेयोर्थ सुत नरदेव ने.
सं० १४३८ ज्ये० कृ० ४ शनि०	धर्मनाथ	मलयचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० मोखट भा० सोमलदेवी के पुत्र झांझण ने पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४७१ माघ शु० ७	शांतिनाथ	तपा० सोमसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सांगा भा० ऊमल के पुत्र लींबा ने स्व-पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १४८० वै० कृ० ७ शुक्र०	सम्भवनाथ	गुणाकरसूरि	प्रा० ज्ञा० महं० पूनमचन्द्र भा० पूरीदेवी के पुत्र पाल्हा ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४६६ आ० शु० १०	मुनिसुव्रत	तपा० मुनिसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सांगण भा० सूदी के पुत्र खेतमल ने भा० वाछा अपरनामा काऊदेवी, पुत्र वस्तीमल, वाघमलादिसहित भ्रा० हकू के श्रेयोर्थ.
सं० १५०५ वै० शु० ३	सम्भवनाथ	तपा० जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नरसिंह भा० पूरीदेवी के पुत्र सदा ने भा० रूपिणीदेवी, पुत्र हेमराज, गणीआ आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०५ पौ० शु० १५	मुनिसुव्रत	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० महण भा० भर्मादेवी के पुत्र कर्मराज ने भा० गुरीदेवी, कुन्तीदेवी, पुत्र वस्तीमल, हंसराजादिसहित.
सं० १५१५ माघ शु० १	अजितनाथ	पूर्णिमा० प० जयशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० परी० श्रे० गदा ने भा० वाछू पुत्र हीरा भा० हीरादेवी के तथा पिता-माता के श्रेयोर्थ एवं स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२२ पौ० शु० १३	वासुपूज्य	द्विवंदनीक ग० सिद्धसूरि	लोड़ाग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० धनराज भा० मेचूदेवी के पुत्र वाछा ने स्वभा० साधुदेवी, पुत्र जीवराजसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० शु० ३	सुमतिनाथ	तपा०लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भोजराज की स्त्री हीरादेवी की पुत्री मानदेवी (श्रे० नरसार पुत्र हीरा की स्त्री) ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२५ मार्ग० शु० १० शुक्र०	शीतलनाथ	तपा०लक्ष्मीसागर-सूरि	कोड़रवग्राम में प्रा० ज्ञा० मं० मंडन की स्त्री आसूदेवी के पुत्र सोलराज ने भा० माणिकदेवी, पुत्र भचा, तेजादि सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ४६०. ४८६, ५२६, ५००, ५२२, ४६४, ४८२, ४८८, ४७६, ४६२, ४६६, ४७८।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२७ पौ० कृ० १ सोम०	कुन्थुनाथ	वृ० तपा०जिनरत्न-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्राविका धाईदेवी के पति ने पुत्र अमीपालसहित पिता-माता के श्रेयोर्थ.
सं० १५३१ माघ कृ० ८ सोम०	श्रेयांसनाथ	द्विवंदनीक ग० सिद्धसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० मंडलिक ने भा० डाहीदेवी, पुत्र नरसिंह भा० वईजलदेवीसहित.
सं० १५४६ मा० शु० ३ शनि०	आदिनाथ	तपा० सुमतिसाधु-सूरि	आशापल्लीय प्रा० ज्ञा० श्रे० सापा भा० गिरमूदेवी की पुत्री नाथी ने स्वमाता के श्रेयोर्थ.
सं० १५५४ फा० शु०	विमलनाथ	आगमगच्छीय विवेकरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० पेथड़सन्तानीय श्रे० भूपति की स्त्री साधुदेवी की पुत्री पतू नामा ने भ्रातृ सचवीर दूढ़ादिकुटम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.

खंभात (श्री स्तम्भतीर्थ) के श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १५४७ वै० शु० ३ सोम०	अम्बिकामूर्त्ति	सुमतिसाधुसूरि	गंधारवासी प्रा० ज्ञा० महिराज की स्त्री रूड़ीदेवी के पुत्र पासवीर ने स्वभा० पूरीदेवी स्वकुटुम्ब-सहित.
सं० १६१२ वै० शु० २	चन्द्रप्रभ	विजयदानसूरि	जंबुसरग्रामवासी प्रा० ज्ञा० श्राविका दूना की पुत्री चंगा-देवी के पुत्र वेगड़ ने.

श्री शान्तिनाथ-जिनालय में (आरीपाड़ा)

सं० १५०७ फा० कृ० ५	कुन्थुनाथ-चोवीशी	श्रीसूरि	तईरवाड़ावासी प्रा०ज्ञा०श्रे० कडूआ की स्त्री कमलादेवी के पुत्र इना ने स्वभा० आल्हणदेवी, पुत्री राजूदेवी कुटम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१७ ज्ये० शु० ५ गुरु०	सुमतिनाथ (जीवित)	वृ० ग० सत्यपुरी-पासचन्द्रसूरि	झायणाग्राम में प्रा० ज्ञा० पारि० भादा ने स्त्री माकूदेवी, पु० जीवराज, मूलचन्द्र के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६५ वै० शु० ३ रवि०	संभवनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	वटपद्रवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गजराज की स्त्री जीविणी के पुत्र श्रे० लक्ष्मण ने पितृस्वसा श्रा० देमादेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५९१ वै० कृ० ६ शुक्र०	अनन्तनाथ	अंचलग० गुणनिधानसूरि	गंधारवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० लक्ष्मण की स्त्री श्रे० पर्वत की पुत्री श्रा० झकू नामा ने पु० धर्मसिंह, अमीचन्द्र प्रमुखकुटम्ब के सहित.
सं० १६०४ वै० ७ सोम०	धर्मनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० वीरजी की स्त्री गौरीदेवी के पुत्र जयराज, जीवराा ने.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ लें० ५०१, ५०६, ४८१, ४६६, ५५३, ५४४, ५७४, ५८४, ५७१, ५६५, ५७२।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १६८३ वै० शु० १	वासुपूज्य	विजयदेवसूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० श्राविका वच्छाईदेवी ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १७६४ ज्ये० शु० ५ गुरु०	पार्श्वनाथ-पंचतीर्थी	संविज्ञपक्षीय ज्ञानविमलसूरि	स्तंभतीर्थवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० मेघराज की स्त्री तेजकुँअर-देवी के पुत्र भूलराज ने.
,, ,,	शांतिनाथ-	,,	,, ,,
,, ,,	आदिनाथ-	,,	,, ,,
,, ,,	अजितनाथ-	,,	,, ,,
		श्री पद्मप्रभ-जिनालय में (खड़ाकोटड़ी)	
सं० १३६१ माघ कृ० ११ शनि०	जिनबिंब	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० डूङ्गर ने पितामही गुरुदेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५२० वै० शु० ३	तृतीयतीर्थङ्कर-चोवीशी	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	त्रिपुरपाटकवासी प्रा० ज्ञा० मं० भीमराज की स्त्री कांऊदेवी के पुत्र धूवराज ने स्वभा० वानूदेवी, पुत्र धनदत्त, भांभण आदि कुटुम्ब के सहित.
सं० १६४३ ज्ये० शु० २ सोम०	पार्श्वनाथ	तपा० विजयसेनसूरि	प्रा० ज्ञा० शाह भूति की स्त्री भरमादेवी के पुत्र शाह सहसकरण ने स्वभा० धनदेवी, पुत्री वाहालकुंअरी के सहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री शांतिनाथ-जिनालय में (खड़ाकोटड़ी)	
सं० १४८२ फा० शु० ३ रवि०	सुमतिनाथ	आगमगच्छीय श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० पेथड़संतानीय श्रे० आल्हणसिंह की स्त्री ऊमादेवी के पुत्र सं० मंडलिक ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२२ माघ शु० ६ शनि०	आदिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	श्रोढ़िग्राम में प्रा०ज्ञा० श्रे० माईआ की स्त्री मेचूदेवी के पुत्र नत्थमल ने स्वभा० नामलदेवी आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री आदिनाथ-जिनालय में (मांडवीपोल)	
सं० १५०३ माघ कृ० ६	सम्भवनाथ	तपा० जयचन्द्र-सूरि	चीरमग्रामवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० हेमराज की स्त्री रूदीदेवी के पुत्र नरबद, भ्रातृ वत्सराज ने भा० शाणीदेवी, पुत्र धनराज, नगराज आदि के सहित.
		श्री नेमनाथ-जिनालय में	
सं० १४३६ पौ० कृ० ८ रवि०	पार्श्वनाथ	जयाणंदसूरि	प्रा० ज्ञा० श्राविका माणकदेवी के पुत्र हापा भार्या जीणी-देवी पुत्र चांपा, सांगा के सहित श्रे० हापा ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ५७८, ५६६, ५६७, ५६६. ५७०, ५६१, ५६५, ५६६, ६११ ६०२, ६२६, ६३१।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२१ माघ शु० १३	सुमतिनाथ	तपा० सोमदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० हापा की स्त्री हांसलदेवी के पुत्र सं० नासण की स्त्री नागलदेवी के पुत्र नारद ने स्वभा० कर्मादेवी प्रमुखकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
		श्री कुन्थुनाथ-जिनालय	
सं० १५०६ वै० शु०	महावीर	रत्नशेखरसूरि (तपा)	प्रा० ज्ञा० श्रे० विरुआ की स्त्री विभूदेवी के पुत्र नरसिंह ने स्वश्रेयोर्थ.
		श्री शीतलनाथ-जिनालय में (कुम्भारवाड़ा)	
सं० १४—	संभवनाथ	नागेन्द्र० गुणकरसूरि	प्रा० ज्ञा० पुत्र पूजा ने स्वपिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५५३ माघ शु० ५ रवि०	पार्श्वनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० प्रताप की स्त्री सुहामणि के पुत्र गोगराज ने स्वभा० मनकादेवी, पुत्र वीपा, फतेह, लका आदि कुटुम्बसहित पिता के श्रेयोर्थ.
		श्री शांतिनाथ-जिनालय (ऊंडीपोल)	
सं० १५३२ वै० शु० ३	अभिनंदन	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० हेमराज की स्त्री डूबीदेवी के पुत्र शिवराज ने वृ० भ्रातृ पूंजादि कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६१ वै० शु० ६ शुक्र०	वासुपूज्य	आगमगच्छीय संयमरत्नसूरि	गंधारवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० कान्हा की स्त्री खोखीदेवी, मेलादेवी के पुत्र वस्तुपाल ने स्वभा० वल्हादेवी प्रमुखकुटुम्ब के सहित.
		श्री शान्तिनाथ-जिनालय में (दंतालवाड़ा)	
सं० १५२१ वै० शु० ६ बुध०	सम्भवनाथ	अंचलगच्छीय जयकेसरिसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भरमा की स्त्री छाली के पुत्र दीना जीवा, इनमें से सुश्रावक जीवा (जीवराज) ने स्वभा० कुंअरिदेवी, भ्रातृ सदा, चांदा, चांगा के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० कृ० ४ गुरु०	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	सोजींत्रावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० हापा की स्त्री हांसलदेवी के पुत्र गुणिआ ने भ्रातृ राजमल भा० रमादेवी पुत्र आसधीर, श्रीपाल, श्रीरंग आदि कुटुम्ब-सहित.
		श्री आदिनाथ-जिनालय में	
सं० १४१५ ज्ये० कृ० १३ रवि०	पार्श्वनाथ	नायलशाखीय सागरचन्द्रसूरि	जघरालवासी प्रा०ज्ञा० श्रे० गाहिस(?) के भ्राता नलराज ने मातृ-पितृव्य० वीक्रम के श्रेयोर्थ.
		श्री चतुर्मुखा-सुमतिनाथ-जिनालय में (चोलापोल)	
सं० १५६१ ज्ये० शु० २ बुध०	सुविधिनाथ	श्रीककसूरि	स्तम्भतीर्थ में प्रा० ज्ञा० संघ० कुम्भा की भार्या गुरुदेवी के पुत्र सं० हंसराज की स्त्री हांसलदेवी ने पुत्र सं० हर्षा आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ६३३, ६४०, ६५३, ६५४, ६७७, ६७३, ६८१, ५८५, ६८६, ६६१।

श्री महावीर-जिनालय में (गीपटी)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२०	शीतलनाथ	तपा० श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पाल्हा की स्त्री मेचूदेवी के पुत्र श्रे० धनराज ने भा० रूढ़ी, पुत्र हीराचन्द्र, जूठा प्रमुखकुडम्ब-सहित.
सं० १५४६ माघ शु० १३	चन्द्रप्रभ	आगमगच्छीय विवेकरत्नसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० कर्मराज की स्त्री धर्मिणीदेवी के पुत्र सुभगिरण ने स्वभा० श्रीदेवी, पु० अमीपाल, रत्नपाल, भ्रातृ वीरपाल आदि के सहित.

श्री अजितनाथ-जिनालय में

सं० १५२८ वै० शु० ३ शनि०	शीतलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रत्नचन्द्र की स्त्री अर्धूदेवी के पुत्र धनपति, मंडलिक के सहित श्रे० रत्नचन्द्र ने पुत्री कनूदेवी के एवं आत्मश्रेयोर्थ.

श्री चिन्तामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में (जीरारपाड़ा)

सं० १५८६ वै० शु० १२ सोम०	सम्भवनाथ	द्विवंदनीक-कक्क-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोविन्द ने स्त्री गौरीदेवी, पुत्र नरपाल पुत्र नाकर भा० पना आदि कुडम्ब-सहित.

श्री शान्तिनाथ-जिनालय में

सं० १५२४ वै० शु० ५ शनि०	आदिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	स्तम्भतीर्थ में प्रा० ज्ञा० श्रे० गोधराज स्त्री कुंअरिदेवी के पुत्र काला ने स्वभा० कुतिगदेवी, भ्रातृ भला, गजा, राजा भा० मायलदेवी, भइमादेवी, रंगीदेवी, पुत्र वेजा, सहना, मांका, श्रीपाल आदि के सहित स्वपितृव्य लापा के श्रेयोर्थ.

भूगृह-जिनालय में

सं० १५२८ माघ कृ० ५	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा०ज्ञा० पंचाणेचागोत्रीय श्रे० सारंग ने स्वस्त्री सुहड़ादेवी, पुत्र देहड़ स्त्री देवलदेवी पुत्र नाथा, धना एवं स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३० माघ शु० ४ शुक्र	नमिनाथ	,,	सांगोसणवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० रामसिंह स्त्री सोमादेवी पुत्र लालचन्द्र की स्त्री झटकू नामा ने भ्रातृ कालादि कुडम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १६१३ वै० शु० १३ रवि०	मुनिसुव्रत	तपा० धर्मविमल-गणि	नंदरवारनगर में प्रा० ज्ञा० दो० श्रे० झालण भा० कमला-देवी पु० कान्हा जीभा ने स्वश्रेयोर्थ
सं० १६२२ पौ० कृ० १ रवि०	धर्मनाथ	तपा० हीरविजयसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पद्मराज ने भा० मल्लाईदेवी पुत्र सं० मचा भा० हर्षादेवी पुत्र सं० जीवंत, फीका के सहित.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ७०८, ७०६, ७१८, ७२१, ७३०, ७४७, ७३८, ७४५, ७४६ ।

श्री अमृतजरापार्श्वनाथ-जिनालय में (जीरारवाड़ा)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२० मार्ग० शु० ६ शनि०	पार्श्वनाथ	उपकेशग०-कक्कसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० कउम्भा की स्त्री गुरुदेवी के पुत्र सिंहराज सुश्रावक ने स्वभा० ठणकूदेवी, पुत्र जीवराज, भ्रातृ हंसराज, भ्रातृ भोजराज, सं० जसराजसहित स्वमाता के श्रेयोर्थ.

श्रीअरनाथ-जिनालय में (जीरारवाड़ा)

सं० १५५२ वै० कृ० १३ सोम०	शीतलनाथ	नागेन्द्रगच्छीय-हेमसिंहसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे हरपाल भाखर मं० धनराज ने भा० धर्मादेवी पुत्र जागु, भूपति, नाथा भा० कर्मादेवी, जीवा भा० लीलादेवी, मातृ, भ्रातृ के श्रेयोर्थ.
सं० १६५३ का० शु० ६	वासुपूज्य	तपा० विजयसेन-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पोपट की स्त्री वीरादेवी के पुत्र श्रे० अर्जुन ने.
सं० १७२१ ज्ये० शु० ३ रवि०	पार्श्वनाथ	तपा० विजयराज-सूरि	खंभातवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० जगराज के पुत्र काहनजी की स्त्री पाखड़(?) ने.

श्री सोमपार्श्वनाथ-जिनालय में (संघवीपाड़ा)

सं० १६२२ माघ कृ० २ बुध०	पद्मप्रभ	तपा० हीरविजयसूरि	स्तंभतीर्थ में वड़दलावासी प्रा० ज्ञा० मं० जिनदास की भा० रहीदेवी पुत्र मं० कीका ने भा० कर्मादेवी, पुत्र हंसराज भा० इन्द्राणी पुत्र धनराज, हीरजी, हरजी प्रमुख समस्त कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री विमलनाथ-जिनालय में (चोकसी की पोल)

सं० १५२१ वै० शु० ३	कुन्थुनाथ-चोवीशी	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राउल की स्त्री वीभूदेवी के पुत्र समराज ने भा० गउरीदेवी, पुत्र धनराज, वनराज, दत्तराज आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५८७ पौ० शु० १३	अजितनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि	वीशलनगरवासी प्रा० ज्ञा० पुत्र हरपति भा० हीरादेवी के पुत्र पट्टआ हेमराज ने भगिनी कतूदेवी, भा० भमकीबाई प्रमुखकुटुम्ब सहित.

श्री चिन्तामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में (चोकसी की पोल)

सं० १३०६ फा० शु० ८	पार्श्वनाथ-पंचतीर्थी	सोमतिलक-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गहगड़ की स्त्री नायकदेवी के पुत्र पाल्हा ने पिता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ७५३, ७६६, ७६२, ७७१, ७८०, ७८८, ७६१, ८२० ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५०५	सुमतिनाथ	तपा० जयचन्द्रसूरि	उटववासी प्रा० ज्ञा० श्रे० मला ने अपनी भगिनी चम्पादेवी (धनराज की स्त्री) के श्रेयोर्थ.
सं० १५१२ वै० शु० ५	अजितनाथ	विजयधर्मसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पासड़ के पुत्र पचा की स्त्री पूजादेवी के पुत्र अर्जुन ने मं० सहजा भा० तिली एवं आत्मश्रेयोर्थ.
			श्री शान्तिनाथ-जिनालय में (चोकसी की पोल)
सं० १५०८ वै० शु० १३ रवि०	विमलनाथ	आगमगच्छीय श्रीसिंहदत्तसूरि-	प्रा० ज्ञा० श्रे० पंचराज की स्त्री अहिवदेवी के पुत्र अमरसिंह, भ्रा० कमलसिंह भा० चमकूदेवी के पुत्र देवराज ने स्वभा० देल्हागदेवी के सहित स्वपूर्वज-श्रेयोर्थ.
सं० १५२४ वै० कृ० ७	पद्मप्रभ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	कालूपुरनगर में प्रा० ज्ञा० श्रे० नारद की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र लाईया, भ्रा० कुँरपाल ने भा० मृगादेवी, पुत्र सूरदास, वर्द्धमान आदि कुटुम्ब-सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५३१ ज्ये० शु० २ रवि०	नमिनाथ	तपा० सुमतिसुन्दरसूरि	महिसाणावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गोधराज की स्त्री डाही के पुत्र कर्मराज ने स्वभा० पतीदेवी नामा के श्रेयोर्थ.
			श्री मुनिसुव्रतस्वामि के जिनालय में (अलिंग)
सं० १४६२ चै० कृ० ५ शुक्र०	आदिनाथ	श्रीसर्वसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पाल्हा ने स्वभा० नागूदेवी, पुत्र शिवराज भा० अर्घूदेवी सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०४ आषा० शु० २	अनन्तनाथ	तपा० जयचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राजसिंह की स्त्री मेघूदेवी के पुत्र धरणा की स्त्री सारूदेवी के पुत्र हेमराज ने भ्रातृ अमरचन्द्र, पितृव्य साधा स्वकुटुम्ब-सहित पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१६ चै० कृ० ५ गुरु०	वासुपूज्य	वृ० तपा० विजयरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मसिंह की भा० फदकूदेवी के पुत्र महिराज ने स्वभा० सोही के सहित पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १६३२ द्वि० चै० कृ० ८ शुक्र०	चन्द्रप्रभ	तपा० विजयसेनसूरि	खम्भातवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सिंह पुत्र लक्ष्मण पुत्र हेमराज की स्त्री धयजलदेवी के पुत्र श्रे० अमिराज ने भा० तेजलदेवी, पुत्र पुण्यपाल प्रमुख-कुटुम्बसहित.
			श्री नवखण्डापार्श्वनाथ-जिनालय में (भोंयरापाड़ा)
सं० १५२६ आषा० शु० ६ रवि०	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वाच्छा की स्त्री मनीदेवी के पुत्र श्रे० सांगा ने भा० झाडूदेवी, पुत्र वीरा, जयसिंह आदि कुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ७३८, ८०१, ८४१, ८४३, ८३६, ८५६, ८५५, ८४६, ८५४, ८७१।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५३२ वै० शु० ३	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० नरपाल भा० वर्जूदेवी के पुत्र झांझण ने भा० जीविणीदेवी, पुत्र विरुआ भा० हांसीदेवी प्रमुख-कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५६५ वै० कृ० ३ रवि०	सुमतिनाथ	वृ० तपा० धर्मरत्नसूरि	जंबूसरवासी प्रा०ज्ञा० वृ० शा० श्रे० राजा भा० राजुलदेवी के पुत्र कालू भा० धर्मादेवी के पुत्र शाणा की स्त्री रहीदेवी ने स्वपति के श्रेयोर्थ.

श्री नेमनाथ-जिनालय में (भोंयरापाड़ा)

सं० १५२३ माघ कृ० ६ शनि०	मुनिसुव्रत-चोवीशी	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० भोला की भा० वयजादेवी के पुत्र श्रे० कान्हा की भार्या विजयादेवी के पुत्र सं० केशव ने स्वभा० जीनादेवी, पुत्र सं० हंसराज, गुणपति, हंसराज की स्त्री सोनादेवी पुत्र झांझण, मांडण प्रमुखकुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री चन्द्रप्रभ-जिनालय में (भोंयरापाड़ा)

सं० १४६४ मार्ग० शु० ११ शुक्र०	धर्मनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० नागड़ की स्त्री हीरादेवी के पुत्र मं० गांगद की स्त्री गंगादेवी के पुत्र मं० कूपा ने स्वभा० रूपिणी, भ्रातृज मं० वीसा, हीरादि सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में (शक्रोपुर)

सं० १५०८ चै० १३ रवि०	शांतिनाथ	आगमगच्छीय श्रीसिंहदत्तसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० मेला ने स्त्री अमकूदेवी, पुत्र राजा, सामंत, पिता-माता के श्रेयोर्थ.

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (माणिकचौक)

सं० १५२५ माघ कृ० ६	अनंतनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पर्वत की स्त्री फलीदेवी के पुत्र श्रे० गेपा, भ्रातृ खीमराज ने स्वभा० रत्नादेवी प्र० कु० सहित.
सं० १५२८ आषा. शु० २ सोम०	श्रेयांसनाथ	खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० साहूल के पुत्र शिवराज ने स्वभा० रत्नादेवी, पुत्र श्रीराज, गईया आदि सहित पूर्वज-श्रेयोर्थ.
सं० १५६८ वै० शु० ३ शुक्र०	आदिनाथ	तपा० हेमविमलसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० सोमराज की भा० मटकूदेवी के पुत्र जूठा ने स्वभा० वल्हादेवी, पुत्र वच्छा, हर्षा आदि सकल कुटुम्ब के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ८७३, ८७६, ८८५, ८६३, ६०६, ६१८, ६३६, ६३६ ।

श्री धर्मनाथ-जिनालय में (माणिकचौक)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२५ मार्ग शु० १०	आदिनाथ	श्रीसूरि	धवलक्कपुर में प्रा० ज्ञा० श्रे० भीमराज की स्त्री रमकूदेवी के पुत्र काला की स्त्री ढूबी नामा ने पुत्र जिनदास, देवदास, शिवदास प्रमुखकुटुम्ब के सहित.

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (माणिकचौक)

सं० १४४७ फा० शु० ८ सोम०	शांतिनाथ	श्रीसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० गोलराज के वृद्धभ्राता श्रे० खेतल के पुत्र धरण की स्त्री सहजलदेवी के पुत्र भीलराज ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१५ ज्ये० शु० १५	नमिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कर्मा की स्त्री कपूरीदेवी के पुत्र कडूआ ने स्वभा० मानू, भ्रातृ वडूआ भा० लीलादेवी प्रमुख-कुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५१७ चै० शुक्ल पक्ष में	मुनिसुव्रत	,,	अहमदाबाद में प्रा० ज्ञा० श्रे० वादा की स्त्री मनीदेवी के पुत्र श्रे० नाथा ने स्वभा० माल्हादिकुटुम्बसहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री शान्तिनाथ-जिनालय में (माणिकचौक)

सं० १५०८ वै० कृ० १० रवि०	कुन्थुनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	पाद्रावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० माजा की भार्या फकूदेवी के पुत्र गलराज ने स्वभा० पुहतीदेवी प्र० कु० सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री आदिनाथ-जिनालय में (माणिकचौक)

सं० १३४७(६) माघ शु० १ गुरु०	आदिनाथ	मुनिरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० महं० महणसिंह ने पितृव्य रत्नसिंह के श्रेयोर्थ.
सं० १५०६ माघ शु० ६ गुरु०	चन्द्रप्रभ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	डाभिलाग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० लाडण की स्त्री पचीदेवी के पुत्र हीराचन्द्र ने स्वभा० तिलूदेवी, पुत्र हावड़, कीता, धनराज, भोजराजादि के सहित.
सं० १५२०	शीतलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि, सोमदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० चयरसिंह की स्त्री गउरीदेवी के पुत्र श्रे० हेमराज, जिनदत्त के अनुज श्रे० धनदत्त ने स्वभा० वन्हा-देवी, पुत्र मालदेवादि कुटुम्बसहित.

श्री मुनिसुव्रत-जिनालय में (खारवाड़ा)

सं० १५०४ फा० शु० १३ शनि०	पद्मप्रभ	उपकेशगच्छीय-कक्कसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० गोवल की स्त्री कर्मादेवी के पुत्र पाँचा की स्त्री नायीदेवी ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ६५२, ६८१, ६७८, ६७५, ६८८, १०००, १०१३, १०१५, १०२४ ।

श्री महावीर-जिनालय में (खारवाड़ा)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५१० माघ	आदिनाथ	तपा० रत्नशेखरसूरि	देकावाटकीय प्रा० ज्ञा० श्रे० पर्वत की स्त्री सलूणि के पुत्र शिवराज ने स्वभा० रामतिदेवी पुत्रप्रमुखपरिवार के सहित.
सं० १५३१ माघ शु० ५ शुक्र०	मुनिसुव्रत	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रामचन्द्र की स्त्री गूजरिदेवी के पुत्र नारद ने भा० मचकूदेवी, वृ० भ्रा० भीमराज के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री अनन्तनाथ-जिनालय में (खारवाड़ा)

सं० १५२९ आषा० कृ० ३	सुपार्श्वनाथ	वृ० तपा० विजयरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वरसिंह ने भा० मानूदेवी, पुत्र देपा भा० राजूदेवी पुत्र ठाइआ, गांगा भा० आसू पुत्र गोपालराज आदि प्रमुखकुटुम्ब के श्रेयोर्थ.

श्री स्तम्भनपार्श्वनाथ-जिनालय में (खारवाड़ा)

सं० १३९३ ज्ये० शु० ९ शुक्र०	पार्श्वनाथ	रत्नचन्द्रसूरि	सौराष्ट्र प्रा० ज्ञा० ठ० सज्जन के श्रेयोर्थ ठ० गणपत ने.
सं० १५०८ वै० शु० ३	अनन्तनाथ	तपा० रत्नशेखरसूरि	प्रा० ज्ञा० म० सूरा की स्त्री सीतादेवी के पुत्र साजणसिंह ने भा० वर्जूदेवी, पुत्र सहसकरण भा० रामतिदेवी के श्रेयोर्थ.

श्री मनमोहन-पार्श्वनाथ-जिनालय में (खारवाड़ा)

सं० १५०९ माघ शु० १० शनि०	धर्मनाथ	सा. पूर्णिमा. पक्षी. पुण्यचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० राणासन्तानीय श्रे० मांडण भा० सलखूदेवी के पुत्र सूटा की स्त्री रत्नादेवी के पुत्र उझाने स्वभा० हर्षूदेवी, पुत्र महिपालसहित स्वश्रेयोर्थ.

श्रीसीमंधर-स्वामि-जिनालय में (खारवाड़ा)

सं० १३९२(३) माघ कृ० ११ शुक्र०	नेमिनाथ	चैत्रगच्छीय मानदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० ठ० अजयसिंह ने पुत्र केशव के श्रेयोर्थ.
सं० १४८३ वै० शु० ३ शनि०	संभवनाथ	नागेन्द्रगच्छीय गुणसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पेथा की स्त्री प्रीमलदेवी के पुत्र मांडण ने स्वभार्या हर्षूदेवी, पुत्र सहिसा, भ्राता कर्मण, धर्मण भार्या आसूदेवी पुत्र महिराज प्रमुख कुटुम्बसहित पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१९ ज्ये० शु० १३ सोम०	आदिनाथ	संडेरगच्छीय सालिभद्रसूरि	विपलावासी प्रा०ज्ञा० श्रे० पर्वत की स्त्री कुतिगदेवी के पुत्र हरदास, तेजपाल, हरदास की स्त्री लीलादेवी पुत्र आदि.
सं० १६३२ वै० शु० ७ रवि०	पार्श्वनाथ	तपा० हीरविजयसूरि	स्तंभतीर्थ में प्रा०ज्ञा० श्रे० परीक्षक कीका की स्त्री सहिजलदेवी के पुत्र देवराज की स्त्री वीरादेवी के पुत्र तेजपाल ने.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० १०३६, १०३५, १०४०, १०४५, १०४८, १०५५, १०६८, १०५६, १०६२, १०७८।

श्री नवपल्लवपार्श्वनाथ-जिनालय में (बोलपीपल)

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२१ वै० शु० ३	संभवनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	पत्तन में प्रा० ज्ञा० श्रे० जूठा भा० चकूदेवी के पुत्र वेलचंद्र ने स्वभा० धनादेवी, भ्रातृ भीमराज, मांजा, पासादि कुटुम्ब के सहित भ्रातृ पोपट के श्रेयोर्थ.
सं० १५२९ माघ कृ. १३ सोम०	वासुपूज्य	वृ० तपा० विजयरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० देपा ने भार्या राजूदेवी, पु० गांगा भा० आसूदेवी पुत्र गंगराज भा० माकूणादेवी प्रमुखकुटुम्ब के श्रेयोर्थ.
सं० १५६४ ज्येo शु० १२ शुक्र०	अजितनाथ	वृ० तपा० लब्धि-सागरसूरि	पालीयवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० गदा भा० हली के पुत्र आपू ने स्वभा० अहवदेवी, पुत्र वरूआ, सरूआ प्रमुखकुटुम्ब के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १५६५ माघ शु० १२	आदिनाथ	तपा० विजयधन-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जसराज भा० शृंगारदेवी।

श्री संभवनाथ-जिनालय में (बोलपीपल)

सं० १३५० वै० शु० ११	पार्श्वनाथ	विमलचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० महं० जगसिंह भार्या शृंगारदेवी। उनके श्रेयोर्थ.
सं० १५०६ मा० शु० १० रवि०	अनंतनाथ	तपा० उदयनंदि-सूरि	प्रा० ज्ञा० महं० षठ(?) की स्त्री देईदेवी के पुत्र सं० हेमराज ने स्वभा० कपूरीदेवी, भ्रातृ सं० मूघा भा० कमलादेवी पुत्र पूजा आदि कुटुम्बसहित सर्वश्रेयोर्थ.
सं० १५२६ ज्ये० कृ० १ शुक्र०	संभवनाथ	आगमगच्छीय अमररत्नसूरि	धंधूकावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० भीमराज ने स्त्री मटकूदेवी पुत्र डूङ्गर, देवराज, हेमराज, पंचायण, जिनदास, पुत्री पुतली के सहित.
सं० १५४६ आषा. शु० ३ सोम०	अजितनाथ	आगमगच्छीय विवेकरत्नसूरि	पेथडसंतानीय श्रे० पर्वत की स्त्री लखीदेवी के पुत्र फोका की स्त्री देमाईदेवी के पुत्र विजयकर्ण ने माता के श्रेयोर्थ.

शीयालबट (काठियावाड़) के श्री जिनालय में

सं० १३१५ फा० कृ० ७ शनि०	पार्श्वनाथ	चन्द्रगच्छीय-यशोभद्रसूरि	मधुमती के श्री महावीर-जिनालय में प्रा० ज्ञा० श्रे० आम्र-देव के पुत्र सपाल के पुत्र गांधी चिव्वा(?) ने स्वश्रेयोर्थ.

जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० १०६७, १०६४, १०६६, ११२५, ११३४, ११४८, ११५१, ११३६।
जै० ले० सं० भा० २ ले० १७७६।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १३२० माघ शु० गुरु०	आदिनाथ	राका (पूर्णिमा)-गच्छीय महीचंद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० वीरदत्त के पुत्र व्य० जाला की भार्या माणिका ने स्वश्रेयोर्थ.

पालीताणा में माधुलालजी की धर्मशाला के श्री सुमतिनाथ-जिनालय में

सं० १४३६	पार्श्वनाथ	तपा० देवचन्द्र-सूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० हाला भा० दानूदेवी के पुत्र चींगिरण ने.
सं० १५०३ आषाढ़ शु० १० शुक्र०	मुनिसुव्रत-स्वामि	तपा० जिनरत्न-सूरि	सहूआलावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० पींचा भा० लक्ष्मणदेवी के पुत्र वीरम, धीरा, चींगा ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५१२	सुमतिनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० आसपाल भा० पाचूदेवी के पुत्र धनराज भा० चमकूदेवी के पुत्र माधव ने स्वभा० वाल्हीदेवी, भ्रातृ देवराज भा० रामादेवी, देवपाल आदि के सहित.
सं० १५१८ वै० शु० १३	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	सखारिवासी प्रा० ज्ञा० शा० जावड़ भा० वारुमती के पुत्र हरदास ने स्वभा० गौमती, भ्रातृ देवराज भा० धर्मिणी के सहित श्रेयोर्थ.
सं० १५२३ वै० कृ० ७ रवि०	सुमतिनाथ-चोवीशी	तपा० लक्ष्मी-सागरसूरि	सीरुंजवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० वाला भा० मानदेवी के पुत्र समधर ने स्वभा० जासीदेवी, धर्मदेवी, पुत्री लाली आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५२ माघ कृ० १२ बुध०	संभवनाथ	वृ० तपा० उदय-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० प० सधा भा० अमकूदेवी के पुत्र मूलराज ने स्वभा० हंसादेवी, पुत्र हर्षचन्द्र, लक्षराज के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १७०२ मार्ग० शु० ६ शुक्र०	आदिनाथ	अंचलगच्छीय-कल्याणसागरसूरि	दीवबंदरवासी प्रा० ज्ञा० नागगोत्रीय सं० विमल-संतानीय सं० कमलसिंह के पुत्र सं० जीवराज के पुत्र सं० प्रेमचन्द्र, सं० प्रागचन्द्र, सं० आणन्दचन्द्र ने पुत्र केशवचन्द्र आदि के सहित स्वपिता जीवराज के श्रेयोर्थ.

तारंगातीर्थस्थ श्री अजितनाथ-जिनालय में

सं० १४८६ आषा० शु० ५	शांतिनाथ-चोवीसी	सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० मंत्रि वाहड़ के पुत्र सिंह भा० पूजलदेवी के पुत्र वडुआ ने भार्या कपूरीदेवीसहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५०४ फा० शु० ६ सोम०	अजितनाथ-चोवीसी	साधुपूर्णिमा-पूर्णचन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० राणा की सन्तान में श्रे० रत्नचन्द्र भार्या धरणी के पुत्र पूर्णसिंह ने भा० देसाई, भ्रातृ हरिदास, स्वपुत्र पासवीर के सहित.

जै० ले० सं० भा० २ ले० १७८०, १७५२, १७५३, १७५४, १७५६, १७५१, १७६१, १७४३, १७३१, १७३२ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५८० चै० शु० १२ शुक्र०	धर्मनाथ-पंचतीर्थी	हेमविमलसूरि	पेथापुरवासी प्रा० ज्ञा० महं० धना के पुत्र महं० जीवा ने स्वभार्या जसमादेवी, पुत्र गोगा भार्या रूपादेवी के श्रेयोर्थ.

सिहोर (काठियावाड़) के श्री सुपार्श्वनाथ-जिनालय में

सं० १४८० चै० शु० १२ शुक्र०	कुन्थुनाथ-पंचतीर्थी	हेमविमलसूरि	वलासरवासी प्रा० ज्ञा० मं० रत्नचन्द्र भा० रजाईदेवी के पुत्र सं० सहस्रकिरण ने स्वभार्या धरणीदेवी पुत्र तजदेव के सहित.

भारत के विभिन्न प्रसिद्ध २ नगर

●

बम्बई के श्री आदिनाथ-जिनालय में (वालकेश्वर)

सं० १७६४ ज्यै० शु० ५ गुरु०	शांतिनाथ-चोवीसी	संविज्ञप० ज्ञान-विमलसूरि	स्तम्भतीर्थवासी प्रा० ज्ञा० वृ० शा० श्रे० मेघराज की स्त्री वेजकुमारी के पुत्र सुसगल ने स्वद्रव्य से.

हैदराबाद के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (कारवान शाहूकारी)

सं० १४५८ फा० शु० १ मंगल०	पार्श्वनाथ	तपा० देवसुन्दर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० धरणि के पुत्र सिंघा के श्रेयोर्थ उसके भ्राता श्रे० कान्हड़ ने.
सं० १४८१ वै० शु० ३ शनि०	अभिनन्दन	मड़ाहड़गच्छीय-उदयप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सामन्त की स्त्री सामलदेवी के पुत्र धर्मचन्द्र ने भ्राता हीराचन्द्र, शिवराज, सहदेव के सहित पिता-माता के श्रेयोर्थ.

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (रजिडेन्सी बाजार)

सं० १५४१ माघ शु० १२	धर्मनाथ-पंचतीर्थी	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० झाटा की स्त्री सुलेश्री के पुत्र जिनदास ने स्वभा० लक्ष्मीदेवी,पुत्र हरदास,सूरदास के सहित स्वश्रेयोर्थ.

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में (चार कवान)

सं० १७०१ मार्ग० शु० ५ गुरु०	पार्श्वनाथ-पंचतीर्थी	तपा० विजयदेव-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कानू ने.

जै० ले० सं० भा० २ ले० १७३०, १७३५, १७६६, २०४८, २०४६, २०५४ २०६०।

अजीमगंज के श्री सुमतिनाथ-जिनालय में

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १४६६ माघ शु० ६ रवि०	पार्श्वनाथ	श्रीसूरि	आंचलगच्छीय प्रा० ज्ञा० श्रे० उदा की भार्या चत (?) के पुत्र जोला भार्या डमणादेवी के पुत्र मुंडन ने भ्राता के श्रेयोर्थ.
			श्री पंचायती नेमिनाथ-जिनालय में
सं० १५५३ वै० शु०	शांतिनाथ	तपा० हेमविमल-सूरि, श्री कमल-कलशसूरि	सिरुत्रावासी प्रा० ज्ञा० श्रे० खेता भार्या मदी के पुत्र श्रे० भोजराज ने स्वभा० राजूदेवी, भ्रातृ राजा, रत्ना, देवा के सहित स्वपूर्वजश्रेयोर्थ.
			बालूचर के श्री विमलनाथ-जिनालय में
सं० १५१५ वै० कृ० ५	मुनिसुव्रत	तपा० रत्नशेखर-सूरि	अतरीग्राम में प्रा० ज्ञा० श्रे० आसराज भा० संसारदेवी के पुत्र श्रे० कर्मसिंह ने स्वभा० सारूदेवी, पुत्र गोविन्द, गोपराज, हापराज आदि कुटुम्बसहित भ्रातृज महिराज के श्रेयोर्थ.
			श्री सम्भवनाथ-जिनालय में
सं० १५२७ ज्ये० शु० ८ सोम०	वासुपूज्य	खरतरगच्छीय-जिनहर्षसूरि	प्रा०ज्ञा० श्रे० गांगा, मुजा पुत्र महिराज की भा० रमाईदेवी नामा श्राविका ने श्रेयोर्थ.
सं० १५६१ वै० कृ० ६ शुक्र०	आदिनाथ	सौभाग्यनन्दि-सूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० पाल्हा पुत्र पांचा भार्या देऊदेवी के पुत्र नाथा भार्या नाथीदेवी के पुत्र विद्याधरण ने पुत्र हंसराज, हेमराज, भीमराज, पुत्री इन्द्राणी आदि कुटुम्ब-सहित श्रेयोर्थ.
			श्री किरतचन्द्रजी सेठिया के गृहजिनालय में (चावलगोला)
सं० १५३३ वै० कृ० ४	वासुपूज्य	तपा० लक्ष्मीसार-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० अपा की स्त्री आल्हीदेवी के पुत्र भरसिंह ने स्वस्त्री और पुत्र साल्हादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.
			श्री आदिनाथ-जिनालय में (कठगोला)
सं० १५३० माघ शु० ४ शुक्र०	सम्भवनाथ-पाषाण-प्रतिमा	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	सांवोसणवासी प्रा० ज्ञा० श्रे० सोनमल की स्त्री माऊदेवी के पुत्र नारद के भ्राता विरुआ ने स्वस्त्री वील्हणदेवी, पुत्र देवधर, मेला, साईयादि कुटुम्बीजनों के सहित स्वश्रेयोर्थ.
			श्री जगतसेठजी के जिनालय में (महिमापुर)
सं० १५२२ माघ कृ० १ गुरु०	कुन्थुनाथ	सा० पू० विजय-चन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जसराज भार्या सूरिदेवी के पुत्र सर्वण ने स्वस्त्री रूपादेवी, माता-पिता और स्वश्रेयोर्थ.

जै० ले० सं० भा० १ ले० २, १५, ४०, ५२, ५४, ५८, ७०, ७२।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५३६ फा० शु० १२	नमिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	पींडरवाटक में प्रा० ज्ञा० मुण्ठलियागोत्रीय श्रे० हीरा भार्या रूपादेवी पुत्र देपा भा० गीमतिके पुत्र गांगा ने स्वस्त्री नाथी, पुत्र मेरा, भ्राता गोगादि कुटुम्ब के सहित.

कलकत्ता के बड़े बाजार में श्री धर्मनाथ-पंचायती-जिनालय में

सं० १३४६ ज्ये० शु० १४	आदिनाथ-धातु-प्रतिमा	....	प्रा० ज्ञा० महं० सादा के पुत्र महं० राजा के श्रेयोर्थ उसके पुत्र महं० मालहिवि ने.
सं० १३७५	शान्तिनाथ	हेमप्रभसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० आम्रचन्द्र भार्या रत्नादेवी के पुत्र सहजा ने.
सं० १४५६ ज्ये० कृ० १३ शनि०	आदिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० रतना भार्या लच्छलादेवी के पुत्र सोगा ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १५२४ वै० शु०	शीतलनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० पाता भा० बाबू के पुत्र लोगराज ने स्वस्त्री जावड़ि, पुत्र रामदास, भ्राता अर्जुन भार्या सोनादेवी के सहित.

श्री शीतलनाथ-जिनालय में (माणिकतला)

सं० १५५७ माघ कृ० १३ बुध०	कुन्थुनाथ	श्रीसूरि	सीणोतनगरीवासी प्रा० ज्ञा० लींबागोत्रीय श्रे० गेला भा० चंदर के पुत्र शा० राजा, धना, तपा, हरपाल भार्या जीविणीदेवी, पुत्र हासा, वस्तुपालादि के सहित.

यति श्री पन्नालालजी मोहनलालजी के गृहजिनालय में

सं० १५१६ फा० शु० ८	विमलनाथ	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० जोगा की स्त्री मृगादेवी के पुत्र शा० उदयराज ने स्वस्त्री कर्मादेवी, पुत्र प्रह्लाद के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १७७१ वै० कृ० ५ गुरु०	शांतिनाथ	विजयऋद्धिसूरि	प्रा० ज्ञा० वृ० शा० श्रे० प्रेमचन्द्र, ग्रामीदास ने स्वश्रेयोर्थ.

अजायबघर में पाषाणप्रतिमा

सं० १६०८ माघ कृ० ६ गुरु०	शांतिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० शा० राघव स्त्री रत्नादेवी, शा० नरसिंह स्त्री सुजलदेवी, शा० रणमल स्त्री वेनीदेवी और पुत्र लाला. सीमल ने.

जै० ले० सं० भा० १ ले० ७३, ८०, ८१, ८४, १०६, ११६, ३८२, ३८३, ३८५।

अजायबघर में गेः लुवार्ड द्वारा मध्य भारत से प्राप्त धातु-प्रतिमा

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५२७ पौ० कृ० ५ शुक्र०	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहजिक के पुत्र डूङ्गर की स्त्री सूड़ी ने सपरिवार द्वि० भार्या सहिजलदेवी, धर्मसिंह, कर्मणादि पुत्रों के सहित श्रेयोर्थ.
सं० १५३३ वै० शु० १२ गुरु०	,,	,,	प्रा० ज्ञा० शा० ताल्हा स्त्री राजूदेवी के पुत्र लिमपाक (?) ने स्वस्त्री रत्नादेवी, रुद्धदेवी, किवालघ, (?) भ्राता मेघराज आदि परिजनों के सहित वसंतनगर में.

बनारस के श्री वट्टूजी के जिनालय में

सं० १५१२ वै० शु० ५	....	तपा० रत्नशेखर-सूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सिंहा स्त्री लादा के पुत्र शा० हीराचन्द्र ने स्वस्त्री आदि परिजनों के सहित.

सिंहपुरी के श्री जिनालय में

सं० १५३४ मार्ग० शु० १० शनि०	मुनिसुव्रत-स्वामि	वृ० तपा० उदय-सागरसूरि	प्रा० ज्ञा० शा० राजा स्त्री वीरू के पुत्र शा० आशपति ने स्वस्त्री आसलदेवी, पुत्र गुणराज, सरराज आदि के सहित.

चम्पापुरी के श्री जिनालय में धातु-प्रतिमा

सं० १५२७ माघ कृ० १ सोम०	संभवनाथ	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० धारा भार्या सलखू के पुत्र शा० वेलराज ने एवं भ्राता सं० वनेचंद्र ने स्वस्त्री आदि परिजनो के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५८१ माघ कृ० १० शुक्र०	शांतिनाथ	निगमप्रभावक-आणंदसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० सहिसा के पुत्र समधर, समधर की स्त्री वड़धू, पुत्र हेमराज और हेमराज की स्त्री हेमादेवी, पुत्र तेज-मल, जीवराज, वर्द्धमान इन सर्वों ने पत्तन में.
सं० १६०३ मार्ग० शु० ३ शुक्र०	सुमतिनाथ	तपा० विशाल-सोमसूरि	प्रा० ज्ञा० ज्येष्ठ भ्रातृजाया रंगादेवी, शा० सूरा स्त्री सूरमादेवी, शा० श्रीरंग, सदारंग अमीपालादि के सहित शा० सचवीर ने.

जै० ले० सं० भा० १ ले० ३६८, ३६६, ४०५, ४२४, १५२, १५५, १५७।

विहार (तुङ्गियानगरी) के लालबाग के श्री जिनालय में धातु-प्रतिमा

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १५३६ वै० शु० ३ सोम०	कुन्थुनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० मं० माईया स्त्री वरजूदेवी के पुत्र श्रीधर स्त्री मांजूदेवी के पुत्र गोरा स्त्री रुक्मिणी के पुत्र वर्द्धमान ने माता-पिता के श्रेयोर्थ.

पटना (पाटलीपुत्र) के श्री नगर-जिनालय में धातु-प्रतिमा

सं० १५२४ वै० शु० १३	वासुपूज्य	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० सं० आमदेव भार्या रातूदेवी के पुत्र शा० आल्हा ने स्वस्त्री सोनीवहिन, पुत्र हासादि के सहित स्वश्रेयोर्थ.

स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली

श्री जिनालय में धातु-प्रतिमा (चेलपुरी)

सं० १५२१ माघ शु० १३	नेमिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि, सोमदेवसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० कटाया स्त्री राजं के पुत्र धना स्त्री हमकू के पुत्र चांपा ने स्त्री धर्मिणि, नामाणि आदि के सहित स्वश्रेयोर्थ
सं० १५३६ माघ शु० ५	चन्द्रप्रभ	तपा०लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० काजा स्त्री सारूदेवी के पुत्र हापा ने भा० नाई आदि के सहित.

श्री जिनालय में (नवघरे)

सं० १४३३	पार्श्वनाथ	गुणभद्रसूरि	प्रा० ज्ञा० लघु० शा० श्रे० आसा भार्या ललितादेवी.
सं० १४७१ माघ शु० १०	आदिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० रामा ने स्वस्त्री, माता-पिता के श्रेयोर्थ.
सं० १४८६ वै० शु०	धर्मनाथ	तपा० सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० शा० साजण स्त्री लाखूदेवी के पुत्र केल्हा ने स्वस्त्री लक्ष्मीदेवी, भ्रात भीमराज, पद्मराजादि के सहित.
सं० १५१७ वै० शु० ८	शांतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	प्रा० ज्ञा० शा० देवपाल ने पुत्र हरसिंह, करणसिंह स्त्री चन्द्रादेवी, धर्मराज, कर्मराज, हंसराज, कालूमल एवं भ्रात हीराचन्द्र ने स्वस्त्री हीरादेवी पुत्र श्रदा, वरा, लाजादि सहित.
सं० १५२५ मा० शु० ६	पद्मप्रभ	तपा० लक्ष्मीसागरसूरि	सीणुरावासी प्रा० ज्ञा० शा० राजा के पुत्र तोपा ने स्वस्त्री रानूदेवी, पुत्र सधारण, हीराचन्द्र के सहित स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५५६ पौ० कृ० ४ गुरु०	वासुपूज्य	मडाहडगच्छीय-मतिसुन्दरसूरि	दघालीयावासी प्रा०ज्ञा० शा० राजा की स्त्री राजुलदेवी ने पुत्र पोमा मा० झमकूदेवी के पुत्र के श्रेयोर्थ.

जै० ले० सं० भा० १ ले० २२२, २८३, ४४४, ४४६, ४५८, ४६३, ४६८, ४८३, ४८४, ४८६ ।

प्र० वि० संवत्	प्र० प्रतिमा	प्र० आचार्य	प्रा० ज्ञा० प्रतिमा-प्रतिष्ठापक श्रेष्ठि
सं० १६४३ फा० शु० ११ गुरु०	शीतलनाथ	तपा० विजयसेन-सूरि	पत्तनवासी प्रा० ज्ञा० श्राविका बाई पूराई के पुत्र देवचन्द्र की स्त्री बाई हांसी के पुत्र रायचन्द्र भीमचन्द्र ने.

श्री चीरेखाने के जिनालय में

सं० १५-५ फा० कृ० ६ सोम.	सम्भवनाथ	सर्वसूरि	प्रा० ज्ञा० शा० घेरा स्त्री पून्जी के पुत्र पूनमचन्द्र भा० ललतूदेवी पुत्र तोलचन्द्र के पुत्र कर्मसिंह ने.

अजमेर

सं० १५२१ ज्ये० शु० ४	सुमतिनाथ	तपा० लक्ष्मीसागर-सूरि	प्रा० ज्ञा० शा० जयपाल की स्त्री वासूदेवी के पुत्र शा० हीराचन्द्र स्त्री हीरादेवी के पुत्र शा० मांडण ने स्वस्त्री रंगादेवी के श्रेयोर्थ.
सं० १५२५ चै० कृ० ६ शनि०	सुविधिनाथ	....	प्रा० ज्ञा० श्रे० सोमचन्द्र स्त्री सूहुलादेवी के पुत्र शिवराज स्त्री सौभागिनी के पुत्र पद्मा ने स्वस्त्री पहूती के सहित.
सं० १५२७ पौ० कृ० १	नेमिनाथ	तपा० जिनरत्न-सूरि	प्रा० ज्ञा० मं० हेमादेवी के पुत्र वईजा (?) ने स्वसा कला-देवी के श्रेयोर्थ.

श्री सम्भवनाथ-जिनालय में

सं० १३७६ वै० कृ० ५ गुरु०	शांतिनाथ	महेन्द्रसूरि	प्रा० ज्ञा० महं० कंधा के पुत्र माल्हराज ने.
सं० १४८१ मा० शु० १०	पद्मप्रभ	सोमसुन्दरसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे०...............
सं० १४६६ माघ शु० ५	सम्भवनाथ	,,	प्रा० ज्ञा० श्रे० धीरजमल स्त्री धीरलदेवी के पुत्र भीमराज स्त्री भावलदेवी के पुत्र वेलराज की स्त्री वीरणीदेवी ने.
सं० १५१७ माघ शु० ५ शुक्र०	धर्मनाथ	आगमगच्छीय-देवरत्नसूरि	प्रा० ज्ञा० श्राविका हर्षू के पुत्र नागराज की स्त्री आजी के पुत्र श्रे० जिनदास ने स्वश्रेयोर्थ.
सं० १५४७ माघ कृ० ८	वासुपूज्य	श्रीसूरि	प्रा० ज्ञा० श्रे० रूपचन्द्र भा० देपूदेवी के पुत्र मेरा ने स्वस्त्री हीरादेवी के श्रेयोर्थ.

जै० ले० सं० भा० १ ले० ५०४, ५११, ५३५, ५३७, ५३८, ५४५, ५४६, ५५३, ५५७, ५६३ ।

प्राग्वाटज्ञातीय कुछ विशिष्ट व्यक्ति और कुल

रणकुशल वीरवर श्री कालूशाह

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी

राजस्थान में गढ़ रणथंभौर का महत्त्व राणा हमीर के कारण अत्यधिक बढ़ा है। राणा हमीर वीरों का मान करता था और सदा वीरों को अपनी सैन्य में योग्य स्थान देने को तत्पर भी रहता था। उसकी सैन्य में यहाँ तक कि यवन-योद्धा भी बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से भर्ती होते थे और राणा हमीर उनका बड़ा विश्वास करता था। राणा हमीर के समय में रणथंभौर का जैन श्रीसंघ भी बड़ा ही समृद्ध एवं गौरवशाली रहा है। अनेक जैन योद्धा उसकी सैन्य में बड़े २ पदों पर आसीन थे। राणा हमीर जैन-धर्म का भी बड़ा श्रद्धालु था तथा जैन यतियों एवं साधुओं का बड़ा मान करता था। यही कारण था कि जैनियों ने राणा हमीर की युद्ध-संकट एवं प्रत्येक विषम समय में तन, मन एवं धन से सेवायें की थीं।

वंश-परिचय

राणा हमीर की सैन्य में जो अनेक जैनवीर थे, उनमें प्राग्वाटज्ञातीय प्रतापसिंह की आज्ञाकारिणी धर्मपत्नी यशोमती की कुक्षी से उत्पन्न नरवीर कालूशाह भी थे।

कालूशाह के पिता प्रतापसिंह कृषि करते थे और उससे प्राप्त आय पर ही अपने वंश का निर्वाह करते थे। कृषि करने वालों में उनका बड़ा मान था। हरिप्रभसूरि के उपदेश से उनमें धर्म की लग्न जगी और वे अत्यन्त दृढ़ धर्मी और क्रियापालक बन गये। एक बार जब हरिप्रभसूरि का रणथंभौर में पदार्पण हुआ था, तो उन्होंने सूरि के नगर-प्रवेश का महोत्सव करके पुष्कल द्रव्य व्यय किया था और चातुर्मास का अधिकतम व्यय-भार उन्होंने ही उठाया था। तत्पश्चात् दैवयोग से उनको कृषि में दिनों-दिन अच्छा लाभ प्राप्त होता गया और वे एक अच्छे श्रीमन्त कृषक बन गये। नरवीर कालूशाह अपने पिता की जब सहायता करने के योग्य वय में पहुँच गया तो उसने पिता को समस्त गृहसंबंधी चिंताओं से मुक्त कर दिया और आप कृषि करने लगे और घर की व्यवस्था का चालन करने लगे।

कालूशाह के पिता प्रतापसिंह

कालूशाह बचपन से ही निडर, साहसी और सत्यभाषी थे। वे किसी से नहीं डरते थे। कालूशाह का समय सामंतशाही काल था, जिसमें प्रजा का भोग एवं उपभोग एक मात्र राजा, सामंत और ग्रामठक्कुर के लिये ही होता था और प्रजा भी इसी में विश्वास करती थी। परन्तु नरवीर कालूशाह ऐसी प्रजा में से नहीं थे। वे स्वाभिमानी थे और न्याय एवं नीति के लिये लड़ने वाले थे। ये दिव्य गुण इनमें बचपन से ही जाग्रत थे। एक दिन राणा हमीर के कुछ सेवक अश्वशाला के कुछ घोड़ों को बाहर चराने के लिये ले गये। कालूशाह का खेत हरा-भरा देखकर उन्होंने घोड़ों को खेत में चरने के लिये छोड़ दिया। कालूशाह का एक सेवक खेत की रखवाली कर रहा था। उसने घोड़ों को हांक कर खेत के बाहर निकाल दिया। इस पर

कालूशाह की साहसिकता

राणा के सेवक उसपर अत्यन्त क्रुद्ध हुये और उन्होंने उसको बुरी तरह मारा और पीटा। सेवक रोता २ कालूशाह के पास में पहुँचा। कालूशाह यह अन्याय कैसे सहन कर सकते थे, तुरन्त खेत पर पहुँचे और राणा के सेवकों को एक २ करके बुरी तरह से पीटा और उनको बंदी बनाकर तथा घोडों को पकड़ कर अपने घर ले आये। कालूशाह के इस साहसी कार्य के समाचार तुरन्त नगर भर में फैल गये। परिजनों एवं संबंधियों के अत्यधिक कहने-सुनने पर इन्होंने राणा के सेवकों को तो मुक्त कर दिया, परन्तु घोडों को नहीं छोड़ा। राजसेवकों ने राणा के पास पहुँच कर अनेक उल्टी सीधी कही और कालूशाह के ऊपर उसको अत्यन्त क्रुद्ध बना दिया।

राणा हमीर ने तुरंत अपने सैनिकों को भेज कर कालूशाह को बुलवाया। कालूशाह भी राणा हमीर से मिलने को उत्सुक बैठे ही थे। तुरन्त सैनिकों के साथ हो लिये और राजसभा में पहुँच कर राणा को अभिवादन करके निडरता के साथ खड़े हो गये। राणा हमीर ने लाल नेत्र करके कालूशाह से राजसेवकों को पीटने और राज-घोड़ों को बंदी बना कर घर में बांध रखने का कारण पूछा और साथ में ही यह भी धमकी दी कि क्या ऐसे उद्दंड साहस का फल कठोर दंड से कोई साधारण सजा हो सकती है। कालूशाह ने निडरता के साथ में राणा को उत्तर दिया कि जब राजा प्रजा से कृषि-कर चुकता है तो वह कृषि का संरक्षक हो जाता है। ऐसी स्थिति में कोई ही मूर्ख राजा होगा जो कृषि को फिर नष्ट, भ्रष्ट कराने के विचारों को प्राथमिकता देता होगा। अपनी प्यारी प्रजा का पालन, रक्षण करके ही कोई नरवीर राजा जैसे शोभास्पद पद को प्राप्त करता है और प्रजाप्रिय बनता है और प्रजा का सर्वनाश एवं नुकसान करके वह अपने स्थान को लज्जित ही नहीं करता, वरन् प्रजा की दुराशीष लेकर इहलोक में अपयश का भागी बनता है और परलोक में भी तिरस्कृत ही होता है। राणा हमीर कालूशाह के निडर प्रत्युत्तर को श्रवण करके दंग रह गया। कालूशाह के ऊपर अधिक कुपित होने के स्थान पर उसके ऊपर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ और अपने सेवकों को बुरी तरह अपमानित करके आगे भविष्य में ऐसे अत्याचार करने से बचने की कठोर आज्ञा दी। राणा हमीर ने अपना कंठ मधुर करके कालूशाह को अपने निकट बुलाया और राजसभा के समक्ष उसको अपनी सैन्य में उच्चपद पर नियुक्त करके उसके गुणों की प्रशंसा की।

कालूशाह अब कृषक से बदल कर सैनिक हो गया। धीरे २ कालूशाह ने ऐसी रणयोग्यता प्राप्त की कि राणा हमीर ने कालूशाह को अपना महाबलाधिकारी जिसको दंडनायक अथवा महासैनाधिपति कहते हैं, बना दिया।

अल्लाउद्दीन खिलजी का रणथंभौर पर आक्रमण और कालूशाह की वीरता

जब दिल्ली के आसन पर अल्लाउद्दीन खिलजी अपने चाचा जल्लालुद्दीन को मार कर बैठा, तो उसने समस्त भारत के ऊपर अपना राज्य जमाने का स्वप्न बांधा और बहुत सीमा तक वह अपने इस स्वप्न को सरलता से सच्चा भी कर सका। फिर भी राजस्थान के कुछ राजा और राणा ऐसे थे, जिनको वह कठिनता से आधीन कर सका था। इनमें रणथंभौर के राणा हमीर भी थे। अल्लाउद्दीन ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करके तथा गूर्जर जैसे महासमृद्धिशाली प्रदेश पर अधिकार करके अपने महापराक्रमी, विश्वासपात्र सैनापति उलगखां और नुशरतखां को बहुत बड़ा और चुने हुए सैनिकों सैन्य देकर वि० सं० १३५६ में रणथंभौर को जय करने के लिये भेजे। आक्रमण करने का तुरन्त कारण यह

बना था कि अशरणशरण राणा हमीर ने अल्लाउद्दीन के दरबार से भाग कर आये हुये एक यवन को शरण दी थी। इस पर अल्लाउद्दीन अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने तुरन्त ही रणथंभौर के विरुद्ध सबल एवं विशाल सैन्य को भेजा। इस रण में हमारे चरित्रनायक कालूंशाह ने बड़ी ही तत्परता एवं नीतिज्ञता से युद्ध का संचालन किया था। यद्यपि राजपूत-सैन्य संख्या में थोड़ी थी, परन्तु राणा हमीर अपने योग्य महाबलाधिकारी की सुनीतिज्ञता से अन्त में विजयी हुआ। उधर यवनशाही सेनापति प्रसिद्ध उलगखां मारा गया। उलगखां की मृत्यु एवं शाही पराजय से अल्लाउद्दीन को बड़ा दुःख हुआ। वि० सं० १३५८ ई० सन् १३०१ में स्वयं अल्लाउद्दीन अपनी पराक्रमी एवं सुसज्जित सैन्य को लेकर रणथंभौर पर चढ़ आया। इस बार युद्ध लगभग एक वर्ष पर्यन्त दोनों दलों में होता रहा। धीरे २ राणा हमीर के योद्धा मारे गये। यद्यपि यवन-सैन्य अति विशाल था और राजपूत-सैनिक हजारों की ही संख्या में थे। अन्त में महाबलाधिकारी कालूशाह और राणा हमीर अपनी थोड़ी-सी बची सैन्य को लेकर केसरिया वस्त्र पहिन कर जौहरव्रत धारण करके निकले और भयंकरता से रण करते हुये, यवनों को मृत्यु के ग्रास बनाते हुये समस्त दिवस भर भयंकर संग्राम करते रहे और अंत में घायल होकर वीरगति को प्राप्त हुये। इनके मरने पर राजपूत-सैना का साहस टूट गया और वह भाग खड़ी हुई। रणथंभौर पर यवनशासक का अधिकार हो गया। कालूशाह का नाम आज भी रणथंभौर में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। कालूशाह की वीरता एवं कीर्त्ति में अनेक कवियों ने बड़े २ रोचक कवित्त बनाये हैं। नीचे का एक प्राचीन पद पाठकों को उसकी वीरता एवं रणनिपुणता का परिचय देने में समर्थ होगा। *

'धम्म दियो रणथम्म के शूरो कालुशाह, पत राखी चौहाण की पड़ियो सेन अथाह।
काली वज्र कर में धरी, खप्पर भरिया पूर, आठ सहस अड़सठ तणा यवन करिया चूर॥'

संभव है यह पद कालूशाह की वीरगति के अवसर पर ही किसी बचे हुये योद्धा ने कहा है।

अहिंसाधर्म का सच्चा प्रतिपालक, जीवदयोद्धारक एवं शंखलपुर का कीर्तिशाली शासक कोचर श्रावक

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी

ई० चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में और वि० चौदहवीं शताब्दी के मध्य में शंखलपुर नामक ग्राम में जो अणहिलपुरपत्तन से तीस मील के अंतर पर है, प्राग्वाटज्ञातीय बृहद्‌शाखीय वेदोशाह नामक एक अति उदार श्रीमन्त रहते थे। वेदोशाह की स्त्री का नाम वीरमदेवी था। इनके एक ही कोचर नामक पुत्र हुआ और वह बचपन से ही धर्मप्रवृत्ति, दयालु तथा शांतस्वभावी था। इस समय दिल्ली पर तुगलकवंश का शासन था। मुहम्मदतुगलक उद्भट विद्वान् एवं अत्यन्त भावुक-हृदय सम्राट् था।

वेदोशाह और उसका पुत्र कोचर और उसका समय

* श्री शिवनारायणजी की हस्तलिखित 'प्राग्वाट-दर्पण' से।

वह सर्व धर्मों का सम्मान करता था। विद्वानों एवं कवि तथा धर्मज्ञों का वह आश्रयदाता था। उसके दरबार में देश के प्रसिद्ध पण्डित एवं साधु रहते थे। वह विशेष कर जैनधर्म के प्रति अधिक आकृष्ट था। वह जैन साधु एवं श्रावकों का अत्यन्त मान करता था। प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनप्रभसूरि का वह परम भक्त था। इन जैनाचार्य के आदेश एवं सदुपदेश से सम्राट् मुहम्मद ने शत्रुंजय, गिरनार, फलोधी आदि प्रसिद्ध तीर्थों की रक्षा के लिये राज्याज्ञा प्रचारित की तथा अनेक स्थलों एवं पर्वों पर जीवहिंसायें बंद की। देवगिरिवासी संघपति जगसिंह तथा खंभातवासी संघपति समरा और सारंग की सम्राट् मुहम्मद तुगलक की राजसभा में अति मान एवं प्रतिष्ठा थी। सम्राट् के सामन्त एवं सेवक भी जैनधर्म का सत्कार करते थे तथा जैनाचार्यों एवं श्रावकों का बड़ा मान करते थे।

शंखलपुर[1] के पास में बहिचर नामक ग्राम है। उस समय बहुचरा नामक देवी का वहाँ एक प्रसिद्ध स्थान था। इस देवी के मन्दिर पर प्रतिदिन हिंसा होती थी। कोचर जैसे दयालु श्रावक को यह कैसे सहन होता ? वह

बहुचरा देवी और पशुबली

इस हिंसा को बंद करवाने का प्रयत्न करने लगा। कोचर श्रावक एक समय खंभात गया हुआ था। एक दिन वह जैन-उपाश्रय में किसी प्रसिद्ध जैन आचार्य[2] अथवा साधु महाराज का व्याख्यान श्रवण कर रहा था। उपयुक्त अवसर देखकर कोचर श्रावक ने बहुचर ग्राम में बहुचरादेवी के आगे होती पशुबली के ऊपर गहरा प्रकाश डाला और प्रार्थना की कि पशुबली को तुरन्त बन्द करवाने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। व्याख्यान में खंभात के प्रसिद्ध श्रीमंत श्रेष्ठि साजणसी भी उपस्थित थे। साजणसी स्वयं परम प्रभावक एवं अति प्रसिद्ध श्रीमंत थे। इनके पिता सं० समरा अपने भ्रातृज सारंग के साथ मुहम्मद तुगलक की राज्य-सभा में रहते थे। इस कारण से भी इनका मान और गौरव अधिक बढ़ा हुआ था। श्रीसंघ के आग्रह से इस कार्य में सहाय करने के लिये सं० साजणसी तैयार हुये।

तुगलक सम्राट् की ओर से एक प्रतिनिधि (सूबादार) खंभात में रहता था, जो समस्त गुजराज पर शासन करता था। श्रावक कोचर एवं सं० साजणसी दोनों शाही प्रतिनिधि के पास गये। शाही प्रतिनिधि सं० साजणसी

कोचर की सम्राट् के प्रतिनिधि से भेंट और कोचर का शंखलपुर का शासक नियुक्त होना

का बड़ा मान करता था और उनको चाचा कह कर पुकारता था तथा बनता वहां तक सं० साजणसी की प्रत्येक प्रार्थना और आदेश को मान देता था। सम्राट् के प्रतिनिधि ने सं० साजणसी और कोचर श्रावक का बहु मान किया। बहुचरा ग्राम में बहुचरादेवी के मन्दिर पर होती पशुबली ही बन्द नहीं की, वरन् श्रावक कोचर की जीवदया-भावना से अत्यन्त मुग्ध होकर उसने श्रावक कोचर को शंखलपुर का शासक नियुक्त कर दिया।

---

१ 'शंखलपुर' का वास्तविक नाम 'सलखणपुर' होना चाहिए।

२ 'कोचर व्यवहारी रास' के आधार पर—जिसकी रचना तपागच्छनायक श्रीमद् विजयसेनसूरि के समय में डिसा नगर (गुजरात) में वि० सं० १६८७ आश्विन शु० ६ को कविवर कनकविजयजी के शिष्यवर कविवर गुणविजयजी ने की थी।

'कोचररास' के कर्त्ता ने श्री सुमतिसाधुसूरि का नाम लिखा है। 'तपागच्छपट्टावली' के अनुसार ये आचार्य सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुये हैं और कोचर चौदहवीं शताब्दी के अंत में। दूसरी बात सं० समराशाह ने शत्रुंजय का संघ वि० सं० १३७१ में निकाला और उसके पुत्र साजणसी ने कोचर श्रावक को शंखलपुर का शासक बनाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया का स्पष्ट उल्लेख है। अतः स्पष्ट है कि उपरोक्त जैनाचार्य श्री सुमतिसाधुसूरि नहीं होकर कोई अन्य आचार्य थे। त० प० भा० १ पृ० २०१ प्र० ५४

तथा 'वैक्रमे वत्सरे चंद्रहयाग्नीन्द्र (१३७१) मिते सती श्री मूलनायकोद्धार साधुः श्री समरो व्यधात् १२०'। वि० ती० क० पृ० ५

'श्रीमत् कुतुबदीनस्य राज्यलक्ष्म्या विशेषकः। ग्यासदीनाभिधस्तत्र पातसाहिस्तदाऽभवत् ॥३२४॥
तेनातीव प्रमोदेन स्मरसाधु सगौरवम्। सन्मान्य खानवदयं पुत्रत्वे प्रत्यदद्यत ॥३२५॥' ना० न० प्र० पृ० १६५

तब सं० समराशाह के पुत्र सं० साजणसी का सम्मान खंभात का सम्राट्-प्रतिनिधि करें, उसमें आश्चर्य ही क्या है।

शंखलपुर के आधीन निम्न ग्राम थे:—

१—हासलपुर	२—वड्डावली	३—सीतापुर	४—नाविआणी
५—रहिचर	६—टूहड़	७—देलवाड़	८—देनमाल
६—मोढ़ेरू	१०—कालहरि	११—छमीघु	

कोचर श्रावक इस प्रकार बारह ग्रामों का शासक बनकर सं० साजणसी के साथ उपाश्रय में पहुँचा और गुरु को वंदना करके वहाँ से राजसी ठाट-बाट एवं सैन्य के साथ शंखलपुर पहुँचा। उपरोक्त बारह ग्रामों में हर्ष मनाया गया तथा शंखलपुर में समस्त प्रजा ने श्रावक कोचर का भारी स्वागत करके उसका नगर में प्रवेश कराया। कोचर के परिजन, माता, पिता एवं स्त्री को अपार आनन्द हुआ।

कोचर का जीवदया-प्रचार तथा शंखलपुर में शासन

कोचर श्रावक ने ज्यों ही शंखलपुर का कार्यभार संभाला, उसने अपने अधीन के बारह ग्रामों में पशुबली को एक दम बंद करने की तुरंत राज्याज्ञा निकाली। समस्त प्रजा कोचर के दिव्य गुणों पर पहिले से ही मुग्ध थी ही, इस राजयाज्ञा से कोचर की दयाभावना का प्रजा पर गहरा प्रभाव पड़ा और स्थान २ होती पशुबली बन्द हो गई। कोचर ने बारह ग्रामों में जीवदया-प्रचार-कार्य तत्परता से प्रारम्भ किया। पानी भरने के तलावों एवं कुओं पर पानी छानने के लिये कपड़ा राज्य की ओर से दिया जाने लगा, यहाँ तक कि पशुओं को भी उपरोक्त बारह ग्रामों में अनछना पानी पीने को नहीं मिलता था। उसने अपने प्रांत में आखेट बन्द करवा दी। जंगलों में हिरण और खरगोश निश्चिंत होकर रहने लगे। जलाशयों में मछली का शिकार बन्द हो गया। इस प्रकार आमिष का प्रयोग एकदम बन्द हो गया।

कोचर श्रावक की कीर्त्ति का प्रसार और सं० साजणसी की ईर्ष्या

शंखलपुर के प्रान्त में इस प्रकार अद्भुत ढंग से उत्कृष्ट जीवदया के पलाये जाने से कोचर श्रावक की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैलने लगी। दूर के संघ कोचर का यशोगान करने लगे। कवि, चारण भी यत्र-तत्र सभाओं में व्याख्यान-स्थलों में, गुरु मुनिमहाराजों, साधु-संतों के समक्ष कोचर की कीर्त्ति करने लगे। कोचर श्रावक को शंखलपुर का शासन प्राप्त हुआ था, उसमें खंभात के श्री संघ तथा विशेषकर सं० साजणसी का अधिक सहयोग था, अतः खंभात में कोचर श्रावक की कीर्त्ति अधिक प्रसारित हो और खंभात का श्री संघ उसकी अधिक सराहना करे तो कोई आश्चर्य नहीं। खंभात में जब घर-घर और गुरु-मुनिराजों के समक्ष भी कोचर की कीर्त्ति गाई जाने लगी तो सं० साजणसी को इससे अत्यधिक ईर्ष्या उत्पन्न हुई कि उसके सहयोग से बना व्यक्ति कैसे उससे अधिक कीर्त्तिशाली हो सकता है।* वह अवसर देख कर

** 'कोचर-व्यवहारी रास' के कर्त्ता ने उपरोक्त वार्ता को देपाल नामक कवि का वर्णन करके चर्चा है। रास के कर्त्ता ने देपाल को समराशाह के कुलका आश्रित कवि होना लिखा है, जो भ्रमात्मक है; क्योंकि देपाल की अनेक कृतियां उपलब्ध हैं जो सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रची हुई हैं और समराशाह चौदहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ है, अतः अघटित है। देपाल समराशाह के वंशजों का समाश्रित भले ही हो सकता है।*

देपाल के लिये देखो:—(१) ऐ० रा० सं० भा० ? पृ० ७

(२) जै० गु० क० भा० ? पृ० ३६-३६

दूसरी बात—स्वयं कोचर और देपाल किसी भी प्रकार समकालीन सिद्ध नहीं किये जा सकते। खरतरगच्छनायक जिनोदयसूरि का कोचर श्रावक ने पुरप्रवेश बड़े धूमधाम से करवाया था, जिसका उल्लेख सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखी गई खरतरगच्छ की प्राचीन पट्टावली में इस प्रकार उपलब्ध है 'पंचित द्वादशग्रामामारिघोषणेन सुरत्राणसनाखत सा० कोचर श्रावकेण सलखणपुरे कारित प्रवेशोत्सवानां' जिनोदयसूरि का काल वि० सं० १४१५-३२ है।

सम्राट् के प्रतिनिधि के पास पहुँचा और उसने कोचर श्रावक के विषय में अनेक झूठी २ बातें बनाईं। इतना ही नहीं प्रतिनिधि को इस सीमा तक भड़काया कि उसने तुरन्त कोचर को बुलाकर कारागार में डाल दिया। इस कुचेष्टा से सं० साजणसी का भारी अपयश हुआ और सर्वत्र उसकी निन्दा होने लगी। शंखलपुर की प्रजा और दूर २ के संघ कोचर श्रावक को मुक्त कराने का प्रयत्न करने लगे। अंत में सं० साजणसी को अपने किये पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उधर सम्राट् के प्रतिनिधि को भी समस्त भेद ज्ञात हो गया, अतः फलतः कोचर श्रावक तुरन्त

देखिये—(१) वाडीपार्श्वनाथ-विधिचैत्य-प्रशस्ति-शिलालेख। D. C. M. P. (G. O. S. VO. LXXVI.) पृ० ४१४

(२) जिनकुशलसूरि का स्वर्गवास वि० सं० १३८६ में हुआ और जिनोदयसूरि उनके पाचवें पट्टधर थे। 'गच्छमतप्रबंध' पृ० ३७

(३) 'शतकचूर्णि'

'संवत् १४२३ वर्षे सा० मेहासुश्रावकपुत्र सा० उदयसिंहेन पुत्र सा० लूणा-नयराभ्यां युतेन स्वपुत्रिकायापुण्यार्थं।'

'शतकवृत्तिपुस्तकं' मूल्येन गृहीत्वा निजखरतरगुरु श्री जिनोदयसूरिणां प्रादामि। [जैसलमेर बृहद् भंडार]

'जिनचंद्रसूरि जिनकुशलसूरि-जिनपद्मसूरि गुरवः स्युः। जिनलब्धिजिनचन्द्रो जिनोदयःसूरि जिनराजः॥१६॥' [श्रीकल्पसूत्रम्] प्र० सं० पृ० १५

ॐ॥'सं० १४१६ भाग व० ५ सा० दाहड़ .... श्री खरतरगच्छे श्री जिनोदयसूरिभिः' जै० ले० २२६७

कोचर-व्यवहारी-रास-कर्त्ता ने रास की रचना संभवतः श्रुति के आधार पर की हैं प्रतीत होता है। देपाल और सुमतिसाधुसूरि अवश्यमेव समकालीन थे। परन्तु कोचर श्रावक को इनका समकालीन मानने में खरतरगच्छपट्टावली का उपरोक्त उद्धरण तथा प्रा० जै० सं० लेखांक ३७ बाधक हैं। 'कोचर-व्यवहारी-रास' से खरतरगच्छपट्टावली तथा उक्त लेखांक अधिक विश्वसनीय भी हैं, क्योंकि उक्त रास की रचना वि० सं० १६८७ में हुई हैं और इनकी सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जब कि देपाल कवि भी विद्यमान् था और जैन कवियों में अग्रगण्य महाकवि था। फिर भी रास में वर्णित घटना को पाठकों के विचारार्थ यहां वर्णन कर देता हूँ।

देपाल कवि एक समय कोचर की कीर्त्ति श्रवण करके शंखलपुर पहुँचा और कोचर से मिला और उसके अधीन शंखलपुर नगर के अधीन के बारहग्रामों में अद्भुत ढंग से पलायी जाती हुई जीव-दया को देख कर वह अत्यन्त मुग्ध हुआ और श्रावक कोचर की कीर्त्ति में उसने कविता रची और कोचर को सुनाई। कोचर ने महाकवि देपाल का बहुत संमान किया और उसको बहुत द्रव्य दान में दिया। देपाल कवि जब खंभात पहुँचा तो उसने गुरु महाराज के समक्ष कीर्त्तिशाली कोचर श्रावक की और उसके शासन-प्रबंध तथा जीव-दया-प्रचार की भूरी २ प्रशंसा की। समस्त श्रीसंघ तथा गुरुमहाराज को कोचर की धर्म-श्रद्धा सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। परंतु सं० साजणसी को ईर्ष्या हुई कि मेरी सहायता से उन्नत हुआ कोचर मुझसे भी अधिक कीर्त्ति एवं यश का भाजन बनता हैं और फिर मेरे ही आश्रित कवि द्वारा उसकी कीर्त्तिकविता की जाती है। सं० साजणसी ने कोचर श्रावक के विरुद्ध षडयंत्र रचने का विचार किया और उसको शासन-कार्य से च्युत कराकर कारागार में डलवाने का दृढ़ संकल्प किया।

सं० साजणसी गुजरात के शासक के पास पहुंचा और कोचर श्रावक के विषय में अनेक झूठी २ बातें बनाकर उसको कोचर पर रुष्ट किया। इतना ही नहीं कोचर को बुलवा कर बन्दीगृह में डलवाया। सं० साजणसी के इस कुकृत्य से श्रीसंघ में सं० साजणसी की भारी अपकीर्त्ति हुई तथा देपाल कवि पर भी लोगों की अश्रद्धा हुई। यह समस्त घटना घटी, उस समय देपाल कवि वहां नहीं था, वह शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा को गया हुआ था। जब वह लौट कर आया और उसने कोचर श्रावक को कारागार का दंड मिला सुना, उसने तुरन्त सं० साजणसी की स्तुति में कविता रची। कविता को सुनकर सं० साजणसी अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने देपाल का समुचित सत्कार किया। उचित अवसर देख कर देपाल ने सं० साजणसी से कहा कि आपकी महति कृपा से बहुचरादेवी के पूजारीगण अत्यन्त प्रसन्न हुये हैं तथा बहुचरादेवी के आगे लोग निडरता से पशुबली करते हैं और इस प्रकार बहुचरादेवी का वह पूर्व गौरव पुनः स्थापित हो गया है। यह सुनकर सं० साजणसी अत्यन्त लज्जित हुआ और उसने देपाल कवि को वचन दिया कि वह तुरन्त गुजरात के शासक के पास जाकर कोचर को मुक्त करावेगा और उसको पुनः शंखलपुर का शासन-भार दिलावेगा। देपाल कवि सं० साजणसी की इस हृदय की सरलता पर अत्यन्त मुग्ध होकर अपने स्थान पर चला गया। सुअवसर देखकर सं० साजणसी सम्राट् के प्रतिनिधि (गुजरात का शासक) के पास पहुँचा। सम्राट् के प्रतिनिधि को भी कोचर को कारागार में डलवाने का भेद ज्ञात हो गया था; अतः अधिक विचार नहीं करना पड़ा। कोचर मुक्त कर दिया गया और वह पुनः शंखलपुर का शासक नियुक्त किया गया। कीर्त्तिशाली कोचर ने जीव-दया-पालन में [illegible]नी सम्पूर्ण आयु व्यतीत की तथा न्याय एवं धर्म-नीति से शंखलपुर का शासन किया।

ही मुक्त कर दिया गया और उसने पुनः शंखलपुर का शासन बड़ी योग्यता एवं तत्परता से किया और उत्कृष्ट जीवदया का पालन कराया। कोचर श्रावक ने जीवदया एवं धर्मसम्बन्धी अनेक कार्य किये। खरतरगच्छनायक जिनोदयसूरि का उसने भारी धूम-धाम से उल्लेखनीय पुरप्रवेशोत्सव किया था। कोचर कवि एवं पण्डितों का सम्मान करता था। कोचर की जीवदयासम्बन्धी कीर्ति सदा अमर रहेगी।

प्राग्वाटज्ञातीय मंत्री कर्मण
विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अहमदाबाद में, जब कि वहाँ महमूदबेगड़ा नामक बादशाह राज्य कर रहा था, जिसका राज्यकाल वि० सं० १५१५ से १५६८ तक रहा है, प्राग्वाटज्ञातीय कर्मण नामक अति प्रसिद्ध पुरुष हो गया है। यह बड़ा बुद्धिमान्, चतुर एवं नीतिज्ञ था। महमूदबेगड़ा ने इसको योग्य समझ कर अपना मंत्री बनाया। मंत्री कर्मण बादशाह के अति प्रिय एवं विश्वासपात्र मंत्रियों में था। मंत्री कर्मण तपागच्छनायक श्रीमद् लक्ष्मीसागरसूरि का परम भक्त था।

श्रीमत् सोमजयसूरि के शिष्यरत्न महीसमुद्र को इसने महामहोत्सवपूर्वक वाचक-पद प्रदान करवाया था। इसी अवसर पर उक्त आचार्य ने अपने अन्य तीन शिष्य लब्धिसमुद्र, अमरनंदि और जिनमाणिक्य को भी वाचक-पदों से सुशोभित किये थे। इन तीनों का वाचकपदप्रदानमहोत्सव क्रमशः पौत्री कर्पूरी सहित शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा करने वाले संघपति गुणराज, दो० महीराज और हेमा ने किया था। १

मंडपदुर्गवासी प्राग्वाटज्ञातीय प्रमुख मंत्री श्री चांदाशाह
विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

श्रे० चांदाशाह विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में मालवप्रदेश के यवनशासक का प्रमुख मंत्री हुआ है। यह माण्डवगढ़ का वासी था। यह बड़ा राजनीतिज्ञ एवं योग्य प्रबंधक था। यह बड़ा धर्मात्मा एवं जैनधर्म का दृढ़ अनुयायी था। यह हृदय का उदार और वृत्तियों का सरल था। अवगुण इसमें देखने मात्र को नहीं थे। यह नित्य जिनेश्वरदेव के दर्शन करता और प्रतिमा का पूजन करके पश्चात् अन्य सांसारिक कार्यों में लगता था। यह इतना धर्मात्मा था कि लोग इसको 'चंद्रसाधु' कहने लग गये थे। इसने शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों की संघयात्रायें करके पुष्कल द्रव्य का व्यय किया था और संघपति पद को प्राप्त किया था। इसने माण्डवगढ़ में बहत्तर ७२ काष्ठमय जिनालय और अनेक धातुचौवीशीपट्ट करवाये थे और उनकी प्रतिष्ठाओं में अगणित द्रव्य का व्यय किया था। यह मालवपति महम्मूद प्रथम और द्वितीय के समय में हुआ है। २

१ जै० सा० सं० इति० पृ० ४६८-६६. २ जै० सा० सं० इति० पृ० ४६७.

देवासनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय मंत्री देवसिंह
विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

देवासराज्य पर जब माण्डवगढ़पति मुसलमान शासकों का अधिकार था, माफर मलिक नामक शासक के श्री देवसिंह प्रमुख एवं विश्वस्त मंत्रियों में थे। यवन यद्यपि जैन एवं वैष्णव मंदिरों के प्रबल विरोधी थे, परन्तु माफर मलिक की मंत्री देवसिंह पर अतिशय कृपा थी; अतः विरोधियों की कोई युक्ति सफल नहीं हुई और मंत्री देवसिंह ने बहुत द्रव्य व्यय करके चौवीस जिनमंदिरों और पित्तलमय अनेक चतुर्विंशतिजिनपट्ट बनवाये और पुष्कल द्रव्य व्यय करके वाचक आगममंडन के कर-कमलों से उनकी प्रतिष्ठा करवाई। १

स्तम्भनपुरवासी परम गुरुभक्त ठक्कुर कीका
विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी (१७) के प्रारंभ में दिल्ली सम्राट् अकबर की राजसभा में श्रीमद् हीरविजयसूरि का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और अन्यत्र भी उनके प्रसिद्ध, यशस्वी, प्रतापी भक्तों की संख्या बढ़ती जा रही थी। खंभात में भी उक्त प्रभावशाली आचार्य के अनेक परम भक्त थे, जिनमें सोनी तेजपाल, सं० उदयकरण, ठक्कुर कीका, परीक्षक राजिया, वजिया आदि प्रमुख थे।

ठक्कुर कीका प्राग्वाटज्ञातीय पुरुष था और वह अति धनाढ्य था। श्रीमद् हीरविजयसूरि ने अपने साधु-जीवन में खंभात में सात चातुर्मास किये थे तथा भिन्न २ संवतों में पच्चीस २५ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठायें की थीं तथा उनका स्वर्गवास वि० सं० १६५२ में ऊना (ऊना-देलवाडा) में ही हुआ था। उनके पट्टधर श्रीमद् विजयसेनसूरि ने भी खंभात में २२ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठायें की थीं। उक्त दोनों आचार्यों के प्रति खंभात के श्रीसंघ की अपार भक्ति थी। ठक्कुर कीका ने उक्त दोनों आचार्यों द्वारा किये गये चातुर्मासों एवं धर्मकृत्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया था। वि० सं० १५६० फा० कृ० ५ को मुनि सोमविमल को खंभात में गणिपद प्रदान किया गया था, उस शुभोत्सव पर ठक्कुर कीका ने अति द्रव्य व्यय करके अच्छी संघभक्ति की थी।

खंभात के पूर्व में लगभग अर्ध कोश के अन्तर पर आये हुये शकरपुर नगर में ठक्कुर कीका, श्रीमल्ल और वाघा ने जिनालय और पौषधशाला बनवाई।

ठक्कुर कीका अपने समय के प्रतिष्ठित पुरुषों में अति संमानित व्यक्ति एवं धर्म-प्रेमी और गुरुभक्त श्रावक हुआ है। २

---

१ जै० सा० सं० इति० पृ० ४९९-५००. २ खं० प्रा० जै० इति० पृ० ६६, १६०.

शा० पुन्जा और उसका परिवार

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सिरोही नगर में प्राग्वाटज्ञातीय शाह पुंजा रहता था। उसकी स्त्री का नाम उछरंगदेवी था। उसकी कुक्षी से तेजपाल नामक भाग्यशाली पुत्र हुआ। तेजपाल के चतुरंगदेवी और लक्ष्मीदेवी नाम की दो स्त्रियाँ थीं। चतुरंगदेवी की कुक्षी से वस्तुपाल, वर्धमान और धनराज नामक तीन पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्री ने दीक्षा ग्रहण की और वह महिमाश्री नाम से प्रसिद्ध हुई। वस्तुपाल का विवाह अनुपमादेवी के साथ हुआ और उसके सुखमल्ल, इन्द्रमाण और उदयमाण नामक तीन पुत्र हुये। वर्धमान इन तीनों में अधिक प्रभावशाली था। उसके तीन स्त्रियां थीं—केसरदेवी, सरूपदेवी और सुखमादेवी। सुखमादेवी के देवचंद नामक पुत्र हुआ। महिमाश्री ने साध्वी-जीवन व्यतीत करके अपना आत्म-कल्याण किया। चौथा पुत्र धनराज था और रूपवती नामा उसकी स्त्री थी।

शा० पुंजा और उसका पुत्र तेजपाल और उसका गृहस्थ

तेजपाल की द्वितीय स्त्री लक्ष्मीदेवी की कुक्षी से गौड़ीदास नामक पुत्र हुआ। गौड़ीदास की स्त्री अनुरूपदेवी थी और उसके गजसिंह नामक पुत्र हुआ। तेजपाल ने विक्रम संवत् १६६१ श्रावण कृष्णा ६ रविवार को तपगच्छीय भ० श्री विजयप्रभसूरि, आ० श्री विजयरत्नसूरि के निर्देश से उपा० श्री मेघविजयगणि के करकमलों से श्री शंखेश्वर-पार्श्वनाथ-जिनालय के खेलामंडप के उत्तराभिमुख आलय में श्री आदिनाथ भगवान् की बड़ी प्रतिमा१ और दशा ओसवालों के श्री आदीश्वर-जिनालय के खेलामंडप में पश्चिमाभिमुख श्री मुनिसुव्रतस्वामी२ की बड़ी प्रतिमा बड़ी धूम-धाम से सपरिवार प्रतिष्ठित करवाई।

तेजपाल द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें.

दशा ओसवालों के श्री आदीश्वर-जिनालय के खेलामंडप में शा० पुंजा की स्त्री और तेजपाल की माता उछरंगदेवी ने जगद्गुरु सूरिसम्राट् श्रीमद् हीरविजयसूरिजी की एक सुन्दर प्रतिमा वि० सं० १६६५ वै० शु० ३ बुधवार को तपागच्छीय भ० श्रीविजयसेनसूरि के पट्टालंकार भ० श्री विजयतिलकसूरि के द्वारा अपने पुत्र तेजपाल और तेजपाल के पुत्र वस्तुपाल, वर्धमान, धनराज आदि प्रमुख परिजनों के श्रेय के लिये प्रतिष्ठित करवाई।३

तेजपाल की माता उछरंग-देवी द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमा.

१—श्री शंखेश्वर-पार्श्वनाथ-मन्दिर के दक्षिण दिशा के आलयस्थ श्री आदिनाथबिंब का लेखांश—

'श्री तेजपाल भार्या चतुरंगदे पुत्र सा० वस्तुपाल वर्धमान धनराज, तस्य पत्नी रूपी श्री आदिनाथबिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं तः भः श्री विजयप्रभसूरि आ० श्री विजयरत्नसूरिनिर्देशात उपा० श्री मेघविजयगणिभिः ॥'

२—दशा ओसवालों के आदीश्वर-जिनालय के खेला-मण्डपस्थ पश्चिमाभिमुख सपरिकर श्री मुनिसुव्रतबिंब का लेखांशः—

'शाह पुंजा भार्या उछरंगदे तस्य पुत्र सा० तेजपाल तस्य भार्या चतुरंगदि सपरिकर श्री मुनिसुव्रतबिंबं कारापितं ॥श्री॥'

३—'संवत् १६६५ वर्षे वै० सु० ३ बुधे भट्टारक श्री हीरविजयसूरिमूर्त्तिः प्राग्वाटज्ञातीय सा० पुजा भा० बा० उछरंगदे नाम्न्या स्वसुत सा० तेजपाल तत्पुत्र सा० वस्तुपाल वर्धमान धनराज प्रमुखश्रेयसे कारितं प्रति० तपागच्छे भः श्री विजयसेनसूरिपट्टालंकार श्री विजयतिलकसूरिभिः ॥ श्रीरस्तुसंघस्य ॥

दशा० ओस० श्री आदी० जिनालय.

वर्धमान ने वि० सं० १७३६ मार्ग० शु० ३ बुधवार को भारी प्रतिष्ठोत्सव किया और उस अवसर पर उसने और उसके परिजनों ने अनेक प्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाईं। यह प्रतिष्ठोत्सव श्री शंखेश्वर-पार्श्वनाथ-जिनालय में मूलनायक श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा करवाने के हेतु आयोजित किया गया था। शा० वर्धमान ने अपने परिजनों के साथ, जिनमें मुख्य उसका ज्येष्ठ भ्राता शा० वस्तुपाल, कनिष्ठ भ्राता धनराज, गौड़ीदास और उसकी तृतीया स्त्री सुखमादेवी और उसका पुत्र देवचन्द थे श्री मूलनायक-शंखेश्वर-पार्श्वनाथ की प्रतिमा महामहोपाध्याय श्री मेघविजयगणि के द्वारा शुभमुहूर्त में प्रतिष्ठित करवाई। शा० वर्धमान को इस प्रतिमा के लेख में 'संघमुख्य' पद से अलंकृत किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि वर्धमान का स्थानीय जैनसमाज में अत्यधिक सम्मान था और वह उसके परिवार में अधिक समृद्ध और प्रतिष्ठित था।१ अतिरिक्त इसके इस शुभ उत्सव पर उसने चौमुखा-आदिनाथ-जिनालय में भी दो प्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाईं।

तेजपाल के द्वितीय पुत्र वर्धमान द्वारा प्रतिष्ठोत्सव.

शा० वर्धमान ने श्री चौमुखा-आदिनाथ-जिनालय की तृतीय मंजिल के चौमुखा गंभारे में तपा० भ० श्री विजयप्रभसूरि, आ० श्री विजयरत्नसूरि के निर्देश से महोपाध्याय श्री मेघविजयगणि द्वारा महिमाश्री के वचनों से सपरिकर पश्चिमाभिमुख श्री सुमतिनाथबिंब और श्रीमद् विजयराजसूरि के करकमलों से भार्या सुखमादेवी और उसके पुत्र देवचंद्र के साथ में इसी गंभारे में दक्षिणाभिमुख श्री आदिनाथप्रतिमायें प्रतिष्ठित करवाईं।२

शा० वर्धमान की तीनों स्त्रियाँ केसरदेवी, सरूपदेवी, सुखमादेवी ने भी श्री शंखेश्वर-पार्श्वनाथ-जिनालय के खेलामंडपस्थ श्री अजितनाथ की बड़ी प्रतिमा महोपाध्याय श्री मेघविजयगणि द्वारा प्रतिष्ठित करवाई। तेजपाल के तृतीय पुत्र धनराज की स्त्री रूपवती (रूपी) ने भी मेघविजयगणि द्वारा श्री शंखेश्वर-पार्श्वनाथ-जिनालय के खेलामंडप के आलय में उत्तराभिमुख श्री आदिनाथ की बड़ी प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई।३

४ दशा ओसवालों के श्री आदीश्वर-जिनालय में इसी प्रतिष्ठोत्सव पर शा० तेजपाल की द्वितीय स्त्री लक्ष्मीदेवी के पुत्र शा० गौड़ीदास ने अपनी स्त्री अनरूपदेवी और पुत्र गजसिंह के साथ में श्री अजितनाथप्रतिमा को खेलामंडप में त० ग० भ० श्री विजयप्रभसूरि के द्वारा प्रतिष्ठित करवाई। इसी प्रतिष्ठोत्सव के शुभावसर पर

१—'सा० पुजा भार्या उछरंगदे तत्पुत्र सा० तेजपाल भर्या चतुरंगदे तत्पुत्र सा० वस्तुपाल वर्धमान धनराज गौड़ीदास तेषु 'संघमुख्य' सा वर्धमान नाम्ना भा० सुखमादे पुत्र चिरंजीवी देवचन्द्र प्रमुख परिवारयुतेन श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथबिंबं .... मेघविजयगणिप्रमुखपरिकलतैः ॥' मू० ना० प्रतिमालेख—शंखे० जिनालय

२—'साध्वी महिमाश्री वचनात् स्वपुण्यार्थं श्री सुमतिबिंबं का० प्रतिष्ठितं सं० १७३६ व० मा० सु० ३ बुधे महाराज श्री वयरीसालजी विजयिराज्ये तपा० ग० भः श्री विजयप्रभसूरि आ० श्री विजयरत्नसूरि निर्देशात् महोपाध्याय श्री मेघविजयगणिभिः प्रतिष्ठितं सा० वर्धमानेन प्रतिष्ठापितं० ॥ चौ० जिनालय

'सा पुंजा भा० उछरंगदे तत्पुत्र सा० तेजपाल भा० चतुरंगदे तत्पुत्र सा० वर्धमान नाम्ना भा० सुखमादे तत्पुत्र देवचन्दयुतेन श्री आदिनाथबिंबं का० प्र० त० ग० ....विजयराजसूरिभिः ॥' चौ० जिनालय

३—'श्री तेजपाल भार्या चतुरंगदे पुत्र सा० वस्तुपाल, वर्धमान, धनराज तस्य पत्नीरूपी श्री आदिनाथबिंबं..................मेघविजयगणिभिः' शंखे० जिनालय.

'सा० वर्धमानगृहे भार्या केसरदे सरूपदे सुखमादे नाम्नाभिः..................मेघविजयगणिभिः' शंखे० जिनालय

४—'सा० पुजा भार्या उछरंदे पुत्र सा० तेजपाल भार्या लखमादे पुत्र सा० गौड़ीदास नाम्ना भार्या अनरूपदे पुत्र गजसिंघयुतेन श्री अजितनाथबिंबं का० प्र० त० भः० श्री विजयप्रभसूरिभिः'

शा० तेजपाल के ज्येष्ठ पुत्र वस्तुपाल की स्त्री अनोपमादेवी की कुक्षी से उत्पन्न शा० सुखमल्ल, इन्द्रमाण और उदयमाण नामक तीनों भ्राताओं ने श्री दशा ओसवालों के श्री आदीश्वर-जिनालय के खेलामंडपस्थ उत्तराभिमुख श्री चन्द्रप्रभस्वामी की बड़ी प्रतिमा महोपाध्याय श्री मेघविजयगणिद्वारा प्रतिष्ठित करवाई। शा० पुन्ज के परिवार की कीर्त्ति तब तक स्थायी रहेगी, जब तक उसकी स्त्री उछरंगदेवी, पुत्र तेजपाल और तेजपाल के पुत्र संघमुख्य वर्धमान आदि के द्वारा उपरोक्त तीनों प्रसिद्ध जिनमंदिरों में प्रतिष्ठित प्रतिमायें विद्यमान रहेंगी।

वंशवृक्ष

- शा० पुंजा [उछरंगदेवी]
  - तेजपाल [चतुरंगदेवी, लखमादेवी]
    - (चतुरंगदेवी से) वस्तुपाल [अनूपमदेवी]
      - सुखमल्ल
      - इन्द्रमाण
      - उदयमाण
    - वर्धमान [केसरदेवी, सरूपदेवी, सुखमादेवी]
      - देवचंद
    - महिमाश्री
    - धनराज [रूपी]
    - (लखमादेवी से) गौड़ीदास [अनरूपदेवी]
      - गजसिंह

श्री वागड़देशराजनगर श्री डूंगरपुर के सकलगुणनिधान कृतपुर धर्मभारधुरंधर चैत्यनिर्माता श्रे० जसवीर

वि० सं० १६७१

* विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में डूङ्गरपुर के राजसिंहासन पर जब महारावल श्री पुन्जराज विराजमान थे, उस समय लघुसज्जन प्राग्वाटज्ञातिशृंगारहार श्रेष्ठि मंडन एक बड़े ही सज्जन श्रावक हो गये हैं। इनकी स्त्री का नाम मनरंगदेवी था। मनरंगदेवी सचमुच ही महासती शीलालंकारधारिणी स्त्रीशिरोमणि महिला थी। मनरंगदेवी की कुक्षी से जसवीर और जोगा नामक दो पुत्ररत्न पैदा हुये। प्रथम पुत्र जसवीर समस्त गुणों की खान, महादानी, पुण्यात्मा, धर्मभारधुरंधर सुकृती था। जसवीर के दो स्त्रियाँ थीं। प्रथम जोड़ीमदेवी और द्वितीय पागरदेवी। जोड़ीमदेवी की कुक्षी से पुत्ररत्न काहनजी पैदा हुआ था। जसवीर के भ्राता जोगा की स्त्री का नाम भी जोड़ीमदेवी

'वस्तुपाल भार्या अनोपमादे सुत सुखमल्ल, इन्द्रमाण, उदयमाण नामभिः चन्द्रप्रभबिंबं का० प्र० श्री..............मेघविजयगणि ॥'
दशा० आदीश्वर चैत्य.

* जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ लेखांक १४६२.

जोगा का पुत्र रहिया था। धर्मात्मा जसवीर ने सकल परिवार के श्रेयोर्थ श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में भद्रप्रासाद करवाया और तपागच्छनायक श्रीपूज्य श्री ५ श्री सोमविमलसूरि के शिष्य कलिकालसर्वज्ञ जगद्गुरु विरुदधारी विजयमान श्री पूज्य श्री ५ हेमसोमसूरीश्वरपट्टप्रभाकर आचार्य श्री विमलसोमसूरीश्वर के आदेश से महोपाध्याय श्री आनन्दप्रमोदगणिशिष्य पण्डितश्रेणीशिरोमणी पं० श्री सकलप्रमोदगणिशिष्य पं० तेजप्रमोदगणिद्वारा वि० सं० १६७१ वै० शु० ५ रविवार को शुभमुहूर्त में महामहोत्सवपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा करवाई।

प्राग्वाटज्ञातीय मंत्री मालजी

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दीवबन्दर में प्राग्वाटज्ञातीय जीवणजी नामक प्रसिद्ध एवं गौरवशाली श्रीमंत के पुत्र मालजी नामक श्रावक रहते थे। ये वहां के नरेश्वर के प्रमुख एवं विश्वासपात्र मंत्रियों में थे। चतुर नीतिज्ञ तो थे ही, परन्तु साथ में बड़े धर्मात्मा भी थे; इससे इनका राजा और प्रजा दोनों में बड़ा मान और विश्वास था। मंत्री मालजी बड़े ही गुरुभक्त एवं जिनेश्वरदेव के उपासक थे। वि० सं० १७१६ में दीवबन्दर में अंचलगच्छाधिपति श्रीमद् अमरसागरसूरि का पदार्पण हुआ था। मंत्री मालजी ने भारी समारोहपूर्वक पुष्कल द्रव्य व्यय करके राजसी ढंग से उनका नगर-प्रवेश करवाया था और विविध प्रकार से उनकी सेवाभक्ति करके गुरुभक्ति का परिचय दिया था। उस वर्ष का चातुर्मास श्रीमद् अमरसागरसूरि ने मंत्री मालजी की श्रद्धा एवं भक्तिपूर्ण सत्याग्रह को मान देकर दीवबन्दर में ही किया था। उस चातुर्मास में मंत्री मालजी ने गुरुमहाराज से चतुर्थव्रत की प्रतिज्ञा ली और साधर्मिक-वात्सल्य करके सधर्मी बन्धुओं की प्रशंसनीय भक्ति की और अनेक अन्य धर्मकार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय करके अपार यश की प्राप्ति की।

गुरु महाराज के सदुपदेश से मंत्री मालजी ने श्री शांतिनाथ भगवान् की एक रौप्यप्रतिमा और अन्य पाषाण की ग्यारह जिनेश्वर-प्रतिमा करवाईं और श्री शत्रुंजयमहातीर्थ पर एक लघुजिनालय विनिर्मित करवाकर वि० सं० १७१७ मार्गशिर कृ० १३ को उसमें स्थापित कीं। ऐतदर्थ चातुर्मास के अनन्तर गुरुमहाराज के सदुपदेश से मंत्री मालजी ने एक लक्ष द्राम व्यय करके श्री शत्रुंजयमहातीर्थ की भारी संघसहित तीर्थयात्रा की थी। इस प्रकार मंत्री मालजी ने अनेक बार छोटे-बड़े महोत्सव एवं संघभक्तियां करके अपने अगणित द्रव्य का सदुपयोग किया और अमरकीर्त्ति उपार्जित की।

वागड़देशान्तर्गत श्री आसपुरग्रामनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय श्रावककुलशृंगार संघवी श्री भीम और सिंह

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी

वागड़प्रदेश—वर्तमान डूङ्गरपुर राज्य, वांसवाड़ाराज्य और मेवाड़राज्य का कुछ दक्षिण विभाग जो छप्पनप्रदेश कहलाता है, मिलकर वागड़प्रदेश कहलाता था।

म० प० २६१.

जब डूङ्गरपुरराज्य का स्वामी महारावल गिरधरदास का देहान्त हो गया तो वि० सं० १७१७ के लगभग महारावल गिरधरदास के पुत्र जसवंतसिंह सिंहासनारूढ़ हुये। महारावल जसवंतसिंह का राज्यकाल लगभग वि० सं० १७४८ तक रहा। इनके राज्यकाल में आसपुर नामक नगर में जो डूङ्गरपुर से लगभग ८ आठ कोश के अंतर पर विद्यमान है, प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० उदयकरण रहते थे। श्रे० उदयकरण की पतिव्रता पत्नी का नाम अंबूदेवी था। सौभाग्यवती अंबूदेवी की कुक्षी से भीम और सिंह नामक दो यशस्वी पुत्रों का जन्म हुआ।

वंश-परिचय

उन दिनों में आसपुर के ठाकुर अमरसिंह थे। ठाकुर अमरसिंह के पुत्र का नाम अजबसिंह था। श्रे० भीम ठाकुर अमरसिंह का प्रधान था और ठाकुर साहब तथा कुंवर अजबसिंह दोनों पिता-पुत्रों का श्रे० भीम में अति विश्वास था और वे दोनों भ्राताओं का बड़ा मान करते थे। भीम और सिंह बड़े ही धनाढ्य श्रावक थे। दोनों भ्राता बड़े ही गुणी, दानवीर एवं सज्जनात्मा थे। साधु एवं संतों के परम भक्त थे। जिनेश्वरदेव के परमोपासक थे। उन्होंने अनेक छोटे-बड़े संघ निकाल कर सधर्मी बंधुओं की अच्छी संघभक्ति की थी। दीन और दुखियों की वे सदा सहायता करते रहते थे।

श्रेष्ठिवर्य्य भीम और सिंह

भीम के दो स्त्रियाँ थीं, रंभादेवी और सुजाणदेवी तथा ऋषभदास, वल्लभदास और रत्नराज नामक तीन पुत्र थे। सिंह की स्त्री का नाम हरबाई था, जिसके सुखमल नामा पुत्री थी। इस प्रकार दोनों भ्राता परिवार, धन, मान की दृष्टि से सर्व प्रकार सुखी थे। बागड़देश में उनकी कीर्त्ति बहुत दूर २ तक प्रसारित हो रही थी।

एक वर्ष दोनों भ्राताओं ने केसरियातीर्थ की संघयात्रा करने का दृढ़ विचार किया। फलतः उन्होंने बागड़ देश में, मालवा में, मेवाड़ में अनेक ग्राम-नगरों के संघों को एवं प्रतिष्ठित पुरुषों और सद्गृहस्थों को तथा अपने संबंधियों को निमंत्रित किया। शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्त में आसपुर से संघ निकल कर सावला नामक ग्राम में पहुँचा। स्थल २ पर पड़ाव करता हुआ, मार्ग के ग्रामों एवं नगरों में जिनालयों के दर्शन, प्रभुपूजन करता हुआ, योग्य भेंट अर्पित करता हुआ अनुक्रम से श्री धुलेवा नगर में पहुँचा और श्री केसरियानाथ की प्रतिमा के दर्शन करके अति ही आनंदित हुआ।

श्री केसरियातीर्थ की संघयात्रा

संघपति भीम और सिंह ने प्रभुपूजन अनेक अमूल्य पूजनसामग्री लेकर किया तथा भिक्षुकों को दान और क्षुधितों को भोजन और वस्त्रहीनों को वस्त्रादि देकर उन्हें तृप्त किया। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन दोनों भ्राताओं ने इतना दान दिया कि दान लेनेवालों का सदा के लिए दारिद्रय ही दूर हो गया। इस प्रकार प्रभुचरणों में दोनों भ्राताओं ने अपनी न्यायोपार्जित सम्पति का सदुपयोग किया। समस्त धुलेवा नगर को निमंत्रित करके बहुत बड़ा साधर्मिक वात्सल्य किया। संघ वहाँ से पांच दिन ठहर कर पुनः आसपुर की ओर रवाना हुआ। संघपति जब आसपुर के समीप में सकुशल संघयात्रा करके पहुँचा तो ग्रामपति एवं ग्राम की प्रजा ने संघ का एवं संघपति का भारी स्वागत किया और राजशोभा के साथ में संघ का नगरप्रवेश करवाया। संघपति भीम और सिंह ने आसपुर में बड़ा भारी साधर्मिक वात्सल्य किया, जिसमें ठाकुर साहब का राजवंश, राजकर्मचारी, दास, दासी एवं संपूर्ण नगर के सर्व कुल निमंत्रित थे। डूँगरपुर जिसका नाम गिरिपुर भी है के राज्य में एवं बांसवाड़ाराज्य के अधिकांश नगरों में व आसपुर में आज भी वृद्धजन संघपति भीम और सिंह की उदारता की कहानियाँ कहते हैं।

ऐ० रा० सं० मा० १ पृ०३०, ४७,६१. डूंगरपुरराज्य का इति० पृ० ११४.

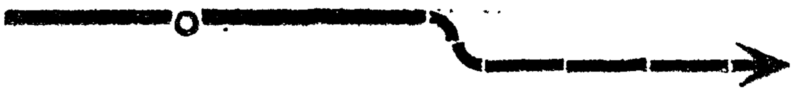
शाह सुखमल

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी

सिरोहीनिवासी प्राग्वाटज्ञातीय शाह धनाजी के ये पुत्र थे। ये बड़े नीतिज्ञ, प्रतापी और वीर पुरुष थे। सिरोही के प्रतापी महाराव वैरीशाल, दुर्जनशाल और मानसिंह द्वितीय के राज्यकालों में ये सदा उच्चपद पर एवं इन नरेशों के अति विश्वासपात्र व्यक्तियों में रहे हैं। इनको सिरोही के दिवान होना कहा जाता है। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंहजी, जो औरंगजेब के कट्टर शत्रु रहे हैं, शाह सुखमलजी के बड़े प्रशंसक थे और उनकी इन पर सदा कृपा रही। इस ही प्रकार उदयपुर के प्रतापी महाराणा जयसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंहजी द्वितीय और संग्रामसिंहजी द्वितीय भी शाह सुखमलजी पर सदा कृपालु रहे हैं। महाराणा अमरसिंहजी ने शाह सुखमलजी पर प्रसन्न होकर उनको वि० सं० १७६३ भाद्रपद शुक्ला ११ शुक्रवार को छैछली नामक ग्राम की रु० ७००) सात सौ की जागीर प्रदान की। तत्पश्चात् महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीय ने प्रसन्न हो कर पुनः छैछली के स्थान पर ग्राम टाईवाली की रु० १०००) एक सहस्र की जागीर वि० सं० १७७५ चैत्र कृष्णा ५ शुक्रवार को प्रदान की।

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी भारत के इतिहास में मुगल-शासन के नाश के बीजारोपण के लिये प्रसिद्ध रही है। दिल्ली-सम्राट् औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी-नीति से राजस्थान के राजा अप्रसन्न होकर अपना एक सबल सुरक्षा-संघ रच रहे थे। राजस्थान में उस समय प्रतापी राजा जोधपुर, जयपुर और उदयपुर के ही प्रधानतः प्रमुख थे। सिरोही के महाराव भी प्रतापी रहे हैं। इन सर्व राजाओं की शा० सुखमलजी पर अपार कृपा थी। सार्वभौम दिल्लीपति के विरोध में संघ बनाने वाले महापराक्रमी राजाओं की कृपा प्राप्त करनेवाले शाह सुखमलजी भी अवश्य असाधारण व्यक्ति ही होंगे। शाह सुखमलजी के वंशज शाह बनेचन्द्रजी और संतोषचन्द्रजी इस समय खुड़ाला नामक ग्राम में रहते हैं और उनके पास में उपरोक्त महाराणाओं के प्रदत्त ग्राम छैछली और टाईवाली

१— *श्री एकलिंगप्रसादात*



(भाला)

सही

॥महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंहजी आदेशातु शाह सुखमल धना रा दा०१ ''''''य मया की
वीगत रुपया''
७००) गांम छैछली परगनै गोढ़वाड़ रै जागीर राठोड़ सीरदारसीह''''''''''रणोत थी ऊपत रुपया सात सौं''''''''''''''पी राय
''''''रानी''''''''''देवकरण''''''''''''''संवत् १७६३ वीषे भादवा सुदी ११ शुक्रे

(भाला की सही)

२— *॥महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंघजी आदेशातु साह सुषमल सीरोहया'''''' '' दाव्य प्रास मया कीधो वीगत टका १०००) गाम टाईवाड़ी ''''ड'''' गोढ़वाड़ पुरेत जागीर रो थो'''''''''' '' द दापोत थी गाम छेछली रे वदले ऊपत रुपया १०००) रो हे प्रवानगी पचोली वीहारीदास एवं संवत् १७७५ वर्षे चेत वदी ५ सुक्रे*

की जागीरों के पट्टे हैं तथा जोधपुर के प्रतापी महाराजा अजीतसिंहजी के और सिरोही के महारावों के भी कई-एक पट्टे-परवानें और पत्र हैं, जिनसे शाह सुखमलजी की प्रतिष्ठा पर पूरा २ प्रकाश पड़ता है। एक पट्टा दिल्ली के मुगल-सम्राट् का भी दिया हुआ है, जिससे यह पता चलता है कि दिल्ली के मुगल-सम्राट् की राज-सभा में भी शाह सुखमलजी का मान था।

गूर्जरपति सम्राट् भीमदेव प्रथम के महाबलाधिकारी दण्डनायक विमलशाह के वंश में उत्पन्न उत्तम श्रावक वल्लभदास और उनका पुत्र माणकचन्द

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के चतुर्थ भाग में गूर्जरप्रदेश की राजनगरी अणहिलपुरपत्तन में, जिसकी हिन्दू-सम्राटों के समय में अद्वितीय शोभा एवं समृद्धि रही थी, जो भारत की अत्यन्त समृद्ध नगरियों में प्रथम गिनी जाती थी प्राग्वाटज्ञातीय श्रावक श्रे० वल्लभदास नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति रहते थे। वे बड़े गुणी श्रीमंत थे। उनका पुत्र माणकचन्द्र भी बड़ा धर्मात्मा एवं सद्गुणी था। दोनों पिता और पुत्र गुरु, धर्म एवं देव के परम पुजारी थे। ये गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्रथम के महाबलाधिकारी दंडनायक विमलशाह के वंशज थे। ये अंचलगच्छीय आचार्य विद्यासागरसूरि के परम भक्त थे। वि० सं० १७८५ में अणहिलपुरपत्तन में उक्त आचार्य का चातुर्मास था। उक्त दोनों पिता-पुत्रों ने गुरु की विविध-प्रकार से सेवा-भक्ति का लाभ लिया था तथा उनके सदुपदेश से माणकचन्द्र ने चौवीस जिनवरों की पंचतीर्थी प्रतिमायें करवा कर उसी वि० संवत् १७८५ की मार्गशिर शु० पंचमी को शुभमुहूर्त में पुष्कल द्रव्य व्यय करके भारी महोत्सव एवं समारोह के साथ उन प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करवाई थीं। इस प्रकार जीवन में दोनों पितापुत्रों ने अनेक धर्मकार्य करके अपना श्रावक-जन्म सफल किया। १

वागड़देश राजनगर डूङ्गरपुर के राजमान्य महता श्रीदयालचंद्र

वि० सं० १७६६

वर्तमान बांसवाड़ा और डूँगरपुर का राज्य वागड़देश के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध रहा है। विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में प्राग्वाटज्ञातीय वृद्धशाखीय महता हीरजी नामक प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं। वे बड़े धर्मात्मा थे। उनकी स्त्री का नाम भी हीरादेवी था। हीरादेवी के रामसिंह नामक पुत्र हुआ, जिसका विवाह रूपवती एवं गुणवती कन्या रायमती से हुआ था। रायमती के सुरजी नामक पुत्र था। सुरजी की स्त्री सुरमदेवी के जादव और महता दो पुत्र थे। जादव के करण, माधव, मदन और मुरार नामक चार पुत्र हुये थे। महता मदन की स्त्री गंभीरदेवी थी। गंभीरदेवी की कुक्षी से राजमान्य प्राग्वाटज्ञातिशृंगार श्रीदयाल नामक पुत्र हुआ। २

१ म० प० पृ० १६४   २ जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ लेखांक १४६१

श्रीदयाल बड़ा ही धर्मात्मा और जिनेश्वरभक्त था। वि० सं० १७६५ वैशाख कृष्णा ५ सोमवार को राजमान्य श्रीदयाल ने स्वभा० रंगरूपदेवी, पुत्र सदाशिव, पुत्री नाथी तथा लघुमातामही बाई लाड़ी और भगिनी गोकुलदेवी प्रमुख कुटुम्ब के सहित श्री गंभीरापार्श्वनाथ-चैत्यालय में देवकुलिका के ऊपर सुवर्णकलशध्वजारोहण एवं कीर्त्तिस्तंभस्थापना करवाई तथा समस्त संघ को भोज दिया और महामहोत्सव करके पित्तलमय श्री सुख-संपत्ति पार्श्वनाथ-प्रतिमा को देव, गुरु, संघ की अतिशय भक्ति एवं स्तुति करके स्थापित करवाई, जो तपागच्छीय पूज्य भट्टारक श्रीमद् विजयदयासूरि के आदेश से पन्यास केसरसागर के करकमलों से प्रतिष्ठित हुई थी।

वंश वृक्ष

महेता हीरजी [हीरादेवी]
|
महेता रामसिंह [रायमती]
|
महेता सुरजी [सुरमदेवी]
|
जादवजी
|
करणजी — माधवजी — मदनजी [गंभीरदेवी] — मुरारजी

मदनजी [गंभीरदेवी]
|
श्रीदयालजी [रंगरूपदेवी] — गोकुलदेवी

श्रीदयालजी [रंगरूपदेवी]
|
सदाशिव — नाथी (पुत्री)

प्राग्वाटज्ञातीय संघपति महता गोड़ीदास और जीवनदास
वि० सं० १७६७

महता गोड़ीदास और जीवणदास दोनों सहोदर थे। दोनों ही बड़े धर्मात्मा श्रावक थे। इनके जीवन का आधार गुरुभक्ति एवं जिनेश्वरदेव की उपासना ही थे। इन दोनों भ्राताओं ने अपने जीवन में अनेक दीनों, हीनों एवं निरन्नपुरुषों को अनेक बार वस्त्रों का, अन्न का बड़ा २ दान किया था तथा पशु-पक्षी-जीवदयासंबंधी भी

इन्होंने बहुत प्रशंसनीय पुण्यकार्य किये थे। ये सूरतबंदर के निवासी थे। वि० सं० १७६७ कार्त्तिक शु० ३ रविवार को जब ज्ञानसागरमुनि को महोत्सव करके आचार्यपद प्रदान किया गया था, उसमें अधिकतम पुष्कल द्रव्य इन दोनों भ्राताओं ने व्यय किया था। आचार्यपद की प्राप्ति के पश्चात् मुनि ज्ञानसागरजी उदयसागरसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुये। इसी वर्ष की मार्गशिर शु० १३ को श्रीमद् उदयसागरसूरि को गच्छनायक का पद भी सूरत में ही प्रदान किया गया था और इस महोत्सव में भी दोनों भ्राताओं ने प्रमुख भाग लिया था। जीवन में इन दोनों भ्राताओं ने अनेक बार इस प्रकार बड़े २ महोत्सव में स्वतंत्र एवं प्रमुख भाग लेकर सधर्मी बंधुओं की संघभक्ति की थी और अनेक बार वस्त्र एवं अन्न के बड़े २ दान देकर भारी कीर्त्ति का उपार्जन किया था।

लींमड़ीनिवासी प्राग्वाटज्ञातिकुलकमलदिवाकरसंघपति श्रेष्ठि वोरा डोसा और उसका गौरवशाली वंश

विक्रम की अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में सौराष्ट्रभूमि के प्रसिद्ध नगर लींमड़ी में प्राग्वाटज्ञातीय वोरागोत्रीय श्रेष्ठि रवजी के पुत्र देवीचन्द्र रहते थे। उनके पुन्जा नामक छोटा भ्राता था। उस समय लींमड़ीनरेश हरभमजी राज्य करते थे। श्रे० देवीचन्द्र के डोसा नामक अति भाग्यशाली पुत्र था। श्रे० डोसा की पत्नी का नाम हीराबाई था। श्राविका हीराबाई अति पतिपरायणा एवं उदारहृदया स्त्री थी। हीराबाई की कुक्षी से जेठमल और कसला दो पुत्र उत्पन्न हुये थे। जेठमल की पत्नी का नाम पुंजीबाई था और उसके जेराज और मेराज नामक दो पुत्र थे। कसला की पत्नी सोनबाई थी और उसके भी लक्ष्मीचन्द और त्रिकम नामक दो पुत्र थे।

वंश-परिचय और श्रे० डोसा द्वारा प्रतिष्ठा-महोत्सव

श्रे० डोसा ने वि० सं० १८१० में भारी प्रतिष्ठा-महोत्सव किया और महात्मा श्री देवचन्द्रजी के करकमलों से उसको सम्पादित करवाकर श्री सीमंधरस्वामीप्रतिमा को स्थापित किया। उक्त अवसर पर श्रे० डोसा ने कुंकुंमपत्रिका भेज कर दूर २ से सधर्मी बंधुओं को निमंत्रित किये थे। स्वामी-वात्सल्यादि से आगंतुक बंधुओं की उसने अतिशय सेवाभक्ति की थी, पुष्कल द्रव्य दान में दिया था, विविध प्रकार की पूजायें बनाई गई थीं और दर्शकों के ठहरने के लिये उत्तम प्रकार की व्यवस्थायें की गई थीं।

वि० सं० १८१० में डोसा के ज्येष्ठ पुत्र जेठमल का स्वर्गवास हो गया। श्रे० डोसा को अपने प्रिय पुत्र की अकाल मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। श्रे० डोसा ने संसार की असारता का अनुभव करके अपने न्यायोपार्जित द्रव्य को पुण्य कार्यों में व्यय करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इतना ही नहीं पुत्र की मृत्यु के पश्चात् तन और मन से भी यह परोपकार में निरत हो गया।

ज्येष्ठ पुत्र जेठा की मृत्यु और सं० डोसा का धर्म-ध्यान

वि० सं० १८१४ में श्रे० डोसा ने श्री शत्रुंजयमहातीर्थ के लिये भारी संघ निकाला और पुष्कल द्रव्य व्यय करके अमर कीर्त्ति उपार्जित की। वि० सं० १८१७ में स्वर्गस्थ जेठमल की विधवा पत्नी पुंजीबाई और श्रे० डोसा की धर्मपत्नी हीराबाई दोनों बहू, सासुओं ने संविज्ञपक्षीय पं० उत्तमविजयजी की तत्त्वावधानता में उपधानतप का आराधन करके भीमाला को धारण की। वि० सं० १८२० में श्रे० डोसा ने पन्यास मोहनविजयजी के करकमलों

जै० गु० क० भा० ३ पृ० ५७४, ५७६

से प्रतिष्ठामहोत्सव करवा कर श्री अजितवीर्य्य नाम के विहरमान तीर्थङ्कर की प्रतिमा स्थापित करवाई और तत्पश्चात् श्री शत्रुंजयमहातीर्थ के लिये संघ निकाला। इस अवसर पर संघपति डोसा ने दूर २ के सधर्मी बन्धुओं को कुंकुम-पत्रिकायें भेज कर संघयात्रा में संमिलित होने के लिये निमंत्रित किये थे।

श्रे० डोसा बड़ा ही धर्मात्मा, जिनेश्वरभक्त और परोपकारी आत्मा था। जीवन भर वह पदोत्सव, प्रतिष्ठोत्सव, उपधानादि जैसे पुण्य एवं धर्म के कार्य ही करता रहा था। उसने 'अध्यात्मगीता' की प्रति स्वर्णाक्षरों में लिखवाई और वह ज्ञान-भंडार में विद्यमान है। इस प्रकार धर्मयुक्त जीवन व्यतीत करते हुये उसका स्वर्गवास वि० सं० १८३२ पौ० कृ० ४ को हो गया।

पुंजीबाई का जीवन और उसका स्वर्गवास

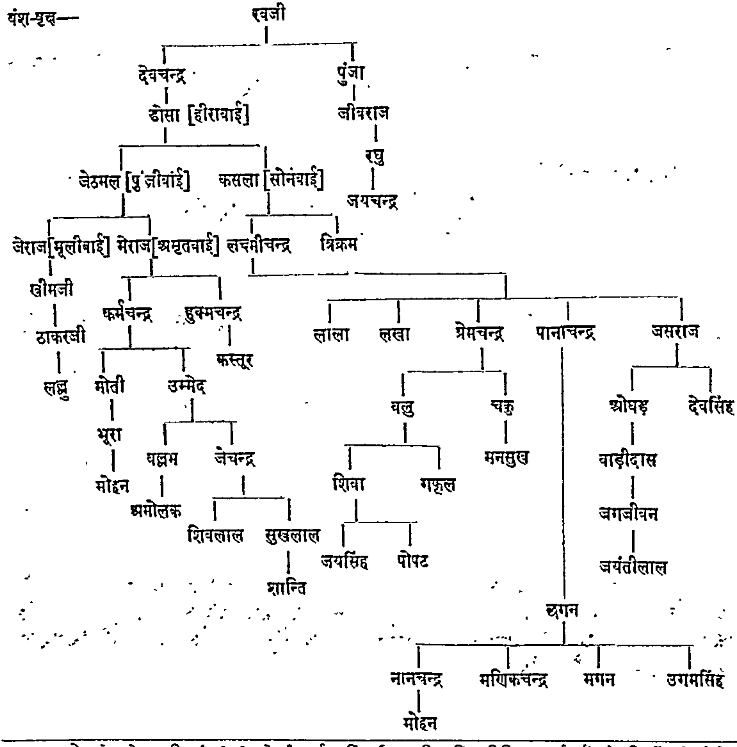
श्रे० डोसा के स्वर्गवास हो जाने पर उसी वर्ष में श्राविका विधवा पुंजीबाई ने अपने स्वर्गस्थ श्वसुर के पीछे चौरासी ज्ञातियों को निमंत्रित करके भारी भोज किया। उसी वर्ष में पं० पद्मविजयजी, विवेकविजयजी का लींमड़ी में चातुर्मास कराने के लिये अपनी ओर से लींमड़ी-संघ को भेज कर विनती करवाई और उनका प्रवेशोत्सव अति ही धूम-धाम से करवाया तथा चातुर्मास में अनेक विविध पूजायें, आंगी-रचनायें, प्रभावनायें आदि करवाई और अति ही द्रव्य व्यय किया। पुंजीबाई ठेट से ही धर्मप्रेमी और तपस्याप्रिया थी ही। पति के स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् तो उसने अपना समस्त जीवन ही तपस्याओं एवं धर्मकार्यों में लगा दिया। उसने उपधानतप, पांच-उपवास, दश-उपवास, बारह-उपवास, पन्द्रह-उपवास, मासखमण, कर्मसूदनतप, कल्याणकतप, बीसस्थानकतप, आंबिल की ओली, वर्द्धमानतप की तेत्रीस ओली, चन्दनबाला का तप, आठम, पांचम, ग्यारस, रोहिणी आदि अनेक तपस्यायें एक बार और अनेक बार की थीं। तपस्यायें कर कर के उसने अपना शरीर इतना कृश कर लिया था कि थोड़ी दूर चलना भी भारी होता था, परन्तु थी वह देव, गुरु, धर्म के प्रति महान् श्रद्धा एवं भक्तिवाली; अतः शक्ति कम होने पर भी वह प्रत्येक धर्मपर्व एवं उत्सव पर बड़ी तत्परता एवं लग्न से भाग लेती थी। वि० सं० १८३९ में पं० पद्मविजयजी महाराज ने लींमड़ी में अपना चातुर्मास किया। उस वर्ष लींमड़ी में इतनी अधिक तपस्यायें और वे भी इतनी बड़ी २ हुई कि लींमड़ी नगर एक तपोभूमि ही हो गया था। श्रे० डोसा के परिवार में श्रे० कसला की स्त्री ने पैंतीस उपवास, जेराज की स्त्री और मेराज की स्त्री मूलीबाई और अमृतबाई ने मासखमण और पुंजीबाई ने तेरह उपवास किये थे। उस वर्ष लींमड़ी में केवल मासखमण ही ७५ थे तो अन्य प्रकार के उपवास एवं तपस्याओं की तो गिनती ही क्या हो सकती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है पुंजीबाई अति कृश शरीर हो गई थी, निदान उसकी तेरह उपवास करते हुये वि० सं० १८३९ की श्रावण कृ० ११ को स्वर्गगति हो गई।

श्रे० कसला और उसका कार्य

श्रे० डोसा के कनिष्ठ पुत्र श्रे० कसला ने अपनी भ्रातृजाया श्राविका पुंजीबाई के तपस्या करते हुये पंचगति को प्राप्त होने पर, उसके कल्याणार्थ अनेक पुण्य एवं धर्मकार्य किये, संवत्सरीदान दिये, संघभोजन किये, अठारह वर्णों को अलग प्रीतिभोज दिये। इस प्रकार उसने बहुत द्रव्य व्यय किया। कसला भी अपने पिता श्रे० डोसा के समान ही पुण्यशाली और अपने द्रव्य का सद्मार्ग में मुक्तहस्त सदा सद्व्यय करने वाला था। उसने अनेक साधर्मिक वात्सल्य किये, अनेक प्रकार की पूजायें बनवाई, अनेक पदोत्सव-प्रतिष्ठोत्सव किये, चौरासी-ज्ञाति-भोजन किया। उसने 'सूत्रकृतांगनियुक्ति' की प्रति वि० सं० १८२१ श्रा० कृ० ८ सोमवार को लिखवाई तथा पं० पद्मविजयजी ने वि० सं० १८३९ में उसके अत्याग्रह पर 'समरादित्य का रास'

लिखा । श्रे० कसला कर्म-सिद्धान्त का अच्छा ज्ञाता था और उसकी लींमड़ी के संघ में भारी प्रतिष्ठा थी। स्वर्गस्थ श्रे० जेठा और कनिष्ठ कसला का परिवार भी विशाल था, जिसका नामवृक्ष नीचे दिया जाता है।

वंश-वृक्ष—



श्रे० डोसा के द्वारा वि० सं० १८६० में श्री पार्श्वनाथबिंब और आदिनाथबिंब प्रतिष्ठित करवाई हुई दो प्रतिमायें लींमड़ी के नवीन और जूने जिनालय में विद्यमान हैं। श्रे० डोसा का स्वर्गवास वि० सं० १८३२ में ही हो गया था। ज्ञात होता है उनके किसी वंशज ने श्रे० डोसा के नाम से उक्त प्रतिमाओं को उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रतिष्ठित की हैं। ली०जै०ज्ञा०भं०ह०प्र० सूचीपत्र पृ० १५-१८,

ग्राम हेमावसवासी श्रे० नगा
उन्नीसवीं शताब्दी

विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ग्राम हेमावस में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० वरजांग भार्या कनकदेवी का पुत्र श्रे० नगा प्रसिद्ध पराक्रमी हुआ है। उसकी कीर्त्ति के कारण ग्राम हेमावस दूर २ तक प्रख्यात हो गया था।

श्री गिरनारतीर्थव्यवस्थापक एवं गिरनारगिरिस्थ श्री आदिनाथ-मंदिर का निर्माता प्राग्वाटज्ञातीय श्रीमंत जिनेश्वरभक्त श्रे० जगमाल
विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी

श्रे० जगमाल विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में जैनसमाज में एक धर्मिष्ठ एवं जिनेश्वरभक्त श्रावक हो गया है। जगमाल ने न्यायनीति से व्यापार में अच्छी उन्नति की और पुष्कल धन का उपार्जन किया। इसके हृदय में गिरनारपर्वत पर एक जिनालय बंधवाने की सद्भावना कभी से जागृत हो गई थी। इसने कई बार तीर्थयात्रायें की थीं। ये उन महापुरुषों की महानता के विषय में सोचा करता था कि जिन्होंने अनंत द्रव्य व्यय करके तीर्थधामों में उत्तमकोटि के विशाल जिनालय बनवाये हैं। संसार की असारता का अनुभव इसको भी भलीविध था। निदान इसने कई लक्ष द्रव्य व्यय करके गिरनारगिरि के ऊपर श्री नेमिनाथटूंक में मूलजिनालय श्री नेमिनाथमंदिर के पृष्ठभाग में एक जिनालय का निर्माण करवाया और वि० सं० १८४८ वैशाख कृ० ६ शुक्रवार को महामहोत्सव-पूर्वक उसकी प्रतिष्ठा श्रीमद् विजयजिनेन्द्रसूरि के करकमलों से करवाकर उसमें मूलनायक श्री आदीश्वरभगवान् और अन्य प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करवाया।

श्रे० जगमाल गोरधन का निवासी था। गोरधन में आज भी इसके वंशज विद्यमान हैं। आज जो श्री गिरनारतीर्थ की व्यवस्था करने के लिए 'शा० देवचंद्र लक्ष्मीचंद्र' नामक पीढ़ी है, इसके पूर्व श्रे० जगमाल और खजी इन्द्रजी तीर्थ की देख-रेख करते थे। आज भी जहाँ उक्त पीढ़ी है, वहाँ एक चौक है और जगमाल के नाम पर वह जगमाल-चौक कहलाता है।

जै० गु० क० भा० ३ खं० २ पृ० १३३५
गि० ती० इति० पृ० ३८, ५६.

प्राग्वाटज्ञातीय परम जिनेश्वरभक्त श्रे० देवचन्द्र और श्री गिरनारतीर्थ-पीढ़ी 'शा० देवीचन्द लक्ष्मीचन्द'

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी

विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में वड़नगर (गूर्जर) से प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० देवचन्द्र आकर जूनागढ़ में बसा था। उसके साथ उसकी बहिन विधवा लक्ष्मीबाई भी आगई थी। दोनों भ्राता और भगिनी बड़े ही उदार, धर्मिष्ठ थे। नित्य जिनेश्वरप्रतिमा की सेवा-पूजा करते और आठों ही प्रहर प्रभु-भजन में व्यतीत करते थे। देवचन्द्र के कोई संतान नहीं थी और उसकी बहिन लक्ष्मीबाई के भी कोई संतान नहीं थी। दोनों ने अपनी आयु का अंत आया हुआ देख कर उनके पार्श्व में जितना भी द्रव्य था, वह तीर्थाधिराज भगवान् नेमनाथ के अर्पण कर दिया और उससे तीर्थ की व्यवस्था करने के लिए एक जैन पीढ़ी का निर्माण किया और उसका नाम 'देवचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र' रक्खा गया। जूनागढ़ के श्री संघ ने दोनों भ्राता-भगिनी का अति ही अभिनंदन किया और दोनों के नाम की तीर्थपीढ़ी स्थापित करके उनका महान् स्वागत किया।

उक्त पीढ़ी के स्थापित होने के पूर्व तीर्थ की देख-रेख गोरधनवासी प्राग्वाटज्ञातीय जगमाल और प्राग्वाट-ज्ञातीय रवजी इन्द्रजी करते थे। आज शा० 'देवचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र पीढ़ी' का कार्य बहुत ही सम्पन्न हो गया है। नगर में इसका विशाल कार्यालय है। इस के आधीन दो विशाल धर्मशालायें हैं। पर्वत पर भी इसकी ओर से पीढ़ी है और यात्रियों के ठहरने के लिये वहाँ भी सर्व प्रकार की सुविधा है।

सिंहावलोकन

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक जैनवर्ग की विभिन्न स्थितियाँ और उनका सिंहावलोकन

मुहम्मदगौरी की पृथ्वीराज चौहान पर ई० सन् ११९२ वि० सं० १२४९-५० में हुई विजय से यवनों का भारत में राज्य प्रारंभ-सा हो गया। राजपूत राजा सब हताश हो गये। मुसलमान आक्रमणकारी ने सहज ही में सरसुती, समन, कुहरामा, हांसी को जीत लिया और अजमेर पर आक्रमण करके समस्त राजस्थान पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया। अजमेर में गौरी ने सहस्रों भारतियों को तलवार के घाट उतारा। सैंकड़ों मंदिरों को तोड़ा और उनकी जगह मस्जिद् और मकबरे बनवाये। जैन को अजैन और अजैन को जैन बनाने का कार्य जो दोनों मतों के धर्म-प्रचारक कर रहे थे, अब भारत में तीसरी और वह भी महाभयंकर स्थिति उत्पन्न हो जाने के कारण बंद होने लग गया। अब दोनों के मंदिर और मठ तोड़े जाने

इस्लामधर्म और आर्यधर्म तथा जैन मत

गि० तीर्थ० इति० पृ० ५६ (चरण-लेख)

लगे। तलवार के बल पर मुसलमान बनाये जाने लगे। फल यह हुआ कि उक्त दोनों मतों में चला आता हुआ द्वन्द्व समाप्त हो गया और धर्म और प्राण बचाने की कठिन समस्या उत्पन्न हो गई। पृथ्वीराज जैसे महाबली सम्राट् की पराजय से अब कोई भी भारतीय राजा मुहम्मद गौरी से सामना करने का विचार स्वप्न में भी नहीं कर सकता था। गौरी तो अजमेर की जीत करके अपने देश को लौट गया और अपने पीछे योग्य शासक कुतुबुद्दीन को छोड़ गया। कुतुबुद्दीन ने थोड़े ही समय में मीरट, कोल, दिल्ली को जीत लिया और वह दिल्ली को अपनी राजधानी बनाकर राज्य करने लगा। वह ई० सन् १२०६ वि० सं० १२६३ में स्वतंत्र शासक बन बैठा। उस समय से ही भारत में यवनराज्य की स्थापना हुई समझी जाती है।

उधर आर्य ज्ञातियों एवं वर्गों में भी कई एक शाखायें उत्पन्न होना आरंभ हो गई थीं। नीच, ऊँच के भाव अधिक दृढ़ होते जा रहे थे। ज्ञातिवाद भयंकर छूत-अछूत की महामारी की सहायता लेकर आर्यज्ञाति को छिन्न-भिन्न कर रहा था।

जैसा पूर्व में लिखा जा चुका है कि जैन समाज के भीतर भी रहे हुये वर्ग अपना २ अस्तित्व अलग स्थापित करने लग गये थे और फिर प्रत्येक वर्ग के भीतर भी साधारण प्रश्नों, त्रुटियों को लेकर कई शाखायें उत्पन्न होने के लक्षण प्रतीत होने लग गये थे। अब प्राग्वाट, श्रीमाल, ओसवाल जो परम्परा से कन्या-व्यवहार करते थे, जैनाचार्य अन्य धर्मानुयायी उच्च कुलों को जैनधर्म का प्रतिबोध देकर जिनमें संमिलित करने का समाज की वृद्धि करनेवाला कार्य कर रहे थे, अब ये सर्व सामाजिक संबंध शिथिल पड़ने लगे। और जहाँ परस्पर जैनवर्गों में कन्या-व्यवहार का करना बंद प्रायः होने लग गया, वहाँ अब नये कुलों को जैन बनाकर नवीनतः स्वीकार करने की बात ही कैसी ? ज्ञातिवाद का भयंकर भूत बढ़ने लगा। थोड़ी भी किसी कुल से सामाजिक त्रुटि हुई, वह ज्ञाति से बहिष्कृत किया जाने लगा। मुसलमानों के बढ़ते हुये अत्याचारों से, बहू-बेटियों पर दिन-रात होने वाले बलात्कारों से समस्त उत्तरी भारत भयभीत हो उठा और धर्म, स्त्री, प्राण, धन की रक्षा करना अति ही कठिन हो गया। यवनों का यह अत्याचार सम्राट् अकबर के राज्य के प्रारंभ तक बढ़ता ही चला गया। बीच में महमूदतुगलक के राज्यकाल में अवश्य थोड़ी शांति रही थी। यवनों के इस्लामीनीति पर चलने वाले राज्य के कारण भारत की सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक, आर्थिक, स्थिति भयंकर रूप से बिगड़ गई। सब प्रकार की स्वतंत्रतायें नष्ट हो गईं। जैनसमाज भी इस कुप्रभाव से कैसे बच कर रह सकती थी। इसके भी कई तीर्थों एवं जैन मंदिरों को तोड़ा गया। बिहार और बंगाल में रहे हुये कई सहस्र जैन को धर्म नहीं बदलने के कारण तलवार के पार उतारा गया। राजस्थान में कुलगुरुओं की जो पौषधशालायें आज विद्यमान हैं, इनमें से अनेक के यहाँ आकर बसने वाले कुलगुरु बिहार से अपने प्राण और धर्म को बचाने की दृष्टि से भाग कर आने वालों में थे। उनके तेज और तप से प्रभावित होकर राजस्थान के कई एक राजा और सामंतों ने उनको आश्रय दिया और उनको मानपूर्वक बसाया।

लिखने का तात्पर्य यही है कि अब नये जैन बनाना बंद-सा हो गया और जैनसमाज का घटना, कई शाखाओं एवं स्वतंत्र वर्गों में विभाजित होकर छिन्न-भिन्न होना प्रारंभ हो गया। जहाँ प्राग्वाट, श्रीमाल, ओसवाल आदि

जैन वर्ग जैन समाज के भीतर प्रान्तीय वर्ग थे, अब स्वतंत्र ज्ञातियों में पूर्णतया बदल गये और प्रत्येक ने अलग अपना अस्तित्व घोषित कर लिया।

सम्राट् अकबर के समय से कुछ एक यवन-शासकों को छोड़ कर अधिक ने जैन एवं हिन्दूओं के साथ अपने पूर्वजों के सदृश दुर्व्यवहार नहीं किया। परन्तु फिर भी इतना निश्चित है कि यवनों के सम्पूर्ण राज्य-काल में भय सदा ही बना रहा और कोई आर्य-धर्म उन्नति नहीं कर सकता। ब्रिटिश-राज्य की स्थापना हो जाने पर धर्म-संकट दूर होने लगा।

धार्मिक जीवन

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी पर्यन्त भारत में यवन-राज्य रहा। तब तक भारत में धर्म-संकट प्रायः बना ही रहा। यह सत्य है कि पिछले वर्षों में वह कम पड़ना प्रारम्भ हो गया था। यवनराज्य जब अपने पूरे यौवन पर समस्त भारत भर में फैल चुका था, कोई भी आर्यमत नया मन्दिर बिना यवन-शासक की आज्ञा लिये यवनराज्यों में नहीं बनवा सकता था, धर्मसम्मेलन, तीर्थसंघयात्रा में नहीं निकल सकता था। जहां जहां देशी राजाओं की स्वतंत्र सत्ता कहीं रह गई थी, वहाँ वहाँ अवश्य धर्मस्वतंत्रता थी। यही कारण है कि यवनराज्यकाल में नये जैनमन्दिर भी कम ही बनवाये गये। राजस्थान में यवनराज्य कभी पूर्ण रूप से जमने ही नहीं पाया था, अतः जो कुछ धर्मकार्य हुआ, वह अधिकांश में राजस्थान के राज्यों में ही हो सका था। मेदपाटसम्राट् महाराणा कुम्भा यवनों से सदा लड़ते रहे थे और वे अपने राज्य के स्वतन्त्र शासक रहे थे। अतः उनके राज्यकाल में प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठिवर धरणाशाह ने श्री राणकपुर नामक नवीन नगर बसा कर वहाँ पर श्री राणकपुरतीर्थ नामक त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार आदिनाथ-जिनालय का एक कोटि के लगभग रुपया लगवाकर निर्माण वि० सं० १४६४ में करवाया था तथा उसके ज्येष्ठ भ्राता रत्नाशाह के पुत्र सालिग के पुत्र सहसाशाह ने, जो माण्डवगढ़ के यवन-शासक का मंत्री था अर्बुदगिरिस्थ श्री अचलगढ़ दुर्ग में, जो उक्त महाराणा के अधिकार में ही था और पीछे भी उसके ही प्रतापी वंशजों के अधिकार में कई वर्ष पर्यन्त रहा था, चतुर्मुखा श्री आदिनाथ-जिनालय का वि० सं० १५५६ में निर्माण करवाया था। इस ही प्रकार सिरोही (राजधानी) में संघवी सिपा ने महारावल सुरताणसिंहजी के पराक्रमी राज्य-काल में श्री चतुर्मुखा-आदिनाथ नामक प्रसिद्ध जिनालय का निर्माण वि० सं० १६३४ में करवाया था। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि यवनराज्य के पाँच सौ वर्षों में ये ही तीन जिनालय नामांकित बनवाये जा सके थे और ये भी देशी राज्यों में। जैन ठेठ से तीर्थयात्रायें, संघयात्रायें करने में धर्म की प्रभावना मानते आये हैं और उन्होंने असंख्य बड़े २ संघ निकाले हैं, जिनकी शोभा और वैभव की समानता बड़े २ सम्राटों की कोई भी यात्रा नहीं कर सकती थी। यवनराज्य में तीर्थयात्रायें, संघों का निकालना प्रायः बंद ही हो गया था। अगर कोई संघ निकाला भी गया, तो जिस २ यवनशासक के राज्य में होकर वह संघ निकला, उससे पूर्व आज्ञा-पत्र प्राप्त करना पड़ता था और संघ वह ही निकाल सकता था जिसका यवनशासकों पर कुछ प्रभाव रहा था अथवा यवनों की राज्यसभा में रहने वाले अपने किसी प्रभावशाली सधर्मी बंधु के द्वारा जिसने आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया था। छोटे, बड़े धर्मत्यौहार, पर्वों की आराधना मनाने तक में लोगों को यवनों का सदा भय रहता था। सम्राट् अकबर, जहाँगीर, शाहजहां के राज्यकालों में अवश्य भारत के सर्व धर्मों को स्वतंत्रता पूर्वक श्वांस लेने का

अवकाश प्राप्त हुआ था। इसी का फल है कि विक्रम की सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दियों में यवन-राज्यों में कई छोटे-बड़े जैन मंदिर बने, प्राचीन जीर्ण-शीर्ण हुये अथवा विधर्मीजनों द्वारा खण्डित किये गये मंदिरों का, तीर्थों का जीर्णोद्धार फिर से करवाया जा सका, अनेक स्थलों में अंजनशलाका-प्राण-प्रतिष्ठोत्सव कराये जा सके तथा जैन साधु अपने २ चातुर्मास में अनेक पुण्य के कार्य करवा सके और नवीन अगणित जैन बिंबों की स्थापनायें की जा सकीं। इसका एक कारण यह भी था कि मुगलसम्राटों की नीति मेल-भोल की थी। वे सर्व ही धर्मों से अपना संबंध बनाये रखना चाहते थे। वैसे उनकी राजसभाओं में भी जैनाचार्य्यों का अत्यधिक प्रभाव रहा है। फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि छोटे २ ग्रामों में जो यवन-राज कर्मचारी रहते थे, बड़े ही दुष्ट और अत्याचारी ही होते थे, अतः ग्राम की जनता तो त्रस्त ही बनी रहती थी, जिसका रक्षक भगवान् ही होता था।

मुगलराज्यकाल के अन्त में अंग्रेज भारत में अपना राज्य जमाने का सफल प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगलराज्य का अन्त करके भारत में बृटिशराज्य की नींव डाली और उनका राज्य धीरे २ बढ़ता ही गया। बृटिशराज्य जमा भेदनीति के आश्रय और कुछ लोकप्रियता की प्राप्ति पर। अंग्रेजों ने मुसलमानों के समान किसी ज्ञाति पर बलात्कार नहीं किया, उनकी बहू-बेटियों का सतीत्व हरण नहीं किया, धर्मस्थानों, मंदिरों को नहीं तोड़ा, धर्मपर्वों, त्यौहारों के मनाने में बाधायें उत्पन्न नहीं कीं, तीर्थयात्राओं, संघों के निकालने में रुकावट नहीं डाली, अतः वे इस दशा में भी लोकप्रिय बनते गये यह सब पुनः हुआ, परन्तु आर्य-धर्मों में वह पूर्व-सी जागृति नहीं आ पाई। फिर भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि जैनाचार्य्यों ने विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी से लगाकर विक्रम की बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक असंख्यक नवीन जिनबिंबों की स्थापनायें करवाईं, छोटे-बड़े कई नवीन जिनालय बनवाये, अनेक बड़ी २ अंजनशलाकायें, प्राणप्रतिष्ठोत्सव, अन्य धर्मोत्सव करवाये, संघ निकलवाये और पर्वों की, तपों की आराधनायें करवाईं। इन जैनाचार्य्यों में महाप्रभावक आचार्य भी कई-एक हो गये हैं, जिनमें प्राग्वाटज्ञाति में उत्पन्न तपागच्छीय श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि, आणंदविमलसूरि, कल्याणविजयगणि, विजयतिलकसूरि, विजयानन्दसूरि, लौंकागच्छसंस्थापक श्रीमान् लोंकाशाह, श्री पार्श्वचन्द्रगच्छ संस्थापक श्रीमद् पार्श्वचन्द्रसूरि, खरतरगच्छीय उपाध्याय श्रीमद् समयसुन्दर आदि कई नामांकित साधु, आचार्य, श्रावक हुए हैं, जिन्होंने पुनः जैनधर्म में जाहोजलाली लाने का प्राण-प्रण से संकल्प करके कार्य करने वालों में भारी भाग लिया हैं।

पूर्व ही लिखा जा चुका है कि यवनसत्ता जब तक भारत में स्थापित रही, भारत में धर्म, धन, प्राण, मान स्त्री सब संकटग्रस्त ही रहे। राज्याधिकारी विधर्मी, अन्यायी, दुराचारी, लंपटी होते थे। ग्रामों की जनता की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। व्यापार की दशा बिगड़ चुकी थी। धन को भूमि में गाड़ कर रखते थे। विवाहोत्सवों में, धर्मपर्वों में भी आभूषण पहिनते हुये स्त्री और पुरुष डरते थे। अत्याचारी यवन-शासकों, राज-कर्मचारियों की स्त्री और कन्यापहरण की दुर्नीति से बालविवाह और पर्दाप्रथा जैसी समाजघातक प्रथाओं का जन्म हो गया था और वे सुदृढ़ एवं विस्तृत होती जा रही थीं। मार्गों में सदा चोर, लुटेरों का डर रहता था। युद्ध के समय में खेती नष्ट करदी जाती थी, जिसका कोई सरकार की ओर से मूल्य नहीं चुकाया जाता था। ऐसी स्थिति में जैन समाज भी आर्थिक स्थिति में निर्बल पड़ा। पहिले से ही

सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

समाज के वर्गों में परस्पर कटुता तो बढ़ती ही जा रही थी। परस्पर अब कन्या-व्यवहार सर्वथा बंद ही हो गया था। लघुशाखा और बृहद्शाखाओं का अस्तित्व पूरा बन चुका था। प्रतिमालेखों, प्रशस्तिग्रन्थों में भी अब 'लघुशाखीय' और 'बृहद्शाखीय' शब्दों का ग्रन्थ लिखाने वालों की प्रशस्तियों में लिखा जाना प्रारंभ हो गया था। पहिले के समान अब तो अन्य उच्च कुलीन परिवार जैन नहीं बनायां जारहा था। बल्कि सामाजिक प्रबन्ध इतना कठोर बन रहा था कि साधारण-सी सामाजिक त्रुटि पर कुल समाज से बहिष्कृत कर दिये जाते थे। मेरे अनुमान से दस्सा और बीसा-भेदों के उपरांत जो पांचा, ढाईया और कहीं २ सवाया भेदों का अस्तित्व देखने में आता है, उनकी उत्पत्तियां यवनराज्यकाल में ही हुई हैं, जब कि ज्ञातिवाद का जोर भारी बढ़ चला था। समाज बाहर से संकटग्रस्त और भीतर से छिन्न-भिन्न हो रहा था। समाज में ऐक्य, सौहार्द, पारस्परिक स्नेह जैसे भाव अंतप्रायः हो गये थे। पहिले जैसा प्राग्वाट, ओसवाल, श्रीमाल वर्गों में भी स्नेह और भ्रातृभाव नहीं रह गया था।

विक्रम की आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक के लम्बे समय में प्राग्वाटवर्ग ने जो मान, प्रतिष्ठा, कीर्त्ति, धनवैभव प्राप्त किया था और अपनी समाज के अन्य वर्गों से ऊंचा उठा हुआ था, अपनी समाज में यवनों के राज्यकाल में वह धन में, मान में उतना ही नीचा गिरा। बाल-विवाह और पर्दाप्रथाओं का इसमें भी जन्म हो गया और वे दिनोंदिन दृढ़तर ही बनती रहीं। नगरों को छोड़ कर अन्य कुलों की भांति प्राग्वाटवर्ग के कुल भी दूर जंगल-पर्वतों में, छोटे २ ग्रामों में, रहने लगे, जहां यवन-आततायी एकाएक नहीं पहुँच सकते थे और साधारण जीवन व्यतीत करने लगे।

साहित्य और शिल्प

यवनराज्यकाल में जैसा धर्म खतरे में था, धर्म का आधारभूत साहित्य भी खतरे में था। यवनों ने जैन, वेद और बौद्धसाहित्य को सर्वत्र नष्ट करने में कोई कमी नहीं रक्खी। जैनसाहित्य भी बहुत ही नष्ट किया गया। जैसलमेर के ज्ञान-भण्डार की स्थापना भी बहुत संभव है इसी संकटकाल में हुई। प्राग्वाटवर्ग के श्रीमंत एवं साहित्यसेवी व्यक्तियों ने अपने धर्म के ग्रन्थों की सुरक्षा में सराहनीय भाग लिया। यद्यपि इस संकटकाल में अधिक संख्या में और विशाल ज्ञान-भण्डारों की स्थापना तो नहीं की जा सकी, परन्तु धर्मग्रन्थों की प्रतियां लिखवाने में उन्होंने पूरा द्रव्य व्यय किया। इस काल के प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों में प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० यशस्वी पेथड़ का नाम उल्लेखनीय है। पेथड़ का विस्तृत इतिहास इस प्रस्तुत इतिहास में आ चुका है। यहां इतना ही कहना है कि यह बड़ा प्रभावक था, जब ही अल्लाउद्दीन जैसे हिन्दूधर्म-विरोधी, अत्याचारी बादशाह के काल में भी वह चार ज्ञानभण्डारों की स्थापना करने में सफल हुआ था। इतना ही नहीं उसने तो लूणसिंहवसहिका का भी अतुल द्रव्य व्यय करके जीर्णोद्धार करवाया था और उसने कई एक अन्य पुण्य के बड़े २ कार्य किये थे।

इस काल में ताड़पत्र अथवा कागज पर धर्मग्रंथों की प्रतियां अपने न्यायोपार्जित द्रव्य को व्यय करके लिखाने वालों में मुख्यतः श्रे० धीणा, सज्जन और नागपाल, आसपाल, सेवा, गुणधर, हीरा, देदा, पृथ्वीभट, महं० विजयसिंह, श्रा० सरणी, श्रा० विम्भी, श्रे० थिरपाल, मोढ़कपुत्र, सांगा और गांगा, अभयपाल, महण, श्रा० स्याणी, श्रा० कडू, श्रा० आसलदेवी, श्रा० प्रीमलदेवी, श्रा० आल्हू, श्रा० रूपलदेवी, श्रे० धर्म, श्रा० माऊ, श्रे० धर्मा, गुणेयक, कोठारी बाघा, मारु,कर्मसिंह, मोमराज, मं० गुणराज, श्रे० केहुला, जिणदत्त, सद्देवी

कालूशाह, वच्ची, जीवराज, श्रा० अनाई, देवराज और उसका पुत्र विमलदास, मं० सहसराज, श्रे० पचकल, खीमजी, मं० धनजी, सा० सोनी, श्रे० रामजी, लहूजी, रंगजी आदि अनेक श्रेष्ठि व्यक्ति और श्राविका स्त्रियां हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि प्राग्वाटवर्ग के स्त्री और पुरुषों में जैसी देवभक्ति रही है, वैसी साहित्यभक्ति भी रही है। प्रस्तुत इतिहास में उक्त व्यक्तियों द्वारा लिखवाये गये ग्रंथों में उनकी दी गई प्रशस्तियों के आधार पर उनका यथाप्राप्त वर्णन दे दिया गया है, अतः यहां उनके साहित्यप्रेम के ऊपर अधिक लिखना व्यर्थ ही प्रतीत होता है।

प्राग्वाटवर्ग के व्यक्तियों की जिनेश्वरभक्ति भी इस धर्म-संकटकाल में भी नहीं दब पाई थी, ऐसा कहा जा सकता है। तब ही तो शिल्प का अनन्य उदाहरणस्वरूप श्री राणकपुरतीर्थ-धरणविहार नामक आदिनाथ-जिनालय, अर्बुदस्थ अचलगढ़दुर्ग में श्री चौमुखादिनाथ-जिनालय और सिरोही में श्री आदिनाथ-जिनालय के निर्माण संभव हुये थे। इतना ही नहीं अचलगढ़स्थ जिनालय में जो बारह(१२) सर्वधातुप्रतिमायें वजन में लगभग १४४४ मण (प्राचीन-तोल) की संस्थापित करवाई गई थीं, उनमें कई एक तो प्राग्वाट-व्यक्तियों द्वारा विनिर्मित थीं। ये प्रतिमायें और ये उक्त जिनालय इनकी जिनेश्वरभक्ति के साथ में इनका कलाप्रेम भी प्रकट करती हैं। उक्त प्रतिमाओं और तीनों मंदिरों का कला की दृष्टि से प्रस्तुत इतिहास में पूरा २ वर्णन दिया गया है। यहां इतना ही कहना है कि प्राग्वाट-व्यक्तियों का कलाप्रेम ही अन्य समाजों के कला एवं शिल्प के प्रेमियों को भी भूत में और वर्तमान में भी जैन तीर्थों के प्रति आकर्षित कर रहा है और भविष्य में भी करता ही रहेगा। जैनसमाज तो इन धर्म-प्रेमी, शिल्पस्नेही व्यक्तियों से गौरवान्वित है ही।

राजनैतिक स्थिति

गूर्जरसम्राटों की शोभा और संतति की इति के साथ में प्राग्वाटवर्ग की राजनैतिक ऊंची स्थिति भी गिर गई और नष्टप्रायः हो गई। अब वे बड़े २ साम्राज्यों के, राज्यों के महामात्य, मंत्री, दंडनायक जैसे उच्च पदों पर नहीं रह गये। राजस्थान और मालवा में भी उनकी राजनैतिक स्थिति अपने समाज के वर्गों में परस्पर ईर्षा, मत्सर, द्वेष जैसे फूट के पोषक विकारों के जोर के कारण अच्छी नहीं थी। अब वे केवल छोटे २ ग्रामों में व्यापारीमात्र रह गये थे। धरणाशाह का वंश अवश्य विक्रम की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में समाज और मेदपाट-महाराणा और माण्डूगढ़ के बादशाह की राजसभा में अति ही सम्मानित रहा है, परन्तु ऐसे एक-दो या कुछ ही व्यक्तियों से सारा समाज राजनैतिक क्षेत्र में उन्नत रहा नहीं माना जा सकता।

श्री गुरुकुल प्रिं० प्रेस, ब्यावर
ता० १६-८-१९५३

लेखक—
दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी. ए.

इतिहास सम्बन्धी त्रुटियों का

शुद्धि-पत्र

जीवन-परिचय

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठांक	पंक्ति
मानमलजी	मगनमलजी	१८	१४
दानमलजी	आईदानमलजी	२१	२
फारादेवी	प्यारादेवी	२३	१२ (+)

प्रस्तावना

हिम्मतमलजी हुकमाजी	हिम्मतमलजी हंमाजी	७	२२

चित्र-सूची

१६०	१८८	७१	६

प्रथम खण्ड

गड़े हैं	पड़े हैं	२५	१६

तृतीय खण्ड

४४७	४५७		(पृष्ठांकस्थल)
देवीचन्द	देवचन्द	४१७	(शीर्षक)